भाग १ मेष, १९७२। April, 1915. संख्या १
Vol I. No. 1.

प्रयाग की विज्ञानपरिषत् का मुखपत्र

VIJNANA, the Hindi Organ of the Vernacular Scientific Society, Allahabad.

सम्पादक— { लाला सीताराम बी. ए., एफ़. ए. यू.
पंडित श्रीधर पाठक

विषय-सूची

प्रकाशक

लाला कर्मचन्द्र भल्ला, विज्ञान-कार्य्यालय, प्रयाग

वार्षिक मूल्य ३)] [१ प्रति का मूल्य ।)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग १ } मेष, सम्वत् १९७२। एप्रिल, सन् १९१५। { संख्या १

मंगलाचरण

सूर्य, अग्नि, जल, व्योम, वायु में जिसका बल है
संचालक सब का परन्तु जो स्वयम् अचल है
उस अटल तत्व के ज्ञान से माया-पटल विनाश हो
जो सर्वत्र सुविज्ञों का जिज्ञासा-स्थल है
जगत दृश्य जिसकी केवल माया का छल है
उस ब्रह्म-बीज विज्ञान का सबथल सुखदप्रकाश हो

—श्रीधर पाठक।

अपनी चर्चा

प्राणियों का शरीर निरन्तर बनता बिगड़ता रहता है। उसका बनना रुक जाता है, उसी समय से मरण होने लगता है। हम लोगों की भाषा की दशा भी प्राणियों की सी है। उसके साहित्य में नित्य बनने और बिगड़ने का तार लगा रहता है। जैसे मनुष्य अपने शरीर के अंग अंग को व्यायाम से पुष्ट करता और बली बनाता है वैसे ही भाषा के अंग अंग को भी बलवान और पुष्ट रखने की आवश्यकता है।

समयानुसार हिन्दी के जिस अंग की जितनी उन्नति चाहिये थी बराबर उसके हितैषी स्वभावतः उसकी ओर दत्तचित्त रहे। पर खेद की बात है कि और अंगों की अपेक्षा हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक अंग अत्यंत बलहीन और अपूर्ण है। इस अपूर्णता की पूर्ति के लिए इस पत्र का जन्म हुआ है। इस अंग की पूर्ति विज्ञानपरिषत् के उद्देश्य के अन्तर्गत है। इससे आशा की जाती है कि जैसे परिषत् इस सत्कार्य्य के साधन में उद्यत हुई है, हिंदी-हितैषी भी उसके इस सदुद्योग का पूरा आदर करेंगे और तन मन धन से सहायक होंगे।

* * *

General साधारण]

हिन्दी के भक्त परिषत् के उद्योगों का पूरा आदर करेंगे इसकी दृढ़ आशा हमको कई कारणों से हुई है। हिन्दीभक्तों ने परिषत् का सहकारी और सदस्य होना सहर्ष स्वीकार किया। जब हमने पत्र प्रकाशित करने का विचार प्रकट किया हमारे समस्त सहयोगियों ने बड़े अनुग्रह से हमारे विचार का समर्थन किया। अपने पाठकों से हमारी सहायता के लिए अनुरोध किया, हमारे विज्ञापन बिना दाम छापे, और हमारी योग्यता की परीक्षा लिये बिना ही परिषत् का पूरा विश्‌वास करके हिन्दी हितैषियों को इस भावी सहयोगी का ग्राहक होने के लिए उत्साहित किया। इस अनुग्रह और सहायता के लिए हम अपने सहयोगियों के बाध्य हैं और उनको इस भाषानुराग की बधाई देते हैं।

साथ ही हमको इस बात का भय है कि 'तितीर्षुर्दुस्तरन्मोहादुडुपेनास्मि सागरम्' इस दुस्तर और कठिन कार्य्य को अपनी अयोग्यता से सँभालने में समर्थ न होकर, ऐसा न हो कि कहीं हम विद्वज्जनों में हास्यास्पद बनें और विज्ञानसाहित्य के प्राचुर्य्य की आशा लगाये हुए हिन्दी माता को निराश कर दें। यह भय हमको इस कार्य्य का साहस न करने देता यदि हिन्दी के अनेक योग्य विद्वान हमारी सहायता के लिए कटिबद्ध न होते और हमारे उत्साह को न बढ़ाते।

* * *

अधिकांश वैज्ञानिक विषय हमारी भाषा के लिए नवीन है; उसको पाठकों के सामने उपस्थित करने में हमें अनेक गढ़े हुए शब्दों का आश्रय लेना पड़ेगा जिनसे लेख की रोचकता घट जानी संभव है। साथ ही साथ विषय भी सरल नहीं हैं। कठिन विषयों को सरल भाषा में मनोरंजक रीति पर वर्णन करना साधारण लेखकों का काम नहीं है। साहित्य के गंभीर विद्वान, रसिक और मर्मज्ञ ही दुरूह विषयों को रोचक बना सकते हैं। सो, दुर्भाग्यवश विज्ञानसेवी साहित्य की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं पाते और साहित्य सेवियों ने बहुधा विज्ञान का अध्ययन नहीं किया है। ऐसी दशा में पाठकों का मनोरंजन जितना साधारण मासिकपत्र करते हैं वा कर सकते हैं उतनी क्षमता हम में होना कठिन है। तब भी आशा है कि कुछ दिनों में हम पाठकों के लिए इस पत्र को कुछ रोचक बना सकेंगे। और यह भी आशा है कि विद्याव्यसनी पाठक इस पत्र की उपयोगिता समझ कर, पूरी मनोरंजकता न होने पर भी इसके लेखों को हृदयंगम करने का तथा विज्ञान के प्रचार का प्रयत्न करेंगे।

विज्ञानशिक्षा की आवश्यकता

वह काल और यह काल

सवेरे का सुहावना समय है। पूरब की लाली धीरे धीरे बढ़ते बढ़ते सारे आकाशमंडल में फैल गयी। क्षितिज की चादर को उघार सूरज के झाँकने की देर थी, कि सारा जंगल सुनहली किरणों से जगमगा उठा। जो हरियाली अभी सन्नाटे के संसार में बेसुध सो रही थी, अचानक जागकर चहचहा उठी। सारे वन में इस जगत् के जीवन प्राण सूर्य्य देवता की अवाई पर बधाई बजने लगी। ओस की

General साधारण]

बूंदों ने हरी हरी पत्तियों के अरघों से ढलढल कर पाद्य और अर्घ्य दिये। नरम नरम टहनियों ने सुगन्धवाले सुन्दर कोमल फूल चढ़ाये। आकाश ने आरती में चाँद तारे और नक्षत्र वार दिये। पुण्यमयी वहिःसलिला सरस्वती के किनारे कौपीन से अंग ढके, मृगछाला ओढ़े और बिछाये अग्नि के सम्मुख आसीन ऋषि इस सुन्दरता पर मोहित हो आँखें मूंद इसका चित्र अपने हृदय पटल पर उतारने लगे और इस संसार के पिता सूर्य्यों के सूर्य्य को हृदय से धन्यवाद देने लगे और उसकी महिमा गाने लगे—

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं,
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

* * * *

बीसवीं सदी के पूरे सजे सजाये निउयार्क नगर को सड़क के चैामंज़िले का एक कमरा है, जिसमें टेलिफ़ोन लगे हुए हैं, बिजली के तारों का ताना बाना सा भीतों के भीतर से फैला है। किसी तार से खाना पकता है, किसी से रोशनी होती है, किसी से पंखा चलता है, किसी से झाड़ू दिलवाते हैं, किसी से घर की रखवाली कराते हैं, कोई घड़ी को चलाता और ठीक रखता है और कोई आने जानेवालों को सहज ही चैामंज़िले से नीचे सड़क पर या चालीसवें मंज़िल पर पलक भाँजते में उतारता चढ़ाता है। घड़ियों में ठीक चार बजे हैं। अभी ३ घंटे दिन बाकी है, पर अँधेरा हो रहा है। खिड़की से सिर निकाल कर देखिये तो दोनों ओर चालीस चालीस पचास पचास मंजिले मकान आकाश को चूम रहे हैं, उनकी ओर छोर पर निगाह डालिये तो सिर से टोपी गिर जाय, तब कहीं दोनों ओर की अटारियों के बाजू के बीच आकाश का झरोखा देखने में आवे, फिर ऐसी जगह सूरज कहीं दोपहर को कोशिश करके आप झाँक गया तो झाँक गया "नाहिं त मोहिं जस दिन तस राती।" पता नहीं चलती कि साँझ कब हुई। यहाँ तो अँधेरा मालूम हुआ और एक बटन दबाते ही सारा कमरा जगमगाने लगा। पर इस आराम में भी रहते रहते जी उकता ही जाता है, चंचल मन कब मानता है। जी बहलाने को आकाश में उड़ने के लिए विमान, थल पर दौड़ने को मोटर और जल पर दौड़ने को स्टीमर तैयार हैं। बाहरी सभ्य संसार से बात चीत करने को टेलिफ़ोन, तार, बेतार का तार, बेतार का टेलिफ़ोन, आदि यन्त्र ऐसे हैं जिनके सामने देश और काल सिकुड़ सिकुड़ कर नन्हें नन्हें हो रहे हैं। कई बरसों की राह सेकंडों में कट जाती है। बरसों का काम सेकंडों में पूरा हो जाता है। अड़ोस पड़ोस सैकड़ों कारखाने इंजन से भरे पड़े हैं। कहीं भाप, कहीं गैस, कहीं पानी, कहीं हवा, कहीं बिजली, कहीं कमानी, हर तरह के बल से कलों के चलने से घोर शोर हो रहा है। इनसे भी जी उकताया तो शहर के बाहर विश्वकर्म्मा के कई योजन में फैले बड़े बड़े भट्ठे महा विकराल अग्नि से धधक रहे हैं। साँझ की अँधेरी में इनका तेज दसों दिशाओं को लाल कर रहा है, इन भट्ठों से पानी की तरह पतले गले हुए उजले जलते लोहे की धारा निकल रही है। यही लोहा सारे कलों मशीनों की जान है। दूसरी ओर धरती को खोद खोद पाँच मील गहरा बड़ा भयानक लंबा चौड़ा गड्ढा बना हुआ है जिसमें आदमी उतर उतर मानों पाताल का पता लगा रहे हैं। तीसरी ओर ज्योतिषी धवरहरे पर चढ़ा दूरबीन लगाये

नीहारिकाओं को निहार निहार सब से दूर के तारों से बातें कर रहा है, आज से लाखों बरस पहले जो उनकी दशा थी उन्हें आज अपनी आँखों से देख रहा है और पहचान रहा है कि वह किन तत्वों के बने हुए हैं।

आकाश, धरती, पाताल, आज मनुष्य ने सब पर अपना राज फैला रक्खा है, परंतु उस सवेरे के समा में और इस साँझ के तमाशे में, संसार के उस प्रभात में और इस सायंकाल में मर्त्यलोक और पाताल का अंतर है। पहले कंदमूल फल फूल पर आनंद से दिन बीतते थे, आज मनुष्य को इतने पर संतोष नहीं है। हज़ारों मनुष्य इस संसार में नदी के निर्म्मल जल का स्वाद नहीं जानते। अनेक तरह के बनावटी भोज्य पदार्थों ने पुराने प्रकृति के उपजाये अन्नों को निकाल बाहर कर उनकी जगह ले ली है। पहनने ओढ़ने की वस्तुएँ भी नये नये ढंग की बन गयी हैं। चलने, फिरने, लिखने, पढ़ने, गाने, बजाने, देखने, सुनने, छूने, सूघने यहाँ तक कि साँस लेने तक के यन्त्र बने हुए हैं और उनकी चाल ऐसी फैल रही है कि सभ्य संसार को आज कल यंत्र-संसार और इस युग को यंत्र-युग कहें तो कोई अयुक्त कल्पना न होगी।

हमारे सामने, हमारी आँखों के देखते देखते, सैकड़ों नयी बातें चलती जाती हैं जिनकी हमें सपने में भी कल्पना न थी, पर थोड़े ही समय में हमारी नित की रहन सहन में वही ऐसी घुल मिल जाती हैं कि उनका नयापन हमारी आँखों से ओझल हो जाता है, उनका अनोखापन हम झट भूल जाते हैं। सौ ही बरस पहले अमेरिका आने जाने में सालभर लगता था। जो बात वहाँ होती थी यहाँ कठिनाई से साल भर पीछे कहीं मालूम होती थी। आज वहाँ की घटना दो चार घंटों के भीतर नित्य मालूम हुआ करती है। युरोप में घोर समर हो रहा है। दैनिकों में घंटे घंटे मिनट मिनट पर तार आ रहे हैं, दिन में दो दो बार निकलते हैं, समाचार देर से आने लगे और बेकली पड़ गयी। सौ बरस पहले अपने स्थान से दस कोस पर के भी समाचार इतनी जल्दी नहीं मिल सकते थे। दो दिन में बंबई से कलकत्ता, कलकत्ते से बंबई जाते आते हैं। सौ बरस पहले इसी यात्रा में महीनों लगते थे। पर हमारे लिए यह सब साधारण बातें हो गयी हैं।

चार बरस हुए, इटली के एक क़ैदख़ाने से ५० बरस पीछे एक बूढ़ा क़ैदी छूटा। बेचारा अपनी जन्मभूमि के दर्शनों को चला। राहें बदल गयी थीं। भटकते भटकते एक सड़क पर पहुँचा। वहाँ का हाल देखते ही चीख़ कर उसने दोनों हाथ उठा एक बैसिकिल पर जाते हुए भलेमानुस को रोका। जब वह उतर कर उसके पास आया तो बूढ़ा बोला "महाशय, मैं डर गया था कि आप ऐसी गाड़ी पर तेज़ लुढ़कते आ रहे हैं, बड़े ज़ोर से गिरेंगे, देखिये यह बे सहारे खड़ी भी नहीं रह सकती। आप तो बच्चे नहीं हैं, फिर ऐसे खेल क्यों खेलते हैं जिसमें जान की जोखिम हो।" सज्जन हँस पड़ा। उसने पूँछा "तुम किस जंगल में रहे जो अब तक पैर गाड़ी नहीं देखी ! इस पर तो सभी लोग सवारी किया करते हैं।" मालूम हुआ कि उसने ५० पचास बरस से यह न देखा था कि संसार में क्या हो रहा है। बैसिकल, बिजली की रोशनी, मोटरकार आदि उसे सारी चीज़ें अनोखी थीं। पाठक इसी तरह सोच लें कि अगर किसी क़ब्र से सौ बरस पहले का मुर्दा उठ खड़ा हो तो क्या उसे उस क़ैदी से कम अचरज हो ?

संसार की दशा जिस विद्या के बल से ऐसी बदल गयी है वह 'विज्ञान' है। जिस

विज्ञान के लिए सुक्रतु (सुक्रात) ज़हर देकर मारा गया, जिस विज्ञान के लिए ब्रूनो जीता जला दिया गया, जिस विज्ञान के लिए गलिलिओ का देश-निकाला हुआ, जिसके लिए युरोप के अनेक विद्वानों को भाँति भाँति के कष्ट, तरह तरह की यातनाएँ दी गयीं, वही विज्ञान जिसके लिए उसके इतने भक्त बलि हुए अपनी बलिप्रदान की भूमि युरोप में गयी सदी में ऐसा फैला, ऐसा फला फूला कि आज बिना उसकी सहायता के मुँह में एक ग्रास रखना असंभव है। उसी विज्ञान के बल से पच्छाहीं देसों ने धीरे धीरे भारत के हाथ से एक एक करके सारी कारीगरी छीन ली। जिसे हम हाथ से बरसों में बनाते थे मिनटों में बनाकर रख दिया। जिस भारत से कपड़े बुनवा कर, छींटें छपवा कर सारा संसार अपना तन ढकता था आज उसी भारत को और और देस कपड़े पहनाते, दवा खिलाते हैं। नमक, दूध, शकर, आदि खाने की चीज़ों तक के लिए आज कल-बल के न होने से भारत और देशों का मुँह ताकता है। अद्धी की सुई और डोरे के लिए हमें युरोप जाना पड़ता है। हमारे यहाँ से नील संसार भर लेता था, विज्ञान के बल से जर्म्मनी ने नकली रंग बना कौड़ियों के मोल बेचकर नील की खेती को खा डाला। कहाँ तक कहें, विज्ञान के बल से युरोप और अमेरिका के हाथों हम ऐसे बिके कि अब हमारे जल वायु के सिवा बहुत कम ऐसी चीज़ें रह गयीं जिन्हें हम भारतीय कह सकें। विज्ञान की ओर हमारी निगाह न होने से जो जो दुर्दशा हमारी हुई वह संसार को आँखें उघार उघार देखने से ही जान पड़ती है। कौन ऐसा भारतीय होगा जिसे ऐसी लाचारी की दशापर रोना न आएगा कि जलने के लिए आग चाहें तो दियासलाई भी भारतीय कठिनाई से मिलेगी!

जिस पुण्यभूमि के सुपूत विद्याओं के लिए किसी समय सारे संसार के गुरु थे, जिस देस के लोग संसार के लिए आदर्शरूप थे, उसी पुण्यभूमि की, उसी देस की ऐसी दशा क्यों हुई? समय सब का समान नहीं जाता। भारतीय अपने बड़प्पन के मद में समय के साथ साथ चलना भूल गये। भीतरी झगड़ों में व्यस्त होकर संसार की गति से बेसुध हो गये। जो पीछे थे धीरे धीरे मंज़िलें तय कर चुके और भारत अपने दुःस्वप्न में ही पड़ा उलझा रहा। बड़े शोक की बात है कि उस उलझन से अब तक पूरा पूरा पिंड नहीं छूटा है। आज ब्रिटिश सुशासन के फल से थोड़ी बहुत वैज्ञानिक शिक्षा मिलने भी लगी तब भी इसकी ओर लोगों की रुचि अत्यन्त कम दिखाई पड़ती है। विज्ञान पढ़नेवाले छात्र अभी कम ही होते हैं। माता पिता इस बात पर कम विचार करते हैं कि विद्यालय में कौन कौन से विषयों का पढ़ाना अधिक उपयोगी होगा। साहित्य, इतिहास, दर्शन, तर्क, अर्थशास्त्र, गणित, भूगोल, राजनीति, धर्म्मशास्त्र, आदि सभी विषय परिश्रमी लोग अपने घर भी पढ़ सकते हैं परन्तु बिना परीक्षा और प्रयोग के विज्ञान का पढ़ना समझना कठिन ही नहीं, असंभव होता है और बहुत रुपया लगाकर बिना प्रयोग-शाला बनवाए काम नहीं चल सकता। ऐसी प्रयोगशाला विद्यालयों में ही मिलती हैं। अब वह समय आया है कि प्रत्येक माता पिता अपने बच्चों को विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा दिलवाएं और प्रत्येक विद्यार्थी विद्यालय से कोई न कोई विज्ञान बिना सीखे न निकलने पावे।

फिर भी हमारे देश में विद्या का उतना प्रचार नहीं है जितना चाहिये। एक तो जितनी चाहिये उतनी पाठशाला नहीं, दूसरे हजारों मनुष्य ऐसे हैं जो पढ़ाई के नित बढ़ते खरचे को चला नहीं सकते। देश के सचेत लोगों में इतना उत्साह नहीं कि आप विद्यादान का पूरा प्रबन्ध करें। ऐसी दशा में क्या वर्त्तमान पाठशालाओं से ही सन्तुष्ट हो रहने से काम चलेगा? क्या अपनी सही कर लेने की योग्यता आने से ही सचमुच मनुष्य पढ़ा लिखा हो गया?

कौन कहेगा कि ग्रेटब्रिटेन में प्रजा भारत से कम शिक्षित है? वहाँ भी इतनी बढ़ी हुई शिक्षा से संतुष्ट न होकर यह आन्दोलन बड़े ज़ोर शोर से हो रहा है कि शिक्षित लोग स्वयंसेवक बनकर छुट्टियों में गाँव गाँव घूमें और बे पढ़ों को आप पढ़ावें लिखावें। अगर ग्रेटब्रिटेन में इसकी आवश्यकता एक मानी जाय तो भारत की आवश्यकता इसकी सौ गुनी से कम नहीं है। क्या हमारे यहाँ के नवयुवक इस तरह की देशसेवा नहीं कर सकते? क्या गावों में जा जाकर आरंभिक विज्ञान के व्याख्यान नहीं दे सकते? इस बात को प्रत्येक भारतीय याद रक्खे कि संसार के रगड़े में वही जाति बच रहती है जिसमें सब से अधिक योग्यता है। भारतीयों को यदि संसार में बना रहना, बचा रहना है तो उनमें सब से अधिक योग्यता का आना आवश्यक है। यही हमारी परीक्षा का समय है, सच्ची योग्यता रखनेवाले ऐसा ही समय खोजते रहते हैं। सब से उत्तम देशसेवा इस समय विज्ञान का प्रकाश फैलाना है, प्रत्येक भारतीय में जो योग्यता की मुँहबँधी कली मुरझा रही है उसे खिला देना है, जो विज्ञान-धन उनके शरीर में भरा हुआ है उसे देखने के लिए विद्या की आँखें खोल देनी हैं, जो हनुमान अपना बुद्धिबल भूलकर भोला भाला लाचार बन बैठा है उसे उस बल की याद दिलाना है जिससे अविद्या के महासागर को सहज ही फाँदकर अपनी हरी हुई महारानी शिल्प-कला की सुध लावे बल्कि उसको विज्ञान के बल से फिर अपने देश में लाकर प्रतिष्ठित करे। भारत के शिक्षित समुदाय ने यदि इस जीवन मरण की आवश्यकता पर ध्यान न दिया, तो परिणाम वही होगा जो गुरुकुल के अर्थशास्त्री अध्यापक बालकृष्ण जी ने बताया है, अर्थात् पाँच छः सौ बरसों में भारत में आज के भारतीय ढूंढ़े न मिलेंगे।

हमारी समझ में कोई भारतीय यह प्रश्न नहीं उठावेगा, कि शिक्षा के इस प्रचार में, विज्ञान-कला के इस प्रसार में किस भाषा का आश्रय लेना चाहिए। यह प्रश्न इस लिए नहीं उठ सकता कि इसमें दो मत नहीं हैं। कन्याकुमारी से काश्मीर तक, आसाम से काठियावाड़ तक, कोई भारतीय नहीं जो अपनी मातृभाषा को छोड़ किसी अन्य भाषा के सहारे शिक्षा लेना अधिक पसन्द करेगा। भारत एक विशाल देश है, महाद्वीप है, इसकी देशी भाषाओं को अपने अपने प्रचुर प्राचीन साहित्य का गौरव प्राप्त है। प्रत्येक देशभाषा का प्रत्येक मातृभाषा का आदर करनेवाले संख्या में लाखों नहीं करोड़ों हैं। इतनी संख्या होते यदि युरोप और अमेरिका की जनसंख्या की अपेक्षा विश्वविद्यालयों की संख्या पर विचार करें तो एक एक देशी भाषा में शिक्षा देनेवाले चार चार विश्वविद्यालय भी बहुत थोड़े होंगे। हमारे देश के और हमारी देशी भाषाओं के दुर्भाग्य से एक विश्वविद्यालय भी नहीं जिसमें देशी भाषा में

शिक्षा दी जाय, परीक्षा ली जाय। कारणों पर विचार करना यहाँ हमारा कर्त्तव्य नहीं है। वैज्ञानिक दृष्टि से जो वास्तविक स्थिति है उसका अध्ययन करना ही हमारा अभीष्ट है। यदि अबतक हमने मातृभाषा में शिक्षा का कोई बन्दोबस्त नहीं किया, तो अब से ही सही। यदि हम समझते हैं कि सौ में सात से भी कम पढ़े लिखे होना देश के लिए लज्जा और हानि की बात है, यदि हम जानते हैं कि मातृभाषा की शिक्षा न होने से इतनी लज्जास्पद कमी है, यदि हम देखते हैं कि देश के किसानों और कारीगरों को तब ही लाभ होगा जब उनकी ही भाषा में उन्हें विज्ञान सिखाया जायगा, तो क्या भाषा का प्रश्न बाकी रह जाता है?

इन्हीं कारणों से हमारी प्रार्थना हमारी अपील देश के ऊपर तन मन धन वारनेवाले अपनी मातृभाषा पर प्राण तक निछावर करनेवाले उत्साहियों से है कि देश की वर्त्तमान आवश्यकताओं पर विचार करके अपना एक मात्र ध्येय, अपना परम उद्देश्य, अपना अकेला लक्ष्य विज्ञान का प्रचार, शिक्षा का प्रसार रक्खें। सहीमात्र करने वालों को भी गिनकर हमारे यहाँ सौ में सात ही पढ़े लिखे सही। काम करने के लिए इतने भी कम नहीं हैं। देश, काल, सरकार वा भाग्य की शिकायत करना कातरता है, व्यर्थ समय शक्ति और उत्साह को खोना है। इस समय और सब लक्ष्यों को भूल शिक्षा देना ही परम कर्तव्य है। यदि हरेक पढ़ा लिखा भारतीय इस बात पर तुल जाय कि मैं कम से कम साल में १२ बेपढ़ों को पढ़ा लिखा बनाऊँगा तो चार पाँच ही बरस में देश का कायापलट हो जाय, सिवा दुधमुहें बच्चों और मरणोन्मुख बूढ़ों और रोगियों के कोई भारतीय बेपढ़ा न रह जाय। यह कोई अनहोनी बात नहीं है, इसपर कमर बाँधकर आरूढ़ हो जाने की आवश्यकता है, काम छेड़ देने की देर है, यदि थोड़ी भी कोशिश हो तो बहुत कुछ हो सकता है और आशा हो सकती है कि हम शिक्षा के अभाव से इस जीवन-प्रयास के कठिन समरक्षेत्र में सर्वथा नष्ट न हो जायँगे—

"स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात्"
("थोरहु धारे धरम यह, करत दूरि भय भूरि")

—रा. गौ

विज्ञान का विस्तार

सजीव और निर्जीव पदार्थ

[लेखक–रघुनाथ चिन्तामणि चतुर्वेदी बी. एस-सी]

इस संसार में हम जितनी वस्तु देखते हैं या मालूम करते हैं सब दो प्रकार की हैं, एक तो सजीव और दूसरी निर्जीव। सजीव या जीवित उनको कहते हैं जो अपने से भिन्न प्रकार की वस्तुओं को लेकर अपने ही स्वरूप में परिवर्तित कर लेती हैं, जैसे मनुष्य जो अनाज आदि को खाकर मांस हड्डी मज्जा रुधिर वा अन्य ऐसी ऐसी वस्तुएं बनाता है जिन से उसका शरीर बना है। सजीव वस्तुओं के और भी गुण हैं जिन में से कुछ ऐसे गुण नीचे लिखे जाते हैं जिन से

हम सजीव और निर्जीव पदार्थों को सुगमता पूर्वक अलगा सकते हैं।

(१) सभी सजीव पदार्थ अपने से भिन्न भाँति की वस्तु ग्रहण या त्याग करके प्रतिक्षण बढ़ा घटा करते हैं, जैसे जीव जन्तु फल मूल अन्न आदि वस्तुओं को ग्रहण करके मल मूत्र, छाल या लाख विसर्जन करते हैं जिनके कारण उनके डीलडौल और शरीर के वज़न में क्षण क्षण प्रति कमी बेशी होती रहती है।

(२) सब जीवधारी पदार्थों का या तो कुल शरीर या उनका कोई अंग या अंग का कोई हिस्सा बिना किसी दूसरे के सहारे अपने आप ही हिल डोल सकता है।

(३) कोई सजीव पदार्थ सांसारिक जीवन के आदि और अंत में एक सा नहीं रहता, उस का रंग, रूप, आकार, गुण, धर्म बिना किसी बाहरी कारण के ही परिवर्तित होता रहता है।

(४) सब सजीव पदार्थ निज जीवनावलंब की आवश्यक समीपवर्ती वस्तुओं को स्वयं ग्रहण कर शरीरांश बना लेते हैं।

(५) सभी जीवधारी आदि में एक ही जीवैक (Cell) के बने होते हैं जो कि विभाजित होकर बहुधा असंख्य जीवैक युक्त पदार्थ बना देता है जिसको कि हम सजीव पदार्थ या जीवधारी (Organism) कहते हैं। सब जीवों का शरीर एकही वस्तु का बना हुआ नहीं होता किन्तु वह बहुधा अगणित जीवैकों का समूह है। "जीवैक" एक बारीक कुप्पी या फफोले का नाम है जिस में आवश्यकतानुसार थोड़ा बहुत जीवाद्यम (Protoplasm) अवश्य पाया जाता है। यह जीवाद्यम ही जीवधारी के जीवन का मूल और प्राणों का आधार है। जीवाद्यम के मध्य में बहुधा केन्द्र (Nucleus) होता है। जीवैक अंग के भिन्न भिन्न भागों में जुदी जुदी शकल के होते हैं, विशेष कर पंचभुज षट्भुज (pentagon or hexagon) की शकल के होते हैं। वनस्पति में यह एक झिल्ली से घिरे होते हैं परंतु जानवरों में झिल्ली रहित होते हैं।

(६) सजीव पदार्थ किसी न किसी तरह सामर्थ्य संचय करने की चेष्टा किया करते हैं। यह सामर्थ्य (energy) या तो किसी पेचीदा रासायनिक संयोग से बनी हुई वस्तु के विभाजित करने से प्राप्त होती है, जैसे जानवरों में, या सूर्य्य से मिलती है, जैसे वनस्पति में।*

(७) सब जीवधारियों के शरीर का १ अंश जीवाद्यम (protoplasm) अवश्य होता है जिन पदार्थों में जीवाद्यम नहीं वे निर्जीव हैं।

जीवाद्यम (Protoplasm)

यह सारे संसार के जीव सहित पदार्थों का आदि बीज और कारण है, इसी से जीवाद्यम कहलाता है और गाढ़े रंग हीन माड़ (Jelly) के समान होता है। यह विचित्र वस्तु अद्भुत रीति से पेचीदा और गूढ़ रासायनिक संयोजित-पदार्थों (chemical compounds) के मेल से बनता है। इसका मूल भाग एक रासायनिक वस्तु प्रोतीद (proteid) है जिस में निम्न लिखित वस्तुएं संयोजित होती हैं।

कोयला (carbon)	५१.५	से	५४.५	सैकड़ा
ओक्सिजन (oxygen)	२०.६	से	२३.५	,,
हाइड्रोजन (hydrogen)	६.६	,,	७.३	,,
नत्रजन (nitrogen)	१५.२	,,	१७.०	,,
गंधक (sulphur)	३	,,	२.०	,,

जीवाद्यम में और भी वस्तु पायी जाती हैं। जब जीवाद्यम जलाया जाता है तब प्रोतीद तो विभाजित होकर वायु के रूप में परिवर्तित हो जाता है और थोड़ी सी राख शेष रह जाती है। इस राख में पोटासियम (Potassium)

* इस विषय पर फिर कभी पूर्ण रूप से लिखा जायगा।

मेगनीसियम (Magnesium) और कालसियम (Calcium) के ओषजनित तथा फ़ासफ़ोरस और गंधक के रासायनिक-संयोजित-पदार्थ होते हैं। जीवाद्यम के और भी निम्नलिखित गुण हैं वह तेज़ाब और अलकुहल (Alcohol) में हल हो जाता है और ४० श० (शतांश Centigrad) की ताप से थक्का हो जाता है। जीवधारी और निर्जीव पदार्थों के गुण भी पृथक् पृथक् हैं। जीवधारी के शरीर का हर एक हिस्सा अपना अपना काम पृथक् पृथक् बाँट लेता है और सब उसी काम को जीवधारी के जीवनार्थ करते हैं। हर हिस्से के आकार भी जुदा जुदा होते हैं परंतु निर्जीव पदार्थ में यह बात सर्वथा नहीं होती। उसमें शरीर के प्रतिभाग को कोई ख़ास काम समर्पण नहीं किया जाता और न निर्जीव पदार्थ स्वयं कोई काम अपने लिए बिना सहायता कर सकता है।

द्रव्य के भेद

सजीव पदार्थ आदि में जिस वस्तु से बनते हैं अंत में उस वस्तु का लेशमात्र भी शेष न छोड़ कर एक और ही वस्तु बना देते हैं जो कि आदि की किसी वस्तु के समान नहीं होती और जब तक उस वस्तु का संसर्ग जीवधारी से रहता है प्रतिक्षण उसकी बनावट और रासायनिक संयोग में परिवर्तन होता ही रहता है। परंतु निर्जीव पदार्थ में ऐसी शक्ति नहीं होती। वह आदि में जिस वस्तु से बनता है अंत तक उसकी बनावट वैसी ही बनी रहती है। उसके रासायनिक संयोग में कदापि स्वयं कुछ भी भेद नहीं पड़ता और किसी प्रकार से परिवर्त्तन नहीं होता।

जीवधारी का एक न एक दिन अवश्य अंत हो जाता है परंतु निर्जीव का अंत आवश्यक नहीं है।

द्रव्य के निम्नलिखित भेद हैं
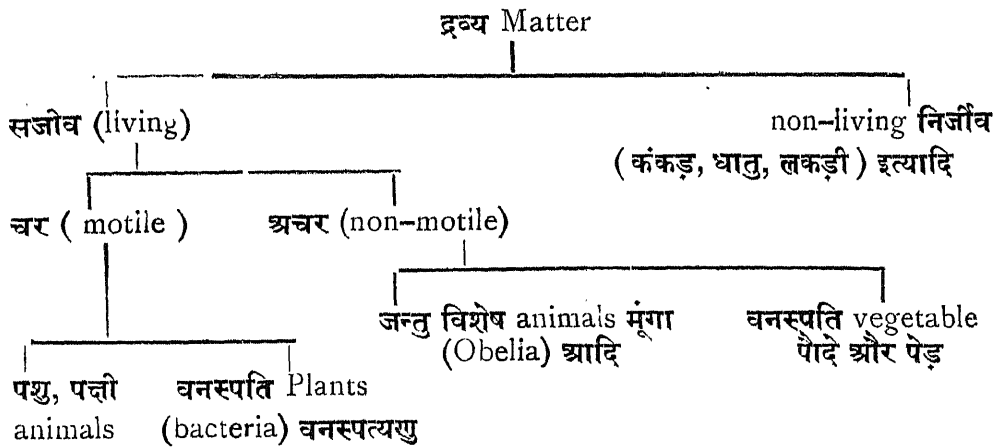
विज्ञान (Science)

पदार्थविद्या विज्ञान की उस शाखा का नाम है जिसमें कि पदार्थ के रूप गुण और उसके विषय में अन्य बातों का वर्णन हो। पदार्थविद्या के मुख्य दो भेद हैं। एक तो जीवशास्त्र या प्राणिशास्त्र Biological दूसरा निर्जीव शास्त्र Physical Science. जीवशास्त्र उस विद्या को कहते हैं जिसमें कि जीवधारियों, (पशु, पक्षी, वृक्ष इत्यादि) का वर्णन किया जाता है। जीव शास्त्र के दो मुख्य भेद हैं, एक तो जंगम शास्त्र

(Zoology) दूसरा वनस्पति शास्त्र (Botany). जंगमशास्त्र में जानवरों (पशु, पक्षी, जीव-जन्तु) का और वनस्पतिशास्त्र में वृक्षों और पौधों का वर्णन होता है।

जीवशास्त्र के और भी अनेक भेद हैं जैसे छेदनशास्त्र (anatomy) सूक्ष्म-छेदन शास्त्र (Histology) जीवेन्द्रिय-धर्म शास्त्र (Physiology) इत्यादि ।
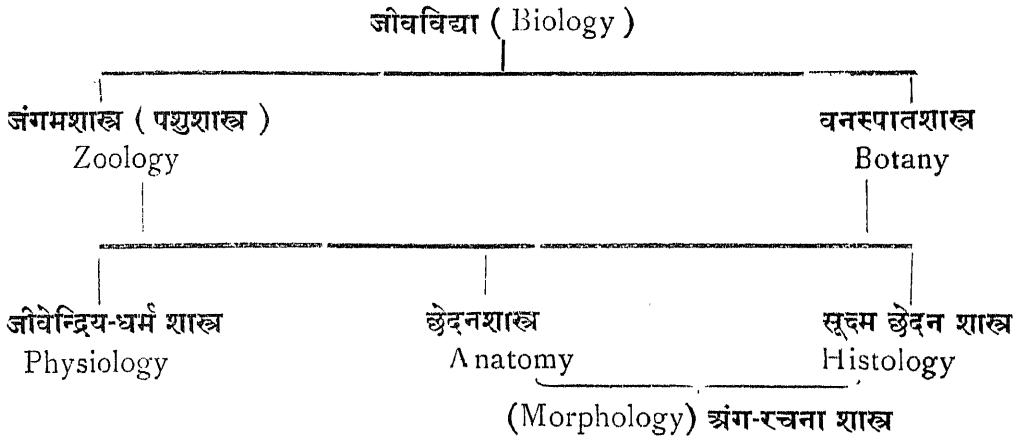
जानवर और वनस्पति में क्या भेद है इसका वर्णन फिर कभी किया जायगा।

कोयले की आत्मकहानी

[लेखक—अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गव एम्. एस्-सी]

पाठकों! आज मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि आप मुझ जैसी तुच्छ वस्तु की आत्मकहानी सुनने के लिए तय्यार हैं। सहानुभूति के साथ मेरा हाल सुनने-वाला ऐसा दयावान मुझे आज तक न मिला था। आज मेरे भाग्य का उदय हुआ कि आपने दया कर मेरी सुध ली। अपने दिल का गुबार निकाल लूँ, तब अपनी कथा कहूँ। किस किस की शिकायत करूँ, सभी ने मेरा अनादर और तिरस्कार किया है।

संसार के कवियों ने जगत की सभी वस्तुओं का यश अथवा अपयश गाया परन्तु मुझ अभागे पर दया कभी न की। जब वे अपनी नायिकाओं के यौवन का वर्णन करते थे तो काले तिल की या बालों की उन्हें अवश्य याद आती थी। इस विषय में अवश्य उन्हें मेरा आश्रय लेना था परन्तु तब भी मेरी ओर भूलकर भी निगाह नहीं डाली, किसी किसी ने वीभत्स रस में स्मरण भी किया तो मुझ से प्रेम भाव में नहीं, सो भी उनका स्वार्थ था। इससे उनका मुझ पर कोई एहसान नहीं।

सज्जनो! आप ही बतलाइये कि जबआप किसी काली वस्तु को घृणा से देखते हैं तो क्या कहते हैं, 'कोयले सी काली' परन्तु जब आपके बच्चे कभी बाज़ार से मिठाई लाते होंगे तो माता उनसे कह देती होगी कि

मिठाई में कोयले का टुकड़ा अवश्य डाल लाना। आप का नन्हा जब बाहर निकलता है उसकी माता माथे पर काजल का टीका लगाती है। इस प्रकार मैं आपके बच्चों को नज़र से बचाता रहता हूं, फिर भी मेरा अपमान, मेरा अनादर, मेरी उपेक्षा!

मैं और भी न मालूम कितने उपकार आप पर करता हूँ। उनका भी कुछ हाल सुन लीजिए, तब शायद आप मुझ पर और दया करने लगें।

सुनिये, आप की देह में, आपकी हड्डी में, आपके मांस में, आपकी त्वचा में, आपकी नस नस में मैं व्याप रहा हूँ। "तू ब्रह्म है?" नहीं, नहीं, महाराज मैं वही काला कलूटा कोयला हूँ, ब्रह्म नहीं, परंतु दरजे में बहुत कम भी नहीं हूँ। संसार में राजराजेश्वर सब से बड़े हैं। उनसे ऊपर भगवान ही समझे जाते हैं, पर यह भी आपकी समझ की बलिहारी है कि मुझे आप भूल ही जाते हैं। राजराजेश्वर से बड़ा उनके सिर पर मैं हूँ, फिर मेरे ऊपर भगवान को समझिए। पर वहाँ तक जाने का काम क्या? आपकी देह का तो मैं ही आधार हूँ! मैं अलग हो जाऊँ तो यह देह कितने क्षण खड़ी रहेगी?

पृथ्वी से अंतर्द्धान हो जाऊँ तो रेल तो रेल पृथ्वी का ही अंजन रुक जाय। अंजन के नाते सारे कारबारों की आँखें खुल जाँय। सड़क कैसे इतनी जल्दी कुटवाओगे, आटा इतना बारीक और सस्ता कैसे पिसवाओगे? आपके जितने काम इञ्जनों से चलते हैं, थम जायँगे!

आप शाम को बाग की सैर को जाया करते हैं। वहाँ गुलाब, चमेली, मोगरे के फूलों की महक से दिमाग़ मुअत्तर हो जाता है, हृदय की कली खिल जाती है, जी खुश हो जाता है। आँखें भी इनके रंग रूप अद्भुत हरियाली और सौन्दर्य को देख मस्त हो जाती हैं। दिन भर का थकान आन की आन में मिट जाता है। परंतु महाशयो, यह सब सृष्टि किसकी रची है, इन सब में ऐसी कौन सी व्याप्त वस्तु है जिसके अभाव से यह गुलशन बियाबान हो जायगा। फूलों को यह तरह तरह के रंग किसकी बदौलत मिले, उनको अनेक प्रकार की सुगंध किसने दी? शोक है कि ब्रह्म की खोज में आप मुझे तुच्छ जान खो बैठे, नहीं तो आप मुझे ही सम्बोधन कर, पुकार पुकार कहते ("गुलिस्तां में जाकर गुलो बर्ग देखा, न तेरीसी रंगत न तेरीसी बू है) परंतु हे अंगारक-राज "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।"

दिन रात ईश्वर की दी हुई पवित्र हवा को आप बिगाड़ा करते हैं। जिस प्रकार इंजन, भट्ठी इत्यादि से धुआँ निकलता रहता है, मनुष्य के पेट से भी निकलता रहता है। यदि यह सब धुआँ संसार में जमा होता रहता तो आज क्या मनुष्य पृथ्वी पर दिखाई देते? सारी हवा चीज़ों के जलने और प्राणियों के सांस लेने से इस समय तक खतम हो चुकी होती। इस काम के लिए भी मनुष्य जाति मुझ से उऋण नहीं हो सकती। मैं ही हरित हरिरूप कलोरोफ़िल होकर पत्तियों के हरे रंग में मौजूद रहता हूँ, और जली हुई हवा को शुद्ध करता रहता हूँ।

स्वादिष्ट मिठाइयाँ खाने से मनुष्य का जी बड़ा प्रसन्न होता है। परन्तु शकर का पितामह भी मैं ही हूँ। मेरा ही रुधिर उसकी नस नस में बह रहा है। इतना ही नहीं, जब गन्ने से शकर बनाते हैं और किसी यत्न से गुड़ का पीला मैला रंग नहीं जाता तब भी मेरा ही आश्रय लेते हैं। उस मैले रंग को मैं ही ग्रहण करता हूँ, और उसे सफ़ेद चीनी बना देता हूँ।

जितने प्रकार के नाज फल फूल हैं सब में मैं हूँ, सब ही मेरे अंशज, सब ही मेरे वंशज

हैं। इन सब रूपों में मैं सृष्टि के आदि से उसका पालन करता आया हूँ और प्रलय तक करता रहूँगा।

क्या? "जब तुम ही तुम हो तो तुम आप अपने अंशज और वंशज कैसे हुए?" यह अच्छा प्रश्न है! महाराज, आप हमारी रंगत वाले श्याम सलोने का वेदान्त पढ़े होते तो ऐसी शंका न करते। ख़ैर, यह तो सुना होगा "आत्मा वै जायते पुत्रः" अजी "-आदि सृष्टि उपजी जबै, तब उतपति भइ मोरि"। मेरा जन्म दूसरा नहीं हुआ, न मैंने विवाह किया किंतु अचरज यह है कि मेरे पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, कुटुंबी, संबन्धी इतने हैं कि नभ के तारे भले ही गिन लो पर उनकी गिनती नहीं।

महाशयो, यह जो कुछ मैंने कहा बहुत थोड़ा है। यदि इस उपकार पर मुझे आप केवल भूल ही जाते तो मुझे शोक न होता। परन्तु मुझ पर अत्याचार भी बहुत हुए हैं, जिनसे मैं बहुत दुःखी हूँ वह भी सुन लें तो बड़ी दया होगी।

मैंने जब देखा कि मेरे साँवले सुहावने रूप का निरादर होता है तब मैंने पृथ्वी के गर्भ में ज्योतिर्मय गौररूप को धारण किया। रूप पर मोह जाने वाले भोले भाले सौंदर्य के भक्तो! तुमने तब जाकर मेरा कुछ आदर किया। परन्तु यद्यपि मैं आज कुल कामिनियों का इष्ट आभूषण हूँ, राजा महाराजाओं के मुकुटों का रत्न हूँ, फिर भी मेरी जो जो दुर्दशा हुई कहाँ तक गिनाऊँ। मेरा अंग काटा छीला गया। मैंने अपने को कितना ही कठोर बनाया पर कृतघ्नियों के कठोर हृदय से हार गया। मनुष्यों ने मुझे काट छीलकर ही संतोष नहीं किया। मेरा सुन्दर रूप अनन्त विपद का कारण हुआ। मुझे ज़बरदस्ती बड़ी तप्त आँच देकर गले लोहे के गर्भ में डाल दिया। मैंने कितना ही बचना चाहा, पर लाचार हुआ। आख़िर को राज़ी ख़ुशी से काम न लेने से मैंने गौर कलेवर में जन्म तो लिया, पर अत्यन्त दुबला पतला।

दूसरा अत्याचार मुझ पर वैज्ञानिकों ने किया; सब उपकार भूल कर अपकार करने लगे। दधीचि ऋषि की तरह अपना शरीर होम कर मैं आपके अंजन चलाता था, सहस्रों रुपये दिलवा उनका पालन पोषण करता था, पर उन्हें तृप्ति न हुई। उन्होंने मुझे फांसी देना चाहा। दम घोटकर मारना इष्ट था। मुझे एक कोठरी में ऐसा मूँद दिया कि हवा बन्द हो गयी, फिर चारों ओर प्रचंड अग्नि से उस लोहे की कोठरी को लाल कर डाला। हाय, मैं तब भी न मरा; मुझे तो ब्रह्मा जी का वरदान है। मैं देवताओं की नाईं अमर हूँ। हिन्दुओं के पुनर्जन्म सिद्धान्त का सच्चा प्रमाण दे सकता हूँ। इस अत्याचार से क्या हुआ? मैं उस कोठरी से माया के अनेक रूप धर अन्त को निकल ही आया। तौ भी मैंने इनका उपकार ही किया। अपनी सज्जनता क्यों छोड़ूँ?

"काटे परसु, मलय सम भाई,
निज गुन देइ सुगन्ध बसाई"

इन्हें गैस जलाने को दी, अमोनिया इनके सिर का दर्द मिटाने को दिया और एक और वस्तु कोलटार (अलकतरा, डामर) दिया जो सच पूछो तो पारस से भी अधिक अमोल है।

पहले यह अपने ही अपकार के भ्रम से टार को फेंक दिया करते थे। परन्तु ये मेरे सच्चे भक्त भी हैं। मैं यही समझूँगा कि यह मेरी वैसी ही भक्ति करते हैं जैसी रावण की राम से थी।

धीरे धीरे कोलटार को काठ की चीज़ों को दीमक से बचाने को और लोहे की चीज़ों को ज़ंग से बचाने को काम में लाने लगे।

जितने चटकीले रङ्ग आजकल आपको दिखाई देते हैं; जितने एसेंस नारङ्गी, केला, संतरा इत्यादि के आपके काम में आते हैं, जितने इत्र आप लगाते हैं—यह सब इनको मैंने कोलटार से दिलवाये हैं।

महाशयो, कहाँ तक कहूँ मनुष्य का शरीर, जीवननिर्वाह, सुख, उसकी सभ्यता और उसकी उन्नति मुझ पर ही निर्भर है। यदि वह इतने पर मुझे भूल जाय तो क्या मुझे दुःख न होगा ?

क्या? "वैज्ञानिकों ने?" हाँ, वैज्ञानिकों ने मेरी सुधि ली, अवश्य ली! आपको मालूम होगा कि उन्होंने मेरे साथ कैसा साधु व्यवहार किया। यह भी ग़नीमत है, मैं यही समझूँगा कि वह वैर भाव से ही मेरी भक्ति करने पर तत्पर हैं।

अब "परोपकाराय सतां विभूतयः" इसी सिद्धान्त को बुढ़ापे में स्मरण करके सुख संतोष और शान्ति से रहूँगा। पुरानी कहानी बहुत रुचती है इससे थोड़ी थोड़ी विस्तारपूर्वक आप लोगों को अपनी जीवनी सुनाऊँगा।

आपका सेवक और उपकारक
"कोयला"

डांड़ी के अद्भुत खेल और उसका सिद्धान्त

तुला-दण्ड बनाने के नियम और तोलने की रीतियां

[लेखक—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस्-सी., एल्. टी.]

"यह क्या बात है कि जब मोटी चीज़ कैंची से काटनी होती है तो नोक से नहीं काटते वरन् उसके बिचले भाग से जो कील के पास रहता है काटते हैं?"

"कैंची की नोकें किनारे पर रहती हैं इस लिए घिस जाती हैं और बीच का हिस्सा बचा रहता है इसलिए तेज़ रहता है।"

"यदि यही बात है तो नयी कैंची या तेज़ की हुई कैंची में जिसका कोई भाग घिसा नहीं रहता ऐसा दोष न पाया जाता होगा। इसकी परीक्षा कीजिए। एक काग़ज़ या कपड़े की ८-१० तह (मोड़) करके नयी कैंची की नोक से काटिए और उसके मध्य-भाग से भी काटिए। कैंची के दोनों भाग से काग़ज़ या कपड़ा कट जाता है किन्तु मध्य-भाग से काटने में सुगमता पड़ती है और नोक से काटने में अँगुलियों को अथवा हाथ को अत्यन्त बल लगाना पड़ता है।"

"बस, अब यह बात समझ में आ गयी कि नोक से मोटा कपड़ा क्यों नहीं कटता। कपड़ा न कटने का कारण नोक की धार का घिसना नहीं है वरन् यह है कि नोक से काटने में अधिक बल लगाना पड़ता है और वही चीज़ मध्य भाग से थोड़े ही बल से कट जाती है। यदि काटनेवाले में बल काफ़ी हो तो वह नोक से भी अधिक बल लगा कर काट सकता है, किन्तु कम बलवाले को बिचले ही भाग से काटना पड़ेगा।"

"तो क्या कैंची इसीलिए लम्बी बनायी गयी है कि थोड़े बलवाले और अधिक बल-वाले सभी को काटने में सुविधा हो?"

"हाँ, यह बात भी है क्योंकि कैंची का काम तो छोटे बड़े स्त्री पुरुष सभी को पड़ता है इसलिए

Mechanics यन्त्र-शास्त्र]

वह ऐसी बनायी जाती है कि सबके काम आवे। दूसरा कारण उसके लम्बी होने का यह है कि कपड़ा, कागज़ इत्यादि थोड़े ही समय में बहुत कट सकते हैं। कैंची लम्बी न होगी तो काटने में कुछ देर लगेगी।"

"कोई कोई कैंचियाँ तो ऐसी बनायी जाती हैं कि हाथ से पकड़नेवाला (दस्ता) बहुत लम्बा होता है और काटनेवाला छोटा। इनसे काटने में बहुत देर लगती होगी?"

"हाँ, काटने में तो अवश्य देर लगती है पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि यदि काटनेवाले फल लम्बे बनाये जाते तो अच्छा होता। उनके फलों का छोटा होना ही ठीक है। यदि फल बड़े होते तो जिस काम के लिए ऐसी कैंचियाँ बनायी जाती हैं वह पूरी तरह से न चल सकता।"

"यह बात तो समझ में नहीं आती।"

"अच्छा, यह बतलाओ कि ऐसी कैंचियाँ जिनके फल बहुत छोटे होते हैं और दस्ते बहुत बड़े, तुमने किस काम में लायी जाती देखी हैं और किस तरह के कारीगरों के हाथ में देखी हैं?"

"सोनार जब चांदी, ताँबा इत्यादि के पत्तर काटते हैं तो ऐसी ही कैंचियों से काटते हैं, टिन के बर्तन बनानेवाले ऐसी ही कैंचियों से मिट्टी के तेल के टिन के पीपे काटते हैं, लोहार भी कभी कभी इससे काम करते हैं।"

"दर्ज़ी को भी ऐसी कैंचियों से काम करते देखा है?" "नहीं।"

"बात यह है कि लोहा, चांदी, टिन, ताँबा इत्यादि के पत्तर कपड़े से बहुत ही कड़े होते हैं और इनके काटने में बहुत बल की आवश्यकता होती है लेकिन काटने वाले तो मनुष्य ही हैं उनको इतना बल कहाँ से आवे कि सोना, चांदी, ताँबा इत्यादि को काट सकें, किन्तु बुद्धि जहाँ तक बढ़ाना चाहे बढ़ सकती है। जो काम केवल बल लगाकर नहीं हो सकता वह बुद्धि के सहारे थोड़े ही बल से हो सकता है। यही कारण है कि बुद्धि के बढ़ाने के लिए बहुत दिनों तक लोग पढ़ते लिखते और अनुभव करते हैं और शारीरिक बल को भी बनाए रहते हैं। यदि केवल शारीरिक बल को मनुष्य बढ़ाना चाहे तो वह एक सीमा से आगे नहीं बढ़ सकता लेकिन अपने मामूली बल को रखते हुए यदि मनुष्य बुद्धि-बल को अधिक बढ़ा ले तो इन दोनों के संयोग से इतना अधिक काम हो सकता है कि उसका विचार करना कठिन है।

जब सोना, चांदी इत्यादि सुगमता से नहीं काट सकते और उनके काटने की आवश्यकता पड़ती ही है तो मनुष्य ने अपनी बुद्धि से यह युक्ति निकाली कि कैंची का काटनेवाला भाग छोटा कर दिया जाय और दस्ता (पकड़नेवाला भाग) बड़ा, तो उतने ही बल से सोना चांदी भी कट सके।"

"तो क्या फल को छोटा करने और दस्ते को बड़ा करने ही से थोड़ा बल लगाने की आवश्यकता पड़ती है? यह कैसे, इसका कोई नियम भी है अथवा यों ही देख कर अनुभव से जान लिया कि छोटे फल और बड़े दस्तेवाली कत्ती थोड़ा ही बल चाहती है?"

"हाँ, देखकर विचार करने से ही यह बात मालूम हुई है। कपड़ा काटनेवाली कैंची में फल के उस भाग से मोटा कपड़ा आसानी से कट सकता है जो कील के पास है और जो कील से दूर है उससे उतनी आसानी नहीं होती। सोनार अथवा लोहार की कैंची से धातु के पत्तर कट जाते हैं, इनमें भी काटनेवाले फल कील के पास रहते हैं और दस्ता बहुत दूर। इससे यह मालूम होता है कि कील के पास काटनेवाले फल को रहना चाहिए और कील से बहुत दूर बल लगाने

के लिए दस्ते का सिरा। बस यही नियम कैंची के बनाने में रखा जाता है।

कैंची की बनावट में एक बात और विचार करने की है कि जिधर कैंची के फल काटने छाँटने का काम करते हैं वह कील की एक तरफ़ है और जहाँ पकड़ कर मनुष्य बल लगाते हैं वह कील की दूसरी तरफ़।

इसी नियम को लोहार धौंकनी बनाने में बर्तते हैं। इसी धौंकनी से लोहे की चीज़ों को आग में रख कर धौंकते हैं जिससे दम के दम में लोहा पिघल कर मोम के समान हो जाता है तब उसे पीट पाट कर तरह तरह की चीज़ें बनाते हैं। इसकी साधारण बनावट का चित्र यों है—
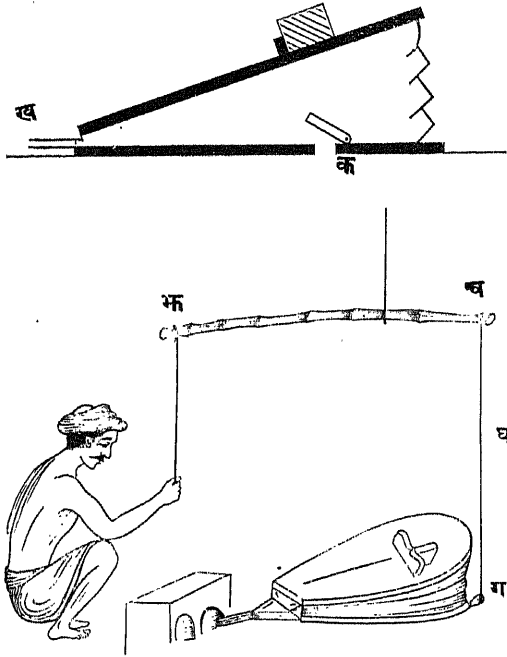
'क' धौंकनी का परदा है जिसमें से धौंकनी के फैलने पर हवा भीतर जाती है। जब धौंकनी सिकुड़ती है तब क' परदा बन्द हो जाता है और भीतर की हवा धौंकनी के मुँह 'ख' से तीव्र वेग के साथ निकल कर पास रक्खे हुए कोयले और आग को खूब भड़काती है। 'ग' एक कुलाबा है जिसमें 'घ' ज़ंजीर लगी हुई है; इसीका एक सिरा 'च' डांड़ी के 'च' किनारे पर बँधा हुआ है। 'च' सिरे के पास ही डाँड़ी के 'छ' के नीचे ऊपर नीचे घूमने के लिए एक कील लगी हुई है; इसी स्थान पर डाँड़ी दीवार या खंभे से लटकायी भी जाती है। 'झ' डाँड़ी का दूसरा सिरा है जहाँ ज़ंजीर लगायी जाती है। आदमी इसी ज़ंजीर को पकड़ कर ऊपर नीचे डांड़ी को खींचता है जिससे धौंकनी चलती हैं। इसमें भी डाँड़ी का वह अंश जहाँ बल लगाया जाता है ('झ' सिरा) घुमाव से अधिक दूरी पर है और वह अंश जो काम करता है ('च' सिरा) घुमाव के बहुत पास है।

भारतवर्ष के उन प्रान्तों में (गोरखपुर, बस्ती, बिहार इत्यादि में) जहाँ पानी पृथ्वी-तल से थोड़ा ही नीचे निकलता है किसान कुओँ का पानी ढेंकली द्वारा निकालते हैं। एक मोटी लकड़ी कुएँ के पास गाड़ देते हैं और उसी में एक लम्बा बाँस उसी तरह लटकाते हैं जैसे धौंकनीवाले बाँस लटकाये जाते हैं। इसी बाँस के एक सिरे पर पत्थर के टुकड़े, मिट्टी के भारी ढेले इत्यादि बाँधते हैं और दूसरे सिरे पर मिट्टी का घड़ा। दूसरे किनारेवाले भारी पदार्थों का खिंचाव नीचे की ओर पाकर पानी भरा हुआ घड़ा किसान के संकेत-मात्र बल से ऊपर को चला आता है और ख़र्च में किफ़ायत हो जाती है।

गाँव में धान कूटने के लिए अथवा भाड़ झोंकनेवाले चिउड़ा कूटने के लिए एक तरह की ढेकी बनाते हैं जिसकी बनावट इस चित्र से प्रकट होती है—
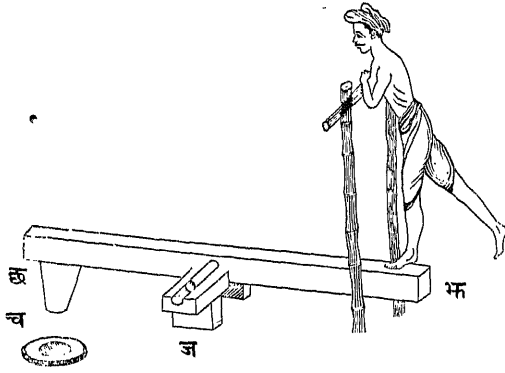
'च' ऊखल है जिसमें धान रक्खा जाता है 'छ' मूसल है। 'ज' घुमाव है जिस पर से 'छ' ऊपर नीचे घूमता है; 'झ' सिरे पर कोई लड़का खड़ा होकर ऊपर नीचे उछलता है या कोई आदमी एक पैर से उसको नीचे दबाता है और छोड़ देता है। यहाँ 'झ' पर बल लगता है और 'छ' पर काम होता है।

सँड़सी की बनावट पर ध्यान दो। इसमें घुमाव 'ख' स्थान पर होता है। यहाँ एक
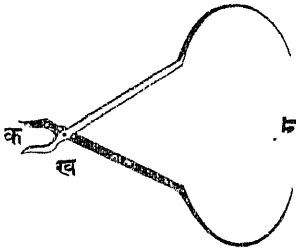
ढीली कील लगी रहती है जो दोनों बाज़ुओं को (भुजाओं को) इकट्ठा किये रहती है और घुमाती भी है। यदि 'ग' को हाथ में लेकर 'क' से किसी वस्तु को पकड़ो तो थोड़े ही बल से बहुत दृढ़ पकड़ी जायगी और बिना 'बल' हटाए कदापि न छूटेगी। सोनार या लोहार का चिमटा भी इसी भाँति होता है, केवल भेद यही है कि वह 'ग' की तरह गोल नहीं होता वरन् सीधा होता है। इसी चिमटे से चीज़ों को थाम कर घन पर हथौड़े से पीटते हैं और चीज़ छूटती नहीं। बल भी 'पकड़' की अपेक्षा उनको कम लगाना पड़ता है क्योंकि साधारण चिमटे से यदि वही काम करना चाहें तो चीज़ छूट जाय।

इन सब औज़ारों पर विचार करने से वही पहले की बात याद आती है कि 'पकड़ने वाले' सिरे को घुमाव-विन्दु के पास होना चाहिए और घुमाव की दूसरी ओर कुछ दूर पर 'बल लगानेवाला' सिरा अथवा दस्ता होना चाहिए।"

"सरौता इत्यादि में तो यह बात नहीं होती, फिर इसकी बनावट में क्या सुविधा है? इसमें तो घुमाव के एक ही तरफ बल भी लगाया जाता है और काम भी होता है?"

"इसकी बनावट किसी सुविधा ही के लिए रक्खी गयी है बे मतलब नहीं है; जो सुविधा सँड़सी अथवा सोनार वा लोहार के चिमटे में होती है उसी तरह की सुविधा का ध्यान रखकर सरौते भी बनाये जाते हैं।"

"सोनार या लोहार के चिमटे में तो यह सुबिधा होती है कि थोड़े ही बल के लगाने से अधिक बल का काम हो, सरौते में ऐसी बात कहाँ है? इसमें तो घुमाव के एक ही तरफ़ 'बल लगाने का' स्थान और काम करने का स्थान होता है!"

"वाह! अभी तक बस यही समझ में आया कि जब घुमाव के इधर उधर बल लगाने और काम करने का स्थान हो तभी सुबिधा हो सकती है, लेकिन असली बात पर ध्यान नहीं दिया। वह यह है कि बल लगाने का स्थान घुमाव से काम करने के स्थान की अपेक्षा बहुत दूरी पर होना चाहिये। यह बात सरौते में घटती है या नहीं? सरौते

में घुमाव की कील एक सिरे पर रहती है, बल लगाने वाला स्थान दूसरे सिरे पर अर्थात दस्ते पर और काम करने वाला स्थान अथवा सरौते का वह भाग जिससे सुपारी इत्यादि कड़ी चीज़ काटी जाती है बीच में रहता है और निस्सन्देह घुमाव के पास है। यही तो बात है कि कड़ी से कड़ी सुपारी थोड़ा ही बल लगाने से कट जाती है। जहाँ अधिक बल लगाने की आवश्यकता होती है वहाँ दस्ते का सिरा और दूर रक्खा जाता है या यों कहो कि दस्ता लम्बा बनाया जाता है।"

"क्या ऐसा भी सरौता होता है जिसका दस्ता बहुत लम्बा हो?"

"हाँ, वह एक विशेष काम के लिए बनता है इसलिए हर समय नहीं देख पड़ता। अचार बनाने के लिए जब आम को खूब कड़ी गुठली के साथ चीरना होता है तो मामूली सरौते से काम नहीं चलता। उसके लिए एक बड़ा सरौता होता है जिसका दस्ता एक बालिश्त या इससे भी लम्बा बनाया जाता है। इससे बड़ी सुगमता से बड़े बड़े आम गुठली के साथ कट जाते हैं।

इन सब के नियम को समझ कर याद रखने से ऐसी बातों में धोखा नहीं हो सकता। वह यह है कि घुमाव विन्दु से बल लगाने की जगह काम करने की जगह की अपेक्षा अधिक दूरी पर हो तो थोड़ा ही बल लगानेसे अधिक काम होता है।

अब यह समझने में कोई कठिनाई न होनी चाहिए कि एक ही मनुष्य एक बड़े भारी पत्थर को एक मोटे लोहे के छड़ से (ऐभा अथवा रंभा से) खसका कर बहुत दूर कैसे ले जा सकता है। यदि उससे कहा जाय कि छड़ को न लगाकर हाथ से खसकावे तो उसके साथ २-३ आदमी भी मिलकर आसानी से नहीं खसका सकते। इसमें भी वही नियम लगता है जो सरौते में; लोहे के छड़ का वह भाग जहाँ बल लगाया जाता है मनुष्य के हाथ में रहता है और यह भाग छड़ का सिरा होता है। छड़ का वह भाग जो काम करता है अथवा पत्थर या भारी चीज़ों को ढकेलता है दूसरे सिरे के पास अथवा ज़मीन के पास रहता है। छड़ का सिरा पृथ्वी में लगकर घूमा करता है और पृथ्वी को कुछ खोद भी डालता है; अर्थात पृथ्वी और छड़ के सिरे का संयोगस्थान ही घुमाव-विन्दु है। इसलिए इस में भी बल लगाने वाला अंश घुमाव से अधिक दूर रहता है और इसी से थोड़ा बल लगाकर भारी भारी पदार्थ खसकाये जा सकते हैं।

रेलवे-लैन में कुलियों के पास मैंने एक ऐसा औज़ार देखा है जो रूप में ऊपर कहे हुए छड़ से मिलता जुलता है किन्तु उसमें घुमाव बल लगाने वाले सिरे और भारी रेल की पटरियों को ऊँचा करने वाले (उभाड़ने वाले) सिरे के बीच में रहता है उसकी बनावट यों होती है—

क ख एक सीधा लोहे का छड़ होता है ख ग भाग मुड़ा रहता है। लोहे की पटरियों को उठाने के लिए ख मोड़ को भूमि पर टिका देते हैं, ग को लोहे की पटरियों के नीचे करते हैं और क सिरे को हाथ में लेकर नीचे दबाते हैं। नीचे दबाने से ग सिरा ऊपर उठता है और लोहे की पटरी को उठा देता है। इसमें भी बल लगाने वाला भाग (क सिरा) काम करने वाले भाग (ग सिरा) की अपेक्षा घुमाव (ख मोड़) से बहुत दूरी पर रहता है। इसलिए कई मन

की भारी भारी पटरियाँ दो तीन मनुष्य मिल कर ऊपर उभाड़ देते हैं। हाथ से उठाने में कई आदमियों की आवश्यकता होगी और बहुत झुकना पड़ेगा।

इन सब से यही बात सिद्ध होती है कि बल लगानेवाला भाग घुमाव से जितनी ही दूर रहेगा उतना ही कम बल लगाने की आवश्यकता होगी। यहाँ तक कि एक छोटा लड़का भी बड़े भारी बोझ को ढकेल सकता है, यदि ऐसे औजारों का दस्ता बहुत बड़ा बनाया जाय।

"हाँ, यह बात ठीक है लेकिन लोहे का छड़ जितना ही बड़ा बनेगा उतना ही भारी हो जायगा इसलिए यदि बहुत लम्बा बनाया जाय तो एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में कठिनाई पड़ेगी। इसलिए इसकी लम्बाई की भी सीमा होती है। यदि यह कहा जाय कि लम्बा भी बने और पतला करने से भारी न होने पावे तो ठीक न होगा, क्योंकि पतला किया जायगा तो भारी बोझ के उठाने में लचक जायगा।"

"इसका नियम मोटी रीति से मालूम हो गया कि बल लगानेवाला भाग घुमाव से जितना ही दूर होगा उतने ही कम बल से कोई काम किया जा सकता है लेकिन यह कहना वैसा ही हुआ जैसा यह कि थोड़ा बोझ होगा तो थोड़ी ढुलाई लगेगी और अधिक बोझ होगा तो अधिक। किंतु केवल इतना जान लेने से पूरा ज्ञान नहीं होता। यह भी जानना आवश्यक है कि ढुलाई की दर क्या है। दर मालूम हो तो फिर कुछ अधिक पूछने की आवश्यकता न पड़ेगी। थोड़ा हिसाब लगानेवाला इस बात को बतला देगा कि यदि एक मन का किराया दो पैसे है तो चार मन का किराया दो आने होगा और पहले मोटे हिसाब से तो कुछ भी पता न चलेगा। इसी तरह यदि इस नियम में भी कोई दर हो यानी कितनी अधिक दूरी होने से कितने कम बल की आवश्यकता होती है तो यह हिसाब बहुत सीधा हो जाय।"

हाँ, इन सब बातों का पता भी परीक्षा और गणित द्वारा पूरा पूरा लग जाता है। गणित द्वारा जब सूर्य्य, चंद्रमा, पृथ्वी इत्यादि का बोझ मालूम कर लिया गया तो यह बातें तो मामूली हैं। यह जानने के लिए कि कितनी दूरी अधिक होने से कितने कम बल की आवश्यकता होती है, यह जानना आवश्यक है कि बल की 'माप' क्या है अर्थात् बल के नापने का कोई पैमाना होना चाहिए, जैसे लंबाई इत्यादि नापने के लिए लंबाई के पैमाने गज, गिरह हैं।

"बल के नापने का पैमाना कैसा होता है?"

"इस विषय का वर्णन फिर कभी करेंगे।"

(अपूर्ण)

बिजली के ज्ञान का विकास और उन्नति का इतिहास

[लेखक-पं० प्रेमवल्लभ जोशी, बी. एस्-सी. अजमेर]

संसार की बुद्धि का विकास बराबर उत्तरोत्तर होता आया है। गत सौ दो सौ वर्षों में बड़ी अद्भुत वृद्धि हुई है परंतु इतिहास पर दृष्टि डालने से प्राचीन और अर्वाचीन समय की ज्ञान सीमाओं के बीच कोई बड़ा अन्तर नहीं दीखता। "कन कन जोरे मन जुरै" जिस ख़ूबी से यह कहावत विद्या के भंडार भरे जाने की रीति पर घटती है और कहीं नहीं घटती। छोटे छोटे प्रयोगों से बड़े बड़े कार्य हुए हैं। जिन बातों को एक समय लोग सृष्टि के छोटे मोटे चमत्कार समझते थे उन्हीं से मनुष्य की विलक्षण बुद्धि ने संसार को चकित कर देनेवाले कार्य्य कर दिखलाये हैं।

जब कार्थेज देश के व्यापारी स्पेन और फ्रांस के किनारे अपना व्यापार करते थे घर लौटते समय एक तरह के पीले पत्थर जर्मनी इत्यादि देशों से तथा बाल्टिक समुद्र के किनारे से ख़रीद लाते थे। वे लोग बहुधा इसे जादू का ख़ज़ाना समझते थे। यह पदार्थ तृणमणि या कहरबा था।

उस समय यूनान तथा रोम निवासियों को यह वस्तु बहुत अद्भुत मालूम होती थी और यह सुन्दर पदार्थ बहुधा उनकी रमणियों के कंठों में शोभा पाता था; कभी कभी यह मणि घास, तिनके इत्यादि हलकी वस्तुओं को अपनी ओर खींच लेता था और फिर छोड़ भी देता था। तृणमणि में ऊन रेशम इत्यादि से रगड़ खाकर आकर्षण शक्ति आ जाती है। लोग समझते थे कि यह आकर्षण शक्ति इस पदार्थ की इच्छा पर निर्भर है। केवल एक और पदार्थ था जिसमें तृणमणि के समान कुछ गुण थे। यह चुम्बक पत्थर था। परंतु क्या बात है कि चुम्बक 'पत्थर' कहलाया, 'मणि' न हुआ? चुम्बक में वह रंग रूप चमक-दमक नहीं और लोहे के सिवा और किसी पदार्थ को खींचता भी नहीं, और लोहे को खींच कर छोड़ता भी नहीं और खींचने का गुण इसमें सदा बना रहता है, रगड़ने से बढ़ता नहीं। तृणमणि अर्थात् कहरबे में यह शक्ति रगड़ने से आती है, पर बराबर नहीं बनी रहती, तिनका इसने खींचा और खींच कर फिर छोड़ दिया। संसार गिरगिट की भाँति रंग बदलने वाले तृणमणि को उच्च स्थान देने पर तत्पर रहा। विचारे चुम्बक को मृत लोहा कहकर तृणमणि का 'जीवित लोहा नाम रक्खा। यह हाल विक्रम से ५०० बरस पहले का है।

जब भारत में अकबर राज करता था उसी समय इंगलड में महारानी एलिज़बथ के राज्य में डाक्टर गिलबर्ट ने यह बात सिद्ध की कि गंधक कांच आदि अनेक वस्तुएं रगड़े जाने पर छोटी वस्तुओं को अपनी ओर खींचती हैं। गिलबर्ट ने चुम्बक शक्ति को भी इसी नाम से सम्बोधित कर तृणमणि की शक्ति का 'एलेक्ट्रिसिटी' नाम रक्खा, क्योंकि यूनानी लोग तृणमणि को 'एलेक्ट्रन' कहते थे। हम इस शक्ति को 'विद्युत' कहेंगे।

यह तो सब को ज्ञात है कि चुम्बक पत्थर धरती के समानान्तर लटकाये जाने पर सदा उत्तर दक्षिण घूमता है इसीलिए चुम्बक का ध्रुवदर्शन-यंत्र या मत्स्ययंत्र बनाया जाता है। गिलबर्ट विचार रहा था कि किस प्रकार चुम्बक शक्ति और विद्युत शक्ति में सम्बंध

Electricity बिजली]

मालूम किया जाय। इसी बीच सम्बत् १७३७ में एक जहाज़ में वज्रपात हुआ और यह बात देखने में आयी कि मत्स्ययंत्र की सूई उलटी हो गयी, तात्पर्य यह कि सूई का जो सिरा साधारणतः उत्तर दिशा को सूचित करता था अब दक्षिण दिशा को सूचित करने लगा। तब से लोगों को विश्वास होने लगा कि विद्युत शक्ति और चुम्बक शक्ति में किसी प्रकार का सम्बंध अवश्य है। कुछ ही समय पीछे बेंजमिन फ्रेंकलिन तथा ओस्टन ने प्रयोगों द्वारा इस सम्बन्ध को प्रत्यक्ष कर दिखलाया। राबर्ट बोइल को यह ज्ञात हुआ कि अंगीठी के पास बैठी हुई अथवा सूखी हुई बिल्ली को हाथ से मलने से एक प्रकार की चड़चड़ाहट सुनाई देती है और यह बाल एक दूसरे से भिन्न होकर इधर उधर भागने की चेष्टा करते हैं। कांच आदि वस्तुओं पर भी यह प्रयोग किये जाने लगे। कांच को रेशम से रगड़ने पर तथा लाख को ऊन से रगड़ने पर इन वस्तुओं में तृणमणि की सी शक्ति देखने में आयी। ग्विरकी ने गंधक का एक गोला बनाकर एक छड़ी में लगाया और उसे हाथ से रगड़कर यह देखा कि इसमें भी विद्युत शक्ति आती है। सम्वत् १७८६ में स्टेफ़न-ग्रे ने यह बात देखी कि यदि किसी धातु का एक डंडा किसी विद्युन्मय पदार्थ के एक सिरेपर जोड़ा जाय तो डंडे के दूसरे सिरे पर भी विद्युत आ जाती है। इस प्रकार बहुत सी वस्तुओं में प्रयोग कर उन्होंने संसार की वस्तुओं के दो भाग किये। प्रथम वह जो धातुओं की नाईं विद्युत को बहाने की शक्ति रखते हैं, इन वस्तुओं को उन्होंने 'वाहक' कहकर सम्बोधित किया। उदाहरणार्थ पानी धातु इत्यादि पदार्थ विद्युत वाहक होते हैं। अन्य पदर्थ जैसे कांच, रेशम इत्यादि वस्तुएं विद्युत्वाहक नहीं होतीं। इन्होंने यह भी सिद्ध किया कि मनुष्य शरीर भी विद्युत्वाहक है। एक बालक को रेशम के झूले पर चढ़ा अथवा काँच के तख्ते पर बिठलाकर विद्युन्मय किया और दिखलाया कि धातु के डंडे की भाँति मनुष्य शरीर में भी विद्युत एक सिरे से दूसरे को बह सकती है। फ्रांस के वैज्ञानिकों ने इस प्रयोग को बड़े उद्योग से दुहराया और यह बात सिद्ध की कि मनुष्य शरीर को विद्युन्मय करके छूएँ तो उसमें से चिनगारी निकलती है, कुछ चिड़चिड़ाहट का शब्द होता है और सूई के चुभने का सा भान होता है। इन प्रयोगों से विज्ञानसंसार की रुचि विद्युत् की ओर इतनी बढ़ी कि लोग छोटे डंडों को रगड़ने से सन्तुष्ट न होकर बिजली पैदा करने के लिए बड़े बड़े यंत्र बनाने लगे। यह यंत्र पहले ही पहले तो बहुत भद्दे बने परन्तु पीछे इनमें उन्नति हुई। कांच आदि पदार्थों को हाथ से रगड़ने में बहुत परिश्रम होता है इसी लिए अब कांच की थाली को रेशम के गद्दों के बीच यंत्र से घुमाकर विद्युत् उत्पन्न की जाती है।

सम्वत् १८०२ में दैवयोग से हालैंड देश के लीडन नामक नगर में एक नया प्रयोग सिद्ध हुआ जिस से विद्युत् को अधिक मात्रा में इकट्ठा करने का सुभीता हो गया और विद्युत् के प्रयोग दिन दिन बढ़ने लगे। लीडन में एक महाशय को बिजली इकट्ठी करने की सूझी, इन्होंने यंत्र के सिरे पर एक पानी भरा बरतन थाम कर लोहे की कील से बरतन में विद्युत् एकत्रित किया। कुछ देर बाद बरतन में से कील निकालना चाहा। ज्योंहीं कील को छुआ, बड़े वेग से धक्का लगा और शरीर की गांठें उखड़ गयीं। यह बरतन अबतक विद्युत् एकत्रित करने के काम में आता है; इसे 'लीडन जार' अथवा 'विद्युत्-घट' कहते हैं।
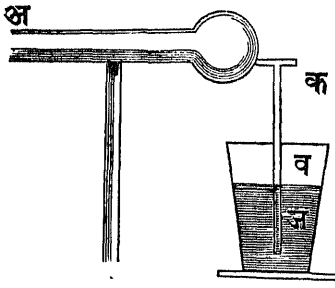
अ—विद्युदुत्पादक यंत्र
क—कील
व—पात्र
ज—जल

साधारण मनुष्य इस प्रयोग से डरने लगे परन्तु वैज्ञानिकों ने इस की परीक्षा न छोड़ी, यहाँ तक कि एक वैज्ञानिक ने चाहा कि उस बरतन से धक्का खाकर मर जाँय जिसमें अन्य वैज्ञानिकों को इस विषय में लिखने का अवसर मिले। यह नया यंत्र इतना अद्भुत था कि उस समय बहुत से मनुष्य इसके तमाशे दिखा दिखा कर अपना निर्वाह करने लगे। फ्रांस में बहुत प्रचार होते होते यह यंत्र अमेरिका तक पहुँचा। इस समय अमेरिका में बेंजमिन फ्रेंकलिन नामक मनुष्य किसी छापेख़ाने में नौकर था; इसने सम्वत् १८३२ में इस प्रयोग को देखा। उसे सब से आश्चर्यजनक बात यह देखने में आयी कि विद्युत् नुकीले पदार्थों से बहुत आकर्षित होती है। इसने अपने लिए विद्युत् घट बनाया और स्वयं तन मन धन से परीक्षाओं में लग गया। एक समय इसने अपने कई मित्रों को 'विद्युत् भोज' दिया जिसमें मुर्ग़ को विद्युत् के धक्के से मार और इसकी आंच से पका कर अपने मित्रों को खिलाया। एक बार फ्रेंकलिन को यह सूझी कि मेघ-विद्युत् अथवा वज्र भी विद्युत् से ही उत्पन्न होता है। इसने विचारा कि विद्युत्यंत्र की चिनगारी तथा शब्द आकाश की बिजली से होते हैं, चिनगारियों का रंग दोनों में एक सा होता है, दोनों से जंतुओं को मार सकते हैं। फ्रैंकलिन ने सोचा कि एक ऊँचा बुर्ज बनाया जाय और उस पर एक नुकीला डंडा लगाया जाय जिसका सिरा बादल के बहुत पास पहुँच जाय। इसी स्थान से एक विद्युत वाहक वस्तु का डंडा धरती के निकट लगाया जाय कि बादलों से विद्युत नुकीली वस्तु द्वारा धरती तक आ पहुँचे और उसमें से चिनगारियां निकाली जायँ। बेचारे बेंजमिन के पास ऐसे कठिन प्रयोग के लिए धन नहीं था। इसने बहुतेरी विज्ञान--सभाओं से धन की सहायता माँगी परन्तु किसी ने न दी। फ्रैंकलिन अभी विचार ही कर रहा था कि फ्रांस में पैरिस के निकट एक ने प्रयोग द्वारा फ्रैंकलिन की कल्पना को सिद्ध कर डाला। फ्रैंकलिन ने इसी समय के लगभग पतंग में लोहे का नुकीला छड़ जोड़ कर बहुत ऊंचा उड़ाया और डोरी लीडन जार से जोड़ी। बहुत समय तक इससे कुछ नहीं हुआ पर बरसात में जब पतंग की डोरी भीग गई तो एकाएक विद्युत की चिनगारियां निकालने में बेंजमिन समर्थ हुआ। इस प्रयोग की चर्चा जगह जगह होने लगी और लोगों ने बड़े बड़े भवनों को वज्रपात से बचाने के लिए ऊंची छत पर धातु का नुकीला डंडा लगाया जिसको किसी धातु के डंडे द्वारा धरती तक जोड़ दिया कि मेघों की बिजली नुकीली वस्तु से खिंच कर अथवा धातु के द्वारा बह कर धरती में घुस जाय और मकान को हानि न पहुँचने पावे। इस प्रकार का यंत्र अब प्रायः सभी बड़े मकानों में देखने में आता है और इसको लाइटनिंग कन्डक्टर (Lightning Conductor) वा तड़ित-मोहन कहते हैं।

ऊपर कह आये हैं कि विद्युत एक स्थान से दूसरे स्थान को बहती है। 'बहना' केवल द्रव पदार्थ जैसे जल तेल और वायव पदार्थ जैसे हवा इत्यादि सलिलों के लिए प्रयोग किया जाता है। इसलिए अगले वैज्ञानिकों का यह मत था कि विद्युत एक प्रकार की बहनेवाली वस्तु है। वे समझते थे कि जब किसी वस्तु को रगड़ा जाता है तो यह पदार्थ निकल आता है। जब यह पदार्थ वायु में विचरण करता है तो इसमें से एक शब्द तथा ज्योति निकलती है। यदि इसका परिमाण बहुत हो तो यह मनुष्य तथा जानवरों को मार सकता है। फ्रैंकलिन ने इस कल्पित पदार्थ को "वैद्युताग्नि" कह कर सम्बोधित किया और कहा कि इसी के कारण विद्युत के सारे दृश्य देखने में आते हैं। इस बीच फ्रैंकलिन ने रेशम के दे। तागों को विद्युन्मय कर उनको एक दूसरे के निकट लटकाया और यह देखा कि दोनों तागे एक दूसरे से भागने की चेष्टा करते हैं। इससे इन्होंने यह सिद्ध किया कि विद्युत का एक भाग किसी अन्य भाग को भगाने की चेष्टा करता है इस प्रकार के कई प्रयोगों से फ्रैंकलिन ने अपना सिद्धांत संसार को बतलाया।

यदि एक कांच का डंडा रेशम से रगड़ कर लटकाया जाय और इसके निकट एक और रेशम से रगड़ा हुआ कांच का डंडा लाया जाय तो देखा जाता है कि इन दोनों डंडों में परस्पर निराकरण होता है। इससे विपरीत यदि कांच के डंडे के निकट ऊन से रगड़ा हुआ लाख का डंडा रक्खा जाय तो इन दोनों में परस्पर आकर्षण होता है। इस प्रयोग से हम को निश्चय होता है कि विद्युत दे। प्रकार की है। पुराने वैज्ञानिक इनको 'कांचज' और 'लाखज' विद्युत कहते थे परन्तु अब ये 'धन' और 'ऋण' विद्युत कहलाती हैं। एक ही प्रकार की बिजली दे। वस्तुओं में हो तो उनमें परस्पर निराकरण होगा और भिन्न हो अर्थात् एक में धन और दूसरे में ऋण हो तो दोनों में आकर्षण होगा।

यह देखने में आया है कि चाहे कोई वस्तु कितनी ही क्यों न रगड़ी जाय उसमें से विद्युत का एक नियमित मात्रा से अधिक निकलना सम्भव नहीं होता। यह वस्तु रगड़ कर छू दी जाय तो इसमें से विद्युत हमारी देह से होती हुई धरती को बह जाती है। वस्तु को विद्युन्मय करने के लिए फिर रगड़ना पड़ता है। इस प्रयोग को आप साधारण रबर की कंघी से कर सकते हैं। कंघी को सूखे बालों पर तेज चलाने से एक शब्द होता है और कंघी छोटे छोटे तिनकों को अपनी ओर आकर्षित करती है। यदि कंघी हाथ से छू दी जाय तो यह शक्ति इसमें से जाती रहती है। विद्युत-यंत्र जिनका वर्णन हम अभी कर आये हैं निरंतर रगड़े जाने के कारण विद्युत देते रहते हैं परन्तु इस रगड़ने में निरन्तर श्रम करना पड़ता है, इससे बचने के लिए जो उपाय हुए और जिस तरह पर बिजली के आविष्कारों ने युग बदल दिया, हम आगे वर्णन करेंगे।

खेती का प्राण और उसकी रक्षा

१—खाद

[लेखक- "संकर्षण" बी. एस-सी]

खेती के लिए मुख्य बात ज़मीन का बनाना है, क्योंकि जब तक ज़मीन अच्छी तरह से तय्यार न की जाय चाहे कैसा ही उत्तम से उत्तम बीज, सींचने का पूरा इन्तज़ाम करके ही क्यों न बोया जाय, कदापि न जन्मेगा और अगर जनम भी गया तो ठहरेगा नहीं उसकी अवश्य मृत्यु होगी। ज़मीन को बनाने के लिए पहिले तो कम से कम उसे दो बार जोत देना चाहिये और फिर जैसी ज़मीन हो वैसी खाद देनी चाहिए खाद ज़मीन में कुछ हिसाब से दी जाती है, यह नहीं कि कहीं तो मनों भर दी और कहीं बिलकुल ही नहीं या बहुत कम। मैं इस वक्त इस हिसाब और खेत को जोतने के विषय को छोड़कर खाद के गुण, और उसके जमा करने का ढंग, तथा कौन सी खाद सब से उत्तम होते हुए सुगमता से मिल सकती है–यह बातें लिखने का प्रयत्न करता हूँ ।

खाद के द्वारा ज़मीन में Nitrogen (नत्रजन) Phosphate (स्फुरोज) और Potash (पोटाश) पहुँचाया जाता है। बाज़ार में जो जो खाद बिकती हैं उनमें से सिवाय Guano* के किसी में भी यह तीनों चीज़ें उपस्थित नहीं होतीं। किसी किसी में तो इन में से एक ही चीज़ पायी जाती है, कुछ में दो; मगर बस दो से ज़्यादा नम्बर नहीं बढ़ता। फिर इन सब के साथ (जो बाज़ार में बिकने आते हैं Artificials अर्थात क्रित्रिम में) बहुत कुछ चतुराई की जरूरत पड़ती है और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है ज़मीन को देख कर देना पड़ता है, उलटे सीधे तरीक़े से लाभ के बदले बहुत बड़ी हानि होती है। ऐसी हालत में अगर कोई ऐसी खाद जिस में कम से कम ऊपर लिखी हुई तीनों चीज़ें हों, जो आसानी से दी जा सके, जिसमें ज़मीन वग़ैरः के नष्ट होने का भय न हो, मिल सकें तो उससे बढ़ कर किसान को अपनी खेती सफलता पूर्वक चलाने के लिए और कौन सी चीज़ हो सकती है ?

कुछ लोगों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य्य होगा कि ऐसी खाद स्वयम् हर किसान के पास रहती और नित्य बनती है। यह खाद अपने घर के मामूली गोबर लीद वग़ैरः को सड़ाने से बनती है। इस में पहिले तो वह तीनों चीजें मौजूद होती हैं, फिर इस के देने में न किसी तरह का भय है और न कोई चतुराई ही की ज़रूरत है, कोई भी किसी ज़मीन में दे सकता है। ज़मीन का ख़राब होना तो एक तरफ़ रहा, इससे उसका उद्धार हो जाता है। पानी सोखने और देर तक नमी रखने की शक्ति तो इसके देने से कहीं ज़्यादा रहती है । ज़रा देखिए तो सही बेचारे जानवर आप लोगों की कितनी सेवा करते हैं, खाने को दूध, घी और खेती के लिए अच्छी से अच्छी खाद देते हैं, इतने काम सँवारते हैं, और बदले में केवल घास या थोड़ा बहुत बिनौला चोकर इत्यादि खाते हैं !

अब खाद तो मिल गयी और गुण भी कुछ मालूम हो गये, रही बात उसके जमा करने और फिर खेत में देने की, सो आगे लिखता हूँ।

* Guano (गुआनो) दरियाई अथवा समुन्दरी पक्षियों की बीट तथा मुर्दा लाशों के जमा होकर सड़ते रहने से बनता है।

Agriculture कृषि]

प्रायः गाँव में गोबर से कंडा (खीठा) बनाकर ईंधन की जगह जलाने अथवा तम्बाकू भरने के काम में लाते हैं और चूल्हे वगैरः की राख को घूरे में जहाँ गोबर लीद वगैरः साल भर गलते रहते हैं डालते हैं। अब राख को देखने से विदित होता है कि उसमें केवल Potash (पोटाश) और Phosphate (स्फुरोज्ज) रहता है। Nitrogen (नैट्रोजन) का पता ही नहीं मिलता। पौदे के लिए Nitrogen (नैट्रोजन) का होना परमावश्यक है और यह बहुमूल्य भी है। बिना Potash (पोटाश) या Phosphate (स्फुरोज्ज) के पौदा कुछ हो भी जाय पर बिना Nitrogen (नैट्रोजन) के कुछ भी नहीं हो सकता। पौदा जितना Nitrogen (नैट्रोजन) पर निर्भर है खाद के और पदार्थों पर नहीं। 'गोबर लीदवाली' खाद को फिर इस तरह कंडा बनाकर जला डालने और Nitrogen (नैट्रोजन) को बिलकुल नष्ट कर देने से आप भली भाँति समझ सकते हैं कि किसान अपना कितना नुक़सान करते हैं।

आम तौर पर गाँव में जो घूरा बनाने का दस्तूर है वह भी बिलकुल निकम्मा और निकृष्ट है। धूप से गोबर लीद वगैरः सूखता जाता है। उसकी Nitrogen (नैट्रोजन) कई प्रकार से निकलती जाती है और आख़िर को सारे ढेर में Nitrogen (नैट्रोजन) का अंश बहुत ही कम रह जाता है। पानी पड़ने से घुलनेवाली चीज़ें भी जो पौधे अपने पालन पोषण के लिए व्यवहार करते हैं बेकार घुलकर नीचे ज़मीन में चली जाती हैं। इससे बहुत करके Nitrates (नत्र) नहीं रहते या अगर कुछ बच भी गये तो बहुत कम रह जाते हैं। Nitrates (नत्र) भी Nitrogen (नैट्रोजन) का एकरूप है।

इसलिए Nitrogen (नैट्रोजन) को यथा-शक्ति बचाने के लिए 'गोबर लीद' खाद को धूप और पानी दोनों से बचाना चाहिए। इसका उपाय सब से सहल यह हो सकता है कि गोबर वगैरः बजाय घूरे पर डाले जाने के एक गड्ढे में जमा किया जाय। गड्ढे के ऊपर फूस का छप्पर रहे, ताकि बराबर नमी बनी रह सके और ऊपर के पानी से भी बचाव हो सके। अगर पक्का गड्ढा हो सके तो फिर पूछना ही क्या—नहीं तो मामूली तौर पर कच्चे गड्ढे से काम चल सकता है। नीची तह ज़रा कूट दी जाय, और फिर बराबर रोज़ का रोज़ गोबर इत्यादि जमा होता रहे। गोबर उठा कर गड्ढे में केवल डाल देने से ही काम न चलेगा, गलने के बाद उसे ज़रा पाँव से दबा देना चाहिये क्योंकि जितना ही पुलखर रहेगा उतना ही ज़्यादा आसानी से यह नमी को छोड़ कर जल्दी ख़राब हो जायगा।

अब एक और तरफ़ आप लोगों का ध्यान दिलाता हूँ। जानवरों के पेशाब (Urine) में अधिकांश Nitrogen (नैट्रोजन) रहती है, इसलिए इसको छोड़ना मानो Nitrogen (नैट्रोजन) के एक और मुख्य और आसान ज़रिये को खोना है। इसको भी खाद के साथ जमा कर फिर खेत में देने से और भी ज़्यादा फ़ायदा होगा।

इसके जमा करने के उपाय दो हो सकते हैं—

(१) जहाँ जानवर बँधते हों उस जगह पर अन्दाज़ से कुछ घास उनके पिछले पाँव के आगे पीछे बिछा देना चाहिए ताकि उसी पर वे गोबर और पेशाब करें। रोज़ रोज़ यह घास गोबर पेशाब सहित ऊपर गड्ढे में दबा कर रख दी जाया करे—साल भर के बाद सब घास वगैरः सड़ कर अति उत्तम खाद बन जायगा।

(२) जहाँ घास आसानी या बहुतायत से न मिल सके या जब अकाल हो तो घास के बजाय (अन्दाज़ से) उसी प्रकार मट्टी बिछायी

जा सकती है, और रोज़ रोज़ उसी तरह उठा कर गड्ढे में रखने से साल भर बाद वैसी ही अच्छी खाद बन सकती है।

जो लोग बहुत अमीर हों और अधिक रुपया व्यय कर सकते हों वे पक्की नाली और पक्का गड्ढा बनवा कर और भी खूबी से काम कर सकते हैं।

क्रमशः

गेहूँ की बीमारी और उसका इलाज।

[लेखक—अध्यापक दक्षिणारंजन भट्टाचार्य्य, एम्. एस-सी.]

गेहूँ के पौदे में बहुधा एक प्रकार का रोग हो जाता है जिस से गेहूँ की उपज बहुत थोड़ी हो जाती है। जिस खेत में यह रोग हो जाता है उसमें जनवरी या फ़रवरी में गेहूँ की पत्ती पर पीला हल्दी के रङ्ग का दाग़ पैदा हो जाता है। यह दाग़ दिखलाई पड़े तो जानना चाहिए कि रोग हो गया है। कुछ काल पीछे ये धब्बे पहले से बड़े हो जाते हैं। और मार्च तक इन में एक पीला बुरादा सा हो जाता है। इस पर भी कुछ काल पीछे देखा जाय तो मालूम होगा, कि पीले धब्बों में कुछ स्याही भी दौड़ चली है, अन्त में पत्तों की ऐसी दशा हो जाती है कि लगभग पूरी सतह पीली और कुछ कुछ काली देख पड़ती है। कोई कोई धब्बे पीले और धुमले और कोई बिल्कुल काले दिखलाई पड़ते हैं। वैज्ञानिकों ने इस रोग की जाँच की और वह जाँच जानने योग्य है। रोग का कारण यह है कि एक तरह का सूक्ष्म पौदा गेहूँ पर चढ़ाई करता है और उस के भीतर घुस कर रहने लगता है। यह पौदा इतना नन्हा और बारीक होता है कि खुर्दबीन (क्षुद्र वीक्षण यंत्र) के सिवा और किसी भाँति दिखाई नहीं पड़ता। जब यह पौदा गेहूँ के पत्ते के भीतर बस जाता है गेहूँ के पत्ते, की खूराक खाने लगता है यहाँ तक कि पत्ते, पौदे दोनों निर्बल हो जाते हैं। अब इस विषय की जाँच करनी है कि पीले और काले धब्बे क्या हैं? ये धब्बे इस रोग के पौदे के बीज हैं। पौदे भीतर ही भीतर गेहूँ को खाते हैं, परन्तु उस के बीज बाहर दिखलाई पड़ते हैं। ये बीज दो तरह के होते हैं। पीले धब्बों के बीज छोटे और हलके रङ्ग के होते हैं। और काले धब्बों के बीज बड़े और गहरे रङ्ग के होते हैं। हर बीज में यह शक्ति होती है कि पैदा होते ही गेहूँ की पत्ती पर आ पड़ता है और उसे छेद कर भीतर जा पहुँचता है। इस रोग से गेहूँ के सट्टे में दाना बहुत कम होता है। खेती के महकमे ने जाँचकी है कि भारतवर्ष में इस रोग से साल में कई लाख रूपये की हानि हो जाती है। इस की दवामालूम करनेके लिए बहुत प्रयत्न कियागया परन्तु अब तक कोई ठीक दवा नहीं मालूम हुई।

ऐसी दवाएं अवश्य हैं जिन से यह पौदा मर जाता है, परन्तु गेहूँ के खेत बहुत बड़े होते हैं; दवा खेतभर में छिड़कने से बहुत धन लग जाता है। अब यह प्रयत्न हो रहा है कि गेहूँ की ऐसी जाति मालूम की जाय जिसमें इस रोग का दख़ल न हो। इसी तरह के गेहूँ को बराबर काम में लाने से यह रोग जड़ से नष्ट हो सकता है।*

*गेहूँ के पौदों में यह रोग होने के पहले ही देखने में आता है कि मिट्टी कहीं कहीं लाल हो गयी है। इधर के किसान इसे "गेरुई लगना" कहते हैं। तूतिया घोलकर छोड़ने से गेरुई मिट जाती है, पर सारे खेत में छिड़कना व्ययसाध्य है। गेरुई जहाँ लगे तुरंत दवा प्रयोग करने से अधिक लाभ होना संभव है। सं०

Agriculture कृषि]

नहर की सिंचाई

भारतवर्ष का क्षेत्रफल १७ लाख ७३ हज़ार वर्गमील है, अर्थात रूस को छोड़ सारे युरोप के बराबर है। इस देश की आबादी भी संसार की सारी जनसंख्या की चौथाई से अधिक है। इस देश की भूमि सदा से अत्यन्त उपजाऊ चली आयी है। कहते हैं कि कलि में अन्न में ही प्राण है, सो अन्न के ही उपजाने में किसी समय भारतवर्ष सारे संसार का गुरु था और आज ऐसी पिछड़ी दशा में भी संसार की बहुत बड़ी जन संख्या यहाँ के ही अन्न से पलती है। अगले समय में, जिसे साठ सत्तर बरस से अधिक न कहना चाहिए, रेल तार आदि का प्रचार और विस्तार न होने से व्यापार की गति अत्यन्त मन्द थी। जो वस्तु दो दिन में कलकत्ते से बम्बई पहुँच जाती है, अगले समय में कई महीने में पहुँचती थी। कराची का सौदागर बैठे बैठे बारह आने में घंटे भर में कलकत्ते की दर मालूम कर लेता है जिसे सौ बरस पहले वह बहुत रुपये खरच करके कहीं महीनों में तब जान सकता जब कलकत्ते की दर बहुत कुछ चढ़ या उतर गयी होती। इसी तरह एक देश में जो अन्न उपजता था उसका बहुत थोड़ा हिस्सा परदेस में जाता था, बाकी सब देस में जमा रहता, सस्ता मिलता और सूखा पड़ जाने पर काम आता था। साथ ही सूखा पड़ने पर अन्न की महँगी कहीं तो इतनी बढ़ जाती थी कि हज़ारों लाखों मनुष्य अन्न बिना भूखों मर जाते थे और कहीं इतनी बहुतायत से अन्न होता कि पड़ा २ घुन जाता था। जब से रेल आदि का प्रचार बढ़ाव सारे देस में ताना बाना सा फैल गया और ऐसी दशा हो गयी कि आज गेहूँ जिस भाव कलकत्ते में बिकता है उसी भाव के लगभग, प्रयाग, लाहोर, बम्बई हैदराबाद, मदरास आदि सब जगह है। यद्यपि अब अन्न अधिक से अधिक परिमाण में भारत से बाहर चला जाता है और देस में कहीं इकट्ठा नहीं होने पाता तथापि कहीं जो सूखा भी पड़ जाय या और किसी कारण से महँगी वा दुर्भिक्ष पड़े, तो और जगह से रेल द्वारा अन्न आ जाता है और कुछ न कुछ अन्न मिलकर बहुतेरे मनुष्यों की रक्षा हो जाती है। परंतु और जगहों से जब अन्न खिंच आता है तो उन प्रान्तों में भी महँगी हो जाती है। इस तरह एक जगह का दुर्भिक्ष सारे देश में फैल जाता है, एक स्थान का दुःख सारे देश में व्याप जाता है। और यह दुर्भिक्ष भी जो पहले बारी बारी से किन्तु घोर रूप में कभी एक प्रान्त में और कभी दूसरे में पड़ते थे अब किसी न किसी भाग में होने से भारत में प्रायः सदा बने ही रहते हैं, परन्तु उनका रूप वैसा उग्र नहीं होता।

पचास बरस से ऊपर हुए उड़ीसा में दुर्भिक्ष पड़ा था जिसमें प्रजा की रक्षा के लिए सरकार ने सवा दो करोड़ रुपये खर्च किये तब भी दस लाख मनुष्य भूखों मर गये। प्रान्त की चौथाई जनसंख्या भूख की कठिन यातना भोगकर समाप्त हो गयी। १८७३-७८ तक जो अकाल पड़ा उसमें पौने पचीस करोड़ रुपये रक्षार्थ खर्च हुए, परन्तु १८७७-७८ के वर्ष में ही साधारण वार्षिक मृत्युओं की संख्या से ऊपर साढ़े बावन लाख मनुष्यों को भूख खा गयी। रेलों के होने से भी इन भारत संतानों की रक्षा न हो सकी। तात्पर्य्य यह कि विपत्ति के आ जाने पर रक्षा का उपाय सोचना वा करना उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना विपत्ति को रोकने के ही उपाय लाभदायक हो सकते हैं। यह उपाय भी किये गये और अब तक किये जा रहे हैं,

Industries शिल्प]

बल्कि सरकार में इसका विभाग ही बन गया है। इसे नहर-विभाग कहते हैं।

नहर का विभाग प्रायः सभी प्रान्तों की सरकार में है और जब से इसका सिलसिला चला आज तक इस काम में साठ करोड़ के लगभग भारत सरकार के रुपये लगे और इनके सिवा देशी रियासतों ने जो लगाये ठीक मालूम नहीं; जिसका फल यह हुआ कि ढाई करोड़ एकड़ के लगभग भूमि की सिँचाई हुई और बहुतेरी भूमि जिसमें कुछ न उपजता था कामधेनु की नाईं अन्नधन देने योग्य हो गयी। परंतु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि यह लाभ भारत की बड़ी जनसंख्या के लिए काफ़ी हो गया। इस देस के १०० में ६५ आदमी किसान हैं, साढ़े इकतीस करोड़ मनुष्यों में इक्कीस करोड़ के लगभग खेती करते हैं। नहरों का बन्दोबस्त जितना बढ़े जितना ही उसका प्रचार हो उतना ही अच्छा है, क्योंकि प्रजा और सरकार दोनों को इसमें लाभ है। प्रजा को जो लाभ है प्रत्यक्ष ही है। कहीं जो अतिवृष्टि हुई तो देस बह गया, जल व्यर्थ गया, दुर्भिक्ष अलग पड़ा, और जो सूखा पड़ा तो अकाल है ही। सुप्रबन्ध उसे ही कहेंगे कि अतिवृष्टि के अधिक जल को इकट्ठा करके सूखे के दिनों काम में लावें। अनेक स्थानों में ऐसा ही प्रबन्ध हुआ भी है। राज्य की आय से सरकार जो रुपया इस काम में लगाती है उससे ख़ासी आमदनी होती है। पानी का महसूल जो किसानों से लिया जाता है वह थोड़ी रकम नहीं होती, नहर का पानी बहुत सस्ता नहीं समझा जाता। सरकार को भी सब खरचा काटकर रुपये में एक आना से अधिक मुनाफ़ा होता है।

बरसात आधे जेठ से आधे कातिक तक अधिक करके होती है। इस मौसिम में दक्खिन पच्छिम से मेघमाला पछुवा हवा से बहकर आती और बरसती है। केवल दक्खिन पूरब की ओर और पूरब उत्तर की ओर सब से अधिक पानी कातिक से माघ तक बरसता है। मध्य-प्रदेश, बरार और हैदराबाद में इस काल में कुछ थोड़ी वर्षा होती है। फागुन से आधे जेठ तक बंगाल से लेकर पश्चिमोत्तर भारत में कठिन गरमी पड़ती है। और पानी नहीं बरसता परंतु आँधी बहुत आती हैं। जो कर्म्मचारी सिँचाई के प्रबन्ध का सूत्र अपने हाथ में रखते हैं उन्हें अनेक बातों पर विचार करना होता है। भारत इतना बड़ा देश है कि भिन्न भिन्न स्थानों पर ऋतु की प्रकृति भिन्न भिन्न पायी जाती है।

अनेक वर्षों का औसत लगाकर यह मालूम किया गया है कि सारे भारत में साल में ४२ इंच पानी बरसता है। अर्थात यदि सारा पानी इकट्ठा किया जाता तो भारत के सारे भूमंडल पर फैलने पर सब जगह गहराई ४२ इंच होती। इस औसत में प्रतिवर्ष ६ या ७ इंच से ज़्यादा फ़रक़ नहीं पड़ता। यह तो सारे भारत का हिसाब हुआ। परंतु देश में वस्तुतः कहीं कहीं साल में इसका दूना और कहीं इसका चौथाई ही पानी बरसता है। यहाँ तक कि कहीं ५ इंच पानी गिरता है तो कहीं ५०० इंच भी गिर जाता है। इस तरह दो में से एक दशा भी किसान के लिए लाभदायक नहीं इसीलिए जिन्हें नहर आदि के द्वारा सिँचाई का बन्दोबस्त करना है उन्हें स्थान स्थान की औसत बरसात का विचार करना होता है। बरसाती पानी काम में आने के लिए और भी दशाएं हैं जिन पर विचार करना पड़ता है। पानी मूसलाधार बरसकर अधिकांश बह जाता है, नाप में अधिक होता है पर उसकी खपत कम होती है, धीरे धीरे बरसने वाला पानी बहता कम है, धरती में सोखता अधिक है। साथ ही धरती की मिट्टी पर भी जल का उपयोग निर्भर है। कहीं

मिट्टी पीली लसदार बालू से मिली हुई है, कहीं जैसे दक्खिन में काली कपासवाली है, और कहीं पथरीली और रवादार है। जल किस फसल को किस परिमाण में चाहिए यह बोयी हुई चीज़ों पर निर्भर है। जैसे कपास को साधारणतः सिँचाई की ज़रूरत नहीं होती सूखे बरसों में यों ही कुछ थोड़ी सी। जव को सूखे ही साल में पानी चाहिए। परंतु गेहूँ को गन्ने को, बहुत कुछ जल चाहिए और सब से ज़्यादा चावल को चाहिये। अटकल से ६ या ८ एकड़ धान के खेतों में कोई आठ लाख मन पानी चाहिये। उसकी एक तिहाई गेहूँ को। इसी तरह बहुतेरे अनाज हैं जिनमें कुछ रबी के हैं कुछ ख़रीफ़ के हैं जिन्हें अलग अलग परिमाण में जल चाहिये।

इन बातों के सिवाय धरती में भी कहीं पानी या नमी ज़्यादा होती है कहीं कम। कहीं दो चार हाथ खोदने पर ही पानी निकल आता है और कहीं साठ साठ अस्सी अस्सी हाथ पर निकलता है। कहीं कुएँ कहीं तालाब और कहीं नहर से पानी लेने में सुभीता होता है। हिमालय से निकली नदियों ने जिस मैदान को पारकर उत्तर भारत बनाया है वहाँ पानी के लिए तीनों उपाय ठीक हैं। कहीं कहीं, जैसे दक्खिन में नदियों का पेट इतना गहरा है कि नहर काटना कठिन है, इससे वहाँ ताल पोखरों से ही काम लिया जा सकता है। मदरास का हाता, हैदराबाद का आधा और मैसोर और मध्यप्रदेश और उड़ीसा, और मध्यभारत, और राजपूताना, और बंगाल के भी, कई भाग ऐसे ही देश हैं।

सन् १९०३ में सरकारी कमीशन जो सिँचाई के प्रश्न पर बैठा और जिसने भारत के स्थान स्थान में घूम घूम कर जाँच की, उसकी अटकल से भारत साम्राज्य में जितनी भूमि की सिँचाई होती है, चाहे सरकार के प्रबन्ध से हो चाहे प्रजा के निज के प्रबन्ध से हो, वह कुल ५ करोड़ ३० लाख एकड़ है, और कुल खेतवाली भूमि जो जोती बोयी जाती है २९ करोड़ सत्तर लाख एकड़ है। ऊपर के ५ करोड़ ३० लाख एकड़ में १ करोड़ ९० लाख नहरों से, १ करोड़ ६० लाख कुओं से, १ करोड़ तालाबों से और ८० लाख एकड़ और उपायों से सींचे जाते हैं। इनमें ४ करोड़ ४१ लाख एकड़ ब्रिटिश भारत के थे जिनमें सैकड़ा पीछे ४२ की सिंचाई सरकारी प्रबन्ध से हुई। इस तरह मालूम हुआ कि जितनी भूमि जोती बोयी जाती है उसमें केवल पंचमांश का काम सिँचाई से चलता है बाकी सब दैव के आसरे पड़ी रहती है। पानी बरसा तो ठीक है, न बरसा तो सूखी, अधिक बरसा तो बह गयी। इस पंचमांश सिँचाई में भी हिसाब करने से नहरों के द्वारा जो सिँचाई होती है वह सारी खेती का तेरहवाँ अंश मुशकिल से होता है। इस तरह नहरों में इतना ख़र्च होने पर, उनका ऐसा उत्तम प्रबन्ध होने पर भी सौ एकड़ में ७ एकड़ तक ही पानी पहुँचाया जा सकता है।

पानी जितना हमको चाहिए वास्तव में उससे ज़्यादा ही बरसता है। प्रकृति हमारे ऊपर पूर्ण रीति से उदार है। सूखे सालों में भी पानी कम नहीं गिरता। पानी लगभग १२॥ नील मन के बरस जाता है, जिसमें ५ नील मन के लगभग धरती के ऊपर ऊपर बह जाता है और ६७॥ खरब मन के लगभग सिंचाई के काम आता है। इस चित्र से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

समस्त वर्षा का जल।

व्यर्थ बहजानेवाला अंश।

सिंचाई में लगनेवाला अंश।

इस सारे पानी को इकट्ठा कर रखना संभव नहीं है परन्तु गड्ढे, ताल, पोखरे आदि में भी भर कर लोग प्राचीन काल से इकट्ठे करते आये हैं और इस उपाय से अब भी पूरा काम लेते हैं। सिँचाई के विभागवाले भी इसके सिवा और उपाय नहीं जानते। परन्तु इस लेख में हमारा मतलब और उपायों के वर्णन से नहीं है। हमने यह सब बातें पाठकों को नहरों के लाभ और नहरों की वास्तविक स्थिति दरसाने के लिए लिखीं हैं। नहर बड़े खर्च से खोदी जाती हैं, इनमें नित्य काम लगा रहता है, परन्तु इनसे १९०३ ई० तक केवल तेरहवें अंश को लाभ पहुँचता था। अब बारहवें अंश के लगभग लाभ पहुँचता हो तो समझना चाहिए कि बहुत बड़ी उन्नति हुई। इससे कोई ऐसा न समझ बैठे कि जब नहरों से इतना ही लाभ हुआ तो क्या आशा हो सकती है! यह लाभ थोड़ा नहीं है और स्थिर नहीं हो गया है। इसकी उन्नति रुक नहीं गयी है। आगे नहरों के चित्रों को देख कर पाठकगण को मालूम होगा कि नहरों का काटना और निकालना आजकल की शिल्पविद्या की पराकाष्ठा है और यह काम वस्तुतः देखने योग्य है।

गंगा, सिंधु, आदि महानदियों से निकली हुई यह नहरें विस्तार में नदियों के समान हैं। गंगा जी की नहर १८५४ ई० में खुली जहाँ कि हज़ार मील के इधर उधर कहीं रेल न थी। अपनी शाखाओं और भुजाओं को लेकर यह नहर ९९०० मील लंबी है। १८७८ ई० में दूसरी कटी और अब दोनों मिल कर १७ लाख एकड़ भूमि सींचती हैं। यह नहर साढ़े छः हाथ गहरी और १३४ हाथ चौड़ी है और चार बड़ी बड़ी धाराओं को पार कर जाती है। जहाँ से निकली वहाँ से ३६० मील भूमि की सेवा करती है। उसके बराबर की और उसके ड्योढ़े पाट की दो नदियों को उस नहर के ऊपर एक पुल से बहने को राह दी गयी है। सोलानी घाटी में यह नहर पौने तीन मील की बाँध के बीच, पुल से, सोलानी नदी की छाती पर से, बह जाती है। इस स्थान पर प्रति सेकंड ५६०० मन पानी बहता है और पाट १२८ हाथ चौड़ा और गहराई ८ हाथ है!

सब से बड़ी सिंचाई का काम उत्तर भारत में होता है। सन् १८९९ में चनाब से सब से बड़ी नहर निकाली गयी। इससे प्रतिक्षण (सेकंड) तीन से लेकर दस हज़ार मन तक पानी बहता है। दस ही बरस बाद इससे सवा अठारह लाख एकड़ भूमि तृप्त होती थी जिस पर भारत के और और भागों से आ आकर आठ लाख आदमी बस गये थे।

नहर दो तरह की होती हैं। एक तो जिनका पानी नदियों से बारामास आया करता है, इन्हें बारामासी नहर कहते हैं। दूसरी बाढ़ की नहर जिनमें नदी में बाढ़ आने पर पानी इकट्ठा कर लिया जाता है। बारामासी में बाँध लगाना अत्यन्त आवश्यक होता है जिससे जब चाहें तब जितना चाहें उतना पानी घटा बढ़ा सकें, परदा खोलकर पानी बहा दें, बन्द करके पानी को ऊँचा कर दें। बाढ़ की नहर में इसकी ज़रूरत नहीं होती। बाढ़ के निकल जाने पर बाढ़ की नहर सूखी पड़ी रहती है। बाढ़ की नहर साधारणतः खुली रहती हैं, कहीं कहीं पानी को घटाने बढ़ाने का बन्दोबस्त रहता है। पंजाब और सिंध में सतलज चनाब और सिंधु की नहरें इसी ढंग की हैं। बारामासी नहरों में नाव स्टीमर आदि भी चलती हैं।

नदी का पानी उसके चारों ओर की धरती से बहुत नीचे नहीं होता तो नहर काटने में आसानी होती है। जिधर को गहरी खोद दें उधर को सहज ही में पानी बह जा सकता है। गोदावरी कृष्णा कावेरी पेनर श्रीवैकुंठम आदि मदरास में और उड़ीसा तथा बंगाल में भी ऐसी ही नहरें हैं। किन्तु जब नदी का पानी

जल के बल से ढकनों का खुलना।   ढकने से दस फुट ऊँचे जल का रुका रहना
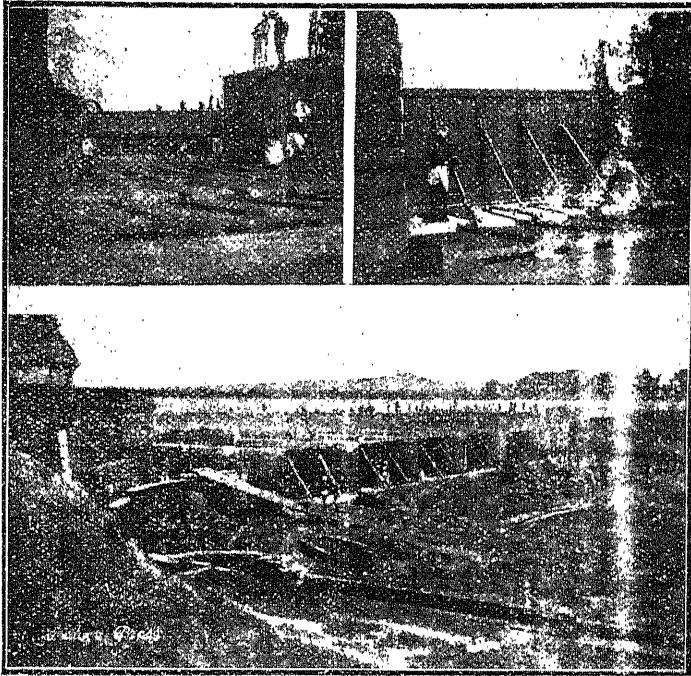
उड़ीसा की नहर का निर्माण।

आसपास की धरती से अत्यन्त नीचे होता है, उसे दूर दूर भेजने के लिए ऊँचे से जाना पड़ता है और कभी कभी ऊँचे चढ़ाने के के लिए उबहन (उद्वाहन-Lift) बनानी पड़ती है। सरहिन्द चनाब और पच्छिमी जमुना की नहरें पंजाब में और गंगा, आगरा और पूरबी जमुना की नहरें इसी ढंग की हैं। हिमालय की ऊँचाई से निकली हुई नदियों का पानी पहाड़ के पास से ही लिया जाता है। उसे ऊँचा उठाना और बहाना प्रयाससाध्य है। गोदावरी आदि में दहाने के पास बाँध बांध देते हैं जिससे पानी साधारण भूमि से पहले ऊँचा हो जाता है और तब नहरों में बहने दिया जाता है।

पानी जमा करने के तालों तालाबों की तो गिनती ही नहीं है। एक करोड़ एकड़ के लगभग धरती तालों से सींची जाती है। इनमें बड़े बड़े ताल हैं जो झीलों के बराबर हैं। मदरास के हाते में ३० हज़ार और मैसोर में ४० हज़ार से ज़्यादा होंगे—अर्थात एक वर्ग मील के भीतर ३—४ होंगे। इनमें बहुतेरे अत्यन्त पुराने पुराने हैं। चिंगलपटन के दो ताल ११०० बरस पुराने हैं और अब तक दो हज़ार और चार हज़ार एकड़ सींचते हैं। अनीकटका बाँध जो दो हज़ार बरस का है कावेरी नदी को काटते हुए फैला था और सन् १८३० ई० तक काम में आता रहा। यह साधारण पत्थर के टुकड़ों की भीत सा था जिसकी लम्बाई पौने सात सौ हाथ चौड़ाई ३०—४० हाथ और गहराई १०-१२ हाथ थी। इससे पौने सात लाख एकड़ भूमि सींची जाती थी। भारतवर्ष के प्राचीन राजा महाराजा अपने राज में खेती के लाभ के लिए सिंचाई के सौ सौ उपाय करते थे। आज जो उपाय हो रहे हैं सिवा इसके कि उनमें आधुनिक विज्ञान से भी काम लिया जा रहा है नये नहीं हैं और न कोई नयी सूझ है। जहाँ जहाँ सैकड़ों हज़ारों बरस पहले सिंचाई के लिए ताल आदि थे सिंचाई की सुविधा का सारा प्रबन्ध था समय के फेर ने ऐसे अनेक स्थानों पर घने जंगलों का परदा डाल दिया है; इसलिए हमारी आँखों से वह सब पुराने उपाय ओझल हो गये। ढाई हज़ार बरस हुए लंका में एक बड़ा ताल खोदा गया था। ब्रिटिश अधिकार से पहले मदरास प्रान्त में ही ५० हज़ार से अधिक छोटे बड़े ताल थे और ३० हज़ार मील तक

बाँध थे। पोनियारी के ताल का विस्तार ६०—७० वर्गमील था और ३० मील का बाँध था जो बेलदारों ने मिट्टी ढो ढो बाँधा था। परन्तु तालों का पानी कुछ तो सूरज की गरमी से उड़ उड़ कर भाप बनकर घटता जाता है कुछ धरती में समाता जाता है। नाप कर देखा गया है कि गहराई में बंबई प्रान्त में ३ हाथ और मदरास प्रान्त में ६ हाथ तक पानी इन्हीं कारणों से घट जाता है। इसी लिए तालों में पानी दो बरस से अधिक रखने का उद्योग नहीं किया जाता।

मनुष्य के हाथ के खुदे जलाशयों में सब से प्राचीन कुएं हैं जो हमारे देश में चालीस लाख के लगभग हैं। बैलों के द्वारा ही पानी का खिचवाना सस्ता पड़ता है। इस तरह वैज्ञानिक माप में दस लाख अश्वबल का (घोड़े की ताकत का) काम होता है। सिँचाई के कमीशन की राय में डेढ़ करोड़ एकड़ से अधिक धरती अभी कुओं से सहज ही सींची जा सकती है। उत्तर भारत में धरती का अधस्तल जल से भरा हुआ है। थोड़ी ही गहराई तक खोदने से चिकनी मिट्टी निकल आती है और जल मिल जाता है। चिकनी मिट्टी जल को धरती के नीचे समाने नहीं देती, पानी नहीं सोखती, जिससे उसके ऊपर जल बना रहता है। पंजाब में हर कुएं से ११ एकड़ के लगभग सिँचाई हो सकती है। और कुएं प्रायः हर साल खोद लिए जाते हैं। सारे भारत में अब तक पुर से ही कुओं से पानी लेना सब से सुगम पाया गया है। कहीं कहीं चरखी से भी पानी खिचवाते हैं। खेतों में जो बैल हल जोतता है वही कुएं से पानी खींचता है।
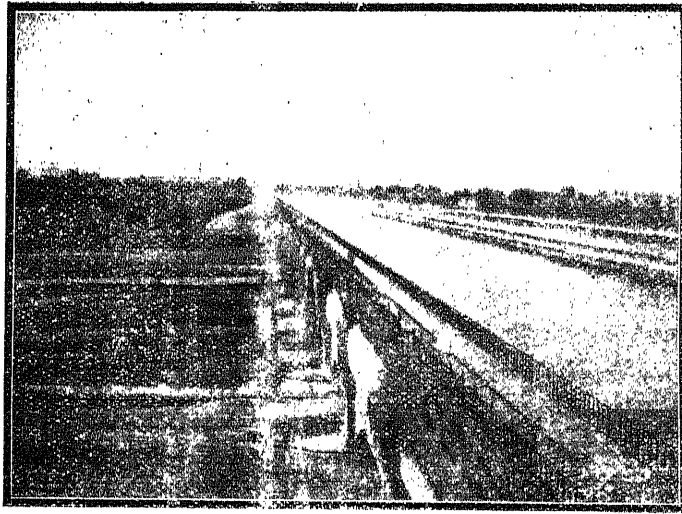
६४ गज़ चौड़ी सोलानी की नहर (पृष्ठ २९, कालम २ पंक्ति ५)

सिंचाई के महकमे का काम एक तो नहर बनाना है दूसरा पानी इकट्ठा करके बाँधों के भीतर रखना है। साथ ही जहाँ जिसको जितना पानी मिलना चाहिए उसका बन्दोबस्त रखते हैं और जितनी दूर तक हो सकता है उतनी दूर तक पानी पहुँचाते हैं। किसी ज़िले में १००—२०० इंच पानी बरसता है और दूसरे में जो पहाड़ी उस पार है सूखा पड़ा है, सदा काल पड़ा रहता है। ऐसी दशा में पहले ज़िले से पानी इकट्ठा करके दूसरे ज़िले में पहुँचाना ही सिंचाई के विभाग का काम है। साथ ही यद्यपि नदियों से सिंचाई का काम स्वाभाविक रीति से लिया

जाता है तब भी बहुधा उनका मार्ग बदल कर उन्हें नहरों में वा किसी और भाँति ऐसी जगह ले जाना पड़ता है जहाँ पानी की ज़रूरत ज़्यादा है। नदियों में बरसात में बाढ़ आती है तो आस पास की बस्ती बह जाती है, हाहाकार मच जाता है। सिंचाई के विभाग का कर्त्तव्य है कि उस हानिकारक जल का ऐसा बन्दोबस्त करे कि हानि के बदले मनुष्य उससे लाभ उठावे। ऐसी दशा में नीची धरती ढूँढ़ कर ताल खुदवा कर बाँध बँधवा कर चतुर इंजिनियर उस अधिक जल को एकत्र करके काम में लाता है, उस जल से केवल किसान को ही लाभ नहीं पहुँचाता वरन उस पानी के दाम भी वसूल कर लेता है। भारत में कहीं कहीं सिंचाई का प्रबन्ध संसार में नाम पाने योग्य हो गया है। मदरास प्रान्त में पेरियार का जलाशय, पेरियार का बाँध संसार में एक ही है। यह बाँध बड़ी कठिनाइयों का सामना करके इंजिनियरों ने बनाया। जिस स्थान में यह जलाशय बना उसके आस पास आठ आठ कोस तक कोई गाँव नहीं, बीस बीस कोस तक चारों ओर कोई रेल नहीं, चारों ओर घना जंगल और पहाड़ी जिसमें फाड़ खानेवाले जन्तु भरे पड़े थे, जहाँ न सड़क न पगडंडी, न हाट न बाजार, जहाँ नित्यके काम की कोई चीज़ ढूँढ़े नहीं मिल सकती थी। जिस नदी पर यह काम था वह साल में छः महीने बढ़कर फैली रहती थी। कठिनाई की अटकल इस बात से की जा सकती है कि पहले दो साल तक बराबर जब तक काम लगा हुआ था चौकीवाले आग जलाकर ढोल पीट पीट रात बिताते थे, नहीं तो जंगली हाथी के उत्पात से बचना कठिन था। तिस पर भी हाथी मील के पत्थर ही उखाड़ फेंकते, पुलों पर चढ़ चढ़ उन्हें तोड़ डालते, सीमेंट के पीपे लुढ़काते, बोरे धौंकनी आदि चबा जाते, निदान जो कोई नयी चीज़, नयी भीत, नया काम देखते थे मानों अपने राज में मनुष्यका दख़ल समझते थे इसीलिए उसे तहस नहस कर डालते थे। ऐसी ऐसी अनेक अड़चनों के होते वहाँ एक अत्यन्त बड़ा जलाशय बना जिसका बाँध ऊँचाई में अपनी उपमा नहीं रखता। उसकी ऊँचाई नदी के जल से १७८ फ़ीट है जिसके सहारे साढ़े तेरह अरब मन पानी इकट्ठा होता है और बारह सौ वर्गमील के लगभग मथुरा के ज़िले को सींचता है।

हमारी नदियां बड़ी बड़ी हैं, साथ ही बाढ़ भी बड़ी बड़ी आ जाया करती है। इन बाढ़ों से बहुत सी रेत मिट्टी बह बहकर कभी एक ओर और कभी दूसरी ओर नदी के गर्भ को पाट कर उसका मार्ग बदल दिया करती है जिससे यह ठीक नहीं रहता कि किस किसान की ज़मीन को नदी हड़प लेगी और किसके ऊपर दयालु होकर खेत दूना कर देगी। ऐसी ही नदियों और स्थानों में जहां एक दम ज़्यादा पानी किसी मौसिम में इकट्ठा होता है इंजिनियर अपनी विद्या का सद्व्यय करके जलाशय बना देता है। परंतु जलाशयों की रचना में यही बाढ़ बाधक भी होती है। बांध तय्यार हो नहीं पाया कि बाढ़ ने उसे चौपट कर डाला। मिट्टी नरम होने से बांध की नींव बहुत गहरी देते हैं। बांध भी बहुत लंबे चौड़े बांधने पड़ते हैं। नदियों के पाट की अटकल इसीसे हो सकती है कि हमारे देश में रेल के दस पुल तो पौन मील से अधिक लंबे होंगे; दो, डेढ़ मील के हैं और एक तो दो मील के लगभग लंबा है।

भारत के प्रायद्वीप भाग में अर्थात दक्षिण प्रदेश में पच्छिमी घाट के पहाड़ समुद्र के किनारे ही इतने ऊँचे हो गये हैं कि समुद्र से आते हुए पछवाँ हवा से प्रेरित बादलों को वहीं ख़ाली कर लेते हैं और पूरबी भाग प्यासा ही रह जाता है। पच्छिमी घाट पर २०० इंच के लगभग पानी बरस जाता है जिसका अधिकांश भारत महासागर में बह जाता है। ऐसी ही दशा में

त्रिवंकुर प्रान्त में बहनेवाली परियार नदी जो मधुरा होती हुई बंगाल की खाड़ी में गिरती है पूर्वीय प्रान्त को सींचने के काम में लायी गयी। इसी नदी के कुछ जल को बैगाई नदी में बहा कर मधुरा नगर के उत्तर १ लाख ८० हज़ार एकड़ भूमि सींची जाती है।

इस काम में सफलता के लिए, परियार का मार्ग बदलना पड़ा। मार्ग बदलने के लिए पक्का बांध बांधकर नदी को पहाड़ के भीतर वाले दर्रे से ले जाना पड़ा। यह बाँध नीचे १३६ फ़ीट और सिरे पर १२ फ़ीट चौड़ा है। नींव मिलाकर पचास लाख (घन) फुट कंकरीट इसमें लगायी गयी। परियार और बैगाई के बीचवाले चट्टान के भीतर से सवा मील के लगभग लंबी सुरंग खोदकर उसमें से पानी बहाया गया। यह सुरंग पांच हाथ ऊंची और आठ हाथ चौड़ी है। यह ऐसे चट्टान के भीतर खुदी है जो अत्यन्त कठोर है जिसे खोदने के लिए बारूद सरीखे रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया गया।

इस बाँध के द्वारा नदी का मार्ग रोक कर जो ताल बना बहुत ही विशाल है। इसका औसत विस्तार पांच हज़ार एकड़ के लगभग है। इसका जल ८६ मील तक मधुरा ज़िले में जाता है। इसकी तय्यारी में ७५ लाख रुपया लगा।

लाहोर से बीस कोस दक्खिन जो नहर तय्यार हुई है झेलम का पानी चनाब में उँडेलती है और चनाब का पानी भी ऊपर की ओर खिचकर दूसरे दूसरे ज़िलों में सींचने का काम देता है। दोआबे की बड़ी नहर लगभग पौने दोसौ हाथ चौड़ी और साढ़े छः हाथ गहरी है।

हम दिखा चुके हैं कि हमारे देश में बरसात के पानी का बहुत थोड़ा अंश सिंचाई के काम में आता है। अभी सिंचाई के महकमे को बहुत भारी, बहुत ज़्यादा काम करना है। जो कुछ काम हुआ है वह सराहनीय है, परंतु देश के विस्तार पर निगाह करें तो अत्यन्त कम ठहरता है। भारत खेतिहर देश है। यहां के निवासियों का अनाज ही जीवन अनाज ही प्राण है। इतना ही नहीं। भारतवर्ष अपनी संतान का पालन पोषण करते हुए अनेक बाहरी देशों को भी भोजन देता है। भारत की 'सुजला सुफला शस्य श्यामला' धरती सदा से संसार का पालन करती आयी है। इस उपकार में वह पिछड़ेगी नहीं। किंतु सुजला का अमृततुल्य जल आज एक ओर व्यर्थ बहा जा रहा है तो दूसरी ओर खेती प्यासों तड़प रही है, अनाज बे पानी के जलते जा रहे हैं। भारत में स्वास्थ्य और सिंचाई यह दो सरकारी विभाग प्रजाके लिए विष्णुभगवान के रूप हैं। एक रोगों से रक्षा करता है दूसरा भोजन का उपाय करता है। एक ओषधि देता है, दूसरा पथ्य खिलाता है। परंतु इस बूढ़े च्यवन भारत को यदि भला चंगा सही सलामत रखना है, रसायन अमृत पिलाकर, पौष्टिक खिलाकर बूढ़े से फिर जवान करना है, तो इन सरकारी अश्विनीकुमारों को दोनों विभागों को, अधिकाधिक परिश्रम और उद्योग करना पड़ेगा, इन विभागों के अधिकाधिक विस्तार की आवश्यकता होगी। हमारी समझ में सरकार स्वयं इस बात से अभिज्ञ है और इन विभागों की उन्नति पर ध्यान दे रही है।

—"विश्वकर्म्मा"

शिल्प की लीला

१—कागज़ का मकान।

[लेखक-लाला पार्वतीनन्दन]

कागज़ पर हम लिखते हैं, उस पर पुस्तकें और समाचार पत्र छपाते हैं, और छपे हुए कागज़ों के रद्दी हो जाने पर पंसारी उनसे पुड़िया बाँधते हैं। कुछ भलेमानस बेकाम कागज़ से जूते लपेटने का भी काम लिया करते हैं। मतलब यह कि हिन्दुस्तान में कागज़ से अधिकतर मामूली काम ही लिये जाते हैं परंतु हिन्दुस्तान के बाहर कागज़ के काम की सीमा बहुत लम्बी चौड़ी, बहुत विस्तारवाली पायी जाती है। हिन्दुस्तान में भी कागज़ कूट कर उसकी लुब्दी से डलियाएं बनायी जाती हमने देखी हैं। एक जगह कागज़ की डलिया ६५ वर्ष की एक बुढ़िया बनाती थी, और डलिया बनाने की मशीन या सांचा उस बुढ़िया के पास मट्टी के मटके का पेंदा ही था। बुढ़िया माई की खुशामद करके हमने उससे एक क़लमदान बनवा लिया था जो आज १५ वर्ष से हमारे पास है, और यद्यपि यह क़लमदान बहुत सुन्दर नहीं है, तब भी हम उसी से नित्य काम लेते हैं, और बुढ़िया की कारीगरी तथा उसके निश्छल प्यार की निशानी समझ कर उसे विलायती बढ़िया बहुमूल्य क़लमदान से भी उत्तम समझते हैं।

अस्तु, यह तो रही हिन्दुस्तानी बुढ़िया की कारीगरी की बात। विलायत में सचमुच कूटे हुए कागज़ से बड़े बड़े काम निकाले जाते हैं। हमने एक कारीगरी के चुटकुले बतलानेवाली पुस्तक में पढ़ा था कि कागज़ कूट कर उससे कमरोंमें पत्थर की पटियों की जगह लगाने के लिए फ़र्श बनाते हैं, खिड़कियों के लिए छोटे छोटे किवाड़ बनाते हैं और छोटी छोटी मेज़ तथा कुर्सी मोढ़े तक बना लेते हैं। कागज़ के फ़र्श पर पानी पड़ता है, वह पानी से धोया जाता है, तब भी भीगता नहीं। अमेरिका में सुना जाता है कि रेलगाड़ी के पहियों पर कागज़ लगा दिये जाते हैं, और ये इतने मज़बूत होते हैं कि जल्दी घिसते नहीं। इसके सिवा कागज़ की ही बनी डिबियां बक्स, घोड़े के पैरों की नाल, मुर्दे रखने के कफ़न के सन्दूक, इत्यादि बहुतेरी वस्तुएं अब विलायती बाज़ारों में साधारण रीति से मिला करती हैं। बाक़ी था कागज़ का मकान, सो भी बन गया।

जर्मनी में हैम्बर्ग नाम का एक नगर है। वहाँ एक होटल या भोजनागार कागज़ ही से बनाया गया है। आप समझते होंगे कि यह भवन मामूली पतले कागज़ का खिलौना सा होगा। नहीं, यह सचमुच का, बहुत दृढ़, मनुष्य के रहने योग्य, अच्छा ख़ासा लम्बा चौड़ा और ऊँचा, और देखने में भी बहुत ही सुन्दर सुदृश्य भवन है। इस भवन के भीतर बहुत से कमरे हैं। उनमें से जो कमरा सब के बीच में और सब से बड़ा है, वहीं साहब लोग मेज़ कुर्सियां लगाकर भोजन करते हैं। बताइए तो, एक कागज़ के कमरे में कितने मनुष्य बैठ सकते होंगे? मेज़ कुर्सियों की चारों ओर १० या २० नहीं, एक साथ १५० मनुष्य बराबर बैठ कर नित्य सुख से षट्रस भोजन उड़ाया करते हैं। बस, इतने ही से आप उस कमरे का अनुमान कर लीजिए

Industries शिल्प]

और इतने ही से उस सारे भवन के विस्तार का भी अन्दाज़ा लगा लीजिए। जिस भवन का भोजनागार (dining room) इतना बड़ा हो वह कुल कितना बड़ा हो सकता है, और सारे मकान में कुल कितने मनुष्य एक साथ भर दिए जा सकते हैं, इसे आप ही समझ लीजिए।

जी चाहे तो आप भी एक बड़ा नहीं तो छोटा ही सा काग़ज़ी मकान बनवा लीजिए, परंतु ऐसे मकान के लिए बहुत सा रद्दी काग़ज़ चाहिए। इतना अधिक रद्दी काग़ज़ हाथ से कूटना पीसना सहज नहीं है, उसके लिए विलायत में मशीनें होती हैं, यहाँ भी कोई कलदार जाँता या कल की ओखली बना लेनी पड़ेगी। हमारी पहिले कही हुई डलिया बनाने वाली बुढ़िया माई आदि युग से प्रचलित हिन्दुस्तानी सिल लोढ़े ही से सारे संसार के मशीनों के कान काटा करती थी, और कागज़ की लुब्दी को लसदार बनाने के लिए मेथी, गुड़, और उर्द की दाल का बेसन मिलाती थी। विलायतवाले काग़ज़ कूट कर उसमें सरेस का शीरा मिलाते हैं।

२—मूंगे का गिर्जा

प्रवाल या मूंगा एक तरह का जीवधर्मी उद्भिद या पौदा है। इसे अंगरेज़ी में Zoophytes या animal plants कहते हैं। यह कई रंगों का होता है, और असल में समुद्र के भीतर उगनेवाली एक प्रकार की गुल्म या लता की हड्डियां मात्र है। इस जलज गुल्म में बहुत सी शाखाएं हुआ करती हैं, और उसमें कुछ चमक या दीप्ति सी भी निकला करती है। मूंगे का गुल्म समुद्र के पेट में आप से आप पैदा होकर बढ़ता रहता है, यहाँ तक कि इस की ढेरियां जमते जमते बड़े बड़े द्वीप या टापू बन जाते हैं। भारत महासागर में मालद्वीप, लाक्षाद्वीप और सइसेलिस द्वीपमालाओं में से माहे नाम का द्वीप भी इसी प्रकार मूंगों ही का बना है। माहेद्वीप में ईसाइयों का एक गिर्जा है। यह गिर्जा मूंगों से बना हुआ है। यह बहुत दृढ़ है, बरसात का पानी रोक सकता है, और ऐसा सुन्दर बना हुआ है कि देखने वाले के नेत्र मोह जाते हैं, चित्त आनन्द से भर जाता है। यह गिर्जा सम्पूर्ण मूंगों ही से बनाया गया है और वहाँ के दूसरे बड़े बड़े मकान—मकान ही नहीं भारी भारी महल भी—मूंगे ही से बनाये गये हैं। मूंगे के चट्टानों में से चौकोनी पटरियाँ काट कर उन्हीं से ये भवन बनाये गये हैं। दिन में जब सूर्य की ज्योति से टापू की भूमि चमकने लगती है, उस समय मूंगे के भवनों के साथ मूंगे का गिर्जा अपूर्व श्वेत रंग के मर्मर पत्थर से मढ़े हुए मकानों की तरह अकड़ कर अपना सिर उठाए चमका करता है। यह प्रवाल निर्म्मित भजनालय भी काग़ज़ी भोजनालय के समान संसार में एक अचरज की सामग्री कही जा सकती है।

दाग़ धब्बे छुड़ाना

जैसे रसायन विद्या का जन्म भारत वर्ष में हुआ उसी तरह रंगों का जन्म भी भारत ही से होकर रंगने, रंग छापने, और रंगीन कपड़े पर सुफ़ेद या दूसरे रंग के बेल बूटे छापने की विद्या का उद्भव भी भारत ही से हुआ। रंगरेज़ी की अंगरेज़ी पुस्तकों को पढ़ने से यह बात सिद्ध होती है। परंतु आजकल साध लोगों को छोड़ और कोई हिंदू जाति रंगरेज़ी सीखना पसंद नहीं करती। शायद इस कला को लोग हलका काम समझते हैं। परंतु विज्ञान में सारी दुनिया में आगे बढ़ा हुआ जर्मनी सब से अधिक आदर रंग ही को देता है। रंग के कारख़ानों में उसने जितना धन लगाया है जितना कमाया है उतना अन्य किसी देशवालों को नसीब नहीं हुआ। रँगने, छींट साड़ी वगैरः छापने और रंगे हुए कपड़े पर सुफ़ेद या और किसी रंग के बेल बूटे निकालने के विषय में फिर कभी लिखा जायगा। संप्रति दाग़ छुड़ाने के बारे में कुछ बातें लिखना आवश्यक समझता हूँ।

भारत के प्रायः सभी बड़े बड़े शहरों में आज कल वाशिंग (धोबी) कंपनियाँ (लाँड्री Laundry) खुल गयी हैं। परंतु देखा गया है कि सैकड़ा पीछे एकाध को छोड़ किसी को अपने काम का ज्ञान नहीं होता। पहिले जो कपड़ा धोबी को बिना छपी हुई रसीद के दिया जाता था वही अब एकाध बनिये या बम्मन की मार्फ़त छपी हुई रसीद लेकर उसी धोबी को धोने दिया जाता है। अथवा यों कहिये कि धोबी का एजंट चिल्ला चिल्लाकर धोने को सबसे कपड़े लेता है और थोक के भाव से धुलवा कर जो बचत होती है उससे अपना गुज़ारा करता है। परंतु इन्हें चाहिए कि जिस कार्य को उठावें उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करें, अपनी जानकारी बढ़ावें। विलायत में मज़दूरनियाँ भी दाग़ निकालने की विद्या जानती हैं और धोने के कपड़ों के दाग़ रसायनों से दूर करके धोती हैं। अगर यहाँ की स्त्रियाँ दाग़ छुड़ाने की विद्या का अभ्यास कर लें तो बड़ी आसानी से घर के घर में स्वच्छ कपड़े पहनने को मिलें। और जो अनपढ़ लोग वे समझे कपड़े के दाग़ को निकालने के लिए किसी चीज़ से उसको रगड़ कर उसे कमज़ोर कर डालते हैं वह नुक़सान भी न हो।

दाग़ मिटाने के पहले दो बातें देखनी चाहियें। (१) कपड़ा सूती है, या ऊनी है, या रेशमी। (२) दाग़ किस तरह का है। साधारणतया सूती कपड़े ही घरों में व्यवहृत होते हैं और सूती कपड़ों से दाग़ छुड़ाते समय यह हमेशा ख़्याल रखना चाहिए कि सूती कपड़े पर तेज़ाब का असर बहुत जल्द और नाशकारक होता है। क्षारों (Alkalis) से सूत की हानि नहीं होती। परंतु ऊनी और रेशमी कपड़ों पर तेज़ाब का असर वैसा नाशकारक नहीं है। रेशमी और ऊनी कपड़ों पर क्षारों (Alkali) का असर करीब करीब वैसा ही है जैसा सूती कपड़ों पर तेज़ाब का। अकेला अमोनिया (Ammonia) ऐसा क्षार (Alkali) है जिसका कोई बुरा असर सूत, ऊन या रेशम पर नहीं पड़ता। और एसेटिक एसिड, टार्टरिक एसिड, और ओक्ज़लिक एसिड ये एसिड ऐसे हैं जिनका कोइ नाशकारक परिणाम सूत, ऊन या रेशम पर नहीं होता।

अकसर घी तेल वगैरः के दाग़ कपड़ों पर पड़ जाया करते हैं, इनमें से घी और खाने के

Industries शिल्प]

तेल के दाग़ तो साबुन से बड़ी आसानी से छूट जाते हैं। परंतु सिर में लगाने के जो हज़ारों नाम के तेल दिन पर दिन निकल रहे हैं वे मिट्टी के (बदबू निकाले हुए) तेल के बने हुए होते हैं। इन तेलों के दाग़ साबुन से नहीं छूट सकते। इसलिए अगर तेल बहुत लगा हो तो उसे बेसन रगड़ कर या सोख़्ता काग़ज़ लगा कर जितना बने कम कर डालें। तदनंतर दाग़ की जगह के नीचे एक और कपड़ा रखकर ऊपर से ज़रा ज़रा सा बेन्ज़ोल (Benzole) लगाते जावें। जिससे दाग़ छूट जायगा और जो तेल दाग़वाली ऊपर की सतह पर बचा रहे वह सोख़्ता काग़ज़ से सोख लिया जाय। अगर एक बार करने में पूरा दाग़ न छूटे तो दुबारा इसी प्रकार करना चाहिए। बेन्ज़ोल (Benzole) से दाग़ छुड़ाने में बड़ा भारी फ़ायदा यह है कि कपड़ा चाहे कैसे ही कच्चे पक्के रंग से रंगा हो कभी बिगड़ने का डर नहीं रहता और न यह ख़्याल करना पड़ता है कि आया वह सूती है या ऊनी या रेशमी। (Benzole) सब पर एकसा असर करता है। परंतु बेन्ज़ोल से काम करते हुए बड़ा ख़्याल रखना पड़ता है कि इसके पास कहीं आग न जलती हो। नहीं तो वह भक से जल उठेगा। बेन्ज़ोल किसी केमिस्ट से १ या १॥ रुपया पौंड मिल सकता है। साबुन से ये दाग़ साफ़ करने में यह डर रहता है कि शायद रंगे हुए कपड़े का रंग बिगड़ जाय। बेन्ज़ोल से दाग़ छुड़ाने पर कपड़े को पानी से धोने की आवश्यकता नहीं रहती और इसी वजह से यह Dry Cleaning कहलाता है। मख़मल की या बनात की टोपियाँ जो आजकल बहुत पहनी जाती हैं इससे बड़ी आसानी से साफ़ हो सकती हैं। इसके लगाने से कपड़ा ऐंठता नहीं है। मोम के दाग़ भी इससे बड़ी आसानी से निकल जाते हैं परंतु मोम जितना बने पहिले चाकू या नाख़ून से निकाल लेना चाहिए। काले तेल कीट के दाग़ और डामर एवं कोलटार के दाग़ भी बेन्ज़ोल से छूट जाते हैं। परंतु डामर और कोलटार के दाग़ अगर प्रथम तेल लगाकर तदनंतर बेन्ज़ोल से छुड़ाये जाँय तो आसानी से छूट सकते हैं।

लौंड्रीवालों के वास्ते सुगम यह है कि बेन्ज़ोल की जगह जीलैटीनाइस्ड बेन्ज़ोल (Gelatinised Benzole) से काम लेवें। सिर्फ़ बेन्ज़ोल से काम करनेपर दाग़वाली जगह पर ज़रासा नुक़्स रह ही जाता है। और वह चुग़ली खाता है कि यहाँ दाग़ मिटाया गया है। जीलेटीनाइस्ड बेज़ोन्ल से यह नुक़्स नहीं रहने पाता। और वह बनता है इस प्रकार—

३० तोले मार्सेलीस सोप या (Olive Oil Soap) ज़ेतून के तेल का साबुन ४५ तोले उबलते हुए पानी में गलाकर उसमें ७॥ तोले लैकोर अमोनिया मिलाया जावे। और इतना पानी मिलाया जावे जिससे वह १॥ पैंट (Pint) या १४ छुँटाक बनजावे। तब उसमें १२॥ तोले बेन्ज़ोल मिलाकर खूब हिला लिया जाय। इस मिश्रण में से एक तोला लेकर उसमें नव तोले बेन्ज़ोल और मिलाने से "जीलेटीनाइज़्ड बेन्ज़ोल" बनेगा। यह बेन्ज़ोल ही के तौर पर काम में लाया जाता है और बहुत अच्छा काम देता है।

घी, तेल, चरबी, मोम, कोलटार और डामर के अलावा कभी कभी कपड़े पर, तेल के रंग के दाग़ भी पड़ जाते हैं, जो दीवारों पर लगे होते हैं—और इन को जैसे बने जल्दी निकालने की कोशिश करना ही अच्छा है। क्योंकि ज्यों ज्यों ये दाग़ पुराने होते जावेंगे त्यों त्यों छूटना अधिक कठिन होगा। तेल के रंग (oil paint) का ताज़ा दाग़ तारपीन के तेल से फ़ौरन छूट जाता है। परंतु सूख चुका हो तो तारपीन का तेल और क्लोरोफ़ोर्म दोनों मिलाकर उस मिश्रण से बार बार भिगो कर छुड़ा लेवें।

इन के अलावा लोहे के दाग़ भी अकसर पड़ जाते हैं। पसीने से भीगा हुआ कपड़ा फ़ौरन उतार कर लोहे की कील पर टाँग देने से लोहे का क्षार बनकर कपड़े पर जम जाता है और वहाँ पर पीले रंग का दाग़ पैदा कर देता है। यह दाग़ अगर न छुड़ाया जावे तो कुछ दिनों में उतने कपड़े को गला देता है। ये दाग़ सिरका या नीबू के रस से निकल सकते हैं परंतु अक्सेलिक एसिड में पानी मिला कर लगाने से जल्द छूट जाते हैं। ओक्सेलिक एसिड का पानी लगाकर उस पर से कभीर? का टुकड़ा रगड़ा जावे तो दाग़ और भी जल्दी छूट जावेगा।

नीबू के रस में थोड़ा क्रीम-ओफ़-टार्टर मिलाकर लगाना और भी अच्छा है। कपड़े को गरम पानी से भिगोकर तब यह मिश्रण लगाया जावे और दाग़ छूट चुकने पर साफ़ पानी से धो लिया जाय।

परंतु रंगीन कपड़े पर लोहे के दाग़ हों और रंग को सम्हाल कर दाग़ निकालना हो तो सिरका या नीबू का रस या ओक्सेलिक एसिड हर जगह ठीक काम नहीं देते, इस वास्ते यह आवश्यक है कि किसी ऐसी वस्तु से काम लिया जाय जो रंग को न बिगाड़े। ग्लिसरीन (Glycerine) सोफ़्ट सोप (Soft Soap) और थोड़ा पानी मिलावे। यह मिश्रण दाग़ पर लगाकर कुछ घंटों तक रखने से और साफ़ पानी से धो डालने से दाग़ छूट जावेंगे और रंग को भी नुक़सान न होगा। अगर एक बार लगाने पर दाग़ बिलकुल न छूट जायँ तो दो बारा लगाना चाहिये।

स्याही के दाग़।—स्याही अकसर लोहा और हड़ की या ऐसे हीअन्य पदार्थ के मिश्रण की बनी होती है। इस वास्ते स्याही के दाग़ भी वैसे ही निकालने चाहियें जैसे लोहे के निकाले जाते है। परंतु कभी कभी स्याही विलायती रंग की भी बनी हुई होती है। इस वास्ते ब्लीचिंग पाउडर (bleaching powder विरंजन चूर्ण) अथवा बाई सल्फ़ाइटसोडा अकेला या (Bisulphite of soda and zinc dust) जस्ते के चूर्ण के साथ ख़बरदारी से इस्तेमाल किया जाय। ज़रासा ब्लीचिंग पाउडर मोटे कपड़े में बांध कर पानी में घोल दिया जाय और उसमें दाग़ धोया जाय। और सावधानता रखनी चाहिये कि कहीं से ब्लीचिंग पाउडर के कण निकल कर पानी में न चले गये हों। अगर कहीं एकाध कण भी दाग़वाले कपड़े को लग जायगा तो उतना ही छेद हो जाने का डर है। बाइ-सल्फाइट सोडा के घोल का उपयोग ख़तरनाक नहीं है। बाइ-सल्फ़ाइट सोडा और जस्ते का चूर्ण इस प्रकार उपयोग में लाया जाता है—

१० सेर बाइसल्फ़ाइट सोडा को

१० सेर पानी में घुलाया जाय और यह मिश्रण

१ सेर जस्ते के चूर्ण (Zinc dust) पर धीरे धीरे डालते जावें और हिलाते रहें। इस मिश्रण को दो या तीन घंटे रख छोड़ें, फिर इस घोल को काम में लावें। इसके लगाने से अथवा इस घोल में दाग़वाला हिस्सा भिगो रखने से विलायती रंग से बनायी हुई स्याही के दाग़ अच्छी तरह छूट जावेंगे। साथ ही कपड़ा रंगा हुआ होगा तो रंग भी इससे उड़ जायगा। सारे कपड़े का रंग ही उड़ाना हो तो इसी घोल में कुछ घंटे भिगो रक्खें, अख़ीर में ज़रा गरम करें जिससे घोल का असर जल्दी होवे। इस घोल को हाइड्रोसल्फ़ाईट आफ़ सोडा कहते हैं और इसमें सबसे बड़ी ख़ूबी यही है कि यह सब रंगों को उड़ा देनेवाला होने पर भी कपड़े को ज़रा भी नुकसान नहीं पहुँचाता परंतु लोहे की (याने कसीस की) बनी हुई स्याही के

दाग़, ऊपर लिखी हुई लोहे के दाग़ निकालने की तरकीब से ही निकालना चाहिए।

आम, अनार, जामुन वग़ैरह फलों के रस के दाग़ थोड़े पानी में सुहागा या अमोनिया लैकोर मिला कर धोने से छूट जाते हैं। रंगीन कपड़े के रंग को इससे नुक़सान नहीं पहुँचता। उजले कपड़े पर यह दाग़ हों तो ब्लीचिंग पौडर के पानी में कुछ बूँदें एसेटीक एसिड मिला उसमें कपड़ा डुबो कर दाग़ छुड़ा लेना ही अच्छा है। दाग़ छूट जाने पर साफ़ पानी से धो डालें। परन्तु ऊनी या रेशमी कपड़ा ब्लीचिंग पौडर के पानी से कभी न धोना चाहिए। अगर सुहागा या अमोनिया लैकोर से रेशमी या ऊनी कपड़े पर के फलों के दाग़ न निकल जाँय तो उन दाग़ों को बाइसल्फ़ाइट सोडा के पानी से धोकर, दाग़ छूट जाने पर, साफ़ पानी से धो डालें। बाइसल्फ़ाइट सोडा के पानी से धोने के बाद अगर थोड़े से टार्टरिक एसिड के पानी से धोया जाय तो भी अच्छा परिणाम होता है। परंतु रँगे हुए कपड़े पर इस प्रकार प्रयोग करने से दाग़ के साथ रंग भी छूट जाता है। रेशमी और ऊनी कपड़ों का रंग सम्हालने के लिए उन्हें सिर्फ़ साबुन और पानी में धोना चाहिए और संभव है इस प्रकार करने से फलों के दाग़ छूट जावें परंतु जो न छूटें तो ऊपर लिखी हुई तरकीब से दाग़ छुड़ाकर पुनः रंग लेना ही अच्छा है।

शराब भी फलों से बनती है और उसके दाग़ भी उसी तरह के होते हैं इसीलिए फलों के दाग़ मिटाने की तरकीब से ही शराब के दाग़ भी मिटाये जायँ।

इसी प्रकार क़हवा और चाय के दाग़ भी उड़ाये जा सकते हैं।

गंधक शोरा या नमक के तेज़ाब के दाग़ निकल नहीं सकते। क्योंकि ये तेज़ाब कपड़े की उतनी सतह ही जला देते हैं। अन्य तेज़ाबों के दाग़ अमोनिया लैकोर लगाने से निकल जायँगे। परंतु ये दाग़ पुराने हों तो नहीं निकल सकते। अगर तेज़ाब के दाग़ रंगीन कपड़े पर पड़े हों तो उसका एक मात्र इलाज यही है कि कपड़े को पुनर्वार रंग डालें या उसी रंग से दाग़वाली जगह पोत दें जिससे दाग़ छिप जाय।

आशा है पाठकगण इससे लाभ उठाएँगे और इस ज्ञान को भी फैलाने की कोशिश करेंगे।

मोहनलाल जौहरी.

जल के अनेक रूप

[लेखक—अध्यापक गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी. एस्-सी.]

समुद्र, झील, नदी इत्यादिक जलाशयों से जल सदैव अदृश्य भाप के रूप में परिणत होकर वायुमंडल में प्रवेश किया करता है। इसीसे भाप का कुछ न कुछ अंश वायु में नित्य विद्यमान रहता है। भाप को अदृश्य रूप में रख सकने की जो शक्ति वायु में है वह उसकी उष्णता पर निर्भर है। ज्यों ज्यों उष्णता बढ़ती या घटती जाती है त्यों त्यों वह शक्ति भी बढ़ा या घटा करती है। अतएव भाप से लदी हुई गरम वायु यदि किसी कारण से यथेष्ट ठंढी हो जाय तो वह अपनी सब भाप अदृश्य रूप में न रख सकेगी। कुछ अंश तुरन्त ही दृश्य रूप धारण कर लेगा। वायुमंडल की भाप ऐसी दशा

Physics भौतिक शास्त्र]

को प्राप्त होकर, शीत की मात्रा के अनुसार, कई दृश्य धारण करती है, जिनमें कुहरा, मेघ, ओस, वर्षा, पाला, बर्फ़ और ओला, ये सात मुख्य हैं। भाप ही को जल के इन रूपान्तरों का केन्द्र समझना चाहिए।

ओस—दिन भर सूर्य की गर्मी से भूमि गरम हुआ करती है। सूर्यास्त के पश्चात् उसका ठंढा होना आरंभ होता है। वह अपनी गरमी आकाश में फेंकने लगती है। कुछ काल में जब भूतल ठंढा हो जाता है तब निकट की वायु भी उसके संसर्ग से ठंढी हो जाती है, यहां तक कि वह अपनी सब भाप अदृश्य रूप में नहीं रख सकती। कुछ अंश तुरन्त निचुड़ कर छोटे २ जलविन्दुओं के रूप में घास पात इत्यादिक भूमि पर पड़ी हुई वस्तुओं पर सिँच जाता है। ये ही जलविन्दु ओस कहाते हैं।

किन्तु ओस के बनने में एक और कारण सहायक होता है। ओस का सब भाग वायु से ही नहीं निकलता। भूमि, घास तथा पौदों की पत्तियों से निरन्तर भाप निकला करती है। दिन को सूर्यताप के कारण वह यथेष्ट शीतल नहीं हो पाती, परन्तु रात्रि के समय ठंढ की अधिकता से ओस की बूंदों का रूप धारण कर लेती है।

प्रातःकाल के समय सूर्य की किरणों के पड़ने से ओस की जो बूंदें रंगबिरंगी और मोतियों के सदृश सुहावनी मालूम होती हैं इन्हीं कारणों से बनती हैं। जिन ठंढी रातों में आकाश मेघहीन होता और पवन निश्चल रहती अथवा बहुत मन्द मन्द बहती है उन्हीं में ओस प्रचुरता से बनती है। आकाश से नहीं गिरती।

पाला—साधारण नियम यह है कि ठंढ के कारण और द्रव्यों के समान भाप भी पहिले अपने द्रवरूप (जल) में परिणत होकर फिर अपने दृढ़रूप (बर्फ़) को धारण करती है। किन्तु प्रकृति की विचित्रता से भाप का एकदम बर्फ़ के रूप में और बर्फ़ का एकदम भाप के रूप में भी परिवर्तन हो जाया करता है। पाला इसी असाधारणता का परिणाम है। जिस समय भाफ ओस बनना चाहती है उस समय यदि ठंढ अधिक हुई तो ओस न बनकर वह एकदम बर्फ़ बन जाती है। यह बर्फ़ जिस रूप में होती है उसे पाला कहते हैं। इससे कृषि अथवा वनस्पति-वर्ग को जो हानि पहुँचती है वह उस समय की प्रचंड ठंढ से होती है।

कुहरा—कुहरे और मेघ में अन्तर केवल इतना ही है कि एक भूमि के निकट और दूसरा वायुमंडल के ऊपरी भागों में बनता है। दोनों की उत्पत्ति समान कारणों से होती है। दोनों में, वायु में अधर तैरते हुए अत्यन्त सूक्ष्म जलकणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं रहता। जब जब वायु का कोई विस्तृत भाग यथेष्ट ठंढा हो जाता है तब तब उसमें की भाफ पहिले पहल इन जल कणों के रूप में परिणत होकर दृष्टि गोचर हो जाती है और अपने स्थान के अनुसार कुहरा या मेघ कहाती है।

वाष्पपूर्ण वायु कई कारणों से ठंढी होकर कुहरा उत्पन्न कर सकती है। यथा—

१—सूर्यास्त के पश्चात् और और पदार्थों के समान वायु भी अपनी उष्णता आकाश में विसर्जन करती हुई ठंढी हुआ करती है। संध्या के समय जो कुहरा मैदानों पर छाया रहता है वह मुख्यतः इसी प्रकार बनता है।

२—भाप से भरी हुई गरम वायु जब ठंढी भूमि पर होकर बहती है तो वह भी शीतल हो जाती है। शीतकालिक कुहरे के बनने में कदाचित् यह कारण विशेष सहायक होता है।

३—बहती हुई पवन जब अपने सामने पर्वत श्रेणी के सदृश कोई रुकावट पाकर विवश हो ऊपर चढ़ती है तब वह एक विशेष प्राकृतिक नियम के अनुसार फैलती हुई ठंढी होती जाती है। पर्वत शिखरों पर जो कुहरा इस प्रकार बनता है वह अपनी ऊंचाई और दूरी के कारण मेघ सा प्रतीत होता है। चित्र नं० १ में पवन का मार्ग शर-चिन्हों से सूचित किया गया है।
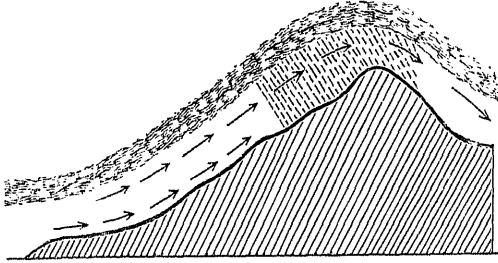
चित्र नं० १

४—एक गरम और दूसरी ठंढी पवन के मिश्रण से भी जब भाप यथेष्ट ठंढी हो जाती है, तो कुहरा बन जाता है।

५—गीली भूमि अथवा नदी इत्यादि, जलाशयों पर विशेषकर के प्रातः-काल के समय, जो कुहरा छाया रहता है वह इसी प्रकार बनता है। जल का यह एक विशेष गुण है कि वह और पदार्थों की अपेक्षा बहुत धीरे २ गरम होता और गरम हो जाने पर बहुत धीरे २ ठंढा होता है। इसलिए जलाशयों के ऊपर की वायु के बहुत ठंढी हो जाने पर भी जल कुछ गरम ही बना रहता है। उसमें से उठती हुई गरम भाप ऊपर ठंढी वायु में प्रवेश करती है और तुरन्त ठंढी हो कुहरे के रूप में परिणत हो जाती है। यह कुहरा पवन की स्थिरता के कारण बहुधा जलाशयों के समीप ही बना रहता है और सूर्योदय के पश्चात् फिर अदृश्य हो कर वायुमंडल में विलीन हो जाता है।

मेघ—जिन कारणों से कुहरे की उत्पत्ति होती है, ठीक वैसे ही कारणों से वायुमंडल के ऊपरी भागों में मेघ भी बनते हैं। इनके आकार और अवयवों की स्थिरता का भ्रम इनकी उँचाई और दूरी के कारण होता है। वास्तव में कुहरे के समान मेघों के भी रूप निरन्तर परिवर्त्तनशील और उनके सूक्ष्म जलकण परम चञ्चल होते हैं।

मेघों की जातियाँ अनन्त हैं। किन्तु वैज्ञानिकों ने उनके चार मूलरूप माने हैं। कुंतल, पुंज, परतीले और वृष्टि मेघ। इन्हीं के मेल से और सब असंख्य जातियाँ उत्पन्न होती हैं। चित्र नं० २ में ये चारों मूलरूप दिखलाए गए हैं।

चित्र २
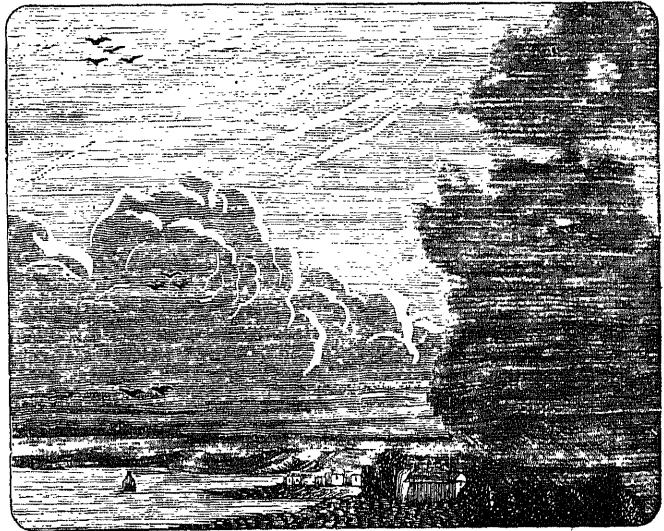
कुंतल मेघ—आकाश में बिखरे हुए इस मेघ के अंश, कुछ कुछ घूंघरवाले सुफ़ेद बालों के सदृश दीखते हैं। ये अन्य सब मेघों की अपेक्षा अधिक ऊंचे होते हैं। ५ मील से भी अधिक उंचाई पर ये देखे गये हैं। वायुमंडल की इस उंचाई पर ठंढ इतनी तीव्र होती है कि भाप जम कर जल ही नहीं वरन बर्फ़ बन जाती है। कुंतल मेघ इन्हीं अधर उड़ते हुए हिमकणों का बना हुआ होता है, क्योंकि सूर्य अथवा चन्द्र को घेरे हुए रश्मिवर्णरंजित प्रभामंडल (मँड़रे) जो कभी कभी देखे जाते हैं उनका आकार वैसा ही पाया जाता है जैसा कि हिमकणों के योग से उत्पन्न प्रभामंडलों को होना चाहिए।

पुंज मेघ—समुद्र इत्यादिक जलाशयों से जो गरम भाप उठा करती है वह ज्यों ज्यों ऊंची चढ़ती है त्यों त्यों उसे अधिकाधिक ठंढी वायु में प्रवेश करना होता है। इसके अतिरिक्त वह एक विशेष प्राकृतिक नियम के अनुसार ठंढी होती है। कुछ दूर पहुँच कर वह मेघ बन जाती और रूप में रुई की पर्वताकार ढेरियों के सदृश जान पड़ती है। ये पुंजमेघ प्रायः सब ऋतुओं में बनते और मील डेढ़ मील की उँचाई पर तैरा करते हैं। चित्र नं० २ के मध्यभाग में पुंज मेघ दिखलाये गये हैं।

परतीले मेघ—इनकी ऊँचाई और सब मेघों से कम, लगभग ३ या ४ फ़र्लांग की, होती है। इनका रूप क्षितिज के समानान्तर फैली हुई कई लम्बी चौड़ी चादरों के सदृश होता है। ये मेघ विशेषकर संध्या के समय प्रकट होते हैं और प्रातःकाल के पहिले ही प्रायः छिन्न भिन्न हो जाते हैं।

वृष्टिमेघ—यह चातकप्रिय श्यामवर्ण पयोधर अपने भार से दबता हुआ प्रायः पौन मील की उँचाई तक आकर वृष्टि से अपने को क्षीण करके मानों जगत को आत्मत्याग का सदुपदेश देता है। यह प्रायः और और मेघों के संयोग से बनता है। अपनी स्थूलता और घनत्व से प्रकाश द्वारा दुर्भेद्य होने के कारण इसका रंग काला होता है।

वर्षा—मेघों के जलकण स्थिर नहीं रहते वे आपस में टकराया करते हैं। दो दो चार चार मिल कर अपने भारीपन के कारण नीचे की ओर गिरने का प्रयत्न किया करते और गिरा भी करते हैं, किन्तु भूमि तक पहुँचने के पूर्व ही भाप बन कर फिर उड़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि नीचे की वायु बहुधा गरम, सूखी और भाप की प्यासी रहती है। कुछ समय के पश्चात् जब अनेक जलकण मिल मिल कर बड़ी शीघ्रता से बड़ी बड़ी बूंदों का रूप धरने लगते हैं तब वे भूमि तक पहुँच पाते हैं और वर्षा होने लगती है।

बर्फ़—वायुमंडल के ऊपरी भागों में जिस समय भाप मेघ बनना चाहती है उस समय यदि ठंढ अधिक हुई तो वह एकदम बर्फ़ का रूप ग्रहण कर लेती है। यह बर्फ़ हलकी, नरम, और सुफ़ेद होती है। इसके टुकड़े वायुमंडल में होकर, रुई के समान, बड़ी शान्ति से नीचे उतरते हैं। अणुवीक्षण यंत्र के द्वारा देखने से इन टुकड़ों में विविध प्रकार के, एक से एक सुन्दर, छोटे छोटे फूल दिखाई देते हैं। प्रत्येक फूल में छः दल पाए जाते हैं। सैकड़ों में से कुछ रूप चित्र नं० ३ में दिखलाये गये हैं।
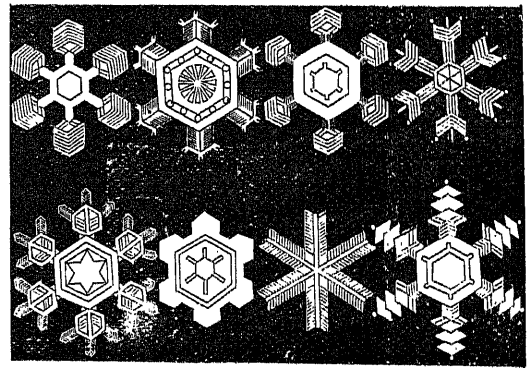
वायुमंडल में एक विशेष सीमा से अधिक उँचाई पर ठंढ के कारण भाप सदा बर्फ़ के रूप में रहती है। यह उँचाई भूमध्यरेखा पर सब से अधिक और फिर वहाँ से घटती हुई ध्रुवदेशों में समुद्र के तह से आ मिलती है। इसी कारण पृथ्वी के उष्ण कटिबंध में भी जो पर्वत इस सीमा से अधिक ऊँचे हैं उनके शिखर नित्य बर्फ़ से ढके रहते हैं। ध्रवदेशों में तो भूमि बारहों मास बर्फ़ से आच्छादित रहती है और वहां से बर्फ़ की पर्वताकार शिलाएँ कट कट कर समुद्र पर तैरती हुई बड़ी दूर दूर की सैर किया करती हैं।

ओले—वर्षा की बूंदों के जम जाने से ओले उत्पन्न होते हैं। ओलों को काटकर देखने से जान पड़ता है कि उनकी बनावट, एक के ऊपर एक, कई परतों के जमने से हुई है। ओलों से संबंध रखनेवाली, इसके अतिरिक्त, और कई बातों से उनकी उत्पत्ति के विषय में जो अनुमान किया गया है वह यह है। ऊर्ध्वगामी पवन के प्रचंड वेग से वर्षा की बूंदें उस उँचाई तक पहुँच जाती हैं जहाँ वे तुरन्त कठिन रूप धारण कर लेती हैं। किन्तु कुछ दूर नीचे आकर फिर उन्हें पवन के झकोरे में पड़कर ऊपर उठना पड़ता है। पृथ्वी पर गिरने के पूर्व ऐसे कई चक्कर बड़ी शीघ्रता के साथ उन्हें लगाने पड़ते हैं। ऊपरवाली अधिक शीतल वायु में जो बर्फ़ की परत उन पर जमती है वह नीचे की अधिक उष्ण वायु में कुछ पिघल भी जाती है, किन्तु दूसरे फेरे में पहिले से अधिक जल बर्फ़ बन कर ओलेके आकार को बढ़ाता है। इसी प्रकार, होते होते ओले पवन के वेग से बच कर भूमि पर आ गिरते हैं।

समुद्र इत्यादिक जलाशयों से जिस प्रकार भाप नित्य बना करती और वायुमंडल में प्रवेश किया करती है उसी प्रकार वायुमंडल की यह भाप उपर्युक्त कई रूपों को धारण कर अनेक क्रीड़ाएँ करती हुई, अंत में कई मार्गों से फिर उन्हीं चिरविरही जलाशयों में पहुँच जाया करती है। संसार के हित के लिए, सौर्यताप की शक्ति से यह कार्य निरंतर हुआ करता है।

पनडुब्बी नाव

[लेखक-महावीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी, एल्. टी]

अभी तक लोग यह समझते थे कि जहाज़ केवल पानी के ऊपर ही चलकर काम कर सकते हैं किंतु बड़े बड़े वैज्ञानिकों ने ऐसे जहाज़ भी बनाये हैं जो पानी में डुबकी लगाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जा सकते हैं और चाहें तो पानी के ऊपर भी तैर सकते हैं। विद्या और बुद्धि के सामने कुछ भी असम्भव नहीं है। जब बुद्धि के द्वारा मनुष्य हवाई जहाज़ बनाकर हवा में चिड़ियों की भाँति वरन उनसे भी कहीं स्वतन्त्र होकर उड़ सकता है, तो क्या पानी में जहाज़ का चलाना असम्भव है? यदि हम यह कहें कि जिस तरह हवाई जहाज़ हवा में गोता लगाते हुए स्वतन्त्रता पूर्वक इधर उधर विचरण कर सकता है उसी तरह जलीय जहाज़ जल में गोता लगाकर अपना काम कर सकता है तो इसमें कोई सन्देह न उपस्थित होना चाहिए क्योंकि दोनों बातें एक ही प्रकार की हैं। जल में गोता लगानेवाली चीज़ के ऊपर नीचे, इधर, उधर सभी ओर जल है और हवा में उड़ने वाले पदार्थों के भी ऊपर, नीचे, इधर उधर सभी ओर हवा है, इसलिए हवा में उड़ने

वाली चीज़ को यदि यह कहें कि वह हवा में गोता लगा रही है तो अनुचित नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि हवा में गोता लगाने वाले जहाज़ को यदि वे बहुत उंचाई पर न हों तो सभी देख सकते हैं किंतु पानी में गोता लगाने वाली नाव को कोई भी नहीं देख सकता। इस लिए ऐसी नावें समुद्रीय-युद्ध में पानी के भीतर छिपकर बहुत कुछ काम कर सकती हैं। आज कल युरोपीय महाभारत में ऐसे जहाज़ दोनों ओर से बहुत कुछ काम कर चुके हैं और कर रहे हैं इस लिए यह वर्णन करना कि वह कैसे काम करते हैं और पानी के भीतर उन पर रहने वाले मनुष्य कैसे साँस लेते होंगे अनुचित न होगा।

पहले पहल स्टाकहाम का निवासी नारडेन फ़ेल्ट ने एक ऐसा पन-डुब्बा जहाज़ बनाया था जो ४६ फीट लम्बा था और स्टील (इस्पात लोहा) का बना हुआ था। उसे चलाने के लिए पानी की भाप काम में लायी जाती थी; इसमें चार मल्लाह काम करते थे जो पानी के भीतर ६ घंटे तक दबायी हुई हवा के द्वारा साँस ले सकते थे। यह मल्लाहों की इच्छानुसार पानी के भोतर बाहर आ जा सकता था और इस पर से बड़े बड़े गोले शत्रुओं के जहाज़ों को नाश करने के लिए काम में लाये जाते थे।

इसके पश्चात बहुत से और अच्छे जहाज़ बनाये गये। बनावट की भिन्नता के कारण यह दो प्रकार के होते हैं। एक प्रकार के पनडुब्बे ऐसे होते हैं जैसा कोई खोखला गोला बीचो बीच काट देने से दिखाई पड़ता है और इसी वृत्ताकार खोखले में बैलेस्ट टैन्क (ballast tank) वा भारकुंड होता है जिसमें पम्प के द्वारा पानी भर देने से बोझल हो, जहाज़ पानी में डूब जाता है और पानी को निकाल देने पर उतरा आता है। दूसरे प्रकार के पनडुब्बे की बनावट साधारण जहाज़ (नाव) से मिलती जुलती है। यह दोहरे इस्पात (स्टील) का बना होता है और इन्हीं दोनों पत्तरों वा चादरों के बीच में भारकुण्ड होता है। ऐसे पनडुब्बे चलने में बहुत तेज़ होते हैं, इसलिए यही अधिकता से बनाये जाते हैं। (अपूर्ण)

वैज्ञानिकीय

वर्तमान युग में कागज का खर्च इतना बढ़ा चढ़ा है कि अमेरिका के जंगल के जंगल कागज के पीछे कटते जा रहे हैं और यह भय है कि कुछ दिनों में वृक्षों के अभाव से कहीं कागज दुष्प्राप्य न हो जाय। बहुत दिनों से वैज्ञानिक लोग ऐसे पेड़ की खोज में थे जो जल्दी उगे, जल्दी बढ़े, जिसकी खेती आसान हो। बड़े पेड़ कई बरस में तैयार होते हैं पर एक ही बार थोड़ा सा कागज देकर समाप्त हो जाते हैं। अभी हाल ही में मालूम हुआ है कि कपूर कचरी की जाति के पेड़ों से कागज की लुब्दी बहुत अच्छी बन सकती है। यह पौदा भारतीय है और यहां से ही एशिया, अफ्रिका और अमेरिका के गरम देशों में फैला है। साल में इसकी दो तीन फ़सलें काटी जा सकती हैं, बोने में ख़र्च कम होता है। एकड़ पीछे डेढ़ सौ मन से अधिक रेशे निकलते हैं जिनसे ८८ मन से अधिक लुब्दी बन सकती है। लुब्दी बनाने की रीति सीधी है। पौदा काट कर बेलनों के नीचे दबा कर सुखाया जाता है। फिर इसे पीटते हैं और बारीक करके विविध मात्रा में सोडा मिला कर आंच देते हैं और लुब्दी बन जाती है।

Miscellaneous स्फुट]

जिस प्रकार हमारे बिना मांगे इन्द्रदेव जल की वर्षा कर देते हैं और मनुष्य परिश्रम करे तो इस जल को बटोर कर खेतों की प्यास बुझा सकता है—उसी प्रकार इस विश्व के प्रजापति सूर्य्यनारायण पृथ्वी पर नित्य धूप और गरमी के रूप में अपरिमित शक्ति लगातार भेजते रहते हैं जिससे संसार का जीवन है; मनुष्य इस शक्ति के कोष से भी लाभ उठा सकता है। बहुत दिनों से वैज्ञानिक इस खोज में हैं कि धूप से अंजन चलाने का काम लें। भारत में भी पं० श्रीकृष्ण जोशी की तीव्र बुद्धि का फल 'भानुताप" का आविष्कार हुआ और सूर्य्य की गरमी से एक छोटा बैलट भी चला। परन्तु यंत्र-व्यापारियों की दृष्टि इस ओर न होने से इसके प्रचार और उन्नति की नौबत न आयी। सम्प्रति पाश्चात्यों के उद्योग से मिस्र की राजधानी काहिरा के पास एक अंजन चल रहा है जिसका विवरण हाल में ही प्रकाशित हुआ है। इसमें पांच बैलट थे जिनमें हवा के दबाव के ऊपर केवल १ से लेकर १०१ पौंड प्रतिवर्ग इंच दबाव था। इसके लिए नये प्रकार का अंजन बनाना पड़ा। पहिले पहिल १९१२ में यह अंजन जब चला तो मालूम हुआ कि पांच की जगह नव बैलट चलते तो अंजन चल जाता। अमेरिका के फ़िलाडेल्फ़िया के निकट भी इसकी परीक्षाएं हुई हैं व सफलता के लक्षण भी दीखते हैं।

* * * * *

Dr. C. A R. Campbell डा० कैम्बेल् के मतानुसार चमगादड़ मच्छरों के शत्रु हैं। उन्होंने गन्देपानी के एक छोटे से जलाशय के पास, जहां मच्छरों की वड़ी घनी बस्ती थी, चमगादड़ों का एक उपनिवेश बसाया। थोड़े ही काल में मच्छरों की बस्ती उजड़ गयी। हमारे देश मत में चमगादड़ मनहूस हैं, लोग समझते हैं कि जहां चमगादड़ घर बनाते हैं, मनुष्य उजड़ जाते हैं। इस विचार का कारण यही मालूम होता है कि चमगादड़ उजाड़ ही स्थानों में रहते हैं। परन्तु मच्छरों के हक़ में तो यह सचमुच मनहूस ठहरे। जहां जहां गन्दे पानी के गड्ढे होते, मच्छर वहीं पैदा होते हैं। इन जलों पर थोड़ा सा मिट्टी का तेल डाल देने से मच्छर के बच्चे नष्ट हो जाते हैं। जूड़ी बुख़ार का कारण मलेरिया विष सिद्ध हुआ है। इस विष को रोगी के शरीर से नीरोग शरीर में मच्छर ही पहुँचाते हैं। इसी से वैज्ञानिकों ने सिद्ध किया है कि मच्छर निर्मूल हो जायँ तो मलेरिया विष न फैलै। जो ऐसे गड्ढों के पास मच्छरों के शत्रु चमगादर ही बसा दिये जायँ तो भी मलेरिया फैलाने वाले मच्छर नष्ट हो जाँय।

* * * * *

बरसात में अलमारियों के भीतर जिल्द बँधी किताबों पर बहुधा सफेद सफेद फफूंद लग जाती है। अलमारी के एक कोने में थोड़ा सा लेवेंडर का तेल या कनाडा बलसाम रख दिया जाय तो फफूंद न लगे।

* * * * *

लोहा और इसपात को टिकाऊ करने के उपायों की हाल में अनेक परीक्षाएं हुई हैं। हवा और सील का असर पड़ते पड़ते, मोरचा लगते लगते, इनका क्षय हो जाता है। लोहा और इसपात में थोड़ी बहुत, कोयले के सिवा, और कई धातु भी मिली हुई हैं। परीक्षा इस बात की हुई कि किस धातु के किस परिमाण में मिलाने से लोहा सब से ज़्यादा टिकाऊ होगा। तांबा, चांदी, सीसा, मंगानिस, शिलाकण, संखिया, अलुमिनियम, निकिल, रांगा अलग अलग मिला मिला कर जांचा गया। इन जांचों से यह सिद्ध हुआ कि हज़ार मन लोहे में दो मन तांबा मिलाने से ऐसा पुष्ट लोहा बनता है कि मोरचा पकड़ने की शक्ति तिहाई रह जाती है और जितनी देर में तेज़ाब में और लोहा दस हिस्सा घुलेगा यह एक ही हिस्सा

घुल सकेगा। निकिल मिलाने से भी ऐसी ही पायदारी आती है, पर महँगा पड़ता है। शिला-कण मिलाने से उलटा असर होता है। हज़ार मन लोहे में तीन मन शिलाकण मिलाने से बीस गुनी तेज़ी से मोरचा लगता है। सकची (वंग) लौह-कार्य्यालय को इन परीक्षाओं से लाभ उठाना चाहिए।

* * * * *

बिजुली की रोशनी से एक प्रकार की किरणें निकलती हैं जिनका नाम अंगरेज़ी वैज्ञानिकों ने "एक्स" रक्खा है। इनके द्वारा शरीर के भीतर की हड्डी का चित्र सहज ही लिया जा सकता है। डाक्टर लोग घायलों के शरीर में इन्हीं किरणों द्वारा गोली का पता लगा लेते हैं। अब तक बड़ी चीज़ों के ही चित्र लिये जाते थे। हाल में फ्रांस के एक वैज्ञानिक 'पीरी गोबी ने' एक यंत्र बनाया है जिससे अत्यंत छोटे और सूक्ष्म पदार्थों और जीवों के चित्र भी इस किरण द्वारा बड़े करके लिये जा सकते हैं। जाव वैज्ञानिकों को चीड़ फाड़ करने पर भी जिन जीवों के भीतरी विवरण स्पष्ट नहीं होते थे अब बिना उनकी हत्या किये ही वह बातें साफ़ मालूम हो जायंगी।

* * *

पौदों में जल्दी फल लाने के लिए जो कई तरकीबें की जाती हैं, उनमें वायु द्वारा गरमी पहुँचाने की भी रीति है। हाल में एक फ्रेंच वानस्पतिक ने परीक्षा करके देखा कि साधारण गरम हवा की अपेक्षा ईथर नामक प्रसिद्ध द्रव की भाप का बहुत ज़्यादा असर होता है। उसने ६०० स्टाबरी के पौदे लिये जिन में ३०० साधारण गरम वायुमंडल में रक्खा और शेष ३०० में से १५० तो साठ घंटे और १५० अड़तालीस घंटे ईथर की भाप में रक्खे। मालूम हुआ कि ४८ और ६० घंटों में कोई विशेष अन्तर नहीं है, परंतु ईथर की भाप से बहुत ज़्यादा लाभ हुआ जैसा कि नीचे की तालिका से ज्ञात होगा--

विना ईथर के	ईथरवाले	
३३	१०७	८-जनवरी, १९१२ को कलित हुए
२९, जनवरी तक	१६, जनवरी तक	—कलियाँ सारी लग चुकीं
६, मार्च को	२१, फरवरी को	-पहले पहल फल पके
१५, एप्रिल तक	१५, मार्च तक	—अंतिम फल पके।

—Sc Am. से, शा. भार्गव

* * *

कड़कीली या भंजनशील वस्तुएं काटने में बहुधा चारों ओर चटख़ जाती हैं, पानी के भीतर ले जाकर काटें तो जिस ओर काटना चाहें उसी ओर चटख़ती हैं। काँच को गोल काटना चाहें तो साधारणतः कैंची से एक तो बहुत बल लगाना पड़ता है दूसरे जिस ओर काटना चाहते हैं उस के सिवा चारों ओर चटख़कर कांच चूर चूर हो जाता है। परंतु यही क्रिया हाथ भर पानी के नीचे सहज ही की जा सकती है। पानी का दबाव चारों ओर पाकर कांच को कैंची ऐसा काटती है जैसे बहुत भीगे या कच्चे खपरे को। इस तरह पानी के नीचे गोल काटने में कोई कठिनाई नहीं होती। यदि निशान के अनुसार काटना चाहें तो जैसा चाहें वैसा निशान हैड्रोल्फ़ोरिक एसिड से कर सकते हैं। पानी के स्थानमें यदि पारे के भीतर यह क्रिया करें तो और भी सुविधा होती है, क्योंकि पारा पानी से साढ़े तेरह गुना भारी है और उतना ही अधिक दबाव भी डालता है। जितना ही अधिक अभ्यास होगा उतनी ही अधिक इसमें सफलता भी होगी।

—दे० ना० पाल

* * *

पाठकों को मालूम होगा कि चौदह बरस हुए जब फ्रांसकी कुरी-महोदया ने खनिज पदार्थों से

रेडियम नाम का एक ऐसा तत्त्व ढूँढ़ निकाला जो अपनी ही ज्योति से अँधेरे में चमकता है और सदैव गरम बना रहता है। तब से इसके विषय में परीक्षा और खोज जारी है, जिससे वैज्ञानिकों को सैकड़ों नयी बातें मालूम हुई हैं। इसकी ज्योति और गरमी का कारण यह मालूम हुआ है कि रेडियम के परमाणुओं से निरंतर टूट टूट कर असंख्य विद्युत्कण निकलते आते हैं और इस विकृति से रेडियम से हलके हलके नये और पुराने तत्त्व बनते जाते हैं। रामज़े ने तांबा सरीखी धातु और हीलियम, नीयन सरीखी गैस भी रेडियम से बनते पाये हैं। सब से पिछली खोज से अनुमान होता है कि नीयन नामक तत्त्व-गैस आक्सिजन और हीलियम नामक तत्त्व-गैसों के 'प्राकृतिक' संयोग से बना है। इसे हम रासायनिक संयोग नहीं कहते क्योंकि रासायनिक संयोग से तत्त्व नहीं बनते। हाल में एक और विलक्षण बात प्रकाशित हुई है। क्रुक्स नामक एक प्रख्यात वैज्ञानिकने बारह बरस हुए एक हीरे को रेडियम के साथ कई महीने रक्खा। फल यह हुआ कि हीरे से भी वही ज्योति निकलने लगी। तब से वह हीरा रेडियम के पास कभी न रहा परंतु आज तक उससे वह ज्योति निकलती ही है। तेज़ से तेज़ तेज़ाब में उबालने पर भी रेडियम की दी हुई वह ज्योति क्षीण नहीं हुई। यद्यपि अभी सोना नहीं बना, तथापि पारस के कई गुण रेडियम में मिलते हैं!

* * *

ओ. एम्. शेड का कथन है [*J. Ind. Eng. Chem.*, 1914, 6, 600-664] कि यद्यपि मिट्टी और वनस्पतियों में सभी जगह थोड़ा बहुत मंगनीस मिलता है तथापि यह देखा गया है कि कहीं मंगनीस (MnO) बहुत ज्यादा है और कहीं अत्यन्त कम। ऊपरी मिट्टी में हज़ार पीछे ५ हिस्से से लेकर ३३१ हिस्से तक पाया जाता है और भीतरी तहों में २ से लेकर २६४ हिस्से तक। परन्तु साधारणतः ज़्यादा वहां ही मिलता है जहाँ खेती नहीं होती खेती फ़ासफ़रस की अपेक्षा मंगनीस अधिक खाती है, इसलिए (Manganese Sulphate) मंगनीस सलफेट का प्रयोग खाद में उपकारी है परन्तु यह भी ध्यान रहे कि इसका प्रयोग बहुत थोड़े परिमाण में करना चाहिये, क्योंकि अधिक परिमाण में हानि कर होता है। ठीक परिमाण प्रत्येक खेत की परीक्षा से मालूम हो सकता है। [*U. S. Dep (Ag. Bull.* No. 42, 1914] पांच सेर पानी में १ रत्ती मंगनीस सलफ़ेट मिलाने से उपयुक्त घोल बन जाता है। इस प्रकार मंगनीस का प्रयोग उपजाऊ भूमि में गेहूँ के लिए निरर्थक पाया गया है किन्तु (Sandy loam) बलुही मिट्टी में उपय्युक्त घोल गेहूं की उपज बढ़ाता है। रा. गौ.

* * * *

ईथर नामका अत्यन्त शीघ्र उड़ जानेवाला एक द्रव है जो अंग्रेज़ी दवाखानों में मिल सकता है। इसके शीघ्र हवा में उड़ जाने से ईथर का बरतन और आस पास की चीज़ें अत्यन्त ठंढी हो जाती हैं। ईथर लौ के पास होते ही शीघ्र जल उठता है, बल्कि बड़े वेग से जलकर उड़ जाता है। साधारणतः ईथर उड़ता ही रहता है और थोड़ी सी भी गरमी पाकर खौलने लगता है। इतनी तेज़ी होते भी इसमें एक विचित्रता है। अँधेरे कमरे में गरम बालू पर छिछले बरतन में रख कर ईथर को खौला कर उड़ाइये, तो एक हलकी श्याम वर्ण की अग्नि शिखा निकलती है, पर ईथर भक से जल नहीं उठता। यह लौ भी उजाले में नहीं दीखती। हाथ इसमें डालने से नहीं जलता वरन लौ ठंढी मालूम होती है। [ईथर में क्लोरोफ़ार्म की नाईं बेसुध कर देने के भी गुण हैं, अतः इसे अधिक सूंघने से बचना चाहिए] —रा. गौ.

* * * *

सड़ने गलने जलने बलने से पदार्थों के रूप और गुण बदल जाते हैं परन्तु प्रकृति अक्षरा है, अर्थात् नष्ट नहीं होती, इसका प्रमाण इस बात में है कि पदार्थ की मात्रा ज्यों की त्यों बनी रहती है। दो पदार्थों को तोलकर इस प्रकार रासायनिक संयोग कराइये कि रूप और गुण बदल जायं। यदि गिरने, बरतन में लगने आदि छीजनों का पूरा हिसाब कर लिया जाय तो संयुक्त पदार्थ की मात्रा उन दोनों पदार्थों की मात्रा के योग के बराबर होगी। हाल में [*Chem. Weekbld*, 1914 11, 822-826] W. P. Jorissen योरिस्सनने प्रकाशित किया है कि इस नियम की जांच १६१३ ई० में (Follinus) फोलिनस ने यों की, कि तोले हुए पारे को बन्द बरतन में गंधक के साथ तपाया। जो रस बना उसे तोल लिया। फिर आंच देकर अरक खींचने की रीति पर उससे ही पारा निकाल लिया। तोलने पर पारा ठीक उतना ही उतरा जितना पहले लिया गया था।

* * *

E. V McCollum तथा M. Davirs नामके दो वैज्ञानिकों ने रासायनिक प्रक्रिया से घी के उस तत्त्वको निकाल लिया [*J. Biol.* Chem, 1914, 19, 245-255] जिससे खाने वाले का शरीर और बल बढ़ता है। जैतून के तेल में, जिसमें शरीर और बल बढ़ाने का गुण नहीं है, यह तत्त्व मिलाया गया और चूहे आदि जानवरों पर जांच की गयी। मालूम हुआ कि उस तत्त्व को मिलाने से जैतून के तेल में भी पौष्टिक गुण आ गया। आजकल शुद्ध घी मिलना असंभव सा हो गया है और यह कठिनाई नित्य बढ़ती ही दीखती है, फल प्रत्यक्ष है। घी के नाम से हम लोग ऐसे पदार्थ पाते हैं जिनमें पौष्टिक गुण होने के बदले बहुधा अनेक अवगुण हैं। संभव है कि भावी वैज्ञानिक घी के पौष्टिक तत्त्व को किसी कित्रिम रीति से बनाने का उपाय भी निकालें।

* * * *

अमेरिका के एक वैज्ञानिक ने एक ऐसी हिकमत निकाली कि बूढ़े घोड़ों से भी काम लिया जा सकता है। उसने चक्की के रूप में बिजली का यंत्र बनाया है जिसको तीन घंटा घुमाने से सात कमरोंवाले घर में एक सप्ताह भर रोशनी देने के लिए काफ़ी बिजली पैदा हो जाती है। इस यंत्र में, यंत्रशास्त्र की माप से १ घोड़े का बल लगता; उसने यंत्र में सच्चा घोड़ा लगा कर काम निकाला और इसलिए कि घोड़ा रुक न जाय, उसने इस प्रकार का एक कोड़ा उस यंत्र में लगाया कि घोड़ा ज्योंहीं रुके उस पर कोड़ा लगे। कोड़ा खाकर घोड़ा समझ लेता है कि मुझे चलते ही रहना चाहिए अगर घोड़े ने कोड़े की न सुनी और खड़ा रहा तो घंटी बजने लगती है, जिससे मालिक को घोड़े के खड़े हो रहने का हाल मिल जाता है और वह आकर उसे फिर चलाता है।

* * * *

नरम लोहे में सैकड़ा पीछे एक हिस्सा कोयला मिला देने से और इसपात पर पानी चढ़ा देने से इतना कठोर हो जाता है कि हीरा की नाईं कांच को काट सकता है। यह एक अद्भुत बात है। इस बात की जितनी ही खोज होती है उतना ही निश्चय होता जाता है कि लोहा और कोयले के संयोग में कोई असाधारण परिवर्त्तन हो जाता है। सर राबर्ट हैडफ़ील्ड ने फ़ैरडे सोसैटी में व्याख्यान देते हुए हाल में ही प्रकट किया है कि उनका तीन हज़ार रुपये का इनाम उसके लिए है जो फ़रवरी, १६१६, तक इस विषय में सब से अधिक महत्व की बातें खोज निकाले। —रा. गौ.

परिषद क्या कर रही है ?

परिषद ने साहित्य के वैज्ञानिक अङ्गकी पूर्त्तिके लिए पहले पहल प्रारम्भिक पुस्तकों की रचना का काम अपने हाथ में लिया है। और उसके कई सदस्य रसायन भौतिक तथा जीव-विज्ञान पर छोटी पुस्तकें लिख रहे हैं और हमारे सौभाग्य से इस कार्य्य में योग देने के लिए विद्यालयों के उन विद्वान अध्यापकों ने, जो हमारी प्रान्तीय भाषा में ग्रन्थ लिख सकते हैं, सूचना दी है। परिषद की कार्य्यकारिणी समिति के विषयानुसार छः विभाग भी किये गये हैं जिनमें ग्रन्थ रचना-कार्य्य के अतिरिक्त वैज्ञानिक परिभाषा पर भी विचार होता है। कुछ परिभाषा सम्मेलन-पत्रिका में छप भी चुकी है। अभी अर्थाभावके कारण बाहर (सतनाके सिवाय) व्याख्यानादि का प्रबन्ध नहीं हुआ है पर प्रयाग में १५ और सतना में ४ व्याख्यान अब तक हो चुके हैं और प्रति मास एक सुबोध व्याख्यान का प्रयाग में प्रबन्ध हो गया है। इनमें यह विशेषता है कि सभी प्रयोग प्रत्यक्ष दिखाये जाते हैं। सभ्यों और परिसभ्यों की संख्या अब अढ़ाई सौ के लगभग है, पर्य्याप्त धन होने पर स्थान स्थान में परिषदकी शाखाएं बनेंगी और उनमें भी व्याख्यानादि का प्रबन्ध किया जायगा। आशा की जाती है कि जहां तक सरस्वतीभक्तों का कर्तव्य है वहाँ तक इस कार्य्य का सम्पादन समुचित रीति से होगा, परन्तु सरस्वती-सेवकों के उत्साह-मात्र से ही इस कार्य्य का चल निकलना कठिन ही नहीं प्रत्युत असम्भव है। जितने काम हैं सब में धन की आवश्यकता होती है और आपकी विज्ञान-परिषद भी इस व्यापक नियमका अपवाद नहीं है।

जो पुस्तकें लिखी जा रही हैं उनके प्रकाशित करने के लिए भी धन की आवश्यकता है। और बिना सहायता के यह काम चल नहीं सकता। अतः सर्वसाधारण से हमारी प्रार्थना है कि परिषद की सहायता के लिए अपनी अपनी जेब में हाथ डालें और अन्य आवश्यकताओं की भाँति इस दान को भी आवश्यक समझें।

परिषद की सहायता कैसे हो सकती है ?

परिषद को सम्प्रति धन का अभाव है और इस अभाव को सहृदय साहित्यानुरागी कई प्रकार से पूर्ण कर सकते हैं। (१) एक तो स्वयं इस परिषद के सभ्य वा परिसभ्य बनें, एवं अपने मित्रों को बनावें। सभ्य वा परिसभ्य होने के लिए हमारे उद्देश्यों से सहनुभूति-मात्र चाहिए। किसी के सदस्य चुने जाने में कोई नियम अभी बाधक नहीं है। इस काम में योग देना मानों विज्ञान साहित्य-मन्दिर में स्तम्भरूप होना है। (२) दूसरा उपाय यह है कि हमारे देश के भाग्यवान धनी भाषानुरागी जिस तरह से अपनी वर्द्धमान सम्पत्ति से उदारता-पूर्वक और और कामों में सहायता देते हैं, इस काम में भी खुले हाथों दान करें। इस धन से हम प्रयोगशाला स्थापित करेंगे, और वैज्ञानिक व्याख्यानों को सर्वत्र सुलभ कर देने का प्रयत्न करेंगे। (३) तीसरा उपाय यह है कि हमारी ग्रंथमाला और मासिक पत्र के १००० वा अधिक स्थायी ग्राहक बन जायँ।

देखें किस किस के कानों में हमारे यह शब्द पड़ते हैं और कौन कौन भाषाभक्त हमारी सहायता के लिए खड़े होते हैं। पत्रव्यवहार मंत्री विज्ञान परिषद् प्रयाग से कीजिए। परिसभ्य होने का चन्दा ३) भेजने पर नियमादि आप ही भेजे जाते हैं। परन्तु इससे पहले यदि समस्त नियमों को जानना चाहें तो)॥ का टिकट भेजकर नियमावली मँगाइये।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग १ { वृष, सम्वत् १९७२। मई, सन् १९१५। { संख्या २

मंगलाचरण

जिसने सागर की तरंग पर रंग जमाया
आंधी, पानी, अंधियारी पर तंग चढ़ाया
बिजली पर भी विकट मोहनी मंत्र चलाया
किया निपट परतंत्र, स्वर्ग-संसर्ग छुड़ाया उस
विद्या-बुद्धि-विलास का जग में जय जय कार हो
उस वर विज्ञान-विकास का घर घर में संचार हो

१७. ४. १५. —श्रीधर पाठक

हिंदी और वैज्ञानिक परिभाषा

[ले० जगदीश सहाय माथुर, बी. ए., एल्-एल्. बी.]

हर भाषा की उन्नति और वृद्धि का अनुमान उसकी शब्द शक्ति और शब्द भांडार से होता है। हिंदी भाषा और साहित्य पर विचार करते समय हमको एक ऐसी बड़ी विचित्रता और कठिनाई दिखाई पड़ती है जिसका भली प्रकार निर्णय करना हिंदी भाषा के प्रत्येक प्रेमी का एक महान कर्तव्य है।

वैज्ञानिक शब्दों के बारे में हमारी नीति अभी तक ठीक ठीक स्थिर नहीं हुई है और अब उसके स्थिर करने का समय आ गया है। काशी नागरी प्रचारिणीसभा ने जो बहुत बड़े व्यय, श्रम और विद्वानों की सम्मति और सहायता से Hindi Scientific glossary नामक कोश लिखा है उसके लिये यद्यपि हमें उक्त सभा को धन्यवाद देना उचित है कि उन्होंने इस कठिनाई पर समय से पहले ही विचार कर लिया और बहुत अच्छे सिद्धान्त पर इस कार्य्य को चला कर योग्यता के साथ पूरा किया, हिंदी साहित्य का फलतः एक बड़ा उपकार किया, परंतु हमारी सम्मति में इस कोश के लिये यह नहीं कहा जा सकता कि यह इस विषय का एक अन्तिम प्रामाएय ग्रंथ है और अब न इस पर कुछ लिखा जा सकता है न कुछ लिखे जाने की आवश्यकता है। हमारा स्वकीय विचार तो यही है कि नागरी प्रचारिणी सभा की यह

चाल ही उलटी थी। क्योंकि प्राकृतिक नियम यह है, कि साहित्य के पीछे कोश ग्रंथ बना करते हैं, कभी भाषा से पहले कोश नहीं बनाये गये, केवल कृत्रिम भाषाओं [जैसे Volapuk] में ऐसा हुआ करता है; और उक्त (कोश) Glossary का बनाया जाना मानों इस बात को मान लेना है कि हिंदी भाषा और साहित्य सारी कृत्रिम काररवाई है। नियमानुसार हिंदी भाषा में भी पहले वैज्ञानिक लेख लिखे जाने चाहिए थे तब कोश पीछे बनाया जाता। यदि हिन्दी साहित्य जाननेवाले विद्वान एक एक भी पुस्तक विज्ञान विषयक लिखते और अपनी ही बुद्धि से वैज्ञानिक शब्दों के लिये उपयुक्त शब्द काम में लाते तो हिंदी साहित्य का भांडार बहुत कुछ भर जाता और वैज्ञानिक शब्द भी भाषा में स्वयम् आ मिलते परन्तु Hindi Scientific Glossary के छपने से बहुत से लोगों के चित्त में तो भ्रम हो जाता है, उसको पढ़े और उसकी रचना को देखे विना ही लोगों के दिलों पर उसके नाम मात्र से यह खयाल जम जाता है कि उसमें सारे वैज्ञानिक शब्दों और परिभाषाओं के लिये बड़े बड़े कठिन संस्कृत शब्द तजवीज़ किये गये हैं, नहीं तो यह उलटी चाल क्यों चली जाती। यदि Glossary को देखा जाय और ध्यान दिया जाय तो यह भ्रम जाता रहता है पर उपर्युक्त पहला भ्रम Glossary को देखने की ही आज्ञा बहुतों को नहीं देता और लोगों के दिलों में यह बात समा जाने से, कि Glossary में अज्ञात शब्द भरे पड़े होंगे और यदि हिंदी में विज्ञान की पुस्तक लिखी जाय तो उन्हीं का प्रयोग करना आवश्यक होगा, न तो Glossary देखी जाती है न सायंस की पुस्तकें ही लिखी जाती हैं।

नागरी प्रचारिणी सभा ने यद्यपि मान लिया है कि यह चाल उलटी चली गयी परन्तु अपनी उलटी चाल को समर्थन करने के लिये [to defend their action] इस Glossary की भूमिका में जो उसके योग्य सम्पादक और सभा के आनरेरी सेक्रेटरी बाबू श्यामसुन्दर दास बी. ए. की लेखनी से अंगरेजी में लिखी गयी है [इसका हमें शोक है कि यह हिंदी में नहीं लिखी गयी] लिखा है—

"Patanjali says in the Mahabhashya: 'No one goes to the house of the grammarian and says 'Make words, I will use them.' " But the present needs of India compel the Indians to falsify the statement of their much respected sage. The literary public has now come to the Nagari Pracharini Sabha and has said : 'Make words, we will use them to revive and enrich our moribund and poor vernacular literature and make it powerful for the service of the Indian people by translations, reproductions and adaptations from the valuable works and ideas of the rising Western nations. This Glossary is the result. Some have criticised this action of the Sabha rather adversely. They say that we were practically placing the cart before the horse by beginning at the wrong end. True it is that a language cannot be created. It creates itself. But we had to assimilate and bring into our language all the scientific ideas of the west and we could not very well begin where they began in the history of their scientific literature. They built it up by slow degrees and if we were to follow the same process we should always be lagging centuries behind." इसका सरलार्थ यह है--

" पतञ्जलि ने महाभाष्य में कहा है--"कोई मनुष्य वैयाकरण के घर जाकर यह नहीं कहता कि 'आप शब्द गढ़ दें, मैं उनको काम में लाऊँगा'--पर हिंदुस्तान की वर्तमान ज़रूरतें हिंदुस्तानियों को अपने बड़े पूज्य ऋषि के वाक्य के झुटलाने को बाध्य करती हैं। साहित्य

सम्बन्धिनी जानता सम्प्रति नागरी प्रचारिणी सभा के पास आयी और कहा 'शब्द बनाओ— हम उनको उन्नति शील पश्चिमीय जातियों की अमूल्य पुस्तकों और विचारों के उलथा अनुवाद और परिग्रहण द्वारा अपने मृत-प्राय और कङ्गाल देशीय साहित्य को सजीव समृद्धिशाली बनाने और भारतवासियों की सेवा करने के लिये उसे सबल करने के काम में लावेंगे' यह कोश इसीका प्रतिफल है। बहुतों ने सभा के इस कार्य्य की प्रतिकूल-आलोचना की है; वह कहते हैं कि 'तुमने अयथार्थ स्थान से कार्य्य को आरंभ करके गाड़ी के पीछे घोड़ा जोता है'—यह सत्य है कि भाषा बनायी नहीं जा सकती, किन्तु स्वयम् बनती है परन्तु हमें तो पश्चिम के सारे वैज्ञानिक विचारों को अपनी भाषा में लाकर अपनाने की आवश्यकता थी, और इसका प्रारंभ हम उस जगह से नहीं कर सकते थे जहाँ से कि पाश्चात्यों ने अपने वैज्ञानिक साहित्य के इतिहास के अनुसार प्रारंभ किया है। उन्होंने उसे धीरे धीरे निर्म्माण किया है। यदि हम उसी प्रथा का अनुकरण करेंगे तो सदा उनसे शताब्दियों पीछे ही घसिटते रहेंगे।"

महर्षि पतञ्जलि को झुटलाये और गाड़ी को घोड़े के आगे धरे बिना भी हम हिंदी-वैज्ञानिक साहित्य को बहुत कुछ उन्नत कर सकते हैं और भाषा के स्वतः निर्म्माण में भली भाँति मदद दे सकते हैं। कोश के प्रकाशन तक सायंस के विद्वानों को चुपचाप बैठे रहने की आवश्यकता न थी, यह हम इस निबंध में ही बतलाने का प्रयत्न करेंगे। परन्तु मुख्य प्रयोजन इस निबंध के लिखने का यह है कि हम विचारें कि हमारी नीति वैज्ञानिक शब्दों के सम्बन्ध में क्या होनी चाहिये।

स्पष्ट है कि तीन रास्ते हमारे सामने हैं।

(१) हर अङ्गरेजी वैज्ञानिक परिभाषा के लिये तदनुसार संस्कृत शब्द बनाना।

(२) अङ्गरेजी शब्दों को ज्यों का त्यों हिंदी में ले लेना।

(३) विदेशी शब्दों को केवल सुहावना रूप देकर अपने काम में लाना; जैसे नेत्रजन (Nitrogen) ब्रम (Broin)।

इन तीनों में कौन सा ढंग अच्छा है? इसी बात पर हम विचार करना चाहते हैं।

सब से पहले हम अन्तिम प्रथा को निन्द्य मानकर उसको अपने विचार से अलग कर देना चाहते हैं—क्योंकि हमें कोई भी भलाई इसमें नहीं दीखती, यह शब्दों की सूरत सुधारना नहीं है किन्तु सूरत बिगाड़ना है। इन शब्दों को अपभ्रंश कहते हैं। यह अपभ्रंश शब्द न तो अङ्गरेजी हैं न हिंदी और न यही बात है कि इनके याद रखने में ही सुगमता हो, न यह अपने भावार्थ के ही समझाने में समर्थ हैं फिर क्या कारण है कि हम मूल शब्दों को बिगाड़ कर एक ऊट-पटांग रूप बनाएं।

हमारे इस प्रश्न के उत्तर में बहुत से लोग ऐसा कहेंगे कि प्राचीन काल में भी जब कभी दूसरी भाषा से अनुवाद करने की आवश्यकता हुई है तो उस भाषा के शब्दों को ही सूरत बदल कर व्यवहार में ले लिया गया है। इस प्रकार के हर शब्द के देखने से ही यह विदित हो सकता है कि वह अन्य भाषा से कुछ परिवर्तन के साथ ग्रहण किया गया है और इससे अनुवाद कर्त्ताओं की मूल भाषाओं के प्रति कृतज्ञता भी विदित होती है। अतः जब पहले यह बात सब को स्वीकृत हुई है तो अब उसीको बुरा क्यों समझा और कहा जाय और क्यों न इन प्राचीन विद्वानों के प्रदर्शित पथ पर चला जाय।

इसका उत्तर हम यह देते हैं कि यह ठीक है कि अन्य भाषाओं के अनुवाद करने में ऐसे

पारिभाषिक शब्दों के स्थान में जिनके लिये हमारी भाषा में कोई शब्द नहीं है प्रायः वही शब्द ग्रहण करना चाहिये, यह हमारा मूल सिद्धांत है और इसको हम आगे यथाशक्ति पुष्ट करेंगे। हमारी तो जो कुछ भी शंका है वह यह है कि मूल शब्दों को बिगाड़ा क्यों जाय ठीक उसी रूप में उनको काम में क्यों न लाया जाय? यह ठीक है कि पुराने समय में विद्वानों ने रूपों को बदला और बदल कर कुछ और का और ही कर दिया परन्तु अब हमको यह देखना है कि उन्होंने ऐसा क्यों किया; ऐसा करना उनको किसी कारण से आवश्यक था और ऐसा किये बिना उनका काम नहीं चल सकता था अथवा वह उनकी कोई सनक थी कि जिस शब्द को लिया बिगाड़ दिया। इसमें उनको क्यों आनंद आता था, क्या वह यह नहीं समझते थे कि हम एक अच्छे सार्थक शब्द को अपने काम के लिये बिगाड़ कर दूसरा बड़ा भोंडा रूप दे रहे हैं। हमारी समझ में यह शब्दों का रूप बदल देना कुछ उनकी मूर्खता थी सनक नहीं थी; किन्तु उनको ऐसा करना पड़ा ऐसा किये बिना उनको अनुवाद करने और उन शब्दों को अपनी भाषा के साथ मिलाने में कठिनाई होती या यों कहा जावे कि यह असंभव था। प्राचीन भाषाओं के व्याकरण उनकी विभक्तियाँ और दूसरे रूप ऐसे थे और इस तरह से बने थे कि यदि शब्दों का रूप एक ख़ास ढांचे का न हो तो उनके दूसरे रूप नहीं बन सकते थे। फाइलोलोजी (philology) के जाननेवाले बताते हैं कि पुरानी और वर्त्तमान भाषाओं में क्या अन्तर है और साधारण मनुष्य भी भली भांति समझ सकते हैं कि वर्त्तमान भाषाओं के रूप पुरानी भाषा की तरह ख़ास ढांचे के होने ज़रूरी नहीं हैं। लेटिन और ग्रीक का व्याकरण अँगरेजी से, अरबी का फारसी से और संस्कृत का हिंदी से मिलाकर देखा जाय तो मालूम होगा कि विभक्तियों की संख्या और रूप कैसे बदल गये और कम हो गये हैं। ७ या ८ विभक्तियों के स्थान में अब केवल ३ हैं अर्थात् प्रथमा द्वितीया और षष्ठी; इनमें भी प्रथमा और द्वितीया के रूपों में तो वास्तव में कोई भेद है ही नहीं और षष्ठी का भी कोई विशेष रूप नहीं है; "का" या "की" उपसर्ग के लगाने से यह रूप बन जाता है। इन उपसर्गों की बाहुल्यता से विभक्तियों और उनके रूपों में कमी हो गयी है। इस विषय को बढ़ाने की यहाँ पर न तो आवश्यकता है न समय वा स्थान है, केवल हम इतना बतलाना चाहते हैं कि ऊपर लिखे कारणों से हर विदेशी शब्द को काम में लाने के लिये प्राचीन भाषाओं में जितनी इस बात की ज़रूरत थी कि उन शब्दों का अन्तिम रूप या सारा रूप एक सा ही हो वैसा वर्त्तमान भाषाओं में नहीं है। इसका उदाहरण नीचे लिखते हैं—

(१) लेटिन भाषा में विभक्तियों के रूपों के ५ गण हैं, यदि एकारान्त शब्द है तो उसकी प्रथमा के बहुवचन का रूप ए होगा 'अस' से जो शब्द अन्त होते हैं उनका बहुवचन ए से होगा, इत्यादि; पर यदि इन पांच गणों के रूपों से किसी अतिरिक्त रूप का शब्द होगा तो लेटिन भाषा में उनकी विभक्तियों के रूप नहीं बन सकेंगे, अतः इन शब्दों के रूपों के लिये लेटिन लेखकों को शब्द का रूप बदल कर उन पांचों गणों में से किसी न किसी एक गण में लाना होगा।

अब अँगरेजी भाषा को देखिये कि बहुवचन केवल s या es लगाने से बन जाता है गण भेद का कोई झगड़ा नहीं है इस लिये अंगरेजी लेखकों को अन्य भाषा के शब्दों को बदलने की न कुछ ज़रूरत है न वह बदलते हैं।

(२) अरबी में हर शब्द और उसके विशेष रूप के लिये वज़न हुआ करता है जैसे شجر فعل

एक वज़न के हैं उनके वज़न के अनुसार बहुवचन के रूप का वज़न اشجار افعال होता है। यदि अरबी लिखते समय कोई शब्द अन्य भाषा का ऐसा आवे कि उसका वज़न न मिले तो बस उसका लिखना अरबी में उसके रूप बदले बिना असंभव है लेकिन फ़ारसी में वज़न का कुछ बखेड़ा नहीं है वहाँ ان आँ को चाहे जिस शब्द के आगे बढ़ा देने से बहुवचन बन जाता है।

एक दूसरा कारण शब्दों के रूप बदलने का यह है कि बहुत सी भाषाओं में कोई कोई अक्षर अथवा उसका उच्चारण ही नहीं है जैसे अरबी में प फ ट और अँगरेज़ी लेटिन में त द ع ق तो इन अक्षरों के स्थान में दूसरे जो बहुत ही मिलते जुलते हैं काम में लाये जाते हैं और शब्द का रूप बदल जाता है।

इन दो कारणों से विशेषतः शब्दों के रूप बदल गये हैं।

उदाहरण—

संस्कृत	अन्य भाषाएं	
त्रिफला	इतरीफ़ल	अरबी
पिप्पल	फ़िलफ़िल	अरबी
चंद्रगुप्त	Sandrocottus [सेंड्रोकोटस]	ग्रीक

ऐसा आवश्यक परिवर्त्तन संस्कृत में भी किया गया था जब अन्य भाषाओं से अनुवाद किया गया; उनके उदाहरण देने की जरूरत नहीं है, पर यह बताने के लिये कि प्राचीन अनुवाद कर्त्ता इस परिवर्त्तन को जहाँ तक हो सकता था कम करते थे और उन्हीं शब्दों को बर्तते थे, हम एक बहुत मोटा उदाहरण देना चाहते हैं और वह रमल शास्त्र में मिलता है। रमल शब्द स्वयम् अरबी का है और यह शास्त्र भी संस्कृत में अरबी से ही अनुवाद द्वारा ग्रहण किया गया है, इसके बहुत से शब्द तो ज्यों के त्यों संस्कृत में लिये गये और कुछ थोड़े से परिवर्तन के साथ। उदाहरण

इत्तसाल (اتصال) कब्ज़ुद्दाखिल (قبض الداخل) इससे सिद्ध हुआ कि—

(१) शब्दों का बदलना बिना ज़रूरत के नहीं होना चाहिये।

(२) यदि परिवर्तन किया भी जाय तो वर्णमाला और व्याकरण के कारण से जितनी आवश्यकता हो उतना ही किया जाय विशेष नहीं।

अब यदि हम इस दृष्टि से हिंदी भाषा को देखें तो हमको विदित होगा कि रूप परिवर्तन की पहले तो जरूरत ही नहीं है और यदि कहीं है भी तो बहुत ही थोड़ी। हिंदी व्याकरण तो कुछ व्याधिकरण है ही नहीं, वर्णमाला भी हिंदी की बहुत पूर्ण है केवल किसी किसी अक्षर का अभाव है जैसे अँगरेज़ी का Z (ज़ेड) अरबी का ق (क़ाफ़) ف (फ़े) इनमें भी ज क फ के नीचे बिंदी लगाने से वह कमी पूरी हो जाती है तो निस्संदेह हमको शब्दों के रूप बिगाड़ने की कदापि ज़रूरत नहीं है।

अब केवल यह देखना रहा कि हमको विज्ञान शास्त्र के लिये अपने जाने पहचाने और ललित संस्कृत शब्दों का उपयोग करना चाहिये या नये अजीब और दांत तोड़नेवाले अँगरेज़ी शब्दों का? संस्कृत शब्दों के प्रयोग में दो एक लाभ बहुत बड़े हैं एक तो उन में से बहुत से हमारे जाने हुए शब्द हैं जिनके उच्चारण करने और याद रखने में हमको बहुत सुगमता है। दूसरे उन शब्दों से कुछ उनके भावार्थ की भी सूचना होती है पर यह भी सर्वथा असंभव है कि हम केवल संस्कृत शब्द ही वर्तें और अँगरेज़ी भाषा के शब्दों को बिलकुल त्याग ही दें। हमारी समझ में यदि प्रामाणिक संस्कृत शब्द सरल और सुगमता से न मिलें तो ऐसे स्थान में अंगरेज़ी शब्द ही ग्रहण करना ठीक है।

पहली बात तो यह है कि बहुत से अँगरेज़ी शब्दों का तो अब और पहले से भी प्रचार ऐसा है कि लोग उनको अच्छी तरह से जान गये हैं उनके स्थान में नये संस्कृत शब्द बनाना केवल व्यर्थ ही नहीं किन्तु हानिकारक भी है; उनसे लोगों के जाने हुए विचारों में भ्रम पड़ जायगा। नये शब्दों को फिर से याद करने में इससे कम कठिनाई न होगी जितनी नये अंगरेज़ी शब्द के याद रखने में होती है क्योंकि संस्कृत शब्द भी चाहे जाने पहचाने हुए ही क्यों न हों पर यह समझना कि इस विशेष विद्या में उससे कौन सा भावार्थ समझना चाहिये उतने ही परिश्रम और ध्यान से हो सकता है जितना कि अंगरेज़ी शब्द के ज्ञान के लिये जरूरी है।

नये शब्द गढ़ना एक ऐसी भाषा से जो अब प्रचलित नहीं है— जिस के थोड़े से बोध के लिये भी हम को इतना परिश्रम करना पड़ता है कि जितने परिश्रम से अँगरेज़ी का उससे कहीं ज़्यादा ज्ञान हो सकता है—और जिस भाषा का व्याकरण (खास कर उपपद प्रक्रिया ताच्छीलिक प्रक्रिया इत्यादि विषय जिन के द्वारा नये शब्द बन सकते हैं) ऐसा कठिन और अगम्य है कि बड़े बड़े विद्वान चकित हो जाते हैं—ऐसे शब्द गढ़ना जो उन वस्तुओं और क्रियाओं के लिये ठीक हों जो बिलकुल नयी और विचित्र हैं जिनका ज्ञान स्वप्न में भी संस्कृत लेखकों को नहीं था कुछ सरल बात नहीं है। फिर कोई भी हो जो आधुनिक और प्राचीन संस्कृत विद्या को पूरे तौर पर नहीं जानता उपयुक्त (Appropriate) शब्द नहीं गढ़ सकता। फिर भी केवल नवीन शब्दों के ढूंढने में उन को जितनी सरपच्ची करना और समय बिगाड़ना पड़ेगा यदि उस के बदले अगरेज़ी शब्द का प्रयोग करें और वहाँ ही या टिप्पणी में स्पष्ट कर दें कि यह किस वस्तु या क्रिया का द्योतक है तो जो श्रम और समय इस से बचेगा उसको वह ऐसे दूसरे लेख या पुस्तक लिखने में लगा सकते हैं जो बहुत ही उपयोगी हो और जिससे हिंदी साहित्य बढ़े। नये और यथोचित शब्द बनाने में कितना परिश्रम और समय की आवश्यकता है इसका अनुमान (Hindi Scien-tific Glossary) को सरसरी तौर पर देखने से हो सकता है—देखो केवल ७ शास्त्रों के शब्दों में ही कितने विद्वानों का कितना अमूल्य समय लगा।

शायद ऐसा कहा जाय कि जब नागरी-प्रचारिणी सभा ने एक सायंस का कोश बना ही दिया है तो फिर यह कठिनाई वास्तविक नहीं रही—केवल विचार ही में इस की स्थिति है। लेकिन देखा जाय तो यह कोश अधूरा है—सब शास्त्र उसमें नहीं आये केवल ७ शास्त्र आये हैं--उनके भी पूरे सब शब्द नहीं हैं--तो अन्य शास्त्रों और परिभाषाओं के लिये शब्द कहाँ से मिलेंगे। इसी तरह आजकल विज्ञान शास्त्र में प्रति दिन नयी बातें निकलती हैं और नये नाम रक्खे जाते हैं—अभी थोड़े दिन हुए हमने (F-Rays, optophone के नाम चुने हैं--तो प्रतिदिन हमारे लिये कौन कोश बनाने बैठेगा। यदि यह कहा जाय कि केवल उन्हीं लोगों को इन विषयों पर लेख लिखने चाहियें जो संस्कृत और सायंस दोनों पूर्ण रीति से जानते हों तो इसमें भी बड़ी हानि है। बहुत से सायंस के विद्वानों के हाथ जो वास्तव में अच्छे उपयोगी और प्रामाणिक निबन्ध लिख सकते हैं बिलकुल बँध जाँयगे। यह ठीक है कि अनुवाद कर्ताओं को दोनों भाषाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिये तभी वह भली प्रकार अनुवाद कर सकते हैं पर यहाँ तो हमको एक तीसरी भाषा संस्कृत के भी पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता बतलायी जाती है। दूसरे इस अनुवाद में और अन्य अनुवादों में बहुत अन्तर भी है इसमें भाषा के लालित्य या मूल से मुताबकत पर विशेष ध्यान देने की जरूरत नहीं है किंतु हिंदी बोली में विज्ञान के आशय को भली भांत और साधारण

रीति से समझा देना ही ऐसे ग्रंथों और लेखों का उद्देश होगा तो फिर हिंदी भाषा में वैज्ञानिक लेख लिखनेवालों से संस्कृत की इतनी विद्वत्ता की आकांक्षा करना कुछ आवश्यक नहीं है। यदि ऐसे लोग सरल हिंदी में अपनी कठिन अँगरेजी परिभाषा को समझा कर उन परिभाषाओं को अपने लेखों में काम में लायें तो वह अपने किये हुए वैज्ञानिक विद्याभ्यास के परिश्रम का फ़ायदा दूसरों को बहुत जल्दी और अधिक, दूसरा कोई परिश्रम और कष्ट उठाए बिना, पहुंचा सकेंगे। फिर यदि उन को ठेठ संस्कृत शब्दों को काम में लाने पर मजबूर किया जायगा तो बहुत से विद्वान इस कठिनाई के भय से ही ऐसे लेख लिखने की ओर ध्यान न देंगे, और असल में ऐसा हुआ भी कि इन शब्दों की सोचा बिचारी से ही हमारे हिंदुस्तानी वैज्ञानिक साहित्य को बहुत सा नुकसान हुआ जैसा कि Hindi Scientific Glossary की भूमिका से ज्ञात होता है कि प्रोफ़ेसर गज्जर ने १८८२ में मराठी व गुजराती भाषाओं में वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तक लिखना प्रारंभ किया पर यथोचित शब्दों के अभाव से इस कार्य्य को छोड़ बैठे। कलाभवन बड़ोदा ने अपनी दोनों साल की रिपोर्टों में शब्दों के अभाव की बड़ी शिकायत की है। इसी तरह कलकत्ते की बङ्गीय साहित्य परिषद् और सभा ने इस कार्य्य को उठाया पर वह भी इसी कारण से पूरा न हुआ। फिर नागरी प्रचारिणी सभा ने इस काम को उठाया और लोगों से वैज्ञानिक पुस्तक लिखने को कहा पर इन्होंने उपयुक्त शब्दों के न होने से अङ्गीकार नहीं किया। इस तरह १८८८ से १८९८ तक यही दशा रही तब नागरी प्रचारिणी सभा ने अपने कोश की तैय्यारी का काम प्रारंभ किया।

यदि उस समय प्रोफेसर गज्जर और बङ्गीय साहित्य परिषद् और सभा और दूसरे विद्वान शब्दों के विचार से इस कर्तव्य कार्य्य को न छोड़ते किंतु जो हमारा मत है वैसाही मत रखते तो इतना नुकसान हिंदुस्तानी साहित्य को न होतापर शोक है कि रत्नों को उन के रखने के लिये ठीक डिब्बों के न होने से त्याग दिया गया। यदि अब भी हम इस भूल से बच जाँय तो अच्छा है।

हमारा धर्म यह है कि साहित्य के विद्वानों को सायंस की पुस्तकों के अनुवाद करने में जो कठिनाइयां होती हैं उनको सदा ध्यान में रक्खें और जहाँ तक हो सके उनके परिश्रम को ज़्यादा भारी करने की जगह हलका करें। देखना चाहिये कि अँगरेजी लेखकों का नामकरण के मामले में कितनी सुगमता है, उनमें से जो नवीन बात निकालते हैं वह नाम के लिये बहुत नहीं भटकते न यह कोशिश करते हैं कि किताब लेटिन या ग्रीक के ही आधार पर हो। देखो Xrays, Frays यह लोग इन नामों को रजिस्ट्री करा देते हैं और लेखों द्वारा उनको प्रचलित कर देते हैं। इससे दूसरे लेखकों को उनके जानने और काम में लाने में कुछ कठिनता मालूम ही नहीं होती। हमारे यहाँ यदि किसी ने बड़े परिश्रम से कोई शब्द गढ़ा भी और उसको कहीं लेख या पुस्तक में लिखा भी तो वह लेख या पुस्तक ही थोड़े लोग पढ़ेंगे अतः वह शब्द प्रचलित न होगा। उधर कोई दूसरा विद्वान् उसी शब्द के लिये दूसरा शब्द गढ़ता है तो वैज्ञानिक परिभाषा में यह एक नया दोष खड़ा होता है। और एक विद्वान को दूसरे के परिश्रम से कुछ लाभ नहीं हो सकता।

एक दूसरी कठिनाई यह है कि सारा परिश्रम करते हुए भी यदि हम ने कोई शब्द गढ़े तो वह दूषित होते हैं। मूल शब्द छोटा सा होगा उसका संस्कृत अनुवाद उससे विस्तार में बहुत बड़ा होगा और फिर भी एक भाषा के शब्दों के समतुल्य दूसरी भाषा में शब्द मिलना अत्यन्त कठिन है जैसा कि बाबू श्यामसुन्दरदास ने (Scientific Glossary) वैज्ञानिक कोश में

लिखा है जिसका हम यहाँ पर केवल भावार्थ देते हैं—

"एक ही भाषा में कोई भी दो शब्द पूरे समतुल्य नहीं होते। एक ही शब्द को प्रायः भिन्न मनुष्य भिन्न अर्थ में व्यवहार करते हैं। जब शब्द भिन्न भाषा के हों तो यह विभेद और भी बढ़ जाता है, विशेषतः जब हम किसी भाव विशेष के लिये समान भाव द्योतक शब्द खोजें। क्योंकि जाति की वृद्धि और विकास के ही अनुसार उसके विचार होते हैं और जब विकास में भिन्नता होती है तो विचारों में भी वैसी ही भिन्नता होती है। जो विचार एक ही वस्तु के लिये हों वह भी भिन्न और कभी विरुद्ध भी हो जाते हैं। इसलिये एक भाषा के शब्दों के वास्तविक समतुल्य शब्द लाना बहुत ही कठिन है।"

प्रायः जहाँ कहीं सायंस के विषय पर हिंदी लेख देखे जाते हैं वहाँ नये गढ़े हुए शब्दों के आगे ब्रेकिट में उनके अँग्रेज़ी शब्द भी लिख दिये जाते हैं, यह इसका ही उदाहरण है जो हम लिख रहे हैं। (अपूर्ण)

खाने के पहले पचा जानेवाले जीव

(ले० शालिग्राम वर्म्मा, भरतपुर)

हमारे बहुत से पाठकों को उपर्युक्त शीर्षक पढ़ कर आश्चर्य होगा। कोई कहेगा कि भला यह बात कैसे नियम-संगत हो सकती है कि खाने के पूर्व ही तथा पेट में बिना पहुंचे ही भोजन हज़म हो जाय। कुछ यह सोचने लगेंगे कि प्रायः महाक्षीण रोगियों को बहुत हलका और कृत्रिम रीति से पचाया हुआ भोजन दिया जाता है उसी प्रकार का कोई सुभीता संभव है प्रकृति ने इन जीवों के लिये भी कर दिया हो।

Biology जीव विज्ञान]

पर नहीं ! प्रकृति की लीला बड़ी ही अनूठी है। मनुष्यों को जो बातें महा आश्चर्यजनक ज्ञात होती हैं नेचर में वही बहुधा परम सरल और बहुतायत से पायी जाती हैं। हमारे नित्य प्रति के अनुभव में जितने जीव जन्तु आते हैं वह प्रायः सभी पहिले खा कर हज़म करते हैं पर तो भी खाने से पहिले हज़म करनेवाले जीव बहुत हैं और यह रीति विचार करने पर बहुत विस्तृत पायी जाती है।

इन जीवों का उदाहरण मात्र जल के मांसाशी गुबरीले (Dystiscus) हैं। यह जीव जिस जन्तु को भक्षण करना विचारते हैं पहिले उसे पकड़ कर एक प्रकार का पाचक द्रव उस के अंग में प्रविष्ट कर देते हैं जिस से वह घुलने लग जाता है और अंत में इसी घुले हुए रस को चूस कर केवल ऊपर का ढांचा ही ढांचा छोड़ देते हैं। यह जीव पिंग कपिशा (Beetle) के सदृश होते हैं और बहुधा तालाबों में पाये जाते हैं। इन के छोटे छोटे बच्चों के मुख नहीं होता पर प्रकृति ने इस अभाव की पूर्ति के लिए इन्हें विचित्र ठोढ़ी (mandibles) दे रक्खी हैं जिन से यह अपना शिकार पकड़ कर उसके उदर में पाचक द्रव प्रवेश कर देते हैं और फिर घुले हुए रस को चूस लेते हैं।

मिस्टर हैनरी कूपिन लानेचर *La Nature* नामक पत्र में लिखते हैं कि यह आवश्यक नहीं है कि भोजन हज़म होने के लिये सदैव पेट में पहुँचा करे, क्योंकि कुछ ऐसे भी जीव हैं जिन के उदर के बाहर ही उन का खाना पूरी तरह से पच जाता है। दोहरे पर वाले गुबरीले (Coleoptera) और मांसाशी जलीय गुबरीलों (Dystiscus) के बच्चों में यह शक्ति अधिक पायी जाती है। इसी लिये पोरटियर (Portier) ने इन जीवों की देख भाल और परीक्षा विशेष रीति से की है। यह जीव जलजन्तुओं में गिने जाते हैं। यह उन कीड़ों के सदृश होते हैं जिन्हें कोटकार

वासी (Caterpiller) कहते हैं। इनका सिर चपटा और आगे को निकला होता है। इस सिर के अग्र भाग में दो टेढ़े अंकुश व कांटे होते हैं जिन्हें यह मिला भी सकते हैं। यदि हम मुख का
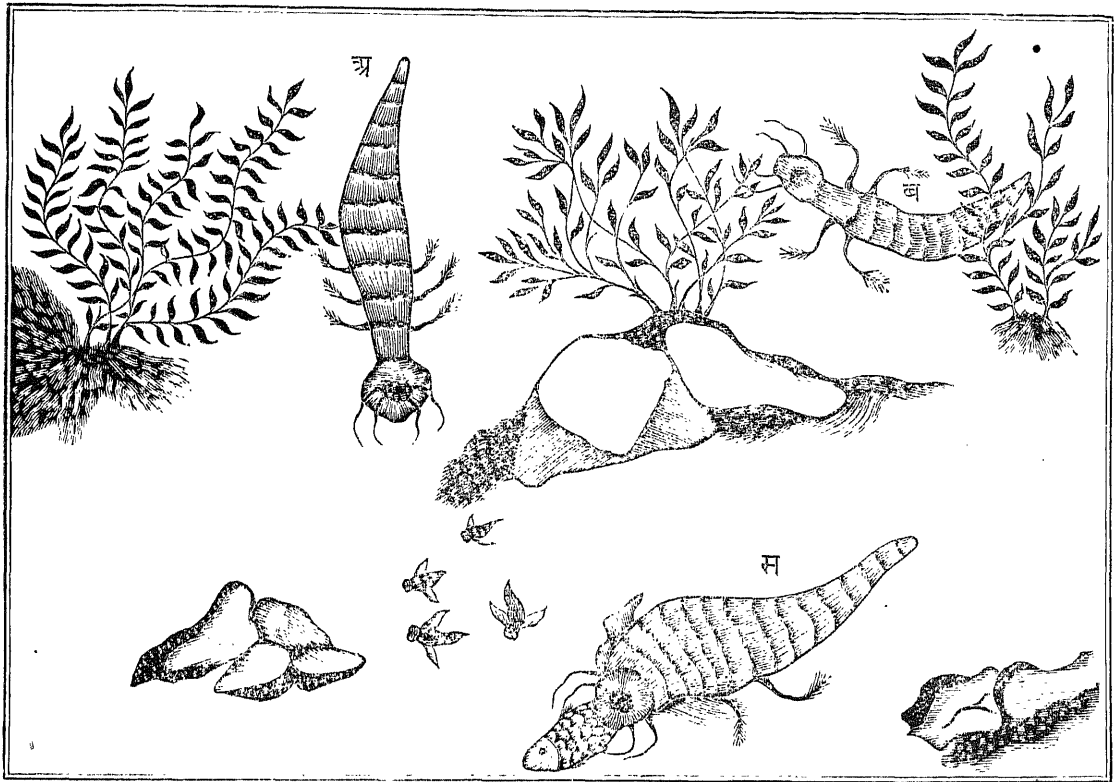
चित्र नं० १

अ—कीट डुबकी लगा रहा है। ब—कीट तैर रहा है। स—कीट मछली खा रहा है।

स्थान ढूंढना चाहें तो हमें सिर के अग्र भाग, कांटों के नीचे तथा दायें बायें किसी ओर भी छिद्र नहीं मिलेगा। मिस्टर पोर्टियर को भी पहले पहल यह देख कर बड़ा भ्रम हुआ था पर जब उन्होंने चीड़ फाड़ कर इस के हर एक अंग प्रत्यंग को भली भांति देखा भाला तो पाचक नली (Digestive Tube) और इस की भयानक प्रकृति देख कर उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। जब उन्होंने इन कांटों का ध्यान से निरीक्षण किया तो उनका संशय जाता रहा, और वे दूसरे ही भ्रम में पड़ गये।

इन कांटों की नोक को अणुवीक्षण यन्त्र (Microscope) द्वारा देखने से मालूम हुआ कि इन में छोटे छोटे छिद्र मौजूद हैं जो एक बाल की सी सूक्ष्म नली द्वारा पाचकेन्द्रिय तक चले गये हैं। पोर्टियर ने झट अनुभव कर लिया कि इन्हीं कांटों को चुभो कर इसी सूक्ष्म नली द्वारा यह जीव अन्य जन्तुओं का रुधिर पान कर लिया करते हैं। जब उन्हों ने यह देखा कि मृत जीव का केवल ढांचा ही रह जाता है और उस के पुट्ठे, रगें, तथा अस्थिपंजर के अन्य अन्य भाग भी सब लोप हो जाते हैं, तो उन्हें यह बात

चित्र नं० २
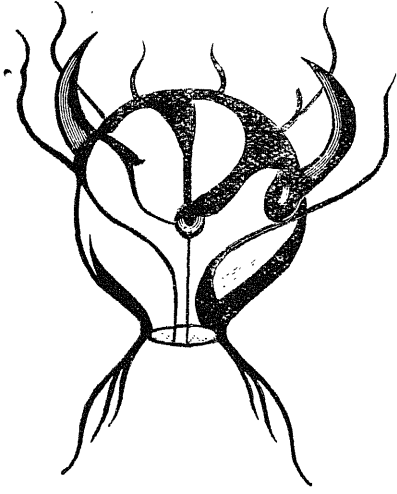
मान लेने में दुविधा होने लगी कि बालकी सी पतली नली द्वारा अस्थिपंजर पेट में पहुँच सकता है। इस लिये उन्होंने सोचा कि किसी और ही तरह पर यह कार्य होता है। अणुवीक्षण ने उन्हें बड़ी सहायता दी क्योंकि इससे उन्होंने देखा कि जिस समय यह जीव अपने शिकार पर झपट कर उसे अपने काबू में कर लेता है और अपने कांटेदार डंक उसके उदर में गाड़ देता है तो दो तीन सेकेंड के पश्चात् एक प्रकार का काला रस उस जन्तु के चारों ओर दिखलाई पड़ने लगता है और यंत्र में देखने से समस्त अवयवों के चारों ओर एक प्रकार की भूरी भूरी भाप सी दिखलाई पड़ती है जो इतनी स्वच्छ होती है कि उस में होकर सभी चीज़ों का निरीक्षण बड़ी सुगमता से किया जा सकता है।

अस्थियां और विशेष कर चर्बी सब घुलती हुई दीख पड़ती हैं। पोर्टियर को यह देख कर और भी अधिक अचंभा मालूम हुआ कि इस रस के बनते ही उस में लहरें पड़ने लगीं और वह आकर्षित हो कर डंकों की ओर जाने लगा। समस्त अवयवों में से छोटे छोटे भाग गल गल कर गिरने लगे और इस लहर ने सब रस को बहा कर डंकों की सूक्ष्म नलियों द्वारा पाचन नली में पहुँचा दिया, यहाँ तक कि धीरे धीरे मारे हुए जीव के शरीर में से इतना रस बहा कि वह खाली होने लगा। थोड़ी देर बाद ही फिर काला रस प्रवेश किया गया, और फिर वही क्रिया आरंभ हुई। इसी प्रकार कई बार में सारा मांस और हड्डियाँ गल जाती हैं और खोखला ढांचा बाकी रह जाता है जिसे यह जीव बेकार समझ छोड़ कर चल देता है। एक विशेष बात यह है कि जिस समय यह कीट

चित्र नं० ३
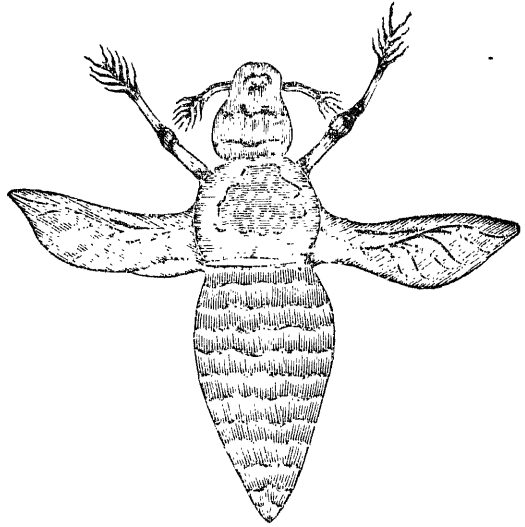
अपने भक्ष्य को पकड़ता है, पाचक रस प्रवेश करने के पहले इन्हीं डंकों द्वारा एक प्रकार का विष उसके शरीर में पहुंचा देता है जिस से वह स्तब्ध सा हो जाता है।

Ant-lion की भी इसी प्रकार की प्रकृति है। यह तन्तुपक्षी कीट (Neuropterous insect) कहलाता है। इसकी चारों टांगों पर बहुत पतली झिल्ली होती है, बालों का नाम तक नहीं होता। इसी प्रकार के चारों डैनों में जाल का सा बुनाव होता है और इन पर भी बाल नहीं होते। यह पृथिवी में उलटे (Cone) शंक्वाकार

बिल खोदता है और तह में छिपा बैठा रहता है। जहाँ कोई कीट इस बिल में गिरा कि इस ने अपने पंजे में दाब लिया। इस का सिर भी उपर्युक्त कीटों की भांति होता है जिस में डंक होने के कारण यह भी पाचक द्रव्य प्रवेश कर देता है।

इसी प्रकार लकड़ी खाने वाले घुन जाति के (Weevil) कीट होते हैं जो पहिले लकड़ी में एक प्रकार का रस प्रवेश कर देते हैं जिस से उस के तत्व विश्लिष्ट होकर कुछ अंश घुल जाता है, इस रीति से ये काठ में बड़ी सुगमता से छेद कर के पेट भरते जाते हैं और अंदर घुसते चले जाते हैं।

जूँ (Lice) भी ऐसे ही कीट हैं। यह भी पेड़ों में इसी प्रकार छेद कर लेते हैं। इन के सूक्ष्म शुण्डाकार मुख में होकर बनस्पतियों के अंग नहीं जा सकते, इस लिये यह भी एक प्रकार का पाचक रस, जिस में डायस्टेज़ (Diastase) *नाम के ख़मीर का अधिक अंश मिला होता है, पेड़ों की नसों में प्रवेश कर देते हैं जिस से उन की रासायनिक-रचना में परिवर्तन होकर वे मुलायम हो जाते हैं। इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि छिद्र के आस पास का रंग उड़ जाता है और कभी कभी टेढ़ी घुंडियां सी बाहर निकल आती हैं। नाज के घुन आदि कीट इसी प्रकार उसे खुखला कर के भीतर के पदार्थ को खाकर थोथे दाने ही छोड़ देते हैं।

ईश्वरीय सृष्टि की विलक्षण लीला है! विज्ञान द्वारा कैसी कैसी चमत्कारक बातें हमें मालूम होती जाती हैं! परमात्मा की अपार सृष्टि के एक सूक्ष्म भाग का थोड़ा सा भी हाल जान कर चित्त को कैसी प्रसन्नता होती है!

*डायस्टेज़ (Diastase) एक प्रकार का ख़मीर है जो पत्तियों और नाज में से निकाला जाता है। मद्यसार, अलकोहल के बनाते समय फेंन बनाने की क्रिया में इस का प्रयोग किया जाता है। इस में नइट्रोजन का अधिक भाग होता है और यह मण्ड (Starch) को धीरे धीरे शकर में बदल देता है।

डाँड़ी के अद्भुत खेल।

तुलादंड और तोलने की रीतियाँ (गतांक से)

[ले० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव बी. एस. सी. एल्. टी.]

"क्या यह नहीं सुना है कि प्रोफेसर राममूर्ति (कलियुग के भीम) बड़ी मोटी मोटी लोहे की जंजीरों को तोड़ डालते हैं; अमुक मनुष्य पत्थर के दो दो मन की नाल उठा लेता है? तो इससे बल आज़माते हैं या नहीं?"

"यह जानकर कि किसी मनुष्य ने एक लोहे की मोटी जंजीर को तोड़ डाला कैसे पता चलता है कि उसमें इतना बल है?"

"केवल इतना ही जान लेने से किसी मनुष्य के बल का पूरा पता नहीं चल सकता। हाँ उस जंजीर के साथ एक और परीक्षा की जाय तो ठीक २ मालूम हो सकता है; अर्थात उस जंजीर को लेकर उसमें बोझा लटकाते जाँय और जितने बोझ के रखने पर वह टूट जाय उतना ही उस जंजीर में भार थाँमने का बल है और जो मनुष्य उस जंजीर को तोड़ डाले, उसमें भी उतना ही बल समझना चाहिए।"

"यदि जंजीर न हो तो क्या किसी के बल का पता नहीं चल सकता?"

"पता अवश्य चल सकता है। बल जांचने के लिये हिन्दुस्तानी विधि एक यह भी है कि आदमी से अलग अलग तोल की नालें उठवाते हैं जो *नाल उससे नहीं उठ सकती उसी का

* पत्थर या लोहे का गोल टुकड़ा काट कर उसके बीच में पकड़ने के लिये दस्ता लगा देते हैं। अंगुलियां इस पार से उस पार तक जाकर दस्ते को अच्छी तरह पकड़ सकती हैं। इसी को नाल कहते हैं।

भार उस मनुष्य के बल की सीमा के बाहर है। यदि कोई मनुष्य ४० सेर की नाल उठा सकता है और इससे अधिक तोल की नहीं तो उस मनुष्य में ४० सेर बोझ के बराबर बल है।"

"भला बल और भार से क्या सम्बन्ध ?"

"अभी थोड़े दिन हुए कि अर्क मितीश का सिद्धान्त बतलाते हुए यह कहा गया था कि पदार्थों में भार होने का कारण अकर्षण-शक्ति है अर्थात जिस बल से पृथ्वी किसी पदार्थ को अपने केन्द्र की ओर खींचती है वही उस पदार्थ का भार है। इस लिये भार पृथ्वी का खिंचाव है। यदि यह कहा जाय कि किसी मनुष्य का बल ४० सेर के भार के बराबर है तो इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि जितने बल से पृथ्वी ४० सेर के तोल वाले पदार्थ को नीचे की ओर खींच सकती है उतने ही बल से वह मनुष्य उस ४० सेर वाले पदार्थ को ऊपर उठा सकता है। इससे यह विदित हुआ कि बल की माप वही है जो पदार्थों के भार की माप है। एक सेर बल का मतलब १ सेर के भार से है, एक छटांक बल का मतलब एक छटांक के भार से है, इत्यादि।

अब इस बात की परीक्षा के लिये-कि घुमाव से बल लगानेवाला भाग कितनी दूरी पर रक्खा जाय कि अमुक थोड़े बल के लगाने से अमुक बहुत बल का काम निकल जाय-ठीक अवसर है। ऐसी परीक्षा के लिये कोई सीधी लकड़ी इस तरह लटकाई जाय कि वह घुमाव पर ऊपर नीचे घूम सके और इधर उधर बल लगाने और काम करने का स्थान भी हो। लोहार की धौंकनी आदि के लिए किसी प्रकार की भी सीधी लकड़ी काममें आ सकती है परन्तु परीक्षा के लिये ऐसी सीधी लकड़ी चाहिए जो अपने केन्द्र से दोनों ओर सम (Symmetrical) हो अर्थात यदि केन्द्र पर उसको काट दें तो दोनों टुकड़ों की तोल, स्वरुप, लम्बाई इत्यादि में कोई अन्तर न हो और यदि उसको केन्द्र-पर से थामकर (किसी डोरा, तार या उंगुली पर) लटकावें तो दोनों किनारे तराजू की डंडी की तरह भूतल से समान दूरी पर लटकें। ऐसी लकड़ी से लाभ यह होगा कि इस के भार का कोई प्रभाव न पड़ेगा और हिसाब लगाने में सरलता होगी।

रेखाओं के नापने अथवा खींचने के लिये लड़के जो फुट रूलर अथवा फुटा प्रयोग करते हैं वह बहुत ही उपयोगी होगा; इस काम की यह तरकीब है:— एक लम्बे, मजबूत डोरे के एक सिरे पर एक फंदा बनाओ और इस फंदे को फुट-रूलर के बीच में डाल कर इधर उधर खसकाओ, जिस स्थान पर फंदे के रहने से फुट-रूलर धरातल के समानान्तर हो वहीं फन्दे को मजबूत कस दो। दो और छोटे छोटे पतली पेचक (डोरे की गोली) के टुकड़े लेकर प्रत्येक के दोनों सिरों पर फन्दे बनाओ। एक टुकड़े को फुटा के एक किनारे पर लटकाओ और दूसरे को दूसरे किनारे पर। प्रत्येक टुकड़े के दूसरे सिरे में एकन्नी, धेला, पैसा, रुपया इत्यादि जिसमें सुभीता हो कस दो। पहले एक ही प्रकार के सिक्के (धेला, या एकन्नी) एक एक दोनों टुकड़ों में कसो। और ऊपर वाले फंदों को इधर उधर हटा हटा कर ऐसा करो कि फुटा धरातल के समानान्तर हो [यह ध्यान रहे कि फुटा के लटकाने वाले डोरे का फन्दा उसी स्थान पर बना रहे जहाँ के लटकाने से फुटा धरातल के समानान्तर रहता है]। जहां यह फन्दा लगा हुआ है वहीं उसमें घुमाव है क्योंकि इसी स्थान से फुटा की लकड़ी ऊपर नीचे घूमती है। इसके एक ओर <u>बल लगाने वाला स्थान</u> समझ लो और दूसरी ओर <u>काम करने वाला स्थान</u>। घुमाव से दोनों सिक्कों के लटकाने वाली डोरों की दूरी देखो और एक कागज पर यों लिखो:—

यह अनुभव एक फुट-रूलर के द्वारा लेखक ने स्वयम् किया था। फुटे की पटरी को एक मोटे

डोरे से बांधकर आलमारी की अमिलियों में इस तरह लटकाया था कि सिक्कों के कसने, हटाने में वह तार पटरी पर अपने स्थान से तनिक भी नहीं हटा और ६ इंच के निशान के पास ही

घुमाव से दाहिनी ओर वाले सिक्के का भार	घुमाव से दाहिनी ओर वाले सिक्के की दूरी	घुमाव के बाईं ओर वाले सिक्के का भार	घुमाव के बाईं ओर वाले सिक्के की दूरी
एकन्नी भर	६० दसवें इंच से तनिक अधिक	एकन्नी भर	६० दसवें इंच से तनिक कम
,,	,,	२ एकन्नी भर	३० दसवें इंच से तनिक अधिक
,,	,,	३ ,, ,,	२० ,, ,,
,,	,,	४ ,, ,,	१५ ,, ,,
,,	,,	५ ,, ,,	१२ ,, ,,
,,	,,	६ ,, ,,	१० ,, कम
,,	,,	१० ,, ,,	६ ,, ,, ,,
,,	,,	१२ ,, ,,	५ ,, ,, ,,

था। दाहिनी तरफ़ एक एकन्नी को फंदे में लगाकर उस जगह (प्रारम्भ विन्दु पर) लटकाया था जहाँ से पटरी पर माप आरम्भ होता है यह भी अपने स्थान पर ज्यों का त्यों रहने दिया गया था। इसके हटने से कोई विशेष अन्तर नहीं हुआ, किन्तु बार बार इसकी दूरी नापने का झंझट कम हो गया था।

जब दोनों ओर के भार बराबर थे तो उनकी दूरी भी घुमाव के स्थान से बराबर थी। जब दूसरी ओर दो एकन्नी भर (द्विगुना) भार रक्खा गया तो इसकी दूरी एक एकन्नी के भार की दूरी से आधी थी; जब भार तीन एकन्नी भर (तीन गुना)हो गया तो यह तीहाई दूरी पर तुल गया......जब भार १० गुना कर दिया गया तो दसांश दूरी पर तुल गया, इत्यादि। अब स्पष्ट है कि यदि एक ओर भार कई गुना बढ़ादें और इसकी दूरी उतनी ही गुनी घमाव से कम करदें तो ब[illegible] से बड़ा भार भी छोटे से ही बाट से तुल सकता है। अर्थात् यदि किसी मनुष्य को एक सेर के बाट से ५० सेर की वस्तु एक बार में ही तौलनी हो तो ५० सेर वाली वस्तु को एक सेर वाले बाट की दूरी के पचासवें भाग पर दूसरी ओर रख देना होगा, यदि ऐसा करने पर डँडी (तुला दण्ड) बराबर हो जाय तो समझना चाहिए कि इस वस्तु की तौल ५० सेर है। यदि भार लाख गुना हो तो दूरी का लाखवाँ भाग कर देने पर तुला दण्ड बराबर हो जायगा। इसी नियम को जान कर अर्कमितीश (Archimedes) ने कहा था "यदि कहीं तुला-दण्ड टाँगने की जगह मिलती तो मैं थोड़े ही बाटों से पृथ्वी को, तोल डालता" उसका कथन इस नियम द्वारा सम्भव प्रतीत होता है, किंतु पृथ्वी के तौलने के लिये ऐसी डोर उसे लटकाने के लिये चाहिये जो पृथ्वी के भार से टूट न सके; दण्ड भी ऐसा हो कि टूट या लचक न सके इत्यादि। पर यह सब सामान अभी तक नहीं मिल

*फुट रूलर के देखने से तुरन्त प्रकट हो जायगा कि उसमें एक इंच के दस बराबर बराबर भाग बने रहते हैं। इस लिये ऐसे छोटे भाग को दसवां (दशांश) इंच कहा जाता है। ऐसे छोटी छोटी मापों के लेने से दूरी की माप और यथार्थ दूरी में बहुत कम अन्तर रहता है।

सका इसलिये उसके अनुमान की परीक्षा भी अभी तक नहीं हो सकी। तथापि इसी नियम की बलिहारी है कि स्टेशनों पर बड़े भारी भारी, मनों के बोझे (गाँठ, बक्स इत्यादि) एक छोटे से ही बाट से कितनी जल्दी और सुगमता के साथ तोले जाते हैं इस का पूरा वर्णन आगे चलकर यथा स्थान किया जायगा।

इसी बात को गणितज्ञ इस तरह भी प्रकट करते हैं:—

एक तरफ़ का भार × घुमाव से इसी भार की दूरी = दूसरी तरफ़ का भार × घुमाव से दूसरी तरफ़ की दूरी। यह बात उपर्युक्त सारिणी की संख्याओं से सिद्ध है।

यह जानकर क्या बतला सकते हो कि एक रुपये का भार कै एकन्नी भर है?

इसके लिये भला इस नियम की आवश्यकता ही क्या है? यह बात तो काँटे से झट मालूम हो सकती है।

यह तो ठीक है पर बिना काँटे के ही एक एकन्नी, एक रुपया, एक पटरी और तागे से यह बतला दो कि रुपया कै एकन्नी के बराबर है। कांटे से एक रुपये को तोलने के लिये कई एकन्नियों की आवश्यकता होगी तिस पर भी यदि रुपया पूरी एकन्नियों के बराबर न हुआ तो कई रुपये और कई एकन्नियां लेनी पड़ेंगी।

इसके लिये ठीक वैसा ही अनुभव करना पड़ेगा जैसा कि ऊपर के नियम के निकालने में किया गया था और जिससे ऊपर की सारिणी तैयार हुई है। घुमाव के एक ओर रुपया लटकाना होगा और दूसरी ओर एकन्नी। इनको इधर उधर खसका कर ऐसा करना होगा कि पटरी धरातल से समानान्तर हो जाय। इसी तरह के एक अनुभव से नीचे की सारिणी तैयार की गई है:—

बाईं ओर					दाहिनी ओर		
१	पैसा	घुमाव से	३६	दसांश इंच पर	एक एकन्नी	घुमाव से	६० दशांश इंच पर
२	”	”	१७.५	” ...	... ...	”	” ”
३	”	”	१२	” ...	... ...	”	” ”
६	”	”	६	” ...	... ...	”	” ”
१०	”	”	४	” से कुछ कम ...	...	”	” ”
१२	”	”	३	” से कुछ अधिक ...	...	”	” ”

इस से यह स्पष्ट है कि जब एक पैसा घुमाव से ३६ दसांश इंच पर रक्खा गया और एक एकन्नी दूसरी ओर घुमाव से ६० दसांश इंच पर, तो पटरी बराबर थी। इस लिये उपर्युक्त नियम द्वारा ६० दसांश इंच × एकन्नी भर = ३६ दसांश इंच × पैसे भर

$$\therefore \text{एक पैसे का भार} = \frac{\text{६० दसांश इंच} \times \text{एकन्नी भर}}{\text{३६ दसांश इंच}}$$

$$= \frac{६०}{३६} \text{ एकन्नी भर}$$

$$= \frac{५}{३} \quad ,,$$

अर्थात् ३ पैसा = ५ एकन्नी भर

३ रुपया = १० एकन्नी भर

(दो तांबे के पैसों का भार एक रुपये के भार के बराबर है।)

इस विधि से बिना तराजू और बाट के चाहे जिस वस्तु का भार बड़ी सुगमता से मालूम हो सकता है। एक और मज़े की बात यह है कि छोटे से बाट से बड़ी चीजों का भार मालूम हो सकता है। इसके लिये छोटे बाट को घुमाव से दूर रखना होता है और दूसरी ओर तुलने वाली भारी चीज को घुमाव के पास। ऊपर की संख्याओं से यह प्रकट होता है कि एक पैसे से लेकर १२ पैसे तक का भार एक एकन्नी से मालूम हो सकता है। इसमें तुलनेवाले भारी पदार्थ को इधर उधर खसकाना पड़ता है। और हलके बाट को एक ही स्थान पर रखना पड़ता है। यदि मन, दो मन के पदार्थ को एक ही बार में छोटे से बाट से तोलना हो तो भारी बोझे को इधर उधर खसकाना बड़ा कठिन होगा और सब मनुष्य यह काम कर भी नहीं सकते इस लिये ऐसे काम के लिये तुला-दंड ऐसा बनाया जाता है कि भारी पदार्थ घुमाव के पास ही एक स्थान पर लटका रहे और छोटा बाट इधर उधर खसकाना पड़े। ऐसा करने से एक छोटा लड़का भी छोटे बाट को इधर उधर खसका कर भारी बोझे को तोल सकता है; बोझे को केवल एक बार पलड़े पर रख लेना दरकार है। उदाहरण के लिये पटरी के साथ थोड़ा सा और अनुभव करना होगा। इसी रीति से नीचे की सारिणी तैयार की गई है:—

भार	घुमाव से दूरी	बाट	घुमाव से बाट की दूरी
१२ पैसा भर	३ दसांश इंच	एकन्नी भर	६० दसांश इंच
६ ,,	,,	,,	३१ ,,
४ ,,	,,	,,	२० ,,
३ ,,	,,	,,	१४ ,, से कुछ अधिक
२ पैसे भर	३ दसांश इंच	एकन्नी भर	$९\frac{१}{२}$ दसांश इंच से कुछ अधिक
१ ,,	,,	,,	५ ,,
१ एकन्नी भर	,,	,,	३ ,, ,,
एक लकड़ी का टुकड़ा	,,	,,	३६ ,,
एक कैंची	,,	,,	३३ ,,

इससे यह स्पष्ट हो गया कि यदि तुलने वाली वस्तु को घुमाव के पास रक्खें और तोलने वाले छोटे बाट से उसको तोलना चाहें तो छोटे ही बाट को इधर उधर खसकाना होगा। एक लकड़ी के मुकाबिले में एकन्नी को ३६ दसांश इंच की दूरी पर रखना पड़ा और ६ पैसे के भार के मुकाबिले में ३१ दसांश इंच की दूरी पर रखना पड़ा था इससे यह सिद्ध हो गया कि लकड़ी के टुकड़े का भार ६ पैसे भर से अधिक है। कैंची के मुकाबिले में एकन्नी को ३३ दसांश इंच की दूरी पर करना पड़ा इसलिये कैंची का भार भी ६ पैसे के भार से अधिक है। आओ अब गणित द्वारा देखें कि लकड़ी अथवा कैंची का भार क्या है।

लकड़ी का भार × ३ द० इंच = एकन्नी भर × ३६ द० इंच

$$\therefore \text{लकड़ी का भार} = \frac{\text{एकन्नी भर} \times १२}{} = १२ \text{ एकन्नी भर}$$

लेकिन ५ एकन्नी भर = ३ पैसा भर

$$\therefore १२ \quad ,, \quad = \frac{१२ \times ३}{५} \text{ पैसा भर}$$

$$= ७\frac{१}{५} \text{ पैसा भर}$$

$$\text{उसी तरह कैंची का भार} = \frac{\text{एकन्नी भर} \times ३१}{३}$$

$= \frac{३१}{३}$ एकन्नी भर

$= १०\frac{१}{३}$ "

=६ पैसे भर से तनिक अधिक

इस नियम की शुद्धता तराजू के द्वारा परखी जा सकती है। साधारण तराजू से लकड़ी का भार ७ पैसे भर हुआ और कैंची का ६ पैसे भर।

यह ते बड़ी अच्छी विधि मालूम हो गई। अब छोटी छोटी वस्तुओं के तोलने में एक फुटी पटरी ही का प्रयोग करना अच्छा है क्योंकि इससे थोड़े ही बाट से काम चल सकता है और सस्ती भी है।

परन्तु, केवल पटरी से तोलने के लिये कुछ त्रैराशिक और कहे हुए नियम के जानने की आवश्यकता अवश्य पड़ती है, इसलिये सभी मनुष्यों के लिये और सभी समय इससे काम न चलेगा। यही समझ कर तराजू बनाया गया है जिसके द्वारा केवल जोड़ और बाकी का हिसाब जानकर लोग तोल सकें। तराजू के बनाने में इस नियम के एक अंग का ध्यान अवश्य रक्खा जाता है, अर्थात तराजू की डंडी ऐसी होनी चाहिए कि बीचोंबीच लटकाने से बराबर रहे और जब एक ही तोल के पलड़े घुमाव से बराबर दूरी पर रहें तब भी डंडी धरातल के समानान्तर रहे। ऐसी अवस्था में यदि प्रत्येक पलड़े पर समान तोल की चीज़ें रक्खी जायँगी तो भी डंडी समानान्तर रहेगी। यदि एक ओर भारी पदार्थ हो और दूसरी ओर हलका तो भारी पलड़ा नीचे चला जायगा और हलका ऊपर उठा रहेगा अर्थात डंडी धरती के सामानान्तर न रहेगी।

[शेष आगे]

पालनपुर का भूत

" एक वैज्ञानिक रहस्य "

"खन-खन-खननन-खननन........ " टेलीफोन की घंटी बजी और दारोग़ा साहेब नौकर को दो चार दस गाली सुना कर अपने पलंग से उठे और टेलीफोन के पास जाकर वार्तालाप करने लगे।

"कौन ?" "कौन साहब हैं ?"

....

"हुजूर !"

....

"हुजूर, ७ मील है।"......"जी हां"...

"......हुजूर"

"अभी जाता हूँ" ...."जो हुक्म"...

"......बेहतर" ......" बहुत अच्छा"...

दारोग़ा ने टेलीफोन का रिसीवर (चोंगा) यथा स्थान लटकाया और झट पट एक सिपाही को बुला कर हुक्म दिया कि १५ सिपाही अभी पालनपुर जाने को तैयार हों।

दारोगा महाशय ने भी कोट बूट कसा और थोड़ी ही देर में १५ सिपाही साथ ले पुराने नगर के बाहर निकले—

रात के ठीक दो बजे होंगे कि हमारी पलटन अजमेर से १ मील आगे बढ़ गई अदनखाँ दारोगा साहेब भी घोड़े को बेग से ले गये और ३ घंटे के "डबल मार्च" के उपरान्त पालनपुर पहुँचे।

पालनपुर अजमेर से ७ मील की दूरी पर है–यों तो यदि "नौ दिन चलै अढ़ाई कोस" का हाल न होता तो अजमेर से पालनपुर अधिक से अधिक आधा मील होता परन्तु बीच में कई पहाड़ियों के आजाने के कारण पालनपुर को सड़क बहुत ही मोड़ खाकर गई है। दारोगा साहेब

ने पालनपुर पहुँच उस पुलिया की जाँच की जहाँ कल ही संध्या को एक पथिक मर गया था—आज प्रातःकाल और गावों के लोग उसका मुर्दा कप्तान साहेब के पास लाये थे, परन्तु कप्तान साहेब को साढ़े ११ बजे रात को इस बात पर ध्यान देने का अवसर मिला, शव को देख तथा अन्य पुलिस की साधारण कार-रवाई कर आपने दारोगा को टेलीफ़ोन से मृतक के मामले की जाँच करने का हुक्म दिया था—

पालनपुर अब केवल कहने मात्र को गाँव रह गया है-जब से "सारंगा वाला भूत" इस गाँव में वास करने लगा यहाँ के निवासी क्रमशः यहाँ से भागने लगे, इस समय केवल २।४ ग्वाले यहाँ रहते हैं और वे भी संध्या से पूर्व ही गाएँ दुह कर अपने घरों के किवाड़ बन्द कर लेते हैं॥

पालनपुर का भूत २ वर्ष से बड़ा प्रसिद्ध है- किसी को भी इतना साहस नहीं पड़ता कि सूर्य्यास्त के उपरान्त पुलिया पर होकर निकले। डर बड़ा ही बुरा होता है, इसके कारण मनुष्य के प्राण निकल जाना भी कोई आश्चर्य नहीं- क्या पालनपुर पुलिया पर इन दो वर्षों के भीतर ३ आदमी नहीं मर गये ? कभी कोई भूला भटका पथिक यदि पुलिया पर से होकर निकलता तो अवश्य ही उसको भूत की सारंगी सुनाई पड़ती और यदि यह पथिक डरपोक होता तो बेहोश हो जाता अथवा डर के कारण प्राण त्याग देता।

दारोगा साहेब ने जाकर पुलिया की जाँच की और सब बातें देख भाल कर निम्न लिखित " रिपोर्ट कलक्टर साहेब के पास भेजी-

"आज्ञानुसार मैं रात को ही २ बजे चलकर ४ बजे प्रातःकाल पालनपुर पहुँचा—पुलिया को मैंने भली भाँति देखा—वहाँ पर कोई चिन्ह लोहू के नहीं हैं—सड़क पर यह भी नहीं ज्ञात होता कि किन्हीं आदमियों में परस्पर खींचातान भी हुई हो-बटोही का दुपट्टा पुलिया के नीचे नाले में पड़ा हुआ था, पैर के चिन्हों से ज्ञात होता है कि बटोही कुछ समय तक पुलिया के बीच में खड़ा रहा फिर उसने मुड़-कर भागने की चेष्टा की पर कुछ ही आगे चल-कर वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। पालनपुर ३ साल से उजाड़ पड़ा हुआ है, केवल ३ गाय वाले यहाँ रहते हैं। इनका बयान साधारण है, एक कहता है कि परसों संध्या को किवाड़ बन्द करते समय मैंने दूर पहाड़ी पर से एक मनुष्य को आता देखा, यह मनुष्य निश्चय मृत पथिक होगा, क्योंकि ४ मील तक पालनपुर के किसी ओर कोई बस्ती नहीं है। कल प्रातःकाल देहरिया के निवासी इस मार्ग से चले आते थे, इन्होंने उक्त पथिक को देखा और उसे उठाकर पुलिस में लाये। इन लोगों का बयान है कि इस पुलिया पर से सदा संध्या के ७॥ बजे से नौ बजे तक सारंगी का शब्द सुनाई देता है, कभी कभी एक युवा स्त्री के हँसने का भी शब्द होता है। लोगों ने बहुत देखा भाली की परन्तु यहाँ पर मनुष्य का कोई भी चिन्ह नहीं दिखाई दिया, पुलिया के बीच में खड़े होने से सामने पहाड़ पर से आता हुआ शब्द सुनाई पड़ता है, यह पहाड़ गुफाकार बना हुआ है-इस गुफा में मनुष्य का पहुँचना असम्भव है क्योंकि पहाड़ की चोटी से अथवा नाले से यह चट्टान एकाएक सीधी हो गयी है और बीच में गुफा-कार बनी हुई है, गुफा बहुत गहरी नहीं दीखती, पहाड़ अथवा पुलिया का चित्र इस के साथ भेजा जाता है, कहते हैं कि सारंगी का शब्द केवल डेढ़ घंटे संध्या के समय सुनाई देता है, ७॥ बजे यह आरंभ होता है और नौ बजे के उपरान्त बन्द हो जाता है। मैं स्वयं यहाँ रहकर इस शब्द को सुनता परन्तु मुझे एक अभियोगी

को आज ही आगरे ले जाना है इस कारण मेरा यहाँ से आज ही जाना बहुत आवश्यक है, इसके सिवा स्वयं देखने की कोई बड़ी आवश्यकता भी मुझे न दीखी, क्योंकि पारसाल इन्हीं दिनों में एक और बटोही यहाँ पर बेहोश हो गया था, उस समय जाँच करने के निमित्त स्वयं डिप्टी साहेब व कप्तान साहेब पालनपुर पधारे थे। उन्होंने भी अपनी रिपोर्ट में यही लिखा है कि यह शब्द अवश्य सुनाई देता है।

कलेक्टर साहेब के आने में अभी देर है। देहरिया के निवासी सब गवाही देने को आये हुए हैं। कलही डाक्टर बेमन साहब ने मृत पथिक की चीर फाड़ की थी, उनके भी बयान लिये जायँगे। देहरिया अथवा उसके आस-पास सब गावों में पथिक के मरने का समाचार पहुँच चुका है। लोग भूत को मानते ही थे पर अब उनका विश्वास और भी दृढ़ हो गया। दो एक समाचारपत्रों ने भी पालनपुर की घटना का वृत्तांत पूरा पूरा लिखा है। समाचार फैलते फैलते पानी की लहरों की भाँति बढ़ते भी जाते हैं। देहरिया से बीस कोस के अन्तर पर लोगों को यह सच्चा समाचार मिला है कि पालनपुर में भूतों का गाना बजाना हुआ। ३०० भूत नाना प्रकार के यंत्र लेकर वहाँ एकत्रित हुए थे, इत्यादि...

कचहरी आरम्भ होते ही देहरियावालों ने साक्षी दी कि पथिक वास्तव में मरा पड़ा था। बेमन साहब ने कहा कि जाँच करने से यह निश्चय कहा जा सक्ता है कि पथिक को कोई भी चोट इत्यादि नहीं लगी; जिससे स्पष्ट है कि किसी ने इस को मारा नहीं। अब प्रश्न रहा केवल विष खाने का सो भी आँतों की जाँच करने पर ज्ञात हो गया कि पथिक ने चने चाबे थे और विष तथा अन्य कोई विषैला पदार्थ नहीं खाया था। पथिक के मरने का कारण डाक्टर महाशय के विचार में वही Heart failure कलेजका धड़कना बंद होजाना था। बस इस प्रकार से साक्षी ली जा चुकने के उपरान्त कलक्टर साहेब ने मृतक को जलाने की आज्ञा दे दी और स्वयं इस आश्चर्यजनक स्थान को देखने के लिये जाने की सूचना दी।

कलक्टर साहेब रेल के स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी आई और इसमें से कलक्टर साहब के मित्र तथा गुप्त पुलिस के प्रख्यात कप्तान वर्किट साहेब उतरे। यह महाशय अभी विलायत से बुलवाये गये थे, आप का नाम विलायत में बहुत ही प्रसिद्ध है, आपने आज तक कम से कम १०० भूतों के रहस्यों का समाधान किया था। कलक्टर साहेब ने आपको पालनपुर का ब्यौरा कह सुनाया और आप प्रसन्न हो उनके साथ हो लिये। पालनपुर गाड़ी संध्या के ४½ बजे पहुँचती है; वहाँ पर उतर कर वर्किट तथा कलक्टर साहेब पुलिया पर पधारे और वहाँ बहुत कुछ देखा भाली की, अंतमें भूतलीला का समय आ पहुँचा। साढ़े सात बजे ही थे कि सारंगी की बड़ी मन्द और सुमधुर ध्वनि सुनाई दी। गाँव वालों का यह विश्वास है कि साहेब लोगों के सामने भूत डर जाता है अथवा बलहीन हो जाता है इस कारण वे भी सब सारंगी सुनने को पहुँचे थे। कभी कभी हँसने का सा शब्द भी बीच बीच में सुनाई देने लगा। वर्किट साहेब ने इधर उधर बहुत देख भाल की परन्तु किसी मनुष्य का पता पहाड़ी पर या उस के और पास न मिला। साढ़े नौ बजे भूतलीला तो बंद हुई और साहेब लोग तथा गाँव वाले सब आकर अपने अपने स्थानों पर आराम करने लगे।

दूसरे दिन प्रातःकाल वर्किट साहेब घोड़े पर चढ़कर पुलिया पार गये और कुछ सोचते सोचते देहरिया पहुँचे। देहरिया अजमेर से ८ मील की दूरी पर है। यहाँ अजमेर के कारखाने में काम करने वाले बहुत लोग रहते हैं, ये ६ बजे अजमेर

से छूटते हैं और ७ बजे थके माँदे घर पहुँचते हैं। इस स्थान में एक ईसाई भी रहता है। इस के केवल एक बेटी है। साहेब बहादुर इधर उधर पूछ ताछ करते कराते अंत में इसाई महाशय के घर पहुँचे और इनसे कुछ बातें करके आप सीधे पालनपुर लौट आये।

[२]

"भूट हमारा हुक्म मानेगा" कहते हुये वर्किट साहेब ने एक मनुष्य को लालटेन देकर पहाड़ी के ऊपर भेजा। पहाड़ी पर से देहरिया पूरा पूरा दिखाई देता है और यहाँ के दीप की ज्योति देहरिया वाले देख सकते हैं। जब आदमी पहाड़ पर चढ़ गया वर्किट साहेब ने गांववालों को इकट्ठा करके फिर कहा कि "जब लालटेन हिलेगा भूट बाजा बजायेगा और जब हिलना बंद होगा तो बाजा भी बंद हो जायगा"।

वास्तव में ऐसा ही हुआ जब साहेब की आज्ञानुसार लालटेनवाला लालटेन हिलाता तो बाजे का शब्द धीरे धीरे सुनाई पड़ने लगता, जब लालटेन बन्द कर दी जाती तो शब्द भी धीरे धीरे कम होता चला जाता और अंत में बिलकुल बंद हो जाता। यह चमत्कार देख गाँववाले तथा अन्य दर्शक आश्चर्य करने लगे। वर्किट साहेब ने इसे सुअवसर जान दर्शकों का भ्रम दूर करने के निमित्त बहुत सी बातें बतलायीं जिनका सारांश नीचे लिखा जाता है:—

"जब दूर से कोई शब्द होता है और उस को तुम भली भाँति नहीं सुन सकते तो क्या करते हो?"

कल्लू—हुजूर हथेली को मोड़ कान में लगाते हैं साहब—बहुत ठीक ऐसा करने पर शब्द रुक कर कान में पहुंच जाता है। अब सोचो वह क्या बस्तु है जो इस प्रकार रुक कर कान में पहुँचती है। तुमको सोचना चाहिये शब्द किसे कहते हैं और क्योंकर यह हमारे कानों में पहुँचता है।

कल्लू—हवा के साथ चला आता है।

साहेब—तुमने कभी गूँज (प्रतिध्वनि) भी सुनी है? क्या तुम जानते हो कि शब्द दीवार से टकरा कर पीछे लौट आता है। यदि शब्द हवा के साथ चलता तो यह दीवार से लौट कर क्यों आता हवा को ऐसी क्या पड़ी है कि जब तुम बोलो तो दीवार की ओर बहे और फिर क्षण भर में दीवार से तुम्हारी ओर बहे इससे स्पष्ट है कि हवा के साथ कोई वस्तु हमारे कान में नहीं पहुँचती। अब तुम यदि किसी बजती हुई घंटी अथवा तार को देखो तो तुमको ज्ञात होगा कि यह बहुत बेग से काँप रहा है। जो इस काँपती हुई बस्तु को हाथ से पकड़ लो तो शब्द बन्द हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि किसी बस्तु के काँपने से शब्द उत्पन्न होता है और यह हवा के रास्ते हमारे कानों पर पड़ता है। काँपने से हवा में क्या हो सकता है? यही कि धक्का लगता होगा। बस तो ये धक्के हवा में होकर हमारे कानों पर पड़ते हैं और हमें शब्द सुनाई देता है।

अभी कल्लू ने कहा था कि शब्द को सुनने के लिये हथेली मोड़ कर कान में लगाई जाती है। सीधी हथेली से कुछ नहीं होता इससे यह प्रत्यक्ष है कि गुफाकार वस्तु से जब शब्द की लहरें टकराती हैं तो वे सब एक साथ इकट्ठी होकर कान में पड़ती हैं। अब इस पहाड़ की गुफा को देखो कहीं दूर से लहरें आकर इसमें टकराईं और यहां से लौटकर एक साथ होलीं। जिस स्थान पर यह लहरें इकट्ठी होती हैं वह स्थान इस पुलिया के बीच में है। देहरिया में एक बाबू प्रतिदिन संध्या को साढ़े सात बजे सारंगी बजाते हैं उनकी लड़की उनके साथ बार्तालाप करती और कभी कभी हँसती भी है

इससे वायु में लहरें उठती हैं। ये लहरें बहुत ही हलकी होने के कारण अकेली हमारे कान को झिल्ली को नहीं हिला सकतीं। परन्तु गुफा पर टकराकर जब एकत्रित हो जाती हैं तो इनमें शक्ति आ जाती है और हम इनको सुन सकते हैं। "बस यही सारंगी वाला भूत है" हम सबेरे जाकर उनसे इस बात का प्रबन्ध कर आये थे कि लालटेन हिलाने पर वह बाजा बजाना आरंभ करें। लालटेन के हिलने के कुछ देर बाद शब्द सुनाई दिया इसका कारण यह है कि शब्द को देहरिया से यहाँ तक पहुँचने में कुछ समय लगता है। जैसे पानी के बीच में पत्थर फेंकने से उस पर लहरें उठती हैं उसी प्रकार वायु में भी किसी वस्तु को हिलाने से लहरें उठती हैं और ये शब्द की लहरें होती हैं।

लोगों को अब विश्वास हो गया कि भूत फूत केवल देहरिया के बाबू की सारंगी थी। उस दिन से फिर पालनपुर बसने लगा और इस समय वहाँ पर सब प्रकार से अमन चैन है। सारंगी दो साल तक नित्य सुनाई दी परन्तु अंत में देहरिया के बाबू जी की बदली बम्बई के कारखाने को हो गई तब से सारंगी भी बन्द हो गई।

" जोशी "

मूल या जड़

[ले० पंडित मधुमंगल मिश्र, बी० ए०, एस० सी०]

जड़ किसे कहते हैं? लोग पेड़ पौधे वा घास के उस भाग को जड़ कहेंगे जो मिट्टी के भीतर गड़ा रहता है, जो मिट्टी में से पोषक पदार्थ (पालने वाली वस्तुएँ) खींच कर उसे बढ़ाता रहता है। जो देखा जाय कि जड़ का और काम क्या है? तो जान पड़ेगा कि वह वृक्ष को आँधी पानी द्वारा गिरने से बचाती है। जैसे लोग डेरा खड़ा करते समय उसे चारों ओर खूटों के सहारे कई रस्सियों से बाँध देते हैं कि जिससे वह किसी ओर गिरे नहीं, उसी प्रकार से जड़ भी धरती के भीतर फैल कर वृक्ष को खड़ा रखती है। पानी बरसने और मिट्टी गीली होने पर या आँधी चलने पर जड़ का काम बहुत कठिन हो जाता है। कभी कभी आँधी पानी से बड़े बड़े पुराने पेड़ गिर भी जाते हैं। पर ऐसा बहुत कम देखने में आता है। बहुधा पेड़ अपनी जड़ों के प्रताप से अटल खड़े रहते हैं।

लोग जड़ को पेड़ का बहुत आवश्यक भाग समझते हैं। समझते ही नहीं वरन यह सत्य भी है। 'जड़ कट गई' शब्दों से साधारण बोल चाल में भी सर्वनाश का ही अर्थ समझा जाता है। ऊपर कही हुई सभी बातें ठीक हैं। पर सब से पहले जो बात कही गई है उस पर थोड़ा विचार करना है। क्या मिट्टी के भीतर गड़ा हुआ भाग जड़ है? क्या आलू, अरुई (घुइयाँ) सकला (शकरकन्द) जड़ हैं? वनस्पति शास्त्र जानने वाले इन्हें जड़ नहीं समझते; वे क्या समझते हैं यह हम आगे चल कर बतलाएँगे।

यदि हम मूँगफली का छिलका तोड़ डालें तो हमें एक पतले लाल परत में लपेटे हुए दाने मिलेंगे। इस लाल परत या पतले छिलके को हटा दें तो हमें प्रत्यक्ष सफेद दाना दीखेगा। इसके ऊपर एक ओर नोक सी होगी और दूसरी ओर नोक के स्थान पर गोलाई दीख पड़ेगी। दाने की लम्बाई में एक रेखा दीख पड़ती है। इससे हम दाने को तनिक दबा कर दो दालों में बाँट सकते हैं। उस दाने को अधिक न दबा कर चाकू डाल कर इस प्रकार से फाड़ना चाहिये कि नोक वाला भाग पहिले न फटे। यदि मूँगफली गीली होगी तो इस काम में सहायता होगी। मूँगफली की दोनों दालें अलग होने पर भी नोक के ऊपर जुड़ी हुई जान पड़ेंगी और नोक पर

कब्ज़ा सा कुछ दोनों दालों को जोड़ने वाला भाग दीखेगा। इस कब्ज़े को तोड़ डालें तो दो दालों को छोड़ कर नोक के पास कुछ दीखेगा। नोक की ओर जो कब्ज़ा है उसमें से दो छोटे छोटे पत्ते निकले हुए दीखते हैं। इसे पत्राङ्कुर कहते हैं और जिसमें से पत्राङ्कुर निकलता है उसे मूलाङ्कुर कहते हैं।

मूँगफली का उदाहरण इसलिये लिया है कि इसमें ये दोनों भाग स्पष्ट दीखते हैं। दो दल वाले सभी बीजों में ये दोनों भाग अवश्य ही रहते हैं पर उनका दीख पड़ना कभी कभी अत्यन्त कठिन होता है।

यदि हम एक चने को लेकर पानी में भिगोदें तो वह पहिले फूल कर मोटा हो जायगा, फिर धीरे धीरे उसका छिलका ऊपर की ओर फट जायगा और उसकी नोक में से एक अंकुर निकलता दीखेगा। यही धीरे धीरे पानी और गरमी से बढ़ता है। ज्यों ज्यों वह बढ़ता जायगा त्यों त्यों दाल का सत्त खर्च होता जायगा। यह अंकुर बढ़ कर मिट्टी के भीतर सीधा धँस जायगा और उसके ऊपरी भाग से नरम पत्ते निकलेंगे (चित्र १,२,३,४) यही पत्रांकुर है। इसी में वृत्त की डाल, टेहनी और पत्ते पूर्व रूप में छिपे समझना चाहिये। मूलांकुर जो मिट्टी के भीतर गया है सीधा नीचे धँसता चला जायगा। उसी में से कई एक तन्तु निकल कर मिट्टी में इधर उधर

फैल जायँगे। ऐसी जड़ को मूसला जड़ कहते हैं क्योंकि वह मूसल के समान ऊपर मोटी और नीचे धीरे धीरे नुकीली होती जाती है। दो दाल वाले सभी बीजों से निकले मूलाङ्कुर से सदा मूसला जड़ ही निकला करती है।
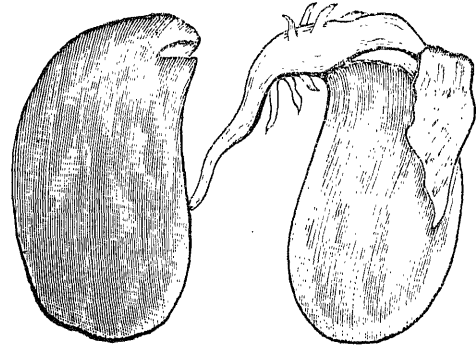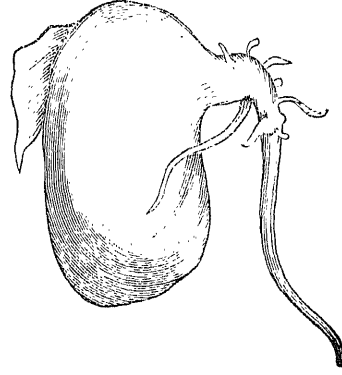
ऊपर कह आये हैं कि बीज के दालों के भीतर जोड़ वा कबजे के स्थान में मूलाङ्कुर और पत्राङ्कुर रहते हैं। बीज की नोक की बिन्दी को हम नाभि कह सकते हैं। उसी नाभि के नीचे दोनों दालों को जोड़ता हुआ, बीच की खोखल में अंकुर सोता हुआ सुरक्षित पड़ा रहता है। जल का गीलापन और प्रकाश की गरमी पाकर वह सोता हुआ अंकुर जाग उठता है और अपने पालन पोषण के लिये बगल के दालों के बेसन, सत्त अथवा आटे को उपयोग में लाता है और मिट्टी में धँस के तन्तुओं को फैला अपने जीवन की सामग्री गीली मिट्टी में से चूस कर
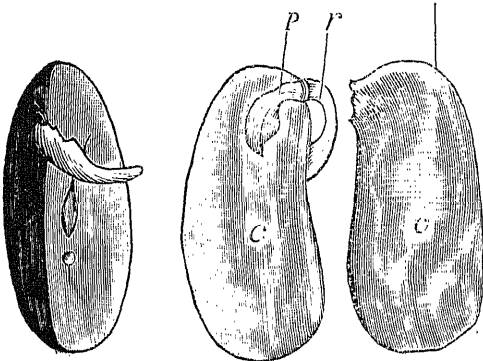
खींचता है। मूलाङ्कुर से जब तक पोषक द्रव्य नहीं मिलता तब तक उसे पालने के लिये दालों का सत्त ही पर्याप्त होता है। उसके खर्च हो जाने पर फटा हुआ छिलका डाल से लगा रहता है और कुछ दिनों में सड़ जाता है और मूलाङ्कुर मिट्टी में से रस चूस कर पत्रांकुर को डाल और पत्ते बनाने की सामग्री देने लगता है। मूलांकुर क्यों नीचे मिट्टी के भीतर घुसता चला जाता है और कहाँ से उसमें मिट्टी को छेदने की शक्ति आती है और पत्राङ्कुर क्यों प्रकाश और वायु की ओर ऊपर को उठता है इत्यादि प्रश्न हो सकते हैं पर इनका उत्तर नहीं दिया जा सकता। नैयायिकों ने कहा है 'वस्तु स्वभावे तर्कों नास्ति' अर्थात् पदार्थों की प्रकृति का कारण नहीं बताया जा सकता। पृथ्वी में आकर्षण क्यों है इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता; आकर्षण पाया जाता है इतना ही कहा जा सकता है। जिस प्रकृति ने छिलके और दाल के भीतर अंकुर को सुरक्षित सुला दिया है और जो प्रकृति गीलेपन तथा गरमी से सोते हुए अंकुर को जगा देती है वही प्रकृति गरमी की तथा दाल के सत्त की सहायता से मूलांकुर में गीली मिट्टी छेद कर धसने की शक्ति और पत्रांकुर में ऊपर उठने का बल देती है। मूलांकुर में केवल धँसने ही की नहीं वरन विवेक अर्थात् भला बुरा हानि लाभ पहिचानने की शक्ति भी पाई जाती है। मनुष्य तथा पशु को सोचने के लिये मस्तिष्क या भेजा दिया है। पर वृक्षों में केवल बोध जनक स्नायु वा नसें मात्र पाई जाती हैं। जब कभी मूलांकुर के मार्ग में पत्थर पड़ जाता है तो वह घूम के बगल में हो कर नीचे धँसता है। यदि मिट्टी सूखी हो तो जड़ सील की ओर झुकती है। यदि नीचे दूर तक रेत हो तो गहिराई में नहीं जाती। गीली मिट्टी के भीतर सील की खोज में गहरी पैठती हुई दूर तक चली जाती है। इमली और पीपल की सोर पक्के कुओं में उतरती और लटकती १६ से २० गज तक देखी जाती है। इसी भांति पत्रांकुर को पत्थर आदि के कारण ऊपर को मार्ग न मिले तो वह मुड़कर प्रकाश और वायु की ओर जाता है और समीपवर्ती मार्ग से ऊपर आता है। परीक्षा के लिये एक गमले में हार्स चेस्टनट के बीज बो दिये गये फिर पीछे से गमले को उलट कर लटका दिया और ऊपर से सींचा, तो मूलांकुर नीचे जाकर प्रकाश में सूख गया परंतु मूलांकुर के तन्तु गीली मिट्टी की दिशा में गये और उन की सहायता से पौधा जीता रहा। मूलांकुर तथा उसके तन्तु में पानी अथवा गीला पन सूंघने की शक्ति जान पड़ती है क्योंकि वे गीले स्थान की ओर तो दूर तक फैल के पहुँच जाते हैं और सूखे पथरीले, रेतीले स्थान की ओर फैलने का नाम भी नहीं लेते। इन्हीं सब सज्ञानताओं के कारण लोग बनस्पतियों को जीवधारी और चैतन्य मानते आये हैं। अध्यापक जगदीशचन्द्र बसु ने प्रबल प्रमाणों से भी यही सिद्ध किया है। तुलसीदास जी कहते हैं "हित अनहित पशु पच्छिहु जाना।" पर पशु पक्षी की कौन कहे उद्भिज में भी सज्ञानता और विवेक पाया जाता है केवल ध्यान पूर्वक देखने की आवश्यकता है

मूलांकुर की सज्ञानता तथा आत्मरक्षा पर यथा अवसर आगे और कुछ कहा जायगा। अभी उनके भेद पर दृष्टि देनी चाहिये। ऊपर कह आये हैं कि दो दाल वाले बीजों से जो मूलांकुर निकलता है वह नीचे भूमि में धँसता चला जाता है और उसे मूसला जड़ (Tap root) कहते हैं। अरहर, मूंग, उड़द, मटर, कुम्हड़ा, इमली, आम, अरण्डी (रेंड़ा) आदि के बीज इसी जाति के हैं।

इनसे भिन्न जाति के बीज भी बहुधा पाये जाते हैं। अर्थात् उनमें दो दाल नहीं होतीं। वे बहुधा भोजन के अन्नों के बीज के समान होते हैं, जैसे धान, गेहूँ, जौ, मक्का, जुआर इत्यादि।

यदि हम जौ के दाने को पानी में भिगो कर गीली मिट्टी में रक्खें तो हमें ऊपर की ओर पत्रांकुर और दूसरी ओर मूलांकुर जाता दीख पड़ेगा। (आकृति ५) इस बार मूलांकुर एक
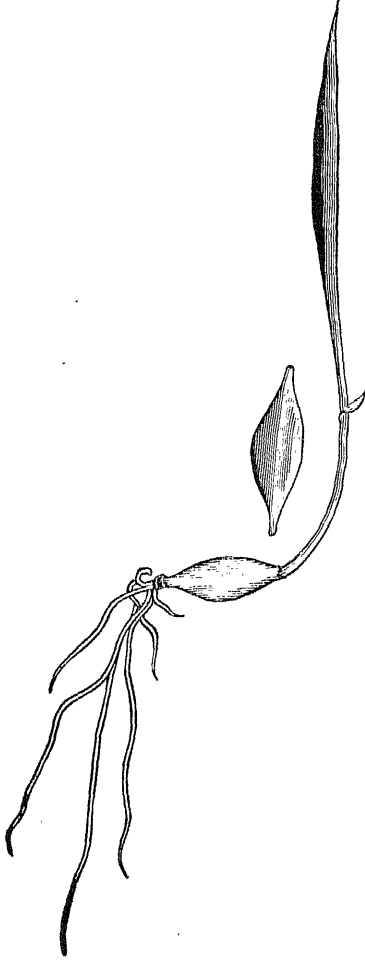
मोटा पदार्थ न दीख कर निकलते ही कई तन्तुओं में बटा और इधर उधर फैला हुआ दीखेगा वह गहराई में भी अधिक नहीं जाता। इनमें मुख्य एक जड़ न हो के कई एक जड़ें निकलती हैं। ऐसी जड़ें झखरा जड़ें कहलाती हैं। इनमें भी जब तक बीज में आटा रहता है तब तक दोनों अंकुर (मूलांकुर और पत्रांकुर) पुष्ट होते रहते हैं और जड़ पोषक द्रव्य को भूमि से नहीं खींचती है। जब बीज का सब आटा ख़र्च हो जाता है तब जड़ें गीली मिट्टी में से रस चूस के पत्रांकुर को बढ़ाती हैं और उसमें क्रम से पत्ते निकलने लगते हैं। बीज का छिलका थोथा हो समय पाकर सड़ जाता है। जड़ें पृथ्वी में से वही द्रव्य खींचती हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता होती है। इस दृष्टि से भिन्न भिन्न अन्न या वृक्षों के लिए भिन्न भिन्न मिट्टी की आवश्यकता जान पड़ती है। यदि मिट्टी में चाहा हुआ द्रव्य यथेष्ट न हो तो उसे खाद देकर पूरा करना चाहिये। एक साल में जिस बीज के बोने से जिस विशेष द्रव्य की मिट्टी में न्यूनता हो गई हो तो ठीक दूसरे साल में वही बीज बोने से फ़सल अच्छी नहीं हो सकती, इसलिये किसान लोग दूसरा ही बीज बोते हैं।

झखरा जड़ मिट्टी में गहरी नहीं जाती, इसलिये उसके पेड़ बहुधा एक वर्ष से अधिक नहीं जीते। यह ऊपर ही ऊपर इधर उधर कई जड़ें या तन्तु फेंक कर अपना थोड़े काल का निबाह कर लेते हैं। जैसे हम लोग थोड़े काल के प्रवास में गृहस्थी का बोझा बहुत नहीं लादते। झखरा जड़ के पेड़ बहुधा घास की जाति के होते हैं। उनके पत्ते यदि फाड़े जाँय, तो लम्बाई में फटते हैं अर्थात् अपनी नोक से डंठल की ओर फटते हैं। मूसला जड़वाले पेड़ों के पत्ते किनारे से बीच वाली नाल की ओर को फटते हैं। गन्ना, बांस आदि इसी झखरा जड़ की जाति में हैं, बांस की घास कई वर्ष तक जीती रहती है। छोटी घास या हरी दूब और पोदीना में यह विशेषता है कि यह एक स्थान से भिन्न भिन्न ओर अपनी शाखा फेंकते हैं। दूब की डाल में जहां जहां गांठ होती है वहीं वहीं से वह जड़ पकड़ लेती है या पकड़ सकती है। इसी प्रकार पोदीने की डाल भी जहां से पत्ती निकलती है वहां से ही जड़ पकड़ लेती है। अर्थात् डालों से भी जड़ें

निकल सकती हैं। यह बात तो साधारण लोगों के सुनने में आई होगी। क्योंकि कितने ही वृक्ष कलम से लगाये जाते हैं। गुलाब की डाल काट कर मिट्टी में गाड़ देने से कुछ समय में जड़ पकड़ लेती है। एक घाटी में एक वृक्ष किसी कारण से गिर पड़ा और सामने की मिट्टी पर उसकी डालों ने गिर के मार्ग छेंक लिया। उसकी डालों ने मिट्टी से भिन्न २ स्थानों पर पोषण खींच खींच कर प्रायः तीस नये वृक्ष उत्पन्न कर दिये। डाल से निकली हुई जड़ें झखरा ही होती हैं। मूसला जड़ वाले वृक्ष की डाल या कलम से उत्पन्न हुए वृक्ष की भी जड़ झखरा हो जाती है। इसका कारण यह जान पड़ता है कि प्राणरक्षा की चेष्टा में और सामग्रियों के अभावमें कई जड़ें भिन्नभिन्न दिशा में पोषण द्रव्य खोजने को निकल पड़ती हैं और दौड़ मारती हैं। यदि किसी झाड़ को केवल जल में लगाया जाय और अंधेरे में रक्खा जाय तो उस की जड़ें लम्बी होंगी। उदाहरण के लिये, प्याज को चौड़े मुंह की शीशी में पानी भर के इस तरह रक्खें कि उसका रेशेवाला चपटा भाग पानी में डूबा रहे और नोकीला भाग ऊपर रहे तो तीन चार दिन में जड़ें बहुत लम्बी फैली हुई दृष्टि पड़ेंगी। ऐसे ही यदि गाजर के ऊपरी चपटे भाग को चाकू से काट कर एक गहरी कटोरी में मिट्टी पानी भर कर तीन चार दिन के लिये किसी अँधेरी कोठरी या सन्दूक के भीतर रख दें तो जड़ें लम्बी होंगी। पहिले पक्ष में मिट्टी में, दूसरे पक्ष में प्रकाश में रखने से जड़ें उतनी लम्बी न होंगी। जान पड़ता है कि जल और अंधेरे में पोषक द्रव्य न पाकर जड़ें दूर दूर धावा मारती हैं; कदाचित् दूर चलने से उन्हें चाहे हुए पदार्थ मिल जायँ। कहना नहीं होगा कि इस भाँति की कठिनाई में ये वनस्पति अधिक समय नहीं जी सकतीं अथवा यदि जीवें भी तो अच्छी न होंगी। बिना भोजन या स्वल्प भोजन से जीवन यात्रा सभी के लिये कठिन होती है।

बालकों की पुस्तकों में बहुधा एक कहानी पाई जाती है, जो संक्षेप से यों है कि जाड़े के दिनों में एक टिड्डा कांपता हुआ भीख मांगने चींटियों के पास गया। चींटियों ने पूछा कि तुमने गरमी और बरसात में अपना भोजन हमारे समान जाड़े के लिये क्यों नहीं इकट्ठा कर लिया? श्रमी चींटियों के उदाहरण से बालकों को भोजन प्राप्त करने के लिये उद्योगशील बनाने का प्रयत्न किया जाता है। पर चींटियों को यह कौन सिखाता है? प्रकृति? वृक्षों में भी यही पाया जाता है। उन्हें भी प्रकृति सिखाती है। इस उत्तर से हमें संतोष न कर लेना चाहिये। आवश्यकता, प्रयोजन और गरज सभी को सिखा लेती है। कितने ही वृक्ष अग्रसोची होते हैं; वे अपना भोजन जाड़े के दिनों के लिये जड़ों में इकट्ठा कर लेते हैं। मूली, गाजर, शलगम इस प्रकार की जड़ों के उदाहरण हैं। लोगों को रूढ़ी मूली अच्छी नहीं लगती। इसका क्या कारण है? रूढ़ी मूली में गूदा थोड़ा ही होता है और जड़ के तन्तु वा रेशे अधिक होते हैं। सचमुच ये जड़ें अपने वृक्ष के पोषण के लिये खाद्य पदार्थ इकट्ठा कर लेती हैं अतः जाड़ा बीतने पर भी पौधा जीवित रहता है। मूली जब जाड़ा बीतने पर भी नहीं उखाड़ी जाती तब वह अपना पालन संचित सामग्री से करती है और जब वह खर्च हो जाती है, केवल तन्तु समुदाय या रेशा ही शेष रह जाता है, तब हम उसे रूढ़ी मूली कहते हैं। इस तरह पर जान पड़ता है कि मूली गाजर आदि गूदेदार जड़ें हैं, इन जड़ों में और तन्तु भी रहते हैं पर वे उखाड़ते समय टूट जाते हैं, कभी कभी लगे भी रहते हैं। यही तन्तु भोजन लाकर इकट्ठा कर दिया करते हैं। यह दूरदर्शिता इन्हें प्रकृति सिखलाती है, इतना कहने से संतोष नहीं होता। जैसे मेंडकोंको वायु मण्डल में परिवर्तन उपस्थित होते ही भावी वर्षा का ज्ञान हो जाता है वैसे ही इन वनस्प-

तियों को भावी शीत का भी ज्ञान हो जाता है। भावी वर्षा का हाल हम लोग मेढकों से पहिले नहीं जानते, वे इससे पहले जान लेते हैं, वैसे ही भावी शीत का ज्ञान इन गूदेदार जड़ वाले पेड़ों को भी हो जाता होगा ऐसा अनुमान किया जाता है।

बड़ का वृक्ष हमारे देश में बहुधा पाया जाता है। इसकी जड़ों में भी विशेषता है, जिसे यहाँ बतला देना उचित होगा। ध्यान देने की मनोरञ्जक बात तो यह है कि बड़ का वृक्ष सीधा बीज से लगता हुआ नहीं पाया जाता, बड़ के फल को पक्षी खा के बीट कर देते हैं। उनके पेट में बीज का कुछ ऐसा परिवर्तन होजाता है कि बीट में से निकल कर वह जड़ पकड़ लेता है और जड़ पकड़ कर धीरे धीरे खूब बढ़ता है। सरसों या राई बराबर बीज से यह विशाल वृक्ष उत्पन्न होता है, और बढ़ कर भिन्न भिन्न दिशाओं में अपनी शाखाएँ फेंकता है। उन शाखाओं से काल पाकर कुछ रेशे सुतली वा रस्सी के समान लटकने लगते हैं; पहिले यह अलग अलग दीखते हैं पर धीरे धीरे एकत्रित होकर एक डाल सी लगने लगती है और क्रम से लटकती हुई आकर भूमि को छू लेती है और फिर भूमि में धस कर जड़ बन जाती है अर्थात् भूमि से रस निकाल कर वृक्ष के पोषण के लिये ऊपर उसकी शाखाओं में भेजने लगती है। पहिले तो रसका प्रवाह ऊपर की शाखा से नीचे आकर उन्हें पुष्ट करता था पर पीछे से ये कमाऊ लड़के भूमि से रस खींच के अपने घर के विस्तार में सहायक होते हैं, यह भी एक (वायवीय) जड़ का अनोखा दृष्टान्त है। डालें क्यों नीचे तन्तु फेंकती हैं? इस वृक्ष को ज्ञान रहता ही होगा कि एक ही स्थान से पोषण होने से बड़े घर का खर्चा न चलेगा। सो अन्यत्र भी जड़ें भेजनी चाहियें। बहुधा जड़ें मिट्टी के भीतर ही चारों ओर फैलती हैं पर यह वृक्ष भूमि के ऊपर की शाखाओं से जड़ें फेंकता है। इस प्रकार से जड़ें बढ़ाता हुआ यह बहुत बड़ा हो जाता है। इसकी लकड़ी काम की न होने से यह बहुधा काटा नहीं जाता। लोग कहते हैं कि इसकी छाया कूप जल के समान गरमी में शीतल और शीत ऋतु में गरम होती है।

बड़ की लकड़ी तो काम की नहीं होती पर उसकी जड़ बड़ी पोढ़ी होती है। बीस तीस गज ऊँचे पत्थर के स्तरों के बीच में, पत्थरों की संधि में होकर धसती और समय पाकर उसे फोड़ती और गहिराई में जाकर जल को खोज लेती है।

देवदार या ताड़ की जाति के कुछ वृक्ष ऐसे होते हैं जिनकी जड़ों का अधिकांश भूमि के ऊपर रहता है। और तीन पैर की मेज के समान जड़ों के ऊपर पूरा वृक्ष खड़ा रहता है। नीचे की जड़ें बहुधा सूख जाती हैं, इस अवस्था में इन जड़ों के ऊपर की पींड़ से नई जड़ें निकलती हैं, कभी कभी ये जड़ें इतनी ऊँची रहती हैं कि वृक्ष के नीचे मनुष्य खड़ा हो सकता है। जहाँ कहीं ऐसा एकाध बड़ा वृक्ष होता है वहाँ अनेक छोटे छोटे वृक्ष भी उसी भाँति के फैले रहते हैं, यह भी मिट्टी के ऊपर का या वायवीय जड़ का अच्छा उदाहरण है।

कई एक वनस्पतियों की जड़ें दूसरे वृक्षों की पींड़ ही पर होती हैं वे पींड़ ही से अपना पोषक द्रव्य खींचती हैं और पींड़ पर से ढलकता हुआ जल सोखती हैं। कभी कभी पींड़ ही नहीं बरन कुल वृक्ष को ये सुखा डालती हैं। अमर बेल बेर के झाड़ों पर फैलती है और समय पाकर पेड़ सूख जाता है। उसकी जड़ कहीं दीख ही नहीं पड़ती, परन्तु डालें बेर की डाल प्रशाखाओं में से पोषण द्रव्य चूस लेती हैं।

कई एक झाड़ियों की जड़ें समुद्र तट के रेत या बालू को ऐसा पकड़ती हैं कि लहरों

के कारण किनारा गिरने नहीं पाता। लोग उन्हें समुद्र तट पर कगारों की रक्षा के लिये लगाते हैं। किसी किसी घास की जाति के वृक्षों की जड़ें पशुओं के खाने से पत्तों को बचाने के लिये मिट्टी में धस कर वृक्ष की शाखाओं को नीचे खींच ले जाती हैं ऐसा करने से वृक्ष ऊपर नहीं उठने पाता और पत्ते बचे रहते हैं, पशुओं से काटने योग्य ऊँचाई पर नहीं पहुँचते।

लोरैन्थस नामक एक वृक्षाश्रयी लता के फल बेर कैसे होते हैं, उसके बीज लसोढ़े [रुसल्ला] के समान चेंपदार गूदे के भीतर रहते हैं, कभी कभी जब उसकी बेर पत्ते वा पत्थर आदि पर गिरती है तब चेंप की सहायता से मूलाङ्कुर उत्पन्न होता है और जब वह एक पैसे के बराबर लम्बा हो जाता है तो उसकी नोक पर एक भाग चपटा हो जाता है और यदि वह पत्ते आदि का स्थान लता लगने के उपयुक्त नहीं होता तो चपटे भाग को कहीं चपका कुल बीज को वायु में उठा कर दूसरे स्थान पर रखता है और वह भी उपयुक्त नहीं होता तो फिर भी ऐसे ही बीज को उठा कर कई बार हटाता है; बहुधा डालों पर बीज को पहुँचा कर जड़ पकड़ता है। कदाचित पत्तों की अपेक्षा डालों पर उसके लगने में सुभीता होता होगा।

जड़ों के मिट्टी के भीतर रहने में कई प्रकार के कीड़ों से नष्ट हो जाने का भय रहता है, इस कारण बहुत सी जड़ों में किसी प्रकार की दुर्गन्ध विषैला रस या गोंद आदि उत्पन्न होते हैं और चूहे कीड़े मकोड़े आदि उन्हें हानि नहीं पहुँचा सकते।

ऊपर के वर्णन से ज्ञात हुआ होगा कि जड़ें मिट्टी के भीतर और ऊपर भी होती हैं, मिट्टी के ऊपर वाली जड़ें वायवीय जड़ कहलाती हैं। जड़ों के मुख्य दो भेद ये हैं:—मूसला और झखरा। मूसला जड़ों से कभी कभी मोटी या पतली जड़ें निकलती और फैलती हैं और कभी कभी उनसे केवल बारीक तन्तु ही निकलते हैं। ये बारीक तन्तु सभी जड़ों पर होते हैं। कोई कोई मूसला जड़ें दूरदर्शिता से गूदा इकट्ठा कर लेती हैं तब उन्हें गूदेदार जड़ कहते हैं। झखरा जड़ें मूलाङ्कुर से कई शाखाओं में निकलती हैं और उन पर बारीक तन्तु होते हैं, डालों की अपेक्षा जड़ें दृढ़तर होती हैं और उनमें सज्ञानता पाई जाती है, वे वनस्पति के लिये आहार एकत्रित करती हैं। यह पोषक द्रव्य कच्चे भोजन के समान होता है। डालों में जाकर पत्तों के द्वारा खींचे हुए (अक्सिजन Oxygen) प्राणप्रदवायु से मिल कर वह पचने योग्य बनता है।
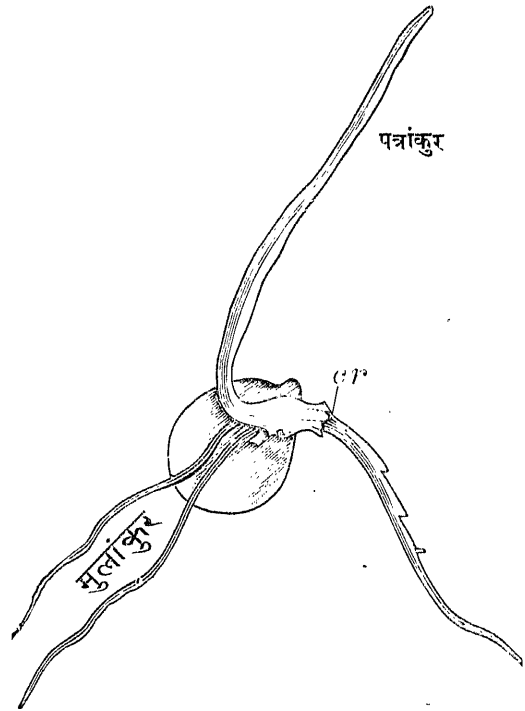
मकई या बड़ी जोन्हरी से निकलता हुआ अंकुर
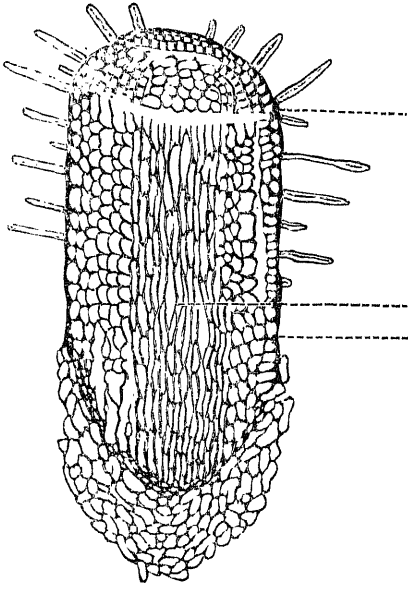
लम्बाई में फाड़ी गई जड़ का चित्र

सातवीं आकृति में एक जड़ को लम्बाई में ऊपर से नीचे की ओर काट कर भीतरी भाग दिखलाया है, बाहर की ओर अगल बगल के खाने बड़े हैं वे ही बाहरी धक्के सहते हैं इस लिये वे पोढ़े और कड़े हैं। उनके भीतर के खाने छोटे और घने हैं जैसे जैसे बाहर के खाने घिसते और नष्ट होते जाते हैं वैसे वैसे भीतर की ओर नये खाने बनते जाते हैं। जड़ के बीच में लकड़ियों के बने हुए पदार्थों के खाने खोखले हैं। इन्हीं की सहायता से कच्चा चूसा हुआ रस ऊपर को चढ़ता है और ऊपर जाकर वह वनस्पति का भोज्य पदार्थ बन जाता है। इन खोखलों में रस भरा रहता है उनमें अगल बगल से वायु प्रवेश नहीं कर सकती और न रस चू कर बाहर जा सकता है, जैसे बत्ती तेल को ऊपर उठाती है वैसे ही रस इन्हीं में होकर ऊपर जाता है। किसी किसी वनस्पति में यहीं पर गूदा, शक्कर चेंप या मिठास एकत्रित रहता है जो समय २ पोषण के काम आता है। यहां पर आने जाने का प्रवाह सा नहीं लगा रहता बरन प्रयोजन के लिये थोड़ा बहुत संचय भी रहता है। बाहरी बगल में लगे हुए कई एक तन्तु दीख पड़ते हैं। इनमें इकहरे खानेवाले रेशे होते हैं, ये मिट्टी से रस को वैसे ही सोखते हैं जैसे कपड़ा वा डोरा पानी सोखता है। यदि मिट्टी गीली न हो तो ये रस को मिट्टी में से न निकाल सकें। पानी मिट्टी में मिलकर उसके पदार्थों के परमाणु घोल लेता है अर्थात् छोटे छोटे टुकड़े कर लेता है जिन्हें तन्तु वा जड़ें अपने छोटे छिद्रों के भीतर खींच सकती हैं। यदि तोड़ने और कणों को फोड़कर छोटा करने की सहायता पानी से न मिले तो मिट्टी में पोषक द्रव्य के रहते भी पेड़ सूख जाय; कहावत भी है "आब आब करि पुतऊ मरिगे खटिया तरे धरा पानी"।

जड़ के वर्णन में डाल का वर्णन उचित नहीं दीखता पर जड़ और डाल में कई प्रकार की समानता होने से भ्रम होता है। इनका परस्पर अन्तर जान लेने से डालों पर जड़ का भ्रम न होगा। राजा नल पुष्कर से जुआ में राजपाट हार के दमयन्ती के साथ बन में चले गये और वहाँ कन्द मूल खाकर दोनों ने जल पान किया। यह कन्द मूल क्या है? शकरकन्द (सकला) मीठा होने के कारण शकरकन्द कहाता है। उसमें से शक्कर शब्द निकाल लें तो कन्द भर बच जाता है कन्द मिट्टी के भीतर होता है। आलू अरुई (घुइँयाँ) सूरन आदि मिट्टी के भीतर होते हैं, क्या ये सब जड़ कहे जा सकते हैं?

मूलाङ्कुर में से एक बार पीका निकलता है। उसमें कभी कभी डाल और पत्ते देख पड़ते हैं। फिर मूलाङ्कुर में से डाल और पत्ते नहीं निकलते। मूलाङ्कुर धीरे धीरे गहरी भूमि में धसने लगता है उसमें से पत्ते वाली डालें या शाखाएँ नहीं निकलतीं। झखरा जड़ में कई एक जड़ें और उन पर तन्तु होते हैं और वे पोषक द्रव्य को बटोरती हैं। उन पर

पत्ते नहीं आते मूसला जड़ से भी छोटी २ बगली जड़ें भिन्न भिन्न दिशाओं में शाखाओं के समान फैलती हैं और मुख्य मोटी मूसला जड़ और बगली जड़ों पर तन्तु होते हैं पर उन पर पत्ते नहीं होते, इस प्रकार से जिस काठ रूपी वृक्ष के अवयव से पत्ते निकल सकते हैं उसे डाल कहते हैं और जिस अवयव से पत्ते नहीं निकलते और जो पृथ्वी में से पोषण द्रव्य एकत्रित करता है उसे जड़ कहते हैं। वह अवयव चाहे मिट्टी के भीतर हो चाहे बाहर।

ध्यान करना चाहिए कि सूरन (जमीकन्द वा ओल) अरुई (घुइँयाँ) शकरकन्द (सकला) और आलू को मिट्टी में गाड़ देने पर उनमें से अंकुर वा पीके निकलते हैं। आलू और अरुई पर ध्यान करने से बहुत सी गोल गोल आँखें दीख पड़ती हैं और यदि उन्हें काट के अलग अलग बोया जावे तो प्रत्येक आँख से अंकुर वा पीका और उसमें से एक पूरी जड़ निकलेगी। इससे जान पड़ता है कि ये जड़ें नहीं किन्तु डालें हैं। ऐसे ही लहसुन और प्याज भी जड़ नहीं है। जैसे मूली और गाजर गूदेदार जड़ें हैं, वैसे ही ये (आलू लहसुन आदि) गूदेदार डालें हैं, क्योंकि इनमें पत्ते निकलते हैं।

वृक्ष पत्तों से सांस लेते हैं। और समय पा कर पुष्ट होने पर उनमें फूल और फल लगते हैं। डाल पत्ते फूल फल बीज आदि सभी में प्रकृति का गौरव दीख पड़ता है। और इस निर्माण चातुरी को देख यह कहते संकोच होता है कि यह सब अन्धी प्रकृति के काम हैं। इन सब का विलक्षण सम्पादक कोई और चैतन्य शक्ति या विधाता अदृश्य रूप में लक्षित होता है। ध्यान करने से विलक्षणता बोध होने पर, विनोद और आह्लाद से चित्त के भर जाने पर, कौशल से मुग्ध होने पर, चैतन्य परमात्मा का अनुमान होता है। वह परमात्मा इन्द्रियों द्वारा बोध गम्य नहीं है, उसे अनुमान द्वारा सिद्ध करने के लिये नैयायिकों ने इतना सिर मारा, परन्तु इतना ही कह सके 'स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते'।

मधुमङ्गल मिश्र।

खेतीबारी

१—छछूँदर गुरु

[लेखक—श्री० गिरजाकुमार घोष]

"गमफल की नानी अब भीख माँगने लगी।"

"कौन, मिसिराइन? उसके भाग्य में अभी बड़ी बड़ी दुर्गतियां लिखी हैं। अभी क्या हुआ है। देखती जाओ।"

"क्या देखूँ? भीख माँगना उसे बुरा थोड़ा ही लगता है। वह आज कल बड़ी मगन है।"

"भीख माँगने में उसे दुःख के बदले सुख मिलता है, यह कैसी बात तुमने कही?

"वह आज आयी थी। मैंने उससे कहा, मिसिराइन, तुम तो नाहक रूठ के चली गयीं। हमने तुमसे तो कुछ भी नहीं कहा था। जो बात हुई सो हुई, अब से फिर तुम हमारे यहाँ रोटी बनाया करो। पर वह क्या बोली, कि बहू, तुम तो हमको चार ही रुपल्ली न दिया करती थीं, तिसपर गर्मी के दिन दोनों बेर चूल्हा फूँकना पड़ता था। अब तो राम जी की दया से मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ता। मैं अब माँग जाँच कर जो ले आती हूँ उसी से गुजारा हो जाता है। यह रोजगार बहुत अच्छा है। मैं अब नित्त आठ दस आने कमा लेती हूँ। कल ही खा पी के मैंने साढ़े सात आने का आटा बेचा था।"

"हरे! हरे! सचमुच कलियुग के दिन आ गये। शास्त्रों की बातें भी सब उलटी होती दीख पड़ती हैं। अब तक तो हम लोग सुना करते थे कि

उत्तम खेती, मध्यम बान
निर्घिन सेवा, भीख निदान

जो भीख माँगना सब से निदान या अन्तिम दशा समझा जाता था, वही अब सुख और लाभ का रोजगार हो गया है। और जो खेती सब जीविकाओं में उत्तम मानी जाती था अब हम उसी खेती के करनेवालों को नीच गँवार कहा करते हैं, पर हम भूल जाते हैं कि इन्हीं गँवारों का पसीना पी पी कर हम शहरवाले बाबू लाला बन कर ऐंठे फिरा करते हैं।"

"यह बात कुछ झूठ थोड़ी ही है? आप लोग तो बाबू साहब बने फिरें चश्मा, घड़ी, टोप, कालर वालर डाटे फिरें, और जो लोग आप सब के लिए पसीना बहाकर अन्न उपजावें वे गँवार कहलावें। और व्यापारी बनिए भी तो घृणा ही से देखे जाते हैं। जो सेवा निर्घिन यानी निंदित और घिनौनी समझी जाती थी, अब पढ़े लिखे लोग उसी के लिए तरसा करते हैं, तब रामफल की नानी को भी भीख माँगने में क्यों लाज लगने लगी! और सच पूछिए तो आज कल के जितने मुफ़्ख़ोरे हैं वे सब भिख-मंगे ही तो हैं। बनारस में कितने ही भिखमंगों के पास मरतीबेर पांच पांच सौ रुपयों की पूँजी पायी गयी है।"

"हाँ, नौकर चाकर तो काम छोड़ कर भीख माँगने का रोजगार करें और तुमको अपने हाथों ही रसोई बनाना और कभी कभी चौका बर्तन भी करना पड़े। सचमुच कलियुग आ गया।

"पर यह तो बताइए कि जो खेती ही सब कामों में उत्तम बतायी गयी है तो फिर लोग कब से और क्यों उससे जी चुराने लगे?"

"ज्यों ज्यों हम में सभ्यता समाती गयी त्यों त्यों हम 'सुकमार' बनने लगे और अपने हाथों से खेती बारी करना भूलने लगे। धूप और पानी बरसते में घूमना अच्छा या पंखा और खस की टट्टी लगा कर बरफ का पानी पीना अच्छा?"

"ध्यान देना ही नहीं, तन मन धन से काम करना चाहिए। देखो, हिन्दुस्तान खेतिहर देश है। यहाँ की भूमि को कवियों तक ने सजला, सफला, शस्यश्यामला इत्यादि बतलाया है। हम हिन्दुस्तानियों को खेती बारी ही का रोज़गार उठाना बहुत लाभदायक होगा। और बनिज भी हम करें तो अपनी धरती की उपज ही को बेचने से हमें फ़ुरसत नहीं मिलेगी। पर हाय, जैसा तुम कहती हो, हमको शिक्षा के बदले सभ्यता का रोग जो लग गया है।"

"पर एक बात तो सुनिए। आप कहते हैं कि हिन्दुस्तान खेतिहर देश है। और पुराण इतिहासों में लिखा है कि ऋषि मुनि लोग बनों में रहते थे, फल फूल और कन्द मूलों ही से पेट भर लेते थे, उनको खेती सेती थोड़ी ही करनी पड़ती थी। वे भला कैसे अपना पेट भरते होंगे! और वे अकेले भी नहीं होते थे। हर एक बड़े बड़े ऋषीश्वर के साथ सैकड़ों हज़ारों चेले चपाटे भी बन ही में रह कर विद्या पढ़ा करते थे! बात ठीक समझ में नहीं आती।"

"बात यों ही समझ में नहीं आवेगी। मैं जो कहूँ, ध्यान लगा कर सुनती जाओ। तुम ने जो कहा कि ऋषि मुनि लोग बिना खेती बारी किये स्वतः उपजे हुए जंगली फल और कन्द मूलों ही से पेट भर लेते थे, सो बात सच है। उनको पहले खेती बारी करने की आवश्यकता नहीं होती थी। पहले हिन्दुस्तान में ऐसे वन उपवन बहुत थे जहाँ सचमुच आप से आप फल फूलों ही के जंगल के जंगल खड़े रहते थे। अब भी

अफ्रिका महाद्वीप के भीतर बहुतेरे जंगली प्रान्त पड़े हुए हैं जहाँ केले के पेड़ों के बड़े बड़े जंगल लगे हुए हैं, और जहाँ के रहने वाले न खेती करते हैं, न नौकरी चाकरी। वे लोग केले खाते हैं, केले सुखा कर उसकी रोटी पकाते हैं, केलों ही से मदिरा तक बना कर पीते हैं और केले की पत्तियों ही से अपने शरीर की लाज भी रक्खा करते हैं। यह केले ठीक हमारे यहाँ के केलों के समान नहीं होते, उनसे मिलते जुलते से होते हैं—उस जाति के केलों का साधारण नाम "बनाना" प्रसिद्ध है। हमारे प्राचीन पुराण ग्रन्थों में भी तो कदलीवनों की बात पायी जाती है। केला खाकर मनुष्य के लिये जीता रहना असम्भव नहीं है। केले में शरीर पुष्ट रखने के उपादान बहुत रहते हैं। तो हमारे हिन्दुस्तान में भी केले और दूसरे फलों के जंगलों की बहुतायत रही होगी। फिर उस समय इतनी आबादी भी नहीं थीं, जो लोग थे उनको पेट भर खाने के लिए बहुत फल मिल जाते थे।

"अब वे जंगल कहाँ गये? मेरा जी चाहता है कि मैं भी सीता जी की नाईं बनों में घूमा करूँ।"

"और जो कहीं कोई रावण सावण आकर तुम्हें उड़ा ले जाय तब?—हाँ, जंगल अब नहीं हैं। जहाँ तहाँ हैं भी तो मनुष्यों की संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती जाती है त्यों त्यों वे कटते जाते हैं। देखो, इलाहाबाद में ही गंगा यमुना के संगम पर भरद्वाज ऋषि का आश्रम था। आज कल जहाँ म्योर कालेज बना है, वही स्थान इन ऋषि का आश्रम कहा जाता है। पहले भरद्वाज जी वहाँ शिक्षा देते थे, अब वहाँ साहब लोग शिक्षा दे रहे हैं। कालेज के पास ही थोड़ी दूर पर गंगा और यमुना जी दो ओर से आकर गले से गला मिलाती थीं। वहाँ की भूमि देख कर अब भी वहाँ पर किसी समय नदीगर्भ का होना असम्भव नहीं जान पड़ता। सिपाहियों के गदर से कुछ दिन पहले एक विलायती विद्वान लाट पादरी (बिशप) हिबर साहब इलाहाबाद आये थे। कर्नैल गंज मुहल्ले में जो गिरजा बना हुआ है, बिशप हिबर साहब के समय में वह बन चुका था। हिबर साहब ने अपनी यात्रा की पुस्तक में इलाहाबाद के नीचे गंगा जी के दूसरे पार झूसी में हाथियों के चरने का समाचार लिखा है। हो न हो तब तक झूसी में कुछ न कुछ जंगल रहे हों। सो पहले यहाँ सब ठौर जंगल अधिक थे, और वहाँ के लोग जंगली फलों से पेट भर सकते थे, इस बात को सत्य मान लेना अनुचित नहीं होगा।

"मुझे खेती आदि की पुरानी बातें सब समझा कर कहिए। सब से पहले किसने खेती की विद्या निकाली?"

"अच्छी बात पूछी? खेती विद्या के हमारे गुरू हैं श्री छछूँदर जी महाराज।"

"आप तो हँसी करने लगे!"

"नहीं, हँसी नहीं, मैं सत्य बोलता हूँ। इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पुरखा लोग, हमारे पूर्व पुरुष सब से पहले किसी उत्तरी देश से घूमते फिरते भारतवर्ष की उपजाऊ भूमि में आ बसे थे। वे अपने साथ गौओं का दल भी रखते थे। गौएँ आप ही घूमती फिरती चरती चुगती हरी हरी घास के लालच से आगे बढ़ती जाती थीं और मनुष्य उनको चराते फिरते थे, और फलादिक के सिवा गौओं के दूध से भी अपना निर्वाह करते थे। धीरे धीरे उन्होंने हल जोतना सीखा। हल को प्राचीन भाषा में

'अर' कहते थे, और 'अर' चलानेवाले ही 'अर्य' के नाम से पुकारे जाने लगे। इसी हल चलाने या खेत खोदने की शिक्षा ने आर्यों को धरती माता के साथ बाँध दिया, वे उपजाऊ धरती जहाँ पाते वहीं खेती कर के बस जाते, और इस प्रकार वे लोग बस्तियाँ बना बना कर जहाँ तहाँ बसने लगे और राज्य रक्षा और खेती और लेन देन तथा व्यापार भी बढ़ता गया। जो लोग विद्या और परमार्थ की खोज में लगे, वे बनबासी ही रहे और बन के कन्द मूलों ही से उनका काम चलने लगा।"

"यह तो सब हुआ, पर श्री छछूँदर गुरू कहाँ गये?"

"गुरुजी राह बतलाकर, कान फूंक कर अलग हो गये। छछूँदर ही ने अकेले गुरुआई नहीं की, उनका सहकारी हम केंचुए को भी मान लें तो अनुचित नहीं होता।"

"आप के लेखे तो कुछ भी अनुचित नहीं है। अभी तो आप न जाने क्या क्या उचित बतावेंगे!"

"मैं अपनी मनगढ़न्त बात नहीं कहूँगा। हम सुना करते हैं कि 'अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम, दास मलूका कह गये कि सब के दाता राम।' अब भी कुछ जंगली लोग पाये जाते हैं जो खेतीबारी नहीं करते, धरती से जो कुछ आप से आप मिल जाता है उसे लेकर दिन काटते हैं, और जब वहाँ की उपज घट जाती है तो आगे बढ़ जाते हैं। परन्तु बहुधा हमारे आर्यों की नाईं इतने ही से काम निपटते न देख उन को खेतीबारी का रोजगार उठा लेना पड़ा। पहले पहल जंगलों में इन लोगों ने केंचुओं और छछूँदरों ही को धरती खोदते देखा, और जहाँ ये जीव धरती खोदकर उलट पलट देते वहाँ बहुधा पौधे आदि भी अधिक जल्दी उग आते। और, बात भी यही ठीक है कि धरती को बिन खोदे उसकी उपजाऊ शक्ति बढ़ने नहीं पाती। यह सिद्ध करने के लिए इङ्गलैण्ड के हर्टफोर्ड के ज़िले में परीक्षा की गयी। एक खेत में गेंहू के बीज छींट दिये गये और खेत योंही छोड़ दिया गया। यों बोते समय जितने बीज एक एक जगह बोये जाते हैं, बेहिसाब छींट देने से जहाँ तहाँ उससे अधिक दाने ही छींटे गये होंगे परन्तु गेंहूँ के पौधे बहुत कम उगे। दूसरे साल दो ही चार गेंहू की बालें निकलीं और तीसरे साल वह भी नदारद।"

"खेत खोदने की जरूरत ही क्या है? बिना खोदे बीज जमते क्यों नहीं?"

"खेत में हल देने से धरती पर की घास, काँटे, सब खुद जाते हैं, और गेंहू के बीज जो उनके रहने से नहीं जमने पाते, बच जाते हैं। जब तक धरती खूब ढीली, भुर भुरी और हवा खायी हुई न होगी तब तक बीज कभी अच्छी तरह न जमेगा। हल या कुदाली से खेत टूट जाता है, और मिट्टी उलट पलट कर हवा पानी, पाला, ओस आदि को पी लेती है, और 'सुकुमार' बीज के ठहरने के लिए नरम गद्दी सी बन जाती है। एक बड़ा लाभ खेत खोदने से यह है कि उसमें तरी बनी रहती है। बिना जोती हुई और कड़ी धरती पर पानी बरसे तो वह पहले तो बह कर निकल जायगा, फिर भाप बन कर सूख भी जायगा। धरती के भीतर बरसात का या सींचा हुआ पानी नहीं या बहुत कम घुस सकेगा। पर वही धरती खोद दी जाय तो बरसा हुआ पानी—सब नहीं तो बहुत सा—उसी में पैठ जायगा। खेत पहले खूब खोदा जाय, फिर उस पर गहरा हल चलाया जाय, और अन्त में खोदी हुई मिट्टी हेंगे से बराबर कर दी जाय तो सारा

खेत ब्लाटिङ्ग अर्थात् या स्याहीचट कागज या बताशे के समान बन जाता है और पानी पड़ते ही उसे सोख लेता है। विलायत में तो खेती के नये नये ढंग निकाले जा रहे हैं। बड़ी बड़ी कलों से पथरीली और परती धरती खोद कर बोने के योग्य बनायी जाती है। पथरीली भूमि में पत्थरों से भी बहुत काम निकल जाता है। कुहरे के दिन कोई पत्थर उठाकर देखो तो उसके नीचे धरती पर कुछ सफेद रंग का कुहरा या पाला बटुरा हुआ पड़ा मिलेगा। विलायत में, जहाँ पथरीली धरती बहुत है, अंगरेज़ खेतिहरों को अपने खेतों में बहुत कम खादकूड़ा या पाँस डालना पड़ता है। वे एक ऐसी कल से काम लेते हैं जो एक साथ हल, खुर्पी फावड़े और हेंगे का काम करती जाती है।"

"और गुरू महाराज? उनसे क्या सीखा?"

"जितने तरह के एक से एक अच्छे हल किसानों ने आज तक बनाये हैं, एक भी केंचुए की कारीगरी की बराबरी नहीं कर सकते। डारविन साहब ने अपनी बुढ़ाई में केंचुओं ही पर एक पुस्तक लिखी थी। आप ने बतलाया है कि बहुधा स्थानों में धरती के ऊपर वाली सारी मट्टी केंचुओं के शरीरों में होकर निकल आती है। केंचुए सचमुच वही सब काम कर दिखाते हैं जो कोई खेतिहर श्रम से करना चाहता है। मिट्टी को खोदना, उलटना, पलटना हवा पिलाना, बराबर करना,- केंचुए ये सब काम किया करते हैं। और इसी नियम पर अब बड़ी बड़ी कलें बनायी गयी हैं जो रेलगाड़ियों के एंजिन की भाँति गर्म पानी के भाप से या आजकल की मोटर गाड़ियों की शक्ति से भी चलायी जाती हैं और एक साथ केंचुओं की बतलायी हुई सब विधियों को पूरा किया करती हैं। परन्तु केंचुए धरती को इतनी गहराई तक खोद डालते हैं कि मशीनें भी उतना नहीं खोद सकतीं। केंचुए धरती में हल चलाते हैं, उसकी बहुत नीची गहराई की तरी को ऊपर पहुँचाते हैं, और साथ ही साथ धरती के ऊपर की बेकाम घासों और पौधों को खोद खाद कर सूखने और सड़ने को डाल देते हैं और उन्हें खाकर हज़म कर के फिर सार या पाँस बना निकाल देते हैं जिससे धरती की उपज बढ़ाने में बड़ी भारी सहायता पहुँचती है। समझा तुमने?"

"हाँ केंचुए आप जैसे बड़े बड़े विज्ञानबाजों के गुरू महाराज हैं, यह तो मैंने समझ लिया। अब से खेती विद्या में पास वास करना हो तो केंचुओं ही की सेवा करनी अच्छी होगी। पर छछूँदर महाराज से क्या सीखा?"

"सुनती जाओ। अमेरिका के उत्तर भाग में एक देश है कैनेडा। वहाँ भी अंगरेज़ों ही का राज्य है। वहाँ के मैनीतोबा प्रान्त की धरती खूब उपजाऊ है। और वह मट्टी काली और चिकनी है। उस मिट्टी को इतनी काली, चिकनी और उपजाऊ बनाया है वहाँ के छछूँदर-कुल-धुरन्धरों ही ने। तुम हमारी बातों को झूठ समझ कर हँसती हो। इन गुरुकुल वालों का नाम है पाकट-गोफ़र। यह नाम क्यों पड़ा हम नहीं जानते। पर क्रिया इनकी अद्भुत है। धरती को बहुत नीचे तक बहुत खोद कर उलट पलट करने में गोफ़र जी कंचुकी नन्दन से भी बढ़ गये हैं।

परन्तु इंगलैंड के किसान छछूँदर के गुण-ग्राही नहीं हैं, यद्यपि वहाँ भी यह जीव बहुत ही उत्तम कार्य करता है। सच पूछिए तो खेती की उपयोगी भूमि इंगलैंड में यही जीव बनाता है और बना चुका है। मैनीतोबा के गोफ़र के बराबर इंगलैंड के छछूँदर भी

मनुष्य के लिए बड़े उपकारी हैं। इनकी संख्या भी अनगिनती पायी जाती है। एक अँगरेज़ी ज़मींदारी में अठवारे या पखवारे ही के भीतर कम से कम १००० छछूँदर भवसागर के पार पहुँचा दिये गये।"

"हाय, हाय, अंगरेज़ किसान गुरु-घाती हैं।"

"हाँ, जी चाहे तो योंही कह लो। बात असल यह है कि एक पक्ष में जैसे यह छछूँदर खेत की धरती बनाने में मनुष्य के सहायक हैं, उसी प्रकार दूसरे पक्ष में वे खेती की उपज का सत्यानाश कर डालने में भी बड़े बहादुर हैं। जिस ज़मींदारी में १००० छछूँदर मारी गयी हैं, वहाँ पौहों के चरने के लिए घास की खेती की गयी थी और छछूँदर उस घास का नास किया करते थे। एसेक्स के ज़िले में इतने छछूँदर हैं कि किसी खेत में सौ गज़ भी उनकी मिट्टी की ढेरियाँ बिना लांघे चलना कठिन हो जाता है। वहाँ भी धरती खोद खोद कर वे उसे उपज के योग्य बना रहे हैं।

मैनीतोबा के तामस सीतन साहब ने जो वहाँ के सरकारी जीव विज्ञान के महकमें के अधिकारी हैं लिखा है कि डारविन की सम्मति है कि केंचुए पाँच वर्षों में इतनी धरती खोद कर उलट देते हैं कि खेतों में एक इंच की मोटाई तक की मिट्टी जमा हो जाती है। इस लिए केंचुओं का काम बहुत ही प्रशंसा योग्य है। पर पाकट-गोफ़र उतना ही काम पाँच महीने में कर देता है। गोफ़र जल्दी तो खोदता है, पर उसका काम उतना बारीक नहीं होता जितना कि केंचुए का होता है, क्योंकि केंचुआ मिट्टी को खोदता ही नहीं, वह उसे खाकर हज़म करके फिर निकाल देता है, और इसीलिए केंचुए की मिट्टी बहुत अधिक उपजाऊ पायी जाती है। गोफ़र की मट्टी में घास पौदे खोदे जाने पर आप से आप सड़ने गलते हैं, केंचुआ उन्हें हज़म कर के एक बहुत बढ़िया सार या पाँस मिट्टी में मिलाता जाता है। परंतु गोफ़र इतना अधिक और इतनी जल्दी धरती खोदता है कि घास पौधे भी खुद खुदा कर सूर्य की किरणों के नीचे सूखते और हवा में सड़ते रहने से धरती का उपजाऊ-पन बहुत बढ़ जाता है। भगवान् ने संसार में नीच से नीच जीव को भी मनुष्य का सहायक और ज्ञान सिखलानेवाला बनाया है।

पनडुब्बी के भीतर क्या होता है ?

उसकी भीतरी बनावट दिये हुए चित्र पर विचार करने से प्रकट हो जायगी। यह चित्र ऐसे पन-डुब्बे का है जो पहले बनाया जाता था। पिछले पनडुब्बों की बनावट में बहुत सी बातें बढ़ायी गयी हैं किंतु वह सब गुप्त रक्खी जाती हैं। यह पानी पर तैरते हुए पनडुब्बे का चित्र है। इससे यह प्रकट होता है कि जहाज़ का थोड़ा ही सा ऊपरी अंश पानी के बाहर देख पड़ता है। जहाज़ के अगले भाग में *टारपीडो होता है और इसी के नीचे तेलकुंड (Gasolene tank) होता है जिसकी गैस के द्वारा जहाज़ को पानी पर चलाने की शक्ति पहुँचायी जाती है। इनके पीछे दबायी हुई हवा से भरे हुए बर्त्तन होते हैं जो मल्लाहों को जब जहाज़ पानी के भीतर गोता लगाये रहता है, सांस लेने के लिये हवा पहुँचाते हैं।

* टारपीडो ५, ६, गज लम्बा और डेढ़ फुट के लगभग चौड़ा साहब लोगों के तम्बाकू पीने के सिगार की शकल का होता है। इसमें भक से उड़ा देनेवाली ऐसी चीज़ होती है जो निशाना पर लगाते ही जल उठती है और कई करोड़ के जहाज़ को जिसमें हजारों आदमी काम करते रहते हैं दम भर में भवसागर पार उतार देती है। इसकी बनावट और कारीगरी का पूरा परिचय अगले अंक में दिया जायगा।

जहाज़ के बाहर पिछले भाग में ढकेलने के लिए एक पेंच होता है जिसकी रक्षा के लिए और बहुत से पेंच लगे रहते हैं और इनके पीछे खड़ी पतवारें होती हैं जिनसे जहाज़ को दाहिने बाएं घुमा सकते हैं। जहाज़ के ऊपर बीचों बीच पथ-प्रदर्शक वा झरोखा होता है जहां कप्तान खड़ा रहता है और कप्तान के सामने ही दिग्दर्शक (Periscope) होता है। यह एक लम्बी नली होती है जिसमें तिपहले शीशे ऐसे लगे होते हैं कि कप्तान को आसपास के सभी दृश्य दीख पड़ते हैं। जब भारकुंड पानी से भर दिये जाते हैं, झरोखा और दिग्दर्शक के सिवाय सब जहाज़ पानी के भीतर चला जाता है और जब भारकुंड में से पानी निकाल दिया जाता है तो पूरा झरोखा और जहाज़ का कुछ ऊपरी हिस्सा भी दीख पड़ता है। भारकुंड को भरदेने पर भी जहाज़ इतना भारी नहीं हो जाता कि अपने आप डूब जाय, बल्कि डुबोने के लिए वह नीचे की ओर झुकाव के साथ ढकेला जाता है। मछली के गलफड़े की तरह कुछ पेंच ऐसे होते हैं जिनके द्वारा जहाज़ को जिस ओर ले जाना होता है उस ओर कर देते हैं और जितनी गहराई तक ले जाना होता है, ढकेल देते हैं। यह जहाज़ इतने पुष्ट चद्दर के बने होते हैं कि ३०० फ़ीट गहराई में भी पानी के दबाव को सह सकते हैं, परन्तु साधारणतः ५० फ़ीट से अधिक का गोता नहीं लगाते।

इन हवा से भरे हुए बर्त्तनों के नीचे दो और टारपीडो रक्खे रहते हैं और जब अगला टारपीडो किसी शत्रु के जहाज़ के ऊपर छोड़ दिया जाता है तब इनमें से एक उसकी जगह पर लाया जाता है, इनके नीचे बिजली की बैटरी (घटमालट) होती है जिसके द्वारा जहाज़ को पानी के भीतर ही-भीतर चलाने की शक्ति मिलती है, क्योंकि तैलकुंड से पानी के भीतर काम लेने से जो धुआँ पैदा होता है वह सुगमता से बाहर नहीं निकल सकता और उससे मल्लाहों को बड़ी तकलीफ़ होती है। इसका अनुभव चलती हुई मोटरगाड़ी या हवागाड़ी के पीछे चलने से कोई भी कर सकता है क्योंकि मोटरगाड़ी में भी तैलकुंड से काम लिया जाता है। इनके साथ मुख्य भारकुंड और सहायक भारकुंड होते हैं जिनका काम पाठकों को पहले बतलाया जा चुका है। जहाज के पिछले भाग में उसे चलानेवाले दो अंजन लगे रहते हैं। एक गैसोलीन का अर्थात् तेल का अंजन होता है, दूसरा बिजली का। तेल का अंजन जहाज़ को पानी के ऊपर चलाता है और बिजलीवाले अंजन में विद्युत् शक्ति भर कर इकट्ठी करता है जिससे जहाज़ पानी के भीतर चलाया जाता है।

झरोखा और दिग्दर्शक (Conning Tower and Periscope)

ऐसे पनडुब्बों में काम करना बड़ा भयानक है और जो लोग इनको चलाने के लिए नौकर रक्खे जाते हैं वह अपने प्राणों को सदैव हथेली पर रक्खे रहते हैं। इसीलिए इनमें काम करनेवाले अफ़सरों को ४॥) रोज़ और मल्लाहों को २) रोज़ साधारण वेतन से अधिक देना पड़ता है। यह ख़र्च उसी समय सुफल होता है जब

इनका एक टारपीडो जिसकी लागत ६ हज़ार रुपये तक होती है तीन करोड़ की लागत वाले युद्ध के जहाज़ ड्रेडनाट को जिसमें ६०० मल्लाह तक काम करते रहते हैं क्षणभर में समुद्र के तले पहुँचा देता है। ड्रेडनाट के पास एक धीमी भड़भड़ाहट और थोड़े से पानी के उछाल के सिवाय और कुछ नहीं मालूम पड़ता। बात यह है कि जब पन-डुब्बा पानी के भीतर रहता है तो पथ-प्रदर्शक के सिवा और कुछ बाहर नहीं रहता और यह भी आधमील से अधिक दूर-वाले जहाज़ों को दीख नहीं पड़ता इसलिए शत्रुओं के जहाज़ों को सदैव भय लगा रहता है कि न मालूम किस समय ४० मील प्रति घंटा की चाल से चलता हुआ टारपीडो पानी के भीतर ही भीतर आकर तहसनहस कर डाले। ऐसे पनडुब्बों के रहते हुए देश का बड़ा बचाव हो सकता है क्योंकि कोई युद्ध का जहाज़ जान बूझ कर इनके चंगुल में नहीं फसना चाहता।

पनडुब्बे पीपे (Submarine mines)

यूद्ध में यह क्या काम करते हैं?

आजकल जल-युद्ध में इन पीपों का प्रयोग उसी प्रकार किया जाता है जैसे थल युद्ध में किलों के पास तक नीचे नीचे सुरंग खोद कर गोली बारूद से किले उड़ाये जाते थे। बहनेवाले पीपे जल-धरातल के कुछ नीचे जंजीर के द्वारा बँधे रहते हैं और बैठनेवाले पीपे भारी होने के कारण समुद्र की तह में रख दिये जाते हैं। जब सूक्ष्म पेचों के द्वारा यह पता चलता है कि कोई जहाज़ इनके पास अथवा इनके ऊपर आया है तो इन पीपों का गन काटन बिजली के द्वारा उड़ा दिया जाता है और यह पीपे फटकर उस जहाज़ का सत्यानाश कर डालते हैं। चूंकि उन पेचों से यह पता नहीं चलता कि पीपों के पास वाला जहाज़ शत्रु का है कि मित्र का, इस लिए ऐसे पीपों से शत्रु और मित्र दोनों को भय लगा रहता है। पहले पहल यह अस्त्र जर्म्मनी और इङ्गलैंड के युद्ध में प्रयोग किया गया था जिससे एक जर्म्मनी वाला युद्धका जहाज़ और एक इङ्गलैंड का नष्ट हो गया था। १८७० ई० के फ्रान्स और प्रशिया (जर्म्मनी का एक प्रान्त) के युद्ध में प्रशिया के समुन्दरी किनारे की रक्षा इन्हीं पीपों के द्वारा की गई थी। उत्तरी सागर (जर्म्मनी और ग्रेटब्रिटन के बीच के समुद्र का टुकड़ा) में प्रशिया के एक किनारे से दूसरे किनारे तक यह पीपे फैला दिये गये थे।

रूस-जापान युद्ध में एक बार ऐसे ही पीपों से २, ३ मिनट में जापान वालों ने रूस के एक बड़े भारी जहाज़ को जिसमें ७०० सिपाही मौजूद थे उड़ाकर रसातल को पहुंचा दिया था। इस के पश्चात ऐसे पीपों की बनावट में दिन दिन उन्नति होती गई। अनुभव द्वारा यह प्रकट हो गया कि पक्के लोहे के गोल पीपे इस काम के लिए बहुत अच्छे होते हैं। इन्हीं पीपों में दबाया हुआ गीला गन-काटन भरा रहता है। ऐसे गोलों में बाहरी दबाव के सहने की अधिक शक्ति रहती है और पानी के भीतर तीव्र लहरों के धक्के भी कुछ प्रभाव नहीं डालते। इस लिए यदि पास ही कोई दूसरा पीपा फूट पड़े तो इन पर कुछ असर नहीं होता और नियत स्थान से इनको कोई घसीट भी नहीं सकता। गन-काटन के सिवाय और कोई भक से उड़ जाने वाली वस्तु नहीं प्रयोग की जाती क्योंकि इसके जमा करने और इससे काम लेने में बड़ा बचाव रहता है। यह जब तक गीला रहता है तब तक दूसरे स्थान के पीपों के उड़ जाने से जो धक्का लगता है उससे कुछ विकार नहीं पैदा होता। इसके सिवाय इसको दबाकर किसी रूप में रखने पर भी पानी का अंश सर्वत्र एक सा फैल जाता है। इन पीपों के उड़ाने में फलमीनेट आफ मर-

करी और सूखा गन-काटन दो पदार्थ प्रयोग किये जाते हैं जो बिजली की गरमी के द्वारा दाब दिये जाते हैं।

बिजली की गरमी कैसे पहुँचाई जाती है ?

जिन शहरों में बिजली के द्वारा प्रकाश और पंखा चलाने का काम लिया जाता है वहाँ का एक साधारण आदमी भी यह जान सकता है कि ज़रासा 'बटन' के दबा देने से पंखा कैसे चलने लगता है और अन्धकारमय कोठरी क्षण भर में कैसे प्रकाशमान होकर चकाचौंध पैदा करने लगती है। बात यह है कि लैम्प के पास तक बिजली को जाने के लिए सब सामान पहले ही से दुरुस्त रहता है। 'बटन' दबाकर बैटरी से (जिससे विद्युत शक्ति की धारा निकलने लगती है) मिलान करना रह जाता है जो जिस समय आवश्यकता होती है कर दिया जाता है। यही काररवाई पीपों के फैर करने में भी की जाती है। बिजली की धारा लेजाने के लिए बैटरी से पीपे तक तार लगा रहता है। जिस समय चुम्बक की सुइयों के द्वारा यह मालूम हुआ कि पीपे पर कोई जहाज़ पहुँच गया उसी समय स्टेशन पर 'बटन' दबा दिया जाता है और पीपा फटकर जहाज़ का काम तमाम कर देता है।

पीपे दो प्रकार के होते हैं, एक बैठ जाने वाले और दूसरे बहने वाले। बैठ जाने वाले पीपों (Moored or ground mines) में ५०० पौंड अथवा २५० सेर गन काटन भरा जाता है जिस से एक ड्रेडनाट बहुत ही आसानी से रसातल को भेजा जा सकता है। ऐसे ही पीपों से रक्षक का काम लिया जाता है क्योंकि इनके रहते हुए शत्रु का कोई जहाज़ इनके पास से निकल नहीं सकता यदि उसमें यह तरकीब न हो कि इन पीपों को मार्ग से हटा दिया जाय। बहने वाले पीपे (Floating mines) लङ्गरों से इस प्रकार बाँध दिये जाते हैं कि वह पानी के १०, १२ फिट नीचे बहते रहते हैं। शत्रु के जहाज़ जब इन में फँस जाते हैं तो यह पीपे, जिन में ५० से १०० पौंड तक गन-काटन भरा रहता है और जो छोटे छोटे जहाज़ों को जैसे टारपीडो-बोट या पनडुब्बे, डुबो देने के लिए अलम होते हैं, फट जाते हैं और फंसे हुए जहाज़ को छेद डालते हैं जिससे उसका आगे बढ़ना रुक जाता है। ऐसे पीपे एक विशेष प्रकार के बनाये हुए जहाज़ के द्वारा जिनको माइन लेयर (Mine Layer) कहते हैं समुद्र में फैला दिये जाते हैं और यह बैठ जाने वाले पीपों को भी समुद्र में डाल देते हैं। ग्रेटब्रिटन के पास ७ ऐसे ऐसे जहाज़ पीपों के डालने के लिये हैं। इनके दोनों सिरों पर बड़े बड़े छिद्र होते हैं जिन में से पीपे ऐसी सावधानी से डाल दिये जाते हैं कि जहाज़ों पर स्वयम् कुछ बुरा असर नहीं होता।

पीपों के बटोरने वाले (mine sweepers)

यह संसार द्वन्द्वमय है। गरमी सरदी, दिन रात, प्रकाश अन्धकार, मित्र शत्रु, स्वर्ग नर्क सभी द्वन्द संसार के कारण हैं। प्रत्येक वस्तु का द्वन्द संसार में पाया जाता है। इसी नियम के अनुकूल पीपों के डालने वालों (mine layers) के साथ साथ पीपों के बटोरने वालों (mine sweepers) का भी बनना आवश्यक है। ग्रेटब्रिटेन के पास इस समय आधे दर्जन से अधिक पीपों के बटोरने वाले बड़े जहाज़ हैं और बहुत से छोटे छोटे बटोरने वाले उत्तर सागर में पीपों के ढूंढ़ने में सदैव लगे रहते हैं। यदि जहाज़ों का गोल पीपों से घिर जाय तो उसका छुटकारा केवल इसी में हो सकता है कि सब पीपे बटोर कर अलग कर दिये जाँय नहीं तो उस गोल की दशा वैसी ही होगी जैसी जापानवालों ने रूस के जहाज़ के साथ किया था। बटोरने के लिए दो जहाज़ एक दूसरे से कुछ दूर पर इस प्रकार चलते हैं जैसे मछुवे लोग मछलियाँ पकड़ने के लिए जाल लेकर पानी में चलते हैं। इन जहाज़ों

के ऊपर नीचे कटियां लगी रहती हैं जिनमें जाल की नाई बहुत सी लोहे की ज़ंजीरें एक जहाज़ से दूसरे जहाज़ तक फैली रहती हैं और यही जाल का काम देती हैं। जब पीपों की जंजीरें इनमें फँस जाती हैं तो इन्हीं के साथ पीपे भी दूर ही से लुढ़कने लगते हैं। जब सब पीपे बटुर जाते हैं तो उड़ा दिये जाते हैं। बटोरते समय कभी कभी पीपे स्वयम् उड़ जाते हैं किन्तु इससे जहाज़ों को कुछ भी हानि नहीं पहुँचती क्योंकि यह उनसे सदैव दूर रहते हैं।

टारपीडो

पिछले अङ्क में पन-डुब्बी का वर्णन करते हुए कुछ थोड़ा सा टारहीडा नामक शब्द से परिचय करा दिया गया था। उसी का खुलासा यहाँ वर्णन किया जाता है। इसका रूप, इसका गुण, और इसका काम कुछ न कुछ सभी जानते होंगे। किंतु ऐसे यम दूत के पेट में कौन से कल पुरजे रहते हैं जिनके द्वारा यह सीधा अपने निशाने पर पहुँच जाता है न दाहिनी ओर मुड़ता है और न बाँईं ओर; यह बात बहुत कम लोगों को मालूम होगी। इसलिये इसकी भीतरी बनावट का वर्णन करना अनुचित नहीं समझ पड़ता—

टारपीडो की लम्बाई १६ से १८ फीट तक होती है अंग्रेजी जल-सेना में तीन प्रकार के टारपीडो काम में लाये जाते हैं। इनका व्यास १४ इंच, १८ इंच और २१ इंच का होता है। इनका मुख नोकीला नहीं होता और पूंछ में दो ढकेलने वाले डैने होते हैं। इन्हीं के सामने आड़े और खड़े डैने मछलियों के गलफड़ों की तरह होते हैं जिन का काम यह होता है कि टारपीडो को सदैव सीधा और पानी के नीचे आवश्यक गहराई पर चलावें। इनको चलाने की शक्ति टारपीडो के भीतरी कल पुरजे से पहुँचाई जाती है। टारपीडो के पेट में जो कोठे होते हैं उनके स्थान इस क्रम से होते हैं; प्रथम मुख होता है जिसमें युद्ध के समय गन-काटन भरा रहता है। यह गन काटन किसी चीज़ से टकराने पर एक पेंच के द्वारा भक से बल उठता है किंतु बचाव के लिए ऐसा पेंच भी होता है कि जब तक टारपीडो अपनी नली से जो छोड़ने वाले जहाज़ पर लगी रहती है कुछ दूर न निकल जाय तब तक टकराने से भी नहीं उड़ सकता। मुख के बाद दूसरा कोठा हवा का होता है। यह बेलन की शक्ल का होता है और $\frac{1}{2}$ इंच मोटी स्टील की चद्दर का बनाया जाता है और प्रत्येक वर्ग इंच पर २२५० पौंड के दबाव को सह सकता है। इसमें हवा भरने वाले अंजन के द्वारा हवा ठूंस ठूंस कर उसी तरह भरी जाती है जैसे बाइसिकिल या मोटर कार में पिचकारी से हवा भरते हैं। तीसरा कोठा बैलेन्स-चैम्बर कहलाता है। इसके भीतर ऐसा पेंच लगा रहता है जो पीछे लगे हुए आड़े डैनों को आवश्यक गहराई पर चलाता है। यह गहराई टारपीडो के छोड़ने के समय नियत कर दी जाती है। बैलेन्स-चैम्बर के पीछे अंजन वाला कोठा होता है जिसमें हवा के अंजन की शक्ति से टारपीडो पानी के भीतर चला करता है। इसमें और भी पेंच होते हैं जो टारपीडो को निशाने तक पहुँचा देते हैं। यह अंजन इतने बलवान होते हैं कि टारपीडो को ४० मील प्रति घंटा के वेग से चला सकते हैं।

घुमनी पहिया (Gyroscope)

अंजन वाले कोठे के बाद उछाल का कोठा (Buoyancy chamber) होता है। इसमें घुमनी पहिया (gyroscope) होती है, जिसके घूमते रहने से टारपीडो (दाहिने बांये न मुड़कर) एक ही दिशा में चलता रहता है। इसमें पीतल की घूमने वाली फिरकी होती है जो टारपीडो के छोड़ते समय घुमा दी जाती है। यह फिरकी सदैव एक ही धरातल में घूमती रहती है। इसका फल यह होता है कि यदि मार्ग में टारपीडो की दिशा बदल जाय तो फिरकी अपने घूमने के बल से खड़े डैनों को (जो उसमें जुड़े रहते

हैं) फिर उसी दिशा में कर देती है जिसमें वह पहले थे। टारपीडो की फिरकी में बहुत ही सूक्ष्म कारीगरी होती है इसी से इसकी लागत भी ५० पौन्ड अथवा ७५० रु० होती है। इस उछाल के कोठे के द्वारा ही जब टारपीडो अभ्यास के लिए छोड़ा जाता है तो गति बन्द हो जाने पर ऊपर तैरने लगता है लेकिन युद्ध के समय जब इसके मुख में गन-काटन भरा रहता है यदि यह निशाना पर न पहुँचकर इतनी दूर चला जाय कि गति रुक जाय तो तैरने लगेगा और ऐसी दशामें शत्रु मित्र दोनों को हानि पहुँचावेगा। इस लिए एक पेंच ऐसा भी लगा रहता है जिससे जब यह रुक कर ऊपर तैरने लगता है तो अपने आप पानी भरने लगता है और पानी के भर चुकने पर डूब जाता है।
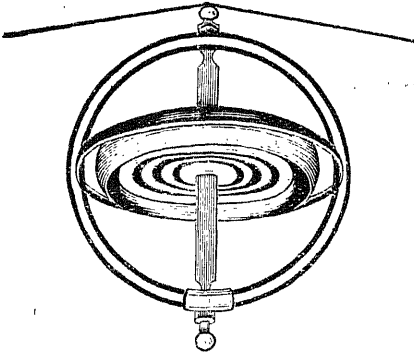
सब से पिछले कोठे को पूंछ कहते हैं। इस में वह मेशीन लगी रहती है जिससे पीछे के दोनों ढकेलनेवाले डैनों पर चालन-शक्ति पहुँचाई जाती है। एक ढकेलने वाला उस दिशा में घूमा करता है जिसमें घड़ी की सूइयाँ और दूसरा इसके ठीक प्रतिकूल ऐसे दाहिने बाएँ चक्कर से टारपीडो साम्यावस्था पाकर दाहिने बाएँ न मुड़कर ठीक अपनी सीध में चला जाता है।

४६॥ मील की चाल।

उन्नति करते करते अब १८ इंच व्यास वाला टारपीडो ऐसा बनने लगा है कि वह १००० गज तक ४० मील प्रति घंटा की चाल से चल सकता है किंतु यह वेग भी ४२ मील प्रति घंटा गतिवाले जहाज़ों के लिए किसी काम का नहीं होता। इस लिए ऐसे टारपीडो बनाये गये हैं जिनका व्यास २१ इंच होता है और जो १००० गज तक ४६॥ मील प्रति घंटा की चाल से और ४००० गज तक ३२ मील प्रति घंटा की चाल से चल सकते हैं। ऐसे टारपीडो ७००० गज वा ३॥ मील दूरी वाले निशाने तक जाकर अपना काम कर सकते हैं और इनमें ३०० पौंड अथवा १५२ सेर गन.काटन भरा जा सकता है। टारपीडो का भीतरी भाग बहुत ही पेंचदार होता है क्योंकि इसके बनाने में उन सब बातों का प्रबन्ध करना पड़ता है जिससे यह ठीक गहराई में, आवश्यक गति के साथ और ठीक दिशा में चलकर अपने निशाने तक पहुँच जाय। इसके प्रबन्धकर्ता अफ़सर और माँझी ऐसे भयंकर हथियार से काम लेने के लिए इस सम्बन्ध की विशेष शिक्षा प्राप्त किये रहते हैं जिसके लिए पोर्टस्मथ में एक शिक्षागार है। बड़े जहाज़ों में एक लफटन्ट केवल टारपीडो के प्रबन्ध के लिए नियत किया जाता है।

टारपीडो कैसे फ़ैर किये जाते हैं?

युद्ध के बड़े बड़े जहाज़ों और *क्रूजरों में यह उन नलियों में से, दबी हुई हवा के बल से फ़ैर किए जाते हैं, जो पानी में डूबी रहती हैं। लेकिन छोटे छोटे जहाज़ों में जैसे टारपीडो बोट, डेस्ट्रायर (रिपु मर्दन) और स्काउट (भेदिया जहाज़) में वे ऊपर वाले तख्ते पर से बारूद के द्वारा फ़ैर किये जाते हैं। बारूद केवल इतनी रहती है कि टारपीडो फ़ैर करने वाले जहाज़ से

*क्रूजर उन छोटे छोटे जहाज़ों का नाम है जो समुद्र में शत्रु के जहाज़ों के खोज में घूमा करते हैं और अपने देश के व्यापार की रक्षा करते हैं। शत्रु के जहाज़ों को यह लूट भी लेते हैं।

कुछ दूरी तक निकल जाता है फिर तो यह अपने आप भीतरी पेंचों के बल से चलने लगता है। यद्यपि इन टारपीडो की चलन थोड़े ही दिनों से हुई है तथापि बहुत से जल-युद्ध में इन से बहुत अच्छा काम लिया जा चुका है। रूस जापान युद्ध में टारपीडो वाले जहाज़ ने आरम्भिक दशा में ही कई युद्ध के जहाज़ों को डुबो दिया था। अब तो ऐसे जहाज़ों में बहुत उन्नति की गई है और इनका वेग भी पहले से बहुत अधिक हो गया है।

टारपीडो से बचने की तरकीब ?

जल सेना के बड़े बड़े जहाज़ों में फुरती से छोड़ी जाने वाली बहुत सी बन्दूकें रक्खी रहती हैं जिन से टारपीडो दूर ही से भगा दिया जाता है। लेकिन इतने पर भी टारपीडो छिपकर कभी कभी धावा कर बैठता है। इस लिए प्रत्येक जहाज़ में टारपीडो के पकड़ने के लिए जाल बने रहते हैं। यह जाल स्पात लोहे के तार के होते हैं और जब काम नहीं होता तो जहाज़ के चारों ओर मोड़ दिये जाते हैं और आवश्यकता पड़ने पर लोहे के बड़े बड़े छड़ों के द्वारा फैला दिये जाते हैं। फैलाने से यह जाल जहाज़ के सामने ३० फीट की दूरी पर और पानी से २५ फीट गहराई तक परदा की तरह हो जाते हैं। लेकिन तीव्र गति वाले टारपीडो के मुकाबिले यह भी बेकार हैं। अभी तक सब से अच्छी बिधि यही मालूम हुई है कि बड़ी बड़ी तोपों के द्वारा आता हुआ टारपीडो दूर ही से उड़ा दिया जाय।

अर्वाचीन युद्ध के जहाज़

आजकल जल-युद्ध के सामान के सम्बन्ध में दो मत हैं। एक मतवाले कहते हैं कि जल-युद्ध में वही दल विजयी होगा जिसके पास बड़े २ युद्ध के जहाज़ (ड्रेडनाट) होंगे। दूसरे मतवाले यह कहते हैं कि बड़े २ जहाज़ों से लड़ने का समय गया, अब तो उसी दल की जय होगी जिसके पास पनडुब्बी, नाव, टारपीडोबोट और पनडुब्बे पीपे बहुतायत से होंगे और उसीकी जल-सेना की शक्ति भी प्रबल समझी जायगी। परन्तु अधिकतर लोगों की राय यही है कि युद्ध के जहाज़ अधिक रहने चाहिएं। युरोप के बड़े २ शक्तिवाले राज्यों ने भी ग्रेटब्रिटन के पीछे चलते हुए बड़े २ युद्ध के जहाज़ों के रखने की पालिसी ग्रहण कर ली है। लेकिन ग्रेटब्रिटन ऐसे बड़े २ जहाज़ों के बनाने में अब तक अगुवा बना हुआ है। जर्म्मनी सामना करने में कभी प्रयत्न नहीं करता किन्तु तौभी जितने समय में ग्रेटब्रिटन के २९ युद्ध के जहाज़ तैयार किये गये उतने समय में जर्म्मनी केवल १७ जहाज बना सका।

प्रथम ड्रेडनाट

यह नाम और इसका काम सर्वसाधारण को इतना परिचित हो गया है कि इसका गुमान नहीं होता कि १० वर्ष पहले ड्रेडनाट का चिन्ह मात्र भी नहीं था। सन् १९०५ ई० में समाचार पत्रों में यह निकलने लगा कि पोर्टस्माउथ के नौका-कार्य्यालय में एक ऐसा जहाज गुप्त रीति से बन रहा है जो उस समय तक के बने हुए जहाज़ों से बिलकुल निराला है, और जब आवश्यक युद्ध का सामान रख दिया जायगा तो २० लाख पौंड अथवा ३ करोड़ रुपये की लागत का ठहरेगा। इसका बनना दूसरी अक्तूबर सन् १९०५ ई० को आरम्भ हुआ, १९०६ ई० के फरवरी मास में समुद्र में छोड़ा गया और उसी सन् के दिसम्बर मास में बिलकुल तैयार हो गया। इस प्रकार उसकी तैयारी में कुल १५ महीने लगे। इसके पश्चात और सामुद्रिक शक्तिवाले राज्यों अर्थात् जर्म्मनी, फ्रान्स, अमेरिका का संयुक्तराज्य, जापान इत्यादि ने इसी सांचे का जहाज़ बनवाना प्रारम्भ किया। प्रथम ड्रेडनाट पोर्टस्मथ में बना और महाराजाधिराज एडवर्ड सप्तम ने इसको फरवरी मास में समुद्र में निकाला। वह

४६० फ़ीट लम्बा और ८२ फ़ीट चैाड़ा है और १७६०० टन पानी हटाता है अर्थात् उस जहाज़ का तोल १७६०० टन है। इसके चारों ओर गोलों की चोटों से बचाने के लिए ११ इंच मोटी पक्के लोहे की चद्दर लगी हुई हैं।

तोपें—इसकी तोपें सब एक ही सांचे की बनी हुई हैं। सब में गोले की नलियों का भीतरी व्यास १२ इंच है। यह तोपें ४५ फ़ीट लम्बी हैं और ८५० पौन्ड वा ४२५ सेर वाले गोलों को २६०० फ़ीट के प्रारम्भिक वेग से छोड़ती हैं। ऐसे भारी गोले ३ मील की दूरी पर जाकर १३ इंच मोटी पक्के लोहे की चद्दर को छेद कर पार चले जा सकते हैं। यह तोपें तोल में ५८ टन होती हैं और एक मिनट में दे। बार फ़ैर की जा सकती हैं, कभी २ इससे भी अधिक। ऐसी तोपों की जोडियाँ पाँच स्थानों में रक्खी जाती हैं। एक जोड़ी अगले भाग में रहती है और दे। जोड़ियाँ जहाज़ के बीच में और दे। पिछले भाग में। इस ड्रेडनाट के पहले किसी जहाज़ में १२ इंचवाली तोपें ४ से अधिक नहीं रक्खी जाती थीं। इसमें २७ तोपें १२ पौंड वाले गोलों को फ़ैर करके टारपीडो का सामना करती हैं।यह २५ मील प्रति घंटा की चाल से चलता है और इसकी चलानेवाली जल-पहिया (turbin) तेईस हज़ार अश्वबल* की शक्ति से घूमती है। ऐसी पहिया पीछे के बने हुए तमाम जहाज़ों में लगाई गई है क्योंकि यह बड़े काम की समझी गई है।

और भी बड़े ड्रेडनाट

इतने थोड़े समय में भी ड्रेडनाटों के बनाने में बड़ी उन्नति हुई है। १६०६ ई० में जो ड्रेडनाट तैयार हुए हैं उनकी तोल १८६०० टन और चाल २५ मील प्रतिघंटा है। इनमें सामान वैसा ही रक्खा गया है जैसा पहले ड्रेडनाट में था। केवल टारपेडो के मुक़ाबिला के लिए १६ तोपें ऐसी हैं जिनकी नलियाँ ४ इंच व्यास की हैं जिनके द्वारा १२ पौंड वाले गोलों से भी भारी गोले फ़ैर किये जाते हैं। सन् १६१० ई० में जो तीन ड्रेडनाट तैयार हुए हैं उनका तोल १६२५० टन है परन्तु और बातें वैसी ही हैं जैसे १६०६ वाले जहाज़ में हैं। इन छः जहाज़ों में बहुत कम भेद मालूम होता है। पहले ड्रेडनाट में एक बड़ा और एक छोटा मस्तूल लगाया गया था और इनमें दोनों बड़े २ मस्तूल लगाये गये हैं।

१६११ ई० के ड्रेडनाट

तीसरे समूह में और तीन ड्रेडनाट बने, इनमें से एक १६६०० टन का है और दे। २०२५० टन का। इनकी साधारण चाल २४ मील प्रति-घंटा है लेकिन २५००० अश्व-बल से २५ मील तक चलाये गये हैं। इनमें भी ५ जोड़ी तोपें पाँच स्थानों में लगाई गई हैं।

अत्यन्त बड़े ड्रेडनाट

चैाथे समूहवाले ड्रेडनाट ऊपरवाले ड्रेड-नाटों से अत्यन्त बड़े हैं और इनमें तोपें भा अधिक लगाई गई हैं। इस समूह में चार ड्रेड नाट हैं इनकी लम्बाई ५४५ फीट है और तोल २२६८० टन है। चलानेवाले अंजनों में २७००० अश्व-बल की शक्ति है जिससे यह जहाज़ प्रति-घंटा २४ मील बड़ी आसानी से जा सकते हैं। इनमें १० तोपें १३.५ इंच चैाड़ी नली की लगी हुई हैं और इस बुद्धिमत्ता से रक्खी हुई हैं कि जहाज़ के चारों ओर फ़ैर किया जा सकता है। चार और ड्रेडनाट इनसे भी बड़े बनाये गये हैं जिनका तोल २४००० टन है। १३.५ इंच चैाड़ी नलीवाली १० तोपें और ४.७ इंच चैाड़ी नलीवाली २० तोपें मैाजूद रहती हैं। इन जहाज़ों की गति २४ मील प्रतिघंटा है। ता० ६ मार्च

* अश्व बल बल नापने की इकाई है। १ मिनट में ३३००० पैांड वा १६५०० सेर की कोई चीज़ १ फुट ऊपर उठाने में जो बल लगता है अथवा ३३० पौन्ड की चीज़ को १०० फुट उठाने में जो बल लगाने की आवश्यकता होती है उसको एक अश्व-बल कहते हैं।

सन् १६१५ ई० के 'लीडर' में एक लेख निकला है जिससे यह मालूम होता है कि एक ड्रेडनाट २७००० टन का हाल ही में तैयार किया गया है इसकी चाल २७,२८ मील प्रतिघंटा है। भविष्यत् में मालूम नहीं कितने बड़े २ ड्रेडनाट तैयार किये जाँयगें!

ड्रेडनाटों का नाम-करण

इन ड्रेडनाटों के जुदे २ नाम हैं। उन नामों की सूची देने की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं है; हाँ, इनके सम्बन्ध में कुछ थोड़ा सा लिखना अनुचित न होगा। यह ड्रेडनाट उन वीर पुरुषों और योद्धाओं के नाम से पुकारे जाते हैं जो पुराने समय के युद्धों में नाम कर गये हैं जैसे वेलिङ्गटन, नेलसन, ड्रेक इत्यादि। कुछ ड्रेडनाट उन जहाज़ों के नाम से पुकारे जाते हैं जिन्होंने सन् १८०५ ई० की ट्राफालगर की लड़ाई में नाम किया है। जैसे टेमरेर, नेपटूघन, कांकरर इत्यादि। इन पुराने ऐतिहासिक नामों को रख कर वैसे ही कामों की आशा की जाती है जो इन्हीं नाम वाले पहले के जहाजों से हुए थे। वास्तव में यह नाम सदैव वही कर्त्तव्य स्मरण दिलाते रहते हैं जो पुराने लोगों ने करके विजय प्राप्त की थी और यह बात है कि किसी काम में सफली-भूत होने की आशा से सफल होने के सब कर्त्तव्य जैसे पुरुषार्थ, उत्साह इत्यादि सदैव वर्त्तमान रहते हैं और इनका वर्त्तमान रहना ही विजयी होना सूचित करता रहता है।

टारपीडो-बोट-मर्दन (Destroyer or Torpedo-boat destroyer.)

ग्रेट ब्रिटेन की जलसेना का प्रथम टारपीडो-बोट 'दामिनि' नाम की थी जो १८७७ ई० में बनी थी। यह एक छोटी सी नौका थी और इसका तोल २७ टन का था। इसकी गति २२ मील प्रतिघंटा थी और इसमें एक टारपीडो-नली थी। पीछे से और जल-सैनिक राज्यों ने भी टारपीडो-बोटों का बनवाना आरम्भ किया और इसकी बनावट में बड़ी उन्नति भी की। फरासीसियों ने बहुत सी छोटी २ टारपीडो-बोटें बनाईं जिससे ग्रेट-ब्रिटन को बड़ा भय बना रहता था। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रेट ब्रिटन ने बहुत सी नावें ऐसी बनवायीं जो चढ़ाई करनेवाले टारपीडो-बोटों को नष्ट कर सकें। ऐसे नावों का बनना १८८६ ई० में आरम्भ किया गया और इनका नाम टारपीडो-पाश (torpedo-catcher) अथवा टारपीडो-गन-बोट रक्खा गया। यह ५०० टन से १००० टन तक तौल में होते थे और इनकी गति २२ से २४ मील तक की होती थी। इसमें एक जोड़ी ऐसी तोपें रक्खी जाती थीं जिनकी नलियाँ ४ इंच और ४.७ इंच चौड़ी होती थीं और जिनसे बहुत जल्दी जल्दी फैर किया जा सकता था। इन तोपों के सिवा और भी छोटी छोटी तोपें रक्खी जाती थीं। ऊपरी भाग पर टारपीडो के चलाने की दो नलियाँ भी रहती थीं। किन्तु इनके द्वारा आवश्यकतानुसार यथेष्ठ काम नहीं निकल सकता था। इसलिए १८९३ ई० में जल सेना की प्रबन्धकारिणी समिति ने टारपीडो-बोट-मर्दन (Torpedo-boat destroyer) के बनाने की आज्ञा दी।

पहले पहल २५० टन (६८०० मन) तोल के टारपीडोबोट-मर्दन तैयार किये गये जिनकी चाल ३१ मील प्रतिघंटा थी। यह दो प्रकार का काम कर सकते थे। इनमें ऐसी तोपें प्रयोग की जाती थीं जो १२ पौन्ड और ६ पौन्ड भारी गोले बरसा कर छोटी और मन्द गतिवाली टारपीडो-बोटों को विध्वंस कर सकती थीं, और इनमें टारपीडो की नलियाँ भी लगाई गई थीं जिनसे यह टारपीडो-बोटों का भी काम कर सकते थे। कुछ दिन के पश्चात और शीघ्रगामी 'मर्दन' की आवश्यकता पड़ने लगी इसलिए तीन वर्ष में इनकी गति ३४॥ मील प्रतिघंटा तक की गई जिससे इनकी तोल भी कुछ बढ़ गयी।

कुछ दिनों के पश्चात ऐसे 'मर्दन' भी व्यर्थ

ठहरे। इसलिए १९०२-०३ में और मर्दन बनवाये गये और यह संयुक्त राज्य (ग्रेट ब्रिटन और आयर लैन्ड) की नदियों के नाम से पुकारे जाने लगे। यह बहुत ऊंचे बने हुए थे इसलिये बड़े बड़े समुद्रों में भी काम कर सकते थे और इनका तोल ५५० और ६०० टन के बीच में था। इनकी चाल २९ मील के लगभग थी। इनमें चार तोपें १२ पौंड वाले गोलों के चलाने के लिए थीं और दो टारपीडो चलाने की नलियां थीं। १८९९ ई० तक टारपीडो--मर्दन ऐसे अंजनों से चलाये जाते थे जिन के पिस्टन आगे पीछे चलकर जोर लगाते थे जैसे रेलगाड़ी के अंजनों में देखा जाता है। लेकिन इसी साल 'वाइपर' (V'per) नामक एक मर्दन बना जो घुमनी पहियों के द्वारा चलाया जाता था और इसकी गति ४२, ४३ मील थी।

नदियों के नामवाले ' मर्दन ' जो अधिकतर अंजनों के द्वारा चलाये जाते थे १९०५ तक बनते रहे। इस साल ऐसे नये मर्दन बने जिनका नामकरण जाति के नामों से हुआ अर्थात इनके नाम वीर जातियों के नाम पर रक्खे गये जैसे 'गोरखा' 'तातारी' जूलू इत्यादि। ऐसे 'मर्दन' एक दर्जन के लगभग अब भी काम कर रहे हैं। इनका तोल ८६५-१००० टन के लगभग होता था। इन पर से ५ तोपें १२ पौन्ड वाले गोले फैर कर सकती हैं। इनमें एक जोड़ी टारपीडो की नलियां भी रहती हैं व चलाने का काम घुमनी पहिया वाले अंजन करते हैं और कोयले के स्थानमें तेल जलाया जाता है। इनकी साधारण चाल ३८ मील प्रति-घंटा है किंतु बहुत से और भी तेज़ चलाये जा सकते हैं। तातार नाम वाला मर्दन ४७ मील के लगभग प्रति घंटा चलता है।

१९०८ ई० में १६ टारपीडो-बोट मर्दन और निकाले गये। इनमें से किसी का नाम 'मच्छड़' किसी का बिच्छू किसी का शिकारी कुत्ता और लोमड़ी इत्यादि रक्खा गया अर्थात् यह सब नाम हानिकारक और चीड़फाड़ कर खानेवाले जीवधारियों की तीक्ष्णता को प्रकट करते हैं। इनकी तोल ८६० टनसे ९४० टन तक है और टरबाईन अंजन (घुमनी पहिया वाले अंजन) लगे हुए हैं जिससे इनकी चाल ३१ मील प्रति घंटा की होती है। इनमें केवल कोयला जलाया जाता है जो १६५ से २१५ टन तक लादा जा सकता है। इन में २१ इंच व्यास वाली दो टारपीडो की नलियाँ, एक चार इंच वाली फुरती से फ़ैर करने वाली नली, १२ पौन्ड वाले गोलों की चलाने वाली ३ तोपें काम में लायीजाती हैं। यह १६ मर्दन 'बीगुल क्लास' के नाम से विख्यात हैं। १९१० ई० में 'अकार्न क्लास' के २० मर्दन निकाले गये जिनकी तोल ७८० टन के लगभग है और जिनमें १३० टन तेल, जलाने के लिए, लादा जा सकता है। यह ३१ मील की चाल के लिए बनाये गये थे किंतु कभी कभी ३३ मील प्रति घंटा भी चलाये जा सकते हैं। इनमें चार इंच व्यास वाली एक तोप अधिक और १२ पौन्ड वाले गोले को चलाने वाली एक तोप कम रह सकती है। और बातों में यह बीगुल क्लास के मर्दनों के समान हैं।

हर ऋतु में काम देने वाले मर्दन

२० मर्दन अभी हाल में निकाले गये हैं जो पिछले मर्दनों से काम में कुछ चढ़े हुए हैं। इनमें सब सामान वही है जैसा अकार्न क्लास वालों में होता है केवल ३० टन तेल अधिक लादे जाने का प्रबंध होता है और चाल भी कुछ अधिक है। जो मर्दन अब बन रहे हैं उनकी चाल ३७, ३८ मील के लग भग है। मर्दनों में एक विशेषता यह होती है कि इनके नाम जुदे २ होते हैं और टारपीडो बोटों का नाम नहीं रक्खा जाता वरन नम्बर लगा रहता है। इसलिये पहचानने में कोई असुविधा नहीं होती। ऐसे मर्दन बनाये जा रहे हैं जो हर ऋतु में काम कर सकें।

धूप के बल से अंजनों का चलना

भानुताप यन्त्र

इस यन्त्र को पाठकों में से बहुतों ने देखा होगा क्योंकि यह कलकत्ता अहमदाबाद प्रयाग इत्यादि नगरों में जो बड़ी बड़ी प्रदर्शिनी हुई हैं उनमें और बंबई लखनऊ आदि कई स्थानों में दिखाया गया है और बहुतों ने देखा है कि इससे अग्निका काम सूर्य की किरणों से लिया जाता है और बहुतों ने बिना अग्नि के पूरी मिठाई आदि पदार्थों को इससे बनते देखा है और खाया है। परंतु अभी इसका प्रचार बहुत नहीं हुआ और बहुत लोग इसकी रचना से परिचित नहीं हैं इस लिये इसका कुछ वर्णन किया जाता है।

इसका नाम भानुताप इस लिये रक्खा गया है कि यह भानु अर्थात् सूर्य की किरणों से ताप शक्ति को उत्पन्न करता है [भानुभिः किरणै स्तापयतीति भानुतापः]। यह शक्ति सूर्य के बहुत प्रतिविम्बों को दर्पणों के द्वारा एक स्थान पर मिलाने से उत्पन्न होती है। चित्र में बहुत से चौकोर दर्पण एक चौखट पर जड़े हुए दिखाई दे रहे हैं। वह चौखट लोहे की धनुषाकार कुनियों की (Angle irons) बनी है और उसमें उसी आकार की पसलियां (Ribs) लगी हैं जिन पर दर्पण जमाए हुए हैं। कुनियां और पसली धनुषाकार बनाने से चौखट में निम्नतल (Concave) अर्थात् गहरी हो जाती है और उस पर जो दर्पण जमाए जाते हैं वे सब मिलकर एक निम्नतल दर्पण (Concave mirror) का काम देते हैं। वैज्ञानिक लोग ऐसे दर्पण को असंख्य समतल दर्पणों (Plain mirrors) का बना हुआ मानते हैं। भानुताप में दर्पणों की संख्या प्रयोजन के अनुसार रक्खी जाती है। अनुभव से देखा गया है कि पचास साठ दर्पणों से सूर्य के प्रतिविम्बों को एकत्र करने से पानी खौलने लगता है, दो सवा दो सौ दर्पणों से जस्ता (Zinc) गल जाता है इत्यादि। यह भी देखा गया है कि प्रतिविम्ब की शक्ति सर्वत्र समान नहीं होती, नीचे देशों की अपेक्षा ऊंचे पर्वतों पर अधिक होती है क्योंकि पर्वत जितने ऊँचे होते हैं उतनी ही वायुमंडल की सान्द्रता (Density घनता) थोड़ी होती है। समुद्रतल से तीन चार सहस्र हाथ ऊँचे पर्वतों पर पचास दर्पणों से ही जो काम हो सकेगा वह सौ सवा सै हाथ ऊंचे स्थानों में ६०-६५ दर्पणों से होगा। आंच जितनी चाहिये उतनी हो सकती है। यवोदर कांच (Double convex) से भी तीव्र रश्मिपुंज (Focus) हो जाता है पर उसका विस्तार विन्दुमात्र होता है। भानुताप से जो रश्मिपुंज बनता है वह जितना विस्तीर्ण और जितना उग्र चाहिये उतना हो सकता है। विस्तार जितना बड़ा दरकार हो उतना ही बड़ा प्रत्येक दर्पण होना चाहिये। उग्रता बढ़ानी हो तो दर्पणों की संख्या बढ़ानी होती है।

दर्पणों से जो सूर्य का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह सूर्य से प्रतिकूल गामी होता है अर्थात् ज्यों २ सूर्य की गति पश्चिम को होती है त्यों २ वह पूर्व को जाता है ज्यों २ उत्तर को होती है त्यों त्यों दक्षिण को जाता है और ज्यों ज्यों दक्षिण को होती है त्यों २ उत्तर को जाता है। प्रतिबिम्ब को एक स्थान में रखने के लिये दर्पण को सूर्य के अभिमुख होकर घूमना चाहिये अर्थात् सूरज-मुखी होना चाहिये। इसलिये जिस चौखट पर दर्पण जड़े जाते हैं वह लोहे के धनुष की कोटियों के बीच में कीलों से लटकाई जाती है और उस धनुष के मध्य में एक कील रहती है जो एक लोहे के स्तंभ के सिर पर दो फांकों के बीच में रहती है। उस कील पर धनुष उत्तर दक्षिण को उठता बैठता है और धनुष की कोटियों के बीच में चौखट पूर्व पश्चिम घूमती है और दर्पणों को प्रातःकाल पूर्वाभिमुख मध्याह्न में ऊर्द्धमुख और

उसके पीछे पश्चिमाभिमुख कर देती है। लोहे का स्तंभ लकड़ी की चैाखट पर गड़ा रहता है और चित्र में E के पास है। इस चैाखट पर दो पहिये और उनके धुरे हैं और पहियों की हाल में नाली हैं जिनमें रस्सियां या डोरी लिपटी रहती हैं। यन्त्र की स्थापना इस विधि से की जाती है कि लोहे की चैाखट पूर्व पश्चिम घूम सके। उसके पश्चिम प्रान्त के बीच में एक कुंडा रहता है जिस पर उसके नीचे के पहिये की रस्सी बांधी जाती है। दूसरे पहिये की रस्सी एक लोहे या सीसे की मूसली से बँधी रहती है जो यन्त्र की बाईं ओर रक्खी हुई F चिह्नवाली घड़ी से लटकी है। यह घड़ी इसी मूसली के भार से चलती है। मूसली घड़ी के चलने से क्रमशः नीची होती जाती है जब भूमि पर बैठ जाती है तब घड़ी बंद हो जाती है। मूसली को उठा कर घड़ी कूक दी जाती है तो फिर चलने लगती है। मूसली जितनी गिरती है उतनी ही उसके साथ बंधी हुई पहिया घूमती है, और उतनी ही दूसरी पहिया घूमती है क्योंकि दोनों पहियों के धुरे कोने में मिलते हैं और कोणचर चक्रों अर्थात् वटामी किरों (level gear) से एक दूसरे को चलाते हैं। जिस पहिये की रस्सी चैाखट से बंधी रहती है उसके घूमने से चैाखट क्रमशः पूर्व से पश्चिमाभिमुख होती है। पहियों की परिधि और घड़ी के लोलक (Pendulun) की लंबाई इस प्रमाण से रक्खी जाती है कि चैाखट सूर्य्याभिमुख रहती है और रश्मिपुंज एक स्थान पर बना रहता है। वह स्थान चित्र में मचान के बाजे पर रक्खे हुए D चिह्न वाले वर्तन की पेंदी है। यह बर्तन C चिन्ह वाले फुंदील के ऊपर रक्खा हुआ है। वह फुंदील रश्मिपुंज को वायु के वेग से बचाता है। दर्पणों को न केवल उदय से अस्त तक सूर्य के अभिमुख रहना चाहिये किन्तु उत्तरायण दक्षिणायन में भी सूर्य का अनुसरण करना चाहिये। इसलिये जिस पहिये की रस्सी घड़ी से बंधी रहती है उसके धुरे पर एक अयन-साधिनी रक्खी गई है यह एक शंकुवृत्त भ्रमरी (conical pully) अर्थात् गोपुच्छाकार गरारी है जिसकी गोलाई में १२ नालियां (gro v s) बनी हैं। सब से बड़ी परिधि पर जो नाली है उसमें डोरी लपेट कर धनुष की दक्षिण कोटि से बांधी जाती है तो दर्पण मकर के सूर्य्य के अभिमुख रहते हैं और सब से छोटी परिधि वाली नाली पर डोरी लपेट कर धनुष से बाँधी जाती है तो कर्क के सूर्य्य के अभिमुख रहते हैं। १५ दिन में डोरी एक नाली से दूसरी में हटा दी जाती है। इन उपायों से दर्पणों से प्रति विम्बित रश्मिपुंज बारहों महीने दिन भर एक स्थान में बना रहता है और अग्नि का काम देता है।

दर्पणों से सूर्य्य के प्रतिविम्बों को एकत्र करने से आंच इतनी हो जाती है कि भोजनादिक तो केवल ८०-९० दर्पणों में बन जाता है अधिक दर्पणों के द्वारा बाष्प यन्त्र (Steam engine) चल जाते हैं और धातु तक गल जाते हैं। इस यन्त्र के अविष्कर्ता और निर्माता अलमोडा नगर के पण्डित श्रीकृष्ण जोशी हैं जो अब प्रयाग में रहते हैं और विज्ञान परिषत् के सभ्य (Fellow) हैं और इस वर्ष साहित्य सम्मेलन के उपसभापति चुने गये हैं। इस यन्त्र के दो पेटेंट उनको मिले हैं। पहिले जो यन्त्र बना था उसमें चौखट समतल थी और प्रत्येक दर्पण पेंचों से उठाया जाता था इसमें व्यय अधिक होता था। चौखट को गहरी बनाकर कई समतल दर्पणों से एक निम्नतल दर्पण का काम लेने व प्रयोग सिद्ध होने पर दूसरा पेटेंट लिया गया। अब भानुताप का बनाना पहिले से बहुत सुगम हो गया है।

भानुताप के आविष्कार का वृत्तान्त यह है कि पण्डित जी जब अल्मोडा नैनीताल आदि ठंडे स्थानों से प्रयाग आये और ग्रीष्म की धूप का अनुभव हुआ तो यह विचार उनके चित्त में

विज्ञान
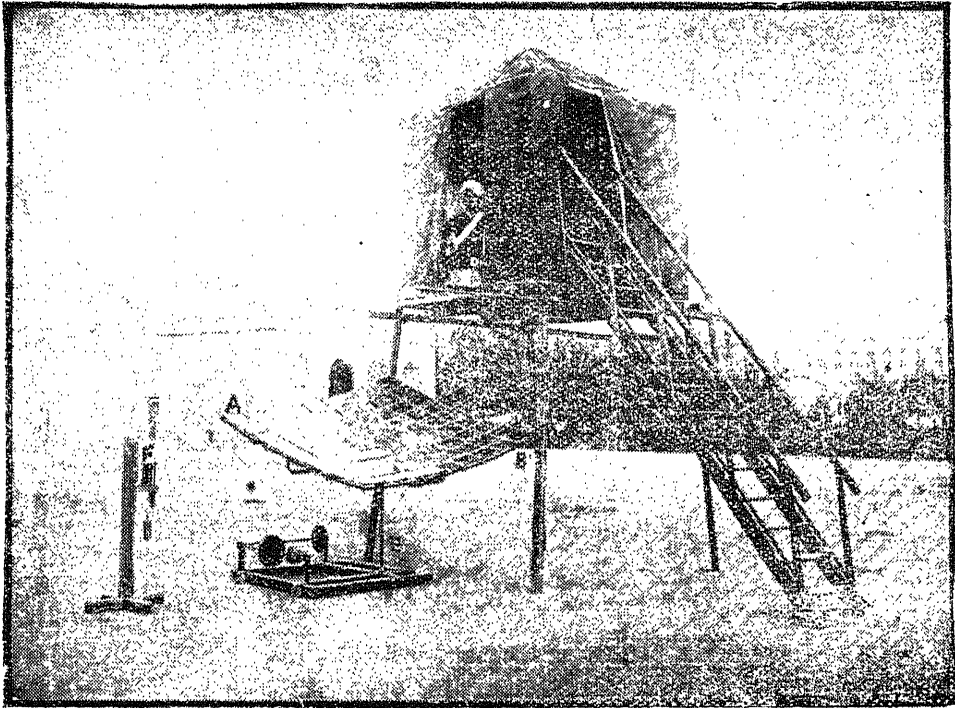
भानुताप का चित्र

लीडर प्रेस, प्रयाग

उत्पन्न हुआ कि सूर्य का तेज जो इतना ताप उत्पन्न करता है सो किसी उपाय से एक स्थान में संचित हो सकता तो अग्निका काम देता। इस बिचार से प्रेरित होकर उन्होंने यवोदर (उभय पक्षोन्नत) कांचों से संचित रश्मिपुंजो की परीक्षा की तो देखा कि वह पुंज यद्यपि बड़े उग्रताप देते हैं तथापि रुई कपड़ा इत्यादिक जलाने के सिवा और बड़ा काम उनसे नहीं हो सकता। एक दिन जाड़ों में छत पर धूप में बैठे थे और उत्तर की ओर पास ही एक चूनापुती हुई दीवार थी वहां उनको इतनी धूप लगी कि उठना पड़ा पर ज्योंही दीवार के पास से हटे तो धूप मंदी लगने लगी इसके कारण का बिचार किया तो प्रतीत हुआ कि पहिले सूर्य की किरण सीधी ही आ रही थीं और दीवार से लौट कर भी आ रही थीं। दीवार के पास से हट आये तो उससे लौटी हुई धूप से बचे, केवल सूर्य की सीधी किरण ही आने लगीं। इससे यह बात सूझी कि जैसे दर्पण से सूर्य की किरण प्रति फलित होती है वैसे ही दीवार भी किरणों को फेंक रही है और दीवार की अपेक्षा दर्पण में प्रतिफलन शक्ति अधिक होनी चाहिये और कई दर्पणों से सूर्य किरण एक स्थान में संक्रान्त की जांय तो उष्णता अधिक होनी चाहिये। यह विचार करके ५०-६० दर्पणों को मँगाया और उन से सूर्य के प्रतिबिम्बों को एक चीड़ के बकस की दीवार पर डाला तो वह जल उठी। इतना तो हुआ पर सब दर्पणों के प्रतिबिम्ब थोड़ी ही देर एकत्र रहे फिर अलग अलग हो गये। इससे दर्पणों को घूमने वाली चौखट पर रखने की आवश्यकता प्रतीत हुई और ऐसी चौखट बनाई गई और पेचों से एक दर्पण को उठाकर सब प्रतिबिम्ब एकत्र किये। पहिले चौखट हाथ से घुमाई जाती थी फिर भार से चलने वाली घड़ी के द्वारा उसको घुमाने की कल्पना की गई। उत्तरायण से सूर्य के दक्षिणायण में जाने पर फिर प्रतिविम्ब अलग अलग होने लगे तब अयनसाधिनी भ्रमरी की आवश्यकता प्रतीत हुई और वह यंत्र में लगाई गई; तब यन्त्र सिद्ध हुआ।

इस यन्त्र को कई प्रदर्शिनियों में पदक मिले हैं और समाचार पत्रों के सम्पादकों ने इसकी प्रशंसाएँ छापी हैं और कई राजा महाराजों ने इसको लिया भी है, परंतु अभी तक इससे केवल खिलौने का सा काम लिया गया है अर्थात् बिना आग के पूरी इत्यादिक उतारने का खेल देखा गया है। वाष्पयन्त्र। (Steam Engine) इत्यादिक चलाने का काम अभी इससे भारतवर्ष में किसी ने नहीं लिया। इस यन्त्र का इस देश में प्रादुर्भाव होने से कई वर्ष पीछे केलीफोर्निया (California) और मिसर (Egypt) देश में ऐसे ही यन्त्र से स्टीम एनजिन चलाए जाने लगे। संभव है कि योरुपीय धनिक यहां भी चलाते पर यहां भानुताप पेटेंट से रक्षित होने के कारण आविष्कर्ता के सिवा कोई दूसरा नहीं बना सकता। भारतवर्ष के ऐश्वर्यशाली और धन सम्पन्नों में अभी विज्ञान और वैज्ञानिक प्रयोगों में श्रद्धा बहुत नहीं है इसलिये भानुताप का उपयोग अभी तक यथावत नहीं हुआ। परंतु पण्डित श्रीकृष्ण जोशी जी ने भानुताप से एक छोटा सा इंजिन चला कर कई लोगों को दिखा दिया है। भारतवर्ष से बाहर जब सूर्य के ताप से बड़े एंजिन चल रहे हैं तो यहां न चलने का कोई कारण नहीं है।

रामदास गौड

वैज्ञानिकीय

गत दिसम्बर में व्याख्यान देते हुए डाकटर गुडाल ने कहा कि लम्बे लम्बे कूचों में बहुतेरे सिपाही हृद्रोग से मर जाते हैं, क्योंकि दीर्घ काल तक पैदल चलने से हृदय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस संबन्ध में आपने कहा कि सिख

पलटन भी, जो संभवतः संसार भर में सब से उत्तम शिक्षिता सेना है, लम्बे कूच के इस प्रभाव से बच न सकी। साधारण सेनाओं में सौ मील चल कर सैकड़ा पीछे दो तीन तो अवश्य ही समाप्त हो जाते हैं। हज़ार हज़ार की दो सिख पलटनों को चार मील घंटे के हिसाब से ५२ मील का कूच करना पड़ा। कोई युरोपीय सेना ऐसा न कर सकती। इतने पर भी कूचभर में २००० में केवल चार ही हृद्रोग से मरे।

मनुष्य के शरीर का घनत्व लगभग जल के बराबर ही है। इसीलिए थोड़े ही से हलके या भारीपन से प्राण के रहने वा जाने का प्रश्न निश्चित हो जाता है। यही कारण है कि आजकल जलयुद्ध में जलसैनिक को प्राणरक्षार्थ रबर का एक कंठा देते हैं, जो आधपाव से ज़्यादा भारी नहीं होता, और लपेट कर वास्कट की जेब में रक्खा जा सकता है, और जब चाहें उसमें लगी हुई नली से हवा भर सकते हैं। हवा भरने पर इसका घेरा ११ इंच का हो जाता है, और काग की बनी जीवन-रक्षा पेटी के बराबर ही इसमें न डूब ने देने और मनुष्य को जल पर तिरता रखने की क्षमता है।

* * * *

गोरुओं का चारा।

किसान के लिये गोरुओं (गाय, बैल, इत्यादि) का पालन पोषण करना परम आवश्यक है। क्योंकि बिना इन के उसका किसी प्रकार न तो कृषि का और न गृहस्थी का ही काम चल सक्ता है। दुधार गायें तथा खेत में चलने वाले बैल बड़ी सावधानी से रखे जाने चाहियें। गोरुओं को खूब स्वस्थ रखने तथा सब प्रकार उन्नत करते रहने के लिये उन्हें घास भूसा के अतिरिक्त कुछ पुष्टि कर चारा (concentrated food) जैसे (बिनौला, खली इत्यादि) आवश्यकता अनुसार देना चाहिये। अब गोरुओं को इतनी खली वग़ैरः देने में अधिक धन व्यय होता है और सब किसान लगातार इस प्रकार निर्बाह नहीं कर सकते। हमको डेनमार्क (Denmark) देश के कृषि बिभाग की हाल में की हुई परीक्षाओं के फल को देखने से ज्ञात होता है कि उन लोगों ने भली भांति इस बिषय पर बिचार करके कुछ काम किया है। इन्होंने कई बरसों में निम्न लिखित खादों को विश्लेषण द्वारा अलग अलग खूब जांचकर यह निर्णय किया है—

कि ८ छटांक गेहूं, मक्का या अनाज की भूसी का वही फल होता है जो ६ छंटाक कुसुम की खली या ५ छटांक तिल की खली या बिनोला या ६½ छंटाक गुड़ के शीरे का यही फल सवासेर सूखी घास (दूब) या ढाई सेर सूखे चारे का होता है।

इसे जान कर अब बड़ी सुगमता हो गई जो खली बिनौला बराबर देसकें दें—ग़रीब किसान अपने गोरुओं को खली इत्यादि के बदले, ज़रा ज्यादा सी (२ या ३ छटांक) अनाज की भूसी ही देकर उतना ही लाभ उठा सकते हैं परीक्षा में इस बात की ओर बराबर ध्यान रक्खा गया था कि गोरुओं के स्वास्थ्य और तौल तथा दुधार गायों के दूध के परिमाण और गुण में यह भिन्न भिन्न चारे किसी प्रकार की बाधा तो नहीं डालते।

[संकर्षण, बी.एस्-सी]

* * * *

फरासीसी सेना की स्वास्थ्य-परिषत् के प्रधान जनरल वेलार्ड (Vaillard) ने सिद्ध कर दिया है कि मक्खियां योद्धाओं के लिए बन्दूक की गोलियों से भी अधिक भयावनी होती हैं। आपका कहना है कि स्पेन एमरिका और बोअर युद्धों में मक्खियों से दूषित किया हुआ जल छान कर सिपाहियों को दिया गया तो भी ठीक मतलब सिद्ध न हुआ, अन्त्रज्वर के कीड़े छन्ने में भी हो कर निकल गये। खाने पीने की चीज़ों को सावधानता पूर्वक मक्खियों से बचाये रहने का

फल अलबत यह हुआ कि अन्त्रज्वर बहुत कुछ घट गया क्योंकि जिन दिनों लेडी स्मिथ को सेना घेरे हुए थी, नगर में अन्त्रज्वर की महामारी बेग से फैली हुई थी।

ज०वेलार्ड ने यह भी सिद्ध किया है कि मक्खियां अन्त्रज्वर के अतिरिक्त और भी कई रोगों को फैलाती हैं, यथा—

अतिसार, शिशु, ग्रहणी, नेत्ररोग, व्रण और बालकों का अंग मारा जाना आदि गन्देपानी से जितने रोग होते हैं उनसे कहीं अधिक रोग मक्खियां फैलाती हैं। जितनी मक्खियां हमारे हाथ से मारी जाती हैं उतने ही हमारे शत्रु इस संसार में कम होते हैं।

रा. मो. गोकुलजी

* * * *

जब दो ऐसी चीजें मिली हुई हों कि जिनमें से एक तो बिजली की रोधक अर्थात् नान-कराडक्टर (non-conductor) हो और दूसरी प्रबाहक अर्थात् कारडक्टर (conductor) हो तो इन्हें अलग करने के लिए लोह के एक फ्रेम-वर्क (Frame work) में इस संयुक्त पदार्थ को ऊपर से डालते हैं। इस फ्रेमवर्क में दो इलेक्ट्रोड (Electrodes) होते हैं, एक तो चार्ज्ड (charged) व दूसरा न्युटरेल (neutral) चार्ज्ड इलेक्ट्रोड फ्रेमवर्क से अलग रहते हैं। जैसे मिश्रित बस्तु नीचे को गिरती है प्रबाहक तो जल्दी से इलेक्ट्रीफाई (Elc.trify) हो जाता है और धक्का खाकर एक तरफ गिर जाता है। रोधक के लिये इलेक्ट्रीफाई (Electrify) होने और धक्का खाकर गिरने की नौबत नहीं आती यह सीधा ही गिर जाता है। अबरक (अभ्रक) से ग्रेफाइट इसी तरह पर अलग किये गये हैं।

* * * *

सांप के काटे का इलाज।

सबही लोगों ने देखा है कि सँपेरे सांपों को नचाते हैं, हाथों में उठा लेते हैं, उनके काटने का उन पर कुछ भी असर नहीं होता। कुछ लोग तो ऐसा समझते हैं कि यह सँपेरे मंत्र जानते हैं उसीसे सांपों की दाढ़ कील देते हैं, फिर सांप नहीं काट सकता। परन्तु कुछ ऐसा भी समझते हैं कि वह लोग सांपों की दाढ़ तोड़ डालते हैं। दाढ़ तोड़ने के पीछे वह काट ही नहीं सकता। कुछ सँपेरे तो बेदाढ़ वाला ही सांप रखते होंगे किन्तु कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो दाढ़ें नहीं तोड़ते। यह इस बात का दावा करते हैं कि सांप का ज़हर उन पर कुछ असर नहीं करता। कोई कोई जानवर ऐसे हैं जिन्हें ईश्वर ने ऐसा बनाया है कि उन पर सांपों के जहर का कोई असर नहीं होता। न्योले और सांप की लड़ाई तो बहुत से लोगों ने देखी और सुनी होगी। सांप न्योले को काटता ज़रुर है पर कुछ असर नहीं होता। यदि ईश्वर ने मनुष्य को ऐसा तो नहीं बनाया पर मनुष्य बुद्धि के जोर से अपने को ऐसा बना सकता है कि सांपों का ज़हर उस पर असर न करे। फ्रेजर (Fraser) नाम के फिरंगी को मालूम हुआ है कि चूहे और बिल्लियों को थोड़ा थोड़ा ज़हर कईबार खिलादेने से ज़हर का असर उन पर बहुत कम होता है। संभव है कि वह सँपेरे थोड़ा थोड़ा सा ज़हर अपने बच्चों को बचपन से ही देते हों। कोई कोई ऐसा करते हैं कि हरसाल छोटे छोटे सांपों से कटा लेते हैं। कालमेट (calmette) और दूसरे वैज्ञानिकों की खोजों से यह मालूम हुआ है कि जरा सा जहर जानवरों के बदन में पिचकारी द्वारा प्रवेश करते रहने से उन पर जहर का असर कुछ नहीं होता और उनके रुधिर से जो सीरम (Serum) बनाया जाता है वह बड़ा ही फलप्रद होता है, इस (Serum) के बनाने की रीति यह है—

"एक घोड़े के शरीर में ज़हर और हाइपो क्लोरिट आव लाइम (Hypochlorite of lime) इंजेक्ट (Inject = पिचकारी से बदन के भीतर छिड़कना) किया जाता है। यह इंजेक्शन हर

तीसरे चौथे दिन होता है। हाइपो क्लोरिट की मिकदार धीरे धीरे कम करते जाते हैं यहां तक कि फिर बिलकुल देते ही नहीं। जब घोड़े का मांस घट जाता है तो इंजेकशन करते करते रुक जाते हैं। १५ महीने के पीछे घोड़ा ऐसा मज़बूत हो जाता है कि २ ग्राम जहर आसानी से सहन कर सकता है (यह मिकदार मामूली मिकदार की अस्सी गुनी है) तब इसके रुधिर से सिरम (serum) बनता है। इसके पीछे इसकी फस्द खोली जाती है और ८ लिटर ख़ून अन्तिम इंजेकशन के १२ दिन पीछे, फिर ६ लिट और पांच दिन पीछे, और ६ लीटर और पांच दिन पीछे निकालते हैं। इन २० लिटरों में से १० लीटर सिरम बन जाता है। यह सिरम सांप के काटते ही दे दिया जाता है, यदि कुछ देर हो जाय तो गरम लोहे या परमंगानेट आव पोटास Permanganate of potash) या हाइपोक्लोरिट आव लाइम (Hypochlorite of lime) से काटी हुई जगह जला दी जाती है।

(Translated from the
Scientific Americam.)

शा० रा० भा०

* * * *

चान्द—पञ्जाब की राजधानी लाहोर से यह मासिकपत्र प्रकाशित होता है। इसमें लेख अच्छे होते हैं, विशेषतः देवियों के पढ़ने योग्य होते हैं। हम सहयोगी का स्वागत करते हैं और आशा है, पञ्जाब की आर्य्य देवियों में इसका अच्छा प्रचार होगा। वार्षिक मूल्य दो रुपया है।

पाटलिपुत्र—बिहार प्रान्त की राजधानी बांकीपुर से यह साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता है, रूप रङ्ग, आकार अच्छा है। लेख भी समयोपयोगी होते हैं। आशा है, सहयोगी अपना ध्यान वैज्ञानिक चर्चा की ओर भी देगा, जिससे बिहार प्रान्त के सर्वसाधारण की रुचि विज्ञान की ओर हो। वार्षिक मूल्य दो रुपया है।

* * * *

पौदों में जल्दी फल लाने के वास्ते कई यत्न किये जाते हैं इन्हीं में से एक यत्न गरम पानी के टब (हाटबाथ) में रखने का भी है। लेकिन एक फरासीसी उद्यान विद्या विशारद मिस्टर जी बाल्टेल, अपने उस अनुभव में जो कि Revue Scientifique नाम के सम्बाद पत्र में छपा है, कहते हैं कि ईथर की भाप गरम बाथ से कहीं अधिक कारगर होती है। इन्होंने ६०० स्ट्राबेरी (एक प्रकार का छोटा फल) के पौदे लेकर ३०० तो हाटबाथ में रखे, १५० ईथर-भाप में ६० घण्टे तक व शेष १५० ईथर-बाथ में ही ४८ घण्टे तक रखे पर हाटबाथ से विशेष लाभ नहीं हुआ, ईथर वेपर (भाप) में ही रखने से अधिक लाभ प्रकट हुआ, जैसा कि नीचे लिखे हुए फल से प्रकट होगा।

पैदों की संख्या	साधारण	जिन पर ईथर का प्रयोग हुआ था
८ जनवरी १२ को फूले	३३	१०७
फूलना बन्द हुआ	२९ जनवरी	१६ जनवरी
पहले फलने आरम्भ हुए	६ मार्च	२१ फरवरी
अन्त में फले	१५ एपरेल	१५ मार्च

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०।३।५।

भाग १ } मिथुन, सम्वत् १९७२। जून, सन् १९१५। { संख्या ३

मंगलाचरण

जल थल नभ मय विदित विश्व की सत्ता क्या है
शब्द रूप रस गंध आदि गुणवत्ता क्या है
गुरुता लघुता बल परिमाण कियत्ता क्या है
अल्प अधिक और अणु परमाणु इयत्ता क्या है
इन जिज्ञासाओं का प्रबल प्रति उर में उत्थान हो
प्रति ज्ञेय विषय के तत्त्व का विज्ञापक विज्ञान हो

—श्रीधर पाठक।

वैज्ञानिक परिभाषा कोष

श्रीजगदीश सहाय माथुर बि० ए० एल०एल० बी०

अंगरेजी शब्दोंके उपयोगसे गतांक में दिखाये हुये दोष मिट जाएंगे और अनुबाद कर्ताओं का काम कुछ हलका हो जाएगा।

पढ़ने वालों की दशा को देखकर भी हमको यही बात ठीक मालूम होती है क्योंकि पढ़ने वाले तीन प्रकार के हो सकते हैं।

(१) अंग्रेजी जानने वाले जो साइंस को अंग्रेजी द्वारा जानते या जान सकते हैं और केवल सैर की तरह साइंस की हिन्दी पुस्तकों को देखेंगे।

(२) अंग्रेजी न जानने वाले विद्यार्थी जिन को साइंस की शिक्षा आराम से हिन्दी द्वारा ही मिले, जैसा कि बहुत से उत्तम पुरुषों का विचार है।

(३) अंग्रेजी न जानने वाले साधारण पाठक जो केवल अपने उत्साह को पूरा करने के लिये कुछ थोड़ा बहुत साइंस जानना चाहते हैं।

अब अंग्रेजी जानने वालों को जो अंग्रेजी शब्दावली को जानते हैं हिन्दी पुस्तकों में नये गढ़े हुये संस्कृत शब्द पढ़ने पड़ेंगे जो उन्होंने कभी नहीं सुने। ऐसे लोगों को उन पुस्तकों में आनन्द नहीं आ सकता उलटा उनका चित्त भ्रममें पड़ जायगा। जो साधारण पढ़ने वाले हैं उनकी कुछ बात ही नहीं है, उनको चाहे कोई भी नाम एक बस्तु का बताया जाय एक सा है।

General साधारण]

पर अंग्रज़ी न जानने वाले विद्यार्थी-जिनके लिये वास्तव में हम यह सारे परिश्रम कर रहे हैं कि किसी तरह हिन्दी में साइंस की भी पुस्तकें हो जायँ जिससे मातृभाषा द्वारा ही सब शास्त्रों की शिक्षा दी जाया करे और विदेशी भाषाओं को सीखने का इंतजार इन शास्त्रों के पढ़ने के लिये न करना पड़े—उनके लिये भी अंग्रेजी ही शब्द बहुत उपयोगी होंगे। क्योंकि एक तो आरम्भ में उनको सब अच्छी पुस्तकें साइंस की हिन्दी में नहीं मिलेंगी और दूसरे जो लोग विशेष साइंस जानना चाहेंगे और ऊंची पढ़ाई पढ़ना चाहेंगे उनको भी अंग्रेजी पुस्तकें ही पढ़नी पड़ेंगी और फिर अपने पहले याद किये हुये शब्दों की जगह उनको नए शब्द याद करने में बड़ा परिश्रम और भ्रम होगा। यदि अंग्रेजी शब्द ही आरंभ से उनको याद होंगे तो उन अंग्रेजी पुस्तकों के पढ़ने में थोड़ी सी भी कठिनाई न होगी।

शायद ऐसा कहा जायगा कि जब शिक्षा प्रणाली हिन्दी द्वारा होगी तो साइंस की ऊंची पढ़ाई के लिये अंग्रेजी पढ़नी ही होगी, जैसे बहुत से अंग्रेजी जानने वाले, जरमन, फ्रेंच पढ़ते हैं, उसी पढ़ाई में अंग्रेजी वैज्ञानिक शब्दों का भी ज्ञान कर लिया जा सकता है। पर यह बात नहीं है। अंग्रेजी तो विद्यार्थियों को पढ़नी ही होगी। वर्तमान दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि विद्यार्थियों को अंग्रेजी बिलकुल न पढ़ाई जाकर एकदम छुड़ा दी जाय क्योंकि इसके बिना तो कुछ काम चलही नहीं सकता। हिन्दी द्वारा शिक्षा देने की प्रणाली से केवल यही मतलब है कि साइंस पढ़ने के लिये एफ, ए-या मेट्रिकुलेशन क्लास पहुँचने तक का इंतजार न किया जावे किन्तु आरम्भ में ही उसका बोध हिन्दी द्वारा कराना प्रारम्भ कर दिया जावे। अंग्रेजी तो दूसरी भाषा की तरह पढ़नी ही होगी इसमें तो कुछ भी विशेषता नहीं है विशेषता तो यह होगी के जो शब्द हमको याद हैं उनकी जगह दूसरे शब्द याद करने होंगे, फिर कब, जब कि शब्द कंठस्थ करने का अवसर नहीं है।

औज़ार, दवाएं इत्यादि सामान भी जो साइंस पढ़ने के लिये अत्यंत अवश्यक हैं अभी अपने देश में नहीं बन और मिल सकते। इनके लिये भी हमको अन्य देशों को ही लिखना होगा और उनके अंग्रेजी नाम सीखने पड़ेंगे।

बहुत से नाम साइंस में ऐसे हैं कि वह उस साइंस या नाम की उत्पत्ति की सूचना देते हैं उनसे अभिधेय वस्तु का कुछ इतिहास जाना जाता है जैसे Electricity, Magnetism Galvanic Electricity, इत्यादि ऐसे शब्दों का सिवा उनके कि जिनके लिये पहिले से ही शब्द प्रचलित हैं (जैसे "Electricity के लिये बिजली) अनुवाद कर देना उन शब्दों के इस गुण को खो देना है, शब्दों का इतिहास विद्या का ऐसा मनोरम अंग है कि उसको मिटा देना एक विद्या सम्बन्धी पाप है और हमको इस पाप का भागी नहीं होना चाहिये।

इन बातों से सिद्ध हुआ कि बहुत ही साधारण वस्तुओं और बहुत ही प्रचलित या सुगमता से प्राप्त होने योग्य नामों को छोड़कर अन्य सारे साइंस के पदार्थों के नाम हमको वही काम में लाने चाहियें जो असल में अंग्रेजी भाषा में हैं और इन नामों को बिना अपभ्रंश किये ही जहाँ तक हो सके बर्तना चाहिये।

अन्य भाषाओं के नामों को अपनी भाषा में मिला देने से हमारी भाषा पुष्ट हो जायगी सब भाषाओं की वृद्धि में विदेशी भाषा के शब्दों के उपयोग से बहुत मदद मिलती है हिन्दीभाषा को देखिये कि उसमें कितनी मिलावट दूसरी भाषा की है, जब साधारण बोलचाल के शब्दों की जगह हमारे प्राचीन कवियों और विद्वानों ने फारसी और अरबी शब्द लिखने में

कुछ संकोच नहीं किया (जैसे गोस्वामी तुलसी दास जी अपनी रामायण में एक जगह "गरीब निवाजू" शब्द लाये हैं) तो ऐसे शब्दों के अंगीकार करने में जिनके लिये पहले कोई शब्द न हो जिन वस्तुओं से ही प्राचीन समय के लोग अनभिज्ञ रहे हों, जो अत्यंत नये और विचित्र हों जिनसे मिलती हुई भी कोई वस्तु या नाम हम न जानते हों, हम क्यों शंकित हों, समझ में नहीं आता।

अंत में हम यह बताना चाहते हैं कि Hindi Scientific Glossary के बनाने वाले महाशयों ने जो नियम उक्त Glossary के बनाने में स्वीकार किया है उसमें और हमारे ऊपर लिखे नियम में क्या भेद है। जिन नियमों पर Hindi Scientific Glossary बनाई गई है वह हिन्दुस्तान के बड़े योग्य पुरुषों की एक कमेटी ने स्थिर किये हैं। यह समिति सेंट्रल हिन्दू कालेज बनारस में स० १९०३ में २१ सितंबर से २९ सितंबर तक बैठी थी। वह इस ग्लासरी की भूमिका में लिखती है।

(1) Preference should be given to this common and current Hindi terms.
(2) In abseuce of appropriate Hindi equivalents,
 (a) Certain appropriate terms Existing in some of the prevalent Vernaculars, Marathf, Gujratee, Bengali Urdu should be used.
 (b) Failing these,
  (i) The Existing Sanskrit terms should be taken,
  (ii) The Englich terms should be used.
  (iii) Terms should be coined from sanskrit.

अर्थात्

(१) साधारण और प्रचलित हिन्दी शब्दों को सब से श्रेष्ट समझना चाहिये।

(२) यथोचित हिन्दी समतुल्य शब्दों के अभाव में।

(क) जो यथोचित शब्द प्रचलित भाषाओं— मराठी, गुजराती, बङ्गाली और उर्दू में पाये जाते हैं काम में लाने चाहियें।

(ख) इनके न होने की हालत में।

(१) विद्यमान संस्कृत शब्द लेने चाहियें।

(२) अंगरेजी शब्द काम में लाने चाहियें।

(३) संस्कृत के शब्द गढ़ने चाहियें।

यह नियम अत्युत्तम है और जो कुछ कि ऊपर लिखा गया प्रायः वह इनसे मिलता हुआ ही है, फ़र्क़ है तो यह है कि Glossary के बनाने में विशेषतः जोर इस बात पर दिया गया है कि अंगरेजी शब्द पीछे लिये जाँय पहले इस बात की तलाश की जाय कि उन शब्दों के समतुल्य हिन्दी,मराठी,गुजराती,बङ्गली, उर्दू या संस्कृत शब्द हैं या नहीं। हमारा सिद्धान्त यह है कि यदि लेखक को लिखते समय हिन्दी गुजराती इत्यादि भाषाओं के शब्द पहले से ही न मालूम हों वा ढूंढने पर बहुत सुगमता से न मिलें या न मिल सकें तो अंगरेजी शब्दों को इस्तेमाल करने में कुछ शंका नहीं करनी चाहिये किन्तु हर समय अंगरेजी शब्दों को काम में लाने के लिये तैय्यार रहना चाहिये। यदि हिन्दी संस्कृत शब्द मिल जाँय तो अहो-भाग्य हैं नहीं तो कुछ चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि ऐसी व्यर्थ चिन्ता से हानि ही हानि है। Glossary के नियमों पर साधारण लोग नहीं चल सकते क्योंकि उस कमेटी में तो बङ्गाल, महराष्ट्र, गुजरात, पञ्जाब आदि सब देशों के विद्वान उपस्थित थे। साधारण मनुष्य इतनी भाषाओं और उनके वैज्ञानिक साहित्य से अभिज्ञ नहीं हो सकते।

जो कुछ हमने ऊपर लिखा है उस पर एक शंका होसकती है। हमारी सम्मति है कि हिंदी संस्कृत

शब्दों के ढूंढने में बहुत समय न गवांया जाय किन्तु यदि ऐसे शब्द जलदी से उपलब्ध न हों तो बिना किसी संकोच के अंगरेजी शब्द ही लिखा जाय। इस में सम्भावना यह है कि कोई २ बहुत ही प्रचलित और प्रामाणिक या प्रचलित होने योग्य शब्दों के स्थान में इस कारण से कि समय पर किसी को वह शब्द न मिला और बहुत ढूंढने का परिश्रम नहीं किया गया या करना मुनासिब न समझा गया और विना पुष्ट हेतु के अंगरेजी शब्द लिखा गया तो क्या केवल इस कारण से कि एक लेखक ने उसको छोड़ कर अंगरेजी शब्द लिख दिया हम अपने शब्द को छोड़ देंगे और यदि न छोड़ें तो दो शब्दों में से कौनसा काम में लाना चाहिये क्योंकि यदि दोनों रखे जाएँ तो एक प्रकार का दोष आता है जैसा हम एक जगह लिख आए हैं। पर यह शंका तब तक है कि जब तक साइंस का प्रचार हिंदी में पूरे तौर पर नहीं होता और जब हो जायगा तो न तो किसी के चित्त में भ्रम होगा जिससे यह योग्य शब्दों को भूल जाएँ न उस समय तक वैज्ञानिक हिंदी शब्दों में अस्थिरता रहेगी। उस समय तक के लिये इस शंका का समाधान यह है कि चाहे यह दो तरह के शब्द हो जाएँ पर समय और बर्तावव से इस बात का स्वयम् फैसला हो जाएगा कि कौनसा शब्द दूसरे पर बाज़ी ले गया–हिंदी शब्द ही स्थिर रहा या अंगरेजी शब्द अपने "तत्सम" या "अर्द्ध तत्सम" रूप से हिंदी में घुस गया और हिंदी हो गया और हिंदी बनकर उसने पहले हिंदी शब्द का तिरस्कार कर दिया। क्योंकि तुम को जानना चाहिये कि अभिवर्धन नियम शब्दों पर भी प्रभाव रखता है। "योग्यतमावशेष" और योग्यतमावशेष नियम" यहाँ भी आपना काम करेगा। इस तरह पर शब्द के हिंदी भाषा में पक्की रीति से स्थित होने में भाषा का विकास कृत्रिम रीति से होने की जगह प्राकृतिक नियमानुसार होगा। और उन लेखकों के लेख जिन्होंने पारिभाषिक शब्दों के ढूँढ़ने में सोच विचार न करके जो शब्द तत्काल उनको मिला उसको इस्तेमाल किया चाहे हिंदी हों या अंगरेज़ी वह इस अभिवर्धन में बड़े सहायक होंगे क्योंकि उन लेखों के बाहुल्य के कारण उनका प्रचार बढ़ेगा और विज्ञान शास्त्र और उनके हिन्दी लेख और पुस्तकें सर्वग्राह्य होंगी, और ज्यादा काम में आएँगी और यदि ऐसे लेख न लिखे जाँय किंतु शब्दों की ही जोह होती रहे तो सर्वप्रियता नहीं होगी और अभिवर्धन नियमको काम करनेका मौका न आयेगा। वह आदिम हिंन्दी लेख यदि पीछे और कुछ काम न आए किंतु हास्यस्पद ही हुए तो भी वह हिंदी शब्द समूह के बड़े उत्तम और जीवित इतिहास होंगे। साइंस सीखने व जानने के लिये तो नयी ही पुस्तकें उपयोगी हुआ करती हैं।

एक प्रश्न और छोटा सा यह रहा कि क्या (Glossary) का श्रम व्यर्थ गया? इसका उत्तर यह है कि उसको व्यर्थ नहीं कह सकते। जितने शास्त्रों के व शब्दों के लिये वह बनी है उसके लिये तो वह अत्युत्तम और उपयोगी है। हम केवल उसके बनाए जाने के सिद्धान्त के विरोधी हैं (Glossary)के विरोधी नहीं किंतु उसका हम आदर करते हैं। जो शब्द उसमें आगए उनको तो ऐसा समझना चाहिये कि उनकी रजिस्ट्री हो गई। और अब जब कभी उन शब्दों की हमें चाहना हो तो उस कोश से प्रसन्नता पूर्वक लेना चाहिये। इस लेख के लिखने में भी जो हम को सहायता मिली है उसका हम धन्यवाद देते हैं—पर शेष जितने साइंस और शब्द हैं उनमें हमको उन्हीं अभिवर्धन नियमों का सहारा लेना चाहिये और शब्द गढ़ने की जगह पुस्तक रचना पर ध्यान देना चाहिये। हाल में मदरास के माननीय चीफ़ जस्टिस ने अपनी एक वक्तृता में नए पास हुए वकीलों को यह दीक्षा दी है कि

जिस समय आरंभ में उनकी वकालत ठीक न चले तो उनको चाहिये कि वह कानून की किताबें लिखें, अच्छी न लिख सकें तो बुरी ही लिखें !! अपने हिन्दी साहित्य की वर्तमान दशा को देखते हुए यदि लार्ड चीफ़ जस्टिस की इस आज्ञा को हम इस तरह बदल दें कि "आजकल हर साइंस जानने वाले हिन्दी प्रेमी का धर्म यह है कि वह हिन्दी में साइंस की पुस्तक लिखें, अच्छी न बनें तो बुरी ही लिखें, अच्छे शब्द न आते हों तो बुरे ही शब्द लावें पर साइंस की पुस्तकें लिखकर हिंदी के भांडार को भर देवें और सर्वसाधारण को साइंस की ओर रुचि दिलाने का भार उन्हीं पर है" तो अच्छा है।

सेना विभाग।

आज दश महीने से यूरोप में जो असाधारण युद्ध हो रहा है, उसको बहुत से लोग अर्वाचीन महाभारत कहते हैं। आजकल सम्बाद पत्रों का तीन चैाथाई इसी महायुद्ध के संदेसों से भरा रहता है। इनमें बार बार कंपनी, बटेलियन, रेजीमेंट, ब्रिगेड, डिवीज़न, आर्मीकोर आर्मी, इत्यादि पारिभाषिक शब्द आते हैं। सामान्य पाठकों को इनके विषय में केवल यही ज्ञात होता है कि ये सेना विभाग हैं। जिस भारतीय महायुद्ध के साथ इस युद्ध की तुलना की जाती है, उसमें सेना विभाग किस प्रकार का था, इसका ज्ञान बहुत ही थोड़े लोगों को होगा। इसलिये पाठकों के विनोदार्थ दोनों काल के सेना-विभागों का वर्णन जिससे पाठकों का मनोरञ्जन हो इस छोटे से लेख में किया जाता है।

संस्कृत-साहित्य में प्रायः सेना के चार ही अंगों का वर्णन मिलता है। इन्हीं चार अंगों के कारण सेना चतुरंगिनी कही जाती है। इन्हीं चार अंगों के कारण चतुरंग खेल भी निकला था जिसका अपभ्रंश आज कल शतरंज के रूप में मिलता है। इन चार अंगों के नाम—रथ, हाथी, घोड़े, पैदल सिपाही आदि प्रसिद्ध ही हैं। इन चार अंगों का वर्णन मेगास्थानीज ने भी किया है। पर महाभारत ग्रंथ देखने से जान पड़ता है कि प्राचीन काल में इन चार अंगों के अतिरिक्त और भी कुछ अंग थे। महाभारत उद्योगपर्व अ० ६६ श्लोक १६ में षडाङ्गिनी सेना का उल्लेख है। इसमें पूर्वोक्त चार अंगों के अतिरिक्त उष्ट्र अर्थात् सांडनीसवार तथा शकट (convoy) या गाड़ियों का भी वर्णन है। सभापर्व अध्याय पांच में तो अष्टांग चमू का उल्लेख है। वहाँ पर पूर्वोक्त चार अंगों को छोड़ और भी चार अंगों का वर्णन आया है पर इस में उष्ट्र या शकटों का उल्लेख नहीं है। इसमें योधः (विशिष्ट प्रकार के योधा लोग—यथा संशप्तक), कर्मकारकः (हथियार बनानेवाले), चाराः (scouts), और देशिक मुख्याः (युद्ध विद्या के आचार्य—आज कल का general staff—गिने जाते थे। इसके सिवा एक जगह महाभारत उद्योगपर्व अ० १५१ में लिखा है कि सेना में शकट, आयण (माल बेचने के बाजार), निवेश (तंबू, डेरे आदि), यान और युग्य (सामान ले जाने के तथा अन्य कार्यों के वाहन—(Transport waggons), कोश (खजाना), यंत्रायुध (यंत्र के साहाय्य से चलने वाले हथियार यथा गोलक, नाल वग़ैरः), वैद्य (Doctors) और चिकित्सक (Surgeons) भी समाविष्ट होते थे। इसके सिवा एक प्रकार से सेना के और भी विभाग किये जाते थे। ये मैाल (सामंत राजाओं की सेना—आज कल के auxiliaries), मैत्र (दोस्त राजाओं की सेना— allies), भृत्य (वैतनिक फैाज Regular forces) और आटविक (भील प्रभृति जंगली लोगों की केवल कार्यविशेष के लिये धन देकर एकत्रित सैन्य—mercenary forces) विभाग थे

सेना के अंगों का यह विचार हुआ। अब सेना विभाग की संख्या का विचार करना चाहिये। इस महायुद्ध के आरंभ में सब मिल कर सत्तर लाख सैनिक थे और अब तो यह संख्या डेढ़ करोड़ से भी अधिक हो चुकी है। युद्ध में भाग लेनेवाले सात आठ देश, वहाँ के सब लोगों को फौजी शिक्षा दिये जाने की पद्धति, तथा रणभूमि के विस्तार की दृष्टि से यह संख्या अधिक नहीं है। अब भारतीय युद्ध के सैनिकों की संख्या की गणना करनी चाहिये। यह बात प्रसिद्ध है कि कौरवों की ओर ११ अक्षौहिणी सेना तथा पांडवों की ओर सात अक्षौहिणी सेना थी। अर्थात् कुल मिलकर अठारह अक्षौहिणी सेना लड़ती थी। अक्षौहिणी का परिमाण भिन्न ग्रंथों में भिन्न २ प्रकारसे दिया हुआ है। परंतु सर्वसाधारण परिमाणकी तालिका नीचे दी जाती है इसी तालिका के अनुसार कई विद्वानों का मत है कि एक अक्षौहिणी में २१८७×१०=२१८७० रथ, २१८७० गज, ६५६१० घुड़सवार और १०९३५० पैदल सिपाही रहते थे। अर्थात् इनके मत से महाभारत युद्ध में १८ (२१८७०+२१८७०+६५६१०+१०९३५०) =१८×२१८७००=३९३६६०० सैनिक थे॥

तालिका के गणित से यह संख्या काँटे तौल है। परंतु वास्तव में यह ठीक नहीं। इसमें एक रथ में एकही सैनिक तथा एक गज पर एकही सैनिक माना गया है। पर वास्तव में ऐसा न था। एक रथ में यद्यपि मुख्य रथी एकही रहता था, तथापि उसके सारथी भी उसी रथ पर रहते थे। आजकल की गाड़ियोंके देखने से तथा रथ की प्रथा उठ जाने से साधारण लोगों को यही विदित होता है कि एक रथ पर एक ही सारथी रहता था। प्रायः पौराणिक चित्रों में भी एकही सारथी दिखाई पड़ता है। पर विज्ञ लोगों को यह भली भाँति विदित है कि रथ पर एकही सारथी न रहता था। तथा गज पर भी

सेना का प्रमाण।

सेना	हाथी रथ	घोड़े	पैदल
पत्तिः	१	३	५
सेना मुख	३	९	१५
गुल्म	९	२७	४५
गण	२७	८१	१३५
वाहिनी	८१	२४३	४०५
पृतना	२४३	७२९	१२१५
चमू	७२९	२१८७	३६४५
अनीकिनी	२१८७	६५६१	१०९३५
अक्षौहिणी	२१८७०	६५६१०	१०९३५०

एकही योधा और एकही महावत न रहता था। एक गज पर दो 'अंकुशधर' आगे को, दो 'धनुर्धर' बाजूओं में, दो 'असिधर' पीछे और बीच में शक्ति पिनाकधृक्' योधा रहते थे। अर्थात् एक हाथी पर सात योधा रहते थे। इस नियमानुसार २१८७० हाथियों पर और ७×२१८७० = १५३०९० सैनिक एक अक्षौहिणी में हुए॥

अब रथ का विचार करते हैं। उद्योगपर्व अध्याय १५५ में 'चतुर्युगो रथः सर्वे' लिखा हुआ है। टीकाकार इसका अर्थ 'सब रथों में चार घोड़े जोते जाते थे' करते हैं। और शब्दों का यह अर्थ हो भी सकता है। परंतु अन्यान्य वर्णनों से यह अर्थ ठीक नहीं मिलता क्योंकि एक रथीके साथ तीन सारथी होनेका वर्णन किया है। इसमें एक धुर्य सारथी और दो पार्ष्णी सारथी होते थे। शब्दों का अर्थ किया जाय तो इन दो शब्दों

के अगले सारथी और पिछले दो सारथियों का बोध होता है। यदि रथ में आजकल की तोपों केसे चार घोड़े जुतते हों तो तीन सारथियों में से दो सारथी चार घोड़ों को रोकने के लिये और एक बचत के लिये माना जा सकता है। अथवा यह मुख्य सारथी चारों घोड़ों को मानकर दो सारथी मुख्यरथी के सहायक माने जा सकते हैं। पर पहली कल्पना से पार्ष्णि शब्द का अर्थ और दूसरों में सारथी शब्द का अर्थ ठीक नहीं लगता। अतएव मेरी यह कल्पना है कि रथ में तीन घोड़े जोते जाते होंगे और हर एक घोड़े पर एक एक सारथी रहता होगा, और तीन सारथी और रथी मिलकर हरएक रथ चतुर्युक अर्थात् चार योधाओं से युक्त रहता होगा। मेरे इस विधान की पुष्टि के लिए वैदिक प्रमाण दिया जा सकता है। राजसूय यज्ञ में या वाजपेय यज्ञ में रथारोहण कर्म है। घोड़ों को धोकर उनकी पीठ मलकर, हाथ में चाबुक लेकर उन्हें जोतना होता है। वहीं पर लिखा है कि 'त्रयो ऽश्वाभवन्ति रथश्चतुर्थः।'

इन घोड़ों के नाम भी अर्वा,रुप्रि और बाजी थे। दाहिनी ओर के घोड़े को अर्वा कहते थे, बाँई ओरके घोड़े को रुप्रि,जो आगे जोता जाता था बाजी कहते थे। अर्थात् हर एक रथ में तीन घोड़े जुते रहते थे और एक रथ के साथ चार योधा रहते थे, तीन सारथी जो स्वयं भी युद्ध कुशल होते थे और चौथा रथी जो स्वयं भी रथ हाँकने में कुशल होता था रहता। अर्थात् २१८७० रथ के साथ एक अक्षौहिणी में ४×२१ ८७०= ८७४८० सैनिक रहते थे। इन बातों का विचार कियाजायतो एकअक्षौहिणी में २१८७०० सैनिक रहने की जगह यही मानना पड़ेगा कि २१८७० रथ के ८७४८० सैनिक, २१८७० हाथी पर के १५३०९०, घुड़सवार ६५६१० और पैदल सिपाही १०९३५०, मिलाकर एक अक्षौहिणी में ४१५५३० सैनिक रहते थे। अब इस हिसाब से १८ अक्षौहिणी मिलकर १८×४१५५३०=७४७९५४० सैनिक महाभारत के युद्ध में शामिल थे। अर्थात् जितने सिपाहियों से यूरोपीय महाभारत आरंभ हुआ, उससे कुछ ही अधिक सैन्य महाभारत युद्ध में थी।

अब अर्वाचीन सेना के भाग का विचार करतेहैं। अर्वाचीन आर्मीके तीन अंग हैं—पैदल घुड़सवारऔर तोपखाना। पैदल या Infantry के विभागों में ब्रिटिश फौज के नियमानुसार १८५ सिपाही की एक 'कंपनी' ८ कंपनी की 'बटेलियन' चार बटेलियन की एक 'ब्रिगेड' ३ ब्रिगेड का एक 'डिविजन', दो डिविजन का एक आर्मीकोर और दो या अधिक आर्मीकोरों की एक आर्मी होती है। घुड़सवारों में अर्थात् cavalry में १५५ सवार की एक 'ट्रुप' २ ट्रुप का एक 'स्काड्रन' ४ स्काड्रन की एक 'रेजिमेंट' ३ 'रेजिमेंट' की एक 'ब्रिगेड' और चार ब्रिगेडों का एक 'डिविजन' होता है। तोपखाना या Artillery में दो तोपों का एक 'सेक्शन' तीन सेक्शन की एक 'बेटरी' और तीन बेटरी की एक ब्रिगेड होती है। इसके सिवा हैविमेटल व मेशीनगन आदि के विभाग भिन्न रीति से होते हैं। पूर्वोक्त विभाग ब्रिगेड तक स्वतंत्र होते हैं, परंतु डिविजन में पैदल, सवार और तोपखाना मिल जाता है। प्राचीन भारतीय सेना विभाग में पतनों में ही भिन्न भिन्न अंगों का मिलान हो जाता था। अर्वाचीन सेनाविभाग के नायकों में नोनकामिशन्ड और कामिशन्ड दो प्रकार के अफसर होते हैं। कार्पोरल सार्जंट आदि कनिष्ठ अफसर प्रथम श्रेणी के होते हैं और द्वितीय श्रेणी में लेफटीनेंट, कर्नल, कर्नल, ब्रिगेडियर जनरल, मेजर जनरल, ले० जनरल और जनरल होते हैं। पहले भी रथी, महारथी, सेनापति और प्रणेता रहते थे। युद्धार्थ जमा हुई अनेक आर्मियों का जैसा एक ही मुख्य सेनापति (Generalissimo) होता है वैसा ही पूर्वकाल में भी होता था। यथा फ्राँस-

बेलजियम में जमी हुई ब्रिटिश, फ्रेंच तथा बेलजियम सेना का आधिपत्य जनरल जाफ्रे के हाथ में है वैसा ही भारत में पांडव की ओर जमी हुई सब राज-सेनाओं का आधिपत्य धृष्टद्युम्न के हाथ में था और कौरवों की ओर की सब सेना का अधिकार भीष्माचार्य और उनके मरने के पश्चात् द्रोणाचार्य, कर्ण तथा शल्य के हाथ में। जैसे आजकल आर्मी कमांडर्स मुख्य जनरल के नीचे होते हैं, वैसे ही उस समय भी एक एक अक्षौहिणी के भिन्न भिन्न नायक थे। पांडवों की ओर द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न, शिखंडी, सात्यकि; चेकितान और भीमसेन और कौरवों की ओर कृप, द्रोण, शल्य, जयद्रथ, सुदाक्षण, कृतवर्मा, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, कर्ण, शकुनि और बाह्लीक नायक थे।

वायु भार मापन यंत्र।

(अध्या० प्रेमबल्लभ जोशी बि. एस. सी.)

प्राचीन वैज्ञानिक संसार को पांच तत्वों का बना हुआ मानते थे। ये पांच तत्व पृथ्वी, अप, तेज, वायु और आकाश हैं। उनका यह मत था कि जितनी भी वस्तु संसार में हैं वे इन्हीं पांच तत्वों के भिन्न २ तरह पर मिलने से बनती हैं।

आजकल वैज्ञानिक लोग ८० तत्व मानते हैं। तत्व वे पदार्थ हैं जिनका अन्य वस्तुओं से बनना असम्भव है। ये पदार्थ (*elementary substances*) प्राथमिक पदार्थ कहे जाते हैं। ऊपर कहे पदार्थ अर्वाचीन वैज्ञानिक की दृष्टि से प्राथमिक नहीं हैं क्योंकि ये स्वयं अन्य पदार्थों से बने हैं। जैसे पृथ्वी में कम से कम १२ पदार्थ हैं, जल दो गैसों से बना है वायु में छ गैसें विद्यमान हैं, तेज पदार्थ के अणु को बहुत गर्म करने से बनता है। इस प्रकार प्राचीन पांच तत्वों को प्राथमिक पदार्थ कहना ठीक नहीं है।

[Physics भौतिकशास्त्र]

प्रायः पुराने वैज्ञानिकों ने ये पांच तत्व वस्तुओं को पांच विभागों में बांटने के लिये माना होगा। इस समय वैज्ञानिक वस्तुओं को तीन भागों में बांटते हैं। ये तीन विभाग वस्तुओं की दशा पर निर्भर है। यदि भली भाँति देखा जाय तो हमें मालूम होगा कि संसार के सब पदार्थ या तो पत्थर से ठोस होंगे या पानी से तरल या वायु से सूक्ष्म होंगे। इस प्रकार संसार के सब पदार्थ पाषाणवत, जलवत तथा वायुवत इन तीन खंडों में बांटे जा सकते हैं। जो पदार्थ ठोस हों जिनको ढेर में एकत्रित करना सम्भव हो अथवा जो बहते न हों वे पाषाणवत हैं जैसे चांदी, लोहा, पत्थर, काठ इत्यादि। जो पदार्थ बहते हों जिन को ढेर में एकत्रित करना सम्भव न हो जिनका कोई आकार नियमित न हो अथवा जो भिन्न २ पात्रों में उन्हीं का आकार ग्रहण कर लेते हों वे जलवत हैं जैसे पानी, तेल, दूध इत्यादि। जो पदार्थ वायु की भाँति क्षणभर में फैल जाते हों उनको वायुवत पदार्थ कहते हैं, जैसे धुवाँ, भाप।

प्रायः सब ही जलवत तथा पाषाणवत पदार्थ गर्मी से वायुवत बन जाते हैं और यही कारण है कि वायुवत पदार्थों की संख्या बहुत ही बड़ी है। कई पदार्थ ऐसे भी हैं जो तीनों दशाओं में मिल सकते हैं, जैसे जल एक जलवत (तरल) पदार्थ है, ठंड से यह जमकर पाषाणवत बर्फ बन जाता है और गर्मी पाने से वायुवत भाप बन जाता है।

एक बड़ा भेद पदार्थों की इन तीन दशाओं में और देखने में आता है वह यह है कि पाषाणवत पदार्थ का भार सदा नीचे को लगता है पर जलवत तथा वायुवत पदार्थ चारों दिशाओं को दबाते हैं। पत्थर के ऊपर हाथ रखने से हाथ पर कोई भार मालूम नहीं होता पर पानी का भार ऊपर को भी पड़ता है तात्पर्य यह है कि पानी पदार्थ को ऊपर की ओर भी दबाता है। यह सब ही जानते हैं कि भरा घड़ा पानी के

भीतर जब तक रहता है भारी नहीं मालूम होता इसका कारण केवल यही है कि पानी घड़े को ऊपर की ओर दबाता है।

बच्चे रबर की फूँकनी से खेलते हैं यदि फूँकनी में हवा भरकर उसके मुँह को भलीभांति बंद कर दिया जाय तो इसे पानी के भीतर डालने पर हम देखेंगे कि फूँकनी पानी के भीतर छोटी पड़गई है परन्तु फूँकनी की गोलाई ठीक रहती है जिससे यह स्पष्ट है कि इस पर दबाव सब दिशाओं से पड़ रहा है इसी प्रकार यदि गिलास के मुँह पर रबर का बड़ा सा टुकड़ा बाँधा जाय और इस गिलास को पानी में डाला जाय तो रबर भीतर को दब जाता है।

जिस प्रकार जलवत पदार्थ में भार होता है वैसे ही वायुवत पदार्थों में भी भार होता है और यह भार भी सब दिशाओं में दबाता है। प्राचीन काल के ग्रीस निवासियों को यह बात सूझ गई थी कि वायु में भी भार होता है परन्तु वे इतना नहीं जानते थे कि एक इंच लम्बी और एक इंच चौड़ी अर्थात् प्रत्येक वर्गइंच में साधारणतः वायु का भार ७॥ सेर के बराबर पड़ता है। आप को भी यह सुनकर आश्चर्य होगा क्योंकि यदि प्रत्येक वर्गइंच पर वायु का साढ़े सात सेर के बराबर बोझ पड़ता है तो मनुष्य शरीर पर कम से ४०० मन का बोझ तो अवश्य ही पड़ता होगा, क्या कारण है कि मनुष्य दब कर चकना चूर नहीं होता ?

आप जानते हैं कि दो बराबर बल वाले मनुष्य किसी वस्तु को विपरीत दिशाओं में खींचते हों तो वस्तु अपने स्थान से नहीं हटती। जैसे दो बराबर बल वाले लड़के किवाड़ को एक दूसरे के विपरीत खींचेंगे तो किवाड़ अपने ही स्थान पर स्थित रहेगा यदि किसी कारण एक बालक का बल कम पड़ जाय तो किवाड़ अवश्यही दूसरी दिशाको खिंच जायगा। बस यही कारण है कि हम को हवा का भार मालूम नहीं पड़ता। जितने भार से बाहर की हवा हमको दबाती है उतने ही भार से हमारे भीतर की हवा भी बाहर को दबाती है दोनों भारों के बराबर और विपरीत दिशाओं में होने से हम को भार नहीं मालूम पड़ता। यदि किसी प्रकार एक ओर का भार कम हो जाय या हट जाय तो दूसरी दिशा से भार अवश्य मालूम होगा।

इसको प्रत्यक्ष करने के लिये एक बड़ा ही सरल प्रयोग है। एक साधारण छेद वाली चाबी को यदि जिह्वा अथवा होठ पर लटकाने की कोशिश की जाय तो चाबी का लटकना सम्भव नहीं होता परन्तु यदि चाबी को मुँह पर रख उसकी हवा को सोख डाला जाय और हवा सोखी जा चुकने पर जिह्वा अथवा होंठ में चाभी लगाई जावे तो चिपक जावेगी और उसको अलग करने के लिये हमको खींचना पड़ेगा। यदि चाबी के चिपके हुए स्थान में मांस को देखा जाय तो ज्ञात होगा कि मांस में चाबी का सा निशान पड़ गया है अथवा मांस के उठ जाने से यह भी परिचय होगा कि मांस ने चाबी के भीतर घुसने की कोशिश की थी।

इस सब का कारण समझना कोई कठिन बात नहीं है, जब तक चाबी के भीतर हवा रही तब तक बाहर की हवा के भार के विपरीत होंठ को दबाने से होंठ पर कोई भी भार मालूम नहीं हुवा पर जब चाबी की हवा सोख ली गई तो होंठ के एक ही ओर वायु रह गई जिस कारण होंठ को बाहर की हवा ने दबाया और मांस ने चाबी के भीतर घुसने की चेष्टा की। ठीक यही बात बाइसिकल के पम्प से भी हो सकती है। पम्प के छेद पर अंगुली लगा कर पम्प का डंडा खींचा जाय तो अंगुली भीतर को खिंचने लगती है।

प्राचीन वैज्ञानिकों का यह मत था कि संसार में शून्य नहीं रह सकता जहाँ पर भी शून्य हो वहाँ पर कोई न कोई वस्तु आकर शून्य को भर देगी। इस नियम पर उन्होंने पिचकारी बनाई।
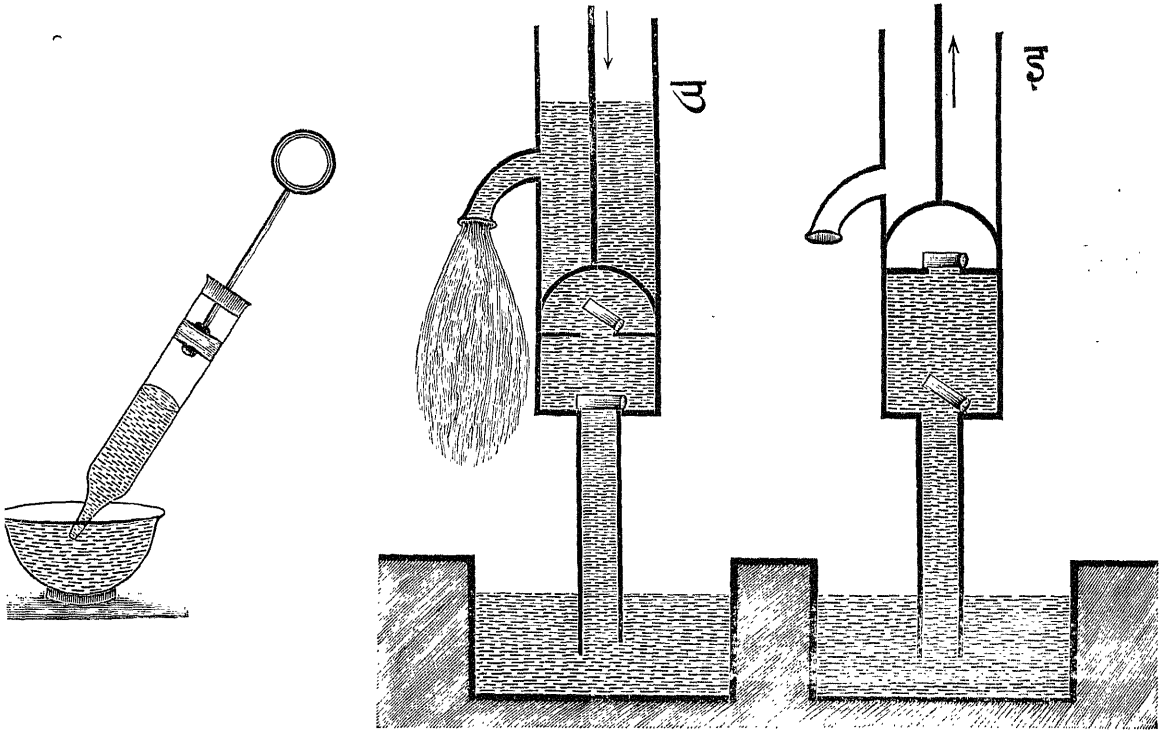
पिचकारी का डंडा जब ऊपर खींचा जाता है तो डाट के ऊपर की हवा सब बाहर निकल जाती है जिससे डाट के नीचे की जगह शून्य होती जाती है। इस शून्य को भरने के लिये पानी सर्रसर्र पिचकारी में चढ़ने लगता है। इसके आधार पर लोगों ने कुंओं में से पानी निकालने के 'पम्प' बनाये,। ये पम्प आजकल प्रायः सब ही स्थानोंमें देखने में आते हैं। पुराने वैज्ञानिक पिचकारी से पानी भरने का जो कारण बताते थे वहीं इस पम्प का भी बताते थे। पम्प में दो ढकने लगे होते हैं ये ढकने केवल ऊपर को ही खुले होते हैं इनमें से एक ढकना डाट में लगा होता है। पहली बार जब डंडा ऊपर को खींचा जाता है तो इसके ऊपर की वायु बाहर को निकलती है और इसके स्थान पर कुंएं से पानी ढकना उ को खोल कर ऊपर चढ़ने लगता है, इस प्रकार सब पम्प जल से भर जाता है। जब पम्प नीचे को दबाया जाता है पानी पर भार पड़ने के कारण ढकना १ बंद हो जाता है पर ढकना इ खुल जाता है इससे पानी डाट के ऊपर चढ़ जाता है। फिर डाट ऊपर को खींचा जाय तो इसके ऊपर का जल मुँह द्वारा बाहर निकल आता है और इसके नीचे और जल कुंएं में से चला आता है।

बहुत काल तक लोग इतने में सन्तुष्ट रहे, उनको यही ध्यान रहा कि वायु के निकलने पर पानी केवल शून्य भरने को आता है। इस पर उस समय के लोग सब सहमत थे कि सृष्टि शून्य को रहने नहीं देती। प्राचीन वैज्ञानिकों का यह मत था कि चाहे कितनाही ऊँचा या लम्बा पम्प लिया जाय जब तक उस में शून्य बना रहेगा निश्चय ही जल ऊँचा उठेगा। इस प्रकार

लोग ३२ फीट ऊँचाई तक पानी को चढ़ा लेजा सकते थे परन्तु (क्योंकि वे अपनी 'शून्य भरने' की कल्पना पर सन्तुष्ट थे) उन्होंने यह जानने अथवा देखने की चेष्टा नहीं की कि क्या पानी १०० फीट ऊँचाई तक चढ़ जायगा? अथवा यदि १०० फीट लम्बा पम्प लेवें तो क्या हम पानी को इतना ऊँचा खींच सकेंगे?

१६ वीं शताब्दी में गैलीलियो नाम का एक बड़ाभारी वैज्ञानिक इटली में हुआ। इसके समय में कुछ लोगों ने पम्प से पानी को ८० फीट ऊँचा चढ़ाना चाहा इसलिये उन्होंने ८० फीट लम्बा नल बनाया। परन्तु उनको यह देखने में आया कि चाहे कितनाही पम्प को चलाया जाय पानी ३३ फ़ीट से ऊँचा नहीं उठता चाहे उनका डांट पम्प के सिरे पर ही क्यों न पहुँच जाय पर पानी केवल ३३ फ़ीट तक चढ़ेगा बाकी स्थान खाली रहेगा।

अब तो लोग विचारने लगे कि संसार में शून्य होना बिलकुल असंभव नहीं है क्योंकि यदि शून्य होना असम्भव होता तो ऊपर कहे हुए प्रयोग में ८० फ़ीटपानी अवश्य चढ़ आता। इस बात पर बहुत दिनों तक जाँच होती रही। गैलीलियो ने भी इसपर प्रयोग किये पर १६३५ ई० में गैलीलियो के शिष्य टौरिसिली ने इस पर प्रयोग करने के मार्ग बतलाये।

पानी के केवल ३३ फुट ऊपर चढ़ने का कारण समझना कोई कठिन कार्य नहीं है। वायु का भार पानी पर पड़ता है और इस भार में इतनी शक्ति है कि यह ३३ फुट ऊँचे खड़े पानी को रोक सकता है। टौरिसिली ने बिचारा कि यदि ३३ फुट ऊँचाई तक पानी वायु के भार के कारण टिक सकता है तो निश्चय ही पारा जो कि पानी से १३ गुना भारी है केवल २ या ३ फ़ुट ऊंचाई तक टिक सकेगा; इसको देखने के निमित उसने निम्न लिखित प्रयोग किया।

एक ३ फ़ुटलम्बी काँचकी नली ली इसका एक सिरा बन्द था दूसरे सिरे से इस नली में पारा भरा गया, अब इस सिरे को अंगुली से बन्द करके एक पारेसे भरे कटोरेमें यह सिरा डाला गया। जब यह सिरा पारे के भीतर पहुँच गया तो अंगुली छोड़ दी गई, देखने में आया कि पारा स्वयं ६—७ इंच उतर गया। इस ६—७ इंच स्थान में पूर्ण शून्य ही रह गया। इस प्रयोग से यह स्पष्ट हो गया कि वायु का भार ३० इंच
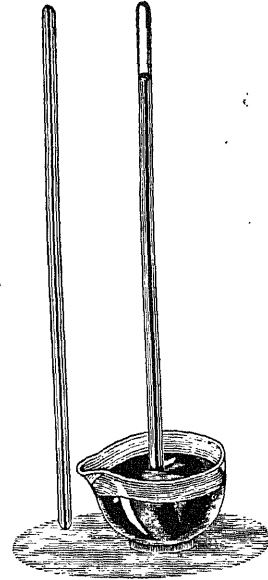
ऊंचे पारे को रोक सकता है। बस यही आज-कल के वायुभार मापन का जन्म है। यदि वायु में किसी प्रकार भार अधिक हो जाय तो पारा और अधिक ऊपर चढ़ेगा और यदि कम हो जाय तो नीचे उतर आवेगा।

जब ऊपर कहे प्रयोग का हाल फ्रांस में मालूम हुआ तो लोगों ने इसे बड़ी सावधानी से दोहराया। एक महाशय ने कल्पना की कि यदि केवल वायु के भार के कारण पारा इस प्रकार खड़ा रह सकता है तो जिस स्थान में वायु का भार कम रहेगा उस स्थान में पारा स्वयं उतर आना चाहिये। इन्होंने अपने एक मित्र को यह यंत्र लेकर पर्वत के शिखर पर भेजा पर्वत के

शिखर पर वायुका भार कम हो जाने के कारण २—३ इंच पारा उतर पड़ा। बस इन प्रयोगों से टोरिसिली का सिद्धांतपूर्णतया सिद्ध स्वीकार किया गया और लोग इस प्रकार की नली से वायु भार मापने लगे।

आजकल इस यंत्र में कई सुधार कर दिये गये हैं पर वे केवल बाहरी सुधार हैं जैसे किसी ने इस नली तथा प्याले को सुन्दर चोखटे पर चढ़ा कर उसके किनारे मापने का रूल लगा दिया है इत्यादि।

जब तूफान आता है तो किसी स्थान में वायु पर भार कम हो जाता है इस कारण पारा एकाएक गिर जाता है और लोग जान जाते हैं कि अब तूफान आवेगा। जब गर्म होने से वायु में भाप बहुत रहती है तो पारे के उतरने से यह ज्ञात होता है कि वर्षा होगी इत्यादि।

जब लोगों को यह ज्ञात हो गया कि यह यंत्र केवल वायु का भार ही बतलाता है तो उन्होंने इस भार को मापने के और यंत्र भी बना लिये जैसे आजकल एनैरोइड कृत यंत्र बहुत काम आता है किसी धातु का हलका और खोखला गोल बक्स बना कर उसको घड़ी के पुर्जों में जोड़ देते हैं। इस बक्स पर वायु का भार अधिक वा कम पड़ने से यह अधिक वा कम दबता है और इसी प्रकार पुर्जे भी चलते हैं और सुई भी चलती है।

पदार्थ और शक्ति

(अध्या० प्रेलवल्लभ जोशी वि. एस सी)

कहते हैं किसी देश के राजा ने जब पहले पहल दर्पण मे अपना प्रति विम्ब देखा तो वह दर्पण के पीछे यह देखने को भागा कि वहाँ क्या है? क्या है और क्यों है? ये दो प्रश्न मनुष्य सदा से पूछने को इच्छुक हैं—चाहे मनुष्य को यह इच्छा स्वभाव से ही होती हो अथवा बहुत समय तक देखा भाली के उपरान्त उसमें पैदा हो जाती हो, हम नहीं कह सकते। परन्तु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि जब से मनुष्य ने संसार में जन्म लिया उसके चारों ओर ऐसी आश्चर्य जनक अथवा विलक्षण घटनायें होती आई हैं कि मनुष्य चित्त का शान्त रहना कभी सम्भव नहीं है। मेह क्यों बरसता है? बादल क्यों गरजते हैं? बिजली क्यों चमकती है? पृथ्वी क्या है? सूर्य क्या है? इस प्रकार के प्रश्न मनुष्य के समक्ष उपस्थित हुए और इन प्रश्नों के उत्तर देने की चेष्टा से ही विज्ञान ने जन्म लेकर संसार का मुख उजला किया है। वैज्ञानिक संसार के चमत्कारों को बतलाने में दो चीज़ों को अग्रसर मानते हैं—एक तो पदार्थ और दूसरी शक्ति। वास्तव में ये इन्हीं दो चीज़ों के सम्मिलन से सारी सृष्टि का जन्म है। कहते हैं कि न्यूटन साहेब ने पेड़ से सेव के दाने को गिरते देखा—साधारण मनुष्य के लिये यह कोई आश्चर्य जनक बात न थी और न है परन्तु न्यूटन के मन में एकाएक प्रश्न उत्पन्न हुवा कि यह क्यों पृथ्वी पर गिरा—इन्होंने इस बात पर विचार किया जिसके कारण संसार को पृथ्वी की आकर्षण शक्ति का बोध हुआ। चाहे न्यूटन साहेब का यह किस्सा ठीक हो या न हो पर इससे यह स्पष्ट है कि जिन बातों को साधारण मनुष्य रात दिन की समझ कर ध्यान तक नहीं देते उन्हीं की खोज से वैज्ञानिक को संसार के रहस्य ज्ञात होते हैं॥

जब न्यूटन ने यह निश्चय कर लिया कि सेव पृथ्वी की ओर आकर्षित होता है तो आप इस बात को और बढ़ा कर सोचने लगे—"यदि पृथ्वी मे आकर्षण शक्ति है तो अवश्य ही यह तारागणों को अपनी ओर खींचती होगी क्या कारण है कि तारे सब खिचकर पृथ्वी से नहीं टकराते? क्या कारण है कि कोटिशः

ब्रह्माण्ड अपने २ नियत स्थानों पर कार्य करते हैं ?"–केवल एक ही कारण न्यूटन को सूझ पड़ा वह यह कि जिस प्रकार पृथ्वी सेव को आकर्षित करती है उसी प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। इस प्रकार न्यूटन के चित्त को शान्त करने वाला आकर्षण का नियम बना कि "सब तारे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं और इस आकर्षण शक्ति का बल जितनी दूर वस्तु हो उतना ही कम होता जाता है –यदि वस्तु २ फीट दूर हो तो बल $\frac{1}{4}$ पड़ेगा यदि ४ फीट दूर हो तो $\frac{1}{16}$ हिस्सा और यदि ८ फीट हो तो $\frac{1}{64}$ हिस्सा इत्यादि"।

शक्ति दो प्रकार की होती है। पृथ्वी का सेव को खींच लेना आकर्षण शक्ति का उदाहरण है परन्तु शक्ति का एक और रूप है जिसका वर्णन हम नीचे देते हैं।

साधारण चुम्बक को सब ही जानते हैं। चुम्बक के दो सिरे उत्तर ध्रुव अथवा दक्षिण ध्रुव कहलाते हैं। इसका कारण यह है कि यदि चुम्बक पृथ्वी के समानान्तर लटकाया जाय तो उसका एक सिरा सदा उत्तर को और दूसरा दक्षिण को रहेगा।

यदि एक चुम्बक ऊपर की भाँति लटकाया और दूसरा चुम्बक उसके निकट लाया जाय तो एक विलक्षण बात देखने में आती है; यदि लटके हुए चुम्बक के उत्तर ध्रुव के निकट दूसरे चुम्बक का उत्तर ध्रुव लाया जाय तो ये सिरे एक दूसरे से दूर भागेंगे परन्तु यदि इस के निकट चुम्बक का दक्षिण ध्रुव लाया जाय तो ये एक दूसरे को आकर्षित करेंगे, तात्पर्य यह है कि समान ध्रुवों में निराकरण और भिन्न ध्रुवों में आकर्षण होता है।

इस प्रयोग से हम को निराकरण शक्ति का बोध होता है–चुम्बक के निकट रहने से लोहे में भी चुम्बक शक्ति आ जती है–अर्थात् लोहा जब तक चुम्बक के निकट रहता है स्वयं चुम्बक की भाँति अन्य लोहे को आकर्षित करता है, इसका कारण यह है कि लोहे के प्रत्येक कण में चुम्बक शक्ति होती है परन्तु ये कण लोहे के भीतर ही एक दूसरे से आकर्षित रहते हैं और इस कारण यह चुम्बक शक्ति हमारे देखने में नहीं आती, परंतु चुम्बक के निकट आने से ये कण एक नियमित प्रकार से स्थित हो जाते है और चुम्बक शक्ति लोहे में आ जाती है। इस क्रिया को देखने के निमित्त एक चुम्बक के ऊपर कांच अथवा कागज का टुकड़ा रख कर उसमें लोहे का चूरा डालिये तो लोहे के छोटे छोटे कण बड़ी ही सुन्दरता से पाँति बाँधिकर आ जमैंगे।

चुम्बक की शक्ति हम अपने आँखों से देख सकते हैं अथवा हमारी आँखों के सामने चुम्बक लोहे को तथा अन्य चुम्बक को आकर्षित करता दिखाई देता है परंतु संसार में शक्ति नाना प्रकार से कार्य करती है जिन को इन आँखों से देखना सम्भव नहीं है। शक्ति के इन कार्यों के उदाहरण रासायनिक परिवर्तन हैं। रासायनिक परिवर्तनों में जिस प्रकार शक्ति व्यय होती है इसकी कल्पना मात्र हो सकती है और यही कल्पना वैज्ञानिकों को सत्पथ बतलाने में समर्थ होती है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि रासायनिक परिवर्तन किसे कहते हैं– शक्ति का कार्य समझने के पूर्व हमें इस बात को समझ लेना उचित होगा।

पानी में मिलाने से शक्कर घुल जाती है शक्कर एक श्वेत चूर्ण है, पर पानी में यह अदृश्य हो जाती है अर्थात शक्कर की दशा में पानी मिलने से शर्बत हो जाता है। परन्तु क्या यह परिवर्तन स्थायी है ? क्या हमारे लिए पानी में से इस शक्कर को निकाल लेना सम्भव है ? यदि सम्भव है तो क्या जो शक्कर अब पानी में से निकलेगी उसमें और पहले की शक्कर में कुछ भेद है ? इन सब प्रश्नों का उत्तर यही है कि तपाने से पानी

उबल जायगा और हमें पहले ही की सी शक्कर मिल जायगी।

मोम बत्ती जल गई, इसमें से कुछ धुआँ निकला कुछ ज्योति निकली और दो घंटे उपरान्त १० इंच लम्बा टुकड़ा अदृष्य हो गया। क्या मोमबत्ती भी चीनी की भाँति वापिस मिल सकती है? क्या उस धुँवे को जमा करने से ठीक वैसी की वैसी मोमबत्ती हमें मिल सकती है? नहीं! यह सम्भव नहीं है।

चीनी और मोमबत्ती दोनों स्वेत रंग के ठोस पदार्थ हैं। दोनों में परिवर्तन हुआ। यों देखने को दोनों अदृश्य हो गईं परन्तु चीनी को उसी आकार में लाना कोइ कठिन कार्य नहीं पर बत्ती को ठीक उसी आकार में लाना कठिन ही नहीं असम्भव है। चीनीमें परिवर्तन स्थायी न था और न चीनी की वास्तविक दशा में परिवर्तन हुआ परन्तु बत्ती का परिवर्तन स्थायी है। इस की वास्तविक दशा परिवर्तन का नाम है "रासायनिक परिवर्तन" (Chemical change) जब दो अथवा दो से अधिक पदार्थों के मिलने से रासायनिक परिवर्तन होता है तो एक अन्य पदार्थ बन जाता है, यह नया पदार्थ सम्मिलित पदार्थों से रूप अथवा गुण में भिन्न होता है।

तो क्या इस रासायनिक परिवर्तन में शक्ति व्यय होती है? यदि होती है तो किस प्रकार? इस को समझने के पूर्व हम को यह समझना चाहिये कि पदार्थ की वास्तविक दशा क्या है,

यों देखने को पत्थर का टुकड़ा ठोस रहता है-इस का एक नियमित आकार है-परन्तु यह किस तरह ठोस बन गया? यह किस वस्तु का बना हुआ है? यह प्रश्न वैज्ञानिक पूछता है। पत्थर को तोड़ कर छोटा बनाइये-इसको पीस डालिये छोटे छोटे टुकड़े रह जावेंगे-इनमें से एक को और छोटा कीजिये यदि आँख से न दीखे तो शूक्ष्मदर्शन यंत्र की सहायता लेकर छोटा कीजिये-कहाँ तक छोटा होगा? मान लीजिये कि सूक्ष्मदर्शन यंत्र की भी अवधि हो गई परन्तु पत्थर के छोटे टुकड़े को और छोटा करना फिर भी सम्भव है; जब मनुष्य अपनी इंद्रियों तथा यंत्रादि से सहायता नहीं ले सकता तो वह कल्पना करने लगता है—कल्पना कीजिये कि यह टुकड़ा कहाँ तक छोटा हो सकता है कल्पना के भी घोड़े दौड़े, अंत में इस की भी अवधि आ गई। इस अवधि पर यदि पत्थर का टुकड़ा और छोटा किया जाय तो वह पत्थर नहीं रहेगा बल्कि जिन पदार्थों का पत्थर बना हुआ है वे सब भिन्न हो जावेंगे-जो टुकड़ा अथवा जो अंश पत्थर का इस अवधि पर रह जाताहै उसको वैज्ञानिक अणु (Molecule) कहते हैं। इस अवधि पर टुकड़े के अधिक विभाग करने से वह उन वस्तुओं में विभक्त हो जावेगा जिनके सम्मिलन से वह बना हुवा है और इन सम्मिलित टुकड़ों का नाम परमाणु (Atom) है।

संसार में पदार्थ दो प्रकार के होते हैं एक तत्त्व और दूसरे मिश्रित। पदार्थ—शब्द उन वस्तुओं के लिये प्रयोग किया जाता है जिनको अन्य पदार्थों के सम्मिलन से बनाना सम्भव न हो जैसे चांदी, सोना, पारा, गंधक अभिद्रजन इत्यादि। चांदी सृष्टि में पायी जाती है और हमारे लिये लोहा अथवा अन्य किसी भी पदार्थ से चाँदी बनाना सम्भव नहीं है। इस प्रकार के पदार्थ संसार में ७० के लगभग हैं और इन को तत्त्व (Elements) कहते हैं अन्य पदार्थ मिश्रित (Compound) कहलाते हैं ये पदार्थ तत्त्वों के भिन्न २ सम्मिश्रणों से बनते हैं—जैसे जल ओषजन और अभिद्रजन नामक वायवीय तत्त्व पदार्थों से बना हुआ है। चीनी, कर्बन (कोयला) तथा जल के सम्मिलन से बनती है। तेल इत्यादिक कर्बन (कोयला) और अभिद्रजन के सम्मिलन से बनते है।

अब हम को देखना है कि जब (मिश्रित पदार्थ) और चांदी अथवा अभिद्रजन (तत्त्व

पदार्थ) के अणुओं के बीच किस प्रकार का अन्तर है। जल की बूंद को ऊपर के नियमानुसार छोटा किया तो अवधि में जल का अणु अभिद्रजन तथा ओषजन के परमाणुओं में विभक्त हो जावेगा—इस कारण जल के अणु और परमाणु में बड़ा अन्तर है। वास्तव में जल का प्रत्येक अणु दो अभिद्रजन तथा १ ओषजन के परमाणुओं का बना होता है। परन्तु चाँदी अभिद्रजन इत्यादि तत्त्व पदार्थों के अणु और परमाणुओं में इस प्रकार का भेद नहीं है। तत्त्वों के अणु उसी के एक वा एक से अधिक परमाणुओं के सम्मिलन से बने होते हैं इसको भली भाँति समझने के लिये हम निम्न लिखित चक्र बनाते हैं। यह वर्णन पदार्थों की बनावट का है।

२ अभिद्रजन परमाणु	१ ओषजन परमाणु

(मिश्रित पदार्थ) का अणु

अभिद्रजन परमाणु	अभिद्रजन परमाणु

अभिद्रजन (तत्त्व) का अणु

अब हम शक्ति के विषय में कुछ कहेंगे। हम को विचारना चाहिये कि क्योंकर और किस कारण यह अणु अथवा परमाणु एक दूसरे से मिलकर नाना प्रकार के रूप धारण करते हैं। इसको समझने के निमित्त हम अपने पाठकों का ध्यान उन लोहे के कणों की ओर आकर्षित करते हैं जो चुम्बक के निकट आने से सुन्दर रेखाओं में आ जमते हैं। चुम्बक की शक्ति के ही कारण लोहे के कण इस सुन्दरता से एकत्रित होते हैं यही हाल पदार्थों के अणुओं तथा परमाणुओं का भी है।

जब पदार्थों के अणु परस्पर मिलते हैं तो अवश्य किसी शक्ति के कारण वे एक दूसरे को आकर्षित करते हैं और साथ मिल कर भिन्न २ रूप धारण करते हैं। इस शक्ति के लिये वैज्ञानिक के पास "रासायनिक संयोग" (Chemical affinity) के अतिरिक्त और कोई शब्द नहीं है पदार्थों के अणु एक दूसरे के साथ क्यों आ मिलते हैं? क्यों इन में एक प्रकार की प्रबल स्वाभाविक इच्छा मिलने की होती है?

जब इस प्रकार अणुओं में आकर्षण होता होगा तो क्या अद्भुत चमत्कार देखने में आते होंगे, परन्तु इनको देखना सम्भव नहीं है। यह भी सम्भव नहीं है कि हम चुम्बक की भांति इस शक्ति का कार्य देख सकें। हाँ इतना अवश्य सम्भव है कि हम इन मिश्रित पदार्थों के अणुओं के भिन्न करने में शक्ति व्यय करके यह देख सकते हैं कि उनके सम्मिलन में भी कुछ न कुछ शक्ति व्यय हुई होगी क्योंकि गांठ की मजबूती उसको सुलझाने के श्रम से भी विदित हो सकती है जितनी पक्की गांठ होगी उतना ही श्रम उसे खोलने में करना पड़ेगा।

यही बात अणुओं के सम्मिलन में भी होती है—उदाहरणार्थ पानी ले लीजिये विद्युत् की शक्ति से पानी को भिन्न करने पर दो वायव्य पदार्थ निकलते हैं जिनका नाम ओषजन और अभिद्रजन है इसी प्रकार कई लवणों को पानी में घोलकर उनमे विद्युत बहाई जाय तो वे अपने सम्मिलित पदार्थों में विभक्त हो जाते हैं जैसे यदि विद्युत पात्र के दो सिरे साधारण लवण के पानी में डाले जावें तो एक सिरे पर सोडियम (Sodium) नामक धातु और दूसरे पर क्लोरीन नामक वायव्य पदार्थ निकलते हैं साधारण लवण का रासायनिक नाम इसी कारण सोडियम क्लोराइड (Sodium chloride) है।

इस प्रकार जब मिश्रित पदार्थों के अणुओं को भिन्न करने में शक्ति व्यय होती है तो उसका सम्मिलन भी शक्ति के ही कारण होता होगा जैसा हमने अभी कहा था किसी वस्तु के अणुओं को अन्य वस्तु के अणुओं से मिलने की प्रबल इच्छा होती है और इस इच्छा के कारण उनमें परस्पर आकर्षण होता है।

फिर क्या होता होगा? क्या ये अणु एक दूसरे से एकाएक आ मिलते है? रबर की ८। १०

गेंदें तागों से लटका कर एक दूसरे से टकराइये, ये टकराने के उपरान्त भिन्न दिशाओं को भागेंगी फिर आकर टकरायेंगी फिर भिन्न होंगी इस प्रकार इस समूह में कम्पन उत्पन्न होकर और कुछ समय के उपरान्त गेंदें अपने २ स्थान में आ ठहरेंगी।

यही हाल अणुओं का भी होता है ये एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं और बड़े वेग से एक दूसरे से टकराते हैं; धक्के के कारण फिर भिन्न होते हैं इस प्रकार वस्तु के भीतर कोटिशः अणु एक दूसरे से टकराते हैं और दूर २ भागते हैं, भागने में इनको यदि अन्य अणु मार्ग में मिलें तो ये फिर उन से टकरा कर एक और ही दिशा को भागते हैं इत्यादि। तात्पर्य यह कि इस अणुओं के समूह में बड़े वेग से कम्पन उत्पन्न होता है इस कम्पन की दशा का नाम ऊष्णता (गर्मी) है। कुछ समय तक यह गर्मी वस्तु में व्याप्त रहती है पर अन्त में अन्य निकटवर्ती वस्तु में कम्पन उत्पन्न कर इसका कार्य हो चुकता है।

आकर्षण शक्ति के कारण वस्तु के अणु एक दूसरे के निकट आये, टकराये वस्तु में कम्पन उत्पन्न हुआ इस से गर्मी दीखी अंत में सब शान्ति हो गया और रसायनिक परिवर्तन हो गया। अब इन अणुओं को भिन्न करने में बल व्यय करना पड़ेगा और ये अपने आप शक्ति की दृष्टि से मृतकके तुल्य हैं।

संसार में शक्ति जहाँ कहीं भी उत्पन्न अथवा व्यय होती है वह इसी प्रकार के परिवर्तनों से अथवा परिवर्तन करने में व्यय होती है। वास्तव में पदार्थ और शक्ति ही सृष्टि की रचना के मूल कारण हैं। पेड़ पत्ते इसी नियम से उत्पन्न होते हैं वायु ने कर्बन द्विओषद (Carbon-dioxide) नामक वायव पदार्थ कार्बन (कोयला) और ओषजन के सम्मिलन से बनी होती है इस पदार्थ को पौदा वायु में से खींचता है और पानी को धर्ती में से खींच इसका अभिद्रजन ले लेता है। कर्बन डाइ औक्साइड को तोड़ इस में से कोयला लेकर इसे अभिद्रजन से मिलाता है--कोयला और अभिद्रजन के सम्मिलन से पौदे के रेशे बनते हैं

वही हाल मनुष्य शरीर का है खाद्य पदार्थ में से कार्बन और अभिद्रजन को निकाल इसे वायु के ओषजन के साथ हमारी शरीर की अग्नि सम्मिलित कराती है और इस से शारीरिक शक्ति उत्पन्न होती है

जितनी भी पृथ्वी बनी हुई है अथवा इस पर जितनी भी वस्तु हैं उन सब के बनने में कितनी शक्ति व्यय हुई होगी, इस शक्ति का मूल कारण सूर्य है। पौदा सूर्य की ही गर्मी के कारण वायु का कार्बन और जल का अभिद्रजन छीन लेने में समर्थ होता है सृष्टि में सभी वस्तु इसी प्रकार बनी है।

यह वैज्ञानिक दृष्टि से शक्ति और पदार्थ का वर्णन है। हमने पहले कहा था कि वैज्ञानिक बहुत सा काम कल्पनासे लेता है। इस कल्पना द्वारा जिस प्रकार हम संसार के रहस्य को समझने में समर्थ हुये हैं उसका कुछ हाल ऊपर लिखा है। कई मनुष्योंका विचार है कि संसार में जो कुछ भी वस्तु बनी हुई हैं वे सब इन्हीं के उपयोग के निमित बनी हुई हैं और जो नियमित कार्य सृष्टि करती है वे भी केवल मनुष्य के ही लिये करती है परन्तु यह उन की बड़ी भूल ही नहीं किंतु ढीठाई है। मनुष्य चाहे पशु, पुष्प, अथवा वृक्ष, जलचर, अथवा थलचर मट्टी अथवा पत्थर सब के साथ सृष्टि का व्यवहार एक ही सा रहता है। किसी कवि ने एक लाल रंग के पुष्पको देख ठीक कहा है :—

Why thou wert there O rival of the rose,

I never thought to ask, I never knew.

But in my simple ignorance supposed.
The selfsame power that brought me here brought you.

(हे गुलाब के प्रतिद्वन्द्वी तू क्यों संसार में आ गया यह मैंने न कभी सोचा और न मुझे कभी मालूम हुआ, परन्तु स्वभाव से ही मैं इतना समझता हूँ कि वही परमशक्ति जो मुझे संसार में लाई है तुझे भी लाई होगी)

वायु के दो प्रधान गैस ।

(लेखक—पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बि. ए.)

रमेश्वर-गुरु जी ! आपने उस दिन कहा था कि हम किसी दिन वायु के विषय में कुछ चर्चा करेंगे सो आज आपको अवकाश मिला है, यदि असुबिधा न हो तो इस अत्यन्त मनोरंजक विषय पर कुछ चर्चा कीजिये । मेरी ढिठाई को क्षमा कीजिये ।

सोमेश्वर भट्टाचार्य्य-रमेश ! इसमें ढिठाई क्या है, मैं शिक्षक और तुम विद्यार्थी, मेरा तो यह काम ही है । मनोरंजक ! संसार में ऐसी कौन सी वस्तु है जिसका ज्ञान मनोरंजक न हो ? विज्ञानशास्त्र के विषय किसी नाटक या उपन्यास से कम मनोहर नहीं हैं । जिन लोगों ने वैज्ञानिक खोज में चित्त दिया है वे इसकी उलझन में उसी तरह पड़े रहते हैं जैसे उपन्यास पढ़नेवाले उपन्यासों के पढ़ने में मग्न रहा करते हैं । भाई ! संसार एक बृहद् नाट्यशाला है, इसका नियन्ता खासा सूत्रधर है । हम तुम सब इस नाट्यशाला में नाटक खेलनेवाले पात्र हैं । कोई अच्छा खेल खेलता है और कोई बुरा ; पर खेलते सभी हैं । जब हम अल्पज्ञ जीवों के रचे हुए नाटक इतने मनोरंजक हुआ करते हैं तो जिस नाटक के रचयिता स्वयं भगवान हैं, जिसमें प्रकृति देवी नटी का काम कर रही हैं वह रचना अपूर्व और अनुपम हो तो आश्चर्य्य ही क्या ? बस विज्ञान का अध्ययन ही इस बृहत् नाटक के दर्शक बनने के लिये मानो टिकट है । वैज्ञानिक जहाँ जाय वहीं उसे इस नाटक के दृश्य दिखाई देते हैं । घर के प्रत्येक पदार्थ में, नगर में, गाँव में, जंगल में, नदी के किनारे, समुद्र के तट पर, भयङ्कर ज्वालामुखी पर्वत के समीप-कहाँ तक गिनायें भूमि में, आकाश में-सारी सृष्टि में इस मनोहर नाटक के दृश्य दीख पड़ते हैं ।

हे वत्स ! थोड़े ही समय पहले विलायत में हर्बर्ट स्पेन्सर नाम का एक बड़ा तत्वज्ञानी हो गया है । उसने शिक्षा पर एक छोटा सा ग्रन्थ लिखा है जिसमें यह सिद्ध कर दिखाया है कि हमारे स्कूल और कालिजों में जो भिन्न भिन्न बिषय पढ़ायेजाते हैं जिनसे भिन्न भिन्न मानसिक शक्तियों का विकाश होता है उन सब के बदले यदि विज्ञान की शिक्षा दी जाय तो उससे भी वही फल निकलेगा । चाहे यह सिद्धान्त सर्वथा ठीक न हो, पर बहुत अंश में ठीक है ।

अच्छा अब नियत विषय वायु पर कुछ बात चीत होने दो । जानते हो, वायु कैसा पदार्थ है ?

रमेश्वर-गुरु जी ! अभी तक जो मैंने सीखा है उससे तो यही ज्ञात हुआ है कि वायु एक प्रकार का गैस ही है क्योंकि अन्य गैसों को हिन्दी में वायव्य पदार्थ कहते हैं ।

सोमेश्वर भट्टा०-हाँ इतना तो ठीक है,पर यह बतला सक्ते हो कि यह वायु या हवा तत्व है या यौगिक पदार्थ ?

रमेश्वर-महाराज ! अपने शास्त्रों में तो वायु को पंचतत्वों मेंही गिना है । रामायण में भी मैंने ऐसा ही पढ़ा है । अवश्य ही बायु तत्व होगा ।

सोमेश्वर भट्टा०-देखो रमेश ! शास्त्रों का उद्देश्य धार्मिक है, वैज्ञानिक नहीं । साधारण बुद्धि के लोग जिस बात को समझ सक्ते हैं उसी

[Chemistry रसायन शास्त्र]

को शास्त्रकारों ने ले लिया है। कई जगह वायु के प्रकार भी बतलाये गये हैं अतएव यदि शास्त्रों की वायु को गैस कहा जाय तो कोई हानि नहीं है। तत्व का तात्पर्य शास्त्रों में उन पदार्थों से है जो भौतिक सृष्टि की रचना में प्रयुक्त हुए हैं। पृथिवी से दृढ़ता, जल से तरलता, वायु से शीत, अग्नि से उष्णता आदि का अर्थ समझो। इस विषय को न उठा कर इस बात को स्मरण रक्खो कि वायु मिश्रित पदार्थ है।

रमेश्वर-महाराज! कहीं शास्त्रानुसार वायु अमिश्रित हुआ तो?

सोमेश्वर भट्टा०-होगा कैसे? परीक्षा करके न देख लिया जायगा? सुनो रमेश! विज्ञान-शास्त्र में अटकल मात्र पर भरोसा नहीं किया जाता। यहाँ तो सहस्त्रों प्रकार से परीक्षा करके जब अच्छी तरह देख लेते हैं तब कहीं कोई सिद्धान्त स्थिर करते हैं। विद्वानों ने ऐसे कई यंत्र निकाले हैं जिनके द्वारा वायु में से कई अलग अलग गैस निकाले जा सक्ते हैं। उस दिन तुमने देखा ही था कि बाबू पन्नालाल ने उस यंत्र द्वारा दूध में से पानी किस तरह अलग किया था। वायु में दो प्रधान गैस रहते हैं जिनका नाम आक्सिजन (ओषजन-वायु) और नाइट्रोजन (नित्रजन-वायु) रक्खा गया है। सब जगह की हवा में ये दो गैस अवश्य मिलेंगे।

रमेश्वर-गुरु जी! गैस गैस तो सब ही एक से होते हैं, फिर कैसे मालूम हो सक्ता है कि आक्सिजन और नाइट्रोजन दो भिन्न भिन्न गैस हैं? उनका रूप रंग तो होता ही नहीं।

सोमेश्वर भट्टा०-अजी! हवा का क्या रूप रंग है? पर क्या तुम हवा के अस्तित्व को नहीं मानते?

रमेश्वर-गुरू जी! हवा के कार्य्यों से उसका पता लगता है, इसी तरह इन दो गैसों के कार्य्य यदि भिन्न भिन्न हों तो उनकी भिन्नता भी सिद्ध हो जायगा।

सो० भट्टा०-बहुत ठीक, ऐसाही है। हवा को एक यंत्र में होकर निकालना पड़ता है। यंत्र की नली के भीतर एक विशेष पदार्थ रख दिया जाता है जो उष्णता की सहायतासे उस हवा को अमिश्रित करके उसके एक गैस को सोख लेता है दूसरी ओर दूसरा गैस भी प्रथक् निकल सक्ता है फिर इसे एक कांच की नली में भर लेते हैं। यह गैस या तो आक्सिजन होता है या नाइट्रोजन।

रमेश्वर-तो क्या यह निश्चय नहीं कर सक्ते कि आक्सिजन निकलेगा या नाइट्रोजन?

सो० भट्टा०-क्यों नहीं। जिस बार आक्सिजन सोखनेवाला पदार्थ नली में रक्खा जाता है उस बार नाइट्रोजन और जब नाइट्रोजन सोखलेनेवाला पदार्थ रहता है तो आक्सिजन निकलता है।

रमेश्वर-जी, अब समझ गया। अब कृपा कर यह बतलाइये कि यह आक्सिजन है या नाइट्रोजन, इस बात की परीक्षा किस प्रकार हो सक्ती है?

सो० भट्टा०-सुनो रमेश! आक्सिजन में जलाने का गुण होता है और नाइट्रोजन में बुझाने का। नली में से निकले हुए गैस में जलती हुई दियासलाई कर दी जाय और उसमें आक्सिजन हो तो वह फर्र से जल उठेगी और नाइट्रोजन हुआ तो तुरन्त बुझ जायगी। इस तरह इन गैसों की पहिचान की जाती है।

रमेश्वर-गुरु जी! तो आक्सिजन के जल उठने से दियासलाई इतनी शीघ्र भस्म हो जाती है?

सो०भ०-नहीं जी, आक्सिजन नहीं जल उठता, जलती है दियासलाई की लकड़ी। आक्सिजन रहने से हा पदार्थ जल सक्ते हैं, यदि वह न हो तो कोई पदार्थ कभी जले ही नहीं। कैसी ही जलती हुई बत्ती यदि एक बर्तन के नीचे रख दी जाय और उसके भीतर हवा न पहुँचे तो वह

बुझ जायगी। इसका कारण यही है कि और हवा न मिलने से आक्सिजन गैस का अभाव हो जाता है! तुम यह परीक्षा स्वतः कर सक्ते हो। लेम्प की चिमनी पर कोई किताब या और कोई ढक्कन रख कर देखो, लेम्प तुरन्त बुझ जायगा। इसका कारण यही है कि जैसे जैसे चिमनी के भीतर उत्पन्न होनेवाला गैस ऊपर से निकलता जाता है वैसेर बर्नर के छिद्रों से हवा भीतर पहुँचती रहती है। चिमनी ढक देनेसे यह गरम गैस बाहर निकल नहीं सक्ता, जिससे बर्नर के छिद्रों में से हवा भी भीतर नहीं पहुँचती अर्थात् जलने में जो आक्सिजन की आवश्यकता है वह पूरी नहीं होती।

र०–महाराज, अभी यह बात मेरी समझ में नहीं आई। जलता तो तेल है और जलाती है दियासलाई से निकली हुई आग, फिर आक्सिजनका सम्बन्ध जलने से क्या है यह ठीक समझ में नहीं आया।

सोमेश्वर भट्टाचार्य्य–रमेश अभी तुम यही नहीं जानते कि जलना क्या है, अच्छा सुनो। जलनेका अर्थ यह है कि जब कोई पदार्थ जलता दिखाई देता है तो उसमें कार्बन, मेगनेशियम, हाइड्रोजन-गैस आदि दहन-शील अर्थात् जलने वाले पदार्थों के साथ आक्सिजन--गैस का रासायनिक संयोग होता है। इन पदार्थों के न रहने पर किसी वस्तु का जलना सम्भव नहीं है। इन तत्वों से रहित पदार्थ यथेष्ट गर्मी पाकर पिघल भले ही जाँय, पर जलेंगे नहीं। यदि लकड़ी और पत्थर दोनों एक साथ आग में रक्खे जाँय तो लकड़ी तो जल ही जायगी पर क्या पत्थर भी उसी तरह जलकर भस्म हो जायगा? तुम नित्यकेअनुभव से कह सकते हो कि ऐसा कदापि न होगा। इसका कारण यही है कि जिस तरह लकड़ी कोयले आदि में कार्बन नामक दहन-शील पदार्थ विद्यमान हैं वैसा कोई पदार्थ पत्थर आदि अदहन शील वस्तुओं में नहीं है।

हम अभी कह चुके हैं कि हवा में या यों कहना चाहिये कि हवा के अन्तर्गत आक्सिजन- गैस के न होने से दहन शील पदार्थ भी नहीं जल सकते क्योंकि दहन-शील पदार्थों के साथ आक्सिजन का रासायनिक संयोग ही तो जलना कहलाता है। बत्तीमें जलाकर दियासलाई लगाना मानो इस संयोगका आरम्भ करना है। तुमको आगे विदित होगा कि रासायनिक संयोग होने के लिये गर्मी या विजली आपेक्षित है पर वास्तव में लकड़ी का कार्बन और हवा में का आक्सिजन गैस मिलकर एक तीसरा पदार्थ उत्पन्न करते जाते हैं और साथ ही लकड़ी आदि पदार्थों में छिपी हुई उष्णता और प्रकाश मुक्त होता जाता है। अब समझ में आया कि "जलना" या "दहन" क्या है?

र.—जी हाँ, अब समझ गया। बहुतेरे लोग तो यही समझते होंगे कि वे जो आग लगा देते हैं उसीसे सब पदार्थ जलते हैं, वाह! वैज्ञानिक खोज भी कैसी मनोरञ्जक है!

सो. भट्टा.--सच है? देखो वत्स! विज्ञान के समान दूसरी विद्या ही नहीं है। विज्ञान के द्वारा कैसे कैसे विचित्र आविष्कार हो रहे हैं जिनसे मनुष्य-जीवन दिनो दिन सुखमय बनता जाता है। कल्प-वृक्ष और काम-धेनु मानों विज्ञान के रूप में संसार में साक्षात् विराजमान हैं।

र.—अच्छा गुरु जी। हवा का आक्सिजन दहन-क्रिया में तो सहायक होता है, पर क्या उसका और भी कोई कार्य्य है?

सो. भट्टा.--हाँ एक और है। तुम जानते हो कि प्राणियों का जीना हवा पर ही अवलम्बित है? देखो हवा का मिश्रित पदार्थ होना तो सिद्ध हो ही चुका है अब देखना है कि हवा का कौन सा भाग जीवन के लिये उपयोगी है। हम पहले ही आक्सिजन का हिन्दी अर्थ ओषजन (या प्राण-प्रद-वायु) बतला चुके हैं। हवा में आक्सिजन का रहना ही हमारे जीवन का आधार है।

यदि हवा में से आक्सिजन निकाल लिया जाय तो कोई प्राणी क्षण भर भी नहीं जी सकता।

र.--गुरू जी, यह नहीं समझ में आता कि आक्सिजन ऐसा क्या करता है, जो उसके होने या न होने पर मनुष्य--जीवन निर्भर है।

सो. भट्टा.--सुनो रमेश! अभी इतना ही समझ लो कि शरीर के भीतर मांसादि पिंड अनावश्यक विषैले रूपों में बदलते रहते हैं अतएव उन्हें निकाल देना जीवन के लिये परमावश्यक है। तुम जानते होगे कि शरीर का रुधिर नालियों में हो होकर सारे शरीर में फिरता रहता है औरभीतर के छेदों में से यह रुधिर मैल धोकर नीला होकर फेफड़े या फुस्फुस में लाता है। यहाँ उसका संसर्ग श्वास द्वारा भीतर प्रवेश करने वाली हवा से होता है और हवा का आक्सिजन गैस इस मैल रूपी कार्बन से मिलकर तुरन्त कर्बानिक एसिड गैस (कार्बन + आक्सिजन) उत्पन्न करता है। यह श्वास से बाहर निकलता रहता है और वह हानिकारक मैल शरीर के भीतर रुधिर में एकत्र नहीं होने पाता। यह गैस जीव-धारियों के लिये हानिकारक है जैसा आगे बतलाया जायगा।

र.—गुरू महाराज, प्रकृति के नियम बड़े विचित्र मालूम पड़ते हैं। धन्य है उस नियन्ता का प्रबन्ध जिसने सृष्टि-रचना की है। हजार पुराण पढ़ने पर भी जो भक्ति और श्रद्धा चित्त में नहीं आती वह इस अनुपम-प्रबंध के ज्ञान से उत्पन्न होती है। वास्तव में विज्ञान में मनुष्य को सच्चा ईश्वर-भक्त बना देने की शक्ति है।

अच्छा गुरू महाराज! वायु में रहने वाले आक्सिजन गैस के कार्य्य तो मुझे मालूम हुए, पर अभी आपने उस दूसरे गैस का कार्य्य नहीं बतलाया। मुझे निश्चय सा होता है कि हवा में नाइट्रोजन वायु का अस्तित्व भी किसी प्रयोजन-विशेष से ही होगा। यदि इसकी चर्चा करने में आपको विशेष परिश्रम न पड़े तो इतना ही कह कर आज का पाठ समाप्त कीजिये।

सो. भट्टा०--रमेश! तुम देख चुके हो कि आक्सिजन कैसा उग्र और तेजोमय गैस है। यदि हवा में वही भरा होता तो जितना ईंधन कई घंटों में जलता है वह क्षण भर में ही भस्म हो जाता। भला तुम्हारी जननी रोटी बनाने में कितनी गाड़ियाँ लकड़ी जलाती इसकी कुछ ख़बर है? तुमने देखा होगा कि कई दवाइयाँ वैसे ही बहुत बुरी लगती हैं, इसलिये लोग उसमें पानी मिलाकर पीते हैं।

इस पानी के मेल से दवा की तेजी कम करने के अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं है। इसी तरह परमात्मा ने आक्सिजन गैस की भी तेज़ी घटाने के लिये उसके साथ नाइट्रोजन गैस मिला रक्खा है।

बस रमेश! आज इतनाही बहुत होगा। तुमने नोट तो लिख ही लिये होंगे, उनकी सहायता से इस विषय को खूब मनन करके भलीभांति समझ लो यदि कोई शंका उत्पन्न हो तो उसका समाधान फिर कभी कर देंगे।

मानव विकास।

मनुष्य प्राणी की जन्मकहानी।

इस संसार में प्रतिदिन हम कितनी ही तरह के प्राणी देखते हैं। छोटे जीव से लेकर बड़े से बड़े प्राणी मनुष्य तक देखा जाय तो भिन्न २ रंग आकार और जाति के प्राणी हमारी नज़र से गुज़रते हैं। अब, इन जीवों की पैदाइश कैसे हुई, यह एक बड़े महत्व का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है। इस प्रश्न की ओर बहुत पुराने समयों में ही बड़े बड़े विद्वानों और दार्शनिकों का ध्यान गया था और जिस

[Evolution विकास]

समय में जैसा कुछ ज्ञान का विस्तार था उसीके अनुसार उस समय के विद्वानों ने इस प्रश्न की मीमांसा भी की थी। सुतराम् इस प्रश्न का उत्तर हमारी धर्म पुस्तकों में भी कहीं कहीं संकेत से और कहीं स्पष्ट रूप से पाया जाता है। पुरुष सूक्त की कुछ ऋचाओं में हमें पशु, पक्षी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र आदि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कई प्रकार के विचार मिलते हैं। ऐसा भी कई लोगों का विचार है कि ईश्वर ने प्रत्येक जाति के जीव का एक एक जोड़ा सृष्टि के आदि में सिरजा और उन्हीं जोड़ों से आगे को सृष्टि चली। वास्तविक बात क्या है, इस प्रश्न की मीमांसा की ओर आजकल के समुन्नत काल में साधारण पढ़े लिखे लोगों का भी ध्यान आकर्षित होना स्वाभाविक है और इस दशा में वे इस प्रश्न की मीमांसा करने लगें तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कही जा सकती। इस लेख में हमारा यही उद्देश्य भी है कि मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में आजकल के वैज्ञानिकों का जो मत हो उस की मोटी मोटी बातें बतलाई जाँय किंतु दार्शनिक और प्रामाणिक शब्दों के गहन झगड़े में न पड़ कर साधारण पाठकों की समझ में आने योग्य सुगम शैली में यथा शक्ति सरल शब्दों मेंही हम इस बिषय की चर्चा करेंगे। इस विषय पर विद्वानों के मत दिनों दिन प्रबल व दृढ़ होते जाते हैं अतः हम यह आवश्यक समझते हैं कि, हम में से भी कोई व्यक्ति इस विषय से बेख़बर न रहे।

हमारेइस लेख का विषय, "मनुष्य-प्राणी की जन्म कहानी" "विकास बाद" का ही अंग हैं; और विकास बाद का आजकल योरोप में बड़ा ज़ोर है यहां तक कि सब विद्याओं का यह एक मूल मंत्र बन रहा है और ज्ञान और विज्ञान की जितनी शाखाएँ और उपशाखाएँ हैं उनमें से प्रत्येक पर इस का अधिकार जमता जाता है। विकास बाद की कल्पना उन कल्पनाओं में से एक है जिनका इंगरेजी भाषा के प्रचार के साथ साथ भारतवर्ष में प्रचार हुआ। अन्य कल्पनाओं के सम्बन्धमें हमे यहाँ कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है, परंतु इस कल्पना के बारे में हम इतना अवश्य लिखना चाहते हैं कि बहुत से अच्छे पढ़े लिखों में भी इस सम्बन्ध में बहुत कुछ भ्रम फैला हुआ है। "डार्विन ने मनुष्य की उत्पत्ति बंदर से सिद्ध की है" इतने में ही इन लोगों का इस विषय का सारा ज्ञान समाप्त हो जाता है। "जीवन संग्राम" 'प्राकृतिक चुनाव" "परिस्थिति-परिणाम" इत्यादि इस विषय के सूत्रबद्ध शब्द समूह कभी कभी विद्वानों के निबंधों व ग्रन्थों में प्रयुक्त पाये जाते हैं परंतु जिस रीति से और जिस प्रकरण में इन शब्दों को यह विद्वान व्यवहार करते हैं उस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इन्होंने इन पारिभाषिक शब्दों का यथावत ठीक ठीक अर्थ नहीं समझा। एक यह भी कारण है जिस से हम इस लेखमाला के लिखने में प्रवृत्त हुए हैं।

जीवन तथा जीवों के सम्बन्ध में विचार करते हुए पहला प्रश्न यह उपस्थित होता है कि संसार में जीवन का आरम्भ कैसे हुआ। प्रश्न निस्सन्देह बड़े महत्व का है परन्तु इस लेखमाला के भीतर विना विषयान्तर व बिस्तार के इस बात की चर्चा नहीं हो सकती। जीवन सम्बन्धिनी चर्चा करने के लिये एक स्वतन्त्र ही निबन्ध होना चाहिये। अतः जीवन का आरम्भ अर्थात् उसकी उत्पत्ति, चाहे वह किसी भी रीति से क्यों न हुई हो, मान कर ही हमें इस विषय में आगे पैर उठाना पड़ेगा। आदिम प्राणियों को छोड़ कर अन्य प्राणियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का यह मत है कि बड़े या उच्च श्रेणी के प्राणियों की उत्पत्ति उनसे निम्न श्रेणी के उन प्राणियों से हुई है जो उनके पहले से विद्यमान थे। उदाहरणार्थ, दूध पिलाने वाले प्राणी, पक्षी, रेंगने वाले प्राणी यथा सर्प, मेंढ़क

और मच्छली इन सब के पूर्वज एक ही थे। इन पांच प्रकार के प्राणियों में और इन की शाखाओं और उपशाखाओं में जो भेद दिखायी देते हैं वे सब भिन्न भिन्न परिस्थिति, भिन्न भिन्न प्रकार के रहन सहन तथा अन्य अनेकों कारणोंके प्रतिफल हैं। वैज्ञानिकों के मत में यह सिद्धान्त मनुष्य प्राणी पर भी प्रघटित होता है; अर्थात् मनुष्य के पूर्वज मनुष्य के साथ बहुत कुछ समानता रखने वाले एक प्रकार के बंदर थे और उनमें और मनुष्य में जो भेद दिखाई देते हैं वे उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न हुए हैं। मनुष्य के संबंध में यह उपर्युक्त उपपत्ति कहाँ तक ठीक और युक्त संगत है यह देखने के लिए पहले हमें मनुष्य और उसके आधारभूत प्राणिये के शरीर की बनावट पर विचार करना पड़ेगा। अन्य प्राणियों के शरीर की रचना को मनुष्य से मिलाते हैं तो मनुष्य की शरीर-रचना में विशेषतायें नहीं मिलतीं प्रत्युत उनके साथ इस का बहुत कुछ साम्य पाया जाता है। बंदर और चतुष्पाद प्राणियों के साथ तो यह साम्य और भी अधिक अंशों में देखा जाता है। सब प्राणियों के अस्थिपंजर एक ही नमूने के होते हैं। मनुष्य
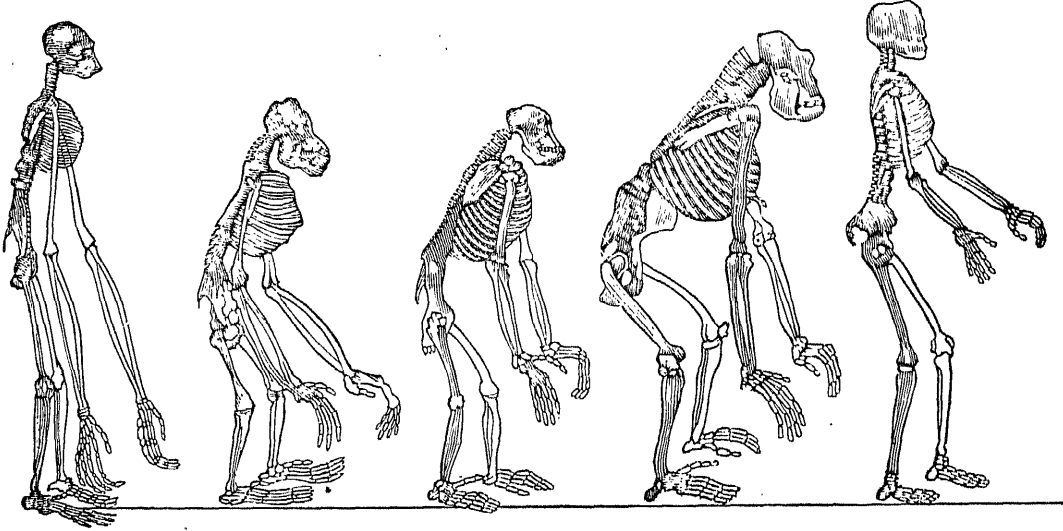
और अन्य रीढ़ को हड्डी वाले प्राणियों की शरीर-रचना के तत्त्व पूरे पूरे एक से हैं। एक में जिस स्थान पर जैसी हड्डी है दूसरे में भी बिल्कुल उसी तरह की हड्डी उसी स्थान पर मौजूद है। स्नायु, शिराएँ, मज्जातंतु आदिकों का भी यही हाल है। ऐसेही दोनों के मस्तिष्क की रचना के नियम भी एक ही प्रकार के मिलते हैं। हाथ पैर तथा अन्य इन्द्रियों में इतना साम्य है कि अनपढ़ आदमी से भी छिप नहीं सकता।

मनुष्य प्राणी का आरम्भ अन्य प्राणियों की भाँति $\frac{१}{१२५}$ इंच व्यास वाले अंडे से होता है और गर्भस्थ अवस्था में जैसे उनके परिवर्तन दिनों दिन होते जाते हैं, ठीक वैसे ही परिवर्तन मनुष्य की भी गर्भस्थ अवस्था में होते जाते हैं। दोनों के पहले पांच छः महीनों तक के गर्भों को देख कर एक को दूसरे से पहिचानना असम्भव हो सकता है। प्रसवकाल अति समीप आने पर ही मानव गर्भ में विशेषताओं के चिन्ह प्रादुर्भूत और प्रत्यक्ष होने लगते हैं। गाय, सुअर, खरगोश और मनुष्य की गर्भस्थ अवस्था के भिन्न भिन्न समय की शरीर-रचना का जो चित्र दिया जाता है उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

इन सब प्राणियों में एक आश्चर्यजनक बात यह दीखती है कि कई सांघातिक रोगों का प्रसार एक जाति के प्राणियों से दूसरे जाति के प्रणियों में होता है। इसघटना से यह स्पष्ट अनुमान किया जा सकता है कि इनके शरीर के अन्दर के रक्त मांसादि जो भी पदार्थ हैं उनका उद्गम-स्थल एक ही है। गौओं के स्तनों पर के फोड़ों में से चेप अर्थात पतला चिकना पदार्थ लेकर मनुष्य को टीका लगाया जाता है। यह बात प्रत्येक मनुष्य के अनुभव की है। इस से हम कह सकते हैं कि न केवल इन प्राणियों के रक्त मांसआदि का उद्गम एक ही स्थान से है परंतु इन रक्त मांसादि के गुण और स्वभाव भी एक से ही हैं। सांघातिक रोगों के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के रोगों से दूसरे प्राणी भी मनुष्य के सदृश ही पीडित होते हैं और जिन जिन प्रकार की दवाइयों से मनुष्य आराम होता है उन्हीं से इन अन्य प्राणियों को भी लाभ होता है। जिन दवाइयों से मनुष्य के घाव आरोग्य होते हैं उन्हीं से अन्य प्राणियों के भी घाव चंगे होते हैं। इतना ही नहीं परंतु कभी कभी मनुष्य के शरीर की यदि कोई हड्डी टूट जाय तो उसके स्थान पर अन्य प्राणी की उसी स्थान की हड्डी निकाल कर लगाई जा सकती है।

दूध पिलाने वाले सब जंतुओं की जनन-क्रिया भी बिल्कुल एक सी ही है। मानवी बालक पैदा होते ही जिस प्रकार सर्वथा पराधीन होता है वैसेही कई जाति के बंदरों की अवस्था है। पैदा होने के पश्चात् जिस प्रकार मानवी बालक की पूर्ण वृद्धि के लिए कई वर्ष लगते हैं उसी प्रकार कई बंदरों की पूर्ण वृद्धि के लिये दस पंद्रह वर्ष आवश्यक होते हैं और दांत निकलने के समय बच्चों को ज्वर आदि की जैसी पीड़ा मनुष्य को होती है वैसी ही कई जाति के बंदरों
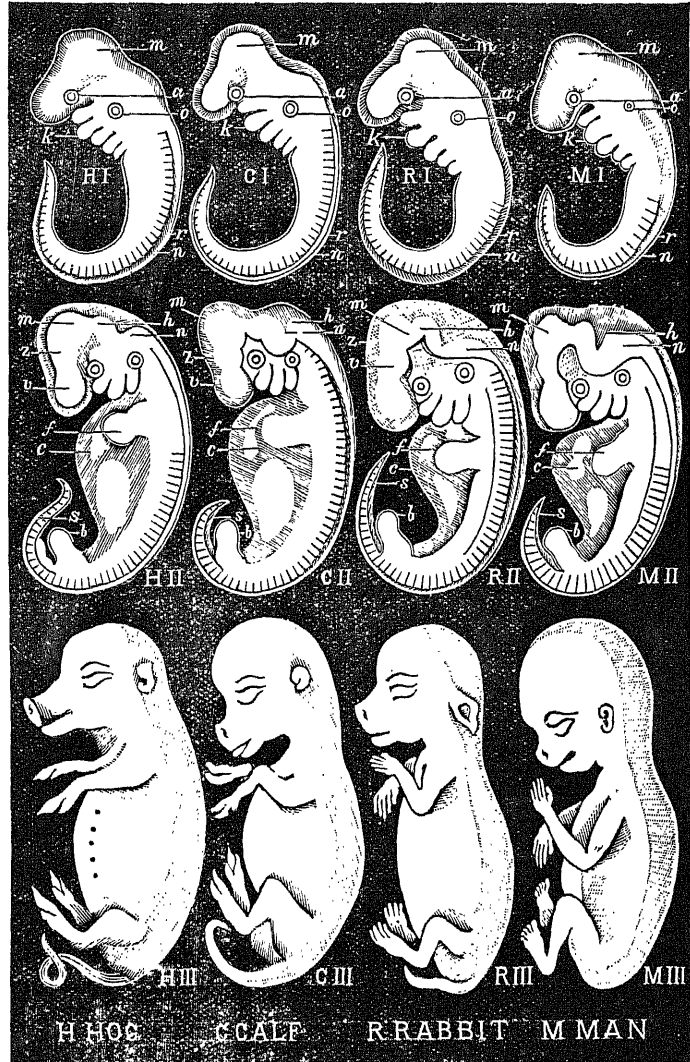
के बच्चों को भी होती है। पुरुष और स्त्री में रूप, आकार, बल, केश युक्तता आदि की दृष्टि से जिस प्रकार मनुष्य जाति में भेद हैं वैसे ही भेद अन्य प्राणियों में भी हैं। संक्षेप से हम यह कह सकते हैं कि शरीर, उसके अवयवों व इन अवयवों के कार्य इत्यादि पर यदि विचार किया जाय तो मनुष्य और अन्य चतुष्पाद प्राणियों में बहुत समानता है और यह समानता मनुष्य और बंदरों में तो और भी कहीं अधिक पायी जाती है।

प्रत्येक प्रकार के प्राणी के शरीर में कुछ ऐसे अवयव विद्यमान रहते हैं जिन से उस को कुछ भी लाभ नहीं होता। उदाहरणार्थ, दूध पिलाने वाले जंतुओं में जितने नर हैं उन सब के स्तन हैं परंतु वे बिलकुल व्यर्थ हैं; मनुष्य जाति में पुरुषों के स्तन भी इसी प्रकार निरर्थक ही होते हैं। हाँ, कभी कभी लाखों वा करोड़ों में से एक आध कोई ऐसा भी पुरुष मिलता है जिसके स्तन पूरे पूरे बढ़ कर दूध देते हैं, परंतु यह बात ही दूसरी हुई। ग्रीस देशकी फौज में एक २० वर्ष का ऐसा जवान सिपाही १८०१ में भरती हुआ था जिसके स्तन पूरे तौर से बढ़े हुए थे और उनमें से यथेष्ट परिमाण में दूध भी निकलता था प्रो० हेकल महाशय को १८८१ ई० में लंका में एक ऐसा सिंहाली आदमी मिला जिसके स्तन बहुत बड़े थे और वह किसी धनपात्र के घर में बच्चों को दूध पिलाने वाली धात्री का काम किया करता था।

'घुन'

[लेखक "हल कर्षण" बी. एस-सी]

खेत से काटकर अथवा बाज़ार से खरीद कर जब गेहूँ खाने या बोने के लिए संचित करके रक्खा जाता है तो कुछ दिन पीछे ही उस में घुन लग जाते हैं। रखने पर केवल गेहूँ ही नहीं सबही अन्नो में (जुआर, मक्का, चांवल, जो भी हो) आगे पीछे यह रोग लग ही जाता है। फिर वह साधारणतः खाने के काम के नहीं रहते और बोने के लिये तो उन का विचार तक न करना चाहिये। यह असह्य और चारों ओर फैला हुआ रोग केवल एक छोटे कीड़े के कारण पैदा होता है। इस कीड़े का नाम स्वयम् घुन (weevil) है। यह इञ्च का दशांस लम्बा, बहुत पतला कत्थई रंग का कीड़ा है। इस्के अंडे दानों के भीतर रहते हैं और बिलकुल दाने के भीतरी स्वेतसार के से होने के कारण दीखते ही नहीं या बड़ी ही मुशकिल से देखे जा सक्ते हैं। अण्डे,आदि से अन्त तक, अन्न के दानों के भीतर ही रहते हैं वहीं उत्पन्न होकर वहीं मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस से उनकी क्रीड़ा को भी साधारणतः लोग नहीं देख पाते। इन को मारने तथा इन से छुटकरा पाने के लिए जो उपाय सब लोग करके लाभ उठा सक्ते हैं, तीन हैं—

(१) Fumigation (घुन-भपाड़ा)—इस्की रीति यह है कि २७ मन (१ टन) गेहूँ में ३ पाव (डेढ पाउण्ड) कार्बन बाई सल्फाइड* (carbon Bisulphide) या तो छिड़क कर या एक छिछली प्याली में ऊपरी तह पर रख कर २४ घण्टा (एक दिन और रात भर) तक के लिये एक ऐसे कमरे या बक्स में कि जो चारों ओर से भली भाँति बन्द हो सके छोड़ देना चाहिये ताकि दवाई (कार्बन बाई सल्फ़ाइड) की भाप पूरे तौर पर अन्न में पैठ सके। इससे सारे कीड़े (घुन), अण्डे सहित मर जाते हैं। लेकिन धूनी देने के बाद अन्न को किसी बिलकुल ही बन्द जगह

*एक बहुत ही शीघ्र आग खा जाने वाला दुर्गन्धित और जल्दी से भाप बन कर उड़जाने वाला तरल पदार्थ है। वायु से मिलकर आग या गरमी के समीप होने से यह जल उठता है। इस कारण इसको बड़ी सावधानी से बन्द बोतलों में आग व गरमी से दूर रखना चाहिये और धूनी देते समय भी इस बात का पूरी तौर पर ख्याल रखना चाहिये—दाम २) सेर [१ पाउण्ड]।

[Zoology जीव विज्ञान]

(जहाँ पर हवा की गुजर भी आसानी से न हो सक्ती हो) में रखना चाहिये, नहीं तो फिर कुछ ही दिनों के बाद घुन उसी प्रकार पैदा हो जाता है। ज़मीन के नीचे बड़े २ गड्ढे (खत्तियां) खोद और भीतर गोबर और मिट्टी मिलाकर लीप देने के बाद सुखा देने पर धूनी दिये नाज रखने का बहुत अच्छा सुभीता हो सक्ता है। ऊपर लिखे परिमाण और नियम के अनुसार धूनी देने से अन्न के आन्तरिक गुण में किसी प्रकार का भेद नहीं पड़ता। वह बराबर खाने व बोने के काम में लाया जा सक्ता है। खाने के लिये जरा धूप दिखाने के बाद तो कार्बन बाई सल्फाइड का लेषमात्र भी पता नहीं चल सक्ता। यदि बिलकुल बन्द जगह का प्रबन्ध धूनी दिये हुये अन्न को रखने का न हो सके तो हर डेढ़ महीने पर धूनी ऊपर लिखी रीति से देते रहना चाहिए।

(२) Naphthalene Powder * (नेप्थलीन)

जब थोड़ा अन्न रखना हो तो ऊपर की 'धूनी' वाली रीति में बड़ी झंझट होती है, उस वक्त अन्न में थोड़ी सी नेप्थलीन रख देने से बड़ी सुगमता से काम चल सक्ता है, इससे भी अन्न की उपजाऊ शक्ति में कुछ बाधा नहीं पड़ती। रीति इसकी यह है कि बक्स की नीची तह पर बीचोबीच नेप्थलीन रख कर एक बांस के चोंगे (जो भीतर आरपार खोखला होना चाहिये) से ढाँक दें और फिर बक्स में नाज भर दें। चोंगे का ऊपर वाला सिरा बन्द होने और बक्स में भर देने पर ज़रा २ दिखाई देना चाहिये। इसकी लम्बाई भर में बराबर नीचे से ऊपर तक चारों तरफ़ छोटे २ छिद्र कर दिये जाँय तो इन छिद्रों के द्वारा नेप्थलीन की गन्ध या भाप सारे नाज में पैठ सकेगी और घुन अण्डों सहित मर जायँगे। इसका असर कार्बन बाई सल्फाइडसे विशेष दिनों तक रहता है क्योंकि यह उतनी जल्दी नहीं उड़ सक्ता।

(३) Sunning (धूप दिखाना)–

इसकी कोई ख़ास रीति नहीं है, कड़ी धूप का पूरा असर घुन और उसके अण्डों पर पड़ता है और वे सब या तो बाहर निकल कर भाग जाते हैं अथवा मृत्यु को प्राप्त होते हैं। यह देखा गया है कि अप्रेल व मई की धूप में खूब अच्छी तरह से सुखाया हुआ * अन्न यदि बिलकुल बन्द जगह (खत्तियों में जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है) में रखकर छोड़ दिया जाय तो घुन उस में नहीं लगते।

दीमक।

दीमक एक सफेद रंग का कीड़ा है जिसको सफेद चींटी भी कह सकते हैं परन्तु इन दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है क्योंकि प्रतिदिन के काम दोनों के नहीं मिलते। इस कीड़े अथवा दीमक का मस्तक बदन के हिसाब से बहुत बड़ा होता है। इनमें कोई नेत्रवाले और कोई नेत्र हीन होते हैं; और जानदारों की तरह न तो आपस में बात कर सकते हैं, न किसी प्रकार का शब्द उच्चारण कर सकते हैं परन्तु अपना मस्तक इस बेग से हिलाते हैं कि जिससे एक धीमी आवाज उत्पन्न होती है और अनुमान होता है कि वह इसी शब्द द्वारा अपना अपना मतलब समझाते और समझते हैं।

---

*एक स्वेत जल्द उड़जाने वाला घन पदार्थ है। यह भी गरमी या आग से जल उठता है पर इसकी गन्ध उतनी रद्दी नहीं होती। यह बराबर ऊनी कपड़ों में उन्हें कीड़ों से बचानेके हेतु रक्खा जाता है[३२०) टन या ।)॥सेर बिकतीहै]

*ऐसे सुखाये हुए अन्न में ४ प्रति सैकड़ा सील होगी ८ प्रति सैकड़ा तक सील रहते भी धूप में सुखाया हुआ अन्न तुरन्त खत्तियों में रखा जा सकता है यह घुन से बहुत कुछ बचा रहेगा।

यह जीव बहुत से इकट्ठा हो कर एक वृक्ष के भीतर घर बना कर रहते हैं और उनके शरीर से एक ऐसी नम वस्तु उत्पन्न होती है जो कांच और धातु को खा जाती है। यह कीड़े जो चार प्रकार के हैं एक ही वृक्ष में रहते हैं।

१-प्रथम श्रमी जो काम करते हैं, इनको अंग्रेजी में वर्कर (Worker) कहते हैं।

२-दूसरे प्रकार में सिपाही या चपरासी हैं जिन्हें अंग्रेजी में (Soldier) कहते हैं।

३-तीसरे प्रकार में नर वा मादा परदार हैं। इनके पंख सदा बने रहते हैं। इन्हें अंग्रेजी में Wing d Males a d fem les कहते हैं।

४-प्रकार में वह परवाले हैं कि जिनके पर गिर गए हैं और जिनको अंग्रेजी में (W ngless forms) कहते हैं।

तीसरे प्रकार के जीव अपने अपने स्थान पर थोड़े ही काल तक रहते हैं, फिर इकट्ठा हो कर पहला स्थान छोड़ दूसरा घर बनाते हैं।

चौथे प्रकार के जीव बहुधा एकही जोड़े में पाए जाते हैं और कभी एक जोड़े से अधिक भी मिल जाते हैं। यही जोड़ा इन जीवोंका राजा और रानी समझा जाता है और इसी एक जोड़े के द्वारा यह सब कीड़े उत्पन्न होते हैं, दूसरे कीड़ों से बच्चे उत्पन्न नहीं होते। यह जोड़ा राजा रानी का चौथे प्रकार के जीवों में सब से मोटा और बड़ा मालूम पड़ता है। जब इस जोड़े में से कोई एक मरजाता है तो बाकी जीवों में जो जोड़ा सब से मोटा और बड़ा पाया जाता है वही फिर राजा रानी बनाया जाता है। यह राजा रानी का जोड़ा कैदी की तरह एक स्थान पर एक ही घर के भीतर सुरक्षित रहता है। किसी प्रकार से बाहर नहीं निकल सकता इस कारण उनके घर के दरवाज़े उनके शरीर की अपेक्षा अत्यन्त छोटे होते हैं और पहले प्रकार के जीव जो साधारण काम करनेवाले होते हैं वही उनमें से आते जाते हैं।

रानी के अंडे देने का एक नियत समय होता है, और ऐसे समय के आने पर उसका शरीर साधारण कीड़ों से दो तीन सहस्र गुना बढ़ जाता है। जैसे जैसे रानी का शरीर बढ़ता जाता है कार्यकर्ता कीड़े उसी तरह रानी का घर भी बड़ा करते जाते हैं। रानी अपने घर से कभी बाहर नहीं निकलती यहाँ तक कि उसी जगह मर जाती है।

बच्चों के पालन पोषण की रीति यह है कि रानी के घर के चारों ओर छोटे छोटे घर बनाये जाते हैं और अंडा देने पर कार्यकर्ता कीड़े उन्हें उन्हीं घरों में लेजाते हैं और वहीं पर उनका लालन पालन होता है। प्रत्येक प्रकारके कीड़ोंको मिलाया जाय तो सब गिनती में लगभग एक सहस्र के होते हैं और कभी कम भी पाए जाते हैं। राजा रानी का जोड़ा पंद्रह महीने के उपरांत लगभग २० बच्चे पैदा करता है और बारह महीना बीतने पर फिर उसी जोड़े से ५० बच्चे पैदा होते हैं। इसी प्रकार से बच्चों की गिनती बढ़ती जाती है। यह बच्चे एक साल में बड़े हो जाते हैं और इनमें से कोई कोई घरों से बाहर निकल कर दूसरे स्थान पर घर बना लेते हैं, उनमें से जो मोटा और बड़ा होता है उसी को राजा व रानी बनाते हैं। ऊपर लिखी रीति से इन कीड़ों की पैदाइश बढ़ती जाती है और उसी प्रकार से गिनती भी बढ़ती जाती है और नये नये घर बनते और बसते जाते हैं।

इन के बच्चों को दूसरे जीव जंतु अवसर पाकर खाजाते हैं और कभी २ यह आप भी खा डालते हैं। अफरिका में कभी २ मनुष्य भी इन्हें खाते हैं। इन कीडों के घरों में सफाई बहुत रहती है। इसका कारण यह है कि जो कुछ मैली चीज होती है वह सब यह लोग खाकर साफ कर देते हैं। यहाँ तक कि अपना मल भी नहीं छोड़ते और जो कीड़ा उनमें से मर जाता है उसका शरीर भी खा जाते हैं।

यह कीड़ा सांप की तरह अपनी ऊपर की खाल कुछ समय के पीछे छोड़ देता है और यदि भोजन के लिए कोई वस्तु न मिली तो इसे भी खाजाता है। जब भोजन का कोई भी ठिकाना बाकी नहीं रहजाता तो यह कीड़े एक दुसरे का चूतड़ थपथपाते हैं और इस तरह एक मल निकालता है और दूसरा खाजाता है। यदि इनमें से कोई बेकार या शरीर से दुखी हुआ तो उसको भी दूसरा खा जाता है।

दूसरे प्रकार के अर्थात् सिपाही कीड़े बड़े भयानक होते हैं। जब कोई वस्तु खाने को नहीं पाते तो जो उनमें निर्बल हुआ उसी को खा जाते हैं। सैाभाग्य से इन सिपाहियों को ईश्वर नेत्र नहीं देता नहीं तो ये बड़े हानिकारक होते।

यह कीड़े अपना घर मिट्टी लकड़ी और शरीर की नमी से बनाते हैं। अपने शरीर की नमी को गारे की तरह काम में लाते हैं। यह कीड़े बहुधा सूखे अथवा उखड़े हुए पेड़ों में जो जल्द सूख जाने वाले हों अपना घर बना लेते हैं इन पेड़ों में जो हरापन बाकी रह गया हो इन के कारण वह भी जाता रहता है। इसके सिवा जिन घरों में लकड़ी का काम होता है वहां यह अपना घर बना लेते हैं। इसी कारण से बहुधा घरों के कवाड़, खिड़कियाँ और कड़ियाँ बरबाद हो जाती हैं और भीतर ही भीतर उन लकड़ियोंको यह ऐसा खाडालते हैं कि किसी को पता तक नहीं लगता और बाहर से वह सब जैसी की तैसी मालूम पड़ती हैं। अफरिका देश में तो यह कीड़े अपने घरों को गावदुम अर्थात् घोडे की नाल की तरह लकड़ी और पत्थर से बहुत पुष्ट व ऊँचे बना लेते हैं। कोई २ घर तो २० फिट ऊँचें तक पाए गए हैं। यह घर मज़बूत ऐसे होते हैं कि यदि उन पर बनेला भैंसा या हाथी भी चढ़ जाय तो नहीं टूटते। जो तरी इनके शरीर से निकलती है उसी से लकड़ी व पत्थर को बराबर जोड़ते चले जाते हैं। इन घरों की आड़ में बनैले भैंसे छिप जाते हैं।

इन घेरों में पहले एक बड़ा कमरा होता है जिसमें कभी २ सब कीड़े इकट्ठे होते हैं। और दूसरे कमरे सिपाहियों और कार्यकर्त्ताओं के लिए अलग २ होते हैं। सब के बीच में राजा और रानी का कमरा होता है। राजभवन के चारों ओर जो छोटे २ घर बनाये जाते हैं, उनमें सेवक और बच्चे रहते हैं यहाँ ही बच्चोंका पालन पोषण होता है। इनके सिवा भोजन के सामान और असबाब रखने के लिये दूसरे घर बनाये जाते हैं। इन घरों के भीतर और चारों ओर सड़कें और गलियाँ, पुल और सीढ़ियाँ जगह २ पर भीतर बाहर आने जाने के लिये बनी होती हैं। कहीं कहीं बहुत चौड़े रास्ते भी होते हैं। बाजी २ जगह एक फुट तक चौड़ा रास्ता पाया जाता है और बरसात के पानी से बचाव के लिये घरों के ऊपर चारों ओर से ये ऐसी २ नालियाँ बनाते हैं कि पानी एक बूंद भी घर के भीतर नहीं जाता और न जमा होने पाता है।

इन के सिपाही बड़े बली होते हैं और शत्रु के भागने और पीछा करने का काम उन्हीं के शिर होता है। काम करने वाले केवल घर बनाते हैं और भोजन की सामग्री इकट्ठा करते हैं। यदि इन कीड़ों का घर कोई तोड़ डाले तो सिपाही लोग उसी स्थान पर शीघ्र बाहर निकल आते हैं और लड़ने के लिये कटिबद्ध हो जाते हैं। यदि शत्रु को न पाया तो फिर घर में लौट जाते हैं और शीघ्र ही कार्य्यकर्त्ता लोग उपस्थित होकर उस को फिर बनाना आरम्भ कर देते हैं परन्तु एक सरदार सिपाही उनका काम देखने और जाँच करने को बराबर बना रहता है। यदि वह स्थान फिर किसी तरह तोड़ डाला जाय तो कार्य्यकर्त्ता तुरन्त घर के भीतर भाग जाते हैं और सिपाही लोग फिर लड़ने के लिये आजाते हैं।

आशय यह है कि एक कक्षा वाला कोड़ा दूसरी कक्षा वाले का काम नहीं करता है, जो कार्य्य जिस को सौंप दिया जाता है उसे वही करता है।

बिजली की धारा।

बिजली पैदा करने की सभी रीतियों को श्रमसाध्य देख कर वैज्ञानिकों को यह चिन्ता हुई कि कोई उपाय ऐसा निकालना चाहिए जिससे विद्युत् निरन्तर बहती रहे। जितने विद्युत के दृश्य हम पूर्व अंक में देख आये हैं वे सब ऐसे हैं जैसे ऊंचे स्थान के पानी का भाग एकाएक नीचे गिरा दिया जाय। इससे बड़ा भारी शब्द होगा परन्तु यह शब्द केवल क्षण भर के लिये! ज्योंही पानी धरती पर बहा फिर सब सुनसान है। परन्तु क्या ऐसा सम्भव है कि विद्युत् की धारा जलधारा की भांति निरन्तर बह सके? यह भी सम्भव हुआ पर बड़े एचपेंच से।

१८ वीं शताब्दि में लोगों को यह बात ज्ञात हुई कि एक प्रकार की मछली में ऐसी शक्ति होती है जिससे वह अपने शिकार को विद्युत् का धक्का दे कर मारती है। इस बात से वैज्ञानिक संसार में फिर खलबली मची। कई वैज्ञानिकों का यह मत हुआ कि जीव जन्तुओं का शरीर विद्युत् के बल से ही हिलचल सकता है। वैज्ञानिक इसपर प्रयोग करने में दत्त चित्त हुये। कई वैज्ञानिक इस बात को सिद्धान्त मान बैठे और उन्होंने इस कल्पित विद्युत का "जीव विद्युत" नाम धरा।

कहते हैं कि सन् १७६० ईस्वी में प्रोफेसर गैलवैनी की धर्मपत्नी बीमार हो गई। डाक्टरों ने इन्हें मेंडक की टांग खाने की आज्ञा दी। गैलवैनी साहब को मेंडक पर प्रयोग करने का अवसर मिला। एक दिन उन्होंने मेंडक की टाँग तथा पीठ की हड्डी मेजपर साथ २ रक्खी। इस मेजके कोने पर उनका विद्युतोत्पादन यंत्र रक्खा हुआ था। इनके एक नौकर ने इस यंत्र से विद्युत् की एक चिंगारी निकाली और दूसरे ने मेंडक की टाँग को चाकू से छूआ। उन्होंने देखा कि ज्योंहीं चिंगारी यंत्र से निकली कि मेंडक की टाँग स्वयं मुड़ने लगी। गैलवैनी साहेब ने जब यह सुना और स्वयं देखा कि किस प्रकार मेंडक की टाँग टेढ़ी पड़ जाती है तो उनके आनन्द की सीमा न रही। उनको निश्चय हुआ कि "जीव विद्युत्" का पता अब चल गया। इस के उपरान्त उन्होंने दो भिन्न धातुओं के डंडों से मेंडक की टाँग को छुआ। ठीक उसी समय उनके यंत्र से चिंगारी खींची गई व उनके देखने में आया कि मेंडक की टांग सुकड़ने लगती है। गैलवैनी साहेब को अपने सिद्धांत पर विश्वास रहा कि यह विद्युत मेंडक के ही शरीर से निकली है।

[Electricity विद्युत विद्या]

एक छोटी सी भूल गैलवैनी की रही और उन्होंने इस आश्चर्यजनक प्रयोग के सफल हो जाने पर सन्तुष्ट हो उस भूल को न देखा इसी लिए वे उस परम पूज्य नाम को पाने से बंचित रहे जिसको कि उनके पीछे एक दूसरे वैज्ञानिक ने पाया। इस वैज्ञानिक का नाम वोल्टा था। वोल्टा कई कारणों से प्रख्यात हो गये किन्तु गैलवैनी के सिद्धान्त के परम बैरी थे जब उन्होंने गैलवैनी के उन प्रयोगों का हाल सुना जिनका कि हम अभी वर्णन कर आये हैं तो वह स्वयं प्रयोग करने में दत्तचित हुये और कुछ ही समय उपरान्त उन्होंने संसार को दर्शा दिया कि गैलवैनी का सिद्धांत झूँठा है। इतना ही नहीं इन्होंने संसार में विद्युत् की वह जड़ जमा दी कि आज विद्युत विज्ञान ने सब तत्वों को अपने बस कर लिया और मनुष्य को सृष्टि का राजा बना दिया है।

गैलवैनी की भूल, वोल्टा का यश

गैलवैनी की भूल छोटी सी थी, खुशी में वे यह बात भूल गये कि क्या बिना विद्युत यंत्र के

मेज पर धरे और चिंगारी निकाले भी दो भिन्न धातुओं के डंडे मेंडक की टाँग को हिला सकते हैं। वोल्टा साहब को ऐसा निश्चय था कि यह हो सकता है, उनको निश्चय था कि विद्युत इस मृतक मेंडक के शरीर में व्याप्त नहीं है परन्तु दो भिन्न धातुओं के सम्मेलन से उत्पन्न होती है। वोल्टा ने एक चाँदी और सीसे के टुकड़ों को अपनी जिह्वा पर लगाया उससे कुछ भी न मालूम हुआ। अब इन्होंने इन दो धातुओं के एक एक सिरों को जिव्हा पर लगा दूसरे सिरों को एक दूसरे से मिलाया, तो इनको एक अद्भुत प्रकार का स्वाद मालूम पड़ा। ऐसा स्वाद इन धातुओं को पृथक् पृथक लगाने से नहीं ज्ञात होता था। वोल्टा को निश्चय हो गया कि अवश्य यह विद्युत के कारण स्वाद मालूम पड़ता है और यह विद्युत दो भिन्न धातुओं के सम्मेलन से उत्पन्न होती है। अब इनको यह भी मालूम हो गया कि मेंडक की टाँग केवल दो भिन्न धातुओंसे उत्पन्न हुई विद्युत-के ही कारण मुड़ती है। वोल्टा साहेबने बहुत सी भिन्न धातुओं का सम्मेलन करके इस बात को पूरी पूरी तौर पर सिद्ध कर दिया कि दो भिन्न धातओंके सम्मेलनसे ही विद्युत उत्पन्न हो सकती है।

वोल्टाने यह सिद्ध किया कि यदि जस्ता और तांबा दो धातु साथ जोड़ी जाँय तो जस्त में ऋण और तांबे में धन *विद्युत आ जाती है। अब वोल्टाको यह सूझी कि यदि दो भिन्न धातुओंके सम्मेलनोंका एक ढेर बना दिया जाय तो सम्भव है कि अधिक विद्युत इससे उत्पन्न हो। इसके लिये वोल्टा ने जस्ते और ताँबेके टुकड़ोंको मिलाकर उसकी एक चलथी बनाई। प्रत्येक सम्मेलनों के बीच इन्होंने नमक के पानीमें भिगोकर एक चमड़े का टुकड़ा रक्खा। इस प्रकार एक बड़ी चलथा बन गयी और तब इन्होंने चलथीके पहली और आखिरी धातुओंको किसी धातुके तार (विद्युत वाहक तार) से छूआ तो इन्होंने देखा कि इसमेंसे विद्युतकी चिंगारी निकलती है। यह चिंगारी निरन्तर निकलती जाती है और यह सिद्ध हो गया कि इस चलथीमें निरन्तर विद्युत बहती है। यही चलथी अर्वाचीन विद्युत पात्र की उत्पत्ति है और इसी के कारण वैज्ञानिकों को प्रयोग करने का बड़ा सुभीता हुआ। इसी चलथी को वोल्टा की चलथी कहते हैं।
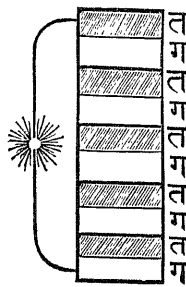
कुछ समय उपरान्त वोल्टाने इस प्रकार की चलथीसे प्रसन्न न हो १५, २० काँच के प्यालियों में नमक का पानी भरा और प्रत्येक प्याली में एक टुकड़ा जस्तका और एक टुकड़ा ताँबे का डुबोया, अब प्रत्येक प्यालेके जस्ते को दूसरेके ताँबेसे दूसरेके जस्तेको तीसरे के ताँबेसे इस प्रकार सबको किसी धातु के तारोंसे जोड़ दिया; प्रथम प्यालेके ताँबे तथा अंतिम प्याले के जस्ते को मिलानेपर उनको चिंगारियाँ देखने में आयीं। इसी प्यालेको वैज्ञानिकोंने अब अच्छी तरह सुधार लिया है जिस से सुन्दर से सुन्दर विद्युत्पात्र आज कल हमको मिल सकते हैं। (Electric cell विद्युतपात्र)।
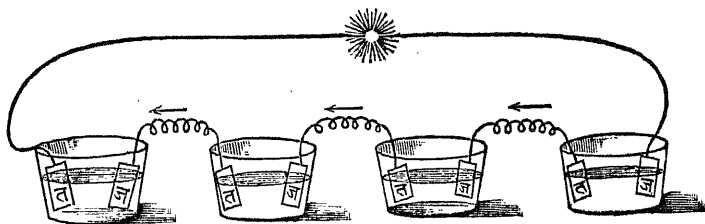
*ऋण-Negative। धन-Pos iive

अब क्या था वोल्टा साहेबके यंत्रकी धूम होने लगी और प्रत्येक वैज्ञानिकने इसको बनाने की चेष्टा की, एक महाशयने वोल्टाकी चलथी के पहिले और आखिरी धातुओंको जोड़नेकी चेष्टाकी परन्तु किसी कारण उनको चिंगारी देखनेमें न आई उन्होंने सोचा कि शायद हमारा तार ठीक ठीक धातुपर नहीं मिलता, इस कारण इन्होंने धातु के टुकड़ेपर एक बूँद पानी की रखकर उसको तारसे छुआ तो उन्होंने देखा कि पानीकी बूँदपर बहुत छोटे छोटे वायु के से बुलबुले निकलने लगे इन्होंने इसको भली भाँति देखनेके निमित्त एक प्यालेमें पानी भर कर उसमें दो तार डाले जिनके एक एक सिरे वोल्टा की चलथीसे जुड़े हुये थे, इनके देखनेमें आया कि जहाँपर तार पानीमें पड़े हुये हैं वहाँपर छोटे छोटे बुलबुले निकल रहे हैं। बुलबुले एक तारकी अपेक्षा दूसरेसे बहुत अधिक निकल रहे थे, इन्होंने बुलबुलों को एकत्रित कर उन पर प्रयोग किया जिससे इनको यह भी ज्ञात हुआ कि यह दो भिन्न प्रकारके वायुवत् पदार्थ हैं और यह भी ज्ञात हुआ कि जल इन्हीं दो पदार्थों से बनता है इन पदार्थों को हैड्रोजन Hydrogen और अक्सिजन Oxygen कहते हैं।

तार-समाचारकी उत्पत्ति

अब समय आ गया था कि विद्युत विज्ञानसे कुछ काम लिया जाय सब से पहला काम उससे दूर२ समाचार भेजने का लिया गया। 'तार' के प्रचार होनेके पूर्व न्यूटन साहेबके साथी हुक ने ज्योति (रोशनी) का तार बनायाथा। जब कहीं दूर कोई समाचार भेजना होता तो पर्वत के शिखर पर अथवा ऊँचे स्थानपर एक आदमी रंग बिरंगी लालटेनें लेकर चढ़ जाता और वहाँ से वह भिन्न भिन्न लालटेनों को हिलाता जिससे दूसरे पर्वत पर का आदमी उसकी वार्ता समझ जाता था। इस तरह के संकेत निश्चय कर लिये गये थे कि दो लाल लालटेनोंको साथ हिलानेसे 'a' का बोध होगा २ लालटेन हरी 'c' १ लालटेन हरी 'd' इत्यादि। इस प्रकारका तार फ्राँस में फ्रासीसी गदरके समय बहुत काम में लाया गया था। इस समय प्रत्येक पर्वत की चोटीमें रेलके स्टेशनोंके सिगनल-लालटेनों की भाँति यह यंत्र लगे हुये थे। जब १८०२ ईस्वी में आस्ट्रिया और फ्राँस में लड़ाई छिड़ी तो नेपोलियनने इस यंत्रसे बहुत फायदा उठाया और सब खबर पा जाने के कारण उसने अनायास शत्रुपर आक्रमण किया।
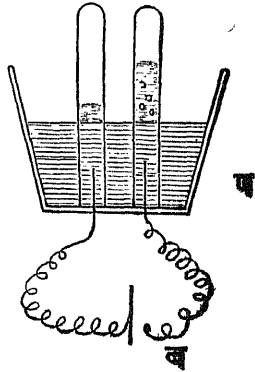
उस समय आस्ट्रिया और बैवेरिया एक साथ नैपोलियनसे लड़ रही थीं और जब इनको नैपोलियनसे हार माननी पड़ी तो बैवेरियाके राजाने अपने वैज्ञानिकोंसे कहा कि एक यंत्र ऐसा रचो कि जिससे समाचार दूर भेजे जा सकें और फ्राँसवालोंके यंत्रसे अच्छा हो। प्रोफेसर सोमरेड साहबने राजाको यंत्र बनाने का बचन दिया और चार ही दिन के उपरान्त इसे तैयार कर दिया। यह यंत्र बहुत ही सरल और सुन्दर था। जिस स्थानसे समाचार भेजना होता उस स्थानपर वोल्टाकी चलथी रक्खी रहती थी और जिस स्थानको भेजना होता वहाँ एक ऐसा प्याला रहता जिसमें कि छेद बने होते थे। दो तारोंके एक एक सिरे चलथीकेसाथ जोड़े जाते और ये तार दूसरे स्थान तक ले जाये जाकर वहीं इस प्याले के छेदोंसे जोड़े जाते थे। प्यालेमें पानी भरा रहता था। जब तार जुड़ गया तो विद्युतके बहनेसे पानी वायव्य पदार्थमें परिवर्तित होने लगा जिससे कि मनुष्य को ज्ञात हो जाता कि 'a' '.' अक्षर कहे गये हैं। यह यंत्र बाद को और अच्छा बनाया

गया जिससे कि वर्णमालाके सब अक्षरोंको खबरमें काममें ला सकें। दो तार जिनके ऊपर लाखका वार्निश लगाया गया था एक साथ मोड़े गये और इस मोड़े हुए तारको दो स्थानोंके बीचमें फैलाया, जिस स्थानपर खबर भेजनी होती वहाँ ये तार एक एककरके पानी भरे बड़े प्यालेके दो छेदोंमें डाले जाते। जहाँसे समाचार भेजने होते वहाँपर वोल्टाकी एक चलथी रक्खी जाती। अब जो किसी मनुष्य ने "a b" कहना चाहा तो उसने इस सिरे का पहला और तीसरा तार चलथीकी ओर से जोड़ दिया जिससे कि इन्हीं स्थानों पर बुलबुले उठने लगे। इस प्रकार पूरे पूरे समाचार पहुँचाये जाने लगे। वोल्टासाहेबको एक कठिनता और आपड़ी। यह तो सम्भव न था कि एक मनुष्य चौबीसों घंटे पानीपरके बुलबुलोंको देखता रहे तो किस प्रकार ठीक समाचार भेजनेके समय अन्य स्थानपरके मनुष्यको सूचना दी जा सके? इस कठिनता का भी उक्त महाशय ने बड़ी सरलतासे समाधान किया। आपने प्यालेके ऊपर ab स्थानको ढाँकता हुआ एक चम्मच रक्खा इस चम्मचका सिरा एक कबजे के साथ जुड़ा रहता था, कबजेके ऊपर एक गोली रक्खी रहती थी यह गोली जब अपने स्थानसे लुढ़कती थी तो एक कुप्पीके भीतर होती हुई वेगके साथ एक और चम्मचपर पड़ती थी। यह चम्मच अलार्म घड़ीकी कमानी से जुड़ा रहता था ज्योंहीं इसपर गोली गिरी कि अलार्म की कमानी छूट जाती थी और घंटी बजने लगती जिससे कि मनुष्यको मालूम पड़ जाता कि अब समाचार आ रहा है। भेजने वाले स्थानमें पहले a और b को वोल्टाकी चलथी से जोड़ा जाता था ताकि दूसरे स्थान पर a और 'b' पर ही वायू के बुलबुले निकलें। यह बुलबुले उलटे चम्मच पर पड़ते थे जिससेचम्मच उठ जाता था ज्योंही चम्मच उठा कि कबजा टेढ़ा पड़ा गोली कुप्पीसे होती हुई दूसरे चम्मचपर गिर और पड़ी और घंटी बजने लगी। जब समाचार पूरा हो चुका तो इस स्थानका मनुष्य फिरसे चम्मचको सीधा कर गोली रख देता और घड़ी की चाबी लगा देता ताकि दूसरी बारके लिये यंत्र तैयार रहे। कहते हैं कि एक फ्रांस के सेनापति ने नैपोलियन का ध्यान इस प्रयोगकी ओर आकर्षित किया। इन्होंने बड़े ध्यान से इस प्रयोग को सुना और इसको देखा परंतु इसको ठीक न समझ अपने ही 'ज्योति तार' से काम लेना निश्चय किया।

हम पहले कह आये हैं कि विद्युत और चुम्बक के बीच एक प्रकार का घना सम्बन्ध ओर्स्टेड साहब ने बतलाया था यह बात इसी समय हुई। ऊपर कहे हुये प्रयोग होने के १० वर्ष उपरांत ओर्स्टेड साहबने यह बात बतलाई कि लटकते हुए चुम्बकके ऊपर अथवा नीचे होती हुई विद्युत की धार बहे तो चम्बुक दाहिने और बायें को घूमने लगता है। इस प्रयोगसे 'तार' का काम बड़ा सरल हो गया। प्रोफेसर गौर और बेबर साहबने दो मीलकी दूरीपर इस प्रकार तार भेजा की एक स्थानपर चुम्बक सुई रक्खी गई दूसरेपर विद्युत घट, सुईके ऊपर और नीचे तार लगा हुआ था जो दो मील लम्बा था। इस तार पर दूसरे स्थान से इस प्रकार विद्युत भेजी जाती थी कि कभी वह तार के ऊपर और कभी नीचे हो कर बहे जिससे कि चुम्बक कभी दाहिने और कभी बायें को घूमता था। बस फिर क्या था वैज्ञानिकोंने सहमत होकर यह बात ठान ली कि इतने दायें बायें घुमाओंसे अमुक अक्षर अथवा शब्दका बोध होगा। तबसे तार धड़ाधड़ चलने लगा।

पहले पहल तारको एक स्थानसे दूसरे स्थान को भेज वहाँके यंत्रसे जोड़ फिर वहांसे लौटा कर प्रथम स्थानमें लाना पड़ा, परंतु बादको यह देखा गया कि यदि तारके दो सिरे दो स्थानों पर

धरती में गाड़ दिये जाँय तो धरती में होते हुए विद्युत् बह सकती है इस कारण अब एक ही तार प्रयोग किया जाता है।

मोर्स साहबने तारके यंत्रको बहुत कुछ सुधारा और तारकी वर्णमाला बनायी जिसमें कि सूईके दायीं और बायीं तरफ घूमनेसे भिन्न भिन्न अक्षरोंका बोध होता था।

मोर्स साहबके यंत्रसे इस प्रकारकी लकीर

a.—— b— ...c—.—.d—..e.f.. .g
—.h....i..j.— — —k—.—l.—..m—
—n—.o— — —p.— —.g— —.—r.—.
s...t—u..—v...—w.— —x——..—y—
.— —z— —...
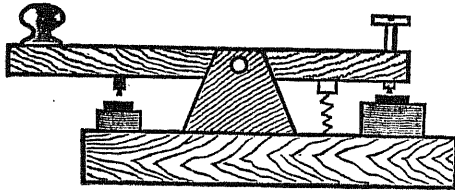
अथवा बूंद चुम्बक सुई कागजपर बना देती है जिसको कि मनुष्य समझ सकता है। परन्तु आज कल बहुधा चुम्बकके ध्रुवोंके बीच एक लोहे की सुई लगी रहती है जो दायें बायें घुमाने से टकराकर शब्द करती है। लकीर के स्थान में लम्बा शब्द 'ग-ट्ट' और बिन्दु के स्थान पर छोटा शब्द 'गड़' समझे जाते हैं। इन शब्दोंको तार बाबू समझ सकता है जैसे यदि इलाहाबाद कहना हो तो इतने शब्द सुनाई देंगे।

गड़ गट्ट, गड़ गट्ट गड़ गड़, गड़ गट्ट गड़ गड़, गड़ गट्ट गड़ गड़ गड़ गड़, गड़ गट्ट, गट्ट गड़ गड़ गड़, गड़ गट्ट गड्ड गड़ गड़।

——

रत्नपरीक्षा

(श्रीयुत भगवानदास वर्म्मा लिखित)

त्नोंका व्यवहार भारतवर्ष में प्राचीन-काल से चला आता है। पुराणों में इनका अनेक स्थानों में उल्लेख मिलता है तथा आयुर्वेदीय और ज्योतिष-ग्रन्थों में भी इनके प्रयोग का वर्णन है, पर इन ग्रन्थों से यह नहीं जान पड़ता कि सब रत्न भारतवर्ष में ही मिलते थे या दूसरे देशों से यहाँ आते थे। आज कल हम देखते हैं कि कुछ रत्नों के सिवा शेष यहाँ नहीं मिलते और न इनके खोज का ही कुछ उपाय किया जाता है। सम्भव है कि यदि खोज की जाय तो कहीं न कहीं इस देशमें और रत्न भी अवश्य मिलें। प्राचीनकाल में भूगर्भ विद्या जानने वाले इस देश में भी थे, वे पृथ्वीके रंग तथा दूसरे चिन्हों से अनेक धातुओंका होना जानलेते थे पर आजकल न तो इस विद्या के जाननेवाले ही यहाँ रह गये और न इनके पास कोई ऐसे यंत्र ही हैं जिनके द्वारा वे इनका अनुसंधान कर सकें। यदि मिस्टर ताता के मैसूरस्थ विज्ञान विद्यालय या दूसरे स्थानों में भूगर्भ विद्या की शिक्षा दी जाय तो इस खोज की सफलता की बहुत कुछ आशा की जा सकती है—

धन पाने की इच्छा करनेवाले इनकी खोज में अत्यन्त उद्योग करते हैं इसलिये शब्द शास्त्र के जानने वालों ने इनका नाम रत्न रखा है—

२-१ हीरा, २ मोती, ३ मूंगा, ४ गोमेद, ५ नीलम, ६ लहसुनिया, ७ पुखराज, ८ पन्ना, ९ लाल—यह महारत्न कहलाते हैं—

हीरे को हीरक, बज्र या चन्द्रमणि भी कहते हैं। हीरा शुभ्र, हरा, पीला, गुलाबी, धुंएँ के रंग का और काला भी होता है, पर जो हीरा अत्यन्त उज्वल तारेके सदृश हो वही उत्तम समझा जाता है। हीरा भारतवर्ष में चरखारी और पन्ना राज्यों

[miueralogy धातु विद्या]

में, अफ्रिका के केपटौन में और यूरोप अन्तर्गत बेलजियम में भी मिलता है तथा ईरान मेंभी पाया जाता है। शुभ्र और पीला हीरा तो देखने में आता है, पर दूसरे रंगों के हीरे कम देखने में आते हैं।

२-मोती को मुक्ता, मौक्तिक या शौक्तिक भी कहते हैं। मोती स्वेत,पीला, गुलाबी और काला भी होता है। यह मेंढक, हाथी और शूकर के मस्तक, मछली, सर्प शंख, सीपी तथा बांस में पाया जाता है, परन्तु विशेष करके सीपी में ही होता है। स्वेत,पीला और लाल और सातपर्तका श्रेष्ठ होता है, स्वेत चार पर्त का मध्यम होता है और काला दो पर्तका निकृष्ट होता है। प्रथम प्रकार के मोती बेधने के योग्य होते हैं। गोल मोती उत्तम होता है। चिपटा व बेडौल मध्यम होता है। यह अरब में अदन की खाड़ी, चूनाखाड़ी आस्ट्रेलिया और सीलोनमेंभी मिलता है। इस देश में गोमती की सीपियों में भी बहुधा मोती पाया जाता है। लवण सहित गरम मीठे तेल में रात्रि को डाल कर सवेरे चावल डाल कर मलने से यदि मोती का दूसरा रंग हो जाय तो जानो कि मोती असली नहीं है।

३-मूंगा-इसे विद्रुम वा प्रबाल भी कहते हैं। मूंगा गुलाबी,दूधिया उत्तम होता है। यह लन्डन की तरफ समुद्र के किनारे मिलता है।

४-गोमेद, इसे पीतरत्न भी कहते हैं। यह कुछ पीला लाली लिये तेलिया रंग का होता है और ब्रह्मा प्रान्त में पाया जाता है।

५-नीलम, इसे इन्द्रनील भी कहते हैं। इसका रंग सघन मेघ के सदृश या अलसी के फूल के सदृश होता है। यह इस देश में जम्बू में तथा श्याम और सीलोन में भी मिलता है।

६-लहसुनिया, इसे वैडूर्यमणि, इन्द्रकेतु या गहबल्लभ भी कहते हैं। यह बिल्ली की आंख के सदृश चल और तन्तुदार होता है। २॥ सूत का उत्तम होता है। लहसुनिया ब्रह्मा और सीलोन में भी प्राप्त होता है।

७-पुखराज—इसे पुष्पराग, मंजुमणि, वाचस्पति या बल्लभ भी कहते हैं। इसका रंग सोने के समान चमकदार और स्वेत भी होता है। ब्रह्मा और सीलोन में मिलता है।

८-पन्ना—इसे मरकत या गारुतमत भी कहते हैं। यह मोर या तोते के पंख के सदृश हरा होता है। यह रूस, ईरान, अमेरिका और मस्कट में मिलता है। भारतवर्ष के अन्तर्गत टोंक राज्य में भी निकलता है।

९-लाल—इसे माणिक्य, पद्मराग, रत्नलोहित भी कहते हैं। इसका रंग लाल पद्म के सदृश या खरगोश की आंख के रंग का अथवा अनार "दाने के रंग का होता है। पीला भी होता है। ब्रह्मा और सीलोन में मिलता है। रत्तीभर से कम का लाल चुन्नी, इससे ऊपर २४ रत्ती तक लालड़ी कहता है और २४ रत्ती से ऊपर हो तो लाल वा माणिक संज्ञा पाता है।

३-सब रत्नों में महातेजवान सर्प की मणि श्रेष्ठ है पर दुर्लभ है। हीरा श्रेष्ठ है, पन्ना, माणिक्य और मोती उत्तम हैं; इन्द्रनील, वैडूर्यमणि और पुष्पराग मध्यम हैं, मूंगा और गोमेद अधम हैं।

४-हीरा, गोमेद, इन्द्रनाल, वैडूर्य, पुष्पराग, मरकत और माणिक्य पृथ्वीतल में मिलते हैं; मूंगा समुद्र के तट पर मिलता है और मोती विशेषतर सीपी में ही होता है।

५-मध्य में जल पर रेखा या बिन्दु का होना रत्नों में दोष है।

६-जिस रंग का रत्न हो यदि वह छाया में उसी रंग की प्रभा दे, दीप्तमान, सुन्दर वर्ण व पहलदार और दोष वर्जित हो तो रत्न उत्तम है।

७-अधिक पहिना हुआ मोती और मूंगा हीन हो जाता है पर दूसरे रत्न पुराने नहीं होते और न रंग छोड़ते हैं।

८-दोष वर्जित, भारी, चमकदार, अच्छे वर्ण का, बड़ा बैठकदार और स्वरूपवान रत्न अधिक मोल के होते हैं। हलके और वर्ण हीन कम दाम के होते हैं। उत्तम गुण होने पर भी खड़ा हो तो थोड़े मोल का होता है, चपटा मध्यम दाम का होता है।

९-परीक्षा के लिये मोती और गोमेद को छोड़ कर दूसरे रत्नों में लोहे से रेखा नहीं पड़ती, बहुधा पत्थर से रेखा करते हैं।

१०-गोमेद के सिवा अन्य रत्नों का दाम तोल से नहीं होता पसंद से होता है।

११-सभी रत्नों के तोलने की रत्ती २० अलसी की होती है और २४ रत्ती का टांक होता है।

१२-आयुर्वेद शास्त्र में स्वेत हीरे को ब्राह्मण, लाल हीरे को क्षत्रिय, पीले को वैश्य एवम् काले को शूद्र कहते हैं। रसायन कर्म में विप्र हीरे को वर्तने से सब प्रकार की सिद्धियों की प्राप्ति होती है, क्षत्रिय हीरों को वर्तने से व्याधि, बुढ़ापा तथा मृत्यु का नाश होता है और वैश्य हीरे को बर्तने से धन बढ़ता है और शरीर दृढ़ होता है; शूद्र हीरा वर्तने से सब प्रकार के रोग नाश होते हैं और वृढ़ापा नहीं आता।

सुन्दर, गोल, दीप्तमान, बड़ा और दोष रहित हीरा पुरुष कहाता है। रेखा और बिन्दुओं सहित छ कोण का हीरा स्त्री कहाता है; एवम् त्रिकोण और लम्बा नपुंसक कहाता है। सब में पुरुष हीरा श्रेष्ठ है। स्त्री हीरा कांति को बढ़ाता है और स्त्रियों को सुखदायक है और नपुंसक हीरा बीर्य रहित, कांति रहित और निस्तेज होता है। नपुंसक हीरा नपुंसक को ही देने योग्य है। पुरुष हीरा सदा सब को देना उचित है। अशुद्ध हीरा कुष्ट, पसुलियों में पीड़ा, पाण्डु, रोग ताप और भारीपन उत्पन्न करता है इसलिये अच्छी तरह शोधा हुआ हीरा काम में लाना चाहिये।

मोती शीतल, बलवाला है। शरीर को मोटा और बलवान तथा पुष्ट करता है। दूसरे सब रत्न खाने में मधुर और शिर व नेत्रों को हितकारी और ठंडे हैं; विषों को नाश करते हैं और मन को रुचिकर होते हैं।

१३-योतिष शास्त्र वालों के मत से रत्न ग्रह दोषों को नष्ट करते हैं। सूर्य की प्रसन्नता के लिये माणिक्य; चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिये मोती; मंगल की प्रसन्नता के लिये मूंगा; बुध की प्रसन्नता के लिये पन्ना; वृहस्पति की प्रसन्नता के लिये पुखराज; शुक्र की प्रसन्नता के लिये हीरा; शनैश्चर की प्रसन्नता के लिये नीलम और राहु-केतु की प्रसन्नता के लिये गोमेद और वैडूर्यमणि पहिनना चाहिये॥

मेरा आश्चर्य जनक स्वप्न

जब मुझे नींद नहीं आती तो मेरे पास एक उत्तम दवा है उसी के द्वारा मैं निद्रा को बुला लिया करता हूँ। मैं अपना अनुभूत योग आप को भी बतलाये देता हूँ; परन्तु आप इसे हँसी में न उड़ादें। देखिये एक दो कठिन पुस्तक ही मेरी दवा है, कठिन पुस्तक को हाथ में लेते ही पाव घंटे या आधे घंटे में नींद आ ही जाती है।

एक दिन मुझे बहुत देर तक निद्रा न आई बेचैन हो चारपाई पर इधर से उधर और उधर से इधर करवटें ले रहा था; दिन भी गरमियोंके थे; मैंने सोचा कि अब वही अमोघ औषध लिये बिना काम नहीं चलने का और तुरंत एक पुस्तक निकाली। परन्तु बड़ी विचित्रता यह हुई कि मेरा जी पुस्तक में लग गया और आधा या पौन घंटा और बीत गया व निद्रा न आई; पर मैंने दवा का सेवन छोड़ा नहीं अन्त में औषध ने अपना गुण दिखलाया और थोड़ी ही देर में मैं निद्रा भगवती की गोद में हिलोरें लेने लगा। इस निद्रितावस्था में मैंने एक विलक्षण स्वप्न देखा, जिसे मैं आज आप की भेंट करना चा-

हता हूँ। हमारे वृद्ध जन कहा करते हैं कि अपने स्वप्न को दुसरों को सुनाकर उसका फलाफल समझे बिना नहीं रहना चाहिये। इसी शिक्षा के अनुसार मैंने भी इस स्वप्न के सुनाने का निश्चय किया है। मेरा निवेदन है कि आप सर्व पाठक महाशय सावधान चित्त हो इसे सुनें क्योंकि मुझे विश्वास है कि यह स्वप्न बहुत ही गम्भीर अर्थ पूर्ण है।

मेरे बंधु और भगिनी गण! मेरी आंखें अच्छी तरह मिची भी न थीं कि मुझे ऐसा भास होने लगा कि मानो यह पृथ्वी (जिस पर हम लोग रहते हैं) छोड़कर मैं बड़े जोर से आकाश को उड़ा जा रहा हूँ। बहुत समय हो गया तो भी मेरा ऊपर को चढ़ते चला जाना बंद न हुआ; और ज्यों ज्यों मैं ऊपर की ओर जाने लगा त्यों त्यों मुझको सर्दी अधिक मालूम होने लगी; परन्तु मैं ऊपर को चढ़ता ही चला गया। जान पड़ता था की कोई मनुष्य मुझे ऊपर की ओर खींचे लिये जा रहा है और मेरा कुछ वश नहीं चलता। भय के मारे मैंने अपनी आँखें हाथों से बंद कर ली थीं, क्योंकि अपने मन में समझता था कि कहीं ऐसा न हो कि इस भयंकर ऊंचाई से नीचे की ओर देखूँ और घबराकर नीचे गिरूँ तो प्राण निकल जायँ!

जब और ऊपर पहुँचा तो जान पड़ने लगा कि अब सर्दी कम होकर कुछ गर्मी का संचार हुआ। यह क्या तमाशा है? मैं किधर जा रहा हूं? मेरा भविष्यत् क्या होगा? इन्हीं विचारों में मेरा चित्त उलझ रहा था कि किसी ने मुझे एक स्थान पर लेकर जा धरा, तो भी मैंने आँखें नहीं खोलीं। मेरा यह बावलेपन का स्वाँग देख वह देवी हँसकर कहने लगी 'हे पागल! अपनी आँखें खोल और देख कि तू कैसे सुरम्य स्थान में आ पहुँचा है"!

बाचक वृन्द! मैंने आंखें खोल कर देखा तो सचमुच मुझे बहुत ही हर्ष हुआ; परन्तु आश्चर्य से चकित होने के कारण, कहाँ जाना और क्या करना इस बात की मुझे कुछ भी सुध बुध न थी। चारों ओर एक सा सौन्दर्य्य दीखता था; जिधर देखता उधर ही मानो चमकीले फूल किसी ने छत पर चिपका दिये हों। किन्तु मैं कहाँ आगया हूँ, इस बात का कुछ पता न चला। अपने देश का रंग रूप कहीं भी नहीं दिखाई देता था। आखर मैं बहुत जोर से भागा -कितनी जोर से भागा, इस बात की आप कल्पना भी न कर सकेंगे; एक घंटे में दस हजार मील भाग कर चला गया—तो भी ठहरने पर यही जान पड़ा कि जहाँ का तहाँ ही खड़ा हूँ, आस पास के दृश्य में यत्किंचित् भी अन्तर नहीं है इधर उधर वही छत ज्यों की त्यों मौजूद! इस जगह पर एक लंबी सी स्वेत चद्दर दीखती थी (Milky way) जिस में असंख्य छोटे छोटे फूल पूर्ववत ही लगे थे; इसमें भी कोई अन्तर नहीं मिला। अन्त में मैंने विचार किया कि उठ कर देखूँ तो छत से हाथ लगता है या नहीं। तुरन्त ही मैं जोर से उड़ा-न जाने वह कौनसी शक्ति थी जो उस समय मेरे शरीर में उत्पन्न होगई थी-इस बार दूने बल से और दूनी देर तक ऊपर को उड़ता हुआ भागता रहा; परन्तु छत को न छू सका और जब आँखें खोल कर ऊपर को देखा तो छत जितनी ऊँची पहले थी उतनी ही ऊँची बनी है! आस पास की सब स्थिति भी पहिले ही की सी है। वही स्वेत पट (Milky way) और वैसाही दीखा। चित्त बड़े संशय में पड़ गया; सोचने लगा कहीं यह पैशाची माया तो नहीं! यहां से भाग चलना चाहिये; परन्तु भागूं तो भागूं किधर? जिधर देखो उधर, वही दृश्य, वही स्थिति! इस संशय के समय मुझे वही हँसने वाली देवमूर्ति का स्मरण हुवा; चाहता था कि उसी को खोजूँ, उसी से सब बातें पूछूँ। अतः उसकी खोज में मैं इधर उधर देखने लगा, परन्तु हाय! वहाँ तो चारों ओर वही

छत, और वही जड़े हुये फूलों के सिवा और कुछ भी नहीं ! इस स्थिति से मेरी क्या दशा होगयी थी इस की कल्पना, इसका विचार पाठक स्वयम् ही ठीक कर सकेंगे, क्योंकि उसका वर्णन करना मेरी सामर्थ्य से बाहर है।

कदाचित् अभीष्ट सिद्ध हो, यह विचार कर मैंने बड़े उच्च स्वर से कहा "मुझे यहाँ कौन लाया ? मैं अब किधर जाऊँ ! क्या मेरी इस दशा पर किसी को भी दया नहीं आती ? ये शब्द मेरे मुख से पूरे पूरे निकलने भी न पाये थे इतने में ऐसा जान पड़ा कि कोई हँसा और अनुमान हुआ कि जो हँसा वह निश्चय ही कोई पिशाच है। यह विचारता आश्चर्य से मैं चारों ओर देखने लगा। थोड़ी दूर पर एक तेजोमयी, बस्तु दीखी जो मेरी ओर बढ़ी चली आ रही थी। पहले तो मैंने सोचा कि जो यह तेजोराशि कहीं बिलकुल मेरे समीप आयी तो निश्चय ही मैं जल जाऊँगा, इस लिये मैं उससे दूर भागने का प्रयत्न करने लगा; परन्तु उसकी गति बड़ी बेगवती थी, इस कारण उसके विरुद्ध दिशा में मेरा जोर से भागना व्यर्थ हुआ। जब वह तेजो-पुञ्ज बहुतहा पास आ पहुँचा तो मुझे गर्मी के बदले शीत और सुरम्यता प्रतीत होने लगी; तब तो मैं भागना बंद कर के उसी की तरफ चलने लगा। जब मैं बहुत ही समीप पहुँच गया तो उस तेज में एक माननीय स्वरूप दीखने लगा। मैं सोचता था कि हे दैव ! क्या जो मैं देख रहा हूँ सच है या मेरी ही कल्पना जनित भ्रम है ? यह विचार मेरे अन्तःकरण में उत्पन्न होने के साथ ही एक वृद्ध ऋषी ने आकर मेरे कंधे पर हाथ रख दिया। मैं उनके मुख की ओर देखने लगा। अहाहा ! उनका कैसा सुन्दर, शीतल और उदात्त स्वरूप ! उनकी कैसी धीर गंभीर दृष्टि ! उनका कैसा शीतल परन्तु देदीप्यमान तेज ! उनकी शिखा ग्रंथी से लेकर पद-नख पर्य्यन्त की मन मोहनी छटा देख कर मेरा मन आनंद समुद्र में हिलोरें लेने लगा ? आनंद, आश्चर्य, प्रेम और भक्ति का ऐसा एक विचित्र मिश्रित भाव मेरे हृदय में तरंगायत हुआ कि मैं श्वास वंद कर के अनुन्मीलित नेत्रों से एक टक उनके मुखार-बिन्द की ओर देखता रह गया। इस समय की हार्दिक दशा के लिखने में मेरी लेखनी सर्वथैव असमर्थ है । बाचक बृन्द ! आप की ही कल्पना यह काम कर सके तो कर सके। मेरी निश्चलता, व मेरा आश्चर्य देखकर ऋषि-राज मुसकराये और अपनी शुभ्र ज्योतिर्मयी दाढी पर हाथ फेरते हुये बोले; "बच्चा, तू इतना घबरा गया ? तूने मुझे व मेरे बाल बच्चों को कभी देखा ही नहीं, क्या ? बोल तो सही, तेरी इतनी घबराहट का कारण क्या है ? "

हे बंधु और भगनीगण ! वह घन-गर्जित गंभीर नाद सुनकर मेरा सर्वाङ्ग रोमांचित हो उठा। अन्तःकरण आनंद से परिपूर्ण तो हो गया परंतु यह बिलकुल न सूझा कि प्रश्न का उत्तर क्या दूँ। मैंने तो उन ऋषिवर्य और उनके बालबच्चों को कभी देखाही न था; यदि कभी देखा भी हो तो कमसे कम मुझे स्मरण तनिक भी न था। तथापि एकदम मुंह बंद कर बैठना उचित न जान कर, मैंने उनको नम्रता पूर्वक प्रणाम किया और बोला, "हे मुने, आप का पवित्र नाम क्या है ? आप किस स्थान को अपने निवास से स्वर्गधाम बना रहे हैं ? आपने किन को जन्म देकर सृष्टि को विभूषित किया है ? इन सब बातों से मैं नितान्त अजान हूँ । यद्यपि यह कहते मुझे लज्जा होती है, परन्तु सत्य तो कहना ही पड़ता है और उचित भी यही है। हम मानव जाति के लोग आपुस में कभी कभी किसी व्यक्ति को न पहिचानते हुये भी, 'हाँ' पहचानते हैं' कह कर बहाने से अवसर गांठते और अपना काम निकाल लेते हैं; परन्तु आपके साथ तो कभी भी ऐसा करना उचित नहीं जान पड़ता। इतना कह कर मैं निस्तब्ध हो रहा; बत

ऋषिराज बोले, "शाबास, शाबास, सच है. सदा सत्यभाषण करना ही ठीक है। तुझे मैं अपना वृत्तान्त बतलाता हूँ सुन"। यह सुन कर मैं बहुत ही आह्लादित हुआ और उनके सामने श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़ कर खड़ा होगया। ऋषिवर्य्य कहने लगे, "मेरा नाम विज्ञानेश्वर है और मेरी माता का नाम सुबुद्धिदेवी है। मेरी अवस्था कितनी बड़ी है यह समझाना कठिन है। लाखों वर्ष हो गये! इतनी बड़ी संख्या तेरे समझ में भी न आ सकेगी, क्योंकि तू मानव-प्राणी ठहरा, तुम लोगों की बड़ी से बड़ी संख्या कितनी हो सकती है? इसी तरह जो मैं अपने बाल बच्चों के नाम तुझे गिनाने लग जाऊँ तो तेरी छोटीसी स्मरण शक्ति पर बड़ा बोझ पड़ेगा। अपनी सब पुत्रियों का मैंने साधारण नाम "विद्या" रखा है। मैं पुत्रों और पुत्रियों में बिलकुल भेद नहीं समझता। मेरी बड़ी लड़की ज्योतिर्विद्या अथवा ज्योतिर्मति बहुतही गुणवती है। उसकी छोटी बहन "गणिति" किम्बा गणित विद्या है। ये दोनों बहनें एकमत हो सब काम करतीं हैं और हमारे देश के अलग अलग स्थानों और विभागों का लेखा मिलाती हैं। गणिति देवी के बिना तो किसी भी बहन का कार्य नहीं चल सकता। "विद्युद्विद्या" नाम की मेरी एक और लड़की है, वह तो अपनी बहन गणिति की बहुत ही सहायता लेती है। परंतु मैं तुझसे यह सब कहता चला जा रहा हूँ! तू हमारे देश में आया है, तो तुझे यहाँ की उत्तमोत्तम बातें बतलानी चाहिये; देख मैं स्वयम् तेरे साथ नहीं चल सकता, हाँ, अपनी एक पुत्री को तेरे साथ करके यह काम उसेही सोंपे देता हूँ। यह देश बहुत ही विस्तीर्ण है, इसको हम लोग अनंताकाश कहते हैं; क्योंकि किसी तरफ भी इसकी सीमा वा अन्त नहीं है। इस अनंत देश का राजा महादेव है उसीने मुझे जन्म देकर इसकी निगरानी पर नियत किया है, और इसी निमित्त मैंने अपनी ओर से अपने लड़कों को इस बड़े भारी देश के अलग अलग भागों पर रख दिया है। यह सब मेरा काम बहुत उत्तमता के साथ करते हैं, और मैं स्वयम् अपने तपोबन में बैठा अपने राजराजेश्वर महाराजाधिराज का सतत चिंतन किया करता हूँ। तपोवन की भी सारी व्यवस्था और अभ्यागतों के स्वागत इत्यादि करने का सारा काम मैंने बच्चों को ही सौंप रक्खा है।"

इतना कह, ऋषिराज चारों ओर देख गंभीर स्वर से "ज्योतिर्मति! ज्योतिर्मति" कह कर पुकारने लगे। उनके पुकार चुकते ही, "तात! आती हूँ" की कर्ण-मधुर ध्वनि सुनाई दी। जिस दिशा से यह शब्द कर्णगोचर हुआ था, उसी ओर मैंने दृष्टि डाली, तो थोड़ी ही दूर पर एक सुन्दरी तरुणी खड़ी दीखीं। इनके तन पर किंचित् नीलवर्ण का बस्त्र परिधान था; और उस बस्त्र पर असंख्य प्रकाश मय तारिका (Bright dots) प्रजटित थीं, जिन के तेज से मेरीं आँखें झपकने लगीं। इस तरुणी के आस पास एक तेजोमय वृत दीखता था; यह देख कर मैं पीछे को हटने लगा। मुझे हटते देख वह युवती बोली :—

"हे मानव, तू पीछे क्यों हटता है? ठीक है, तू जिस देश से आया है उस देश में स्त्री का पुरुष से सम्भाषण व स्पर्श ठीक नहीं समझा जाता; इसी लिये तू पीछे हटता होगा, परंतु पृथ्वी पर की बातें यहां छोड़ दे, हमारे यहाँ स्त्री पुरुष में भेद भाव नहीं है। मेरे कुछ नाम तो पुरुष बाचक और कुछ स्त्री बाचक हैं। हमारे देश में स्त्री पुरुष एक जगह बैठ कर बात चीत करतें है; यहाँ इस संबंध में कोई भी प्रतिबन्ध नहीं है। इस प्रकार की सब बातें तुम्हारी पृथ्वी के निवासियों को हो दे दी गयी हैं तू मेरे पास आजा; संकोच करने की आवश्यकता नहीं है। तात की आज्ञानुसार मैं तुझे यहाँ का सब स्थान दिखलाये देती हूँ। तेरी पृथ्वी पर भी मेरी जान पहिचान के बहुत लोग हो बीते हैं

और अब भी हैं। भास्कर भट्ट, आर्यभट्ट, हर्शल्, मांडवी, ग्यालिलिओ इत्यादि लोगों ने मेरी सहायता से बहुत से देशों का पता लगा कर पृथ्वीवासियों को बतला दिया है। इतना कह उस तरुणी देवी ने मेरे कन्धे पर हाथ रख दिया यह देख मेरे अंतःकरण में संकोच तो हुआ; परंतु उसके आश्वसन पर भरोसा रख मैं उसके साथ चल पड़ा। इसी समय मुझे यह भी ज्ञान हुआ कि स्त्री पुरुषों में भेद भाव न रखना चाहिये। अस्तु, ज्योतिर्मती ने मुझे क्या बतलाया और क्या क्या कहा यह सब बातें मैं अब पाठकों के प्रति निवेदन करता हूं।

"वेग से, वह और मैं दोनों बहुत बेग से जा रहे थे कहने का तात्पर्य्य यह कि ज्योतिर्मति की चाल व बातों में हजार, दो हजार; लाख दो लाख क्रोस से कम का तो कहीं पता ही न था; बहुत काल तक इधर उधर घूमने के पीछे ठहर कर कहने लगी, "मित्र, तू केवल इधर उधर घुमाने से कुछ समझेगा नहीं; इस लिये अब मैं एक दो प्रान्त दिखला कर यह बतलाऊँगी कि इसमें क्या क्या अनन्द हैं; और जो ज्ञान तुझे अपने देश में अधिक लाभ प्रद होगा उसी से मैं आरम्भ करती हूँ।

"यह देख यह किंचित् स्वेत और विस्तीर्ण पट है, इसी पट में अभी तक हम लोग स्थित हैं; इसीको तुम पृथ्वी के लोग आकाश गंगा कहते हो, (milky way) कोई काई इसे दुग्ध मार्ग भी कहते हैं। इस आकाश गंगा मंदाकिनी में पड़े हुए पारिजात पुष्पों की भाँति शोभा देने वाली और चमकने वाली, यह जितनी बेंदियां दिखलाई देती हैं उतनी सबों का नाम बतलाने और निरीक्षण करने में अनन्त समय लग जायगा; इसलिये हम अभी एक ही तारिका के पास चल कर उसका आनन्द देखेंगे। एक चाँवल टटोलकर ही सब चाँवलों की दशा समझ लेनी होगी। एक स्थान का अच्छी तरह परिज्ञान करके फिर दूसरों की ओर झुकेंगे।

"यह अत्यंत विस्तृत दुग्धमार्ग एक बहुत से तारों का समूह है इनके जो नाम हमने रखे हैं उन सब को यदि मैं एक २ बतलाऊँ तो तुम्हें भार प्रतीत होगा; और याद भी नहीं रह सकेंगे। जो तारक हमने पृथ्वीवासीयों को दिया है वह भी इस आकाश गंगा के तारकपुंज में से एक है।

उसे तुम लोग भास्कर अर्थात् प्रकाश देने वाला कहते हो, यह नाम उस तारक के लिये बिलकुल यथार्थ है। तुहारे निवसित स्थानों को जीवन देने वाला, उष्णता देने वाला और प्रकाश देने वाला वही है। आओ थोड़ा और आगे बढ़ें भय भीत होने का कोई भी कारण नहीं जब तक मैं तेरे साथ हूँ तुझे किसी प्रकार की भी हानि नहीं पहुँच सकती न कोई दुःख ही हो सकता है।"

खगोल की मोटी मोटी बातें

भारतीय और युरोपीय सिद्धान्तों के तारतम्य की परीक्षा

[लेखक—*स्वर्गवासी पंडित बद्री नारायण मिश्र]

सप्त विंशति भै ज्योतिश्चक्रं स्तिमित वायु गम्।
तदर्कांशो भवेद्राशिर्नवर्क्षचरणाङ्कितः ॥ १ ॥
भचक्रं ध्रुवयोर्बद्धमाक्षिप्तं प्रवहानिलैः।
पर्य्येत्यजस्रं तन्नद्धा ग्रहकक्षा यथाक्रमं ॥
उपरिस्थस्य महती कक्षाल्पाधःस्थितस्यच।
महत्या कक्षया भागा महान्तोऽल्पास्तथाल्पया।
कालेनाल्पेन भगणं भुङ्क्तेऽल्पभ्रमणाश्रितः।
ग्रहः कालेन महता मंडले महति भ्रमन् ॥
स्वल्पया तु बृहद् भुङ्क्ते भगणान्शीतदीधितः।
महत्या कक्षया गच्छन् तता स्वल्पः शनैश्चरः ॥
मन्दादधःक्रमेण स्युश्चतुर्थादिवसाधिपाः।
वर्षाधिपतयस्तद्वत् तृतीया परि कीर्तिताः ॥
उर्द्ध्वक्रमेण शशिनो मासानामधिपाः स्मृताः।

भवेद्भकक्षातीग्मांशोर्भ्रमणं षष्टि तंडितम् ॥
सर्वोपरिष्टात्भ्रमति योजनैस्तैर्भमंडलम् ।
तत्र कक्षा क्रममाह
ब्रह्मांडमध्ये परिधि र्व्योमकक्षाभिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणं भानामधोऽधः क्रमशस्तथा ॥
मन्दामरेज्यभूपुत्रसूर्य शुक्रेन्दुजेन्दवः ।
परिभ्रमन्त्यधोऽधः स्था सिद्धविद्याधराघनाः ॥
रविर्मासं निशानाथः सपाद दिवस द्वयम् ।
पक्षत्रयं भूमिपुत्रो बुधोऽष्टादशवासरान् ॥
वर्षमेकं सुराचार्यश्चाष्टाविंश दिनं भृगुः ।
शनिः सार्द्धद्वयं वर्षे स्वर्भानुः सार्ध वत्सरम्॥
एवं प्रमाणात सकलाः स्वराशिं भुंजते ग्रहाः ।
सप्तर्षीणांतुयौ पूर्वौ दृश्येते उदितौ दिवि ।
तयोस्तुमध्ये नक्षत्रं दृश्यते यत्समं निशि ।
तेनैव ऋषयोयुक्तास्तिष्ठंत्यब्द शतानि च ॥
ते त्वदीये द्विजाः कालेऽधुना चाश्रिता मघाः ।
आसन् मघासुमुनयः शासति पृथवीं युधिष्ठिरे नृपतौ,
द्विपंचषट् द्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ॥
इति वाराही संहितायाम् ।

सूर्य सिद्धान्तानुसार खगोल का संक्षेप।

आकाश मंडल को खगोल कहते हैं। यह ब्रह्मांड छिद्र सहित दो कड़ाहों के गोलाकार सम्पुट रूप में है। उसमें भूः भुवः स्वः महः जनः तपः सत्यम् नाम सात भुवन स्थित हैं। ब्रह्माण्ड के मध्य में जो परिधि होती है उसको आकाश की कक्षा वा कक्ष्या कहते हैं। उसके बीच में परावह, परिवह, सुवह, सवह, उद्वह, नाम पांच वायु के स्थान क्रम से एक दूसरे से नीचे हैं। उस से नीचे नीचे स्थित पूर्वाभिमुख शनि, बृहस्पति, राहु, केतु मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध, चन्द्र ग्रहों से युक्त दक्षिण और उत्तर स्थित ध्रुव नाम दो तारों से बँधा हुआ नक्षत्र-चक्र सदा पश्चिम गति से प्रवह वायु के वेग से भ्रमण करता है उससे नीचे नीचे क्रम से सिद्ध, विद्याधर, मेघ विद्युत्, आदि से युक्त सदा उत्तरगामी आवह नाम वायु फिरती है। इस ब्रह्माण्ड के मध्य में चारों ओर ईश्वर की धारणात्मिका शक्ति द्वारा भूगोल शून्य नाम आकाश में स्थित है। पृथ्वी के अंतर्गत नाग, असुर संयुक्त दिव्य ओषधि रस युक्त रम्य पाताल, रसातल, महातल, तलातल, सुतल, वितल, अतल नाम एक एक के ऊपर सातों पाताल के स्थान हैं। सुमेरु पर्वत के ऊपर शून्य स्थान में एक ध्रुव तारा भ्रमण करता है। इसी प्रकार वडवानल के ऊपर शून्य में दूसरा ध्रुव तारा भ्रमण करता है। इनको उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव कहते हैं।

अंग्रेजी सिद्धान्तानुसार ग्रहों का पारस्परिक मान

आर्य हिन्दुओं ने सूर्य चन्द्र भौम बुध गुरु भृगु शनि सात ग्रह माने और उनके साथ राहु केतु उपग्रह लगाकर ९ ठहराए और इन्हीं के गणित से तिथि वार नक्षत्र पक्ष मास ऋतु अयन नाना प्रकार के वर्ष संवत्सर आदि का मान अर्थात दौर ठहराया और तिथि त्यौहार यज्ञादिक सूर्य चन्द्र ग्रहण प्रभृति के समय हज़ार दो हज़ार वर्ष पहिले से लिख रक्खे और अब भी पहिले से पञ्चाङ्ग बना रक्खा करते हैं जिनमें बिरले ही अंतर पड़ता है। यह सब वह लोग साधारण रीति से करते रहे हैं अब उत्तमोत्तम दूरदर्शक और सूक्ष्मदर्शक तथा ऐसे ही और नाना प्रकार के यंत्रों की सहायता से आधुनिक अंग्रेज़ फ्रेंञ्च, जर्मन आदि ज्योतिषी कमाल कर रहे हैं। उन्होंने अपने मतानुसार सूर्यादि ग्रहों के बहुधा मान निश्चय किये हैं जिनमें से थोड़ा दिग्दर्शनवत् यहाँ लिखा जाता है।

* लखीमपुर निवासी पंडित बदरीनारायण मिश्र सीतापुर में डिप्टीइंस्पेक्टर थे। आप बड़े विद्याव्यसनी थे, और विशेषतः ज्योतिष् विज्ञान से आपको ऐसा प्रेम था कि नक्षत्रों के दर्शन में रात रात बिता देते थे। आपके लिखे ज्योतिष्-विषयक दो ग्रंथ परिषद् को उनके सुपुत्र पं० मुरलीधर मिश्र, बी, ए, एल्,-एल्, बी, वकील से प्रकाशनार्थ मिले हैं। एक का नाम 'खगोल दर्शन' है। उसी ग्रंथ के कुछ अंश सम्प्रति हम पाठकों को भेट करते हैं।

सम्पादक

उन पश्चिमी ज्योतिषियों ने १०० के लगभग छोटे बड़े ग्रह निश्चित किये हैं उनमें से निम्न लिखित क्रमानुगत मुख्य हैं। जो हम किसी बड़े मैदान में नक़शा बनावें और उसमें इस अपने वृहत्काय सूर्य प्रजापति को जिसकी परिधि २६७१००० मील है और जिसमें पृथ्वी के से १४०५००० गोले समा सकते हैं दो फ़ीट व्यास का गोला बनाकर स्थापित करें तो

बुधि को २२ फ़ीट दूरी पर सरसों के समान,
शुक्र को १४२ फ़ीट पर मटर के समान,
पृथ्वी को २१५ फ़ीट पर कुछ बड़े मटर के समान,
मंगल को ३२७ फ़ीट पर बड़ी पिन के सिर के समान,
मंगल के अनन्तर छोटे छोटे ग्रहों को ५०० से ६०० फ़ीट तक की दूरी पर बालू के कणों के समान,
गुरु को ११२० फ़ीट पर २$\frac{१}{२}$ इंच व्यास की नारंगी के समान,
शनैश्चर $\frac{२}{५}$ मील की दूरी पर २ इंच व्यास की नारंगी के समान,
यूरेनस ६ फ़रलांग पर बड़े शाहदाना व विलायती मको के समान,
नेपच्यून १० फ़रलांग पर आवँले के समान रक्खें। इस पैमाने के अनुसार, न कि वास्तविक गणित के अनुसार, सब से निकट वाला स्थिर तारा ७५०० मील पर स्थापित करना चाहिए।

अंग्रेज आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों का कमाल

ग्रहों की दूरी का संबंध

जब ज्योतिषियों ने सूर्य का अन्तर अन्यग्रहों से गणित करके निश्चत किया, बोड नामी ज्योतिषी ने देखा कि मंगल और गुरु के बीच का अंतर उस अंतर की अपेक्षा जो और ग्रहों के बीच में पड़ता है बेहिसाब ज़्यादा है। उसने मंगल और गुरु के मध्य में एक ग्रह के होने का अनुमान किया क्योंकि उनके अन्तर का अनुमान अगर हम सूर्य से पृथ्वी के अन्तर को १० कल्पना करें तो बोड साहब के सिद्धान्तानुसार निम्न प्रकार होगा।

बुध	४ = ४
शुक्र	७ = ४ + ३
भू	१० = ४ + ३×२
भौम	१६ = ४ + ३×२×२
	२८ = ४ + ३×२×२×२
गुरु	५२ = ४ + ३×२×२×२×२
शनि	१०० = ४ + ३×२×२×२×२×२
	१९६ = ४ + ३×२×२×२×२×२×२
	३८८ = ४ + ३×२×२×२×२×२×२×२

सो ऊपर का हिसाब देखने से भौम और गुरु के बीच जगह ख़ाली पड़ती है। उस स्थान पर ग्रह को ढूँढ़ने लगे तो पियजी नाम इटालियन ज्योतिषी ने सीरीस ग्रह को ढूँढ़ निकाला पर ठीक स्थान से कुछ हटा था। दूसरों ने यत्न किया और पैलास, जूनो, वेष्टा ढूँढ़ निकाले फिर तो लोगों का हौसला बढ़ा और गड्डु के गड्डु ग्रह निकल पड़े जिनकी संख्या १०० ठहरी, वरन अब तो ७०० तक पहुँची है। इसी प्रकार खोज करते करते हर्शेल साहब ने १३ मार्च सन १७८१ को शनि से परे एक और ग्रह ढूँढ़ा और उसका नाम यूरेनस रक्खा जो यूनानी पुराणों में शनि का बाप कहा जाता है। यह सूर्य के गिर्द ८४ वर्ष में १ चक्कर पूरा करता है। अब यूरेनस की गति आदि का हिसाब होने लगा तो कुछ विरोध दिखाई पड़ा जिसका हिसाब करने पर सिद्धान्त हुआ कि कहीं कोई ग्रह छिपा पड़ा है। निदान १३ सितंबर सन १८४६ में नेपच्यून को ढूँढ़ निकाला। यह सूर्य के गिर्द १६४$\frac{३}{५}$ वर्ष में एक चक्कर पूरा करता है। यहाँ तक ग्रहों की फ़िहरिस्त पूरी हुई, पर कौन कह सकता है कि नेपच्यून से परे अब कोई ग्रह बाक़ी नहीं रहा।

आर्य हिन्दू ज्योतिषियों का कमाल

भारतीय और युरोपीय मतानुसार ग्रहों का भ्रमणकाल

यह बात तो निर्विवाद है कि अंग्रेज़ आदि पाश्चात्य ज्योतिषियों ने कई सौ वर्ष से दूरबीन खुर्दबीन आदि बहुत से यन्त्र ईजाद किये हैं और जो हज़ारों लाखों रुपयों की लागत से तैयार होते हैं। उनकी सहायता से ऐसे कमाल करते हैं जिन्हें देख सुन कर अक्ल दंग हो जाती है। पर आर्य हिन्दुओं ने भी अपने समय में जिसका पता तक नहीं लगता ज्योतिष में कुछ ऐसी ही उन्नति की थी और जहां तक जाना गया है उनके पास ऐसे उत्कृष्ट यन्त्र नहीं थे। उनके पास होंगे तो वही कौड़ी पैसों के मोल के होंगे जिनको वह सहज में बना लेते थे। उन्हीं की सहायता से अथवा ख़ाली आंख से वरन् यों कहना चाहिए कि अपनी प्रबल दृष्टि, दिव्य दृष्टि से खगोल का गणित कर डाला और अपने तौर पर ग्रहों और नक्षत्रों की दूरी और मान और गति निश्चित कर ली जिसका एक छोटा सा उदाहरण यह है कि उनके निकाले सूर्य और चन्द्र ग्रहणों में एक पल का अन्तर नहीं पड़ता। उनकी कुशलता निम्नलिखित तालिका से पायी जायगी जिसमें भारतीय और युरोपीय मतानुसार ग्रहों के भ्रमण का मिलान किया गया है।

	सूर्यसिद्धान्तानुसार भ्रमणकाल			युरोपीय सिद्धान्तानुसार भ्रमणकाल		
	दिन	दंड	पल	दिन	दंड	पल
बुध	८७	५८	१०	८७	५८	६
शुक्र	२२४	४१	५५	२२४	४२	२
पृथ्वी	३६५	१५	३२	३६५	१५	२२
मंगल	६८६	५६	५१	६८६	५८	४६
गुरु	४३३२	१६	४४	४३३२	३५	५
शनि	१०७६५	४६	२	१०७५०	१३	१०

सूर्य सिद्धान्तानुसार अगस्त्यादि नक्षत्रों की स्थिति

	अगस्त्य	मृगव्याधः	हुतभुक	ब्रह्महृद	सप्तर्षितारा
		काल पुरुषः			
राशिः	३	२	१	१	१
भागः	०	२०	२२	२२	१
कलाः	०	०	०	०	३
अपक्रमः	६०	४०	३८	३३०	५
भागाः	द.	द.	द.	द.	उ०
	पुनर्वसौ	आर्द्रायाम्	रोहिण्याम्	रोहिण्याम्	कृत्तिकायाम्

ऊपर के लेख से ऐसा अनुमान होता है कि जिस समय सूर्य सिद्धान्त की रचना हुई है उस समय ऐसी स्थिति थी। आकाश अवलोकन से अगस्त्य मृगव्याध की स्थिति वही प्राचीन है। श्री मद्भागवत में लिखा है कि श्री शुकदेव जी ने भागवत कथा सुनाते समय महाराज परीक्षित को बतलाया था कि तुम्हारे जन्म समय में तथा आज कल सप्तर्षि का उदय मघा में है और जब पूर्वाषाढ़ में प्रवेश होगा उस समय मगधदेश में नन्दवंश राज्य करेगा अर्थात् हज़ार वर्ष की होनहार बात कह दी थी। वह लोग धन्य थे। इस पर आधुनिक समय के लोग विश्वास नहीं कर सकते बल्कि उससे अर्थ यह निकालते हैं कि श्री मद्भागवत की रचना नन्दवंश के बीत जाने पर हुई होगी, अस्तु। मनुष्य अपनी

बुद्धि की पहुँच तक हिसाब लगाता है और जहां उसकी बुद्धि नहीं पहुँचती मिथ्या ही मानता है।

एक नया संवत्

[ले०—अध्यापक हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम्. ए.]

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास से परिचय रखनेवालोंको यह बात भली भाँति विदित है कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के अनेक राजाओं ने अपने निजके भिन्न भिन्न शक या संवत् (Era) चलाये थे। युधिष्ठिरसे लेकर शिवाजी तक के समय में दस पन्द्रह तो प्रसिद्ध ही हैं। प्रायः प्रत्येक बली राजा ने अपने नाम से नया संवत् चलाया और पहले संवत् को मेटने की चेष्टा की। पर अंत में आज तक विक्रम संवत् और शालिवाहन शक दो ही बचे हुए हैं। ये भी बेचारे किसी प्रकार अपनी स्थिति बनाये हुए हैं और यदि भारतवासियों का ऐसा ही दुर्लक्ष इनकी ओर बना रहा तो ये भी अपना चार्ज ईसवी सन् को देकर भारत से चल बसेंगे।

इतने भिन्न संवतों अथवा शकों का ज्ञान होते भी, प्राचीन लेखों पर विचार करनेवालों को कई लेखों का काल निर्णय करने में कठिनाई ही पड़ती है। बहुतेरे लेखों पर केवल वर्षसंख्या ही लिखी रहती है, पर कालगणना का नाम न होने से उनका काल ठीक रीति से निश्चत नहीं हो सकता। खरोष्ठी लिपि में ऐसे अनेक लेख हैं जिन पर वर्षसंख्या विद्यमान है पर कालगणना का नाम ही नहीं। बड़े बड़े विद्वानों के इन विषयों पर वादविवाद होते हैं, यहाँ तक कि एक कनिष्क राजा का काल निर्णय करनेके लिए ग्यारह बड़े बड़े पंडित लड़ रहे हैं। और उसे ईसा के पूर्व ५७ वर्ष से ईसवी तीसरी सदी तक अपनी अपनी ओर खींच रहे हैं।

इस स्थिति में ही एक नये संवत् का आविष्कार हुआ है। पुरातत्व विभाग के मुख्याधिकारी डा. मार्शल को तक्षशिला में एक चाँदी के पत्र पर खुदा हुआ लेख मिला। लेख खरोष्ठी लिपि में है जो कि फ़ारसी अरबी की भांति दाएं से बाएं को लिखी जाती है, लेख का आरंभ यों है:—"स. १००, २०, १०, ४, १, १ अयस अषडस मसस दिवसे १०, ४, १ इश दिवसे—" इत्यादि। मार्शल साहब ने इसका अनुवाद यों किया है:—"In the year 136 of Azes, on the 15th day of the month of Ashadha—on this day—" अर्थात् आप Azes (अय) को एक नये संवत् का प्रवर्तक मानते हैं। अन्य प्रमाणों से आपने अय का समय ईसा से पूर्व ५७–५८ साल के लगभग ठहराया है और यह ध्वनित किया है कि संभवतः मालव (विक्रम) संवत् इसीने प्रचलित किया था।

इसमें संदेह नहीं कि अय और Azes दोनों एक ही व्यक्ति के नाम हैं। क्योंकि ऐसे दो राजाओं के सिक्के पाये जाते हैं जिन पर खरोष्ठी में अय और ग्रीक लिपि में Azes नाम लिखे हैं। अर्थात् 'अयस' का 'अयस्य' का अपभ्रष्ट रूप मानकर, उसका संबंध संवत् से लगा कर मार्शल साहब ने पूर्वोक्त अर्थ निकाला है। पर ऐसी षष्ठी का संबंध प्रायः पिछले वर्ष से नहीं लगाया जाता वरन् राज्ये शब्द उसके पश्चात् अध्याहृत कर 'उसके राज्य में' यह अर्थ किया जाता है और इसी आधार पर मि० F. W. Thomas साहब ने डा० मार्शल के इस अर्थ पर आक्षेप किया है। परंतु आप उसका समाधान करने वाला दूसरा अर्थ न कर सके। आपने 'अयस' को 'इयस' मानकर 'इस' अर्थ किया है जो कि हृदयंगम नहीं होता है।

डा० फ़्लीट ने अयस को वियस पढ़े जाने की चेष्टा की है और विय (विय = द्वितीय) अर्थ करके 'दूसरे आषाढ का' अर्थात् 'अधिक आषाढ का—' अर्थ किया है। पर जहाँ तक मुझे ज्ञान

है, 'विय' शब्द अधिक आषाढ़ के अर्थ में लग नहीं सकता। अधिक आषाढ आषाढ से पहिले (पूर्व) होगा क्योंकि अधिक मास को पूर्व मासका नाम दिया जाता है नकि उत्तर मास का। और इस स्थिति में यदि अधिक शब्द छोड़ अन्य कोई शब्द आषाढ के लिए लगाया जा सकता है तो वह 'पहले' शब्द होगा नकि 'दूसरे'। पहला आषाढ अधिक आषाढ होगा और दूसरा आषाढ वास्तविक आषाढ होगा जिसके लिए किसी विशेषण की आवश्यकता नहीं। इसलिए डा० फ्लीट की भी व्याख्या मानी नहीं जा सकती।

अय को शक प्रवर्तक मानने में डा० फ्लीट तथा टामस साहब ने एक और भी आक्षेप किया है; वह यह है कि इस लेख में अय शकके पहले कोई उपाधि नहीं है। महाराज, राजाधिराज इत्यादि शब्दों से शक कर्ताओं के नाम प्रायः अलंकृत रहते हैं। पर यहाँ वैसी कोई उपाधि न होने से भी आपके विशेष नाम मानने में बाधा है। पर इसका उत्तर जो मार्शल साहब ने दिया है उचित प्रतीत होता है। आपने स्वयं ही यह शंका उपस्थित कर उसका समाधान यों किया है कि १३६ वर्ष चलने से जिसका संवत् प्रसिद्ध हो गया उस राजा के केवल नाम लिखे जाने में कुछ बाधा नहीं है। इसके विरुद्ध डा० फ्लीट साहब ने फिर आक्षेप किया है कि इस प्रकार शक प्रवर्तक राजाओं के नाम शक से संबद्ध नहीं पाये जाते। परंतु इस कथन में कुछ सार नहीं है। यह बात सब लोगों पर विदित है कि विक्रम तथा शालिवाहन के नाम संवत् या शक से संबद्ध रहते हैं। डा० फ्लीट का यह कथन कि विक्रम तथा शालिवाहन काल्पनिक राजाओं के नाम हैं, इस विषय में प्रमाण नहीं माना जा सकता, क्योंकि डा० फ्लीट यद्यपि इन्हें काल्पनिक समझते हैं, परन्तु लेखों पर इनके नाम लिखनेवाले इन्हें काल्पनिक नहीं समझते थे।

तीसरा आक्षेप जो डा० फ्लीट ने अय के शक प्रवर्तक मानने में किया है वह यह है कि अन्य कई स्थानों में भी राजाओं के नाम षष्ठ्यन्त पाये जाते हैं, पर वहां पर इनका संबंध संवत् से न लगाया जाकर राज्य से लगाया जाता है। यही आक्षेप टामस साहब ने भी किया है जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। इन सब उदाहरणों में राजा का नाम आरंभ में आता है और बाद को वर्ष का, यथा 'महाराज्ञो वासुदेवस्य ८० वर्षे' 'राज्ञो महाक्षत्रपस्य रुद्र वर्मणो ७२ वर्षे,' 'महाराजाधिराजस्य श्री कुमार गुप्तस्याभिवर्द्धमान विजयराज्य संवत्सरेषण वर्ते' इत्यादि, इत्यादि। यहां पर अयस शब्द प्रथम नहीं बाद को आया है। इस प्रकार वर्ष के बाद और महीने के पहले राजा का नाम एक और भी लेख में पाया जाता है। इस में 'संवच्छरये अठसततिमये २०, २०, २०, १०, ४, ४, महरयस महंतस मोगस पसमस नसमेदिवसे पंचमे ४, १' लिखा हुआ है। और यदि एक जगह अयस शककर्ता माना जाय तो दूसरे में भी मोग को शककर्ता मानना पड़ेगा। इसीसे डा० मार्शल दोनों को शककर्ता मानते हैं। और इस प्रकार दो शक और स्थापित करते हैं। मोग का शक तो गार्डनर, कानिंघम आदि युरोपीय विद्वानों ने तथा डा० भगवान् लाल इन्द्रजी ने भी माना था पर बीच में वह माना नहीं जाता था। मार्शल साहब के इस आविष्कार से अयका नूतन शक माना जायगा और मोग भी फिर से मान्य होगा।

परंतु इन दोनों शकों का आरंभकाल जो मार्शल साहब ने निश्चित किया है, शुद्ध नहीं जान पड़ता। मोग शक का आरंभ काल आप लगभग ६५ ईसा से पूर्व मानते हैं और अयका लगभग ५७ ईसासे पूर्व। पर यों आरंभ काल मानने में यह आपत्ति पूरित बात निकलती है कि ७८ मोग संवत् में अर्थात् ६५-७८ = १७ खीष्ट पूर्व मोग काल भी प्रचलित

था तथा अय काल भी प्रचलित था। दोनों शकों को यदि भिन्न भिन्न लोग मानते तो बात दूसरी थी, जैसा कि आज भी उत्तर हिंदुस्तानमें विक्रमसंवत् और दक्षिण में शक वर्ष माना जाता है; पर दोनों का एक ही जगह (तक्ष शिला में) और एक ही वंश के लोगों में माना जाना ठीक प्रतीत नहीं होता। इसलिए अय तथा मोग दोनों के राज्यकाल में कम से कम '७८+१७ अंतर मानना अपरिहार्य है, केवल ज्ञात प्रमाणों से यह निश्चत नहीं किया जा सकता। पर संभव है कि कभी कोई ऐसे लेख वा दूसरे प्रकार के प्रमाण मिलें जिन से इन बातों का ठीक निश्चय हो जाय।

अंत में मार्शल साहब का यह ध्वनित करना कि ईसासे पूर्व ५७ से जिस संवत् का आरंभ होता है, वह अयका प्रचलित किया हुआ है, सर्वमान्य कभी नहीं हो सकता। मालव संवत् केवल मालवे ही में चलाया गया था। यह बात 'मालवानां गणस्थित्या, 'मालव गणस्थितिवशात्' 'मालव गणाम्नाते' इत्यादि पदों से सिद्ध है। मालव लोगों ने एक प्रकार का प्रजासत्ताक राज्य (गण) स्थापित किया था और तभी से यह संवत् चला। इसके विरुद्ध कोई प्रमाण न होने पर यह नहीं माना जा सकता कि संवत् अय तक्षशिला में चलाया, मालव लोगों ने उसे स्वीकार किया और अपने ही नाम उसे मढ़ दिया। यदि इस विषय में पर्याप्त प्रमाण पाये जाँय तो बात दूसरी है। पर जबतक प्रमाण नहीं पाये जाते, तब तक इस बात को कोई नहीं मान सकता। केवल इतना माना जा सकता है कि अनेक ज्ञात संवतों में एक और संवत् की संख्या बढ़ी।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

संसार की लिपियों में गति भेद

और उसके कारण का अनुमान

[ले० नरेंद्र देव एम० ए०]

भिन्न भिन्न लेखनशैलियों की किस प्रकार उत्पत्ति हुई ? कोई लिपि दाहिनी ओर से बाईं ओर को (जैसे अरबी) कोई बाईं ओर से दाहिनी ओर को (जैसे देव नागरी) और कोई ऊपर से नीचे (जैसे चीनी) क्यों लिखी जाती है ?

यह प्रश्न बड़ा चित्तरंजक है परन्तु इसकी ठीक ठीक पक्की विवेचना करना यथार्थ साधन न होने के कारण असंभव है। ऐसी अवस्था में केवल ऐसे निरूपण की कल्पना की जा सकती है जो अधिकतर संभव और सन्तोषप्रद हो।

प्रथमतः यह स्पष्ट है कि ये प्रभेद आकस्मिक नहीं हैं और न किसी क्षुद्र तथा एक देशीय कारण के फल हैं। कारण यह है कि यह प्रभेद प्राचीनतम मानवजाति के बड़े बड़े सभ्य विभागों में पाये जाते हैं। जो जातियां अपनी सामान्य आद्य सभ्यता के कारण आर्य कहलाती हैं उनकी लिपि बाईं ओर से दाहिनी ओरजाती है। मेसोपोटेमिया की जातियां जिन्होंने अपनी सभ्यता चैल्डिया देशवासियों से पायी है दाहिनी ओर से बाईं ओर लिखती हैं। मंगोल जाति की लिपि ऊपर से नीचे को जाती है।

दूसरी बात ध्यान में रखने योग्य यह है कि किसी निरूपण की संभावना नहीं है यदि हम इस दृष्टि को स्वीकार करें कि लेखन कला मानव जाति के इतिहास में अपेक्षया एक नूतन सृष्टि है और सब प्राचीन जातियों ने एक ही प्रभव से इसकी शिक्षा पायी है; उदाहरणके लिए यदि हम मान लें कि भिन्न भिन्न लिपियों की उत्पत्ति मिश्र देशकी चित्रलिपिसे हुई है जिसका प्रचार फ़ोएनीशिया के सौदागरों द्वारा समस्त

भूमंडल पर हुआ तो इस दृष्टि के विरुद्ध हमको यह मान लेना पड़ेगा कि इन प्रभेदों का विकास बहुत प्राचीन काल में हो गया था जब कि वृहद सभ्यताओं की रचना हो रही थी और भिन्न भिन्न जातियां एक दूसरे से पृथक नहीं हुई थीं।

इसमें संदेह नहीं कि लिखने का सार्वलौकिक व्यवहार सभ्यता के आधुनिक युग के इतिहास में विलंब से हुआ है, और इस विलंब के दो कारण हैं। प्रथमतः किसी सरल तथा सुगम पद्धति का अभाव, पश्चात् साधारण तथा सुलभ परन्तु स्थायी लेखनसामग्री का अभाव। जब तक यह अवस्था रही, जब तक लिखने के सुलभ साधन मनुष्यको अप्राप्य रहे तब तक साधारण तथा दैनिक कार्यों के लिए लिखने का प्रयोग नहीं हो सकता था। केवल विशेष धार्मिक कर्मों के संबंध में तथा जहां सभ्यता लौकिक दृष्टि से अधिक उन्नत थी वहां आवश्यक लेख अथवा संग्रहीत धार्मिक ज्ञान को सुरक्षित करने के लिए लेखन का प्रयोग संभव था।

अतः जिस प्रश्न की उपपत्ति की हमको आकांक्षा है उसके लिए हमको ऐसी स्थिति की ओर ध्यान देना होगा जिसका धार्मिक आचार और विचारोंसे घनिष्ट संबंध हो और यह स्थिति ऐसी होनी चाहिए जो इन समस्त सभ्यताओं में सामान्य होते हुए भी इस अलौकिक भिन्नता के उत्पादन की योग्यता रखती हो। सूर्य की उपासना तथा धार्मिकोत्सवों में सूर्य का प्राधान्य एक ऐसी विशेष परिस्थिति है जो प्राचीन राष्ट्रों के आचार तथा विचारों में समान रूप से पायी जाती है। क्या यह नहीं हो सकता कि सूर्य की दैनिक गति के संबंध में भिन्न भिन्न जातियों के विशेष भावों के कारण लेखन प्रकारों में यह प्रभेद उत्पन्न हो गया हो?

इन भावों की पारस्परिक भिन्नता ठीक ठीक तभी समझ में आ सकती है जब हम मान लें कि किसी कारणवश आर्य पूर्वजों का मुख दक्षिण ओर था, मेसोपोटेमिया निवासियों का उत्तर की ओर तथा मंगोल जातियों के पूर्वजों का पूर्व की ओर था, ऐसी दशा में आर्यों के लिए सूर्य की गति उनकी बाईं ओर से दाहिनी ओर होगी, मेसोपोटेमिया की जातियों के लिए सूर्य की गति उनकी दाहिनी ओर से बाईं ओर और मंगोल जातियों के लिए सूर्य का गमन सीधा उनकी ओर होगा। इन प्राचीन लिपियों के लिए लेखन के जिन उपकरणों का प्रयोग होता होगा-यथा पत्थर वा अन्य कोई कठोर चिपटी वस्तु—उसी पर पवित्र चिन्हों को अंकित करते समय हाथ की गति द्वारा यह विभिन्नता दरसायी जाती होगी।

परन्तु प्रश्न यह उपस्थित होता है कि किस कारण से यह प्रभेद उत्पन्न हुआ। हम को इस विभिन्नता का एक ही कारण प्रतीत होता है वह यह है कि यह भाव अपने आदिम निवास स्थान से बारंबार देशान्तर जाने के समय उत्पन्न हो गये होंगे। यदि हम लोकमान्य म० बाल गंगाधर तिलक के इस मत को स्वीकार कर लें कि आर्य जाति ने उत्तरीय ध्रुव के प्रदेशों से दक्षिण भारतवर्ष, पारस तथा मेडीटरेनियन समुद्र के पार्श्ववर्त्ती देशों की ओर पयान किया था और इसके अतिरिक्त यदि हम मान सकते हैं कि मेसोपोटेमिया जाति के पूर्वज दक्षिण से उत्तर की ओर आये और मंगोल जाति को पहिली बार मध्य एशिया से पूर्व की ओर पर्यटन करना पड़ा तो हमको आवश्यक बातें मिल जाती हैं।

इस प्रकार चार दिशाओं के लिए जो संस्कृत शब्द हैं उनको भी हम समझ सकते हैं क्योंकि जब आर्य जाति ने पश्चिम से भारत में पदार्पण किया होगा और एक ही दिशा का अनुसरण किया होगा तब आर्यों के सम्मुख (पूर्व) पूर्व दिशा, पश्चिम दिशा पीछे और उनकी दहिनी

ओर दक्षिण दिशा रही होगी और 'उत्तर' (अधिक ऊंचा) कदाचित् उनके उस प्राचीन उत्तरीय निवासस्थान की स्मृति का सूचक हो जो पृथ्वी के उच्चतम भाग में था जहाँ वे अपने देवताओं के पवित्र पर्वत को निर्धारित करते थे।

इसमें सन्देह नहीं कि यह निरूपण अत्यन्त ही आनुमानिक तथा विशुद्ध तर्क पर आश्रित है। ऐसा निरूपण उपयुक्त तथा पर्याप्त साधनों के न रहते निरापद पथप्रदर्शक नहीं है तथापि यही एक निरूपण हमको सूझ पड़ा है और कल्पनारूप से यह विचार में लेने योग्य है॥

वैज्ञानिकीय

एक प्रकार के छोटे मेंढक होते हैं जो बिना शिरके भी जीते रह सकते हैं। यह सेलेमांडर जातिके 'नेकटुरस' कहलाते हैं और उत्तरीय एमरीकाके पूर्वीय भाग और केनेडामें पाये जाते हैं। इनके गले के पास चमड़ेकी लपेट शिकनदार होती है इसलिए इन्हें लोग रेखा-वाले सेलेमांडर भी कहते हैं।

एक बार किसी अध्यापकका इस प्रकारके बहुत से मेंढकोंके साथ अचानक ऐसा संघर्ष होगया कि जिससे कितने ही मेंढकोंके शिर कट गये। लेकिन कोई भी इन सिरकटोंमेंसे मरा नहीं, सब धीरे धीरे नियमित रूपसे बढ़ते रहे। यह अपना चारा पानी कैसे खाते थे इसका कुछ पता नहीं लगा। घाव इनके आप ही आप भर गये और इनकी वृद्धिमें कोई बाधा नहीं देखी गयी, मानो परमात्माने इन्हें बेसिरका ही प्राणी बनाया हो। शिर इनके फिर नहीं निकले परन्तु नये अधोएड (gills) सांस लेने के लिये उग आये थे।

एक और बड़े अचम्भेकी बात मह मालूम हुई कि शिर बिहीन होनेसे नेत्र विहीन होते हुये भी यह मेंढक प्रकाशमें वैसे ही सारे आचरण करते थे जैसा कि शिरवाले करते थे। इससे सिद्ध होता है कि इन मेंढकोके चमड़ेमें कोई ऐसा भान (sense)है जिसके द्वारा प्रकाशका प्रभाव बिना आंखके ही ऐसा पड़ता है जैसा आंख वालों पर। यह गुण, हम समझ सकते हैं, कि मेंढकोंकेलिए कितना लाभ दायक है विशेष करके उस दशामें जब कि यह अपना शिर अँधेरेमें छिपाये पड़े हों और इनका शत्रु इनका शरीर देख सकता हो। इस अपूर्व इन्द्रिय ज्ञानके प्रतापसे यह शत्रुके आक्रमण करनेपर छिपकर बच सकते हैं।

छोटे छोटे जन्तुओं को परमात्माने आघात और चोट सहन करनेकी कितनी शक्ति दी है इसका अनुमान करना बहुत कठिन है।

केकड़े व घोंघे अपने बड़े पंजोंको त्याग सकते हैं और फिर नये पंजे उग आते हैं। छिपकली पूंछ काटलेनेपर भी भाग जाती है। तारिका मछली को टुकड़े २ कर डालो तो हर एक टुकड़ा एक नयाही तारिका मत्स्य बन जाता है यही हाल हमारे देशके बरसाती कचुओं का है, इन्हें बीच से काट दो तो दो कचुए हो जाँयगे।

छोटे जन्तु बहुत कुछ पेड़ पौदोंके ही समान होते हैं। पेड़ों व पौदोंमेंसे हम टहनी या कलम काटकर लगाते हैं और नया वृक्ष तय्यार हो जाता है। ऐसा ही हाल अनेक छोटे छोटे जीवोंका भी है। परमात्माने इन्हें समुन्नत और अच्छी तरह बने हुए मस्तिष्कके बदले अपने प्राण रक्षाकेलिए यह शक्ति प्रदान की है। जितना अधिक समुन्नत और संगठित मस्तिष्क होता है उतना ही प्राणी आघातोंके सहन करनेको अयोग्य होता है।

गोकुल जी

* * * * *

लगभग दस लाख आवाल वृद्ध प्रति दिन बिलायती कोयले की खदानों में काम करते हैं और अनुमान सौ मनुष्य प्रति दिन घायल

होते हैं। कुच्छ लोग तो बहुत ही बुरी तरह से घायल होते हैं। जैसा कि गत वर्ष 'सेनघेनेड' में हुआ कि ४३९ मनुष्यों के प्राण एक दम गये। कोयले के लिये प्रति वर्ष १५०० जानें जाती हैं, और लगभग २५७,००० के ऊपर प्राणी घायल होते हैं। यह संख्या ऐसी ही है जैसी हम लोगों को बड़ी बड़ी लड़ाइयों में देखने में आती है। जब कोयले की खदान में वास्तविक इनती मृत्यु संख्याकी ओर ध्यान जाता है तो कलेजा काँप उठता है। सब से बुरी घटनाएँ खानों में गैस के जल उठने और शब्द करते हुए फूट निकलने से होती हैं। प्रधानतः इस प्रकार की घटना कर्दम वायु के भभक उठने से होती है। जिस का कि वैज्ञानिक नाम मीथेन (methane) है। यह कर्दम वायु ऐसी है जिस को कि न हम देख सकते न सूंघ कर मालूम कर सकते हैं, यदि यह वायु में थोड़ी सी भी हो तो कोयले के गढ़ों में प्राण घातक शब्द करती है। किसी विद्युत लम्प के टूट जाने और कारतूस के फूट पड़ने से या अकस्मात बिजली के तार के चमक उठने से खान में ठीक उसी प्रकार की घटना हो जाती है जैसी कि चलाते समय मोटर गाड़ी की नली में कभी हो जाती है। मोटर की नली में सम्मिलित वायु और गैस एक ही चिंगारी के योग से ऐसे ज़ोर के साथ शब्द करते हैं कि गैस फैल कर पिस्टन को ढकेल पहियों को उलट देती है। अन्तर इतना ही है कि खान में घोर शब्द होने से धुरी को मोड़ने और पहियों को उलटने के बदले प्राणी मरते हैं खानें नष्ट हो जाती और ग्रामों का व्यवसाय बरबाद हो जाता है। यह सब घटनाएँ घातक कर्दम बायु (Methane) के कारण ही होती हैं जिसका ठीक पता पहले से नहीं लगता आर यदि पता लग भी गया तो कोई उसकी खबर खान के संरक्षक के कानों तक ही नहीं पहुंचा पाता।

राधानाथ टण्डन

विज्ञान भी कैसा बड़ा बल है जिसके जोर से यह घातक वायु जिसको कर्दम वायु अथवा 'मिथेन' कहते हैं अन्ततः वश में आही तो गयी। अभी थोड़े दिन की बात है कि अलफ्रेड विलियम (Alfred William) नामक एक चतुर वैज्ञानिक ने एक बड़ा अच्छा यन्त्र निकाला, जिससे इस वायु का पता पहले से ही लग जाता है। इस यन्त्र को मिथानोमिटर (Methonometer) कर्दमवायु मापक कहते हैं। इसका प्राधान हर्ता कर्ता एक तरह का धातु है जिसको कि स्पंजी (पोला) प्लैटीनम (Spongy platinum) या काला प्लैटीनम (Platinum black कहते हैं। साधारणतः यदि वायु ठंडी हुई तो काला प्लैटीनममीथेन का होना नहीं बतला सकता अतएव मिस्टर विलियम्स (Mr. Williams) ने कोई ऐसा उपाय किया है कि जिस से थोड़ी से थोड़ी कर्दम वायु भी जहां यन्त्र में लगी कि काला प्लैटीनम (Platinum black) गरम हो गया और इस वायु की उपस्थिति का पता लग गया। ज्यों ही यह प्लैटीनम गरम हो जाता है त्योंही इस वायु की उपस्थिति बिजली के यन्त्र द्वारा मालूम हो जाती है। यह बात एक पतली सुई से जो एक अङ्कयुक्त पैमाने पर घूमती है मालूम होती है। यह यंत्र काम करने वालों के जेबों में या लम्प में कारखाने के भीतर लटका रहता है।

वह हर जगह ले जाया जा सकता है। यह यंत्र किसी ऐसी दीवार या छत्त में भी लगाया जा सकता है जहां कि यह बिजली के तारों से ऐसा सम्बन्ध रक्खे कि कर्दम वायु होने का संबाद स्वंयम खान के अफसर के कमरे में पहुंच जाय।

यह कर्दम वायु मापक ठीक उसी तरह संबाद देता है जिस तरह की उच्चताप-मापक (Pyrometer) अग्निकुंड में के ताप का समाचार लिखता है। जो सुभीता और आवश्यकता दीखे इसे घड़ी के अलार्म की तरह लगा लें तो यह यंत्र घंटी के घोर शब्द से खान के अधिकारियों को जता

सकता है कि खान में काम करने वाले जोखम में हैं तुम अपने कर्तव्य पर सावधान हो जाओ कभी कभी यह यन्त्र लम्प के तुरन्त जल उठने से लोगों को आने वाली आपत्ति से सावधान कर देता है। कर्दम वायु मापक को काम में लाने से अब हर एक खान में जहां कहीं विद्युत लम्पें काम में नहीं लाई जा सकती तेज़ रोशनी पैदा की जा सक्ती है। यह यन्त्र खदानों के सम्बन्ध में बड़े ही महत्व की चीज़ है क्योंकि बुरी रोशनी से न केवल घटनाएं हो जाती हैं पर बड़ी भयानक बीमारियां भी पैदा हो जाती हैं, जैसे की आंखों का इँठ जाना और बदन में दर्दों का पैदा हो जाना। बुरी रोशनी सहस्रों खानिकों के मानसिक और शारीरिक शक्तियों को बिलकुल नष्ट कर देती है इस यन्त्र के व्यवहार से अब खनिकों के अच्छे दिनआ गये। इस उपयोगी यन्त्र के आविष्कार से बड़ा ही काम निकला। प्रोफेसर एस० थामसन (Prof. Silvanus Thompson) ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है। उन्हों ने कहा है कि यह बहुत ही दृढ़ है सहज में बिगड़ और बरबाद नहीं हो सकता। दूसरे इसके भीतर किसी तरह की चिंगारी नहीं पैदा होती और न इस से किसी तरह के शब्द पैदा हो जाने का ही भय है। प्रोफेसर थामसन (Prof. Thompson) कहते हैं कि इस यन्त्र से न केवल वायु की उपस्थिति ही मालूम होती है प्रत्युत इसका परिमाण भी अच्छी तरह मालूम हो जाता है। यह यन्त्र (Petrol) पेट्रोल बनज़ोल,(benzols) ईथर और स्प्रिट (Spirit) की उपस्थिति में भी वैसा ही काम करता है जैसा की कर्दम वायु की उपस्थिति में। इसका प्रधान महत्त्व इस बात में है कि इसने उन लोगों के लिये जोकि पृथ्वी के भीतर का धन खोदने में लगे रहते हैं एक नया शाका आरम्भ कर दिया।

रा० टण्डन।

लन्दनके एक उद्योग शील कारखाने ने बे तार का तार सड़कोंपर चलानेका एक नया ही ढंग सोचा है। इसने एक गाड़ीपर वेतारके तार की कल लगा दी है और इसीपर माल लाद कर नगरमें जगह जगह पहुंचाता है। जब गाड़ी कामपर निकल जाती है और गाड़ीवान से कारखाने को कुछ कहना होता है तो इसी कलके द्वारा कह दिया जाता है। इस प्रकारके बेतारोंसे बड़ा लाभ हो सकता है। डाकृर जो रोगी देखने निकला हो, पुलिसका नौकर अपनी नौकरीपर हो और एक छोटी सी बेतार-की कल लिये हो तो बहुत काम निकाल सकता है। १० मील तक तो यह वेतार खूब काम देता है, यह अनुभूत बात है, पर हां, जहां बहुत बड़े बड़े सघन मकान होते हैं वहां काम में बाधा होती है क्योंकि लहरें रिसीवर तक नहीं पहुँच पातीं। रिसीवर उस यन्त्र को कहते हैं जिससे आई हुई खबर सुनी जाती है। देखें इस काम में कहां तक उन्नति होती है।

गोकुल जी

* * * *

एक जर्मन २४७७० फुट अर्थात् अनुमान ५ मील ऊँचा विमान लेकर उड़ा था, इससे अधिक ऊँचा अभी तक कोई उडांकू नहीं गया। इससे अधिक ऊँचे पर विमान जा भी नहीं सकता क्योंकि प्रथम तो हवा बोझ न सम्हालेगी दूसरे जीना भी कठिन होगा।

कई गुब्बारे वाले इससे अधिक उंचाई पर उड़कर गये थे, पर कई तो वेहोश होकर नीचे आये, कितनों ने मार्ग में ही हवाई समाधि लेली।

विमान का उडाँकू जो कहीं अचेत हो जाय तो विमान फिर नहीं सध सकता, कहीं न कहीं टकरा कर चकना चूर ही होगा।

गोकुल जी

——:o:——

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग १ | कर्क, संवत् १९७२। जूलाई, सन् १९१५। | संख्या ४

मंगलाचरण

रेल, तार, बेतार, एक्सरेरश्मि, रेडियम
फ़ोटो, फ़ोनो, अनुवीक्षण, द्रुत-अनुलेखन-क्रम
जल-थल-नभ-पथ सुलभ सरल सर्वत्र समागम
मोटर बायस्कोप, यंत्र-समुदाय अनूपम—
यह जिसकाअनुसंधान-फलअथवाआविष्कार है
उस पश्चिमीय विज्ञान का स्वागत सौ सौ बार है।

भीमताल
२८-६-१५.

श्रीधर पाठक।

—— ——

सभ्यता की पुकार

कुशलता की आवश्यकता

दिन, रात, सप्ताह, मास, ऋतु, वर्ष के सौ सौ हजार हजार बल्कि लाख लाख चक्कर हो गये, शताब्दी पर शताब्दी बीती जा रही है। सप्तर्षि एक नक्षत्र से दूसरे, दूसरे से तीसरे, तीसरे से चौथे, इसी तरह सारे भचक्र के चक्कर लगाते जाते हैं। परन्तु प्रकृति के इस बड़े घने जंगल में, इस गहन वन में सृष्टि की आदि से ही एक शब्द आ रहा है। शब्द किसी को पुकार रहा है, किसी को खोज रहा है।

पल पल बीत कर मिनिट होते हैं, मिनिट के घंटे, घंटे के दिन, दिनों के बरस, बरसों के युग बनते जाते हैं पर पुकारनेवाले को चैन नहीं; पल पल, छिन छिन वही टेर है, वही पुकार है। वह पुकार एक पुरुष के लिए है जो अपने काल अपने देश में सबसे उत्तम हो सबसे बड़ा हो और पुकारनेवाली संसार की उन्नति की माता "सभ्यता देवी" है।

पाठक! उस पुकार के उद्दिष्ट पुरुष तुम ही हो, तुम्हारे ही लिए वह पुकार है तुम्हारे भीतर जो अनुपम शक्ति, अपार बल, अपरिमित सामर्थ्य गुप्त है, उसी का ओर यह टेर है। उस देवी की पुकार सदा इसी शक्ति की ओर हुई है और हे शक्तिसागर! तुम सदा उसकी पुकार

सुनते आये और उसकी सुधि लेते आये हो। अब जो तुम अपने वर्त्तमान रूप में अपनी अपरिमित शक्ति को भूलके नरम नरम गुदगुदे पर्य्यंक पर बेसुध सोने देते हो तुमसे ही फिर टेर है कि सभ्यता देवी की पुकार सुनो।

यह पुकार सब देश और सब काल में आती है। वेद के मंत्रों में इसी पुकार का बीज है, पुराण इतिहास में इसी पुकार का उल्लेख है। यह द्वीप से द्वीप तक सुनाई देती है, महासागर से महासागर तक इसकी अमृतध्वनि गूंजती है। राजा से महाराजा तक और दीन से दीन प्रजा तक यह पुकार एकही स्वर में एकही भाव से सुन पड़ती है। और अनेक बार ऐसा हुआ है कि इस पुकार को किसी साधारण मनुष्यने ही सुना है। सभ्यताने किसी राह चलतू किसी लँगोटी बाँधने वाले किसी झोपड़ी में रहनेवाले को ही अनेक बार चुन लिया है। पाठक! यह न समझो कि यह पुकार हमारे लिए नहीं है, इसका जवाब 'बड़े' लोग देंगे। यह 'उत्तमों' के लिए है, हम तो अत्यन्त लघु हैं। " यह समझना भारी भूल है और घोर अन्याय है। वह शक्तिसागर जो तुम्हारी चोटी तलवे के बीच साढ़े तीन हाथोंमें बँधा दीखता है, इस अन्याय को नहीं सहेगा। ऐसा समझना आत्महत्या है। पाठक! आत्महत्या के दोषी न हो। सच मानो, पुकार तुम्हारे ही लिए है।

संसार में हिंसा बढ़ी, मनुष्यों में दया करुणा की मात्रा कम हुई। सभ्यता की पुकार को एक महा-वीर ने सुना और अहिंसा परमो धर्म्मः का जगत् में ढंढोरा पीट दिया। समाज में द्वेष पाखंड के दूर करने को सभ्यता की पुकार हुई। एक राजकुमार ने सुन लिया। सारे संसार को बुद्धि विवेक का अनुयायी बनाया। अध्यात्म विद्या का ह्रास देख सभ्यता की पुकार ने एक नवयुवक के हृदय में वह उमंग उठायी कि साक्षात् शिवशंकर हो सारे भारत में वेदान्त फैला दिया। सभ्यता की पुकार पर ही उसके सपूत खीष्ट ने जंगली असभ्य जातियों को दया और करुणा और प्रेम की शिक्षा दी। उसकी ही पुकार पर कोलम्बस उठ खड़ा हुआ और संसार की सीमा बढ़ाकर अमेरिका का मार्ग दिखाया। कालचक्र जो इस संसार चक्र को बड़े वेग से घुमा रहा है कभी उन्नति का पलड़ा एक ओर भारी रखता है और कभी दूसरी ओर। उस पुकार के हृदय-वेधी शब्दोंको सुननेवाले कभी एक देश में बहुतायत से होने लगते हैं और कभी दूसरे में।

सभ्यता ने प्रकाश चाहा और एक अख़बार बेंचनेवाले लड़के ने पुकार सुनी और बिजली की रोशनी निकाली। सभ्यता ने समय बचाने की गुहार लगायी और एक लेखक ने द्रुत लेखनविधि निकाली, एक ने तार निकाला, एक शिक्षक ने टेलीफोन बना डाला, एक कौतुकी ने फ़ोनोग्राफ ग्रामोफ़ोन बनाया, एक लड़के ने बेतार का तार बनाया, सारे संसार में छोटी छोटी बातों के लिए कलें बन गयीं। सभ्यता की गुहार सुन मनुष्य ने जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, आकाश पांचों तत्त्वों को मुट्ठी में ले अनेकानेक वस्तुएं बना डालीं, तत्त्वों पर विजय पायी।

यह पुकार सुननेवाले मनुष्य कौन थे? बड़े बड़े लोग थे? बेशक! थे नहीं पर बहुत बड़े हो गये। यह सभी छोटे लोग थे, ऐसे छोटे कि अपनी छोटी दशा में दुनिया के बड़े कहानेवालों की निगाह में दीन हीन थे, बराबर बात करने के योग्य नहीं थे, परन्तु जिस दिन उन्होंने सभ्यता की पुकार सुनी, ऐसे बड़े हो गये कि राजा महाराजा उनकी कृपा दृष्टि के लिए तरसने लगे।

सभ्यता की पुकार सुननेवाले एक नहीं, अनेक अनेक निकले। इनमें कोई भो दार्शनिक, शास्त्री, एम. ए., मौलवी नहीं था। राजा, नवाब, रईस कोई नहीं था। सभी साधारण लोग थे जैसे हम हैं, बल्कि हम से भी गये गुज़रे।

मनुष्य सभी बराबर हैं। सभ्यता ने करोड़ों बरस के अनुभवों में यह बात खोज कर निकाली है कि मनुष्यों पर सच्चा राज करने वाले रानियों के गर्भ से नहीं होते। मनुष्यों के हृदय पर विजय पानेवाले राज-पुत्र नहीं हुआ करते। मनुष्य के हाथ पैर आँख कान आदि इंद्रियों पर सच्चा राज करने वाले राज-कुमारियों के कोष से नहीं जन्मते। सच्चे राजा कभी कोयला ढोते कहीं अख़बार बेंचते कभी जिल्द बाँधते कहीं भीख माँगते कहीं खेत जोतते पाये गये हैं जिनका राज उनके मरने के बाद भी मनुष्यों के तन मन पर हजारों बरस तक बना रहता है। अपने चारों ओर आँखें फाड़ फाड़ देखो, कितने राजा अबतक राज कर रहे हैं। अकबर ने भारत पर बहुत दिनों तक अवश्य राज किया, परन्तु उससे पहले मनुष्यों का एक राजा गली गली टुकड़े माँगता फिरता था जो अकबर के समय से आजतक तुलसीदास के नाम से राज कर रहा है और सैकड़ों बरस तक राज करता रहेगा। अकबर (महान) मर गया मिट गया, पर तुलसी 'दास' अबतक गो 'स्वामी' (पृथ्वी के स्वामी) हैं।

मनुष्य सब बराबर हैं। सब मनुष्यों का हृदय उसी का मन्दिर है जो वस्तुतः सारी सृष्टि का राजा है। मनुष्य सारे विश्व का स्वामी है। छोटे से छोटा बड़े से बड़ा हो सकता है। कोई ऐसा छोटा ऐसा नन्हा ऐसा तुच्छ ऐसा अशक्त नहीं है जो सबसे बड़ा सबसे मान्य सबसे बलवान न हो सके। पाठक! तुम में सारी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं, तुम उनसे बे सुध हो। शक्तियाँ तुम्हारे हृदय में सो रही हैं, तुम चाहो तो उन्हें जागती शक्ति बना दो। तुमसे पहले जो हुए उन्हें अज्ञान के अंधकार में खोज खोज ज्ञान के स्वयंप्रकाश रत्न निकालने पड़े, तुम्हें उन रत्नों के प्रकाश का सहारा है, इस न बुझनेवाली ज्योति को हाथ में लो, सभ्यता की गुहार सुनकर उस अंधकार में प्रवेश करो जहाँ अनेक नये रत्न निकालनेको सभ्यता उकसा रही है। यह न समझो कि संसार ऐसी उन्नत दशा में है कि अब कोई नई बात निकालने को बाकी नहीं रही ; नहीं, यह वही भूल है जिसने अनेक पुकार सुननेवालों को बहकाया है। सवेरा हो गया, दिन चढ़ आया, तुम सो रहे हो। सभ्यता जगाती है कि उठो, सचेत हो, अपने राज्य की खोज करो, और तुम हो कि अँगड़ाइयाँ लेते हो और कहते हो "अब तो सब उठ चुके, सब काम कर रहे हैं, हमारे लिए क्या काम बचा है जो हम करेंगे, सो अब हम सोते ही रहें तो अच्छा" नहीं, नहीं, सभ्यता के प्यारे सपूतो! यह भूल है बड़ी भूल है, संसार में कोई वृथा नहीं आया है, सबका काम है सबको काम है औरोंका तुम्हारे कर्त्तव्यमें साझा नहीं अपना कर्त्तव्य तुम्हें ही करना होगा, अपना बनाना बिगाड़ना तुम्हारे ही हाथ है, फिर क्यों ऐसे बावले हो कि विश्वका राज्य छोड़ते हो, अपनी सच्ची सम्पत्ति से मुँह मोड़ते हो?

सात समुद्र तेरह नदी पार एक मनुष्य ने तुम्हारे लिए बड़ी सम्पत्ति छोड़ी है, तुमने यह समाचार सुना नहीं कि आकाश पाताल लगे एक करने, उस सम्पत्ति को हाथमें लानेके लिए लोटा थाली तक बेच ऋण ले किसी न किसी तरह तुम जाते हो कि उस बड़ी सम्पत्ति को हाथ में लाएं! शोक, शोक! कि संसारके सच्चे राजा, विद्वान और आविष्कारक लोग तुम्हारे ही लिए अमोल सम्पत्ति छोड़ गये हैं, उसके मालिक तुम्हीं हो पर तुम उस पर अपना क़बज़ा नहीं करते, तुम उसे हस्तगत नहीं करते, सारी सम्पत्ति के होते मारे मारे फिर रहे हो!

जो सम्पत्ति आर्य्यभट और भास्कर के हाथों नहीं लगी था, जो धन न्यूटन और बोइल

कोदुर्लभ था, वही सम्पत्ति वही धन तुम्हें मुक्त-हस्त देते हुए सभ्यता तुमसे बहुत बड़ी नज़र नहीं माँगती। सभ्यता बस इतना ही चाहती है कि तुम जिस संसार में रहते हो उसे भली भाँत जाने और उसमें जो कुछ करो उत्तम रीति से करो, यदि तुम रेल चलाते हो सिगनलों पर ध्यान रक्खो, यदि लेखक हो देखो कि लेख में भूल न हो, यदि तुम कारीगर हो ऐसा काम करो कि उत्तम हो, घड़ीसाज़ हो तो ऐसी घड़ी बनाओ कि ठीक ठीक समय बतावे, यदि बढ़ई हो और खिड़की बनाते हो ऐसे ठीक पल्ले लगाओ जो खड़खड़ न करें, सच्चे बन्द हों, थवई हो तो घर बनाने में हवा और धूप की उपयोगिता पर ध्यान रक्खो, किसान हो तो अच्छी पैदावार होने के सारे उपाय जानो और बरतो, बनिये हो तो मालके ऊँच नीच की पहचान हानि लाभ का पूरा हिसाब समझो, राजकर्म्मचारी हो तो राजनीति के सच्चे रहस्यों को समझो और यदि धर्म्मोपदेश तुम्हारा व्यवसाय है तो पहले अपने उपदेशों का सच्चा चित्र अपने चरित्र में ही उतारो। निदान, जिस देश में, जिस काल में, जिस अवस्था में जो कर्त्तव्य तुम्हारा निश्चित है उसका पूरा पालन करने की योग्यता रक्खो और पालन करो और अपने कर्त्तव्यों के सच्चे स्वामी बनो।

सभ्यता चाहती है कि तुम्हें किसी बात की खोज हो तो यह भी पहले से अच्छी तरह मालूम हो कि कहाँ कहाँ खोजने से ही पता लग सकेगा, जिसमें तुम व्यर्थ ही बेजाने प्रान्तों में मारे मारे न फिरो। यदि तुम्हें कोई काम सौंपा गया है तो उसे बिलकुल पूरा और अत्यन्त कुशलता से करो, जिसमें न आदि में अड़चन पड़े और न अन्त में गड़बड़ हो। सभ्यता गुहार लगा रही है कि जो काम करो अधूरा न करो। साथ ही काम के गड़बड़ाने पर कभी उस अमूल्य पदार्थ को खोकर दोहरी हानि न उठाओ जिसे लोग 'शान्ति' कहते हैं। अपना हृदय इतना गंभीर रक्खो कि थोड़ी सी वर्षामें उसमें बाढ़ न आजाय। बिगड़े हुए काम पर पराक्रमी पुरुष जितना लजाता है उससे भी अधिक लाज की बात उसे स्वभाव बिगाड़ लेना, चिड़चिड़ाना और क्रोध करना है। निदान, सभ्यता इसी चिन्ता में है कि तुम यह जान जाओ कि तुम्हारा जीवन किस लिए है और क्यों है और तुम यह जानकर अपने जीवन की सांस सांस को अमोल समझो और उसे अच्छे काममें लाओ जिसमें अपने मनोदेव के सामने बीते दिनों की कारगुज़ारी पेश करने पर तुम्हें अपना सिर नीचा न करना पड़े।

पल पल और छन छन पुकार आ रही है। एक एक करके इस धरती के सपूत अपनी अपनी बारी पर अपना अपना नाटक खेलने जा रहे हैं। न जाने कब किस की बारी आए। पाठक! क्या तुम तय्यार हो कि पांच मिनिट बाद तुम उसकी पुकार पर उठ खड़े हो और तुरन्त उसकी सेवामें सन्नद्ध हो सको? सभ्यता पुरुषों की खोज में हैं, क्या तुम उसके मनभाये पुरुष होने की योग्यता रखते हो, क्या तुम उस के चुनाव में आ सकते हो? काम करानेवाला नौकर रखने के पहिले चिट्ठियाँ और प्रशंसा पत्र देखता है। सभ्यता के लिए तुम्हारा चित्र तुम्हारा चरित्र बहुत है, क्या तुमने इस चुनावकी तय्यारी की है? सभ्यता के द्वारा हज़ारों आसरा लगाये खड़े हैं। सभ्यता उन सब के बीच से निकल जाती है, किसी पर निगाह तक नहीं डालती और उनमें बहुत कम उसे पहचानते हैं, हज़ारों में किसी एक पर उसकी निगाह पड़ गयी, उसे चुन लिया। क्या तुम उन हज़ारों उम्मीदवारों में हो? या अभी उम्मीदवारी में नाम भी नहीं लिखाया?

पाठक, सभ्यता की पुकार के सुननेवाले करोड़ में हो तो, लाख में हो तो, हज़ार में हो तो सौ में हो तो और दस में भी हो तो तुम्हीं

हो। इसी मिनिट से उसकी पुकार के लिए कमर कस लो और जिस किसी काम, धाम, पेशा, व्यवहार, व्यवसाय के हो झट पट उसमें कुशलता पाने को लग जाओ, एक पल भी व्यर्थ न जाने दो जब तक उस कर्त्तव्य के पूरे स्वामी न हो जाओ। इस कुशलता के लिए अपने कर्त्तव्य वाले विज्ञान के पारंगत हो जाओ जिसमें चुनाव के समय सभ्यता तुम्हारी ओर से मुँह फेर न ले और औरों की नाईं तुम्हारी उपेक्षा न करे। एवमस्तु।

—रामदास गौड़

डाँड़ी के अद्भुत खेल और उसका सिद्धान्त

तोलने की रीतियां

[ले० अध्यापक महावीरप्रसाद बी. एस-सी एल्. टी.,]

(अङ्क २ पृष्ट ५९ से आगे)

आर्कमितीश का सिद्धान्त बतलाते हुए यह कहा गया है न, कि ज्यों ज्यों वस्तुओं का परिमाण बढ़ता जाता है त्यों त्यों उनपर पृथ्वी की आकर्षण शक्ति बढ़ती जाती है? जो वस्तु पलड़े को लेकर नीचे चली जाती है उसका परिमाण दूसरे पलड़ेवाली वस्तु के परिमाण से अधिक होता है।

परन्तु तराज़ू में एक बड़ा भारी अवगुण यह होता है कि इससे थोड़े भार का कुछ पता नहीं चलता। कैंची ही को ले लो, यह पटरी से तौलने पर १०॥ एकन्नी भर होती है और तराजू से १० एकन्नी भर। अब इसमें से किसको ठीक माना जाय?

इस अन्तर का कारण यह है कि कैंची जिस तराजू से तौली गई है वह अनाज, नमक, मसाला इत्यादि के तौलने के लिए काम में आता है और इनके एकाध पैसा भर अधिक या कम होने से न तो गाहक और न ख़रीदार, किसी को हानि नहीं पहुँच सकती। जहाँ कहीं ऐसी वस्तुओं के तौलने की आवश्यकता होती है जो थोड़ासा भी कम बेश हो जाने से हानि पहुँचा सकती हैं वहाँ ऐसे तराजू प्रयोग ही नहीं किये जाते। सुनारों को देखा होगा कि वह चाँदी सोने की चीज़ों को तौलने के लिए "काँटा" रखते हैं। इससे रत्ती आधी रत्ती तक की चीज़ ठीक ठीक तौली जा सकती है। पंसारी भी कीमती चीज़ें जैसे इलायची, वंशलोचन, इत्यादि अथवा ऐसी चीज़ें जिनके यथार्थ भार की आवश्यकता होती है जैसे दवाइयाँ, ऐसे ही काँटों से तौलते हैं। इसकी बनावट इस चित्र से समझ में आजायगीः—

कांटे में सब बातें तराज़ू की तरह रहती हैं, केवल घुमाव-विन्दु पर इसमें कुछ भेद होता है, मामूली तराजू में जो आधा या चौथाई पैसे भर के अन्तर को नहीं मालूम कर सकते उसका कारण यह है कि ऐसे तराजू की डंडी से यह पता नहीं चलता कि डंडी किस समय धरातल के समानन्तर होती है अर्थात् यदि तोलमें ज़रा सी भी कमी वेशी हो तो डंडी के समानान्तर होने में ऐसा कम अन्तर होता है कि साधारणतः इसका पता कदापि नहीं चल सकता। यही ठीक ठीक मालूम करने के लिए काँटों के घुमाव पर एक बारीकी रहती है जिसका समझना बहुत आवश्यक है।

मकान बनाते हुए राजों को अवश्य देखा होगा कि वह अपने पास एक लम्बे दृढ़ सूतके डोरे के एक सिरे पर एक गोल पत्थर या लोहे का टुकड़ा बाँधे रहते हैं और यह परखने के लिए कि दीवाल सीधी ऊँचाई पर जा रही है, नई ईंट रखते समय उसी के बगल से गोल पत्थर को कुछ दूर लटकाते हैं। जब सूत दीवाल से बराबर दूरी पर रहता है अर्थात् दीवाल के

Mechanics यंत्रशास्त्र]

समानान्तर रहता है तो वह समझते हैं कि दीवाल सीधी ऊँचाई पर जा रही है। बस यही बात दूसरे रूपमें काँटे के घुमाव पर भी होती है।

यह बात तो स्पष्ट है कि डोरे में लटकी हुई भारी चीज़ डोरे को सीधी रेखा में कर देती है और चूंकि यह चीज़ पृथ्वी के केन्द्र की ओर आकर्षित होती है इसलिए सीधा डोरा पृथ्वी के केन्द्र की ओर है। पृथ्वी की धरातल से पृथ्वी के केन्द्र की दिशा समकोण बनाती है इस लिए डोरा भी पृथ्वी को धरातल से समकोण बनाता है।

यही हाल सब लटके हुए पदार्थों का होता है कि वह लटकाने वाले डोरे, जंजीर इत्यादि को धरातल से समकोण पर कर देते हैं। अब कांटे के घुमावविन्दु पर ध्यान दो। सुगमता के लिए उसी अंशका चित्र यहाँ फिर दिया जाता है:—

चित्र नं० १

थोड़ी देर तक काँटे को इस प्रकार पकड़ो कि दोनों पलड़े एक सीध में ऐसे हो जाँय कि आँख से देखने पर दूर वाला पलड़ा पास वाले पलड़े से ढक जाय। इसी अवस्था में काँटे को नीचा करते जाओ और जब कुल लम्बी डंडी एक मोटा बिन्दुसा मालूम होने लगे तो दिये हुये चित्र नम्बर १ की तरह कांटे के घुमाव बिन्दु पर का दृश्य होगा। यह गोल डंडी वाले काँटे के सम्बन्ध में कहा जाता है। चित्र का वर्णन यह है:—'क' डंडी की मुटाई है इसके बीचोबीच इधर से उधर तक एक छेद है जिस के द्वारा 'ग' पीतल या लोहे के सीधे मोटे तार (गोल अथवा चौखूंट) 'ख' कील से डंडी में जोड़े गये हैं। यह बिलकुल कसे नहीं होते वरन् इसी कील पर डंडी को ऊपर नीचे घुमाते हैं। 'च' हुक भी एक कील के द्वारा 'ग' में जोड़ा गया है। इसमें भी कील ढीली है। यदि इस हुकको पकड़कर उठाया जाय तो 'ग' में डंडी और पलड़े सब लटकते रहेंगे और 'ग' सदा पृथ्वी की धरातल से समकोण बनाता रहेगा डंडी के मध्य-भाग में जहाँ घूमने के लिये छेद है ठीक ऊपर बबूल के काँटे की तरह एक नोकदार लोहा 'घ' इस भाँति जोड़ा हुआ है कि वह डंडी से समकोण बनाता है और जब डंडी पृथ्वी की धरातल से समानान्तर रहती है तब 'ग' के बीचोबीच दोनों अंगों से एकही दूरी पर रहता है। जब ऐसी अवस्था में काँटा रहे कि 'ग' के दोनों अंग और 'घ' स्वयम् एक आँख से देखने में एक ही सीध में दिखाई दें तो डंडी अवश्य पृथ्वी-तल से समानान्तर होगी यदि 'घ' काँटा 'ग' के दोनों अंगों के बीच में न होकर इधर उधर रहे तो जिधर वह रहेगा उधर ही वाला पलड़ा भारी होगा। इस युक्ति से बहुत थोड़े अन्तर का भी पता चल सकता है। चूंकि इस प्रकार के तराजू से 'घ' काँटे के द्वारा ही तोल की ठीक ठीक जाँच होती है इस लिए ऐसे तराजू को 'काँटा' कहते हैं। अधिकांश तराजुओं में एक काँटा घा) और लगा रहता है (ऐसे भी तराज़ू देखे जाते हैं जिनमें एक काँटे के स्थान में दो काँटे लगे रहते हैं एक काँटा 'घ' की भाँति डंडी के बीचो बीच लगा रहता है और दूसरा 'घा,) (चित्र न० २) यह नीचे की ओर नोक किये रहता है। जब दोनों काँटों के नोक एक दूसरे के तले ऊपर होकर मिल जाते हैं तब डंडी ठीक समझी जाती है। यह पहले से अधिक सच्चा होता है और तौलनेवालेको भी देखने में सुबिधा होती है।
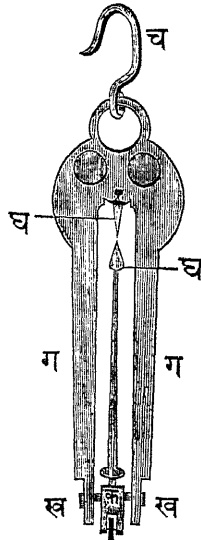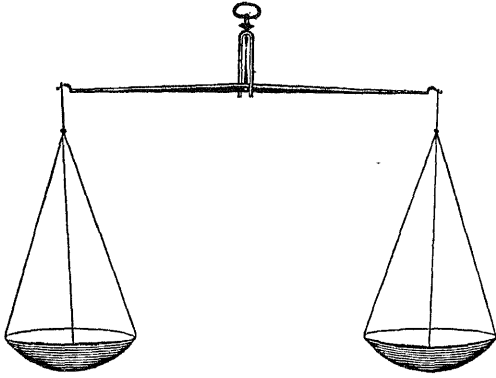
चित्र नं० २

अच्छी २ दूकानों में अनाज, घी, इत्यादि तोलने के लोहे की डंडीवाले तराज़ू में भी इसी प्रकार का काँटा रहता है। इससे तोलने में अधिक सफाई रहती है। कहीं स्टेशनोंपर भी ऐसे काँटे दार तराज़ू देखने में आते हैं।

सायन्स के भारी २ खोज के काम में राई से भी सूक्ष्म पदार्थों का तोल मालूम करना पड़ता है। वहाँ ऐसे ही काँटों से काम लिया जाता है; केवल भेद यही होता है कि उनमें काँटा ऊपर की जगह नीचे समकोण लगा रहता है।

अभी यह कहा गया है कि स्टेशनों पर कहीं कहीं काँटेदार तराज़ू देखे जाते हैं। अधिकतर स्टेशनों पर ऐसे तराज़ू रहते हैं कि बड़ी गाँठें बड़ी आसानी से बहुत जल्दी तोल ली जाती हैं और बाँट भी नहीं रखना पड़ता। इसका नियम तो मालूम हो गया है कि भारी चीज़ों को छोटे बाँट के द्वारा तोलने के लिए घुमाव के पास होना चाहिये और बाट को दूर; लेकिन स्टेशनों के तराज़ू ऐसे पेचदार होते हैं कि जल्दी समझ में नहीं आता कि घुमाव-बिंदु कहाँ है। जिस लोहे के तख़्ते पर बोझा रखते हैं वह तो बिलकुल अलग रहता है फिर उसका सम्बन्ध डंडी से कैसे रहता है?

बात यह है कि ऐसे तराज़ू का बहुत सा अंश ढका रहता है इसलिए बाहरी देखने से इसका पूरा पता नहीं चलता। जिस तख़्ते पर बोझा रखते हैं वह यथार्थ में पलड़ा है और उसके बगल में जो गोल २ खंभा सा खड़ा रहता है वह भीतर खोखला रहता है इसी खोखल में डंडी का घुमाव-स्थान दिया रहता है इसलिये नहीं दीख पड़ता। भीतर की बनावट नीचे के चित्र से प्रकट होगीः—
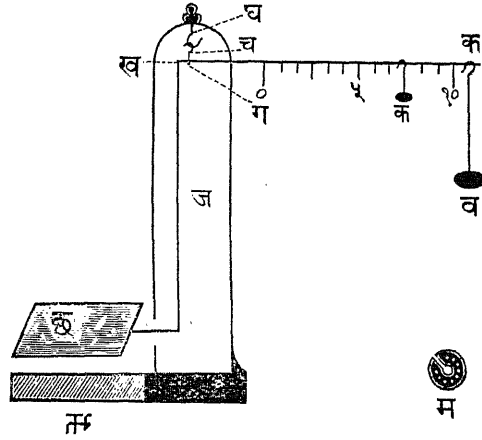
चित्र नं० ३

इस चित्र में एक अंश छोड़ दिया गया है। उस अंश का भी चित्र देने से यह बहुत पेचदार हो जाता। उस अंश से तराज़ू की 'कख' डंडी को 'घ' हुक से उतार देते हैं और जब तोलना होता है तब चढ़ा देते हैं। उतारने पर 'छ' पलड़ा 'झ' चबूतरे पर ठहर जाता है और हिलता नहीं।

यह पलड़ा डंडी के 'ख' सिरे से लटका हुआ है इस लिए घुमाव-स्थान से 'गख' दूरी पर है। 'ग' डंडी का वह स्थान है जहाँ से डंडी घूमती है और इसी जगह 'च' हुक लगा हुआ है जो 'घ' में लटकता है और उतर आता है। डंडी के 'क' के सिरे पर एक लोहे का छड़ लटका रहता है जिसमें छेद वाले बड़े बाट

(जिसका नमूना चित्र 'म' से मालूम होगा) लटकाये जाते हैं। यह बाट १०सेर, २०सेर, ३० सेर इत्यादि के होते हैं। १० सेर से छोटे बाट के लिए एक ऐसा बाट 'वा' डंडी पर लटका रहता है जो शून्य के निशान से १० के निशान तक खसका सकते हैं। यदि यह १ पर रहे तो १ सेर भार है, २ पर रहे तो २सेर, इत्यादि। शून्य और एक के बीच की दूरी में चार और छोटे २ भाग किये रहते हैं जिनसे पाव भर तक का बोझा मालूम हो सकता है। इसी तरह १ और २ २ और ३ इत्यादि के बीच की दूरी में भी भाग बने रहते हैं और उस एक ही बाट 'वा' के द्वारा पाव भर से लेकर १० सेर तक का बोझा मालूम हो जाता है।

जिस समय लटके हुए छड़के सिरे 'व' पर कोई बाट नहीं रहता और 'वा' बाट शून्य-चिन्ह पर रहता है और 'च' पलड़े पर कुछ नहीं रहता उस समय डंडी पृथ्वी तल से समानान्तर रहती है। इसकी पहिचान यह है कि 'क' सिरा किसी को छूए नहीं रहता। यह पहले ही कहा जा चुका है कि वह अंश जिससे डंडी को चढ़ा उतार देते हैं उसका चित्र पेंचदार हो जाने से नहीं दिया गया है। उसी अंश के एक अंग का चित्र यह है:—

अ *ड आ
ई इ
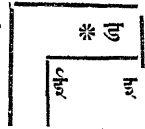
'ड' डंडी की मुटाई है।

इसके समानान्तर होने की अवस्था में इसका स्थान वही है जो विंदु की तरह दीख पड़ता है। यदि पलड़ा पर बोझा भारी हुआ और बाट कम हुए तो डंडी का 'क' सिरा उठ कर 'अ आ' में लग जायगा और इसके प्रतिकूल 'इ ई' में।

तोलने का विधि—पहले डंडी को चढ़ा देते हैं। इसके लिए डंडी के 'क' सिरे को 'अ आ' और 'इ ई' के बीच में कर देते हैं। फिर जिस पदार्थ को तोलना हुआ उसको 'च' पलड़े पर रख देते हैं और 'वा' छोटे बाट को शून्य से दस तक खसका ले जाते हैं। यदि बोझा १० सेर से कम है तो १० के चिन्ह तक खसका लेजाने में डंडी 'इ ई' को छू लेगी; ऐसी अवस्था में बाट को १० से शून्य की ओर धीरे २ खिसकाते हैं। जिस समय डंडी का सिरा 'इ ई' को छोड़ कर उठने लगे वहीं खिसकाना बन्द कर देना चाहिए। यदि 'वा' ६,७ के बीच में तीसरे चिन्ह पर हो तो समझना चाहिए कि बोझा ६ सेर ३ पाव है। यदि इस बाट को १० तक खिसका ले जाने पर भी डंडी 'अ आ' में लगी रहे तो दस सेर वाला बाट (दस सेरा) छड़ के 'व' सिरे पर पहना दो, यदि इस पर भी वह लगा रहे तो दूसरा दससेरा लगा देना चाहिए; जिस दससेरा के रखने पर डंडी 'इ ई' को छू ले उसको उतारकर अलग कर देना चाहिए और छोटे बाटको शून्य से १० तक खिसकाना चाहिए इत्यादि।

राय बरेली से इलाहाबाद जाने वाली नई लैन में सब स्टेशनों पर एक प्रकार का तराज़ू देखा है जिसमें केवल २ बाट लगाकर पाव भर से लेकर २७ मन अथवा १ टन तक का बोझा तोल सकते हैं। इसमें विशेषता यह है कि डंडा के बग़ल से कुछ दूर पर एक दूसरा छड़ उसी के समानान्तर जुड़ा रहता है। इस पर एक छोटा सा बाट खिसकाकर पाव भर से लेकर एक मन तक का बोझा तौला जा सकता है और असली डंडी पर बड़ा बाट खिसका कर १ मन से २७ मन तक तोल सकते हैं। जो लोग पहले प्रकार के तराज़ू समझ गये होंगे वह इस प्रकार के तराज़ को देखकर अच्छी तरह समझ जाँयगे। इसमें कुछ और विशेषता है जो तुला दंड के नियमों के समझनेवालों को कुछ कठिन नहीं है इसलिए उसका पूरा विवरण और चित्र देना व्यर्थ है।

खेती का प्राण और उसकी रक्षा

१—खाद

[ले० संकर्षण, बी. एस-सी.। पहले अंक से सम्मिलित]

पक्की नाली और पक्के गड्ढे के साथ गोरुओं को बाँधने वाले घर का फ़र्श भी पक्का होना चाहिये। फ़र्श नाली की तरफ़ कुछ ढलवाँ होगा और नाली भी बराबर घर के एक तरफ़ से दूसरी तरफ़को (कि जिधर बाहर पक्का गड्ढा बना है) ढाल लेती हुई होगी ताकि (१) प्रत्येक गोरू का पेशाब नाली में जासके और (२) नाली में गया हुआ सारा पेशाब ढलकर बाहर गड्ढे में पहुँच सके-यहाँ से यह पेशाब घड़ों (गगरों) में भर भर कर खाद वाले गड्ढे में पड़ेगा और फिर वहाँ गोबर घास वग़ैरः के साथ सड़कर साल भर (अथवा ८—९ महीना) में अति उत्तम खाद बनावेगा।

मगर यह सब जैसा कि लिखा जा चुका है अमीरों ही का काम है बेचारे ग़रीब या मामूली हैसियत वाले किसान यह सब नहीं कर सकते—उनके लिए तो वही मिट्टी बिछाकर पेशाब जमाकरनी और उसे गोबर घास के साथ कच्चे गड्ढे में रखकर सड़ानी-यही एक खाद बनाने का सहज उपाय है क्योंकि घास में तो अच्छी तरह पेशाब सोखने से रही और फिर घास का प्रयोग करते हुए पक्की नाली और पक्के गड्ढे की ज़रूरत पड़ती है।

मिट्टी का रोज़ रोज़ उठा कर गड्ढे में डालना और फिर नित नयी मिट्टी बिछाना भी तो एक झंझट ही है-इससे यदि महीना पन्द्रह दिन के लिए एकदम मिट्टी रखदी और फिर उठाली जाया करे तो बड़ी सुगमता हो जाय। इसका व्योहार पूर्णतः मध्यप्रदेश (central provinces) में होता है और वहाँ इसको Dry Earth System अथवा Box System of manuring कहते हैं। वहाँ के लोग एक एक अथवा दो दो बैलों के बाँधने की जगह पर एक फ़ुट ऊँची मिट्टी बिछा देते हैं फिर खड़े तख़्ते या टट्टर उस एक फ़ुट ऊँची बिछाई हुई मिट्टी के तीनों तरफ़ लगा देते हैं; बैलों के लिए यह एक तरह का चबूतरा सा हो जाता है। जिधर को मुंह करके गोरू बाँधे जाते है उधर कोई तख़्ता या टट्टर नहीं रहता। उनके खाने को लिँढौरी (चरनी) में चारा भूसा कर्बी इत्यादि रहता है। एक फ़ुट ऊँची बिछाई मिट्टी में बराबर रोज़ का रोज़ पेशाब सोखता रहता है गोबर रोज़ रोज़ उठाकर खाद वाले गड्ढे में डालते रहते हैं क्योंकि ऐसा न करने से गोरुओं के खुरों तथा पैरों में रोग उपस्थित हो जाने की सम्भावना रहती है। इसके साथ ही साथ जो कुछ चारा भूसा कर्बी वग़ैरः गोरू के खाने से बच रहता है। खाद वाले गड्ढे में डाल देते हैं। महीना भर के बाद मिट्टी बदल दी जाती है। मिट्टी हटाने के लिए पहले तीनों ओर के तख़्ते (या टट्टर) हटा देते हैं ताकि मिट्टी बहुत कम परिश्रम से हटाई जासके-पेशाब सोखी हुई मट्टी का रंग कुछ बदला हुआ होगा—बस उतनी मट्टी हटाकर नई मट्टी रख देने से फिर महीना भर की छुट्टी है। पहली ही बार में यह बात भली भाँति जानी जा सकती है कि एक फ़ुट ऊँची मिट्टी कितने दिन चलेगी या एक महीना भर के लिए कितनी मिट्टी चाहिये।

'गोबर लीद' खाद तय्यार हो जाने पर साल में एक बार प्रति बीघा १५० से २५० मन तक वर्षा ऋतु के पहले इस रीति से देना चाहिये कि पहले खेत में जगह जगह पर अन्दाज़ा से इसके ढेर लगा दें फिर बराबर

Agriculture कृषिशास्त्र]

फैलाकर जहाँ तक हो सके तुरन्त ही खेत में जोत दें; क्योंकि यदि बिना जोते कुछ समय तक यों ही खेत में पड़ा रहेगा तो जैसा कि शुरू में दरसाया जा चुका है हवा और धूप की गरमी द्वारा नष्ट होगा।

'गोबर लीद' खाद का तो अब विस्तार पूर्वक वर्णन हो चुका अब इसके अतिरिक्त कोई और भी खाद जो आसानी से प्राप्त हो सके और जिसमें कि पहले लिखे हुए खाद के गुण उपस्थित हों ढूढ़ना चाहिये।

हड्डियाँ प्रायः सभी जगह इधर उधर पड़ी फिरती हैं। यहाँ के लोग उनका तिरस्कार करते हैं। दूसरे देश वाले आदर पूर्वक इन्हें ले जाकर-योंही ले जाकर नहीं वरन् दाम दे ले जाकर –उनसे बड़ी बड़ी चीज़ें बनाते और लाभ उठाते हैं! इन में स्फ़ोज़ (Phosphate) अधिकांश होता है। इनसे बनाये हुए *खाद से प्रति सैकड़ा नत्रजन (Nitrogen) ३·८ स्फ़ोज़ (Phosphate) २३·२ और पोटाश (Potash) ·२ पाया जाता है इनसे खाद बनाने की रीति देखिये तो सही कितनी सरल है:—

हड्डियों में कुछ थोड़ी सी चिकनाई (Fat) अवश्य होती है-खाद में चिकनाई का होना निकृष्ट है क्योंकि इसके होते हुए वह ज़मीन में अच्छी तरह से न सड़कर पूरा फ़ायदा नहीं पहुँचा पाता। इस से तो पहले इस चिकनाई को हटाने की बात ठहरी। हड्डियों को गरम पानी में उबालने से यह चिकनाई दूर हो जाती है मगर स्मरण रहे कि ज़्यादा देर तक या कड़ी आँच में हड्डियों को उबालते रहने से नत्रजन का कुछ अंश जाता रहता है। अतएव देर तक या कड़ी आँच में इनको न उबालकर केवल धीमी आँच में भपाड़ा देकर बुकनी होने के लिए तय्यार कर देना चाहिए। "जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होता है" यह सब भली भाँति जानते हैं यहाँ पर भी यह कहावत पूरी उतरती है। बुकनी जितनी ही ज़्यादा महीन होगी उतना ही ज़्यादा फ़ायदा होगा। चरागाहों (जहाँ गोरुओं के हेतु चारा घास रखते हैं) और अनाज दाना की फ़सलों (जैसे गेहूँ-मक्का, कोदो, बाजरा इत्यादि–*cereal crops*) में प्रति बीघा खाद ३ से ४ मन तक देना चाहिये—ऊख और जड़ वाले पदार्थों (जैसे शकरकन्द, गाजर इत्यादि *root crops*) के खेतों में इस से ज़्यादा खाद लगे गी-इस बुकनी (खाद) को भी गड्ढे में रख कर गोरुओं के पेशाब के द्वारा 'गोबर लीद, खाद की तरह ६—८ महीना में सड़ा सक्ते हैं। ऐसा करने के लिए एक गड्ढा ४ फुट गहरा खोद उसमें बुकनी और उसके दो हिस्सा बराबर मिट्टी रख देना चाहिये; फिर इसमें बराबर पेशाब या कि कुछ पेशाब और कुछ पानी मिला कर डालते रहना चाहिये ताकि वह सूखने न पावे। इस को भी बर्सात के पानी से बचाना होगा। सड़कर तय्यार होने पर यह बहुत अच्छा खाद होता है। इसका असर एक बार देने से कई अगले बरसों तक रहता है। यह खाद बलुई ज़मीनों में अच्छा लगता है। चिकनी मिट्टी वाली ज़मीनों में यह बहुत धीरे २ लग कर देर में असर करता है और इसी कारण ऐसी ज़मीनों में देकर इससे अधिक लाभ की आशा करना व्यर्थ है। जिस ज़मीन में यह दिया जाता है उस पर के पौधे साधारणतः ज़्यादा बलवान और हृष्ट पुष्ट देखे गये हैं और उन में कीड़े पतिङ्गों से होने वाली हानियों को रोक लेने की शक्ति भी होती है।

गोरुओं के गोबर तथा पेशाब और हड्डियों से तो खाद बनाने का हाल हो चुका--चलिए अब कोई बना बनाया खाद खोज लें।

तेल पेरने के बाद जो छोई रह जाती है, उस में तेल तो बहुत कम होता है पर वह गोरुओं के

* Bone dust, Bone made

खिलाने तथा ज़मीन में खाद की तरह देने के काम की बहुत होती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है खाद के पदार्थों में चिकनाई जितनी ही कम हो उतना ही वह अच्छे खाद के काम के होते हैं। इससे इस छोई में जितना ही कम तेल रह जाय उतना ही अच्छा। तेल निकाल लेने के बाद रह जाने वाली छोई को खली (oil-cake) कहते हैं। कुछ ऐसी भी खलियाँ हैं कि जो गोरुओं को खाने के लिए नहीं दी जा सकतीं जैसे अरण्डी की खली, पोस्त की खली। ऐसी खलियों को केवल खाद ही के काम में लाते हैं। सभी खलियों में कमोबेश तीनों चीजें * मिलती हैं। इस वक्त खाद्य खलियों को छोड़कर कुछ ऐसी खलियों का बर्णन किया जाता है कि जो सुबीते से खेत में खाद के लिए दी जा सकती हैं :-

(१) सरसों की खली... {Mustard cake / Rape cake

(२) अरण्डी की खली... Castor cake

(३) कुसुम (बर्रा) की खली Safflower cake

निम्न लिखित ब्योरे से इन तीनों में नत्रजन, स्फ़ोज़ और पोटाश का अंश मालूम हो जायगा। प्रति सैकड़ा कानपूर की तरफ़ वाली

	नत्र०	स्फ़ो०	पोटाश
(१) सरसों की खली में	४ से ५ तक	२ से ३ तक और	·९ से १·५ तक
(२) अरण्डी „	४ से ६ तक	२ से ३ तक	१
(३) कुसुम (बर्रा) „	५ से ७ तक	२ से ३ तक	·६ से १·५ तक

मौजूद है,

'गोबर लीद' खाद में (जो अच्छी तरह से तय्यार हो गया हो) प्रति सैकड़ा

नत्र०	·४ से ·६ तक	(कानपूर)
स्फ़ो०	·३ से ·४ तक	
पोट०	·५ से ·९ तक	

होता है।

इन अङ्कों को देख कर बहुतों के मन में 'गोबर लीद' खाद का गौरव न रहा होगा और धड़ाके से इन खलियों को 'गोबर लीद' खाद से कहीं उद्योगी और खेती का प्राणदा समझने लग गये होंगे। पर मैं ऐसा समझ बैठनेके पहले उन लोगों का ध्यान निम्नलिखित 'गोबर लीद' खाद की और खादों से तुलना तथा 'गोबर लीद' खाद के कुछ विशेष और अमूल्य गुणों की ओर दिलाना चाहता हूँ।

दो बराबर बराबर समान खेत लेकर एक में गोबर लीद और दूसरे में सरसों की खली का खाद दीजिये, फिर तीन वर्ष तक उन खेतों में कुछ भी खाद न देकर देखिये कि दोनों खेतों में से किस में कब तक किस खाद का कितना असर रहता है। मैं इस के साथ ही साथ गुआनों (Guana) से भी ऐसी की हुई परीक्षा का निर्णय सामने रखकर इन तीनों खादों की एक दूसरे पर उपयोगिता दरसाता हूँ। यह परीक्षा विलायत में भली भाँति की गई है और जो अङ्क प्राप्त हुए हैं वह यह है :—

पहली साल खाद देने के असर को यदि१०० मान लिया जाय तो

'गोबर लीद' खाद का असर	दूसरी बर्ष ४६ और	तीसरी बर्ष ३७
गुआनो „ „	१२ „	„ १२
और सरसों की खली „ „	९ „	„ २ रहता है, लीजिये स्वयम ही समझ

* नत्रजन, nitrogen ; स्फुरोज, Pho-sphate ; पोटाश, Potash ;

जाइये कि कौन सी खाद अधिक उपयोगी और खेती की प्राणदा तथा प्राणरक्षक है। 'गोबर लीद' खाद में कुछ और भी विशेष गुण हैं कि जिन से जैसा कहा जा चुका है ज़मीन बहुत कुछ सुधर जाती है। इसके देने से ज़मीन में पानी (नमी) देर तक बनाये रखने की शक्ति कहीं बढ़ जाती हैं। बलुई ज़मीन में तो इसके द्वारा लस (Cohesion) पैदा हो जाता है कि जिससे ऐसी ज़मीन अपनी नमी देर तक बनाये रखने के योग्य हो जाती है। चिकनी मट्टी वाली ज़मीन के कणों को पृथक करके उन में पानी सोखने और नमी बनाये रखने की शक्ति को बढ़ाता है।

जैसा कि अभी दरसाया जा चुका है इन खलियों का असर दूसरे साल भी नहीं रहता। पर गुण यदि कोई है तो यही कि इन को खेत में देते ही असर प्रतीत होता है। साधारणतः प्रति बीघा २ से ३ मन तक खली खाद के लिए दी जाना ठीक है।

मेरा आश्चर्यजनक स्वप्न

[ले० अध्यापक दा. वि. देवधर, एम्. एस-सी.।
गतांक से आगे।]

ऐसा कह कर उस देवी ने मुझे बहुत वेग के साथ एक स्थान पर लेजा कर कहा, 'यह देखो यही तुम्हारा भास्कर है। इसे तो तुम्हारी पृथ्वी का जनक ही कहना उचित होगा। इसके कुटुंब में अनेक स्वतन्त्र मंडली हैं; परंतु उसमें मुख्य एक सो साठ या बासठ हैं। जैसे लड़कों को कुछ बड़े होने पर कोई सहायक देकर संसार में प्रविष्ट होने को छोड़ देना और उन पर सर्वदा अपनी दृष्टि रखना हरेक पिता का कर्तव्य है, वैसा ही यह सूर्य नारायण भास्कर-अपने लड़कों के साथ करता है, यह कहना अनुचित न होगा। इसने अपने लड़कों को ग्रह रूपी सहायक दिये हैं; किन्हीं को एक किन्हीं को दो, किन्हीं को चार, किन्हीं के आठ सहायक मिले हैं। कई धूम्रकेतु लंबी लंबी चोटी रखने वाले ऐसे लड़के हैं, जो कभी कभी अपने पिता के समीप आते हैं; और कभी इतनी दूर भाग जाते हैं कि फिर वह कब लौटेंगे इसका पता भी नहीं चल सकता।

'इनके सिवा और भी सूर्य नारायण के कुटुंब में अनेक मंडली हैं, जिनकी संख्या बतलाना सामर्थ्य के बाहर है। जैसे कोई धनवान् दयालु पुरुष अपने सब रिस्तेदारों को बुलाकर अपने पास रखता है; और उनकी सुध लेता रहता है; किसी को भी कोई कष्ट नहीं होने देता, वैसे ही हमारे यह भास्कर राज भी हैं।

'इतना बड़ा भारी परिवार होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति सुखी और प्रसन्न है। इन सबों का वर्णन तुझे भार जान पड़ेगा; इसलिए इनमें से केवल मुख्य मुख्य आठ नौ बड़े लड़कों की, जो तुम्हारी माता बसुंधरा (पृथ्वी) और उस पर नियत किये हुये परिचारक हैं, कहानी तुझे मैं सुनाती हूँ'।

इतना कह देवी ज्योतिर्मति थोड़ी देर चुप रह कर हँसी और फिर मेरी ओर देख कर बोली, "क्यों तेरे मन में संकल्प विकल्प सा क्यों हो रहा है? हाँ, यह तो सम्भव है कि तू इस विलक्षण स्थान में आकर, इन अद्भुत दृश्यों को देख घबरा गया हो, परन्तु देख अब चित्त स्थिर कर के चलना, मैं तुझे सूर्य नारायण के समीप लिये चलती हूँ। उसके आठ लड़के भी तुझको दिखाऊँगी। अभी तुझको उनके नाम पहले ही से बतला रखती हू,—सब से बड़ा लड़का है "बृहस्पति" (Jupiter) उससे छोटा "शनैश्चर" (Saturn) उससे छोटे का नाम है "वरुण" (Nephtne) इससे छोटा "अरुण" (Uranus) उससे अनंतर एक लड़की है—उसका नाम है "वसुंधरा" (Earth) फिर उससे छोटे लड़के का नाम है "शुक्रराज" (Venus) "मंगल" (Mars) और "बुध" (Mereary) इन सब लड़कों के नाम उनकी उमर और शरीर के मान

Asronomy ज्योतिष्]

से क्रमशः बतलाये हैं। परंतु हम लोग भास्कर राज को देख कर लौटने के बाद उनके पास इस क्रम से नहीं जावेंगे; क्योंकि व्यर्थ फेर खाने से क्या लाभ! इस भास्कर पिताने अपने लड़कों की जो जो जगह नियत की हैं वह उनके बड़े छोटेपन के विचार से नहीं हैं। इनका सब से छोटा लड़का "बुध" इनके बहुत समीप रहता है; छोटे लड़के का पिता के पास रहना उचित ही है, परंतु इसमें प्रेम का भी तारतम्य होता है, इसी सबब से अथवा बड़े लड़के के पास छोटे लड़के को रखना उचित जान कर "बुध" से कुछ बड़े बेटे "मंगल" को सब से बड़े बेटे "बृहस्पति" के पास रखा है। थोड़े ही में मैं भास्कर राज की चातुरी बतलाये देती हूँ; इन्होंने अपने बहुत पास "बुध" को उसके आगे "शुक्र"; उसके "बसुंधरा"; उसके आगे "मंगल"; "मंगल" के आगे "वृहस्पति"; "वृहस्पति" के बाद "शनैश्चर"; शनैश्चर के आगे "अरुण" और "अरुण" के बाद "बरुण" रखा है। छोटी छोटी मंडलियों की व्यवस्था बहुत ही अच्छी होनी चाहिये; इसलिये इन्होंने "बुध" और "वृहस्पति" के बीच में सर्व-साधारण मंडलो की योजना की है। आपने प्रथम चार लड़के एक तरफ और दुसरे चार लड़के दुसरी तरफ रखे इन्हीं के बीच में निर्बल निर्बल छोटी छोटी मंडली रखीं और बीच में स्वयम समीप में आपने छोटे लड़के को रखा, उसके बाद दूसरी साधारण मंडली और तदनंतर बाहर की ओर को बड़े बड़े लड़कों को स्थान दान किया है। साथ ही उन सब की अलग अलग जगह भी नियमित कर दी जिससे यह आपुस में झगड़ा न करें, एक दूसरे के स्थान में न जा सकें। इस प्रकार से खूब बंदोबस्त कर दिया है। भाइयों में आपुस का झगड़ा मानव प्राणियों में तथा देव प्राणियों में एकसा ही है। इसी झगड़े को न होने देने के लिए पिता जी ने इतना बंदोबस्त किया है। परंतु कोई कोई लड़के झगड़ालू वा बेढंगे होते ही हैं, अस्तु भास्कर राज के भी बेढंगे लड़के हैं। देखो न इनकी लंबी लंबी चोटी और बेढंगापन! दिल में आता है सब चले हैं; फिर अपनी गति मति से चले भी जाते हैं। इनकी चोटियों के ही कारण इन्हें धूमकेतु (Comets) कहते हैं। एक "हॅले" (Halleys comets) नामक धूमकेतु है, इसका मार्ग तो कोई विचित्र ही है! यह सब लड़कों के मार्ग में हो कर टेढ़ा बांका ही चला करता है! आप सौ दोसौ वर्ष में, एक बार पधारते हैं और फिर चले जाते हैं। सच है इस प्रपञ्च पूर्ण संसार में अच्छे और बुरे दोनों ही बने हैं। इतना कम से कम ठीक है कि भास्कर राज के प्रथमोक्त आठ लड़के फिर भी बहुत व्यवस्थित हैं। आओ अब हम सूर्यनारायण के और समीप चलें, डरना नहीं, उनका तेज आप को बिलकुल कष्ट प्रद न होगा, क्योंकि मेरे पास एक अद्भुत मंत्र है। यह कह, उस ज्योतिर्मती ने मेरा हाथ पकड़ा, तो मानो मेरे शरीर पर अमृत की वर्षा हो गयी, और तत्काल सूर्य के ताप का भय जाता रहा। थोड़ा सा आगे बढ़ते ही एक बड़ा भारी प्रचंड तेजोमय गोलक दीख पड़ा। ओहो! क्याही महत् प्रकाश! परंतु वैचित्री यह कि वह हमारी पृथ्वी की भाँति गोल व घन (Solid) न था, किंतु बाष्पमय था। देखता हूँ तो स्वेत व अति उष्ण भाप एकत्रित हो कर एक प्रचंड गोलाकार बनगयी है। यह तापमय गोलाकार धधक रहा है इसीसे स्वयं प्रकाशित हो रहा है (Self lu i inou) है। इतर साधारण पदार्थों की तरह वह दूसरे किसी से प्रकाश नहीं लेता। हमारे मिट्टी के तेल से जलने वाले प्रदीपों के पीछे लगी हुई "परावर्तक चन्द्रिका" (Reflecting plate) जिस प्रकार प्रकाशित दीखती है उसी प्रकार "वृहस्पति" आदि लड़के अपने पिता जी से प्रकाश लेकर अपने को प्रकाशित कर रहे हैं

अपने पिताकी सम्पत्ति पर घमण्ड करना ऐसी साधारण बात है जो सर्वत्र ही देखने में आती है'।

भास्कर।

श्रीमज्ज्योतिर्मती ने मधुर वाणी में मुझ से कहा, 'हे मानव, देख यही भास्कर हैं; यह तुम्हारी धात्री-पृथ्वी के जनक हैं। तुम्हारे जननी का जन्म इन्हीं से हुआ है; फिर यही नहीं, किन्तु तुम्हारा सब जीवन इन्हीं पर निर्भर है। इन भास्कर देव की उष्णता-संपत्ति काही अंश तुम्हारी पृथ्वी को और उसकी गोद में रहने वाले जड़ व चैतन्य सभी पदार्थों को मिलता है, जो कहीं यह न मिलता तो तुम्हारा जीवन न हो सकता। तुम को उष्णता, प्रकाश व जीवन इन्हीं महाशय से मिलता है। तुम्हारे पृथ्वी पर तथा बुध, वृहस्पति आदि ग्रहों (planets) पर के सर्व व्यापार इन्हीं महोदय की उष्णता से चलते हैं। क्या तूने कभी विचारा है कि इनकी संपत्ति का कौनसा हिस्सा तुम लोगों को मिलता है? यदि मैं बतलाऊँगी तो तू हँस पड़ेगा। तुम लोगों को इस अपूर्णांक की मानव कल्पना करना भी असम्भव है। देखो, सूर्य भगवान सदा सेही यह संपत्ति देता आता है; और किसीसे यह नहीं कहता कि 'तुम इतना ही अंश लो। जिसमें जितना अंश ग्रहण करने की शक्ति है वह उतना ही लेता है। तुम्हारी पृथ्वी तुमको इतनी बड़ी मालुम होती है, फिर भी वह सूर्यनारायण के प्रचंड संपत्ति का केवल $\frac{१}{२३००००००००००}$ अंश ही लेती है। इसी से तुम सब का पालन पोषण होता है। सारे काम इसी से चलते हैं। "अब तू इसी आधार पर सूर्य्य देव की सम्पत्ति का लेखा स्वयम् कर देख।"

पाठक गण! इस सुन्दरी का यह भाषण सुन मेरा हृदय आश्चर्यान्वित हो गया। ओहो! न जाने यह कितनी संपत्ति होगी। जिसे भास्कर देव देते चले आ रहे हैं। मुझे तो यह सब झूठ जान पड़ने लगा परन्तु भला देवी ज्योतिर्मति झूठ क्यों कहने लगीं, यह विचार कर मूक रह जाना पड़ा! तब देवी बोलीं, "यह तो इतने आश्चर्य की बात नहीं है अभी मैं और बातें बतलाऊँगी तो तू बहुतही चकित होगा। तुझे अपनी पृथ्वी बहुत बड़ी मालूम होती हैं; परन्तु उससे कहीं बड़े उसके बड़े भाई गुरु, शनि आदि हैं, वह तुझ से मैं पहलेही कह चुकी हूँ। सूर्यनारायण तो इन सभों से भी बहुत बड़े हैं। बुधादि सब ग्रह जो लाकर एक में मिला दिये जाँय तो भी उन सब के योग के ६०० पते से (times) भास्कर महाराज अधिक बड़े निकलेंगे। और तुझे अपनी पृथ्वी से तुलना करनी हो तो यह ध्यान में रख कि सूर्य महाराज पृथ्वी के ११६०० गुणा के बराबर हैं। सूर्य को जो तुम्हारी पृथ्वी पर रख कर उन दोनों के केन्द्र (centres) एक किये जायें तो पृथ्वी न जाने किस कोने में विलीन हो जायगी और दिखेगी भी नहीं। पृथ्वी तो पृथ्वी, उससे हज़ारों मीलों पर रहने वाले चंद्र को भी ढक कर सूर्यनारायण की बृत्त सीमा चन्द्र को भी ढककर आगे निकल जायगी'। (अपूर्ण)

गर्भलीला।

जन्म से पहले की बातें

[ले० अध्यापक चिरंजीवलाल माथुर बी. ए. एल. टी.,]

मनुष्य के हृदय में ईश्वर ने एक ऐसा गुण दिया है जिसकी सदैव यह इच्छा रहती है कि जिस वस्तु को देखे उसका पूरा पूरा हाल जान ले। इसी गुण के प्रताप से आज हमें संसार में इतने वैज्ञानिक और दार्शनिक विषय देख पड़ते हैं कि यदि मनुष्य में जानने की प्रबल इच्छा न होती तो मनुष्य भी और जीवों की तरह अब तक उसी प्रारम्भिक

Embryology गर्भविद्या]

अवस्था में बना रहता। आजकल वैज्ञानिक विषयों की पश्चिमी देशों में जैसी उन्नति हो रही है किसी से छिपी नहीं है। हमारे पूर्वजों ने जो सब बातें निर्णय की थीं कालचक्र ने विलुप्त कर दिया, जो है भी तो संस्कृत के गहरे समुद्र में पड़ी है। जबतक सन्तोष और साहस के साथ इस समुद्र में गहरा गोता न लगाया जाय इनका मिलना कठिन है। यह प्रत्येक अंग्रेजी पढ़ा लिखा जान सकता है। परंतु हमारे भारत में, अंग्रेजी पढ़े लिखों की संख्या बहुत ही कम है और केवल देशभाषा जाननेवालों के लिए इन बातों का सर्वथा अभाव है। इस लिए भारतवासियों का एक बड़ा अंश संसार के नवीन आविष्कारों और खोजों का लाभ उठाने में वैसा ही असमर्थ है जैसे दो सौ वर्ष पहले के पाश्चात्य लोग थे, जो अब दिनों दिन उन्नति के शिखर पर ज़ोरों के साथ चढ़ते चले जा रहे हैं।

यह बात सब को विदित है कि पुरुष के वीर्य्य और स्त्री के रज संयोग से गर्भ की उत्पत्ति होती है, परन्तु इससे अधिक सिवा डाक्टरों के और किसी को ज्ञात नहीं कि गर्भ क्रमशः वृद्धि करता हुआ कैसे शिशु बन जाता है।

प्रति मास स्त्री का रजस्वला होना इस बात का चिन्ह है कि वह गर्भ धारण करने की योग्यता प्राप्त कर रही है। कुछ डाक्टरों की यह भी सम्मति है कि रजस्वला होने से पहले भी गर्भ स्थिति होती है, रजस्वला होना केवल यही विदित करता है कि स्त्री ने गर्भ धारण किया वा नहीं क्योंकि गर्भ स्थिति के पीछे रजोधर्म बन्द हो जाता है।

परन्तु अधिकतर यही प्रामण माना जाता है कि रजस्वला होने के पश्चात एक सप्ताह के भीतर तक में गर्भ स्थिति होती है और प्रत्यक्ष में भी प्रायः ऐसा ही देखा जाता है।

स्त्री को रजस्वला हुए ४ दिन बीते हों और वीर्य्य दान किया जाय तो स्त्री पुरुष दोनों के प्रकृत स्वस्थ होते हुए गर्भ स्थापित हो जाता है। स्त्री का रज बहुत छोटी छोटी गोल वस्तुओं से जिनको कीटांड कहना चाहिए बना होता है। पुरुष के वीर्य्य में भी बहुत छोटे छोटे कीट होते हैं, जिन्हें अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने से, सर्प की सी सूरत के मालूम होते हैं। दाम्पत्य संयोग जनित रज वीर्य्य अत्यन्त अधिक होता है। परन्तु गर्भस्थिति के लिए तो केवल एक दो अंडों और कीटों की ही आवश्यकता होती है। जब वीर्य्य का कीड़ा रज के अंड को पकड़ ले तभी से गर्भ का आरंभ समझना चाहिये। अंड के कई अंश होते हैं, किन्तु बीच का अंश (न्यूक्लिअस) प्रमूल में जीवनी शक्ति होती है। वीर्य्य के कीड़े प्रकट सजीव होते हैं और कुछ चल फिर सकते हैं। यदि रज अंड में प्रमूल भाग न हो या वीर्य्य कीट में शक्ति न हो, तो गर्भ न ठहरेगा। इसी कारण लड़कों को प्रकृति के प्रतिकूल चल कर वीर्य्य नाश करने से रोका जाता है, क्योंकि प्रकृति-विरुद्धाचारियों को सन्तान नहीं हो सकती। यदि हो भी तो पूर्णायु तक जी नहीं सकती। वीर्य्य का सर्पाकार कीड़ा अपने फन को अङ्ड के बीच के हिस्से में जमा देता है, उसी समय से परिवर्तन होने लगता है। इस समय के पश्चात जो रूप बन जाता है, उसी को पिंड कहते हैं। किस प्रकार धीरे धीरे पिंड का विकास होता है उसका पूरा पूरा क्रम बर्णन करना कठिन है, क्योंकि अभी तक ठीक ठीक खोज नहीं हो सकी है। अतः पिंडके जुदा जुदा भागों को बतला कर इस लेख में हम यह बतलायेंगे कि प्रति मास पिंड में क्या क्या परिवर्तन होते हैं। पिंड का एक भाग वह होता है जिसमें गर्भ के पालन के लिए रुधिर तय्यार होता है, इसे डाक्टर लोग प्लेसेन्ट कहते हैं और हम लोग जर कहते हैं। इसके और

गर्भ के बीच में एक नाल होती है जिसमें हो कर रुधिर गर्भ में पहुँचता रहता है। इन दोनों में नसों का जाल फैला होता है। गर्भ की रक्षा का प्रबंध ईश्वर ने ख़ूब किया है। एक झिल्ली तो गर्भ को लपेटे रहती है और उसके ऊपर दूसरी झिल्ली होती है; इन दोनों झिल्लियों के बीच में एक तरल पानी की सी चीज भरी होती है, ताकि हिलने चलने से गर्भ तक कुछ ज़ोर न पहुँचे।

दस बारा दिन का पिंड एक तिहाई इंच व्यास का गोला होता है और माता के शरीर को पालन करने वाले रुधिर से ही इसका भी पालन होता है। चार सप्ताह के अन्त में पिंड कबूतर के अंडे के बराबर हो जाता है और गर्भ की लम्बाई १॥ इञ्च होती है। दूसरे मासके अंत में पिंड मुरग़ी के अंडे की बराबर होता है– गर्भ की लम्बाई १॥ इंच हो जाती है। इसके बाद प्लेसेंटा बनना आरंभ हो जाता है– पहले गर्दन के नीचे तथा जावड़े पर की हड्डी बनने लगती हैं।

तीसरे मास के अंत में पिंड नारंगी के बराबर ३ या ४ इञ्च के व्यास का गोला होजाता है गर्भ की लम्बाई ३ इञ्च के लगभग हो जाती है। इस समय इसकी तोल १॥ छटांक के अनुमान होती है। लिङ्ग निर्णयक चिन्ह भी बनजाते हैं, परन्तु बहुत साफ नहीं पहचाने जा सकते। प्लेसन्टा पूरा बन जाता है। हड्डी सब जगह तैयार हो जाती हैं। नाखून बनना भी इसी समय आरंभ हो जाता है।

चौथे मास के अंत में गर्भ ५ इञ्च लम्बा होता है और तोल में पाव भर के लग भग हो जाता है। इस समय यह स्पष्ट जान पड़ता है कि गर्भस्थ बालक है या बालिका; क्योंकि इसी मास तक बच्चे की पूरी बनावट हो जाती है। इसके बाद केवल बढ़ता है। आँख नाक कान सब छोटे छोटे बन जाते हैं–परन्तु इस समय का पैदा हुआ बच्चा पालने के क़ाबिल नहीं होता। इसके बाद बच्चा जल्दी जल्दी बढ़ता है।

पांचवें मास के अन्त में उसकी लम्बाई १० इञ्च, वज़न आध सेर के लगभग होता है, सर पर बाल निकलने लगते हैं चमड़े पर एक चिकनी सफेद वस्तु फैली होती है।

छठे मास के अन्त में लम्बाई लगभग एक फुट व तोल एक सेर हो जाती है। भौंवें और पलकें बनने लगती हैं, चमड़ा गुरींदार होता है थोड़ी चरबी पैदा हो जात है।

सातवें मास के अंत में गर्भ का बच्चा १४ इंच लम्बा हो जाता है।—वज़न अनुमान डेढ़ सेर होता है। इस मास में बच्चा पैदा हो जाता है तो उसका रोदन बहुत कमज़ोर होता है परन्तु पल सकता है तथापि सदा निर्बल ही बना रहता है।

आठवें मास का गर्भ १६ या १७ इञ्च लम्बा और दो सवा दो सेर के अनुमान तोलमें होता है, चरबी का प्रमाण बढ़ जाता है इसी लिए चमड़े की गुर्रियां मिट जाती हैं।

नवें महीने के अंत में बच्चा १८ इञ्च लम्बा सवा दो सेर से ढाई सेर तक तोल में होता है चमड़े का चमकदार रंग कुछ फीका हो जाता है। नाखून उंगलियों के सिरे तक नहीं पहुंचते।

दस मासमें गर्भकी अवस्था पूरी होजाती है, बच्चा २० इञ्च तक लम्बा और तीन साढ़े तीन सेर वज़न का हो जाता है, नाखून हाथ पैरों की उगलियों के सिरे के आगे तक पहुंच जाते हैं। सर के बाल एक या दो इञ्च लम्बे हो जाते हैं। इस मास तक गर्भ में रहा हुआ बच्चा पैदा होने पर ज़ोर से चिल्लाता है और हाथ पैर हिलाता है।

गर्भ में बच्चे की स्थिति ऐसी रहती है कि जिससे कम से कम जगह घेरे, सर छाती पर

झुका होता है और टाँगे मुड़ी हुई पेट से लगी रहती हैं, गोल मोल सा बना होता है।

माता की दशा का प्रभाव गर्भ पर बहुत कुछ पड़ता है अतः माता की शारीरिक व मानसिक दोनों हालतें ठीक ठीक रहनी चाहियें। गर्भवती स्त्री के अपने स्वास्थ्य की सुध साधारण से अधिक रखना आवश्यकत है। खासकर नीचे लिखी बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये :—

गर्भवती स्त्री को प्रकृति के अनुकूल रहना चाहिये खाना पीना स्वास्थ्यकर होना चाहिये—न बहुत कम ही खाया जावे न बहुत ज़्यादः--चाय काफ़ी इत्यादि जोश दिलाने वाली वस्तु व्यवहार न करे। अंतड़ियोंका साफ़ रहना ज़रूरी है। स्नान बराबर हो और हर तरह की शारीरिक स्वच्छता पर ध्यान रहे। ज़्यादः सरदी व ज़्यादः गरमी से बचे रहकर ऐसे वस्त्र जो शरीर के किसी भाग को न दबावें पहनना उचित है। खुली हवा में घूमना, खुश रहना रंज न करना चाहिये।

औरों को भी उचित है कि गर्भिणी से ऐसी बातें न करें जिससे उसे रंज, दुख या भय हो। बहुधा भय के कारण गर्भ पात हो जाया करता है।

हिन्दुओंमें गर्भवती स्त्री को कहा जाता है कि वह रंज भय घबराहट हीन होकर सिवा अपने पति और ईश्वर के किसी का ध्यान न करे, अपने विचार स्वच्छ पवित्र रखे। इन बातों को आजकल का विज्ञान भी पुष्ट करता है। यदि अच्छी सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा हो तो इन सब बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है। छाती की भी खबरगीरी रखनी जरूरी है पहले तो दूध का परिमाण उनके आकार पर निर्भर होता है दूसरे चूंचक कड़े होने चाहिये क्योंकि कोई कोई बच्चा एसी जोर से खेंचता है कि छाती में जखम होने का डर है। बीटने कड़े करने के वास्ते कभी कभी शराब या और ऐसी ही किसी चीज़ से छाती धोते रहना चाहिये।

गर्भकाल में स्त्री पुरुष दोनों को ब्रह्मचर्य्य का पूरा पूरा ख़्याल रखना उचित है, क्योंकि इस दोष के कारण अनेक प्रकार की हानि गर्भ व गर्भवती दोनों को पहुँचना सम्भव हैं।

लगानका सिद्धान्त और अनाज महँगा होनेका कारण

(ले० श्रीयुत बाबूराम अवस्थी, बी. ए.)

हिन्दू राजाओंके समयमें जिस प्रकार व्यापारियों और दूसरे व्यवसाइयों की आयपर कर लगता था उसी प्रकार किसानोंसे भी उनके खेतोंकी उपजपर लगान लिया जाता था। यह भूमिकर उस समय सब प्रकारकी ज़मीनोंपर एक बँधी हुई रीतिके अनुसार निश्चित किया जाता था और वार्षिक उपजके छठे हिस्सेसे अधिक न होता था। आजकलका लगान चढ़ा-ऊपरी से घटा बढ़ा करता है (अर्थात् खेतों की माँग अधिक होनेसे लगान बढ़ जाता है और माँग कम हो जाने से घट जाता है) यह बात उस समय न थी। मुसलमानी राज्यमें भी भूमिकर यहाँकी पुरानी रीतिके अनुसार ही लगता रहा, हाँ पहिलेसे वह बढ़ा अवश्य दिया गया था, अकबरके समयमें उपजका एक तिहाई करमें देना पड़ता था। अंग्रेज़ी राज्यके आने पर पुरानी प्रथाका भूमिकर उठ गया और उसके स्थानपर एक नये प्रकारका भूमिकर (लगान) लगने लगा। यह भूमिकर उपजके अनुसार प्रतिवर्ष नहीं बदलता, किन्तु खेतोंकी माँग कम या अधिक होनेसे घटता या बढ़ता है। हिन्दू भूमिकर और अंग्रेजी भूमिकरमें इसके अतिरिक्त एक बहुत बड़ा अन्तर और भी

है। हिन्दू भूमिकर यथार्थमें भूमिकी उपजका कर था, और इसी कारण उपजका एक नियत अंश (जैसे छठा) होता था। उपजपर करका लगना यह बतलाता है कि भूमि जिससे उपज होती है जोतनेवाले कृषककी है, इससे उसके परिश्रमसे प्राप्त अनाज सब उसीका है, उसमें किसीका कोई अंश नहीं, कोई हिस्सा नहीं। अतः हिन्दू युगमें भारतकी भूमि प्रजाकी थी, कृषक सर्वथा अपने खेतोंका स्वामी था। किन्तु लगान जो आजकल, भूमिकरके रूपमें कृषक से लगता है, यथार्थमें कर नहीं है, किन्तु ज़मीन्दारसे खेतोंको जोतनेके लिये लेनेका किराया है। अब भूमि खेत जोतनेवाली प्रजाकी नहीं रही, किन्तु हलकी मुठिया पकड़ने में अपना अपमान (वेइज़्ज़ती) समझनेवाले ज़मीन्दारकी हो गई। किसान अब खेतोंको किराये पर लेता है और उसका किराया (लगान) देता है। कर और किराये में एक और अन्तर यह है कि करकी मात्राका नियत करना (अर्थात् यह नियत करना कि आय या उपजका कौन सा भाग करमें लिया जायगा) सर्वथा राजाकी इच्छापर निर्भर रहता है, किन्तु किराये-का नियत करना सर्वथा स्वामीके अधीन नहीं होता, क्योंकि किरायेपर उठनेवाली चीज़ (जैसे मकान या खेत) की माँग यदि अधिक होगी तो किराया बढ़ जावेगा, और कम होगी तो कम। इसीसे जितने बड़े और जैसे अच्छे मकानका किराया शहरोंमें ५०) महीना होता है, गावोंमें उतने ही बड़े और वैसे ही अच्छे मकानमें महीनेमें, ५) भी न मिलेंगे। इसी तरह किराया होनेके कारण लगान भी चढ़ा-ऊपरीके कारण घटता बढ़ता है, ज़मीन्दारकी इच्छा मात्रसे नहीं। यदि मकानका किराया मकानकी कीमत का कर होता तो बराबर कीमतके मकानों पर बराबर होता और जैसे मकानके शहरमें ५०) देने पड़ते हैं वैसे ही मकानके देहातमें भी ५०) ही देने पड़ते। समाजकी आदिम अवस्था में लगानका आरम्भ किस प्रकार हुआ इसको जाननेके लिए हमें, अपने देशके इतिहासमें कोई सामग्री न मिलेगी, क्योंकि यहाँ तो लगान था ही नहीं। अतः हमें उन देशोंके इतिहासों-में देखना पड़ता है जहाँ समाजकी आदिम अवस्था सेही लगान चला आता है, जैसे इंगलैण्ड या अमेरिकाके संयुक्त राज्य।

यद्यपि खेतोंपर उन देशोंमें लगान बहुत पहिले से लगता चला आ रहा था, किन्तु किसी को यह ठीक २ विदित न था कि लगान किस प्रकारसे निश्चित होता है, लगानका सिद्धान्त क्या है। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं। आज कल भी हम सब देखते हैं कि पेड़ भूमिसे अपना भोजन ले कर बढ़ते हैं और भूमिमें कुछ विशेष प्रकारकी चीजें होने से (जैसे गोबर या दूसरी खादें डालनेसे) उनकी बाढ़ अधिकता से होती है। किन्तु वह कैसे बढ़ते हैं, किस सिद्धान्तसे बढ़ते हैं इसे वनस्पति शास्त्रियों या उद्भिद्विज्ञानियोंको छोड़ कर कौन जानता है? सूर्य चन्द्रमा तथा नक्षत्रोंका, २४ घंटे में उदय और अस्त होना तो सभीको दिखलाई देता है, किन्तु किस सिद्धान्तपर नक्षत्र परिभ्रमण करते हैं, इस भेदको सच्चे ज्योतिषियोंके अतिरिक्त आज भी बहुत कम लोग जानते हैं। यों तो उपरोक्त उदाहरणमें एक सामान्य मनुष्यभी अपने अटकलसेब हुत कुछ ज्ञान प्राप्त कर लेता है पर वह ज्ञान वास्तविक नहीं कहा जा सकता।

लगानके सिद्धान्तको सब से पहिले, डेविड रिकार्डो नामके एक अंग्रेज़ अर्थशास्त्रवेत्ताने सोचसे निकाला था और १८१७ ईस्वीमें, "अर्थ-शास्त्र और करनिर्धारणके सिद्धान्त" नामक अपनी पुस्तकको प्रकाशित कर संसारको बतलाया था। इस कारण लगानका सिद्धान्त रिकार्डोका सिद्धान्त कहलाता है।

अच्छा तो अब इस सिद्धान्तको सुनिये।

जिस समय कोई देश, पहले पहल, बसना आरम्भ होता है तो देशमें आबादी है कम और ज़मीन होती है बेशुमार। आजकल जिसप्रकार बहुतायसे मिलनेके कारण वायुमण्डलकी हवा या नदियों, झरनोंके पानीपर किसी मनुष्य विशेषका स्वामित्व नहीं है और न इन चीज़ोंकी कोई क़ीमत है, उसी प्रका : पूर्वकालमें परमेश्वर प्रदत्त इस विस्तृत वसुंधरा पृथ्वी और प्रकृतिपर किसीका स्वामित्व न था और न उस समय भूमिकी कोई क़ीमत थी। अपने कुटुम्ब के पालनार्थ, जिसे जितनी भूमिकी आवश्यकता होती थी, उतनी भूमि जोत लेता था, किसीसे किसी प्रकारकी आज्ञा लेनेकी आवश्यकता न थी। सब लोग सबसे अच्छी और अत्यन्त उर्वरा भूमिको ढूढ़ कर जोतते थे। उसकी उपजसे अपने कुटुम्बकी उदरपूर्ति करते थे और निश्चिन्त तथा स्वच्छन्द कालयापन करते थे तब न तो कोई जमीन्दार था, न कोई किसान (रैयत)। भूमिके किसी मुख्य टुकड़े पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार न माना जाता था। परन्तु जैसे जैसे आबादी बढ़ती गई, अच्छी उर्वरा ज़मीनकी माँग बढ़ती गई और लोग एक साल जोती हुई भूमिको ही दूसरे साल जोतनेका यत्न करने लगे जिससे अच्छी भूमि उनके कुटुम्बके हाथसे निकल न जावे। त्योंही भूमि पर मनुष्यका अधिकार होना आरम्भ हुआ। जब एक ही खेतको एक ही कुटुम्ब लगातार कई वर्षों तक जोतता, बोता रहा अर्थात् वह एक ही कुटुम्बके अधिकार में रही तो धीरे २ उस कुटुम्ब को उस पर अपने स्वामित्वका ज्ञान उदय हुआ। धीरे २ और लोग भी उसके इस स्वामित्वको मानने लगे। इस प्रकार पहले अधिकार और तब स्वामित्व का आरम्भ हुआ *। खेतीके हिसाब से ज़मीन बहुत तरहकी होती है, तो सब से पहले, कौन ज़मीन जोती गई? इस प्रश्नका उत्तर रिकार्डो यह देता है।

सब से पहिले वह ज़मीन जोती गई।

(१) जो बड़ी उर्वरा थी, जिसमें थोड़ेसे प्रयास और परिश्रमसे ही अच्छी फ़सल तैयार हो जाती थी। ज़रा खोद खाद कर बीज डाल दिया। समय पर वर्षा होती गई, या किसी नदीके किनारे होनेके कारण, नदीकी नमी ही खेतीके योग्य पानी देती गई और समय पर फसल पक गई, खाने योग्य फल मिल गये या अनाज मिल गया। सम्भव है कि छोटे छोटे पेड़ोंके खेतीके पहले बड़े बड़े फलदार वृक्षों की खेती हुई हो। फलदार वृक्ष ही मनुष्यको, सबसे पहिले, अपने चारों ओर दिखाई देते थे। गेहूं आदि छोटे छोटे दाने देने वाली घासें सबसे पहिले मनुष्यका ध्यान आकर्षित नहीं कर सकतीं।

(२) जहाँ जंगली जीवोंके आक्रमणका डर बहुत कम था और जान-मालके रक्षाकी विशेष सुविधायें थीं।

(३) जो किसी सुभीतेकी जगहपर थी :- जैसे बस्तीके पास थी, या नदीके किनारे थी जिससे आसानीसे फ़सल बस्ती या बाज़ार तक ढोकर लाई जा सकती थी।

(इन्हीं तीन कारणोंसे इन पंक्तियोंके लेखक की राय है कि भारतवर्षमें नदियों के किनारे खेती सबसे पहले आरम्भ हुई और लोगोंने खेतोंके पास ही अपने घर बनाये अर्थात् नदियोंके किनारे बस्तियाँ बसाईं)।

जिन ज़मीनो में उपर्युक्त तीनों गुण सबसे अधिक थे ऐसी ज़मीनोंको हम 'प्रथम श्रेणी' की ज़मीन कह सकते हैं। किन्तु ऐसी ज़मीन बहुत ज़्यादा तो थी नहीं, अतएव जैसे जैसे

*किन्तु हमारे प्रांतके ज़मीदारोंका स्वामित्व भूमिपर इस प्रकार नहीं हुआ। वे लोग पहले लगान वसूल करने के ठेकेदार थे। पीछेसे सर्कारने इन्हें ही भूमिका स्वामी मान लिया।

आबादी बढ़ती गई, प्रथम श्रेणीकी ज़मीन जुतती गई और एक समय आया कि पहले दरजाकी सब जमीन जुत गई। तब जब आबादी और भी बढ़ी द्वितीय श्रेणीकी ज़मीन-पर ही कुछ लोगोंको संतोष करना पड़ा। यह वह ज़मीन थी, जिसमें तीनों गुण कुछ कम थे, जैसे उर्वरत्व कम था, या बस्तीसे दूर थी या जंगलके पास थी जिससे हानिकारी जीवों-के आक्रमणका भय लगा रहता था, या जिसकी खेतीमें परिश्रम अधिक पड़ता था और लागत अधिक लगती थी।

अब विचार कीजिये कि जिस समय आबादी बहुत न बढ़ी थी और दूसरे दरजाकी ज़मीन-को जोतनेकी नौबत न आई थी उस समय बाज़ारमें अनाजका क्या भाव था। कल्पना कीजिये कि उस समय एक कुटुम्बके पास १० बीघा ज़मीन थी जिसमें सत्तर मन अनाज, सालमें, तैयार होता था। इस नाजको पैदा करने और उसे बाज़ार तक ले जानेमें कुटुम्ब को ३०) (नक़द) मज़दूरी, बीज आदिमें, अपने पाससे ख़र्च करना पड़े और कुटुम्बके दो आदमी बराबर खेती में ही लगे रहे। ये लोग अपनी मज़दूरी ४०) समझते हैं। तो यह समझिये कि इस कुटुम्बके ७० मन अनाज उत्पन्न करनेमें ३० + ४० = ७० रुपये लागतमें लगे। अतएव ये लोग ७० मनको ७० रुपये-में बेचनेको तैयार हो जावेंगे अर्थात् अनाजका भाव रुपया मन होगा। (अर्थ शास्त्र में "लागत' शब्द से नक़द खर्च हुए रुपये तथा घर वालों का परिश्रम दोनों ही समझे जाते हैं)। स्मरण रखिये कि इस समय, जब सब लोगोंको प्रथम श्रेणीकी भूमि मिल जाती थी, किसी खेत पर कोई लगान न लगता था।

जब आबादीके बढ़ने के कारण, दूसरी श्रेणी-की भी ज़मीन जुतने लगी थी, तब अनाज क्या भाव होगा? कल्पना कीजिये कि इस समय एक कुटुम्बके पास १० बीघे दूसरे दरजेकी ज़मीन है जिसमें, सालभरमें, ६८।) नाज पैदा होता है और ७८) लागतमें लगते हैं। अतएव यह कुटुम्ब अपने ६८।) मन नाजको ७८) में बेच देगा अर्थात् रुपयेके ॥।)५ के भावसे। प्रथम श्रेणीके खेतोंके स्वामी भी अब अपने नाजको रुपया मन न बेचेंगे, किन्तु ॥।)५ के हिसाबसे ही बेचेंगे, क्योंकि पहिले तो, कोई आदमी अपना लाभ क्यों छोड़ देगा। दूसरे यदि वह लोग अपना लाभ छोड़ मन भरका ही भाव बनाए रखें तो दूसरे दरजेके खेतों-के स्वामियोंको भी १ मन ही बेचना पड़ेगा और उनकी लागत भी न निकलेगी। घाटा होनेके कारण ये लोग अगले साल खेती करना छोड़ देंगे। किन्तु आबादी बढ़नेके कारण केवल पहिले दरजेके खेतोंसे देश भरके लिए अनाज नहीं मिल सकता, अतः कुछ लोगोंको लाचार हो, दूसरे दरजेके खेतोंको जोतना ही पड़ेगा और अनाजका भाव ॥।)५ ही होगा, जिससे किसीको घाटा न होगा, प्रथम श्रेणीके खेतोंसे अधिक लाभ अवश्य होने लगेगा, क्योंकि इन खेतोंमें उत्पन्न ७०) के दाम अब ७०) से बढ़ कर ८०) हो जावेंगे।

इस समय जब दो प्रकारकी ज़मीनोंमें खेती होती है और प्रथम श्रेणीके १० बीघोंमें लागतके सिवाय, १०) का और भी लाभ होने लगा है (८०—७० = १०) सब लोग प्रथम श्रेणीके ही खेत करना पसन्द करेंगे और यदि प्रथम, श्रेणीके खेतोंका कोई स्वामी अपने खेतोंको जोतनेके लिए, दूसरे लोगोंको देना स्वीकार कर ले तो उसे, जोतने वाले, कुछ रुपया देना हर्षसे स्वीकार करेंगे क्योंकि यदि १० बीघा प्रथम श्रेणीकी भूमि ५) देकर भी उनको मिल जावै तो उनको ५) का लाभ रहेगा और यदि ६) देकर मिल जावे तो भी १) का

लाभ रहेगा। किन्तु बहुतसे लोगउस ज़मीनको चाहते हैं इससे लेने वालोंमें चढ़ा-ऊपरी होनेके कारण, लोग उसे १०) देकर लेना पसन्द करेंगे, क्योंकि ऐसा करनेमें भी उनकी कोई हानि नहीं, पहले और दूसरे दरजेके खेत वाले, दोनों, का लाभ बराबर हो जावेगा। यह देखिये, पहले दरजाकी ज़मीनपर अब लगान मिलने का आरम्भ होगया और हमारे कल्पित उदाहरणके १० बीघे पर १०) लगान आने लगा तथा अब समाजमें ज़मीन्दार और कृषक ये दो भाग हो गये। इसका सारांश यह हुआ कि यदिबराबर क्षेत्रफलके* दो खेतोंकी खेतीमेंसे एककी खेतीमें, दूसरेकी खेतीसे, कुछ अधिक लाभ हो तो यह कुछ अधिक लाभ खेत जोतने वालेको न मिलकर उसके स्वामीको लगान अथवा खेतके किरायेके रूपसे मिलेगा किन्तु दूसरे (खराब) खेतपर कोई लगान न मिल सकेगा क्योंकि ऐसी ज़मीन अब भी बहुत सी पड़ी हुई होगी जिसपर अभी तक किसी का अधिकार नहीं। यदि दूसरे दर्जेके खेतके स्वामी लगान माँगेंगे, तो लोग उनके खेतोंको छोड़ कर उसी तरहकी, दूसरी पड़ी हुई ज़मीन को मुफ़्तमें लेकर खेती करने लगेंगे।

जब आबादी और भी बढ़ी और अधिक अन्नकी आवश्यकता हुई तो धीरे धीरे दूसरे दरजेकी भी सब ज़मीन जुत गई और कुछ लोगोंको और भी ख़राब ज़मीन जो अभी तक परती (अर्थात् बेजुती) पड़ी रहती थी जोतना पड़ी और दूसरे दरजेकी ज़मीनपर लगान मिलने लगा। वह इस प्रकार :—कल्पना कीजिये कि इस तृतीय (निकृष्ट) श्रेणी की भूमिके १० बीघेमें ६३ मन अनाज उत्पन्न होता है और ८४) लागतके लगते हैं। अतएव इस दस बीघेको किसान ६३ को ८४) पर बेच देनेपर राज़ी हो जावेगा अर्थात् अपने अनाज को ३० सेरका बेच देगा। जिस प्रकार पहले सिद्ध किया था उसी प्रकार यहाँ भी सिद्ध हो जावेगा कि दूसरे और पहले दरजेके खेतोंके जोतने वाले भी अब अपने नाजको इसी भाव बेचेंगे। अर्थात् बाज़ार भाव ही तीस सेर हो जावेगा। इन दो उदाहरणोंमें आप देखते हैं कि निकृष्ट श्रेणीके खेत ही अनाज का भाव निश्चित करते हैं। जब तक केवल पहले और दूसरे दरजेकी भूमिमें खेती होती थी तब तक दूसरे दरजेकी भूमिकी पैदावार और लागतके अनुसार बाज़ार भाव नियत होता था। जब पहिले, दूसरे और तीसरे इन तीन दरजोंकी भूमिमें खेती होने लगी तो तीसरे दरजेकी भूमिकी उपज और लागतके अनुसार अनाजका बाज़ार भाव हुआ अर्थात् निकृष्ट खेतोंने भाव नियत किया।

अब इस भाव अनाज विकनेपर पहले और दूसरे दरजेके खेतोंके लगानपर फिर ध्यान दीजिये, दूसरे दर्जेकी खेतीमें जैसा कि पहले कहा जा चुका है १० बीघेमें ६८ मन नाज पैदा होता है जिसकी लागत और दाम पहले ७८) थे। अब लागत तो वही बनी रही किन्तु भाव चढ़ जानेसे दाम बढ़ गये। बाज़ार भाव ३० सेर होनेसे ६८ का दाम ६२) हुआ अर्थात् दूसरे दर्जे वाले खेतों पर भी अब "अतिरिक्त लाभ" होने लगा और जैसे पहिले सिद्ध किया था वैसे ही यहाँ भी सिद्ध हो सकता है कि यह १३) का "अतिरिक्त लाभ" खेत जोतने वालेके पास न रहेगा किन्तु चढ़ा

---

* रिकार्डोने इसे इस प्रकार लिखा था—जब दो प्रकारकी भूमिमें बराबर बराबर रुपया और श्रम लगाने पर एक में उपज दुसरेसे अधिक होती हैं तो यह अधिक उपज लगान हो जाती है हमारे देशमें सब लोग प्रायः एक ही नियत प्रथासे खेती करते हैं अर्थात् यहां Intensive and extensive farming का भेद कम है अतः मैंने इस प्रकार लिखा है यद्यपि युरोप Europe वाला सिद्धान्त भी यहां लग सकता है

उपरीके कारण, खेतके स्वामी (ज़मीन्दार) को लगान रूपसे, मिलने लगेगा अर्थात् अब दूसरी श्रेणीके खेतोंपर भी लगान मिलने लगा।

इसी प्रकार प्रथम श्रेणीके १० बीघे खेत की पैदावार ७०ʃ का मूल्य अब ३० सेरके भावसे, ९३।-)४ होगा जबकि इसके पहिले वह केवल ८०) था। इस मूल्यमेंसे पूरी लागत अर्थात् ७०) तो कृषकको मिलेंगे और शेष २३।-) ४, खेतके स्वामीको लगानमें मिलेंगे अर्थात् (अनाजका भाव तेज होनेके कारण) प्रथम २३, श्रेणीकी भूमिका लगान १०ʃ से बढ़ कर अब २३-।)४ हो गया। इस तेज़ीका पूरा प्रभाव यह हुआ कि (१) दूसरे दरजेकी भूमि जोतने वालोंको लगान देना आवश्यक हुआ और (२) प्रथम श्रेणीकी भूमिका लगान बढ़ गया।

इस समय तक तीसरे दरजेकी भूमिपर कोई लगान नहीं मिलता किंतु यदि अबादी और बढ़े तो इस दरजेकी भूमि भी सब जुत जावेगी और कुछ लोगोंको, लाचार हो, अधिक आबादीके लिए अधिक अन्न उत्पन्न करना आवश्यक होनेके कारण और भी खराब ज़मीन जोतना पड़ेगी अर्थात् चौथे दर्जेकी ज़मीनमें जो अभी तक परती पड़ी रहती थी अब खेती होने लगेगी इसका प्रभाव अवश्य ही यह होगा कि इस भूमिकी खेतोंमें औरोंसे लागत लगेगी अधिक और पैदावार होगी कम, किंतु चूंकि यही निकृष्ट खेत हैं (इससे इसीकी पैदावार और लागत अनाजका भाव निश्चित करेंगे) भाव और भी घट जावेगा जिससे पहले और दूसरे दरजेकी भूमिका "अतिरिक्त लाभ" बढ़ जावेगा और साथ ही उनका लगान भी बढ़ जावेगा तथा तीसरे दरजे वाली ज़मीनपर भी अब पहले पहल "अतिरिक्त लाभ" होने लगेगा अर्थात् लगान मिलने लगेगा।

इसी प्रकार ज्यों ज्यों किसी देशकी जनसंख्या बढ़ती जाती है और यदि ये पदार्थ विदेशसे सस्ते भावमें न आवें तो देश में ही सारे आवश्यक खाद्य पदार्थ उत्पन्न करना पड़ेंगे जिससे ख़राब और उससे ख़राब ज़मीनभी जुतती जावेगी और अनाज तेज़ होता जावेगा।

जल मण्डल

(ले० श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़)

हमारी पृथिवी जिसपर हमारा जन्म हुआ है, जिस पर हम रहते हैं और जहाँ हमारी मृत्यु होती है विशेषतः मिट्टी और पानीसे बनी हुई है। जलका हिस्सा थलसे ज़्यादा है। जल के ऊपर जितनी ऊचाइयाँ हैं वही हमारी भूमि हैं और इस समय भूमण्डलमें २८ फ़ी सैकड़ेके हिसाबसे हैं। यानी सारे भूमण्डल की चौथाईसे कुछ ही विशेष सूखी धरती है। जल मण्डलका भाग पृथवीके उन्हीं बड़े बड़े गढ़ोंमें है जिन्हे हम समुद्रके नामसे पुकारते हैं और ७२ फ़ी सैकड़ाके हिसाबसे वह पृथिवी पर व्यापा है-परन्तु निरन्तर भाप बननेके कारण हवामें कुछ न कुछ हिस्सा प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। स्थलका सबसे बड़ा अंश (portion) पृथिवीके उत्तर भागमें आता है। जलका भाग सबसे ज्यादः दक्षिणमें है जहाँ केवल १० फ़ी सैकड़ा थल है। पृथिवीके बड़े बड़े भाग उत्तरमें बहुत चौड़े हैं और दक्षिणमें कम होते होते बिन्दुके आकार तक आजाते हैं।

जल मण्डलके भाग—केवल 'कैस्पियन समुद्र' जलका एक बड़ा भाग है जोकि और पानीके भागोंसे अलग है। परन्तु प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि पहले यह भी समुद्रोंसे मिला था *। इस के अतिरिक्त जलमण्डल एक

* कैस्पियन समुद्रके जल विग्रहसे यह पाया जाता है कि जितना भाग नमक तथा और और धातुओंका भाग बड़े २ खुले समुद्रो में पाया जाता है वही कैस्पियनमें भी है।--Hugh Robard Mill, DSC., F.R.S.E.

दूसरे से मिला है जल मण्डलके बड़े भागोंको महासागर और छोटे हिस्सेको सागर कहते हैं। इसपर बहुत लोगोंके बिचार भिन्न हैं कि सागर और महासागरमें क्या अन्तर है। सागरके ३ भाग किये गए हैं।

(१) वह जो चारों ओर पृथिवीसे घिरे हैं।

(२) वह सागर जो पृथिवीसे थोड़े बहुत घिरे हों और महासागरसे एक ही ओर से संयोग हो।

(३) जो दो या तीन ओरसे महासागरसे मिले हों।

महासागर—महासागरों के लिए कोई विशेष चौहद्दी नहीं लिखी जा सकती। दक्षिणी महासागर बे किनारेका सागर कहा जा सकता है। इसका क्षेत्र फल ३०,०००,००० वर्ग मील है। पैसिफ़िक महासागर का क्षेत्रफल लगभग ५५,०००,००० वर्ग मीलके है।

पृथ्वीके जितने स्थल भाग हैं उन सबका क्षेत्रफल इस महासागरके क्षेत्रफलके बराबर है। इसमें बहुतसे द्वीप हैं और कई छोटे छोटे सागर इसके भाग हैं। केवल यही एक महासागर है जिसका जल स्थलसे २५०० मीलकी दूरी तक गया है। हिन्द महासागर उत्तरकी ओर बिल्कुल पृथ्वी से घिरा हुआ है और क्षेत्रफल लगभग १७,०००,००० वर्ग मीलके है। अटलाँटिक महासागरका क्षेत्रफल ३३,०००,००० वर्ग माल है। संसारकी आधेसे ज़्यादः नदियाँ इसीमें गिरती हैं।

ज्वारभाटा—यदि पृथ्वी छोटी छोटी लम्बी लम्बी पट्टियोंमें पूरबसे पच्छिम तक होती तो एक बड़ी भारी लहर पृथ्वीके चारों ओर प्रतिदिन घूमती जिसका वेग १००० मील फ़ी घंटाके लगभग होता और उत्तरसे दक्खिनकी ओर पृथ्वी पंक्तियों में होती तो सागरोंमें कभी ज्वार या भाटा न आता परन्तु जिस प्रकारसे पृथ्वी और सागरोंका सम्बन्ध वर्तमान समयमें है केवल शांत महासागर और उसके आसन्न दक्षिणी महासागरमें ज्वार भाटा और लहरें अच्छी प्रकारसे उठ सकती हैं और यहाँसे पच्छिमकी ओर घूम कर फिर उत्तरी दिशाको घूमती हुई और और सागरोंमें जाता हैं। यह लहरें बड़े वेगसे चलती हैं और गहरे पानीमें इनका विस्तार बहुत कम होता है। जब यह लहरें छिछले पानीमें पहुंचती हैं तो इनका वेग धीमा हो जाता है। ज्वारभाटाके नीचेके भागका वेग कम होता जाता है और ऊपरके सतहपर पृथ्वीके परिभ्रमणके कारण चलन-शक्ति मिलती जाती है किनारेपर ज्वारभाटाका यह प्रभाव है कि चौड़े और ढालू किनारोंपर ज्वारका पानी बहुत दूरी तक चला जाता है और किनारा पानीके नीचे आजाता है पानी धीरे धीरे बढ़ता जाता है और एक समय आता है कि पानी का ढेर हो जाता है इसके पश्चात पानी फिर घटने लगता है और समुद्रमें चला जाता है। जब ज्वार खाड़ियों तथा समुद्र बंक (Esturay) की ओर जाता है तो वेग बहुत बढ़ जाता है और लहरें बहुत ऊँची ऊँची होती हैं। कभी कभी ज्वार नदियोंमें बड़े वेगसे जाता है जिससे जहाजों और किश्तियों को बड़ी हानि होती है।

आकर्षणशक्ति—(Gravitation) पूरी तरह से इसे समझनेके लिए कुछ और जानना आवश्यक है। पदार्थका नियम है कि प्रत्येक कण दूसरे कणको ऐसे बल से (force) आकर्षित करता है जो उनको मात्राओं (Masses) के गुणनफल से सीधा अनुपात रखता हो (Directly proportional) और उनके अन्तरके वर्गफलसे उलटा अनुपात (Inersely proportional) रखता हो। जैसे यदि हम दो गेंद लोहे अथवा किसी और धातके लें और उनकी मात्रा दो दो सेरकी हों और यदि एक गज़के अन्तरपर

रक्खें तो जिस बलसे (Force) वे एक दूसरे को आकर्षित करेंगे वह ४ कहा जा सकता है। अथवा उनके मात्राओंका गुणनफल (२×२=)४ यदि एक गेंदकी मात्रा ३ सेर हो जाय तो 'बल' (३ × २=) ६ होगा और यदि दोनों ३ सेर हो जांय तो 'बल' (३ × ३ =) ६ होगा। यदि वह दो गज़के अन्तरपर रक्खे जाँय 'बल' ६ न होगा बल्कि $९ \times \frac{१}{२ \times २} = २\frac{१}{४}$; और यदि तीन गज़की दूरी पर रक्खे तो $९ \times \frac{१}{३ \times ३} = १$ होगा। इसी बड़े भारी नियमपर ज्वार इत्यादि निर्भर हैं।

चांद और सूर्य दोनों पृथ्वीको खींचते हैं परंतु चांद अधिक दूर नहीं है और सूर्य अधिक दूरीपर है इस लिए चांदका खिचाव अधिक होता है। चन्द्रमा पृथ्वीके जिस ओर रहता है उस ओरका पानी अपनी ओर आकर्षित करता है परन्तु साथ ही साथ पृथ्वी उसके दूसरे ओर खिंच जाती हैं। सूर्य भी इसी प्रकारसे आकर्षित करता है परन्तु बहुत कम। इस कारण अमावस अथवा पूर्णिमाके दिन जब सूर्य और चांद एक ही ओर खींचते हैं तो पूर्ण ज्वार भाटा (Springtide) होती है और जब सूर्य चन्द्रमा समकोणमें होते हैं तो लघु ज्वारभाटा होती है।

जलगुण—जलके कर्म समझनेके लिए उसके गुण भी समझना बहुत आवश्यक है। पानी उज्जन (Hydrogen) और अम्लजन (Oxygen) के संयोगसे बना हुआ है। भार मान संयोग से $\frac{१}{९}$ भाग उज्जन और $\frac{२}{९}$ भाग अम्लजनके अनुपातसे जल बना है। विद्युत प्रवाहसे दोनों तत्व अलग किये जा सकते हैं। पानीमें क़रीब क़रीब सब वस्तुएँ घुल (Dissolve) सकती हैं परन्तु धातु बहुत कम भागमें घुल सकती हैं। पानीका अनुद्भुत अथवा गुप्त ताप (Latent heat) और आपेक्षिक ताप (specific heat) सब तरल वस्तुओंसे अधिक है इस कारण प्राकृतिक संसार में यह बड़े कामकी चीज़ है। पानी देखनेमें कितना ही साफ क्यों न हो परन्तु रसायन शास्त्रके अनुसार कुछ न कुछ उसमें गन्दगी होती ही है। बहुत सी गैसें और धातुएँ उसमें प्रायः घुली हुई रहा करतीं हैं।

नदीका पानी—नदीके जलमें बहुतसे नमक घुले हुए रहते हैं। जो नदियोंके रास्तोंपर निर्भर हैं। जैसी उनकी राह होगी वही वस्तुएं उस नदीके पानीमें घुली होंगी। गैसोंमें कर्बनिकाम्ल गैस (carbonic acid gas) नदियोंके जलमें रहता है और जब नदी चट्टानों और पहाड़ोंसे होकर जाती है तो यह गैस उन पहाड़ों और चट्टानोंके पदार्थोंका विघटन करके उनको अपने साथ बहा ले आती है; यही बालू कहलाते हैं।

नदीके पानीके नमक * (घुले हुए)

खटिक कर्बनित Calcium Carbonate	४२·६०
मग्न कर्बनित Magnesium Carbonate	१४·२०
बालू Silica	६·६०
खटिक गन्धनिक Calcium Sulphate	४·५०
सोडियम गन्धनिक Sodium Sulphate	४·२०
पोटाशियम गन्धनित Potassium Sulphate	२·७०
सोडियम नत्रनित Sodium Nitrate	३·५०
सोडियम हरिद Sodium Chloride	२·२४

* Tables taken from 'The university Extension series—the Realm of Nature.'

लोह अम्लिद..........................३·६०
Iron Monoxide

और नमक..............................१·३०

एन्द्रिक पदार्थ.........................१०·४०
Organic

कुल–१००·००

सिंधु जल–समुद्रका जल नदीके जलसे विशेष खारा होता है। इसमें खारापन सब स्थानोंपर एक सा नहीं है तो भी अधिक अन्तर नहीं है। अन्तर केवल यह है कि अधिक गहराई पर 'खटिक कर्बनित' तथा 'मग्न कर्बनित' का भाग कुछ बढ़ जाता है। समुद्रके पानी मे $\frac{3}{4}$ भाग तो केवल खानेका नमक है। नदियां जाकर समुद्रमें गिरती हैं वे भी अपने साथ कुछ न कुछ घुले हुए पदार्थ ले जाती हैं। और भाप बनने (Evaporation) से भी केवल पानी ही भाप रूपमें जाता है इससे यह सिद्ध होता है कि समुद्र बराबर खारा होता जायगा। खड़िया मिट्टी तथा और ठोस पदार्थ जो सागरों में जाते हैं वे जमा होते रहते हैं और कुछ दिनोंमें नई भूमि कहीं न कहीं बनाते हैं। और कुछ भाग इन पदार्थोंके वे सजीव जन्तु काम में लाते हैं जो सागरोंमें रहते हैं। १००० सेर समुद्र के पानी में ३·५ सेर के लगभग घुले हुए नमक रहते हैं। परन्तु यह तो मालूम है कि खारापन पानीके घनत्व तथा तापक्रम पर निर्भर है। तापक्रम तापमापक यंत्र और घनत्व (Density) जलगुरुत्व मापक यंत्रसे (Hydrometer) मापा जा सक्ता है। महासागर के सतहका पानी नीचेके पानीसे अधिक खारा होता है। नीचेका मीठा पानी सतहके पानीसे विशेष घन होता है क्योंकि उसका तापक्रम बहुत कम और उसपर भार अधिक होता है।

उन सागरों और महासागरोंमें जहाँ पानी अधिक बरसता है खारापन कम होता है और जहाँ पानी कम बरसता है और वष्पीभवन अधिक होता है वहाँ पानी अधिक खारा होता है। जितने नमक पानीमें घुले हुए हैं वह निकाल कर पानीके सतहपर जमाए जायं तो १७५ फ़ुट मोटा टीला बन जाय। यह पहले ही लिखा जा चुका है कि पानीमें गैसें भी घुली हुई हैं। गैसोंका घुलना इन बातोंके अधीन है।

(१) जलका तापक्रम–जितना ही तापक्रम कम होगा उतना ही गैसें अधिक मिलैंगीं।

(२) गैस का दाब (Pressure)–जितना ही दाब अधिक होगा उतनी ही अधिक गैस पानीमें मिलेगी।

(३) जैसी गैस हो।

उसी दाबमें पानी जितना नत्रजनको सोखता है उसका दूना अम्लजनको सोखता है। परन्तु नत्रजन समुद्रके सतहपर वायु-मण्डलके दाब का $\frac{4}{5}$ भाग दाब डालता है और अम्लजन केवल $\frac{1}{5}$। इस कारण समुद्रका पानी जितना अम्लजन सोखता है उसका दूना नत्रजन सोखता है तौभी सामुद्रिक जंतुओंको जो हवा मिलती है उसमें अम्लजनका भाग साधारण हवाके भाग का दूना होता है। समुद्रके जंतु, मरे जंतु, और सड़े पौधे अम्लजनको अपने काममें लाते हैं इस कारण गहरे पानीमें अम्लजन बहुधा कम पाया जाता है यदि सागरका कोई भाग बहुत मैला हो, और वहाँका पानी न हिले तो कुछ दिनोंमें अम्लजन न पाया जायगा परन्तु रसायनिकोंने कभी समुद्र जलको अम्लजनसे अलग नहीं पाया इस से यह प्रमाणित है कि पानी सागरों तथा महासागरोंमें हमेशा डोला करता है 'कर्बनिकाम्लगैस' हवामें बहुत कम मिलता है।

दाब—प्रोफ़ेसर टेट (Tait) ने अपने

पुस्तकमें लिखा है कि समुद्र अपने ही भारसे बहुत कम दबता है। समुद्रके धरातलके नीचे पानीका दाब प्रत्येक वर्ग इंचपर लग भग २८ मनके होता है और नीचे पृथिवीपर प्रत्येक वर्ग इञ्चपर १०० मनके लगभग दाब है।

ताप और सिन्धु जल--ज्यों ज्यों समुद्रका पानी गर्म होता है उसका घनत्व कम होता जाता है और घनफल बढ़ता जाता है। समुद्र जलमें नदीके जलसे तापके चलनेकी शक्ति अधिक होती है। इस कारण सतहका ताप बहुत शीघ्रता से नीचे पहुँच जाता है। दिन भरमें सूर्यकी गर्मी के कारण पृथिवी खूब तपती है और रातको गर्मी न होनेसे एकाएक ठंढी हो जाती है। जलका यह नियम है कि वह धीरे २ गर्म होता है और धीरे २ ठंढा होता है। समुद्रके किनारे पृथिवीमें जो भाग हैं वे कभी आसन्न समुद्रसे अधिक गर्म या अधिक ठंढ होते हैं इस कारण समुद्रके किनारेके देशोंमें स्थल पवन (Land breeze) और समुद्र पवन (Sea breeze) प्रायः आया करते हैं। दिनके समय जब पृथिवी बहुत तपती है तो उसके ऊपरकी हवा भी बहुत गर्म हो जाती है। परन्तु समुद्रकी हवा इतनी गर्म नहीं होती। पृथिवीकी हवा गर्म होनेके कारण ऊपर आती है और समुद्रकी ओर जाती है और उस की जगह भरनेके लिए समुद्रसे हवा पृथिवीपर आती है यह दृश्य सायंकालमें होता है। प्रातःकालमें इसका बिल्कुल उलटा होता है। इसीको स्थलपवन और समुद्रपवन कहते हैं।

तापक्रम—नदियोंका पानी विशेषतः १७° 'शतांश' गर्म होता है परन्तु गर्मी के दिनोंमें यदि पानी न बरसे और धूप अधिक हो तो ताप बढ़ सकता है। पहाड़ी नदियोंका पानी गर्मीमें समुद्रसे अधिक गर्म और जाड़ेमें समुद्रके पानीसे अधिक ठंढा होता है। गर्मीमें सागरोंका पानी बहुत गर्म नहीं होता परन्तु जाड़ेमें गर्मी बढ़ जाती है।

ईश्वरने हमारी आवश्यकताओं को भली भाँति समझकर ऐसी वस्तुएं जो अति आवश्यक हैं ऐसे भागमें दिया है कि हमारी आवश्यकताएं भली प्रकार से पूरित हो सकें। जल और हवा के बिना जीना कठिन है इस कारण यह बहुतायतसे पाए जाते हैं साथ ही साथ मितव्ययता भी है नहीं तो यदि कुल पानी सागरों तथा महासागरोंमें बहकर जाता और भाफ कुछ भी न बनती तो कुछ दिनोंमें समुद्र हमारी पृथवीको घेर लेता। परन्तु प्रकृतिका स्वभाव ऐसा है कि वह हमारी दशाओंको समझती है। वही पानी समुद्रसे भाफ बन कर आकाशमें जाता है वहाँ बादलके रूपमें गाढ़ा होता है और जलके रूपमें पृथिवीपर गिरता है और फिर नदियोंमें होकर समुद्रमें जाता है।

कोष (सेल) की बनावट

[ले०---बाबू राधानाथ टंडन)

लगभग सौ वर्ष या कुछ कम हुआ होगा कि कई जन्तुविद्या-विशारदों ने cell अर्थात् कोष पर जिसके बारे में नीचे लिखा जायगा एक सिद्धान्त स्थिर किया जिसे (cell theory) कोष सिद्धान्त कहते हैं यह सिद्धान्त दो मुख्य बातों से बना है। पहली यह कि सब देहधारी, कोषों (cells) अर्थात् शरीर के सब से छोटे अणुवीक्षणीय टुकड़ों के समूह से या एक ही कोष अर्थात् एक ही टुकड़े से बने हैं, और दूसरी यह कि बड़े से बड़ा जानवर जैसे हाथी, ह्वेल (एक प्रकार की दूध पिलानेवाली मछली) इत्यादि भी किसी समय एक कोष के ही (unicellular protozoon) प्राणी थे जैसे 'अमीबा' (amaeba) आदि। इस सिद्धान्त

[Zoology जीव विज्ञान]

की यह दो बातें, अणुवीक्षण (microscope) द्वारा देखने और बहुत दिनों की परीक्षा से अब बिलकुल ठोक मान ली गयी हैं। इसी सिद्धांत (theory) का आश्रय लेकर आधुनिक वैज्ञानिकों ने जीव जन्तु सम्बन्धी बड़ी बड़ी बातों का आविष्कार किया है।

विचार करने से प्रकट होता है कि इस सिद्धांत की नींव डालनेवाले वनस्पति शास्त्रज्ञ ही हुए होंगे, क्योंकि उन्होंने ही सब से पहले कोषों (cells) की परीक्षा की और देखा कि ये बिलकुल शहद की मक्खियों के छत्ते के कोषों अर्थात् छोटी २ कोठरियों की तरह हैं। इसी लिए इनका भी नाम उन्होंने 'कोष' ही रखा। इस परीक्षा से एक बड़ा दृढ़ अनुमान उनके चित्त में यह हुआ कि सब कोष (सेल) दीवारों से बने हैं और साथ ही साथ यह भी विचार किया कि ये दीवारें वास्तव में एक विशेष गुण रखती हैं। ये दीवारें जानवरों में या तो बिलकुल ही नहीं होतीं या बहुत ही सूक्ष्म होती हैं। पर वानस्पत्य पदार्थों में बहुत साफ़ दिखलाई देती हैं और विशेष रूप से पाई भी जाती हैं। यदि वानस्पत्य पदार्थों के कोषों की दीवारें रासायनिक रीति से तैयार किये हुए घोलों (solutoins) से परीक्षा द्वारा देखी जाँय तो जान पड़ेगा कि यह दीवारें एक चिपचिपे पदार्थ के बने हैं जिनको अंग्रेजी में सेलूलोस (celluliose) कहते हैं। इस सेलूलोस cellulose में ठीक वही तीन मूल पदार्थ पाये जाते हैं जिनसे माड़ वा स्टार्च (starch) बनता है, अर्थात् ओषजन (Oxcygen) उद्जन (Hydrogen) तथा आङ्गार (Carbon)।

वास्तव में 'सेल' की भीतरी चीज़ें ही आवश्यकीय और सब कुछ हैं क्योंकि इन्हीं सब चीज़ों के संयोग से कोष बनता है। पर कोष के भीतर की बातों को बतलाने के पहले यह आवश्यक और उचित जान पड़ता है कि कोष के सम्बन्ध में थोड़ी सी प्रारम्भिक बातें स्पष्ट रीति से बतलायी जाँय। यदि अणुवीक्षण द्वारा हम लोग अपने पीने के दूध या पानी की परीक्षा करें तो देखेंगे कि हमारे पीने की चीज़ों में बहुत छोटे छोटे कीड़े (microbes) रेंगते हैं जिनको हम नंगी आखों से नहीं देख सकते। यह कीड़े अधिकतर एक कोष के होते है, और 'एक कोषी प्राणी' (unicellular protozoa) कहलाते हैं। जानना चाहिये कि ऐसे ही एक कोषी कीड़े मलेरिया (malarla) कालरा (cholera), प्लेग (plague) आदि बीमारियों के कारण होते हैं। प्लेग आदि के दिनों में चिकित्सक लोग पानी और दूध उबाल कर पीने की राय देते हैं। यदि हम अपने शरीर का एक बूंद रक्त लेकर अणुवीक्षण से देखें तो साफ़ दिखलाई देगा कि हमारे रक्त में अगणित 'सजीव कोष' (living cells) विद्यमान हैं जिनके कारण हम लोग 'बहु कोषी' (multicellular) कहलाते हैं। हम चाहे ऊपर कहे हुए किसी कीड़े की बनावट की परीक्षा करें चाहे अपने ही शरीर के एक कोष की, बात दोनों में एक ही मिलेगी, क्योंकि दोनों ही सजीव कोष (Living cells) हैं और मनुष्य स्वयम् ही एक कोष से पैदा हुआ है।

कोष के सम्बन्ध में एक यह बात और ध्यान रखने की है कि अणुवीक्षण द्वारा हमको कोष चपटे दिखाई देते हैं परन्तु वास्तव में चपटे नहीं होते, वरन् गोलाकार या और किसी ऐसे आकार के होते हैं जिनमें लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई होती है; जैसे रक्त में के कोष या तालु (Polate) से खुर्चे हुए और जुदा किये हुए कोष। चपटी सूरत तो अणुवीक्षण द्वारा देखने के लिए जीवों के शरीर का सेकशन (Section) अर्थात 'काट' लेने से हो जाती है।

अणुवीक्षण द्वारा देखा गया है कि वानस्पत्य पदार्थों के कोष जानवरों के कोषों की अपेक्षा बहुत कम अलग अलग होते हैं और यह भी निश्चय हुआ है कि वानस्पत्य पदार्थों के कोषों की दीवारों में छोटे छोटे छेद होते हैं जिन में से होकर हरेक कोष का जीवनमूल (protoplasm) जो कि जीवन का मूल कारण है, जीवन मूलीय तन्तुओं वा डोरों (protoplasmic strands) के द्वारा दूसरे कोषों के जीवनमूल से बराबर मिला रहता है, जैसा कि नीचे के चित्र से प्रत्यक्ष होगा।
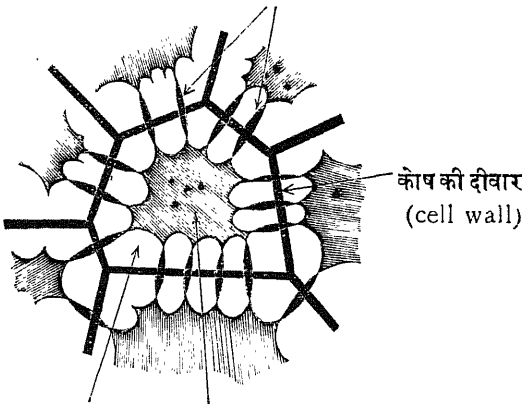
इस चित्र में ऊपर एक कोष पूरा दिखा कर नीचे को दूसरा कोष केवल थोड़ा सा बना कर छोड़ दिया गया है। इससे हमारा मतलब यह है कि पाठक कोषों के डोरों का सम्बन्ध समझ सकें।

विज्ञान के जाननेवालों को मालूम होगा कि ये डोरे अपना काम ठीक उसी तरह करते हैं जिस तरह हमारे बदन की नसें। जब कभी किसी सचेत (sensitive) पौदे की पत्तियों को छूते हैं तो सब पत्तियाँ मुरझाकर लटक जाती हैं। इससे यह परिणाम निकलता है कि एक जगह छूने से उसका असर सब पत्तियों में जीवनमूल के डोरों के द्वारा हो जाता है। वनस्पति-क्रिया-विज्ञान (plant physiology) सम्बन्धिनी ऐसी ऐसी आश्चर्यप्रद बातें जैसे जड़ का सब अवस्था में पृथ्वी और जल की ही तरफ़ आकर्षित होना और तनों (stems) का सूर्य्य की किरणों की ओर उठना, हमें यह बताते हैं कि कोष की दीवारों में छोटे छोटे छेदों का होना पौदों के जीवन के लिए परमावश्यक है।

अब यदि हम जानवरों के कोष की दीवारों (cell walls) की परीक्षा करें—उदाहरण के लिए हम उच्च श्रेणी के किसी जानवर के रक्त के लाल कोष (red cell) को ले सकते हैं—तो देखेंगे कि इसमें कोई ऐसी (cell wall) कोष की भीत नहीं होती जिसको हम देख सकें परन्तु कोष के ऊपर का चिकना अंश दिखाई देता है जिसको हम पतली झिल्ली (membrane) कह सकते हैं। कोष के ऊपर दबाव डालकर हटा लेने पर कोष फिर अपने आकार में आ जाता है जिससे यह ज्ञात हुआ कि कोष की झिल्ली लचीली होती है। यह झिल्ली चाहे जिस पदार्थ की बनी हो पर जल या पतले घोलों को कोष के भीतर आने जाने से नहीं रोक सकती।

हर एक कोष में इन तीन कार्य्यों का होना आवश्यक है (१) खाना लेना (२) सांस लेना और (३) मल त्यागना या यों कहा जाय कि वायु (gas) और द्रव (liquid) का झिल्ली से होकर एक कोष से दूसरे कोष में जाना इस के जीवन के लिए परम आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो कोष तुरन्त मर जाय पर साथ ही साथ यह भी जानना चाहिये कि यदि यह झिल्ली मलमल की जाली की तरह होती और हर तरह के वायु और द्रव को एक कोष से दूसरे कोष में आने जाने देती तो भी कोष मर जाता क्योंकि ऐसी अवस्था में कोष विषैले द्रव को भी ले सकता। पर वास्तव में ऐसा नहीं है। यह झिल्ली

उन्हीं चीज़ों को आने जाने देती है जिन से इस के भीतर का जीवनमूल (rrotoplasm) बनता है। अब मैं विश्वास करता हूँ कि कोष के संबंध में इतनी बातों के बतला देने से हमारे वह पाठकगण भी अच्छी तरह समझ जायँगे जिन्हें इस विषय के पढ़ने का कभी काम नहीं पड़ा, कि कोष क्या है, कहाँ होता है और किस तरह का होता है। कोष को सेल भी कहते हैं।

कोष की भीतरी बनावट

सब से पहली बात जो इसके सम्बन्ध में समझने योग्य है वह यह कि कोष के भीतर का मुख्य अंश जीवनमूल है जिसको हक्सले (Huxley) नामक प्राणितत्त्ववेत्ता physical basis of life अर्थात जीवन का मुख्य कारण कहता है। इस जीवनमूल की बाबत जितना कहा जाय थोड़ा है क्योंकि यह एक ऐसी अद्भुत चीज़ है जिसका पूरा पूरा हाल मनुष्य ने अभी तक नहीं जाना, और न इतना बलवान अणुवीक्षण ही हो सकता है कि जिस से सूर्य की किरणों के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन कर इसका पूरा २ हाल मालूम किया जाय। पर तो भी वैज्ञानिकों ने अणुवीक्षण द्वारा देखने से इसके संबन्ध में बहुत कुछ जाना है। कभी तो इसकी बनावट जालीदार, कभी दानेदार कभी एक मेल (homogeneous) और कभी फेनदार बतायी जाती है। पर यह अन्तिम बात ठीक जान पड़ती है क्योंकि बुचली (Butchli) नामक पंडित ने इसको साक्षात प्रमाणित करने के लिए परीक्षा की। उन्होंने आङ्गारकीय पोटाश (potassium carbonate) और ज़ैतून के तेल को मिलाकर कुछ देर गरम किया। जिसका परिणाम यह हुआ कि दोनों के योग से एक फेनदार रूप हो गया और अणुवीक्षण द्वारा देखने से बिलकुल जीवनमूल की बनावट सा मालूम होने लगा। हम लोगों को इसकी बनावट पर ध्यान रखने के लिए इतना समझ लेना चाहिये कि यह एक उज्वल गाढ़े रस (jelly) के सदृश होता है जो कि और बहुत सी चीज़ों के होने से दानेदार दिखाई देता है। यह जीवनमूल अनेक तरह के पेचीदा और विलक्षण मिलावट से बना है। इसके मरजाने पर कई तरह के प्रोटीड (proteid) अर्थात् मांस जातीय पदार्थ जो कि आङ्गार (carbon) उदजन (hydrogen) ओषजन (oxygen) नाइट्रोजन (nitrogen), गन्धक (sulphur) और कभी २ फास्फोरस (phosphorus) के मिलने से बनता है, दिखाई देने लगते हैं। इससे यह जानना चाहिये कि जीवनमूल इन मूल पदार्थों की विलक्षण मिलावट से ही बना है।

अब यदि हम अणुवीक्षण द्वारा किसी कोष को देखें तो कोष के भीतर एक छोटा सा धब्बा दिखाई देगा। यह धब्बा जिसका चित्र नीचे दिया है। कोष के ठीक बीच में जीवनमूल का
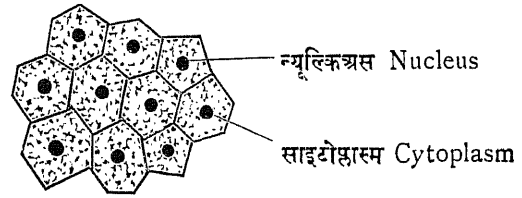
एक छोटा सा अंश है जो कि इससे अलग होकर एक नयी सूरत पकड़ता है। यह धब्बा बहुधा गोलाकार या अंडाकार होता है। इस धब्बे को अंग्रेज़ी में न्यूक्लिअस (Nucleus) अर्थात् बीज कहते हैं। इसी बीजको (न्यूक्लिअस) जीवन का मूल स्थान समझना चाहिये। बीज के के भीतर का हिस्सा जैसा कि अगले चित्र से मालूम होगा, न्यूक्लिओप्लास्म (Nucleoplasm) और बाहर का हिस्सा सैटोप्लास्म (cytoplasm) कहलाता है, और दोनों मिलकर प्रोटोप्लैस्म कहलाते हैं। पहले कहा गया है कि प्रोटोप्लैस्म गाढ़े रस की तरह होता है। पर इससे यह न समझना चाहिये कि वह

केवल रस ही रस होता है। इसमें वैज्ञानिकों के निर्णय के अनुसार एक महीन जाली होती है जोकि इस रस से लबालब भरी रहती है। यह जाली रेटीकुलम (reticulam) कहलाती है और रस को ह्यालोप्लैस्म (hya oplasm) कहते हैं।

और जीवन के सम्बन्ध में कोष का एक मुख्य अंश है।

कोष की बनावट को भली भांति पढ़ने से जान पड़ेगा कि कोष के भीतर और बहुत तरह की चीज़ें रहती हैं जिन को जीवनमूल का
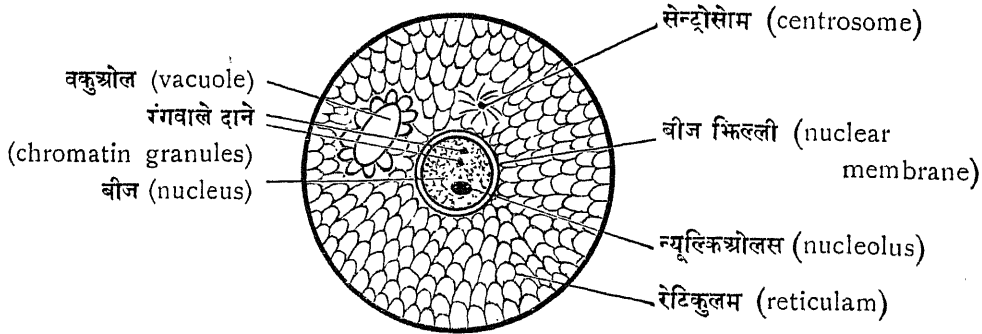
एक कोष का चित्र

ऊपर के कई गुना बढ़ाये हुए कोष के चित्र से मालूम होगा कि बीज (nucleus) एक झिल्ली से जिसको बीज (न्यूक्लिअस) झिल्ली (n cleus membrane) कहते हैं घिरा रहता है।

क्षुद्रवीक्षण द्वारा देखने से बीज (nucleus) के भीतर भी एक या कई छोटे छोटे धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे न्यूक्लिओलाई (nucleoli) कहलाते हैं और एक विशेष रङ्ग को जल्दी पकड़ लेते हैं। यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो जान पड़ेगा कि बीज के भीतर बहुत छोटे छोटे दाने हैं जो रंग वाले दाने (chromatin granules) कहलाते हैं, और जो ऊपर कही हुई जाली से चिपके रहते हैं।

बीज और उसके भीतर के पदार्थों पर बहुत लिखना और उनके कार्य्यों को यहाँ विस्तार से दिखलाना मैं अभी उचित नहीं समझता। केवल इतना समझ लेना चाहिये कि यह और इस के भीतर के दाने उत्पत्ति से घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं, और यह कि बीज (nucleus) उत्पत्ति अंश न समझना चाहिये। उनका ठीक सम्बन्ध समझना बहुत कठिन है। कोष की परीक्षा करने से जान पड़ेगा कि इसमें ओषजन (oxygen) और आङ्गारक अम्ल (carbonic-acid) रहते हैं। आङ्गारक द्रावक कदाचित इस के भीतर के जल में जो कि जीवनमूल का एक बहुत बड़ा भाग है छुआ रहता है। पर यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि यह आङ्गारकअम्ल (carbonic acid) उन चीज़ों में से नहीं है जिन से जीवनमूल बनता है पर उन विषदार चीज़ों में से है जिन को यह मल के रूप में त्यागता है और जिनका निकल जाना कोष के जीवन के लिए आवश्यक है। यौगिक अणुवीक्षण (compound microscope) द्वारा देखने से मालूम होगा कि कोष के साइटोप्लास्म (cytoplasm) में बहुधा एक गड्ढा सा रहता है जिन में कोष का भोज एकत्र होता है। इस गड्ढे को वैकुओल (vacuole) कहते हैं। एक महत्त्व की बात इस के सम्बन्ध में यह है कि इसमें बीज (nucleus) के पास ही जैसा कि अन्तिम चित्र

में दिखाया है गोल विन्दु सा होता है जो कि कोष के खण्ड में मुखिया या नेता का सा काम करता है, क्योंकि कोष के खण्ड होने के पहले ही यह दो भागों में विभक्त हो जाता है। इसको अंग्रेज़ी में सेंट्रोसोम (centrosome) कहते हैं। इसके चारों ओर के सैंटोप्लास्म (cyto-plasm) को जिसके कारण यह विन्दु कोष के खण्ड होते समय सितारे का सा हो जाता है सेन्ट्रासफिअर (centrosphere) कहते हैं।

अन्त में एक सब से उत्तम बात जानने योग्य यह है कि हरे पौदे के कोष में एक तरह के हरे दाने होते हैं जिनको 'क्लोरोफ़िल ग्रेन्यूल्स' (chlorophyl granules) कहते हैं और जिन का होना हरे पौदों के जीवन के लिए परम आवश्यक है पर जिनका पूरा वर्णन कभी और किया जायगा। कोषों में इन्हीं हरे दानों के रहने से वृक्ष और पौदे जो हम अपने चारों ओर देखते हैं हरे दिखाई देते हैं। अब इस विषय का अधिक विस्तार यहाँ असंभव है। तब भी आशा है कि हमारे पाठक गण इसको ध्यान पूर्वक चित्र सहित पढ़ने से कोष की बनावट बहुत कुछ समझ जायँगे।

मनोविज्ञान

[ले० पं० भगवन्नारायण भार्गव]

'मुझे इस विषय का ज्ञान है' 'मेरा यह स्वभाव है' 'मैं इस बात पर विश्वास करता हूँ' 'मेरी ऐसी इच्छा है' 'मैं यह विचार कर रहा हूँ' इत्यादि वाक्यों को हम नित्य व्यवहार करते हैं और हम को इनमें कोई विशेषता नहीं मालूम होती। परन्तु यदि हम इन्हीं वाक्यों पर सूक्ष्मबुद्धि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि इन वाक्यों का ठीक भीतरी अर्थ हम किसी विज्ञान विशेष द्वारा ही जान सकते हैं। यदि हम किसी साधारण मनुष्य से प्रश्न करें कि 'ज्ञान' क्या वस्तु है, 'स्वभाव' किसको कहते हैं और 'विश्वास' और 'इच्छा' किसका नाम है तो वह इन प्रश्नों का ठीक ठीक उत्तर न दे सकेगा क्योंकि यह शब्द नित्य प्रति व्यवहार में आते रहने के कारण इतने सरल और साधारण समझे जाते हैं कि इनके भावार्थ का ठीक ज्ञान प्राप्त करना अनावश्यक सा समझा जाता है। इच्छा, कर्म, ज्ञान, भावना आदि शब्द मन और आत्मा से सम्बन्ध रखनेवाले हैं अतएव जब हम मन और आत्मा के आन्तरिक विषय का निर्णय करेंगे तभी हमको इन शब्दों का तत्त्व पूरा पूरा बोध होगा।

फलतः इन बातों का निर्णय करना उस विज्ञान का काम है जिसको अंगरेज़ी में साइकोलोजी Psychology और संस्कृत में मनोविज्ञान कहते है। इसका दूसरा नाम अनुभव-विज्ञान भी कहा जाता है। यह वह शास्त्र है जो हमारे परम्परा के अनुभवों की महीन आलोचना (observation) और मानसिक अवस्थाओं का विश्लेषणपूर्वक (analysis) यथार्थ निर्णय करे और यह बतलाए कि मन का उसके भावों के साथ क्या सम्बन्ध (relation of subject to subject) है। इन्हीं तीन रीतियों से इस विज्ञान का काम होता है परन्तु हम उचित समझते हैं कि इस विज्ञान का नाम मनोविज्ञान ही रक्खा जावे क्योंकि यह प्रचलित शब्द है अतः इस प्रयोजन को समझने में सुविधा होगी। पाठकों को एक बात का ध्यान रखना होगा कि 'मन' शब्द का भावार्थ ठीक वही न होगा जो कि संस्कृत के दर्शन शास्त्रों में लिया गया है; प्रत्युत इस शब्द के अर्थ में आत्मा का प्रधान गुण 'ज्ञान' समाविष्ट होगा। अतः मन का गुण अनुभव (experience) करना मान लिया जाता है।

अब हमें विचार करना चाहिये कि अनुभव

[Psychology मनोविज्ञान]

किस को कहते हैं और वह किन किन अंगों से बना है। यूरोप के प्राचीन वैज्ञानिकों में से किसी का मत है कि परिज्ञान (cognition) एक ऐसा शब्द है जो अनुभव (experience) के लिए उपयुक्त रूप से व्यवहार किया जा सकता है परन्तु यह ठीक नहीं है क्योंकि हम नित्य अपने ही अनुभव से देखते हैं कि इसमें परिज्ञान के अतिरिक्त कुछ और भी है। उदाहरण के लिए मान लें कि हम किसी पुस्तक का अध्ययन कर रहे हैं, अब हम विचारें कि इस काम में किन किन बातों का समावेश है? मनन करने से उत्तर निकला कि इसमें तीन बातों का समावेश है, एक तो पुस्तक का 'पाठ' दूसरे इस पाठ से किसी ज्ञान का लाभ, तीसरे उस ज्ञान से 'आनन्द, क्रोध, भय, प्रेमादि' में से किसी का प्रादुर्भाव। इन तीनों बातों के संयोग को हम पुस्तक का अनुभाव कहेंगे। यद्यपि इसके लिए 'ज्ञान' शब्द भी बहुत व्यापक अर्थ रखता है। लोग व्यवहार कर सकते हैं परंतु ज्ञान शब्द अव्याप्ति वा अतिव्याप्ति रहित ठीक भावद्योतक नहीं है। इस उदाहृत अनुभव में ज्ञान की मात्रा तो अवश्य अधिक है परन्तु जब तक हम पाठ करने की (action or conation) और ध्यान देने की क्रिया न करेंगे तब तक हमको ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है। पुनः, यदि हम को उस पुस्तक के मनोयोग पूर्वक पाठ से आनन्द (pleasurable feeling or affection) प्राप्त होता रहा तो हमारा ध्यान उस पुस्तक के पाठ में और भी अधिक लगेगा और उसके पढ़ने की इच्छा (desire of conation) भी बढ़ती जावेगी। अतएव उस पुस्तक सम्बन्धी हमारा परिज्ञान (cognition) भी वृद्धि पाता जायगा क्योंकि अभिरुचि पूर्वक जितना अधिक ध्यान हम किसी काम में लगावेंगे उतनाही अधिक उस विषय की गूढ़ बातों में हमारा प्रवेश होगा। यदि हमें उस पुस्तक से किसी प्रकार का दुःख (feeling or affection of pain) हुआ और पुस्तक से घृणा हो गई तो हमारा ध्यान भी कम लगेगा और पुस्तक के विषय का परिज्ञान भी ठीक ठीक न होगा। और हमें उस पुस्तक के भावों के परिज्ञान के प्रति निरुत्सुकता होगी।

ऐसे ही अनेकों उदाहरणों से हमको नित्य ज्ञात होता रहता है कि स्वस्थ प्रौढ़ मनुष्य का अनुभव पूर्वोक्त तीन अंगों से बना है। यह दशा मदोन्मत्त अथवा और किसी प्रकार से अस्वस्थ मनुष्य, पशु, पक्षी और छोटे बालकों के अनुभव की नहीं होती; इनमें प्रायः सुख दुःख विषयक (affection) अंत की मात्रा अधिक होती है। सारांश यह है कि मनोविज्ञान उस अनुभव (experience) की छान बीन करता है या निर्णय करता है, जो परिज्ञान (cognition) उद्योग activity or conation) और मान (सुख दुःखादि का ज्ञान) (affection or feeling) तीन अंगों से बना है परन्तु यह अनुभव किसी व्यक्ति विशेष का ही नहीं किन्तु सभी मतों का अनुभव है। इन्हीं तीनों अंगोंका पृथक पृथक विस्तार पूर्वक वर्णन और तीनों के योग का मनुष्य पर प्रभाव और उनकी उत्पत्ति और वृद्धि का विवरण मनोविज्ञान का काम है। अब आगे यह बतलाया जायगा कि साधारण इन्द्रियज्ञान (sensation) किस प्रकार विभावना (perception) होकर, स्मृति (memory), कल्पना (imagination) और तुलना (comparison) द्वारा प्रबोध (conception) बन जाता है। इसके पश्चात् विसम्प्रेतन क्रिया (conation) के विषय में यह बतलाया जायगा कि आवेग (impulse) और सहजावबोध (instinct) किस वैज्ञानिक रीति से मनोरथ (desire) और स्वच्छन्द अभीष्ट (purposive volition) में परिवर्तित हो जाते हैं और मनुष्य का चरित्र (character) कैसे बनता है। प्रभाव (सुख दुःख) (affection) के विषय में यह बतलाया जायगा कि मात्रास्पर्श सुख और दुःख का भाव (sense-

feeling) किस प्रकार मनोगत-रागों (varieties of emotions) में परिवर्तित होकर परमानन्द (blessedness) बन जाता है। इन बातों के बतलाने का अभिप्राय यह है कि पशु, पक्षी, बालक और मनुष्य के ज्ञान, कर्म और सुख दुःख में कुछ भेद है या नहीं, यदि है तो क्या है? अस्तु।

इन पर विचार करने के पूर्व हम को इस विज्ञान की दो प्रधान बातों पर ध्यान देना चाहिये। प्रथम, चेतना-सातत्य (continuity of consciousness) और दूसरे पारस्परिक सम्बन्ध नियम (law of relativity)।

चेतना सातत्य का यह अर्थ है कि मनुष्य के जीवन में चेतनासूत्र वास्तव में कभी नहीं टूटता। जब हम निद्रा में निमग्न होते हैं तब भी चेतना (consc'ous ess) का सातत्य छिन्न (brea h of con inuity नहीं होता। क्योंकि उस समय भी हमारा मन बीती हुई बातों में प्रवृत्त रहता है यदि हम निद्रा के पश्चात् अपनी सब पहलेकी जागृतावस्थाकी घटनाएँ और अपने अनुभवों को भूल जाते होते तो हम सदा बालक हो बने रहते और प्रौढ़ न होने पाते। जिस समय कोई रोगी संज्ञाहीन कहा जाता है उस समय भी उसका मन अपना वास्तविक अस्तित्व नष्ट नहीं करता किन्तु अपने प्राचीन अनुभवों के सागर में विमुग्ध रहता है। पारस्परिक सम्बन्ध नियम का यह भावार्थ है कि हमारे एक मानसिक कार्य का प्रभाव दूसरे कार्य पर अवश्य पड़ता है, यदि ऐसा न होता तो हमारे अनुभव का वृत्त कदाचित भी विस्तारित न होता। इसी नियम के अनुसार हमें नित्य के अनेक व्यवहारिक परिवर्तनों के भेद का ज्ञान होता है और जिस समय इन परिवर्तनों का ज्ञान नहीं होता है वही अवस्था साधारणतः संज्ञाहीनता (unconsciou ness) की कही जाती है परन्तु यह हमें अवश्य मानना पड़ैगा कि चेतनता का परिमाण निद्रा में वा रोग में कम होता है और जागृत और स्वस्थ अवस्था में अधिक। यही कारण है कि वैज्ञानिकों ने चेतना के विविध परिमाणों की व्यवस्था की है। जब कोई वस्तु हमारे पूर्णज्ञान में होती है चेतना केन्द्रस्थ (in the focus of con ciousness) कही जाती है और उसी समय जिन वस्तुओं का ज्ञान कुछ कम होता है चेतना तटस्थ (in the margin of consciousness) कही जाती हैं। जिनका और भी कम ज्ञान होता है वे चेतना कल्पस्थ (in sub-consciousness) कही जाती हैं और जो घटनाएं भूतकाल में हुई थीं और उन्हें हमने अब नितान्त विस्मृत कर दिया और प्रयत्न से भी स्मरण नहीं कर सकते अचेत दशा में (state of unconsciousness) वा संज्ञा हीनत्व में समझी जाती हैं।

उदाहरण—हम स्टेशन पर बैठे एक पुस्तक पढ़ रहे हैं चारों ओर से नर नारियों के शब्द आ रहे हैं। किसी ओर से ट्रेन की कूक का रव सुनाई दे रहा है कहीं घण्टियों की टन टन सुनाई पड़ रही है परन्तु वह पुस्तक रोचक है, हमारा चित्त उसमें इतना निमग्न हो गया चारों ओर का कोलाहल हमारे लिए है ही नहीं। इस उदाहरण में पुस्तक का भाव तो हमारे संज्ञाकेन्द्र में है और वह पुस्तक और उसके अक्षर संज्ञातटस्थ हैं और सारे हल्ले गुल्ले संज्ञाकल्पस्थ हैं, परन्तु ज्यों ज्यों उस पुस्तक की रोचकता बढ़ती जावेगी और हमारा ध्यान उसमें अधिक अधिक निमग्न होता जावेगा, त्यों त्यों बाहरी शब्दादिकों के प्रति हमारा ज्ञान भी क्षीण होता जायगा और कुछ समय तक ऐसी ही अवस्था रहने पर हमको उन शब्दों का कुछ भी ज्ञान न रहेगा तब हम कहेंगे कि वे शब्द संज्ञाहीनत्व की अवस्था में वर्तमान हैं।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि जो घटनाएँ

हमारे भूतकाल के अनुभव में हुई थीं और जो स्मरण करने से आवश्यकता अनुसार उपस्थित हो सकती हैं वर्तमान समय में किस स्थिति में रहती हैं। इसका उत्तर वैज्ञानिक लोग यह देते हैं कि वह मानसिक अन्तर्भाव (mental-disposition) में रहती हैं। इसी मानसिक अन्तर्वृत्ति की उन्नति पर मनुष्य के अनुभव संग्रह की उन्नति निर्भर है अतएव वैज्ञानिकों ने इसको प्राधान्य दिया है। चेतना सातत्य, पारस्परिक सम्बन्ध नियम और मानसिक अन्तर्वृत्ति तीनों का पूरा लाभ उस समय ज्ञात होगा जब दूसरे लेख में परिज्ञान क्रिया और पदार्थ की विवेचना की जावेगी।

———

वायु-मण्डल और उसका दबाव

(ले० केशवचन्द्र सिंह चौधरी एम्. एस. सी एल्.एल बी. और महावीर प्रसाद बी. एस सी एल टी)

काशीके एक स्कूलमें रामचन्द्र नाम का एक लड़का पाँचवीं क्लासमें पढ़ता था। कई दिन से उसको खाँसी आती थी। एक दिन उस के पिता जी उसको साथ लिये हुए एक वैद्य के पास गये और उनसे खाँसी की औषधि पूछने लगे। वैद्य जी ने कहा "इस लड़के को सर्दी लग गयी है और कफ़ का विकार हो गया है। अड़ूसे की पत्ती के रस में उसी के बराबर शहद और थोड़ा सा छोटी पीपल का चूर्ण मिलाकर प्रातः ३, ४ दिन सेवन करने से खाँसी चली जायगी।"

वैद्य जी के यहाँ से लौटते समय रामचन्द्र के पिता एक कच्ची शीशी मोल लेकर बनिये के यहाँ शहद के लिए गये और उससे एक छटाँक शहद माँगा। जब शीशी बनिया को देने लगे तो बनिये ने कहा "बावू जी इसका मुँह बहुत तंग है, चौड़े मुँह की शीशी होती तो अच्छा होता"। बावू जी ने कहा "इस समय इसी में दे दो। चौड़े मुँह की शीशी बाज़ार में कहीं मिलती नहीं और घर जाने में देर होगी"

बनिया बोतल निकालकर शीशीमें शहद उड़ेलने लगा थोड़ा शहद शीशी में गिरा, फिर गिरना बन्द हो गया। बनिये ने बोतल सीधी करके झुकाया जिससे थोड़ा शहद फिर गिर पड़ा। इस तरह कई बार में एक छटाँक शहद शीशी में आया। रामचन्द्र यह सब बड़े ध्यान से देखता रहा और अन्त में बनिये से पूछ बैठा "क्यों जी बारबार बोतल को सीधा कर देने से शहद क्यों गिरने लगता है?"

बनिये ने कहा "भैया शहद बहुत गाढ़ा होता है, झुकाने से कुछ देर तक गिरता है फिर इतना शहद बोतल के मुँह के पास चला आता है कि रास्ता बन्द हो जाता है जिस से शहद का निकलना भी बन्द हो जाता है।"

रामचन्द्र—रास्ता कैसे बन्द हो जाता है? रास्ता तो तब बन्द होता जब शहद के सामने कोई पदार्थ आ जाता। शहद के सामने स्थान ख़ाली है फिर रास्ता कैसे बन्द हो गया?

बनिये ने कहा, "भैया, तुम्हारे सवाल का जवाब मैं नहीं दे सकता। हाँ यह कह सकता हूँ कि जब शहद एक साथ बोतल के मुँह के पास आ जाता है तो उसका गिरना बन्द हो जाता है और बोतल सीधी करके फिर झुकाने से गिरने लगता है। पढ़े लिखे लोग इसकी बारीकी को समझते होंगे।"

रामचन्द्र—क्यों पिता जी, वह बनिया कहता है कि बोतल को झुकाये रहने से शहद मुँह के पास आकर रास्ता बन्द कर लेता है इस लिए उसका गिरना बन्द हो जाता है। भला शहद स्वयम् अपना रास्ता कैसे बन्द कर सकता है। यह बात तो तब होती जब कोई और वस्तु उसके सामने आ जाती।

पिता—बनिये का कहना कि रास्ता बंद

हो जाता है बिलकुल ठीक है और तुम्हारा कहना कि दूसरी चीज़ के सामने आजाने से रास्ता बन्द हो जाता है यह भी ठीक है। क्या तुम समझते हो कि शहद के सामने रोक लगाने के लिए कोई चीज़ नहीं है ?

रामचन्द्र—कोई चीज़ दिखाई तो नहीं पड़ती, फिर कैसे मालूम हो कि आप का कहना ठीक है।

पिता—संसार में बहुत सी ऐसी चीज़ें हैं जो दीख नहीं पड़तीं और इनका न दिखाई पड़ना भी बड़े महान कार्य्य को सम्पादन करता है किन्तु यह सब अदृश्य और सूक्ष्म पदा[illegible] भी अपने लक्षण और गुणों से पहचा[illegible]न जाते हैं। देखो, हवा अदृश्य पदार्थ है परन्तु इस के अस्तित्व की सब से बड़ी प[illegible]हचान यह है कि इस के बिना साँस लेने [illegible] काम बन्द हो जाता है और दम घुटने [illegible]ता है। यदि कोई मनुष्य थोड़ी देर [illegible] लिये नाक और मुँह बन्द करले तो यह [illegible]कट हो जायगा कि साँस लेना जीवन के लि[illegible] कितना आवश्यक है और जो पदार्थ साँस[illegible] के साथ बाहर भीतर जाया आया करता है [illegible]सी को हवा कहते हैं। जिस समय हवा [illegible]ग से बहती है उस समय पेड़ की पत्तियों की खड़खड़ाहट धूल का उड़ना इत्यादि उसके अस्तित्व को प्रकट करते हैं।

रामचन्द्र—हवा के रहने का स्थान कहाँ है? आपने अभी कहा है कि जब हवा बड़े वेग से बहती है तो पत्तियाँ खड़खड़ाती हैं इत्यादि।

पिता—हवा के रहने का कोई विशेष स्थान नहीं है। जहाँ कहीं यह जगह पाती है पहुँच जाती है। जहाँ कहीं तुम्हें कोई पदार्थ नहीं मालूम होता वहाँ हवा को समझना चाहिए। इसकी परीक्षा किसी खोखले बर्तन लोटा, गिलास इत्यादि से हो सकती है 'अभी खाँसी की औषधि तैयार करके खा लो फिर फुरसत के समय यह तुम्हें समझा दिया जायगा।

रामचन्द्र ने तीन चार दिन तक औषधि का सेवन किया और इससे उसकी खाँसी जाती रही। रविवार को प्रातःकाल ही रामचन्द्र ने अपने पिताजी से कहा "हवा के सम्बन्ध में जो कुछ उस दिन मुझे बतलाया था उसके आगे बतलाइए।" उसके पिता ने कहा अच्छा एक गिलास और एक चौड़े मुहका गहरा बर्तन जिसमें पानी भी हो ले आओ; बालटी, डोल अथवा बड़े कटोरदान से काम चल जायगा। गिलास को लेकर औंधे मुँह इस [illegible]कार पानी में [illegible] कि [illegible] तिरछा न होने पावे और गिलास को डुबोते जाओ। कहो कैसा बल लगाना पड़ता है? यदि गिलास इसी अवस्था में छोड़ दो तो वह एक बारगी ऊपर को उछल कर तिरछा हो जायगा और पानी में डूब जायगा। और यदि पानी ही में गिलास को औंधे मुँह डुबोकर तिरछा कर दो तो बुलबुले भक भक शब्द करते हुए पानी के ऊपर उठने लगेंगे और बाहर आकर गुप्त हो जाँयगे। जैसे जैसे बुलबुले उठते जाँयगे तैसे तैसे गिलास में पानी भी भरता जायगा और जिस समय गिलास पानी से बिल्कुल भर जायगा उस समय बुलबुलों का निकलना भी बन्द हो जायगा।

रामचन्द्र—यह बुलबुले क्या हैं और कहाँ से निकल रहे हैं?

पिता—यह हवा के बुलबुले हैं। यह बात एक काँच के गिलास से स्पष्ट हो जायगी। देखो, यह काँच का गिलास खाली है। इसको यदि पानी में औंधे मुँह सीधा डुबोते हैं तो इसके भीतर भी पानी चढ़ता है परन्तु गिलास के बाहर जो पानी का धरातल है वह गिलास के भीतर वाले पानी के धरातल से कुछ ऊँचा है। जैसे जैसे गिलास डुबोते जाते हैं तैसे तैसे (१) गिलास के भीतर पानी का धरातल भी उठता जाता है लेकिन गिलास के बाहर और भीतर के धरातलों का अन्तर अधिक होता

जाता है और (२) डुबोने के लिए बलके लगाने की मात्रा भी बढ़ती जाती है। देखो गिलास को झुका देने से बुलबुले निकलने लगते हैं और पानी भरने लगता है। इससे तुमने क्या सीखा?

रामचन्द्र—(१) जब तक गिलास में बुलबुले थे तब तक पानी कठिनाई से भरता था, (२) गिलास को अधिक बल लगाकर डुबोने से पानी गिलास के भीतर कुछ उठता जाता था और ज्योंही इन बुलबुलों को भागने का अवसर मिला त्योंही वह भाग गये और पानी भरने लगा, (३) दबे हुए बुलबुले गिलास को ऊपर की ओर दबा कर उसको ऊपर उछाल देते हैं, (४) नीचे की ओर दबाकर पानी के धरातल को भी बाहरी पानी के धरातल से नीचा कर देते हैं।

पिता—बुलबुलों के स्थान पर यदि तुम हवा कहो तो और अच्छा हो क्योंकि जब हवा थोड़ी थोड़ी मात्रा में किसी तरल पदार्थ में से होकर ऊपर उठती है तो बुलबुलों ही के रूप में दीख पड़ती है। इससे यह मालूम हो गया न कि गिलास में हवा है और यह हवा बल लगाकर दबाई भी जा सकती है? तुमने लड़कों को फुटबाल खेलते हुए अवश्य देखा होगा जानते हो उसमें क्या चीज रहती है?

रामचन्द्र—फुट-बाल चमड़े का एक थैला होता है जिसमें रबर की एक थैली रक्खी जाती है और उसी रबर की थैली में पिचकारी से हवा भरते हैं। जैसे जैसे हवा भरते जाते हैं तैसे २ फुटबाल कड़ा होता जाता है और जब खूब कड़ा हो जाता है तो समझते हैं कि हवा काफ़ी भर गई।

पिता—इससे भी तो यही सिद्ध होता है कि बहुत सी हवा थोड़े स्थान में भरी जा सकती है अर्थात् दबाई जा सकती है। फुटबाल के कड़ा होने की बात भी ध्यान देने योग्य है। यदि ऊपर का चमड़ा निर्बल अथवा पुराना हो जाय तो क्या हानि हो सकती है? हवा भरने से फुटबाल फट जायगा न? बात यह है कि जब हवा पिचकारी के द्वारा दबा दबाकर फुट-बाल में ठूँसी जाती है तो भीतर जाकर फैलने के लिए स्थान खोजती है फैलने के लिए स्थान खोजने के यत्न में हवा रोक लगाने वाले थैलों को दबाती है और इसी दबाने के कारण फुटबाल कड़ा हो जाता है। अगर रबड़ या चमड़ा कमज़ोर हुआ तो फट भी सकता है। यही बात उस गिलास के डुबोने के समय भी हुई थी। यह तुमने देखा ही होगा कि गिलास में कुछ कुछ पानी चढ़ता जाता था अर्थात गिलास में हवा दबती जाती थी। दबकर हवा गिलास के पेंदे पर ऊपर की ओर बल लगाती थी। इस से यह तात्पर्य्य निकलता है कि गिलास को डुबोने के लिए हाथों को उतना बल लगाने की आवश्यकता पड़ती है जिससे हवा का ऊपरी दबाव रुक जाय और गिलास नीचे डूबने लग जाय अर्थात् गिलास को डुबोने के लिए हवा के ऊपरी दबाव की अपेक्षा कुछ अधिक बल हाथों को नीचे की ओर लगाना चाहिए।

अब कदाचित तुम समझ गये होगे कि बोतल से शहद निकालने के लिए वह बनिया बार बार बोतल को क्यों सीधा करता था। बात यह है कि जब वह बोतल को झुकाता था तो कुछ शहद तो शीशी में गिर पड़ता था परन्तु जब बोतल का मुँह शहद से भर जाता था तो शहद का गिरना बन्द हो जाता था क्योंकि जब तक हवा बोतल में नहीं जा पायेगी तब तक शहद न निकल सकेगा। इसी लिए बनिया बोतल को सीधाकर देता था जिससे उसका मुँह खाली हो जाय और तब उसको धीरे धीरे झुकाता था। इससे शहद को बाहर निकलने और हवा को भीतर जाने के रास्ता होता जाता था।

हवा के भीतर जाने की परीक्षा किसी तंग मुंह की शीशी या बोतल से यों हो सकती है :- किसी बोतल या बड़ी शीशी में पानी भर कर हाथ में लिये हुए औंधा दो तो पानी भक भक करके गिरेगा। भक भक करने का कारण क्या है? वही, हवा का बुलबुलों के रूप में पानी से हो कर शीशी के भीतर जाना। किसी तंग मुंह वाले कलसे या घड़े से भी भक भक का शब्द इसी कारण होता है। परन्तु यदि बालटी से पानी उँड़ेला जाय तो ऐसा शब्द नहीं सुनाई पड़ता, क्योंकि बालटी का मुंह इतना चौड़ा होता है कि हवा को पानीके भीतर होकर जानेका प्रयत्न नहीं करना पड़ता। इसके लिए पानी के बाहर भी काफ़ी मार्ग मिल जाता है। क्या तुमने कभी आधार-रहित कागज़ के सहारे पानी को थँभा हुआ देखा है? एक गिलास, कागज़ और कैंची लाओ तो अभी मैं तुमको दिखला दूँ।

रामचन्द्र दौड़ घर में गया और सामान लेकर बहुत जल्द बाहर आया। उस के पिता ने कहा "इस गिलास का मुंह कुछ मुड़ा हुआ है इस लिए वह ठीक नहीं है। एक पीतल का या मुरादाबादी गिलास लाओ तो ठीक हो"।

जब वह गिलास आगया तो रामचन्द्र के पिता ने गिलास के मुंह से कुछ बड़ा कागज़ का टुकड़ा काटा; गिलास में लबालब पानी भर दिया; गोल कागज़ को गिलास के ऊहर रख दिया और यह देखा कि गिलास के मुंह और कागज़ के बीच कहीं अन्तर तो नहीं है। इस के पश्चात उसने गिलास को झट उलट दिया। थोड़ी देर तक पानी बिलकुल नहीं गिरा। फिर एक ओर से पानी गिरने लगा और अन्त में कागज़ और पानी सब गिर गये।

यह देख कर रामचन्द्र कुछ सोचता रहा और तब कहने लगा "पिता जी, मैं स्वयम् यह करना चाहता हूँ"। दो तीन बार उसने यत्न किया परन्तु गिलास को औंधा करने के पहले ही जैसे गिलास तिरछा होता था तैसे ही पानी और कागज़ गिरकर अलग हो जाते थे। तब उसके पिता ने कहा, "अच्छा एक ऐसा गिलास लाओ जिसका मुंह तुम्हारे हाथ की हथेली से कुछ छोटा हो और उससे कुछ बड़ा कागज़ का एक गोल टुकड़ा भी काटो। जब सब तैयार हो गया तो रामचन्द्र से कहा "गिलास में लबालब पानी भर कर कागज़ को उसके मुंह पर रख दो और हथेली से कागज़ को दबा कर गिलास को ऐसा उलटो कि पानी ज़रा भी गिलास में से न गिरने पावे। जब गिलास औंधा हो जाय तो धीरे से हथेली को हटालो। पानी नहीं गिरेगा"। रामचन्द्र ने ऐसा ही किया और इस बार उस का काम सिद्ध हो गया।

रामचन्द्र के पिता ने पूछा "पानी को कौन थाँभे हुए है? रामचन्द्रने उत्तर दिया "कागज़"। "कागज़ को कौन थाँभे हुए है? हवा। इस से यह प्रत्यक्ष हो गया न कि हवा ऊपर की ओर भी बल लगाकर थाँभ सकती है? अर्थात हवा का दबाव ऊपर की ओर भी होता है॥ क्रमशः

मच्छर का जीवन वृत्तान्त

(ले० श्री० ब्रजराज किशोर)

भारत वासियों को दुख देने वाले रोग तो बहुत हैं पर जूड़ी जिसके जड़य्या, जाड़े का बुखार, अंतरा, चैाथिया, आदि अनेक नाम औररूप हैं सबसे दुख दायिनि है और ताऊन और हैज़े के समान हज़ारों का संहार करती है। यह रोग कुछ थोड़े से टापुओं को छोड़ कर जो महासागर में इधर उधर छिटके हुए हैं पृथ्वी के समस्त देशों में होता है। उत्तर और दक्खिन के ठंडे देशों में रहने वाले इससे इतने परिचित नहीं हैं। सुना गया है कि एक बार इस रोग ने इंगलैण्ड पर भी कोप किया था। इस

Zoology जीव विज्ञान]

रोग को अंगरेज़ी में मलेरिया कहते हैं। यह रोग दलदल और नीची धरती में बहुधा अपना जन्म ग्रहण करता है। नदियों के मुहाने के पास और उन स्थानों में जहाँ पानी जमा रहता है और जहाँ धरती भीगी रहती है, इसकी जन्म भूमि है। बहुत दिनों तक लोग यह समझते थे कि दलदलों से जो बिषभरी हवायें निकलती हैं उन्हीं से यह रोग उत्पन्न होता है। पीछे जब लोगों ने जाना कि अनेक प्रकार के कीटाणु germs से अनेक रोग उत्पन्न होते हैं तो विद्वानों ने अनुमान किया कि मलेरिया के छोटे छोटे कीड़े होते हैं जो मनुष्य के शरीर में मैला पानी पीनेसे प्रविष्ट होजाते हैं। पर इस बातको प्राचीन समय में भी विद्वानों ने देखा था कि जहाँ जूड़ी का बुखार बड़े वेग से फैलता था उसी के साथ ही साथ मच्छर और भुनगों की भी अधिकता होती थी। अब यह बात सिद्ध हो गई है कि मलेरिया ज्वर को फैलाने वाले मच्छर ही हैं। यह सम्भव है कि किसी प्रान्त में मच्छर हों पर मलेरिया न हो पर ऐसा कभी देखने में नहीं आया कि जहाँ मलेरिया हो वहाँ मच्छर न हों। मलेरिया का कीटाणु मच्छर के शरीर में ऐसेही रहता है जैसे वृक्षों पर अमरबेल और उसी के द्वारा मनुष्य के रक्त में पहुँचता है। यहाँ हम मलेरिया ज्वर और मलेरिया के कीटाणु को छोड़ कर मच्छर ही का जीवन वृतान्त लिखना चाहते हैं। उसका जीवन इस प्रकार आरम्भ होता है। मादा मच्छर भनभनाती हुई मैले पानी के कुंड के ऊपर अपनी अगली टांगों के बल किसी बहती हुई लकड़ी के टुकड़े पर बैठती है और वहीं अंडे देने लगती है। इसके घंटे भर पीछे उसकी पिछली टांगों के बीच में एक छोटी सी नौका के आकार की वस्तु दीख पड़ती है जिस पर दो तीन सौ अंडे अलग अलग रक्खे रहते हैं अंडे एक दूसरे से एक ऐसे रस से जुड़े रहते हैं जिसमें पानी नहीं समा सकता। यह अंडे बहुधा सूर्योदय से पहिले दिये जाते हैं। अंडों का बेड़ा बनते ही मादा मच्छर का काम निबट जाता है और वह उनको पानी में छोड़ कर उड़ जाती है। अंडों का यह बेड़ा पानी में डूब नहीं सकता। झकोरा आने पर या ठेला जाने पर नीचे चला जाता है परन्तु फिर उतराने लगता है। उस पर पानी का कुछ भी असर नहीं होता। एक दिन व रात बीत जाने पर हर अंडे के नीचे के भाग से एक कीट (lav) निकलता है। यह छोटा कीट पानी के भीतर पैदा होता है हवा में सांस लेता है और इस हवा के लिए इस को बार बार पानी के तल पर आना पड़ता है। हवा को यह दुम की ओर से एक नली के द्वारा खींचता है। यह कीट बहुधा पानी के तल पर ही उलटा लटका रहता है और उस की दुम का
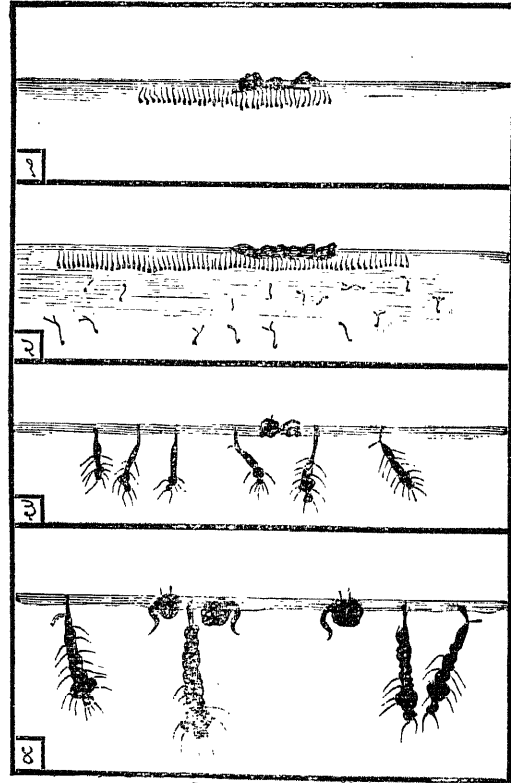
चित्र नं० १

छोर जहाँ नली का मुंह होता है हवा में निकला रहता है (चित्र ४)।

पहले चित्र में अंडों के कई बेड़े दिखाये गये हैं जिसमें कीट अंडों से निकल रहे हैं और बहुत से पानी के तल पर लटके हैं। यह याद रखना चाहिये कि १, २, ३, ४, चित्र में जन्तु लगभग चार गुना बड़े दिखाये गये हैं। इन अंडों के बेड़ों के परिमाण का अनुमान इस से हो सकता है कि यदि दस या बारह ऐसे बेड़े बराबर रक्खे जावें तो शायद एक इंच के बराबर हों। कीट तो इस समय और भी छोटे होते हैं।

चित्र में पानी का तल सीधी सतर से दिखाया गया है जिसके नीचे सैकड़ों कीट हैं और हवा में सांस ले रहे हैं। आठ नौ घंटे के पीछे सैकड़ों कीट दिखाई देते हैं। उनमें से बहुत से तो पानी के तल पर हैं और बहुत से पानी में बिलबिला रहे हैं (बरसात में गड़हों में जहाँ पानी बहने नहीं पाता यह कीट बहुत दिखाई देते हैं। पुराने घड़ों और टूटे बरतनों में जो बरसात में खुले पड़े रहते हैं और जिनमें बरसाती पानी जमा हो जाता है उनमें और जिन घड़ों का पानी कई दिन तक नहीं बदला जाता उनमें भी ये कीट बिलबिलाते हुए देखे जा सकते हैं (चित्र २)।

यह कीट बहुत जल्दी बढ़ते हैं। जो कुछ घंटे पहिले अंडों से निकलते हैं वे पीछे निकलने वालों से अलग पहिचाने जा सकते हैं। चित्र ४ में यह कीट चार दिन के दिखाये
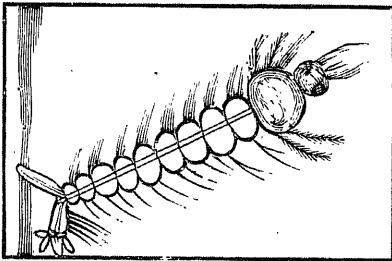
चित्र नं० २

गये हैं जिसमें यह अपनी सांस लेने वाली नलियों के सहारे उलटे लटके हुए हैं। ये कीट ऐसे ही उलटे लटके रहते हैं पर यदि कोई पानी के पास पहुँचता है तो यह चट नीचे गोता लगा जाते हैं। छाया पड़ने से भी ये तुरन्त ही पानी में चले जाते हैं। यदि खाने पीने का सामान कीट के लिए बहुतायत से हुआ तो यह कीट दस दिन के भीतर अपनी सूरत बदलता है। इन दस दिनों तक यह कुछ खाता दिखाई नहीं देता। इसका कारण यह है कि हम लोग उतनी छोटी खाने की चीज़ें जो यह खाता है नहीं देख सकते। ये चीज़ें इस कीट के मुंह में पानी के प्रवाह के साथ चली जाती हैं। जब खाने की कमी होती है तब यह कीट महीनों ऐसा ही रह सकता है मरता नहीं और खाना पाने पर फिर ठीक हो जाता है।

हम अपने लेख के लिये यह मान लेंगे कि हमारे कीट को न तो किसी दूसरे जन्तु ने खाया न उस पानी में जिस में यह पैदा हुआ कुछ खाने ही की कमी हुई। दस बारह दिन पीछे इस कीट का एक विचित्र रूप हो जाता है। यह बिलकुल गोलाकार हो जाता है और सिर ही सिर दीख पड़ता है। यह सूरत इसकी बारहवें दिन हो जाती है जब यह पहिली बार केंचुल बदलता है।

(चित्र ४) इस रूप में भी मच्छर हवा में सांस लेता है परन्तु पूंछ की नली द्वारा नहीं। यह पूंछ छोटी होती है और पानी के नीचे रहती है। इसमें दो डांड़ ऐसे लगे रहते हैं जो उसको तैरने में सहारा देते हैं। इस कीट की पीठ पानी के तल के ऊपर निकली रहती है।
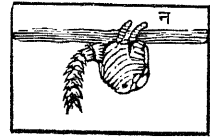
चित्र नं० ३

इसका सिर नीचे की ओर मुड़ा रहता है इस की पीठ की दोनों ओर दो नलियाँ निकली

रहती हैं (न जिनसे यह सांस लेता है)। यह नलियाँ पानी के ऊपर निकली रहतीहैं। कीट के इस रूप को अंगरेज़ी में पूपा (pupa) कहते हैं। यह कीट इस समय तक कुछ खाता नहीं क्योंकि इस समय इसका मुंह और धड़ का बीच वाला भाग विलकुल गोले के भीतर बंद रहता है और इसी समय उसके मुंह के वह भाग, जो बड़े मच्छर में सुई और छोटे मच्छर में छुरे की भाँति होते हैं जिनको गड़ो कर मच्छर रक्त चूसता है, बनते हैं। यह दशा चार पांच दिन तक रहती है और इसी समय में मच्छर का पूरा शरीर बन जाता है। इसके छोटे छोटे चिकने पंख इसकी ६ लम्बी टागें और इसका सिर दो आंखें, और उसकी सुई भीतर ही भीतर बन जाती हैं। इसके पीछे यह जन्तु टेढ़ा हो जाता है। जहाँ पर सांस लेने वाली नलियाँ होती हैं वहाँ की खाल चिटकती है और धीरे धीरे मच्छर निकलने लगता है सब के पीछे टागें निकलती हैं। उस के पीछे मच्छर पानी से उड़ने का उद्योग करता है। यह

चित्र नं० ४

पहिले अपने पर सम्हालता है और खाल को धक्का देकर हवा में उड़ जाता है। इस रीति से निश्शंक अंतरिक्ष में उड़ जाने का ज्ञान उसको
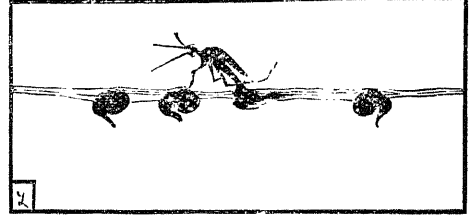
चित्र नं० ५

कहाँ से हुआ यह ईश्वर ही जानता है। मच्छर जी के सांसारिक जीवन का यही श्री गणेश है जो पीछे अधिकांश मनुष्यजाति को रात्रिके समय अपना गाना सुनाने के लिए बाध्य करता है। कोई बिरला ही भाग्यहीन होगा जिसको इनका गना सुनने का सौभाग्य न प्राप्त हुआ हो।

बोल चाल में संस्कृत

[ले० झाबरमल्ल शर्म्मा]

पाश्चात्य पण्डितोंका ख़याल है, कि देववाणी संस्कृत भारतवर्षमें कभी बोली न जाती थी। सब लोग प्राकृत अथवा तत्सदृश भाषाएँ बोलते थे। संस्कृत तो सिर्फ़ 'पण्डिताऊ' भाषा थी। अपने इस कथन की पुष्टि में ये लोग अशोकके शिलालेखोंका हवाला देकर कहते हैं, कि यदि संस्कृतका सर्व साधारणमें प्रचार होता, तो शिला लेखोंकी भाषा संस्कृतेतर न होती। जबकि शिलालेख संस्कृतमें नहीं खोदे गये हैं, और नाटकों में संस्कृत से अतिरिक्त भाषा का भी अस्तित्व पाया जाता है; तब यह नहीं माना जासकता कि संस्कृतभी बोल चाल की भाषा थी।
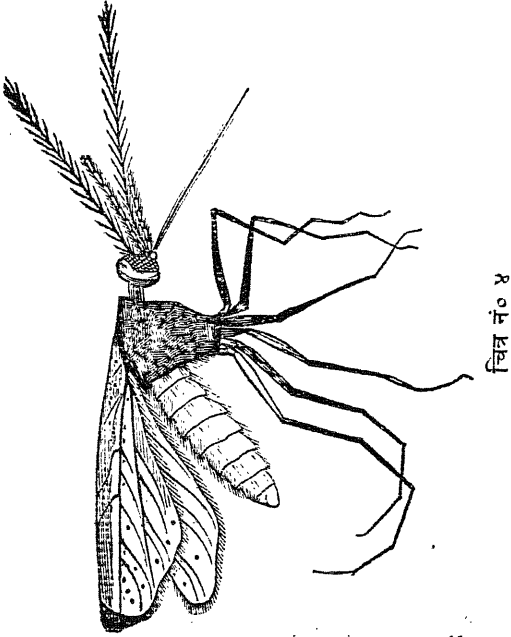
इस प्रकारकी शङ्का करनेवाले हैं, प्राकृत भाषापण्डित डाक्टर ग्रियर्सन, पाली के पण्डित अध्यापक ह्रिस डेविड्स, अध्यापक सेनार्ट और इन्हींके अनुयायी डाक्टर फ्लीट प्रभृति विलायती पण्डित। हम यहाँ इनकी उल्लिखित दलीलोंपर विचार करते हैं और देखते हैं कि इनमें कहाँ तक तथ्य है।

यहाँ हम शिलालेखोंकी आलोचना कर इस बातको ढूँढ़नेका प्रयत्न करते हैं, कि अशोकने अपने शिलालेखोंमें, संस्कृतका उपयोग न कर अन्य भाषाका आश्रय क्यों लिया।

सिवा अनुमानके और कोई विशेष प्रमाण इस बातका नहीं, कि अशोकके शिलालेखों की भाषा तत्कालीन लोग बोलतेही थे। पाश्चात्य पण्डितोंका कथन है कि जब वे लोगोंको उद्देश कर लिखे गये हैं, तब उसी भाषामें लिखे गये हैं, जो उन दिनों बोली जाती थी। इसी बुनियाद पर क्या यह कथन सयुक्तिक नहीं हैं कि पांचवीं छठी शताब्दी और इसके अनन्तरभी संस्कृत भाषा बोली जाती थी? शिलालेखोंकी भाषा कुछ विचित्र है, वह ठेठ पाली नहीं है। सम्भव है कि वह तत्कालीन सार्वजनिक भाषाके कुछ अंशों से मिलती जुलती रही हो शिलालेखोंका मसविदा अशोकका तैयार किया हुआ है। फलतः बुद्ध धर्मी ग्रन्थों के अध्ययनके कारण शिलालेखोंकी भाषाका बौद्ध ग्रन्थोंकी भाषासे मिलकर, खिचड़ी हो जाना असम्भव नहीं। इसके सिवा प्रान्तिक सूबेदार और शिलालेखोंके खोदनेवाले अपढ़ कारीगरोंने कुछ गड़बड़ कर ही दी होगी। जिसका परिणाम यह हुआ :—

(१) गिरनारके शिलालेखमें श् और ष् व्यंजन बिलकुल हैं हीं नहीं—सिर्फ़ स् है।

(२) शाहबाजगढ़ी और मानशेरा के शिलालेख में श् ष् स् तीनों हैं।

(३) कालसी और मानशेराके शिलालेखों में अकारान्त पुल्लिङ्ग शब्दोंकी प्रथमा विभक्ति का एकबचन एकारन्त है परन्तु गिरनारमें ओकारान्त है।

कालसी में 'र' की जगह 'ल' मिलता है; जैसे राजाके लिए 'लाजा'।

शाहगाज गढ़ीके शिलालेखमें ह्रस्व-दीर्घ का भेदही नहीं है। 'राजा' के लिए 'रज', आह' के लिए 'अह' लिखा गया है।

(४) गिरनार प्रभृति चारों स्थलोंके शिलालेखोंमें कुछ अपवादोंको छोड़कर संयुक्ताक्षर नहीं हैं 'पियदस्सि' के स्थानमें 'पियदसि' 'अत्थाय' के स्थानमें 'अथाय' लिखा हुआ है। महत्वके अपवाद इस ढंग के हैं; धंम सरीखे शष्द जिनमें दोनों व्यञ्जन अनुनासिक हैं उनमें एक अनुनासिकका काम अनुस्वारसे लिया गया है और जिनमें 'र्' मिश्रित है उनके उदाहरण हैं 'प्रियो' सुस्रूसा, इत्यदि।

सेनार्टका कथन है कि यदि वर्तमान संस्कृत उस समयकी भाषा होती तो सभी संयुक्त अक्षरोंका उपयोग शिलालेखोंमें किया गया होता किन्तु ऐसा नहीं हुआ है। इससे सिद्ध हुआ कि वर्तमान संस्कृत पीछेसे बनायी हुई, कृत्रिम है।

हम कहते हैं कि सेनार्टने विचार करते समय अनेक बातें छोड़दी हैं। जिसने इस बीसवीं शताब्दीके साइनबोर्ड लेखकोंकी विचित्रता देखी है उसे ऊपर कहे हुए शिलालेखोंकी लिपि के सम्बन्धमें विशेष आश्चर्य न होगा। यह सम्भव नहीं कि शिलालेख खोदनेवाले आजकल जितने विद्वान होते हैं इनसे अधिक विद्वान पुराने ज़मानेके शिलालेखक थे। यह सभी जानते हैं कि बर्तनोंपर नाम खोदनेवाले कितनी मोटी भूलें किया करते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी नहीं है कि बोलनेकी भाषाके ढंगपर

ही ठीक ठीक उसके लिखने की प्रणाली हो। देवनागरी और मुड़ियाकी लिखावटपर गौर कीजिये; मुड़ियामें ह्रस्व-दीर्घका सर्वथा अभाव है, अनुस्वार के संयोगपर ध्यान ही नहीं दिया जाता। कल्पना कीजिये कि दो हज़ार वर्षके बाद देवनागरी लिपिमें लिखे हुए अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो जावें और मुड़िया लिपिमें लिखा हुआ एक आध शिलालेख मिल जावे, तो देवनागराक्षरोंमें लिखी हुई पुस्तक मिलनेपर सन् ४००० ईस्वीके विद्वान् यही कहेंगे कि सन् १२०० के लगभग बोली जाने वाली भाषामें ह्रस्व-दीर्घ का भेद न था, वह पीछे से बनाया गयाहै।

फलतः सेनार्ट ने शिलालेखेकी लिपिसे जो अनुमान खोजे हैं, वे ग्रहण करने योग्य नहीं।

पाली भाषाके पण्डित कहतेहैं कि अशोकके शिलालेख, सर्वसाधारणमें बोली जाने वाली भाषा में लिखे गयेहैं। यदि हम इसे मानलें तो यह निस्पन्न होगा कि सुशिक्षित और उच्च वर्ण के लोग संस्कृत बोलते थे एवं अशिक्षित अथवा निम्न जातियोंमें वह भाषा वोली जाती थी, जिसमें अशोकके शिलालेख खोदे गये हैं। शिला लेखोंकी भाषाकी, पाणिनीय व्याकरणसे तुलना करनेपर, ज्ञात होगा कि उसमें उतनेसे अधिक अन्तर नहींहै जितनाकि 'बेन' लिखित व्याकरण-की अँगरेज़ी अथवा मोर्ले साहबके ग्रन्थोंकी अंग-रेज़ीसे खलासी एवं गोरे मज़दूरोंकी अँगरेजीमें रहता है। अन्तमें हम यहां उदाहरण स्वरूप अशोकके शिलालेखका एक छोटासा अंश उद्-धृत करते हैं; जिससे पाठक स्वयंही इस बातका निर्णय कर सकेंगे।

बोलचाल

देवाना प्रियो पियदसि एवं आह। द्वादसवासाभिसितेन मया इदं आजापितं। सर्वत विजिते मम युता च राजुके च प्रादेसिके च पंचसु पंचसु वासेसु अनुसंयानं नियातु एतायेव अथाय इमाय धंमानुसस्टिय यथा अजाय पि कंमाय।

शुद्ध संस्कृत

देवनां प्रियः प्रियदर्शी एवमाह। द्वादश वर्षाभिषिक्तेन मया इदमाज्ञापितम्। सर्वत्र विजिते मम युक्ताश्च रज्जु-काश्च प्रादेशिकाश्च पंचसु पंचसु वर्षेषु अनुसंयानं निर्यान्तु एतस्मै एव अर्थाय अस्मै धर्मानुशास्त्यै यथा अन्यस्मै अपि कर्मणे।

वास्तवमें राजाकी आज्ञासे उत्कीर्ण शिला-लेख और अन्य लेखोंकी भाषा कुछ और बातोंपर भी निर्भर है। यह आवश्यक नहीं कि राज शासन लोक प्रचलित भाषामें, ही प्रका-शित हों। शिलालेखोंकी भाषाके तद्देशस्थ लोगोंकी तत्कालीन भाषासे, भिन्न रहनेके भी अनेक कारण हैं। जिस स्थानमें राजाज्ञा प्रसिद्ध करनी होगी, वहाँकी भाषामें, वह लिखी तो जावेगी, पर आज्ञा प्रचारक राजाकी अपनी भाषा स्वतन्त्र रहेगी ही। पत्थरोंपर आज्ञा खोदनेवाले ग्रामीण कारीगरों की निरक्ष-रताके कारण, शिलालेखोंकी और सभ्य समाजकी भाषामें भेद पड़ना असम्भव नहीं। पूर्व परम्पराके अनुसार शिलालेखकी और जन-समुदाय की भाषामें फ़र्क़ होना साहजिक है।

इस बीसवीं शताब्दीमें भी, मन्दिर अथवा भवनोंमें जो लेख खोदे जाते हैं, वे संस्कृत में या अंगरेज़ीमें होते हैं—हिन्दीमें क्वचित् पाये जाते हैं राजकीय पत्र व्यवहार की भाषा, सर्व-साधारणकी भाषासे निराली होनेके कारण शिलालेखोंकी भाषामें भिन्नता होना सम्भव है ही। जिस मनुष्यको शिलालेख का मूल अंश तैयार करनेके लिए दिया जाता है, उसकी विद्वत्ता और कवित्वशक्तिपर भी लेखकी भाषा अवलम्बित रहती है। अशोकके और उसके अनन्तरके शिलालेखोंमें, संस्कृत भाषा के प्रयुक्त न होनेके कारण अंशतः राजकीय और धार्मिक स्वरूप हैं। जिस समय गौतम बुद्ध ने अपना उपदेश आरम्भ किया, उस समय संस्कृतके मूल स्थान–सप्तसिन्धुके प्रदेश–काबुलसे लेकर गंगा पर्यन्तके देश–से दूर

होने के कारण मगधदेशकी भाषा वर्तमान संस्कृतसे कुछ भिन्न हो गयी थी। अशोक राजा, बुद्धके धार्मिक ग्रन्थों का अभ्यास कर, बौद्ध सम्प्रदायका दृढ़ भक्त हो गया था। उसने अपने अत्यन्त परिचित और प्रिय बौद्ध धर्म ग्रन्थोंकी भाषा का अनुकरण कर, उसीमें, अपने शिलालेखोंमें खोदा जाने वाला मसविदा तैयार कराया और अपने सूबेदारोंके पास भिजवा दिया। उन प्रान्तोंकी भाषा, और पत्थरों पर मज़मून खोदने वाले कारीगरोंकी न्यूनाधिक निरक्षरताके कारण गिरनार, काल्सी प्रभृति स्थानोंके शिलालेखोंमें यद्यपि अर्थ एकही है, तथापि लेखन प्रणालीमें भेद पाया जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि अशोक बौद्ध था। बुद्ध देवका ब्राह्मणोंपर उनकी श्रेष्ठता, जाति भेद एवं वेदोंपर घोर कटाक्ष था इसीसे उसने शिलालेखोंमें संस्कृत भाषा का व्यवहार नहीं किया। क्योंकि संस्कृतपर ब्राह्मण धर्मकी प्रभुता थी। अशोक भारतवर्ष का विख्यात सम्राट् था। उसका राज्य दूर दूर तक फैला हुआ था। उसकी राज्य पद्धति भी नियन्त्रित थी। उसके राज्यकालमें, दरबारी भाषाने भी बौद्ध ग्रथोंका अनुकरण किया। इसके वंशज और अन्य राजाओंने भी इसीका अवलम्बन कर अपने शासनमें उसी अथवा तत्सदृश भाषाओंको अङ्गीकार किया। जब फिर वैदिक धर्मका उद्धार हुआ, तब बुद्धधर्मीय ग्रन्थोंकी भाषा अथवा तत्सदृश भाषायें पीछे रह गयीं और वैदिक धर्म ग्रन्थोंकी संस्कृत भाषाका शिलालेखोंमें प्रयोग किया जाने लगा। यही कारण है जो रुद्रदमन और उसके परवर्ती, पाँचवें-छठे शतकके राजाओंके लेख संस्कृतमें पाये जाते हैं।

आज कल जो संस्कृतके नाटक पाये जाते हैं, उनसे ज्ञात होता है कि प्राचीनकालमें, कभी, न केवल ब्राह्मण विद्वानही वरन् सभी सुशिक्षित लोग, राजा-रईस, दरबारी और सारथी वगैरह तक संस्कृत भाषाही बोलते थे। जो आगे चलकर प्राकृत कहलायीं और जो संस्कृतसे कुछ न्यूनाधिक भिन्न थीं, उन प्रान्तिक अथवा अपभ्रष्ट भाषाओं को ग्रामीण किंवा अशिक्षित लोग बर्तते थे।

संस्कृत नाटकोंमें, भिन्न भिन्न पात्रोंसे भिन्न भिन्न भाषाओंमें क्यों वार्त्तालाप कराया गया? क्या नाटककारोंने यों ही इन अनेक भाषाओंसे काम लिया है? नाटक, संसारका यथार्थ चित्र है। जिस समय सुशिक्षित लोग शुद्ध संस्कृत बोलते और अपढ़ लोग एवं स्त्रियाँ शुद्ध संस्कृत न बोलकर उससे मिलती हुई कुछ अपभ्रष्ट भाषा बोलती थीं, उस समय नाटकोंकी रचना होने से, उनमें भाषाभिन्नत्व हो गया। वे नाटक आज नष्टप्राय हैं। इसी प्रकारके नाटकोंको आधार मानकर भरत मुनिने नाट्यशास्त्र लिखा। इसके बन चुकने पर, जितने नाटक रचे गये, सबमें नाट्यशास्त्रके नियमोंका पालन किया गया। नाट्यशास्त्रके नियमानुसार पुराने नाटकोंको आदर्श मानकर ही नये नाटकों की सृष्टि हुई, किन्तु इससे कोई यह न समझ ले कि, उन नाटकोंके लेखकोंने, जो आजकल प्राप्त हैं, जब, अपने ग्रन्थ लिखे तब स्त्रियाँ किंवा अन्य लोग वही भाषा बोलते थे, जिसका कविने नाटकोंमें प्रयोग किया है। इन कवियों ने जब नाटक रचना की थी, तब केवल नाट्यशास्त्र ही न बन चुका था वरन् यह नियम भी बन गये थे कि किस पात्रसे किस भाषामें वर्त्तालाप कराना चाहिये और ऐसे व्याकरण भी निर्मित हो गये थे कि जो संस्कृतसे भाषाओंका अन्तर आदि बतलाते थे।

इन ग्रन्थोंका अभ्यास करके ही कवियोंने अपने अपने नाटकोंमें पात्रोंकी भाषा रची। नाटक ग्रन्थोंके इस भाषावैचित्र्यसे यह अनु-

मान निश्चित रूपसे निकाला जासकता है कि सुशिक्षित पुरुष-चाहे वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य कोई हों-संस्कृत बोलते थे और उनकी स्त्रियाँ, संस्कृतसे कुछ भिन्न, व्याकरण दृष्ट्या अशुद्ध भाषा काममें लाती थीं। एकही कुटुम्बमें इस प्रकार भाषा भेद होनेके अनेक कारण हो सकते हैं। (१) प्राचीनकालमें स्त्रियोंको बौद्धिक शिक्षा बहुत ही कम मिलती थी, (२) प्राचीन कालमें ब्राह्मणोंको तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-की कन्या ग्रहण करनेका अधिकार था। कुछ स्मृतिकार तो यहां तक लिख गये, कि यदि ब्राह्मण शूद्र जातिकी कन्याको ग्रहण करले तो कोई हानि नहीं। इससे एकही कुटुंब में भाषा वैचित्र्य का वर्तमान रहना बहुत सम्भव है, इत्यादि।

इसका निष्कर्ष यही है कि अशोक नये सम्प्रदायका पोषक था और नये सम्प्रदाय वालोंको प्रायः पुरानी बातोंसे तादृश प्रेम नहीं होता—वे प्रायः सभी नयी बातें चलाकर अपने सम्प्रदायको पुराने सम्प्रदायों से अलगाते हैं। अशोकने ब्राह्मण धर्मकी प्रधान संस्कृत भाषाका इसी कारण उपयोग न किया होगा।

यह सम्भव है, कि अपढ़ स्त्रियाँ, सेवक और निम्न श्रेणीके लोग अशुद्ध संस्कृत बोलते रहे हों, जो शुद्ध संस्कृतसे धीरे धीरे अलग होकर, समय पाकर उपभाषा बन गयी होगी। और यह तो सर्वत्र, सभी भाषाओंमें पाया जाता है। सभ्य और असभ्य, पठित और अपठित समाज की भाषाओंमें, एकही कालमें जो ज़बर्दस्त भेद होता है, उसे तो सभी लोग अनुभव करते हैं।

इस ऊहापोहसे सिद्ध होता है, कि संस्कृत भाषाके बोलनेका प्रचार इसदेशमें अवश्य था। इस के विपरीत जो शङ्काएँ की गयी हैं वे सुदृढ़ नहीं उनका यहाँ यथारीति खण्डन हो गया है।

सम्पदकीय

विज्ञानाचार्य्य डाक्टर जगदीशचन्द्र वसु सभ्य संसार के प्रसिद्ध प्रसिद्ध विद्याकेन्द्रों में व्याख्यान देकर स्वदेश को कुशलपूर्वक लौट आये। हम उनका हर्ष पूर्वक स्वागत करते हैं। ब्रिटिश सर्कार से निमंत्रित हो वसु महोदय ने ४ एप्रिल, १९१४ को बम्बई से प्रस्थान किया था। इससे पहले भी आप की अनमोल खोजों की ख्याति इंगलैंड में हो चुकी थी और आप तेरह बरस पहले वहाँ व्याख्यान भी दे आये थे। संसार के बड़े बड़े प्रसिद्ध वैज्ञानिकों को ही वहां के रायल इंस्टिट्यूशन में शुक्रवार को व्याख्यान देने का कभी गौरव मिलता है। भारत के सुपुत्र वसु महोदय को यही गौरव प्राप्त हुआ। यह व्याख्यान ऐसे मारके का हुआ कि सभी विज्ञान के केन्द्र उनके व्याख्यानों को सुनने और प्रयोगों को देखने के लिए लालायित हो गये। अक्सफ़र्ड और केंब्रिम्ज के व्याख्यानों का वहाँ के शरीर-तत्व-विशरदों के ऊपर बड़ा अनुपम प्रभाव पड़ा। लंडन में जब तक रहे आप की प्रयोगशाला मैडावेल में थी। यहाँ पर रायल सोसाइटी के प्रधान, भारत के मंत्री, भूतपूर्व प्रधान मंत्री मिस्टर बालफ़ोर, अध्यापक स्टालिंग तथा मरे, प्रसिद्ध लेखक बर्नर्डशा प्रभृति बड़े बड़े लोगों ने आकर प्रयोग देखे और इस सौभाग्य के लिए अपने को धन्य माना। युरोप में प्राणिविद्या का महत्तम केन्द्र वीना (Vienna) है। वहाँ के विश्वविद्यालय ने भारतीय मंत्री को लिख कर सम्मान पूर्वक आप को बुलाया और आपकी नयी खोजों का बड़ा आदर किया। प्राणिविद्या के वृद्ध आचार्य्य जर्म्मनी (लैपसिग) के वैज्ञानिक फ़ेफ़र के अनेक माने हुए सिद्धान्तों का आपकी खोजों द्वारा खंडन हो जाता है। तो भी वृद्ध फ़ेफ़रने बड़े सौहार्द और आदर से आपको लैपसिग में व्याख्यान देने

को बुलाया। जर्म्मनी के ऐसे ही दूसरे प्रसिद्ध आचार्य्य फ़ेरबोर्न ने भी निमंत्रित किया। निदान, युद्ध न छिड़ जाता तो वसु महोदय के व्याख्यान वान, लैपसिग, बर्लिन, म्युनिक आदि सभी विश्वविद्यालयों में होते। पहला व्याख्यान जर्म्मनी में ४ अगस्त को होता किन्तु वसु महोदय भारत के सौभाग्य से उस दिन युद्ध के कारण वहाँ फँस जाने से बाल बाल बच गये। इस के पहले फ्राँस की राजधानी में आपका बड़ा प्रसिद्ध व्याख्यान हुआ था। वसु महोदय ने फिर इंगलैंड लौटकर कुछ व्याख्यान दिये। इसी बीच अमेरिका से अनेक निमंत्रण पाकर ब्रिटिश सर्कार ने आप को अमेरिका भेजा। वहाँ के बड़े प्रसिद्ध विज्ञानकेन्द्रों में आप के व्याख्यानों तथा प्रयोगों ने यह दिखा दिया कि आपकी खोज वैज्ञानिक संसार में अप्रतिम महत्व की हुई है। आपने प्रयोग द्वारा वनस्पतियों का सोना, नशे में होना, होश में आना, जागना, मृत्यु-यातना आदि प्रत्यक्ष दिखाया जिससे वैज्ञानिक दर्शक आश्चर्य्य चकित हो गये। आप के व्याख्यानों की रिपोर्ट बराबर Scientific American में निकलती रही है। आप वहाँ से जापान विश्वविद्यालय में व्याख्यान देते, दक्षिणमार्ग से (मधुरामें भी व्याख्यान देते हुए) स्वदेश को लौट आये। भारत के प्राचीन गौरव के सच्चे बचाने वाले समस्त चराचर में एक मात्र जीवन को प्रत्यक्ष दरसाने वाले, वसु महोदय की खोजों के विषय में अगली किसी संख्या में हम विस्तृत चर्चा करेंगे।

* * * *

हाहन्त! गत मास हमारे देश के दो अमोल रत्न खो गये। डाकृर सतीशचन्द्र बनर्जी जैसे विद्वान, दानशील, उदारचरित, देशभक्त, तथा राय देवीप्रसाद जी, पूर्ण जैसे हिन्दी साहित्यरत्न, कवीन्द्र और देशहितैषी इस अभागे देश में बहुत दिनों तक न मिलें गे। परमात्मा इन की आत्मा को शान्ति दे तथा इन के कुटुम्बियों को इस कठिन वियोग दुःख सहन करने की शक्ति प्रदान करे।

* * * *

विज्ञानपरिषत् के सभ्य, तथा उपसभापति, मिस्टर एस. एच. फ्रीमैंटल प्रयागके कलक्टर शिक्षा और विशेषतः वैज्ञानिक शिक्षा के प्रचार के बड़े पक्षपाती हैं। इतना ही नहीं। उसके लिए तन मन धन अर्पण करते हैं। सर्कार ने आप को पबलिक सेवा के उपलक्ष्य में सी. आई. ई. की उपाधि से विभूषित किया है जिस के लिए हम आप को सहर्ष बधाई देते हैं।

वैज्ञानकीय

बहुत दिनों से लोग इस बात को जानने के लिए उत्सुक थे कि भारत का महानद ब्रह्मपुत्र ऊंचे २ पहाड़ों पर होकर किस असाधारण रीति से मैदान पर उतरता है। हाल में हो सुनने में आया था कि 'कपतान मूर्सहेड' बहुत दिनों से इस पहेली की खोज में लगे हैं। सभी जानते हैं कि इस महानद का नाम तिब्बत के पहाड़ों पर सांपू है जोकि भारतवर्ष में घुसते ही दीहांग (Dihang) कहलाने लगता है। यह नद फिर और सहायक नदियों से मिलकर ब्रह्मपुत्रा कहलाता है। अपने सब से ऊंचे नाद्य स्थल से यह नद तिब्बत की उच्च भूमि पर समुद्र के धरातल से सवा कोस ऊंचा पड़ता है, यहाँ से १८० मील हिमालय की यात्रा कर के उस मैदान में पहुँचता है जो समुद्र के धरातल से केवल ४०० फ़ीट ऊंचा है। पहले लोग समझते थे कि यह महानद जलप्रपातों द्वारा नीचे उतरता होगा, परन्तु हाल के महानिर्माण और लगातार की खोजों ने मामला बिलकुल साफ़ कर दिया।

तिब्बत के निवासियों को पथ प्रदर्शन के लिए साथ लेकर कपतान मूर्सहेड और उन के

साथियों ने उन अज्ञात घाटियों व पहाड़ों का पता लगा लिया जहाँ कि इन के पहले कभी कोई नहीं पहुँचा था।

खोज करने से मालूम हुआ कि वास्तव में कोई बड़े जल प्रपात रास्ते में नहीं पड़ते। यह नद हिमालय पहाड़ के बीच से कूदता फाँदता नीचे उतरता है, पर यह महानद विकटोरिया के ज़ेम्बेसी नदी की भाँति बड़ी २ छलांगें नहीं मारता। ज़ेम्बेसी बड़ी लम्बी छलागें भरती है यहाँ तक कि विकटोरिया के पास अनुमान ४०० फ़ीट की एक छलांग भरती है। इस प्रकार की छलांगों के स्थान में यह महानद ब्रह्मपुत्र लगातार छोटी २ ढालें तय करता है और एक मील में ८० से १०० फुट तक नीची उतर आता है। इस तरह से अपने पहाड़ों की यात्रा में ब्रह्मपुत्र संसार भर में सब से ऊंचा जलमार्ग बनाता है और तिब्बत की अपेक्षा दो मील नीचे होकर बहता है। यों यह विषय तय हो गया। इस महानिर्माण ने उस महानद के एक दो बड़ी सहायक नदियों का भी पता लगाया और दो और ऐसी सहायक नदियाँ खोज निकालीं जिन्हें पहले कोई भी नहीं जानता था।

यह यात्रा कोई बड़ी उत्तेजना या सनसनी फैलाने वाली नहीं थी, परन्तु यहाँ से बहुत से पशु पक्षी और तितलियां जो यात्रीगण लाए वह बड़े ही वैज्ञानिक अनुराग के पदार्थ थे। यह महानद अब तक अन्धेरे पहाड़ों की घाटियों में अपना नीचे उतरने का मार्ग छिपाए हुए था और उसके किनारे के निवासी जीव भी मनुष्य से अज्ञान थे।

* * * *

पतंगें (कनकव्वे जो बच्चे उड़ाते हैं) लड़कों के खेल की चीज़ें हैं, साथ ही मनुष्य के लिए वैज्ञानिक यंत्र भी हैं। पतंग से ही बैंजमन फ्रैंकलिन को यह पता लगा था कि आकाश की विद्युत और कृत्रिम बिजली एक ही पदार्थ है। पतंगों से ही हमें हवा की या आकाश की बहुत सी बातें मालूम हुई हैं। पतंगों से ही मनुष्यों ने उड़ना सीखा है। अब इनसे टेलीफ़ून में भी सहायता मिली है।

केलीफोर्निया में एक भारी तूफ़ान आया जिससे टेलीफ़ून टूट गया और कई थम्भे बह गये, क्योंकि यह टेलीफ़ून सालीनस नदी के दोनों पार लगा था। यह तार घर में ही लगा था इस लिए जल्दी से इसकी मरम्मत भी नहीं हो सकती थी। एक चतुर टेलीफ़ून के आदमी ने कई बड़ी बड़ी पतंगें उड़ायीं और इन में लोहे के तार बाँधकर नदी के उस पार पहुँचा दिया। कुछ समय तक ज़िले भरका सारा टेलीफ़ून का काम इन्हीं तारों से होता रहा जो पतंगों ने भेज कर पहुँचाया था। यह अनुभव ऐसा उपयोगी सिद्ध हुआ कि टेलीफ़ून के महकमें ने अपने और आवश्यक सामान में पतंगों को भी रख लिया है।

* * * *

जिन समुद्र तटों पर जहाज़ों को अधिक भय होता है वहाँ आजकल आप से चलनेवाली तोपें रहती हैं। इनके छूटने से आनेवाले जहाज़ सावधान हो जाते हैं और चटानो से टकराते नहीं। एक मिनट में दो बार यह तोप आप से आप फ़ैर करती रहती है और फिर आपसे आप भर भी जाती है। कठिनाई यही थी कि यह तोपें सदा छूटती रहती थीं चाहे कुहिरा आकाश में हो चाहे न हो, इस लिए व्यर्थ नुकसान होता था। अब इन तोपों को रोकने के लिए बेतार के तार के इशारे से काम लिया जाता है।

यह तोपें एसीटेलीन गैस से चलती हैं। (जो गैस बत्ती जलाने के काम में आती है उसी को एसेटेलोन गैस कहते हैं)। अब बेतार के तार से संकेत पाने पर कल गैस का मुँह फेर या हटा देता है। यह सावधान

करनेवाली तोप सदा फैर करने को तय्यार रहती है केवल यही दरकार होता है कि कुछ महीनों पीछे गैस उत्पादक करनेवाली कल में फिर मसाला भर दिया जाय। ज्यों ही कुहिरा नज़र आता है जो लोग धरती पर होते हैं बेतार के तार से संकेत करते हैं और तुरन्त सावधान करने का काम तोपें करने लगती हैं और जब तक आकाश निर्मल नहीं होता एक मिनिट में दो फैर करती रहती हैं।

*   *   *   *

मेसर्स शिवर्स एण्ड सन्स नाम के सौदागरों के चिड़ियों के कारखाने में थोड़े दिन हुए हंस के एक अंडे में से दो बच्चे निकले। यह बात अभूतपूर्व है। जिस अंडे में दो बच्चे होते हैं वह यदि पलकर तय्यार भी हो जाय तो प्रायः बच्चे विद्रूप होते हैं लेकिन यह यमज अच्छे और ठीक हैं और जान पड़ता है कि यह बड़े होकर दोनों सुन्दर बलिष्ठ हंस होंगे। जिस अंडे में, दो, बच्चे निकले हैं उसे एक उस मुर्गी ने सेया था जो अपने बालक बच्चों को ही सेया करती है।

समालोचना।

विश्वव्यापार प्रथमभाग।

छिपरामऊ जि० फर्रुखाबाद निवासी पं० गौरीशंकर शर्म्मा पालीवाल द्वारा संकलित तथा प्रकाशित, १६१०, डिमाई अठपेजी, पृ० ५०, मूल्य ॥)

इस पुस्तिका में पालीवाल जी ने भांति भांति की स्याही, वार्निश, नक़ली धातु, धातुओं के नमक, रंग, आतशबाजी, ओषधियां भोजन के विविध व्यंजन बनाने, तथा तरह तरह के चमत्कार दिखाने की रीतियां संकलित की हैं। ऐसे ग्रंथों की हिन्दी में बड़ी आवश्यकता है। उर्दू में हम ने कई छोटी मोटी पुस्तकें इस ढंगकी देखी हैं जिनमें पैसा अखबारवालों की पुस्तक "ज़ख़ीर-इ-सनअत व हिरफ़त" (४ भाग) हम को अच्छी और उपादेय जानपड़ी। परन्तु क्या उर्दू और क्या हिन्दी, सभी पुस्तकें प्रायः अंग्रेज़ी नुस्ख़ों की नक़ल या नक़ल दर नक़ल से भरी होती हैं। स्वयं अंग्रेज़ी नुस्ख़े वैज्ञानिक शिक्षा न पाये हुओं के लिए अपर्य्याप्त होते हैं। उनमें अनेक परिमाण छिपाये हुए और अस्पष्ट भी देखे गये हैं। ऐसी दशा में आँख मूंद कर नुस्ख़े रख देना ठीक नहीं। व्यवसायिगण यदि पबलिक का उपकार चाहें तो पूरी परीक्षा कर के सुस्पष्ट विधि लिखें।

पालीवाल जी की पुस्तिका इस दोष से मुक्त नहीं है। कई नुस्ख़ों के परिमाण ठीक नहीं मालूम होते। कई जगह उर्दू की नक़ल करनेमें एवं अंग्रेज़ी तोल की जगह हिन्दी देने में भूल हो गयी है। जहाँ "मुक़त्तर" पानी (अर्थात् भपके से टपकाया हुआ वा खींचा हुआ शुद्ध जल) चाहिए था वहाँ "मुख़्तसर" पानी लिखा गया है जिसे अनभिज्ञ पाठक "थोड़ा" सा पानी समझेंगे। सब बातों का उदाहरण देना बाहुल्य मात्र है। एक उदाहरण विज्ञ पाठकों के समझने के लिए बहुत होगा।

रोशनी बनाना—"गंधक का तेज़ाब एक शीशी में रक्खो। दूसरीशीशी में तारपीन का तेल रक्खो, या तारपीन का तेल या मिट्टी का तेल और तेज़ाब मिला के रक्खो ऊपर से पुटासीक्लोरास का जरा सा चूरण डाल दो। डारते ही चूरण के फुरेरी जल उठेगी मौसम बरसात के लिए यह मसाला उत्तम है जब दियासलाई सरदी खा जाती है।"

इसे पढ़कर कोई पुटासक्लोरास का चूर्ण उस बोतल में डाल देगा जिसमें तारपीन का तेल और गंधक का तेज़ाब रक्खा हुआ है। परिणाम होगा भयंकर विस्फोटन, बोतल का टूटना और संभवतः परीक्षक का अंगभंग होना, इस संदिग्ध भाषा से विदग्ध फिर किसी परीक्षा का साहस न करेगा। होना यों चाहिए कि "रुई

की एक फुरेरी बनाकर उस तेल में डुबो लो, फिर उस पर वह तेज़ाब तर करो। अब उसी फुरेरी पर पुटासक्लोरास की जरासी बुकनी टपकाकर डाल दो" इत्यादि।

साहित्य की दृष्टि से भाषा की भूलों पर ध्यान दिलाना हमारा उद्देश्य नहीं है, क्योंकि वह साधारण बात है, किन्तु ऊपर दिखायी हुई भूल तुच्छ नहीं कही जा सकती। भोले भाले चमत्कारके प्रेमी अनेकबार ऐसी भूलों से धोखा खा चुके हैं। इसी लिए संकलन कर्त्ताओं को अपने वाक्यों में बड़ी सावधानी चाहिये। ऐसे मामलों में नियमानुसार उनके ऊपर बड़ा दायित्व भी है। ऐसी ही भूलें सामयिक पुस्तकों में भी बहुधा देखी जाती हैं। यही बात है कि हमने यह उदाहरण विशेषतः पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया। ऐसा भी कोई न समझे कि ऐसी दस पांच भूलों से पुस्तक निरर्थक हो गयी। पुस्तक फिर भी बहुत अच्छी है। अनेक नुस्खे बहुत अच्छे और परीक्षा योग्य हैं। परन्तु हमारी समझमें ॥) ऐसी छोटी पुस्तक के अत्यधिक हैं। छपाई और कागज़ बुरा नहीं है विषय सूची वा अनुक्रमणिका न होने से इसकी उपयोगिता बहुत कम हो जाती है। आशा है, पालीवाल जी अगले भागों और संस्करणों को निकालते समय इन बातों पर विशेष ध्यान देंगे।

वाक् चातुरी।

संकलन कर्त्ता और प्रकाशक उपर्युक्त। रायल सोलह पेजी पृ० २४ मूल्य ~)

इसमें हिन्दी के कहावत एकत्र किये गये हैं। बहुतेरों के अंग्रेजी रूपान्तर भी दिये गये हैं। जान पड़ता है कि पुस्तक समाप्त नहीं हुई है। जनश्रुति विज्ञान की दृष्टि से ऐसे संग्रहों की बड़ी आवश्यकता है, किन्तु किसी क्रम से हो तो अच्छा है। नाम बहुत उपयुक्त नहीं है।

विज्ञान पर सहयोगियों की सम्मति—

यद्यपि हम अपनी अनेक त्रुटियों से अभिज्ञ हैं तथापि अपने सहयोगियों की प्रोत्साहनयुक्त समालोचना देख कर आशा होती है कि वैज्ञानिक साहित्य क्षेत्र में विज्ञान अपनी उपयोगिता को अवश्य प्रमाणित करेगा। अपने पाठकों के सूचनार्थ अपने सहयोगियों की सम्मति हम क्रमशः प्रकाशित करते हैं।

The Leader, 25-4-15.—We are glad to note that the local Vijnana Parishad continues its work with undiminished zeal. It has now started a monthly magazine entitled Vijnana (विज्ञान) under the editorship of such distinguished Hindi writers as Pandit Sridhara Pathak and Lala Sita Ram. The first two numbers, for April and May, contain many useful and interesting articles on scientific subjects from the pen of some of the most distinguished science graduates of the Allahabad University. Important scientific laws and phenomena have been dealt with very popularly and interestingly and where necestary, explained with the aid of diagrams and illustrations. The future of the vernaculars is assured when distinguished graduates, including professors, turn their attention and energy to their enrichment by writing on such useful subjects. We are sure the magazine will do a great deal to spread scientific knowledge among the Hindi-reading public. We hope it will find a large number of subscribers and will be a pioneer in building up scientific literature in Hindi.

कलकत्ता समाचार २६-४-१५—प्रयाग की विज्ञान परिषद् के मुखपत्र सचित्र 'विज्ञान' के दर्शन कर हम परम आह्लादित हुए हैं। विज्ञान, सच्चा विज्ञान है। जैसा इसका नाम है, कलेवर भी वैसा ही है। विज्ञान के अधिकांश लेख विज्ञान शास्त्रियों के लिखे हैं, जो उपयोगी होने के सिवा ऐसी ललित परन्तु सरल भाषा में लिखे गये हैं, कि जिन को समझने में कठिनाई नहीं होगी।

सरस्वती, जून १९१५—विज्ञान—इस के पहिले अंकमें सरस्वती के आकार के ४८ पृष्ठ हैं। छपाई सफ़ाई उत्तम है, लेख सब के सब विज्ञान विषय के हैं। वे बड़े बड़े पदवीधरों के लिखे हुए हैं। सब मिलाकर १२ लेख और कई नोट्स हैं। सब अच्छे हैं भाषा भी अच्छी है। ऐसा सुन्दर मासिक पत्र सभी के लेने योग्य है। प्रकाशक विज्ञान-परिषद, प्रयाग, को लिखने से यह पुस्तक मिलती है

क्रमशः

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग १ } सिंह, संवत् १९७२ । अगस्त सन् १९१५ । { संख्या ५

मङ्गलाचरण

जगका जिसने घटाटोप तम प्रथम हटाया
मानव-कुल-अभिलषित सुलभ सुख-पथ प्रगटाया
रज से कंचन-रजत-रत्न-परिवर्त दिखाया
विद्या-बल-आनंद-अमृतफल-स्वादु चखाया
रस,राग,रंग,रुचि,आदिका जो आदिम आधार है
उस भारतीय विज्ञानका जग भरपर ऋणभार है

श्री पद्मकोट
प्रयाग ३-८-१५ —श्रीधर पाठक

प्रकाश क्या है ?

[ले० अध्यापक ब्रजराज, बी- एससी. एलएल. बी.]

विज्ञान क्या है ? प्रकाश-विज्ञान

परमात्माकी सृष्टिमें जब मनुष्य प्रकृतिकी अनुपम शोभा और छटाको देखता है आनन्दित और विस्मित हो जाता है । जब फूलोंको फूलते, फलोंको पकते, सूर्य्यको प्रकाश करते और चन्द्रमाको शीतलता देते मनुष्य देखता है तो इसका कारण जाननेको उत्सुक हो जाता है । संसारमें अनेक क्रियाएं प्रतिक्षण हो रही हैं मनुष्य यह जाननेको उत्कंठित होता है कि यह सब किसकी शक्तिके सहारे हो रही हैं । बुद्धि द्वारा चिन्तन करनेसे यह प्रतीत होता है कि संसार के सभी कार्य्य विशेष नियमों पर परिचालित होते हैं । कुतूहल-जनक घटनाएँ होती ही रहती हैं । यह किन नियमोंके आधीन हैं और इनका क्या कारण है इसका अन्वेषण जब परीक्षाओंद्वारा हम करते हैं तो हम विज्ञान-की सीमामें बिचरते हैं । हमारी परीक्षाओं-द्वारा जो संशोधित ज्ञान हमको उत्पन्न होता है वही विज्ञान है । छोटी छोटी और तुच्छ घट-नाएं जो हमको प्रतिक्षण दीखती हैं हम बिना बिचार किये छोड़ देते हैं । यदि हम छोटी सी बातोंको लेकर भी चिन्तन करें तो विज्ञानकी महिमाका अनुभव करने लगें । हमें पदार्थ क्यों दीखते हैं ? हम कैसे देखते हैं ? आकाशमें धनुष

क्या पदार्थ है? सूर्य्यसे हम तक प्रकाश कैसे आता है, इत्यादिक अनेक प्रश्न किये जा सकते हैं। प्रकाश-सम्बन्धी नियमोंको अन्वेषण करनेके लिए 'विज्ञान शास्त्र' का एक विशेष अंग पृथक है। उस को 'प्रकाश विज्ञान' कहते हैं अथवा विज्ञानशास्त्र का वह अंग जिसमें प्रकाशसम्बन्धी नियमोंका अन्वेषण किया जाता है प्रकाश विज्ञान कह लाता है।

प्रकाश क्या है?

परमात्मा क्या है? इस प्रश्नका उत्तर देना इतना कठिन है कि 'नेति नेति कहि वेद बखाना'। ऐसे ही यदि यह पूछा जावे कि 'प्रकाश' क्या है तो उत्तर देना कठिन हो जावेगा। हम सूर्य्यके उजियालेमें और दीपक की ज्योतिमें पदार्थोंको देखते हैं। आँखोंके होते हुए भी यदि उजियाला न हो तो हम पदार्थोंको देख नहीं सकते। वैज्ञानिक परिभाषामें हम कहेंगे कि 'प्रकाश' वह ऐहिक कारण है जो हममें देखनेकी शक्ति उत्पन्न करता है।

प्रकाश कहां से आता है?

प्रकाश कहांसे आता है? इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त सरल प्रतीत होता है। सब जानते हैं गर्मी और प्रकाशके देनेवाले सूर्य्य भगवान हैं। चन्द्रमा और अन्य तारे भी प्रकाश देनेवाले हैं। आजकल जो लोग कलकत्ता बम्बईमें गये हैं उन्होंने देखा होगा कि विद्युत् (बिजली) प्रकाश का कारण है। कानपूरमें भी बिजलीकी ही लम्पें जलती हैं। रासायनिक प्रयोगोंसे प्रकाश हम लोगोंको मिलता है। यही क्रिया ऐसी है जिसकी सहायतासे, जब सूर्य्य और चन्द्र हमको प्रकाश नहीं देते, हम प्रकाश उत्पन्न कर लेते हैं। मोमबत्ती, तेल, लकड़ी और अन्य पदार्थ जला कर हम अंधेरी रात्रिमें अंधेरी गुफाओंमें भी देख सकते हैं। सलिल-प्रवाहिनी नदीके किनारे धूरी सांझके समय रेतापर बैठेहुए परमात्माकी आराधनामें लीन सांसारिक चिंतासे व्यथित अथवा अपने प्रेम पात्रके रूप सौंदर्यके चिन्तनमें निमग्न किसी प्राणीको, एकाएक झाऊके दलमें किसी मनचले जुगनूकी दुपदुप चमकको देखकर कुछ ऐसा आनन्द आ जाता है, कि ध्यान और चिन्ता टूट जाती है यही प्रश्न हृदयमें उत्पन्न होता है कि इस छोटेसे जीवको यह प्रकाश और सौंदर्य कहांसे प्राप्त हुआ? पाठक यह जुगनू जिस प्रकारका प्रकाश देता है वही फ़ास्फ़ोरस में से भी प्राप्त होता है। बच्चोंका एक खेल इस स्थानपर उल्लेखके योग्य है। लाल-नोकवाली (गन्धककी) दियासलाईको तनिक जलसे भिगोकर बच्चे हाथोंपर तथा दीवालोंपर अग्निकी लकीरें बनाते हैं जो कुछ देर तकप्रकाशमान रहती हैं। इन दियासलाइयोंमें फ़ासफ़ोरस लगा रहता है और इसीके कारण रगड़ते ही यह जल उठती हैं। लोहा इत्यादिक अन्य धातु यदि खूब गरमे किये जाँय तो ५००० डिग्री (अंश) शतांशके लगभग इनसे प्रकाश निकलने लगता है।

माध्यम

दीपकको जलाते ही हमारी आँखों तक प्रकाश पहुँच जाता है, यदि कोई पदार्थ हमारी आखों और दीपकके बीचमें आजावे तो प्रकाश रुक जाता है परन्तु कांचसे प्रकाश नहीं रुकता। इस दृष्टिसे संसारके समस्त पदार्थोंके तीन बिभाग किये जाते हैं। (१) ऐसे पदार्थ जिनमें होकर प्रकाश एक ओरसे दूसरी ओर पूर्णतया अथवा प्रकाशका अधिकांश सुगमतासे निकल सकता है जिनमें होकर वस्तु दिखलाई पड़ते हैं जैसे कांच, पानी, अभ्रक, ऐसे पदार्थ पारदर्शक अथवा किरणभेद्य कहे जाते हैं। (२)ऐसे पदार्थ जिनमें होकर प्रकाशका थोड़ासा ही भाग निकल सकता है जैसे, काग़ज़, दूधिया कांच ground glass, सोने चांदीके पत्रे इत्यादिक; ऐसे पदार्थ अर्धस्वच्छ कहलाते हैं। (३) ऐसे पदार्थ जो प्रकाश रोक देते हैं और तनिक

भी प्रकाश उनमें होकर नहीं निकल सकता जैसे लकड़ी, लोहा इत्यादिक अपारदर्शक अथवा किरणप्रतिबन्धक कहे जाते हैं। हमारे चारों ओर वायु है परन्तु यह प्रकाशको नहीं रोकती इसलिए वायु ऐसी पदार्थ है जिसमें होकर प्रकाश इधरसे उधर निकल सकता है। ऐसे स्थान या पदार्थ जिनमें होकर प्रकाश प्रसर अथवा फैल सकता है प्रकाशके माध्यम कहे जा सकते हैं। जो माध्यम ऐसे हों जिनकी बनावट गुण, गुरुत्व (घनत्व) उसके प्रत्येक स्थानमें समान हों homogeneous वे एकमेल कहलाते है और वह माध्यम जिनमें समानता नहीं होती heterogeneous बेमेल कहलाते हैं।

परिभाषा

सूर्य्य भगवानके प्रकाशको प्रातःकाल अपनी ओर आता हुआ देखकर हम कहते हैं कि सूर्य्यकी किरण फूट गई और किरणों द्वारा प्रकाश हम तक पहुँचता है। प्रकाशका प्रसार किरणों द्वारा होता है। किरण' शब्द हमारी भाषामें प्रचलित है परन्तु इस शब्द की वैज्ञानिक परिभाषा करना आवश्यक है। रेखा-गणितमें रेखाकी परिभाषामें यह माना गया है कि रेखामें लम्बाई हा होती है पर चौड़ाई तनिक भी नहीं। इसी प्रकार किरण' में समझना चाहिये। किरणको प्रकाशकी सरल अथवा सीधी रेखा कहना चाहिये। जब दीपक प्रकाशमान होता है तो प्रकाश चारों ओर बराबर फैलता है अथवा प्रकाशकी किरणें दीपकसे निकलती हैं। प्रत्येक प्रकाश-विन्दु से किरणें निकलती हैं और चारों ओर फैलती हैं। दीपक अथवा प्रकाशके उत्पत्ति-स्थानमें अनेक प्रकाश-विन्दु होते हैं। 'अ' एक प्रकाश-विन्दु है, 'अ' से किसी दूसरे स्थान 'क' तक जब प्रकाश जाता है तो 'अ क' जो सरल रेखा बनी प्रकाश-किरण अथवा किरण कही जाती है। प्रकाश-विन्दुसे प्रकाशकी एक किरण नहीं निकल सकती। किरणों का समूह चारों ओर फैलता है। किरणों के समूह को किरण-समूह अथवा प्रकाश-धारा कहते हैं।

(३)
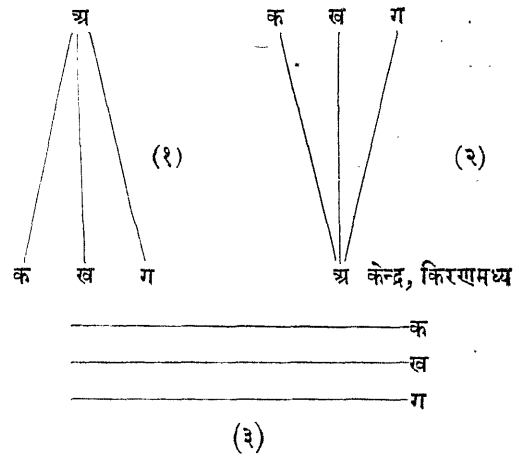
किरण-समूहकी किरणें यदि समानान्तर सरल रेखा हों तो यह समानान्तर किरण-समूह कहा जाता है यदि किसी समूहकी किरणें प्रसरकर किसी एक विन्दुपर एकत्रित हों तो ऐसे समूहको केन्द्राभिमुख-समूह और उस विन्दुको केन्द्र अथवा किरण-मध्य कहते हैं। यदि प्रकाश-विन्दुसे किरणें प्रसरें और फिर एक दूसरे से न मिलें तथा प्रसरकर एक दूसरेसे दूर होती जावें तो ऐसे समूहको Divergent समूह कहते हैं। चित्र (३) में समानान्तर किरण-समूह दिखाया गया है क, ख, ग समानान्तर रेखामें किरण सूचक हैं यह किरणें कभी एक दूसरेसे न मिलेंगी, सूर्य्य, चन्द्र तथा अन्य तारागण पृथ्वीसे बड़ी दूरपर हैं इससे उनसे आने वाला किरण-समूह समानान्तर माना जाता है। चित्र (२) में केन्द्राभिमुख समूह है अ केन्द्र अथवा किरण-मध्य है। चित्र (१) में Divergent समूह दर्शाया गया है। केन्द्र अ से प्रसरकर किरणें क, ख, ग इत्यादि एक दूसरेसे प्रसरकर अलगहोती जाती हैं।

अकृत्रिम मूर्ति।

(ले० श्री नरेन्द्र देव, एम. ए., एल एल. बी.)

मूर्ति-निर्माण-विद्या एक प्राचीन कला है, हिन्दुओंके प्राचीन ग्रंथोंमें मूर्ति बनानेके लिये उचित विधान किये गये हैं। शुक्रनीतिमें नियम दिये हैं जिनके अनुसार भिन्न भिन्न देवताओंकी प्रतिमाएं बनाना चाहिये। पाषाण तथा विविध धातुओंकी मूर्तियोंका उल्लेख है। इन सबके लिए भिन्न भिन्न मान नियत कर दिया गया है। यदि मूर्ति उस मानकी न हुई तो कलाभिज्ञ लोग उसे सदोष समझते हैं। परन्तु कुछ प्रकारकी मूर्तियोंकी रचनाकेलिए कोई विशेष नियम नहीं दिया गया है। ये मूर्तियाँ बनानेवालेकी इच्छानुसार रची जासकती हैं। उदाहरणकेलिए जो मूर्तियाँ बालू वा मिट्टीसे बनती हैं उनकेलिए कोई नियम नहीं है। कारण यह है कि ये प्रतिमाएं स्वभावतः स्थायी नहीं हैं।

इसी प्रकार कुछ नदियोंमें मूर्तियाँ पाई जाती हैं जो जलकी क्रिया विशेषसे एक नियत रूप की होती हैं और उनकी पूजा उसी रूपमें होती है। मनुष्यको उनके रूपमें परिवर्तन नहीं करना पड़ता। इनके लिये भी शास्त्रोंके कोई नियम नहीं दिये गये हैं। यथा शुक्रनीतिमें कहा है—

" रत्नजे गंडकोद्‌भूते मानदोषो न सर्वथा। पाषाण धातुजा यांतु मानदोषान्विचिन्तयेत् "

(शुक्रनीतिसार, चतुर्थ अध्याय, चतुर्थ प्रकरण, श्लोक १५३) अर्थात् गंडक नदीमें उत्पन्न रत्नकी मूर्तिमें मानदोष नहीं होता। केवल पाषाण और धातुकी मूर्तियोंमें मानदोष देखना चाहिए। गंडकी नदीमें शालग्रामकी मूर्ति पाई जाती है। गंडकीको इसीलिए शालग्रामी और नारायणी भी कहते हैं। गंडकीका एक दूसरा नाम हिरण्यवती भी है। लोगोंका विश्वास है, शालग्रामकी मूर्तिमें सोना होता है और मेरे एक मित्र कहते हैं कि उन्होंने किसी सज्जन के पास शालग्रामकी एक मूर्ति देखी थी जिसमें से सोना निकाला गया था। मालूम होता है इसी कारण से गंडकीका नाम हिरण्यवती है।

बराहपुराणमें एक स्थानपर गंडकी तीर्थका वर्णन है। इस प्रकरणमें एक स्थलपर महादेव और चंद्रमाका संबाद दिया है। महादेव कहते हैं–हे चन्द्रमा! गंडकीने भी प्राचीनकालमें १० हज़ार वर्ष तप किया। जब भगवान प्रगट हुए और गंडकीसे वर माँगनेको कहा तब गंडकी यों बोली "देव! यदि मुझसे आप प्रसन्न हैं तो मुझे वांछित वर दीजिये। हे विष्णु भगवान आप मेरे पुत्र हों और मैं आपको अपने गर्भमें धारण करूँ[1] "। भगवान प्रसन्न होकर गंडकीसे बोले " हे देवि! मेरी बात सुनो। मैं शालग्राम शिलाके रूपमें सदा तुम्हारे गर्भमें निवास करूँगा। मैं अपने भक्तोंपर अनुग्रह करता हूँ, इस कारण मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा[2]"।

शुक्रनीति तथा इस कथासे स्पष्ट विदित होता है कि गंडकीमें शालग्रामकी मूर्तिका पाया जाना बहुत दिनोंसे लोगोंको मालूम था। मि० एडगर थर्स्टन (Mr. Edgar Thurston) अपने " Ethnographic notes in Southern India " में लिखते हैं कि शालग्रामकी मूर्ति सोन और अन्य कुछ नदियोंमें भी पाई जाती है।

इसी प्रकार नर्मदामें नर्मदेश्वर महादेवकी मूर्ति पाई जाती है। यह मूर्ति बड़ी मनोहर

१—गंडकी उवाचः—

यदि देव प्रसन्नोऽसि देयोमेवांछितोवरः। ममगर्भगतोभूत्वा बिष्णोमत्पुत्रतां व्रज॥ बराहपुराण। अ० १४४, श्लोक ५३, ५४॥

२ गंडकीमवदत्प्रीतः श्रृणु देवि वचो मम। शालग्रामशिलारूपी तव गर्भगतः सदा स्थास्यामि तव पुत्रत्वे भक्तानुग्रहकारणात्॥ ५५॥

होती है। नर्मदामें चिकने सुन्दर पत्थर बहुत पाए जाते हैं जिनका पेपरवेट बनता है।

इससे भी अधिक आश्चर्यकी बात केन नदीके संबंधमें है। केन नदी बांदेमें बहती है। नदी बहुत छोटी है। इसमें रंग बिरंगे मनोहर पत्थर पाए जाते हैं जिनके बटन बनते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ पत्थर ऐसे पाए जाते हैं जिनपर चित्र अंकित रहते हैं। कहते हैं जिस पदार्थकी छाया इन पत्थरोंपर पड़जाती है उसीकी प्रतिमा इनपर प्राकृतिक नियमसे अंकित हो जाती है। मेरे एक मित्रके पास ऐसा ही एक पत्थर है जिसपर झाऊ का चित्र है। केन नदीके किनारे झाऊ बहुत है। इसी कारण प्रायः झाऊका ही चित्र पाया जाता है। इस पत्थरको 'शजरी' कहते हैं 'शजर' फ़ारसी में पेड़को कहते हैं ; चूंकि इन पत्थरों पर बहुधा झाऊका ही चित्र पाया जाता है इसी कारण कदाचित् इनको 'शजरी' कहते हों।

यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है। प्रकृतिका जितना ही मनन कीजिये उतना ही आनन्द और आश्चर्य होता है। जो कार्य मनुष्य यंत्रों द्वारा अनेक कष्ट सहकर संपादन करता है उसे प्रकृति अनायास ही बिना किसी बाह्य साधनकी सहायता सिद्ध कर लेती है। प्रकृतिके रहस्य गूढ़ और अनन्त हैं। उनका अनुसंधान करना मनुष्य का परम कर्तव्य है।

खेतीका प्राण और उसकी रक्षा

१—खाद

[ले० संकर्षण, बी एस-सी.। पहले अंकसे सम्मिलित]

पर इतना स्मरण रहे कि गोबर लीद आदिकी तरह खलियां, ज़मीनमें खादके लिये बीज बोनेके पहले नहीं डालना चाहिए। इनको ज़मीनमें बीज बोने और पौधा उग आनेके पीछे मिट्टी या राखमें अच्छी तरह बुकनी करके मिलाकर ही डालना चाहिए। मिट्टी या राख, खलीसे तिगुनी होनी चाहिए। कुछ फ़सलें ऐसी भी होती हैं जिनमें नत्रजनीखाद (nitrogenous manures) नहीं दिया जाता। इन फ़सलोंको अङ्गरेज़ीमें लिग्यूमिनसक्राप्स (Leguminous crops) कहते हैं-उदाहरणार्थ-मटर, मूंग, मसूर, चना, अरहर, बरबट्टी (बोरा) नील, मूंगफली, इमली, सन (सनई), बबूल इत्यादि। इनके पौधोंमें वायुसे नत्रजन खींच लेनेकी शक्ति होती है जो दूसरे पौधोंमें नहीं पाई जाती। इसी कारण इनमें नत्रजनिक खाद देना बिलकुल व्यर्थ है। परीक्षासे देखा गया है कि ऐसा खाद व्यर्थ होनेके अतिरिक्त इन फ़सलों को हानि भी पहुँचाता है।

अब मुझे हड्डीके खाद (सफ्रोज्ज-मय खाद अथवा अस्थिखाद (Phosphatic manure.) के विषयमें एक बात और लिखना रह गई है। वह यह है कि इनसे फलवाले वृक्षोंको बड़ा फ़ायदा पहुंचता है। यह तो लिखा ही जा चुका है कि जिन पौधोंमें यह खाद दिया जाता है वे साधारणतः और पौधोंकी अपेक्षा कहीं बलिष्ठ होते हैं और कीड़ों, पतिङ्गोंके आक्रमणसे बहुत कुछ बचकर सदा रोगोंसे ग्रसित नहीं रहते। इस खादसे फलवाले वृक्षोंको यह विशेष लाभ पहुंचता है कि उनके फल अधिक मीठे और स्वादिष्ट हो जाते हैं तथा जल्द पककर तय्यार हो रहते हैं। नैपाली लोगोंका क़ायदा है कि जब वे कोई फलवाला वृक्ष लगाते हैं तो नीचे गड्ढे में थोड़ीसी समूची हड्डियाँ रख देते हैं। उनका कथन है कि ऐसा करनेसे फल सदा मीठे होंगे और यह ठीक भी है। देखिये हड्डियोंकी उपयोगिता और उनकी ओर हमारी घृणा! यदि नैपाली भाइयोंकी तरह हम और विशेष कर हमारे किसान उनकी क़दर करने लगें तो ऐसा बहुमूल्य पदार्थ क्यों दूसरे देशोंको यहाँ से ले जाया जाय।

अब केवल एक और खादका वर्णन करके इस विषयको समाप्त करता हूं। इस खादको अङ्गरेज़ी में (Green Manuring) ग्रीनमैन्योरिङ्ग कहते हैं। इसके प्रयोग में कुछ भी कठिनाई नहीं पड़ती, हाँ केवल थोड़ीसी सावधानीसे काम लेना पड़ता है और बहुत कम परिश्रम और धन व्ययसे लोग इसका प्रयोग करके लाभ उठा सक्ते हैं।

प्रायः ख़रीफ़की फ़सल जुलाई मास के मध्यमें बोई जाती है। रबीकी बौनी बिजया-दशमीके आसपाससे करते हैं। इस बौनीसे निवृत्त होकर किसान लोग ख़रीफ़को काटते हैं और फिर खलयान रखाते हैं। मार्चके अन्त में रामनौमीके लगभग रबीकी कटाई हो जाती है। इस समयसे दो तीन पानी हो जाने तक खेत परती पड़े रहते हैं। बादको ऊपर लिखे हुए चक्रके अनुसार ख़रीफ़की कटाई और रबीको बौनी और कटाई होती है। इस बीचमें यदि खेत दो एक बार जोत दिए जाँय तो क्या ही अच्छा हो। घास फूस कांस इत्यादि जो जोतने से मिट्टी के ऊपर आजाते हैं कड़ाकेकी धूप पड़नेसे सूखकर नष्ट हो जाँयगे। यों खेत भो साफ़ हो जाँयगे और जोत दिये जाने से ज़मीन भी ऊपर नीचे अच्छी और सम हो जायगी जिस्से बरसात होते ही खेतोंमें पानी लग सकेगा और ज़मीन अच्छी तरह उसे पी भी सकेगी। यदि खेत बिना जोते पड़े रहें तो बर्षाका पानी पड़कर बह जायगा, ज़मीनमें अच्छी तरहसे लग न सकेगा और इस तरह बर्षासे ज़मीनको उतना लाभ न हो पावेगा तथा नीचे वाली ज़मीनको वायुसे भी भेंट करनेका अवसर न प्राप्त हो सकेगा।

गरमीके महीनोंमें इस प्रकार खेत जोतनेको "धुप काले" या धूपकी खेती कह सक्ते हैं और इसके द्वारा सहज ही में वायु और पानीका पूरा पूरा लाभ उठाया जासक्ता है।

यह कहा जा चुका है कि सन (सनई Sunn Hemp—Crotolaria Juncea L) के पौधे वायुसे नत्रजनको खांच लेनेकी शक्ति रखते हैं। यह स्वयं तो बड़े वेगसे बढ़ते हैं परअपने साथ घास फूस कांस इत्यादिको नहीं बढ़ने देते। इनकी जड़ें चनेकी जड़की तरह सीधी नीचे जाती हैं, इस कारण ज़मीन में $\frac{१}{२}$—१ फ़ुट नीचे तककी नमीको खींचकर पौधेकी बृद्धिके लिए पानीके अंशकी पूर्ति करती हैं; ज़मीनसे जितना पोटाश और स्फ़ोक्ष मिल सक्ता है उसे भी खींच लेती हैं और नत्रजनको तो वायुसे लेती ही रहती हैं।

इस फ़सलके उपजानेमें यह विशेष सुविधा है कि इसमें ऊपरी पानीकी अधिक आवश्यकता नहीं पड़ती। खेतकी मिट्टीका नत्रजन वैसाका वैसा ही बना रहता है और बहुत कुछ वायु से खिंचकर इसके पौधोंमें आजाता है इसी कारण यह फ़सल खादके सम्बन्धमें बहुत अच्छी कही जाती है क्योंकि नत्रजनका अंश इसमें अधिक हो जाता है। सनईकी फ़सल तय्यार होनेपर यों ही काटकर खेतमें जोत देते हैं इस प्रकार उस खेतमें जो फ़सल सनईको जोत देनेके बाद बोई जाती है उसे सनईके पौधों की खादसे पूरा फ़ायदा पहुंचता है। यह तो हुआ स्थूल वर्णन अब इसकी रीति और क्रिया विस्तार पूर्वक श्रवण कीजिए।

खादकेलिए सनईकी फ़सल बोने की रीति यह है कि मईके तीसरे या चौथे सप्ताहमें पहला पानी पड़ते ही खेतमें इसके बीज २० सेर प्रति बीघा (=३० सेर प्रति एकड़) छिड़क देते हैं। दो महीनेमें इसकी फ़सल तय्यार हो जाती है। फिर इसको काटकर खेतमें जोत देते हैं। जोतनेसे दो महीने बाद खेतमें फिर रबीकी बौनी करते हैं दो या तीन महीनेमें सनईकी जोती हुई फ़सल सड़कर उत्तम खाद बन जाती है और रबीकी फ़सलको पूरा लाभ

पहुंचता है। अब यह स्पष्ट हो गया कि सनईकी तय्यार फ़सल यदि जोत दी जाय तो दूसरी फ़सल बोनेके पहले उसका सड़ कर ज़मीनमें मिल जाना बहुत ज़रूरी और लाभदायक है। इस सड़नेकेलिए दो महीने काफ़ी पाये गये हैं। पर इसके साथ यह भी ज़रूरी है कि सनई-की फ़सल गाड़ देनेके बाद ज़मीनको पानी ज़्यादा मिले क्योंकि जो कुछ पानी ज़मीनमें था वह तो सनईके पौधे सोख चुके अब रबीकी फ़सलके जमने तथा सनईकी जोती हुई फ़सल-के सड़नेकेलिए काफ़ी पानी ज़मीनको मिलना चाहिए; नहीं तो इस खादसे कोई गुण न हो सकेगा परिणाम यही होगा कि बिना खाद दिए पहले ऐसे खेतोंकी या उससेभी बुरी फ़सल हाथ लगेगी। यदि सनईकी फ़सल जोतनेसे रबीकी बौनी करने तक दो महीनेके बदले तीन महीने या इससे अधिक समय व्यतीत होजाय तो भी इस खादसे लाभके बदले हानि ही होगी। यदि सनईकी फ़सल जोतने और रबीकी बौनी हो चुकनेपर पानी अधिक बरस जाय और खेतोंमें भर रहै तो भी इस खादसे लाभ नहीं होता। इससे सिद्ध होता है कि जोते जानेपर यदि इसका सम्बन्ध वायुसे टूट जाय तो यह खाद उपकारक नहीं होती। बलुई ज़मीनोंमें चिकनी मिट्टीकी ज़मीनोंकी अपेक्षा सनईका खाद ज़्यादा लाभदायक होता है और ऐसी ज़मीनोंमें सनईकी फ़सल तय्यार होनेपर काटकर गाड़दिये जानेसे सहजमें सड़ भी अच्छी तरहसे जाती है। यहाँ भी वही वायु सेवनका सिद्धांत लगता हुआ प्रतीत होता है। इसलिये चिकनी मिट्टी वाली भूमिमें इसकी फ़सलको काटकर तुरन्त ही गाड़ न देना चाहिए। कुछ दिन तक पड़ा रहने देनेके बाद जोतना चाहिए। संक्षेपतः सनईके खाद से लाभ उठानेकेलिए इन बातोंपर ध्यान देना चाहिए।

(१) बलुई ज़मीनमें इसकी फ़सलको तय्यार होनेपर काटकर तुरन्त ही और चिकनी मिट्टी वाली ज़मीनमें कुछ दिन पड़ा रहनेके बाद जोतना चाहिए।

(२) जोत देनेके दो महीनाके बाद ही रबी की बौनी हो जानी चाहिए।

(३) इस खादका प्रयोग केवल ऐसे खेतों में करना चाहिए जहाँ पानी न भरा रहता हो।

(४) जहाँ अख़ीर मई या शुरू जून तक पानी पड़ना शुरू न हो जाय या जहाँ काफ़ी पानी न बरसता हो और ऊपरसे सिंचाईका भी पूरा प्रबन्ध न हो वहाँ इस खाद का प्रयोग न करना चाहिए।

[क्रमशः]

पौधों के जीवन और स्वास्थ्य के मूल आधार

(ले० बा० राधानाथ टंडन बी. एस-सी.)

यदि हम किसी पौधेको जलाकर उसकी राख और उन गैसोंका जोकि उससे निकलती हैं रासायनिक विश्लेषण करें तो ज्ञात होगा कि इसमें कोयला, ओषजन, उज्जन, नत्रजन, गन्धक, स्फुरज, खटिक, पोटाश, मग्नक लोह, क्षारज, सिकतक, तथा अन्य मूलतत्त्व पाये जाते हैं। इन मूलतत्त्वोंमें पहले ६ तत्त्व पौधोंकेलिए परम आवश्यकीय हैं। स्फुरज न होनेसे चाहे पौधे जी जाँय पर पहले ५ तत्त्वों मेंसे एकके भी न होनेसे पौधे कदापि जीवित नहीं रह सकते। इन ही पाँच तत्त्वों और कभी कभी स्फुरजके मिलनेसे ही सेल अथवा कोष-का (cell) जीवाद्यम (protoplasm), जो जीवनका मूल कारण है, बनता है। परीक्षा करके देखा गया है कि पौधोंके स्वास्थ्य और उगानकेलिए इन पाँचों तत्त्वोंके अतिरिक्त

खटिक, पोटाश, मग्नक, और लोहका भी उस धरतीमें होना जहाँ पौधे उगाए जाते हैं नितान्त आवश्यकीय है। यदि इन आवश्यकीय पदार्थोंमेंसे एककी भी कमी हो जाय तो पौधेमें कई तरहके रोग हो जाते हैं जैसे लोहके न होनेसे पौधेकी हरियाली मारी जाती है, पौधा पीला पड़ जाता है। और पोटाश न होनेसे कार्बोहैड्रेट (शालिजानीय-उपादान) पौधेमें नहीं बनता; इत्यादि।

अब यदि हमारे पाठकगण इतना समझ लें कि यह मूल तत्त्व पौधेमें कहाँसे आये तो उन्हें मालूम हो जाय कि पौधेके जीवनके मुख्य आधार क्या हैं, और साथ ही साथ यह भी जान लें कि पौधेकी पैदावारकेलिए हम लोगोंको किन किन उपायोंकी आवश्यकता अधिक है। यदि परीक्षाकरके देखा जाय तो मालूम होगा कि पौधेका आङ्गार (carbon) वायुके कार्बनडाईआक्साइड (Carbon dioxide) से ही मिलता है, यदि यह गैस किसी तरहसे वायुसे निकाल ली जाय तो पौधे कदापि जीवित नहीं रह सकते। यह गैस सदा वायु मण्डलमें बनी रहती है, अतएव हम लोगोंको पेड़ोंकेलिए कार्बनडाइआक्सईड (Carbon dioxide) की चिन्ता करना व्यर्थ है।

अब देखना चाहिये कि पौधेमें ओषजन, उज्जन, नत्रजन और गन्धक इत्यादि कहाँ से आए। 'बनस्पति शरीर-विज्ञान' के पढ़नेसे मालूम हुआ है कि ओषजन और उज्जन जिनके रासायनिक संयोगसे जल बनता है पौधेको जल ही से मिलते हैं। शेष मूलतत्त्व जैसे नत्रजन, गन्धक इत्यादि, निर्द्योतजकीय पोटाश (Potassium nitrate) और गन्धकीय खटिक आदि भस्मोंसे, जोकि खाद और मल मूत्र सरिस पदार्थोंमें अधिकतासे होते हैं, लिये जाते हैं। ये भस्म जलमें घुलकर पौधों में पहुँचते हैं। इन बातोंसे अब जानना चाहिये कि वास्तवमें पौधोंके मुख्य आधार दोही हैं जल और खाद। इन्हीं दोनोंकी कमीसे बहुधा हमारे खेतोंकी दशा शोचनीय है। यदि खेतों में जल न दिया जाय तो आप देखेंगे कि खेतों के पेड़ मुरझाकर जल्द सूख जाँयगे चाहे उनमें खाद भी हो। खाद होनेसे यह लाभ है कि पेड़ोंमें किसी तरहके उपादानकी कमीसे रोग नहीं होने पाता और पौधे बहुत शीघ्र बढ़ते और फूलते हैं। इन बातोंको भली भाँति समझानेकेलिए यह उचित है कि जल और खादके महत्त्वका वर्णन अलग अलग किया जाय।

जलका महत्त्व

यदि हम किसी बाटिकामें जाकर किसी एक हरे पौधेके डंठलको छुरीसे काट कर कटी हुई जगह की परीक्षा करें तो देखेंगे कि कटी हुई जगह आरंभमें थोड़ी बहुत गीली अवश्य रहती है किन्तु कुछ समय पीछे सूख जाती है। किसी किसी पौधेका अंग काटते ही जल निकलने लगता है, और किसी किसी पौधोंसे एक प्रकारका दूध बह निकलता है। इन परीक्षाओंसे यदि विचार पूर्वक देखा जाय तो यही परिणाम निकलता है कि जल पौधोंके प्रत्येक अंशमें बिराजमान है। गूदेदार पौधोंमें तो परीक्षा करनेसे मालूम हुआ है कि १०० में ९९ हिस्सा पानी रहता है।

यदि विचार किया जाय तो मालूम होगा कि जल का अंश इतना अधिक होना हर तरह से आवश्यक है। यदि ऐसा न हो तो पेड़का बढ़ना कठिन हो जाय। जलके सेल अथवा कोष रहनेसे ही पौधोंके जीवैक अथवा सेल गुब्बारेकी तरह फूल उठते हैं। और फिर कुछ दिनों बाद यह फूली हुई सूरत उनकी सदाकेलिए वैसी ही हो जाती है। यहाँ पर यह प्रश्न होसकता है कि यदि उनकी सूरत सदाकेलिए वैसी ही

हो जाती है तो पौधे दिनोदिन बढ़ते क्यों दिखाई देते हैं ? बढ़नेका एक सबसे प्रधान कारण सेलोंका विभाजित होना है । ध्यान रखना चाहिये कि हर पौधेके तने या ढंठल-के सिरेपर सेल सदा विभाजित हुआ करते हैं। दो चार सेलोंसे हज़ारों सेल (कोष) बन जाते हैं । इन जगहोंपर विशेषकर जल बड़े ज़ोर से पहुँचता है और ज्यों ज्यों कोषका विभाग होता जाता है त्यों त्यों जल इन विभा-जित-सेलोंमें भरता जाता है और कोष समूह जलके प्रवेशसे फूलकर सदाकेलिए बढ़ी हुई सूरत ग्रहण करता जाता है । सबसे मोटी बात तो इसके महत्व में यह है कि जल न हो तो पौधेको खाना कौन पहुँचावे ? इसी द्वारा तो पौधेके खानेके पदार्थ जलमें घुलकर पौधेमें पहुँचते और पौधेके जीवधातु को बनाते हैं।

यदि पौधेके शरीरकी बनावटपर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि जल और 'कार्बनडाईआक्साइड' (Carbon dioxide) में एक रासायनिक संयोग होता है जिससे दो चीज़ें पैदा हो जाती हैं, एक चेतन पदार्थ और दूसरा ओषजन । ओषजन तो पत्तियोंसे निकल कर प्राणीमात्रके जीवनका आधार बनता है और चेतन पदार्थ पेड़में जमा होकर माँड़ (Starch) का रूप धारण करता है। जब कभी पौधेको खानेकी ज़रूरत होती है तो यह माँड़ शक्करके रूपमें बदलकर जलमें घुलकर पौधेके प्रत्येक अंग अंग में प्रवेश करता है।

इन बातोंसे अब पाठक देखेंगे कि जल ही संसारके सब कामोंको चला रहा है और प्राणी मात्रके भोजनका भी यही आधार है । इसका महत्व केवल इसी एक बातसे स्पष्ट है कि सृष्टिके आदि में जल ही का पहले पहल आगमन हुआ । जलके बाद वनस्पति और बादको जीव जन्तुओंका प्रादुर्भाव हुआ।

खाद का महत्व

अब यदि पाठकगण खादकी ओर ध्यान दें और उसका रासयनिक विश्लेषण (analysis) करें तो मालूम होगा कि खादमें अधिकतर पौधेका भोजन पाया जाता है। अधिक नत्रजन वाले पदार्थ ही पौधेको वास्तवमें विशेष लाभ पहुँचाते हैं। मल मूत्र, जैसे गोबर लेंड़ी, बीट आदिके ही मिलानेसे खाद बनती हैं। कभी कभी सड़ा हुआ मुर्दा माँस भी खादमें मिलाया जाता है जिससे खाद पौधेकेलिए और भी उपयोगी हो जाता है। खाद के द्वारा पौधे में स्फुरज, पोटाश और नत्रजन पहुँचाया जाता है। यदि पौधेमें खाद न दी जाय तो उपरोक्त तत्त्वोंके न पहुँचनेसे पौधे तुरन्त रोगी होकर थोड़े ही दिनमें मर जायें।

खादके सम्बन्धमें एक महत्वकी बात जानने योग्य यह है कि खादोंमें प्रायः कई तरह के छोटे छोटे सूक्ष्म जीव हुआ करते हैं जिनको वैक्टीरिया (Bacteria) कहते हैं । यह वैक्टीरिया उन्हीं जीवोंके जातिमें हैं जिनसे प्लेग आदि बीमारियां फैलती हैं । इन जीवोंसे पौधेको बड़ा लाभ पहुँचता है। इन्हींके कारण पौधेको नत्रजन मिलता है । जब खादमें माँसजातीय (Proteid) पदार्थका नत्रजन इसके दहन किये हुए अङ्गार अर्थात कार्बनडाइआक्सा-इडसे मिलकर अमोनियम कार्बोनेट बन जाता है तो ये बैकटीरिया इसको एक अद्भुत रीतिसे एक घुलनशील निर्धोतजकोय पोटाश में बदल देते हैं। इन बैकटोरियोंमें कुछ ऐसे भी होते हैं जो वायुसे भी नत्रजनको लेकर पौधेमें पहुंचा सकते हैं। यही निर्धोतजकीय पोटाश फिर पौधेके शक्करसे मिलकर कई तरहके प्रोतीद-अर्थात् माँसजातीय पदार्थ-जिनसे जीवाद्यम तय्यार होता है बन जाते हैं।

अब पाठक समझ गए होंगे कि पौधे केजीवन केलिए जल और खादका होना क्यों ज़रूरी है।

रोशनी

प्रत्यक्ष प्रयोग करनेसे मालूम हुआ है कि पौधेके स्वास्थ्यकेलिए रोशनीकी आवश्यकता ऊपर कही हुई दोनों चीज़ोंकी अपेक्षा किसी तरह कम नहीं है। यदि आप किसी पौधेको अँधेरे स्थानमें उगायें ते। देखेंगे कि पौधेमें अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिससे पौधा पीलाहोकर थोड़े ही दिनोंमें मर जाता है। यह रोग ठीक उसी तरहका है जैसा कि पौधे के धरतीमें लोहके न होनेसे हो जाता है।

पौधेपर रोशनी न पहुँचनेसे इसमें वे दाने जिनसे पौधे हरे दीख पड़ते हैं नहीं बनते बरन् इन हरे दानोंकी जगह पीले दाने बन जाते हैं जिनसे पौधेका काम नहीं चलसक्ता। पौधेमें कार्बोहाईड्रेटका बनना इन्हीं दानों पर निर्भर है।

संसारमें कोई ऐसा जीव नहीं है जो शक्ति (Energy) बिना काम करसके। काम करनेकेलिए जीवोंको कहीं न कहींसे शक्ति लेनी ही पड़ती है। हम लोगोंको यह शक्ति भोजन द्वारा मिलती है, पर पौधोंमें यह शक्ति (Energy) इन हरे दानों द्वारा सूर्य्यकी रोशनी से ही पहुँचती है। तभी पौधे बढ़ते हैं। अतएव पौधेके स्वास्थ्यकेलिए यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि पौधे दिन रात घोर अन्धकारमें न पड़े रहें पर ऐसे स्थानमें लगाए जाँय जहाँ उन्हें थोड़ी बहुत रोशनी अवश्य मिलती रहे।

साझेकी खेतीसे लाभ!

कृषि-सहकार वा खेती-भंडार

[ले० विज्ञान-कल्पतरु सम्पादक श्रीयुत मुख़्तार सिंह वकील, मेरठ]

हमारा देश कृषि प्रधान देश है। यहाँ सौमें पछत्तर मनुष्योंकी रोज़ी खेतीसे ही चलती है। संसारके इतिहासको देखनेसे जान पड़ता है कि खेतीमें यह देश सब देशोंका गुरु रहा है और लगभग सबही देशोंने कृषिकी शिक्षा भारतवर्षसे पायी है। इस देशमें और देशोंकी अपेक्षा यह भी विशेषता है कि प्रान्त प्रान्तकी धरती, ऋतु आदिमें इतना भेद है कि संसारका कोई भी ऐसा देश नहीं जहाँकी वस्तु यहां न उपज सकती हों। अफ्रिका जैसे देशकी गरमी तथा लापलैन्ड जैसी सरदी भारतके अनेक प्रांतोंमें ईश्वरने दी है। इस निगाहसे भारतबर्षको यदि संसारका नमूना कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। अनेक चीज़ोंकी जो केवल किसी किसी देशमें उपजती थीं जब भारत सरकारने परीक्षा की तो देखा गया कि अनेक स्थानोंमें वे भली भाँति उपज सकती हैं। इन जाँचोंसे प्रकट होता है कि प्राकृतिक रूपसे भारतवर्ष सब देशोंका शिरोमणि है, और परमेश्वरने कोई भी ऐसी बात नहीं छोड़ी जो भारतवर्षको न दी हो।

प्रश्न हो सकता है कि फिर क्या कारण है कि सब प्राकृतिक लाभोंके होते हुए भी भारतवर्षके किसान ऐसी हीन अवस्थामें हैं कि न उनके पास खानेको रोटी है न पहननेको कपड़ा? माघके जाड़ोंमें बेचारे एकही मिरज़ईमें गुज़र करते हैं और बहुतोंको तो एक समय खाना भी नहीं मिलता। आये दिन दुर्भिक्षोंसे पीड़ित रहते और अकाल मृत्युके गालमें पड़ जाते हैं। न केवल किसानोंकी

अपनी ही यह हीन अवस्था है किंतु उनके पैदा किये हुए सामान भी इसी बुरी दशामें संसारमें स्थान पाते हैं। अभी थोड़े ही वर्ष बीते कि भारतवर्ष कपासकेलिए प्रधान देश था और करोड़ों मन कपास भारतसे बाहर जाती थी और सौदागर लोग भारतकी कपासके लिये टूटे पड़ते थे किंतु अभी तीसरे वर्ष आपने देखा कि कपासकी उपज कम होते हुए भी भाव कुछ नहीं बढ़ा। विलायतोंमें आज भारतवर्षकी कपास लोग उस समय ख़रीदना चाहते हैं जब कि उस भावपर उनको अन्य देशोंकी कपास नहीं मिलती। यही हाल अन्न का है। यदि भारतवर्षका अन्न विदेशोंमें न जाय तो विदेशी भूखों मरें तथापि भारतके अतिरिक्त और स्थानोंके अन्नका विलायतोंमें अधिक मान होता है और भारतके अन्न पर ।= मन के क़रीब कितना ही अच्छा अन्न क्यों न हो गरदा काटकर दाम लगाये जाते हैं। भारतवर्षमें इतनी सस्ती मज़दूरी, सस्ती धरती, सुगम और कम दामोंपर मिलने वाले खेतीके औज़ार होते हुए भी जहाँ लाखों मन खाँड भारतसे अन्य देशों को जाया करती थी आज लाखों मन खाँड अन्य देशोंसे आकर हमारे देशमें बेची जाती है। संसारके अनेक स्थानोंके पैदा किये हुए फल यद्यपि भारतके फलोंका मुक़ाबला नहीं कर सकते तथापि वैज्ञानिक रीतियों से बंद होने और सुखाये जानेसे आज भारतवर्षमें करोड़ों रुपैयोंके आकर बिकते हैं। मटर और आड़ू जैसे फल भारतमें कैलीफ़ोर्निया आदि देशोंसे आकर बेचे जावें, किंतु भारतका आम, नागपुरका संतरा, देहरेकी लीची भारतसे बाहर न भेजी जासके यह कितने शोक की बात है! दूधकी बुकनी या सफ़ूफ़ (Condensed milk) आज भारतवर्षमें कितना बिक रहा है। जौ जैसी वस्तु जो भारतवर्षमें आज दिन जब दुर्भिक्ष पड़ा हुवा है १४ सेर मिलती है छिलका उतार कर जैन्टिलमैनोंके लिये विलायतसे आकर ।) पौंड या ॥) सेर से भी अधिकपर बेची जाती है।

इन सब विचारोंसे यह पता चलता है कि हमारे काम करनेके ढंगोंमें अवश्य कहीं न कहीं भूल है, कमी है, और हमको यह जानने की आवश्यकता है कि हम कौन कार्य्य ऐसा करें जिसमें हमारीभी उन्नति हो सके। अवश्य कोई बात है जिसके न होनेसे हमारी यह दुर्दशा दीखती है। आजसे ४० बरस पहले अन्य देशों के सामने भारतवर्ष शिरोमणि गिना जाता था। आओ आज हम सब मिलकर इस बातका विचार करें कि इस दुर्दशाके क्या कारण हैं और उसके दूर करनेके क्या उपाय हैं?

यह हमारे दुर्भाग्यकी बात है कि भारतीय किसान प्रायः बेपढ़े मनुष्य हैं और हमारे पढ़े लिखे देशवासी उनकी परवाह नहीं करते और उसी खेतीको नीच काम समझते हैं जिसे हमारे पुरखे सबसे उत्तम काम समझते थे। पुरानी कहावत है "उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी भीख निदान"। समय का फेर है और उसी निकृष्ट चाकरी की ओर हमारे विद्वान भाई आज बेतरह झुके हुए हैं और उसे इन्द्रासन समझते हैं।

विलायतके थोड़ेसे बर्षोंके लगातार प्रयत्नने यह सिद्ध कर दिया है कि यदि भारतवर्षकी यही अवस्था रही तो किसानोंकी दशा इस-से भी हीन होती चली जायेगी। यदि आज कपास और ईखकी खेती भारतसे छीन ली जाय तो यह असंभव है कि भारतके किसान सुगमतासे लगान और मालगुज़ारी भी दे सकें। खांडकी दशा नित्य प्रति शोचनीय होती जाती है। सरकारके इतने प्रयत्नके पश्चात्‌भी, स्वदेशीका इतना शोर मचने पर भी खांडकी भारत में आय नित्य प्रति बढ़ती जारही है और अब प्रायः ईखकी खेती गुड़ और शीरा पैदा

करनेके लिये ही रहती जाती है। कपासकी अवस्थाभी अमरीका आदि देशोंकी पैदावारके सामने शोचनीयही हो रही है; और केवल इसलिये जीवित है कि अभी संसारका कोई देशभी जितनी कपासकी आवश्यकता है नहीं दे सका। गेहूं आदि अन्नकी पैदावार इतनी कम है कि जिन खेतोंमें पहिले १० मन अन्न पैदा होता था अब केवल चार मन ही होता है। बैलोंके मूल्य बढ़ जानेसे, वर्षाके बराबर ठीक समयपर न होने से, मज़दूरीके दाम बढ़नेसे तथा लगानमें नित्य प्रति वृद्धि हो जानेसे अन्य किसानोंकी अवस्था इस योग्य नहीं रही है कि इसको देर तक इसी प्रकार संतोषसे छोड़ दिया जा सके। इसलिए आवश्यकता है कि इस ओर हमारे देशहितैषी विशेष रूपसे ध्यान दें और कृषिकी उन्नतिके उपाय सोचें।

सरकारी तरीके पर जो रिपोर्ट ईखकी खेती-के विषयमें समय समयपर प्रकाशित होती रही है उससे जान पड़ता है कि भारतवर्ष-में इसलिए भी विशेष उन्नति नहीं हो सकती कि यहां प्रत्येक किसानके खेत छोटे छोटे हैं और उनमें यदि कला कौशलसे काम लिया जावे और विलायतके चलने वाले अञ्जन लगाये जावें तो विशेष उपयोगी नहीं हो सकते। काश्तकारोंकी दशाभी ऐसी शोचनीय है कि वे नहीं जानते कि जिस खेत को जोत रहे हैं अगले वर्ष उनके पास रहेगा या नहीं। फिर वे विशेष रूपसे उस खेतमें खाद आदि क्यों डालेंगे? यह ऐसे बाधक कारण हैं कि विशेष उन्नति असंभव है। लोगों का निर्धन होना, बीजका ठीक न मिल सकना, अनपढ़ होना, खादके पदार्थोंका—हड्डी आदि का उपयोग न जानना और उनका देशसे बाहर चला जाना तथा उनकी बिक्रीपर उनका कोई अधिकार न होना अन्य कारण हैं जो विशेष उन्नति नहीं होने देते। इन सब कारणों को दूर करनेका एक मात्र उपाय यहही है कि हम सब मिल जुलकर कार्य्य आरम्भ करें। प्रत्येक नगरमें एक बड़ा भारी कार्य्यालय हो जिसमें प्रत्येक मनुष्य अपने कामके अनुसार धन पावे तथा उसका सारा काम—जो काम जिस मनुष्यके योग्य हो—उस संस्थाके हाथ में हो। यदि सारेका सारा नगर मिलकर कार्य्यको करे और सारे खेतोंको (ग्राम के सारे रकबेको) एक खेत समझा जावे तो बड़ी सुगमतासे कार्य्य सफल हो सकता है। मिल-कर कार्य्य करनेका तरीका भारतवर्षके लिये कोई नई बात नहीं है। अब भी लोग कई कई साझी होकर खेत बोते हैं। कोल्हूमें डंगवारी होते हैं, कुवोंसे पानी भरनेमें साझा करते हैं। किंतु इससे अधिक मिलकर काम करनेका विचार अभी तक हमारे किसानों तक नहीं पहुँचा है। यदि विदेशियोंकी उन्नतिके कारणोंका अन्वेषण किया जाय तो पता लगता है कि उनके यहां अनेक प्रकारकी कृषि सम्बन्धी सहकारिताकी संस्थाएं उपस्थित हैं और वे उनके द्वारा बड़ा लाभ उठाते हैं। यद्यपि अधिक लाभ उस समय तक नहीं हो सकता जब तक कि एक एक नगरमें कमसे कम एक एक संस्था न हो और सारे नगर निवासी उसमें काम करने वाले न हों, किंतु सब किसानोंको इस बात पर राज़ी कर लेना चाहिए कि वे अपन अलग कार्य्य न करके एक सभा बनावें और उसमें जितना वे काम कर सकते हों उसका वेतन लेते रहें तथा जो कुछ उनके बैल, धरती आदिका दाम हो वह उस कर्य्यालयमें उनका हिस्सा गिना जावे और उसका मुनाफ़ा उनको मिलता रहे। इस प्रकार सारा ग्राम एक कुनबा होगा और बड़े प्रेमके साथ कार्य्य हो सकेगा। जैसे १ और १ ग्यारह कहे जाते हैं इसी प्रकार काम मिल जुलकर करनेसे बड़ी भारी उन्नतिकी आशा है। सरकारी

रिपोर्टोंमें जो बाधाएं बतायी गयी हैं और जिन का वर्णन ऊपर किया गया है बड़ी सुगमतासे इस प्रकार पूरी हो जायेंगी और कृषिमें विशेष उन्नति होना संभव होगा। मिलकर काम करने से जिसमें सारा ग्राम एक संस्था हो जाय निम्न लिखित लाभोंके होनेकी संभावना है :—

(१) जिन खेतोंमें जो जिन्स अच्छी पैदा हो सकती हो वही बोयी जासकेगी और प्रत्येक आदमीको जैसा अब प्रत्येक फ़सलके अनुसार अपनेही खेतोंमें कुछ न कुछ बोना पड़ता है न बोना पड़ेगा।

(२) जो एक ही प्रकारके बहुत खेत सारे एक स्थान पर बोये जाँयगे जैसे ईख, बाड़ो, मक्की आदि तो उनकी रखवालीमें बहुत कम व्यय करना पड़ेगा।

(३) सब खेतोंका मालिक कार्य्यालय होने से कोई खेत बिगड़ने नहीं पायेगा। जिस समय निकाई जुताई आदिकी आवश्यकता होगी की जा सकेगी।

(४) अधिक मूल्यवान औज़ारोंके ख़रीद करनेमें सुगमता होगी और भराई आदिके कार्य्य अञ्जनों द्वारा किये जासकेंगे।

(५) जो आदमी जिस कार्य्यको सबसे अच्छा कर सकता होगा वह उसी कार्य्यको करेगा और जैसा अब एकही किसान सारे काम स्वयं करता है नहीं करेगा।

(६) बीज, खाद आदि अच्छेसे अच्छे पदार्थ प्राप्त किये जा सकेंगे।

(७) बिक्री तथा बाहर भेजनेमें सुगमता होगी।

(८) आपसके लड़ाई झगड़ों में जो व्यय होता है वह बच जायगा प्रेम भाव और परस्पर प्रीति बढ़ेगी।

(९) यदि कोई कृषि संबंधी क्रिया किसी को ज्ञात है तो उससे प्रत्येक आदमी लाभ उठा सकेगा।

(१०) संसारमें जो विज्ञानकी नयी नयी खोजें होती हैं वह एकही स्थान पर पुस्तकालय आदि रखनेसे सबको मालूम हो सकेगी।

(११) जो सामान नित्यके लागतके लिये चाहिये उसे इकट्ठा ख़रीदनेसे कम लागत लगेगी।

(१२) बहुतसे पदार्थ जो अब थोड़ी मात्रामें होनेसे बेचे नहीं जाते या जिनकी उपयोगिता जाननेकी इच्छा भी नहीं होती वे काममें लाये जा सकेंगे।

(१३) बैलों आदि पर जो अब बड़े बड़े दाम व्यय करने पड़ते हैं उनपर कमव्यय करना पड़ेगा तथा चराईके लिये जो जंगल नहीं रहते सो छोड़े जा सकेंगे।

(१४) अपढ़ होते हुए भी किसान उन्नति कर सकेंगे। विद्वानोंको नौकर रक्खा जा सकेगा जो विशेष रूपसे किसानोंकी वृद्धिके उपाय सोचें और करें।

(१५) रसायन शास्त्रसे जितना संबंध कृषि-का है उसका उपयोग बहुत थोड़े व्ययसे हो सकेगा।

(१६) थोड़े थोड़े धनके लगानेसे अधिक धन एकत्रित होनेपर बड़े बड़े कार्य्य सुगमतासे हो सकेंगे।

(१७) जो कृषिकी उपज होगी उसमें समानता और सुंदरता होनेसे बाहर भेजने पर दाम अच्छा मिलेगा।

वस्तुतः इसी प्रकार सैकड़ों लाभ हैं जो उस अवस्थामें ही संभव हैं जब सब गांवके आदमी एक सभा द्वारा इकट्ठे कार्य्य करना आरम्भ करें। किंतु यह कार्य्य जितना लाभदायक मालूम होता है उतनाही कठिन और असंभव भी दीखता है क्योंकि प्रायः किसानोंके बेपढ़े होनेसे संभव है कि जैसे और कार्य्यालय नित्य टूटा करते हैं यह भी टूट जाँय और लाभकी जगह हानि हो; किसी

चालाक आदमीके सम्मिलित होनेसे लाखों रुपया इधर उधर जाता रहे। साथही प्रत्येक मनुष्यका वेतन तथा प्रत्येककी बुद्धिका मूल्य देनेमें बड़ी कठिनाई और असंतोष होना संभव है। जहां तक मैंने विचार किया है यद्यपि यह कार्य्य बड़ा सुन्दर प्रतीत होता है, तथापि ऊपरके दोषोंके कारण तथा सब नगर निवासियोंमें वैमनस्य पाये जानेसे अभी कुछ दिन सफल होना असंभव है। यद्यपि हमारेही ज़िलेमें भसैना [मेरट] ग्रामके देखनेसे यह पता चलता है कि यदि हम इसकी नीव डालें तो कभी यह दृश्य देखा जा सकता है, किंतु अभी तक़सीमके मुक़द्दमोंमें नितकी बढ़ती इस बातकी साक्षी है कि अभी इसकी पूरी सफलताके दिन नहीं आये। तथापि हमको निराश नहीं होना चाहिए बल्कि इसी आदर्शको लक्ष्य करके छोटे परिमाणसे कार्य्य आरम्भ कर देना उचित है। यदि भारत निवासियोंमें मिलजुलकर कार्य्य करनेका क्रम किसी भांति पैदा किया जा सके तो इसमें तनिक भी संदेह नहीं कि हम सारी अधोगति और हीन अवस्थाको बड़ी शीघ्रतासे दूर कर सकते हैं। आज कलकी दशाके अनुसार मैंने यह विचार किया है कि यदि कई नगरोंके किसान मिलकर थोड़ा थोड़ा धन लगा एक 'कृषि-सहकार' अथवा 'कृषि-भंडार' स्थापित करें तो बड़ा भारी उपकार हो सकता है। जैसे कृषि सम्बन्धी बैंक आज कल बहुतसे नगरोंमें स्थापित हैं और अपना काम भली भांति कर रहे हैं उसी तरह यह काम भी आरम्भ किया जाय। यदि प्रत्येक किसान १०) का भी भाग इस कृषि भंडारमें लेना स्वीकार करे तो बहुत कुछ काम हो सक्ता है। यदि प्रयत्न किया जाय और जो गाँव इसका बन्दोबस्त करना चाहते हों उनके पास धन न हो तो सरकारसे सहायता मिलना कठिन न होगी। दस रुपया ऐसी रक़म नहीं है जो किसान ऐसे बड़े लाभके काममें दे न सकें। यदि एक साथ न दे सके तो यह रुपया कई बारमें लिया जा सकता है और इस कामका श्रीगणेश हो सकता है। इन कृषि भंडारी या सहकारीके अधिकारमें जो काम होंगे वह विचार करनेसे ऐसे भंडारोंकी उपयोगिता भलो भांति समझमें आ सकेगी। इस कार्य्यको यदि पूर्ण रूपसे नहीं तो केवल किसी एक विभागको ही लेकर परीक्षा की जा सकती है और फिर धीरे धीरे काम बढ़ाया जा सक्ता है। धन जितना ही हो उतनेके ही अनुसार कार्य्य आरम्भ कर सकते हैं। नीचे जो भंडारके कार्य्य हमने लिखे हैं उनमेंसे प्रत्येक कार्य्यकी उपयोगिता और आवश्यकता है किंतु सब एक साथ आरम्भ न भी किये जा सकें तो एक वा अधिक विभागमें सुगमतासे लग्गा लग सकता है।

मेरा आश्चर्य्यजनक स्वप्न

[ले० अध्यापक दा. वि. देवधर, एम एस-सी। गतांक से आगे।]

देवी ज्योतिर्मती बोली "हे मानव! इस बातसे जो तू कदाचित् ऐसा समझे कि इस सूर्यके समान दूसरा कोई भी प्रचंड ग्रह न होगा, परन्तु सर्वथैव ऐसा अनुमान ठीक नहीं है। समुद्रके किनारे परकी समस्त बालू (Sand) और उसीको एक कणिका का जो संबंध है वही संबंध समस्त विश्व और सूर्यनारायणका है। इस दुग्धमार्गमें (milky-way) जो मैंने तुझको दिखलाया, अनंत सूर्य भरे हैं। एक समय पृथ्वीवासी मेरा एक भक्त इन सूर्योंको गिनने लगा तो सूर्य्योंकी संख्या साधारणतः १८००००००० हुई। यह सूर्य नारायण इनमेंसे एक हैं, परन्तु इनसे भी बढ़कर बड़े बड़े प्रचंड सूर्य निस्सन्देह कितनेही हैं। इतने सूर्योंको उत्पन्न करने वालेकी शक्ति क्या होगी, इसका विचार

करना सामर्थ्यसे बाहर है। इस सारे विश्वमें तुम मनुष्योंकी तो गिनतीही क्या है!" यह बात सुनकर मैं चुप रह गया। और अपनी व पृथ्वीकी फिर पृथ्वी व इतर ग्रहोंकी (Planets) तुलना करने लगा। इसके बाद सब ग्रहों व सूर्यकी, और सूर्य व अन्य अठारा करोड़ सूर्योंकी तुलना करने लगा। इसके पीछे दुग्धमार्ग व सारी सृष्टि और अपनी व सर्व सृष्टिकी तुलना करने पर मेरे चित्तकी क्या स्थिति हुई होगी इसका अनुमान बाचक वृन्द स्वयमही कर लें। देवी ज्योतिर्मतीने कहा कि प्रकाशकी गति एक सेकेंडमें (second) १८६००० मील है। हिसाब करनेसे ज्ञात होता है कि सूर्यनारायणके प्रकाशको पृथ्वी पर आनेमें आठ मिनिट व सत्रह सेकेंड (8 min. 17 secs.) लगते हैं। इसको गुणा करनेसे ज्ञात होगा की पृथ्वी व सूर्यके बीचमें ९२७००००० (नौ करोड़ सत्ताईस लाख) मीलका अन्तर है! सूर्यका आकार पृथ्वीसे १२५२७०० गुना बड़ा है। और उसका बज़न २×१०२६ (ton) टन है! पृथ्वी पर से सूर्यनारायणकी ओर देखो तो उसके अत्यंत श्वेततेज के सिवा और कुछ नहीं दीखता पहिले तो हम लोग उसे अच्छी तरह देखही नहीं सक्ते परंतु कांचपर काजल लगाकर (smoked glass) जो देखें तो यह श्वेत दीखता है। उसका सत्यस्वरूप ख़ाली आंखोंसे नहीं दीखता। 'दूरतः पर्वता रम्या' ऐसा विद्वद्वाक्य प्रसिद्धही है। जबतक मनुष्योंका अथवा इतर वस्तुओंका निकट संबंध नहीं होता तभीतक वे अच्छे दीखते हैं। परन्तु निकट संबंध होनेपर उनकी रम्यता कम होती है व उनके अवगुण ज्यादा दिखाई देते हैं। भगवान् सूर्यनारायण पृथ्वी परसे कैसे तेजः पुंज व श्वेत दीखते हैं; परंतु अचम्भा यह है कि जब ज्योतिर्मती मुझको उसके समीप लेगयीं तो उसके शरीरपर बहुतसे दाग़ दीखने लगे (Spot)। वह देखकर मैं बोला "हे देवि! आप मुझको सूर्यनारायण दिखाती हैं अथवा और कुछ दिखलाकर मेरा ठट्ठा करती हैं?" यह विलक्षण प्रश्न सुनकर वह पुण्यवती देवी हंसकर बोली, "स्वर्गीय देवता कभी भी असत्य भाषण नहीं करते तुझको संशय क्यों हुआ, यह मैं समझ गयी। सभी जगह जितनी चमक दमक दीखती है उतनी सब ज्योंकी त्यों सच्ची होती है, यह न समझना चाहिए। भास्करजीके दाग़ोंको देख तुझे यह संशय यह हुआ है मैं समझ गयी देख चंद्रमा तुम्हारी धरतीका अनुचर (Satellite) है; उसकी समीपताके कारण तुम्हें उसका कलंक दीखताहै। इसके सिवा वह ठहरा परप्रकाशी और दूसरोंकी संपत्तिसे चैन उड़ाने वाला; इस लिए उसके दुर्गुण तुम्हारे नज़रमें जल्दी आते हैं। परंतु भास्कारजी तो स्वयं प्रकाशी हैं, फिर पृथ्वीसे बहुत दूर भी हैं इसलिये इनके दोष तुम्हें नहीं दिखाई देते। ग़रीब आदमीके दोष झट दीख जाते हैं किन्तु श्रीमान् लोगोंके दोष जल्दी नहीं दीखा करते। कदाचित् दीखें तो भी लोगोंका ध्यान उधर कम जाता है। चंद्रके कलंकका उल्लेख कविगण बहुत किया करते हैं; परंतु सूर्यकी बाबत कोईभी कवि नहीं लिखता!"

हे बंधु भगिनी जन! ज्योतिर्मती जो कह रही थी मैं चुपचाप खड़ा सुनता था; क्योंकि उसका साराही कथन ठीक था। ज्यों ज्यों मैं सूर्यके समीपतर गया त्यों त्यों बड़े बड़े धब्बे दीखने लगे। एक बार मैंने ८० (अस्सी) दाग़ गिने। इसमें एक आश्चर्यकी बात यह थी कि वह दाग़ उसके मंडलपर पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाते जान पड़ते थे। सूक्ष्म दृष्टिसे एक दाग़पर ध्यान देकर देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि वह पूर्वसे पश्चिमकी ओर जाता है, और फिर पूर्वमें जा उपस्थित होता है। सूर्यके शरीरपरके दाग़ोंका यह भ्रमण देखकर मुझे बड़ा अचंभा हुआ

क्योंकि मनुष्यके शरीरपरके दाग़ तो ऐसा भ्रमण नहीं कर सकते।

कभी छातीपर तो कभी कन्धेपर ; कभी कन्धे पर तो कभी सिरपर ; ऐसी बातें तो कभी दीखती नहीं। मुझे संशयित देखकर देवी बोलीं "यह दाग़ नहीं भ्रमण करते परंतु सूर्यनारायण स्वयम् घूमते हैं। जैसे पृथ्वी अपने चारों ओर घूमती है, वैसाही सूर्यभी घूमता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर एक पूरा चक्कर २४ घंटेमें करती है ; सूर्यनारायण तुम्हारे २५ (पच्चीस) दिनोंमें अपनी धुरी पर एक पूरा चक्कर करते हैं। इसलिये पृथ्वीवासियोंके २५ दिन सूर्यके एक दिन के बराबर हैं।

फिर देवी जी कहने लगीं, "यह दाग़ नहीं सूर्यके शरीर परके गढ़े हैं सूर्यके अंतरंगका मुझको भी अभी तक पता नहीं है : परंतु उसके बहिरंगसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह तप्त वायुरूप है। इन दाग़ोंके घटने बढ़ने और पृथ्वी परकी वायु-मानके बदलनेका घनिष्ट संबंध है। कोई कोई ऐसा भी कहते हैं कि जब दाग़ अधिक दीखते हैं तो दुर्भिक्ष पड़नेका बहुत भय रहता है। यह दाग़ अनुमानसे ११ वर्षके पीछे अधिक दीखा करते हैं। परन्तु बड़े आदमीके पास जा जाकर उसके दुर्गुण देखनेमें समय नष्ट करनेसे उसके गुणोंका विचार करना श्रेष्ट होता है। इस प्रचंड तेजोगोलको ग्रहण (Eclipse) लगता है, इस बातका भी बिचार कभी करेंगे ; सूर्यसे पृथ्वी तक यदि हम जाँय तो क्या होता है और क्यों होता है, यह बात तू अच्छी तरह समझ सकेगा।

देख, तुझको पृथ्वी और सूर्यका सापेक्ष (relative) आकार, उन दोनोंका अंतर इत्यादि तो मालूमही होगया ; अब पृथ्वीवासियोंका और इतर ग्रहवासियोंका जीवनदाता सूर्य कैसा है, यह बतलाकर हम उसके अति सन्निकट रहने वाले ग्रहके पास चलेंगे।

सूर्यके प्रकाशके कारण तुम्हारी पृथ्वीपर धान्यसमृद्धि होती है। इसीके किरणसे (Rays) समुद्रके पानीकी भाप बनकर आकाशमें जाती है और वहांसे वायुकी सहायतासे ज़मीनपर आकर पानीके रूपमें खेतोंपर गिरती है। इसी देवके प्रतापसे (heat) प्रभंजन (winds) का सवेग प्रवाह होता है जिसके द्वारा समुद्र जहाज़ नाव प्रभृतिका गतागत होता है। सर्दीके दिनों में जब आग जलाकर हम लोग तापते हैं, उसमें भी इन्हीं सूर्यनारायणकी उष्णता जो रूपाकारमें समाई हुई है बाहर निकाल कर अपना काम चलाते हैं।

सार यह कि तुम्हारे पृथ्वीवासियोंका रहन सहन उनकी धन-धान्य-समृद्धि उनकी शोभा व सृष्टि सबका ही उद्भव स्थान या मूल कारण (origin) एक है ; और वह भास्कर अथवा सूर्यनारायण हैं।

सूर्य तेरी पृथ्वीसे कितनी दूर है और वह असंख्य तारोंमें से एक है, यह तो तुमने जान लिया। पर देख कोई कोई तारक तो पृथ्वीसे इतनी दूर हैं कि उनके प्राकाशको पृथ्वीपर पहुँचने तक बीस या पच्चीस वर्ष लगते हैं! इसीसे उनके स्थानका अनुमान कर लेना चाहिये!

अब हम समीप रहने वाले बुध (mercury) के पास चलेंगे, परंतु पहिले सूर्य और उसकी ग्रह मालिका (solarsytem) अर्थात् सौर्यनिबन्धको समझाकर हमें आगे बढ़ना ठीक होगा।

सूर्य मध्यस्थानवर्ती है, उसके आस पास अलग अलग अन्तर पर दीर्घ वर्तुलाकार मार्गोंमें बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु, शनि, अरुण और वरुण भ्रमण करते हैं।

पहले बुध है इसलिए उसके पास चलो। पृथ्वी परसे यह ग्रह स्यात् ही दीखता है। इसका दर्शन होना कठिन होता है। इसका

मार्ग दीर्घ बतु॔लाकार होनेसे यह सूर्यसे कभी ४२६६६०००० मील और कभी २८११५००० मील पर रहता है। मानवी अंतरसे इन दोनों अंतरोंमें कुछ भेद नहीं मालूम होगा, सूर्यके पास होनेसे वह उसके प्रकाशमें ढँका हुआ रहता है कभी कभी सूर्यास्तके बाद संध्या समयके आरक्त तेजमें वह चमकता हुआ दिखाई दे जाता है। (इस सालमें फेब्रुअरी महीनेकी ४।५।६ तारीखको बहुत लोगोंको बुधका दर्शन लाभ हुआ था)।

सूर्य
बुध — ३६,०००,०००
शुक्र — ६७,०००,०००
पृथ्वी — ९३,०००,०००
मंगल — १४१,०००,०००
गुरु — ४८०,०००,०००
शनि — ८८१,०००,०००
यूरेनस — १,७७१,०००,०००
नेपच्यून — २,७०४,०००,०००

यदि हम सदा इस ग्रहको उपर्युक्त समयमें देखते रहें, तो वह कभी कभी सूर्यके पास पास जाता हुआ दीखेगा। कोई कोई दिन बुध सूर्यके तेजमें बिलकुल ढक जाता है। कुछ दिनोंके बाद फिर सूर्योदयके समय पूर्वकी ओर दीखता है। सूर्यास्तके समय पश्चिमको क्षितिज (Horizon) के ऊपर जितना वह दीखता है उतनाही पूर्व दिशामें वह जब आता है तब पूर्व क्षितिजसे ऊंचा दीखता है। इससे यह सिद्ध है कि बुध (Mercury) सूर्यके आसपास भ्रमण करता है। बुधका आकार वग़ैरा निश्चित करनेके लिये दूर्वीक्षिणीकी (Telescope) आवश्यकता है। दूर्वीक्षण द्वारा देखनेसे ऐसा जान पड़ता है कि चंद्रमाकी भांति इसकी भी आकृति बदलती जाती है। पहले तो थोड़ीसी कोर दीखती है, फिर कला बढ़ती है, ऐसेही होते होते वह पूर्ण हो जाता है। इसके बाद उसी प्रमाणसे कम होते होते बिल्कुल अदृश्य हो जाता है। इसका समझना बहुत कठिन नहीं है। यह ध्यान रक्खो कि बुधकी अपेक्षा पृथ्वी सूर्यके अधिक समीप है। जिससमय सूर्यके सामने बुध आता है-अर्थात् सूर्य और पृथ्वी इन दोनोंके बिलकुल मध्य भागमें आता है-तब पृथ्वीकी ओर जो भाग बुधका रहता है उसके ऊपर सूर्यका प्रकाश नहीं पहुँच सकता; इसी कारणसे चंद्रमाकी तरह बुधकी भी अमावास्या पृथ्वीवासियोंको होती रहती है। परंतु वह ज्यों ज्यों परेको हटता जाता है त्यों त्यों उसको प्रकाश मिलता है, और जब वह सूर्यके उस पार होता है अर्थात् बुध और पृथ्वीके बीचमें सूर्य आता है-तब पृथ्वीको बुधकी पौर्णिमा होती है-इस तरह बुध-की गति होती रहतीहै। बुध अपनी अमावास्या-

को पृथ्वीके समीप आता है, और पौर्णिमाके समय पृथ्वीसे दूर रहता है यह सिद्ध हुआ।
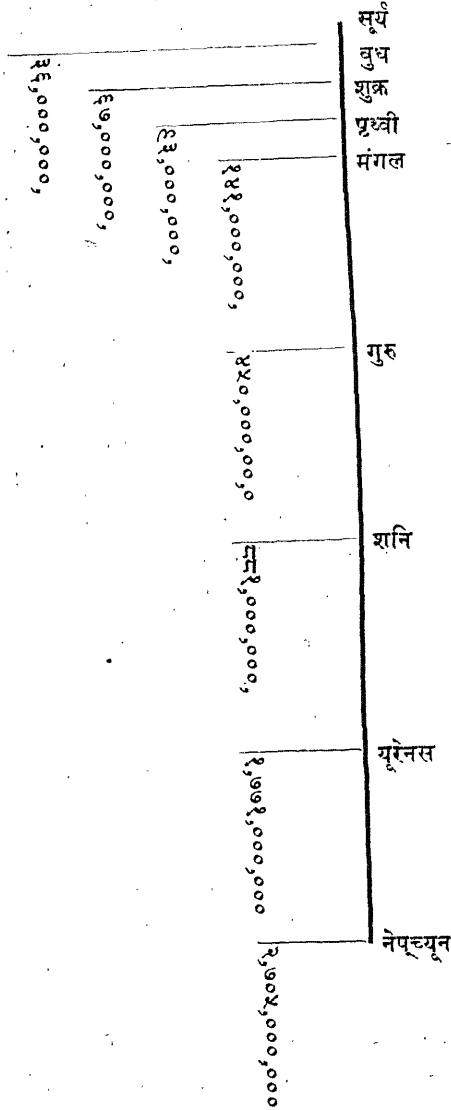
पृथ्वी जो स्थिर रहती तो बुधको सूर्यके आसपास घूमनेमें १०६—११० दिन लगते हैं ऐसा हम लोग कहते, परंतु पृथ्वीभी सूर्यके आसपास फिरती है इसलिये बुधकी इस प्रदक्षिणा में कम दिन लगते हैं, यही कहना पड़ेगा। अनुमान से केवल ८८ दिन लगते हैं। बुधकी गति प्रति सेकंड २६० मील है। पृथ्वीकी भांति वह भी गोल है पर उसका व्यास (Diameter) ३०० मील है-याने पृथ्वीके व्यासके२/५के बराबरहै। बुधका धरातल (Surface) पृथ्वीके धरातलसे ६॥ गुनेसे कम है। बुधके बराबरीके सत्रह गोले एक जगह करनेसे एक पृथ्वीके बराबरका गोल बनेगा"। इतना कहकर देवी ज्योतिर्मती बोलीं, "हे बालक! अब मैं तुझसे बुधपरका दिनमान, ऋतुमान, नदी, पहाड़ आदि बतलाती हूँ।

"यह ग्रह पृथ्वीकी भांति नारंगीके समान है अथवा बिलकुल गोल है यह समझना ज़रा कठिन है। सूर्यके बहुत पास होनेसे साधारण निरीक्षणसे काम नहीं चलसकता परंतु मेरे ज्योतिषी भक्तोंने (Astronomers) एक बात जानली है। वह चमत्कार, संक्रमण चमत्कार है। संक्रमण चमत्कार, क्या है यह पहले समझ लो। बुधकी अमावास्या, पौर्णिमा इत्यादिकी बातें मैंनें कहदी हैं। बुध आदि ग्रह सूर्यके आसपास फिरते हैं; परंतु उन सबोंके मार्ग एक पटलमें नहीं हैं (In one plane)। इस बातको समझनेके लिये कल्पना करो कि एक गोल कंडील (Lantern) अपने सामने टंगा है और उसके आगे पांच फुट अंतरपर एक आदमी हाथमें नारंगी लिये खड़ा है व एक छोटा सा निम्बू (Lemon) लेकर कंडीलके सामने तीन फुट पर रखदिया है। इस उदाहरणमें कंडील, नारंगी और निम्बूसे सूर्य, पृथ्वी और बुध क्रमशः समझना होगा। उस निम्बूसे, जो बराबर पृथ्वी से दो फुट पर और सूर्यसे तीनफुट पर रखा, और कंडीलके केन्द्रसे (centre) एक सरल सीधी रेखा (Straightline) खींची तो वह निम्बूसे निकलकर नारंगीको मिल जायगी यानें निम्बू, कंडोल, और नारंगी एक रेखामें हैं। अब ऐसी कल्पना करो कि वह निम्बू नारंगी और कंडीलके बीचमें नहीं है परंतु ज़रा ऊपर है इस समय नारंगी और कंडीलकी रेखा, कंडील और निम्बूके रेखासे भिन्नहोगी। ऐसीही स्थितिमें जो वह निम्बू और नारंगी उस कंडीलके आसपास घूमने लगे तो नारंगी पर बैठी हुई मक्खियोंको यह निम्बू कभी कंडीलसे ऊंचा दीखेगा और कभी नीचा दीखेगा। परंतु एक समय ऐसा आयेगा कि निम्बू, नारंगी और कंडील एक रेखामें आजायँगे। उस समय उन मक्खियोंको ऐसा मालूम होगा कि निम्बू कंडीलपरसे जा रहा है। कंडील बड़ा है निम्बू छोटा है और निम्बूका प्रकाशित भाग कंडीलके बाज़ू को है; इसलिये नारंगी पर की मक्खियोंको एक काला ठिपका कंडीलके प्रकाशमें से जा रहा है ऐसा दीखेगा। इसी प्रकारसे पृथ्वी, सूर्य और बुधकी बात है। वह तीनों हमेशा एक रेखामें रहते तो हरएक बुधामावास्याके यहसंक्रमण दीखतापरंतु वह एक रेखामें क्वचित् आते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्यके बहुत सन्निध होनेसे उसकी छाया सूर्यका बिल्कुल थोड़ा भाग आच्छादित करती है। अपनेको पृथ्वी परसे सूर्य जितना बड़ा दीखता है उससे सात पटबड़ा वह बुधपरसे दीखना चाहिए। एकरेखामें आनेसे जो बुध काले ठिपकेके समान सूर्यमंडलपरसे जाताहै उसको बुधके योगसे सूर्य ग्रहण (Eclipse) हुआ ऐसा कहेंगे। बुधके संक्रमण (Transit) बहुधा मैं और नवंबर में होते हैं। संक्रमण को ७।८ घंटेका समय लगता है। इन संक्रमणोंके

दर्शनोंसे ऐसा सिद्ध हुआ है कि बुध बिलकुल गोल है। पृथ्वीके समान दोनों ओर चपटा नहीं है।

बुधपरका प्रकाश पृथ्वीसे सातपट बड़ा है अर्थात् वहांकी उष्णताभी सातपट होनी चाहिये। इसलिये उस ग्रहपर जो प्राणी रहते होंगे उनके शरीर वगैरा सब अलग प्रकारके होना चाहिए। बुधके ऊपरका वातावरण atmosphere) कैसा है यह समझनेकेसिवाय वहां लोक रह सकते हैं कि नहीं यह निश्चय करना अशक्य है। कोई वैज्ञानिक कहते हैं कि बुधका वातावरण बहुत घन है। ऐसा जो मानलें तो सूर्यकी उष्णता बुधपर बहुत कम असर करेगी। हम एकाध ऊंचे पहाड़का उदाहरण लेंगे। गर्मीके दिनोंमें पहाड़ोंके शिखरपर सर्दीठंढ मालूम होती है और तल (Base) पर गर्मी होती है। यह क्यों? पहाड़ का शिखरतो, तलसे सूर्यके अधिक समीप है इसका केवल कारण वातावरणकी भिन्नताही है। गर्मीके दिनोंमें पहाड़के शिखरपरकी वातावरण तलके वातावरणसे ज़्यादा घन रहती है इसलिये सूर्यके किरणोंका असर घन वातावरणमें से कम होगा। बुधके ऊपरका दिन बहुत महीनोंतक रहता है। बुधपर पहाड़ वगैरा भी हैं। ऐसा पता चला है कि उस परका एक पर्वत ११ मील ऊंचा है! बुधके ऊपरका गुरुत्वाकर्षण पृथ्वीसे अधिक है"। इतना कहकर देवी बोली, "हे बालक! अब चलो हम शुक्राचार्यके पास जाँयगे"।

बुध और शुक्र दोनोंमेंका साधारण अंतर ३०७४२००० मील है। इतना अंतर पंदरह बीस दिनमें समाप्त करनेके लिये हर घंटेमें ६५००० मील चलना होगा। इतनी शक्ति किसी यंत्रमें भी नहीं है। परंतु ज्योतिर्मती मुझे वहां सहजमें लेगयी। कल्पना शक्तिका चमत्कार आप जानतेही हैं उस कल्पना शक्तिसे हम शुक्र महाराजके पास चलेंगे। शुक्र और बुध देखने पर पृथ्वीसे तुलना करके हम बहुत अनुमान निकाल सकते हैं। बुधका प्रदक्षिणा मार्ग दीर्घ वर्तुलाकार है यह तो कहा गया है; परन्तु शुक्रका मार्ग लगभग वर्तुलाकार है। सूर्यसे वह बहुत दूर रहता है तब भी और जब सूर्यके समीप रहता है इस अवस्थामें भी उसकी स्थितिमें फ़रक बिल्कुल थोड़ा होता है। सूर्यसे जब वह दूर रहता है तब उसका अन्तर सूर्यसे ६६५८६००० मील होता है और जब वह सन्निध रहता है तब सूर्यसे ६५६८२००० मील दूर रहता है। इन दोनों अन्तरोंमें बिल्कुल थोड़ा फ़रक होनेसे शुक्रका ऋतुमान (Seasons) सम रहता है; क्योंकि सूर्यसे उराविक अंतर होनेसे उसको एक सरीखी गर्मी मिलती है। तो भी अपनी पृथ्वीसे इस ग्रह पर का प्रकाश और उष्णता दुगनी होती है। यह ग्रह बुधके समान बहुत दिनों तक सायंकाल में दीखता है और बहुत दिनों तक प्रातःकालमें दिखाईदेता है। इस ग्रहको न देखनेवाला मनुष्य क्वचित् ही पाया जायगा। इसका प्रकाश बहुत तीक्ष्ण होनेसे यह ग्रह कभी कभी शामके तीन चार बजे बड़ी सरलतासे देखा जा सकता है। शुक्रको पूर्ण प्रदक्षिणा करनेमें ५८४ दिन लगते हैं—अर्थात् एक जगह दीखनेके बाद उसी जगह पर आनेके लिये ५८४ दिन लगते हैं। बड़ी दूर्बीन से देखा जाय तो मालूम होगा कि बुधके समान इस ग्रहमें भी कला होती है। ऊपर लिखा हुआ शुक्रका भ्रमणकाल सापेक्षक है। खराकाल २२४ घंटे, ४६ मि.७ से० है इतने समयमें वह ४१ करोड़ मील चलता है। इस हिसाबसे हरघंटेमें वह ७८००० मील जाता है—अर्थात् हर सेकेंडमें २२ मील चलता है। बुध हर सेकेंडमें २७ मील चलता है यह पहिलेही से मालूम है। जो ग्रह सूर्यसे दूर दूरके मार्ग परसे जाते हैं उनका प्रदक्षिणा काल उनके और सूर्यके बीचमेंके अंतरके सम प्रमाणमें रहता है।"

"हे बालक! कोई सा भी ग्रह लेओ उसका

मार्ग बिलकुल वर्तुलाकार नहीं होता है। किसीका कम दीर्घवर्तुलकार, किसीका अधिक दीर्घवर्तुलाकार होता है। शुक्रके बहुत दूर रहनेके समयमें वह सूर्यसे १६०००००० मील पर रहता है और बहुत समीप होने के समयमें वह सूर्यसे २३५००००० मील पर रहता है। बहुत प्रकारके निरीक्षण करनेसे ऐसा मालूम हुआ है कि, शुक्रका व्यास (Diameter) पृथ्वीके व्याससे ४०० मील कम है—अर्थात् वह ७५१० मील है। शुक्रको अपने आसपास घूमनेमें २४ घंटे, २१ मि०, २३ सेकेंड लगते हैं। शुक्र महाराजकी जो कलायें दीखती हैं उनसे ऐसा अनुमान होता है कि उनके पृष्ठ भागपर बहुत ऊंचा नीचा असम भाग है। ज्योतिषियोंने ऐसा भी निकाला है कि शुक्रके ऊपर एक ज्वालामुखी पर्वत है। उस परका एक पर्वत तो २७ मील होना चाहिए ऐसा अनुमान लोगोंमें है। परन्तु इसमें सत्यता कहाँ तक होगी यह पृथ्वीवासियोंको समझना बहुत कठिन है। साधारण निरीक्षणोंसे जो अनुमान निकलते हैं उसीपर भरोसा रखनेके अतिरिक्त कोई इलाज नहीं। शुक्रपरके पर्वत और अपने पृथ्वीपरके पर्वत दोनोंको तुलनात्मक दृष्टिसे देखें तो पृथ्वीपरके उच्चतम पर्वत शुक्रके पर्वतके आगे कुछ भी नहीं ठहरते।

बुध संक्रमणके समान शुक्रके भी सूर्य परसे संक्रमण होते हैं। इनका ऐसा नियम देखागया है कि आठ वर्षके भीतर दो संक्रमण होते हैं (Eclipses of the sun by Venus)। और फिरसौ वर्षतक बिल्कुल संक्रमण नहीं होता। इन संक्रमणोंकी सहायतासे सूर्यका अंतर निकालना सहल हो गया है। एक शुक्रका संक्रमण १८८२ सालके दिसंबरमें हुआ था उसके बाद सन् २००४ में जून महीनेके ६ वी तारीख़को फिर संक्रमण होगा ऐसा अनुमान किया गया है।

पृथ्वी और शुक्र इन दोनोंकी रचना (constitution)बहुत साम्य है। पृथ्वीकेसमान वहाँ भी भिन्न भिन्न प्राणी होने चाहिए। भिन्न भिन्न बनस्पति होने चाहिए। जड़ और प्राणियोंका अस्तित्व होनेपर वहाँ उनके वास्ते जीवन (पानी, जल) भी होना चाहिये। यह सब संभव है। परन्तु ऐसा जो होगा तो कुछ वर्षके बाद पृथ्वीवासियोंका और शुक्रवासियोंका आपसमें बिजलीकी मददसे बोलचाल होनेका प्रसंग अवश्य आयेगा! मंगल के (Mars) ऊपर रहने वाले प्राणियोंसे विद्युत् द्वारा संबन्ध करनेके काम आजकल वैज्ञानिक कर रहे हैं यह तो हम लोग सुनतेही हैं।

यहाँतक हम शुक्र और बुध दोनोंका वर्णन करते रहे सूर्यसे निकलते समय पहिले बुध मिलता है बुधके बाद शुक्र और अनंतर पृथ्वी पृथ्वीके बाद अन्य ग्रह। इस लिये पृथ्वीवासी लोग बुध और शुक्रको अंतर्ग्रह (Internal) कहते हैं और शनि, गुरु आदि ग्रहोंको (External)बाह्य ग्रह कहते हैं। गुरु पर रहने वाला ज्योतिषी बुध, शुक्र, पृथ्वी तीनोंको अंतर्ग्रह कहेगा और बाक़ी ग्रहोंको बाह्य ग्रह कहेगा" इतना कह कर देवी बोली "हे बालक, अब अपने शुक्रके बाद आनेवाला ग्रह तो पृथ्वी, है। अतः उस पर चलेंगे।" मैं एकदम पृथ्वीपर आगया हूँ ऐसा प्रतीत होते ही मेरी निद्रा खुल गयी। देवीज्योतिर्मती अदृश्य होगयीं और मन आश्चर्य सागरमें तैरने लगा। यह अपूर्व स्वप्न मैंने सबआबाल वृद्धोंको सुनाया है। इसका मनन करना आपका काम है। पृथ्वी—जिसके ऊपर हम रहते हैं—उसका ज्ञान अपनेको बहुत मिल सकता है। यहाँ तो बहुतबातें प्रत्यक्ष ही दीखती हैं और यदि अनुमान भी करना पड़ा तो वह इतनाकठिन और संशय उत्पन्न करने वाला नहीं होता है। आप यदि सब भाइयोंको इस प्रकारके चमत्कारमें अभि- रुचि होगी तो आपको अपनी पृथ्वीके संबंधमें क्या क्या चमत्कार देखे गये हैं और उन चमत्कारों का क्या महत्व है यह बतलानेका मैं प्रयत्न करूंगा।

लगानका सिद्धान्त और अनाज महँगा होनेका कारण

[ले० श्रीयत बाबूराम अवस्थी, बी. एस-सी.।
पहले अंक से सम्मिलित]

प्रत्येक दशामें खेतीकी जो सबसे ख़राब ज़मीन होती है उस पर कोई लगान नहीं लगता। यही ज़मीन अनाजका निर्ख़ नियत करती है। ऐसी भूमिको "लगान रहित" भूमि कहते हैं। सम्भव है, आप कहें कि यथार्थ में ऐसे कोई खेत होते ही नहीं जो लगान रहित हों। किंतु यदि आप ज़रा सोचेंगे तो आपको स्मरण हो आवेगा कि प्रत्येक गाँव में कुछ न कुछ ऐसे (निकृष्ट) खेत होते हैं जिनमें पैदावार उतनी ही होती है जितनी लागत नक़द घरसे लग जाती है; जैसे यदि २५) मज़दूरी सिंचाई और बीज आदिमें लगते हैं तो २५) ही के लग भग फ़सलकी क़ीमत होती है। इससे ज़िमीन्दार स्वयंही उनको जुतवा लेता है जिसमें उसका जमा ख़र्च बराबर रहता है। किंतु ऐसे खेतको कोई किसान लगान पर न लेगा, मुफ़्त चाहे कोई भलेही ले ले; क्योंकि किसान तो तब लेगा जब खेतकी पैदावारसे नक़द लगी लागतके सिवाय उसकी मज़दूरी भी (अर्थात् कुटुम्बका साल भरका ख़र्च) निकल आवे। यही खेत "लगानरहित" खेत समझे जा सकते हैं। जब केवल दो तरहकी भूमिमें खेती होती थी तो दूसरी श्रेणीकी भूमि "लगान रहित" थी, जब तीसरी श्रेणी की भूमि-भी जुतने लगी तब यह भूमि "लगान रहित" थी। इसी प्रकार जुतने वाली भूमिमेंसे जो सबसे ख़राब होती है वही 'बिना लगानी' होती है। जो ज़मीन इस "बिना लगानी" से भी ख़राब होती है वह परती पड़ी रहती है, किंतु और भी तेजी आने पर सम्भव है वह भी जुतने लगे और पहिले "बिना लगानी" और फिर किसी समयमें "लगानी" हो जाय।

ऊपर बताया गया है कि बाज़ार भाव 'लगान रहित" खेतही नियत करते हैं, अतएव स्पष्ट है कि लगानका कोई प्रभाव, अन्नके भाव पर नहीं पड़ता। यदि लगान घटाभी दिया जावे तो नाज सस्ता न होगा। हो कैसे, भाव नियत करते हैं वह खेत जिनपर कुछ लगानही नहीं, उन पर घटेगा क्या? इसी प्रकार यदि भारतवर्षभरके खेतोंका लगान एक दम मुआफ़ कर दिया जावे तोभी (यदि नाजका ख़र्च इतनाही बना रहे) नाजका भाव एक छटांक न बढ़ेगा। अच्छे खेतोंके जोतने वालोंको "अतिरिक्त लाभ" (जो ज़मींदार को मिलता था) अवश्य मिलने लगेगा जिससे केवल इन किसानोंको अवश्य लाभ है ख़रीदारोंको कुछ नहीं।

पाठक! मेरे बिना बतायेही कदाचित् आपके ध्यानमें आगया होगा कि देशकी जन-संख्या बढ़नेके जो परिणाम रिकार्डो ने १०० बरस पहिले लिखे थे आज वही अक्षरशः आबादी बढ़ने तथा और भी कई कारणोंसे हमारे देशमें, स्पष्ट दिखाई देते हैं। दिनपर दिन ख़राब से ख़राब ज़मीनकी खेती बढ़ती जाती है, बंजर टूटते जाते हैं, बाग़ों तकमें खेती होती जाती है और परिणाम रूप अनाज आदि सब पदार्थ दिन पर दिन तेज़ होते जाते हैं। गाय बैलोंको चरनेका कहीं सुभीता नहीं जिससे दूध घी की तेज़ीमें और कमी होती ही नहीं।

अब शायद आप भली भांति समझ गये होंगे कि लगान क्या है और उसका सिद्धान्त क्या है।

"जुतने वाली ज़मीनमें जो सबसे ख़राब होती है उसकी आमदनीसे यदि किसी ज़मीन-की आमदनी अधिक होती है तो यह अधिक

आमदनी उस अच्छी ज़मीनके स्वामीको (ज़मींदार) लगान रूपसे मिलने लगती है"। इस सिद्धान्तसे यह भी स्पष्ट दिखाई पड़ता है कि यदि देशमें अमनचैन रहे और बणिज-व्यापार और उद्योग-धंधोंकी उन्नति होती रहे जैसी कि सभ्य देशोंमें पिछले तीन चार सौ बरसोंसे हो रही है (लड़ाई आदि यदि इस बीचमें कभी हुई भी हैं तो बहुत थोड़े दिनोंके लिए। बड़ेसे बड़े युद्ध उन्नति प्रवाहको चाहे युद्ध समयके लिये रोक दें किंतु उसकी धाराको सदैवके लिए नहीं रोक सकते। वह युद्धके बाद फिर बड़े वेगसे आगेको और बढ़ेगी) तो लगान अपने आप बढ़ा करता है और ज़मींदारोंकी आमदनी बिना उनके हाथ पैर हिलाये अपने आप सदैव बढ़ा करती है। यही कारण है कि जिस गांवका मूल्य २५ वर्ष पहिले २० हज़ार का था आज उसका मूल्य ४० हज़ार है।

यहां पर यह बतला देना भी आवश्यक है कि यह लगानका सिद्धान्त मौरूसी खेतोंके लगानको नहीं बतला सकता क्योंकि उनके लिये चढ़ा ऊपरी नहीं होती और लगान १० सालसे पहिले नहीं बढ़ सकता।

ऊपरके, अपने वक्तव्यमें, मैंने नाजके तेज़ होनेका केवल एक कारण बतलाया है अर्थात देशमें आबादीका बढ़ना और साथही भूमिके भारका बढ़ना। इसके अतिरिक्त नाज के तेज़ होनेके औरभी कई एक प्रबल कारण हैं जैसे :-

(१) पक्की सड़कें, रेल, नहर आदि आवागमन और नाज ढोनेके उन्नत साधनोंका देशमें फैलना—इन साधनोंसे भारतवर्षका भीतरी व्यापार बहुत बढ़ गया है और एक सूबेकी पैदावारकी मांग दूसरे सूबोंमें होने लगी है, और मांग बढ़नेसे दाम बढ़ही जाता है। लोगों को नई नई चीज़ें, सस्ते दामों पर दूरसे आकर मिलने लगीं हैं जिससे सब लोगोंकी आवाश्यकताएं बढ़ गईं हैं और हर एक चीज़का ख़र्च स्वयं हमारे देशके भीतर पिछले ५० वर्षोंमें बहुत बढ़ गया। इसीको कुछ लोग विलासका बढ़नाभी कहते हैं; किंतु अर्थ शास्त्रके जानने वाले इस बढ़े ख़र्चको बुरा नहीं (Increase of p essure on the soil) समझते, न इस प्रवृत्तिको वे देशका दुर्भाग्यही मानते हैं। वे तो इसे देशका सौभग्य और भावी उन्नतिका मूल बतलाते हैं क्योंकि मनुष्यकी ज़रूरतें बढ़नेसे उसका ख़र्च बढ़ता है और इस ख़र्चको प्राप्त करनेके लिये वह अधिक परिश्रम और उद्योग करता है। इससे देशकी उत्पादकशक्ति बढ़ती है और देशमें उद्योग और बणिज-व्यापारकी उन्नति होती है, जिससे देशमें अधिक वस्तुएं उत्पन्न होती हैं और वह अधिकतासे उपयुक्त स्थानोंमें और उपयुक्त समयोंमें पहुंच मनुष्यकी वांछाओं और आवश्यकताओंको दूर करती हैं। यही सब सम्पत्तिका सच्चा कार्य्य है। जो लोग अपनी अक़्लपर ज़रा ज़ोर देते हैं वे जानते हैं कि भारतकी सम्पत्ति पिछले ६० वर्षोंमें कमसे कम दूनी अवश्य हो गई है। हमारे देशवालोंकी समझमें अर्थशास्त्रवेत्ताओंकी यह बात अभी नहीं आती, क्योंकि वे धनको ही सुख समझ बैठते हैं और सुख अवश्य दूना नहीं हुआ है, क्योंकि देशकी आबादी दूनी होगई है जिससे देशकी सम्पत्ति दूनी होने परभी, प्रत्येक मनुष्यकी औसत आमदनी या औसत सम्पत्ति नहीं बढ़ी है। देखिये।

$$\text{एक व्यक्तिकी औसत सम्पत्ति} = \frac{\text{देशकी सम्पत्ति}}{\text{देश की जनसंख्या}}$$

उदाहरणार्थ, प्रत्येक भारतवासीकी सम्पत्ति—

$$\text{सन् १८५५ में} = \frac{\text{५०,०० करोड़ रुपया}}{\text{२० करोड़}} = \text{२५०)}$$

$$\text{सन् १९११ में} = \frac{\text{२००,०० करोड़ रुपया}}{\text{३१ करोड़}} = \text{६४५)}$$

इसमें आप देखते हैं कि देशकी सम्पत्ति

चार गुनी हो गई है परन्तु एक व्यक्तिकी सम्पति केवल ढाई गुनी हुई है। यह बात भी साथमें स्मरण रखना चाहिये कि यह हिसाब रुपयोंमें लगाया गया है और रुपयेका मूल्य पिछले ५० वर्षोंमें एक तिहाई रह गया है; क्योंकि ५० वर्ष पहले एक रुपया का ३० सेर गेहूँ या दूध ख़रीदता था अब वह केवल १० सेर गेहूं या दूध ख़रीदता है। मनुष्य रुपया तो खाता नहीं, वह चाहता है गेहूं आदि उपयोगी पदार्थ, इससे वह ५० वर्ष पहिले अपने २५) से जितना सामान ख़रीदता था अब ६५॥) से भी उतना नहीं पाता। देशका धन बढ़ने पर भी सुख नहीं बढ़ा यही पेंच है।

इसके अतिरिक्त, केवल धनही सुखका कारण नहीं है। सन्तोष, संसारके धनी देशोंसे पृथक् रहना (अर्थात् अपनेसे बड़े लोगोंका ज्ञान न होना) धर्म-परता आदि बहुतसे साधन सुखके हैं, जिनमें कमी होनेसे देशकी दृश्य सम्पत्ति बढ़ने पर भी सुख नहीं बढ़ सकता।

(२) अंजनसे चलने वाले ज़हाज़ोंकी उन्नति और विदेशी व्यापार—अपने देशमें उत्पन्न अनाजके विदेशोंमें जानेसे हमारे अनाजकी क़ीमत बढ़ जाती है। जिस प्रकार रेलोंके होनेसे देशके भीतरके बाज़ारोंका भाव एक होजाता है, उसी प्रकार जहाज़ों द्वारा विदेशोंमें मालके शीघ्र और सस्तेमें पहुँचनेके कारण संसार भरमें एकही भाव हो जाता है (राहदारीके ख़र्चके अंतरको छोड़ कर) जिससे यद्यपि जहां नाज नहीं होता वहां वह पहुँचता है किन्तु जहां होता है वहां तेज़ हो जाता है। जैसे एक सूबेमें अकाल होनेसे सारे भारतमें नाज तेज़ हो जाता है वैसेही रूस या अमेरिकामें गेहूं की फ़सल कम होनेसे यहां गेहूं तेज़ हो जाता है और अमेरिकामें कपास न होनेसे यहाँ कपास तेज़ हो जाती है जैसा कि १८६३-६५ में हुआ था। कोई चार वर्षसे फ्रांस और जर्मनीके शराब बनाने वाले शराब खींचनेके लिए जौ रूससे न लेकर अधिकतर भारतसे लेने लगे हैं, इसका फल आप प्रत्यक्षही देखते हैं कि चार वर्षसे जौ का भाव लगभग गेहूं के बराबर हो रहा है।

रेल, जहाज़ आदिका फल यह हुआ है कि हमारे देशके कोने कोने तकके किसान बड़े बड़े बाज़ारोंमें अपना नाज ले आते हैं जहां विदेश ले जाने वाले लोगोंके एजेंट उन्हें बड़े तेज़ दामों पर ख़रीदते हैं और उनके तेज़ ख़रीदनेपर हम लोगोंको भी उसी भाव ख़रीदना पड़ता है। परन्तु यह न समझिये कि तेज़ बेचने वालेका लाभ किसानके घर जावेगा। मैं पहिलेही बतला चुका हूं कि सब "अतिरिक्त लाभ" खेतके स्वामी को (ज़मींदार) मिलता है, ज़ोतने वाले को नहीं। यह लाभ सब ज़मींदारोंके पास भी नहीं रहता क्योंकि जब 'बन्दोबस्त माल' होता है तो इस लाभका आधा (या अधिक) सर्कार (मालगुज़ारी बढ़ाकर) ले लेती है। यह बात पिछले बारह वर्षके सर्कारी चिट्ठोंसे विदित हो जावेगी। सर्कार प्रतिवर्ष अपनी आय और व्ययकी एक रिपोर्ट निकालती है उसके अनुसार सर्कारकी पक्की आय थी १८९८-९ में ५६½ करोड़ और १९१० में ८२½ करोड़। केवल मालगुज़ारीसे १८९८-९ में सर्कारको मिले थे २६¼ करोड़ और १९०४-१५ में मिले हैं ३२ करोड़ अर्थात् पिछले १६ वर्षों में भूमिकरसे सर्कारको पौने छः करोड़की अधिक आय हुई।

(३) अनियमित और असमय वर्षा–प्रायः सभी लोगोंको विदित है कि पिछले २०, २५ वर्षोंसे इस प्रान्तमें वर्षा घटती चली जा रही है और अधिक अनियमित होती जाती है जिससे अन्नकी पैदावार कम होती है। इसका प्रधान कारण सूबेके जंगलोंका घटना है। इस

प्रान्तमें उद्योग धंधोंकी बाढ़से लकड़ीकी आवश्यकता बहुत बढ़ गई है और रेलों द्वारा आसानीसे दूर दूर तक पहुँच जाती है। इसीसे अवधके बड़े बड़े जंगल कटते जा रहे हैं। इससे यद्यपि ताल्लुक़ेदारोंको क्षणिक लाभ होता है किंतु अंतमें सारे प्रांतको हानि उठानी पड़ती है। यह हानि व्यक्तिगत लाभकी हज़ारों गुनी होती है। अभी तक सर्कार इसका कोई उपाय नहीं सोच सकी है। जो जंगल उसके आधीन हैं उनकी वह रक्षा अवश्य करती है। इसकी एक मात्र औषधि अभी यही दिखाई देती है कि प्रांतभरमें प्रत्येक गांवके बंजरों और ऊसरोंमें बबूल आदि पेड़ ख़ूब लगाये जावें।

(४) भूमिके उर्वरत्व का घटना—गेहूं और सरसों, राई, अलसी आदि नत्रजनमय नाजोंके विदेश चले जानेसे देशका नत्रजन जो पौधोंकी खादोंका सबसे बहुमूल्य अंश है, बराबर घट रहा है। इसी प्रकार हड्डियोंके विदेश जानेसे भारतभूमिका स्फुर (फास्फ़रस) बराबर घट रहा है। यह भी बड़ा बहुमूल्य अंश है, इन दो अंशोंकी कमी भारत कभी पूरी नहीं कर सकता, क्योंकि इनके बदलेमें कोई पदार्थ इन चीज़ों के देने वाले विदेशसे नहीं आते। इससे देशका उपजाऊपन बराबर घट रहा है। दूसरे देशोंमें किसान इस कमीको वैज्ञानिक खादें डालकर पूरा कर लेते हैं, किंतु यहाँके किसान इतने धनी नहीं कि ऐसी खादें मोल ले सकें। नत्रजन और स्फुरके घटनेको, इस सूबेके पुराने लाट सर जानहिवेट साहबने भी १ दिसम्बर १६१० को इलाहाबादकी प्रदर्शिनी खोलते समय अपनी स्पीचमें मुक्त-कंठसे स्वीकार किया था।

(५) देशमें द्रव्य का बढ़ना—कोई पन्द्रह बरस से हमारे देशसे माल विदेशोंको जाता है बहुत अधिक और विदेशोंसे आता है कम इसलिये प्रतिवर्ष हमें ३०, ४० करोड़ रुपया नक़द विदेशोंसे मिलता है। इसमें कोई सन्देह नहीं। सर्कारका व्यपारसमाचार* का महकमा विदेशी यात और आयात व्यापारका हिसाब बड़ी सावधानीसे रखता है और साथ साथ विदेशोंसे आये हुए और विदेशोंको गये हुए सोने चाँदीका भी हिसाब रहता है। इस हिसाबके अनुसार, सन् १६०६, १०, ११ तीन वर्षोंमें प्रतिवर्ष, औसतसे, ३५ करोड़ ६१ लाख रुपयेका सोना चाँदी भारतवर्षमें विदेशों-से आता रहा है। यही हाल पिछले १५ बरससे हो रहा है। इस बीचमें स्वर्णधाराका प्रवाह सदैव यूरोपसे भारतकी ओर रहा है। केवल १६०७ और १६०८ में ३ या ४ महीनेके लिए और १६१४ में पिछले ५ महीनेके लिए यहस्वर्ण-नदी उल्टी बही है और आज कल भी उल्टीही बहरही है, क्योंकि यहांसे बहुतसी चीज़ोंका बाहर न जाना रोक दिया गया है। हमारे अनेक हिन्दी पत्र-सम्पादक इस बातको अभी ठीक नहीं मानते और देशसे रुपयेके प्रतिवर्ष, होम-चार्ज आदिके हिसाब रूपमें बाहर जानेकी शिकायत करते हैं। यह उनका केवल भ्रम है, इसे अब कोई भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ नहीं मान सकता। अंग्रेज़ और दूसरे देशोंके लोग रुपयेके भूखे नहीं वे आपके देशका सोना चाँदी नहीं चाहते, क्योंकि वह तो उनके पास अथाह है और प्रतिवर्ष उनकी खानों से निकलता आता है; वे भूखे हैं गेहूँ, चावल और अलसी, सरसों आदि तिलहन तथा रुई, जूट आदि कच्चे बाने के जिनसे वे जीवनोपयोगी पदार्थ बनाते हैं। अतः हमारी सच्ची शिकायत इन जीवनोपयोगी पदार्थोंका बाहर जाना है जिसके बदलेमें हमें अभोज्य और अपरिधेय पदार्थ रुपया लेना पड़ता है। एक मनुष्यके पास रुपयेका बदला उसके लिए अच्छा है, किन्तु किसी देशके पास

* Department of Commercial intelligence

व्यर्थ और फजूल रुपयेका बढ़ना अच्छा नहीं क्योंकि उससे देशमें सब चीज़ें तेज़ हो जाती हैं अर्थात् अधिकताके कारण रुपयाकी क़ीमत गिर जाती हैं। देखिये देशमें रुपयेकी अधिकताके कारण, रुपयेका मूल्य ५० वर्षमें कितना गिर गया है। तब रुपयेका मूल्य ३० सेर गेहूँ या ८ सेर रुईके बराबर था, अब १० सेर गेहूँ और दो सेर रुईके बराबर है। जो अपनी आँखें खोल कर देखता है और अपनी अक़लपर ज़ोर देता है उसे कोई संदेह नहीं रहता कि पिछले पचास वर्षोंसे भारतवर्षमें सोना-चाँदी चौगुना हो गया है। किन्तु इससे इसका सच्चा धन चौगुना नहीं हुआ है, क्योंकि रुपया तो सच्चे धनका एक चिन्हमात्र है और इस चिन्हका मूल्य उसी प्रकार घट सकता है जिस प्रकार नोटों का। पहिले एक रुपया ३० सेर गेहूँका चिन्ह था अब १० सेर गेहूँका। इसीसे अब अर्थशास्त्रज्ञ नक़द द्रव्यके देशसे बाहर जानेकी परवा नहीं करते जहाँ तक कि देशमें रोज़के व्यवहार-विनियमके लिये काफ़ी द्रव्य बना रहे। जैसे कोई आदमी बहुतसे सन्दूकोंके होनेसे, कोई किसान बहुतसी लाठियोंके होनेसे या कोई सौदागर बहुतसे तराज़ू और बाटों के होनेसे धनी नहीं हो सकता, इसी प्रकार कोई देश केवल रुपयेके होनेसे बड़ा धनी नहीं हो सकता। सन्दूक़, लाठी, तराज़ू बाट और रुपया यह सब काम निकालने भरको चाहिए।

ऊपर जितने कारण दिखलाये गये हैं यह सब भारतवर्षमें लगते हैं। इसके अतिरिक्त एक विश्वव्यापक, सार्वदेशिक तेज़ी और भी है और उसका प्रभाव हमारे देश पर भी भलीभाँति पड़ा है। अतः हमारे देशकी महँगीके दो प्रकार के कारण हैं। (१) बाहरी और (२) भीतरी। भीतरी कारणोंको मैं ऊपर कह ही चुका हूँ। बाहरी जगद्व्यापक कारणोंमें मुख्य कारण १८५० ई० से आष्ट्रेलिया और केलिफ़ोर्निया (अमेरिकामें) की खानोंसे बहुतसे सोनेका निकलना है। सोनेकी आमद (अथवा संचय) बढ़ जानेसे उसका मूल्य कम हो गया। वह हमारी दृष्टिमें अब उतना मूल्यवान नहीं रहा जितना पहिले था। इसी कारण सब चीज़ोंकी क़ीमत बढ़ी हुई मालूम होती है। सोना चाँदी मूल्यके पैमाने हैं और पैमानेके घट जानेसे सभी चीज़ें पैमानेसे नापी जाने पर लम्बी हो जाती हैं। ३६ इंचके गज़से जो कपड़ा १० गज़ है वही कपड़ा गज़के घटजानेसे जैसे ३० इंचके रहजानेसे १७ गज़ हो जावेगा। इसीसे जिसे हम अनाजकी तेज़ी कहते हैं उसे अर्थशास्त्रज्ञ सोनेको मद्दा कहते हैं। जैसे साधारण लोग कहते हैं कि पृथ्वी स्थित है और सूर्य उसकी परिक्रमा करता है और ज्योतिषी लोग कहते हैं कि सूर्य स्थित है और पृथ्वीके उसकी परिक्रमा करनेके कारण वह चलता दिखाई देता है।

सोना तो १८५० से मद्दा हो रहा है किन्तु चाँदी जो १८७३ तक मद्दी न थी जर्मनी आदि देशोंके सिक्कोंमें ख़र्च न होने के कारण, १८७३ से बहुतही अधिक मद्दी होती आई है और इस कारण १८७३ से १८९९ तक हमारा रुपया और भी मद्दा हो गया था, अर्थात् चीज़ोंका भाव और भी अधिक बढ़ गया था। १८९१-२ में १८ रुपया देने पर गिन्नी मिलती थी। इससे यद्यपि सारे संसार में १८७३ से १९०० तक चीजोंकी तेज़ी बढ़ती गई थी किंतु चांदी के सिक्के प्रयोग करने वाले भारत, चीन आदि देशोंमें सोनेके सिक्केके देशोंसे (जैसे इंगलैण्ड, जर्मनी आदिसे) यह तेज़ी अधिक थी। परन्तु १८९९ से हमारा रुपया जहां का तहां रहा है। उसके मूल्यमें चांदीके मूल्यके घटने बढ़नेसे कोई अंतर नहीं आया है क्योंकि तबसे बराबर एक गिनी (सावरेन्) १५ रुपयेके बराबर रही है। इसके लिये सर्कारको बड़े बड़े प्रयत्न करने पड़े हैं और आज दिनभी करना पड़ते हैं।

यूरोपीय महायुद्धके आरंभमें रुपयाका मूल्य गिरने लगा था और १५॥) देने पर एक गिनी मिलती थी किंतु सर्कार ने प्रयत्न कर विनिमय का अब भाव ठीक कर दिया है।

पाठको! यह जो ऊपर मैंने कारण लिखे हैं यह उस तेज़ीके हैं जो पिछले ३०, ३५ वर्षोंसे हो रही है। युद्धके कारण जो गेहूंकी तेज़ी ५, ६ महीनेसे है उसके अलग कारण हैं, जैसे :—

(१) रूसके गेहूंका संसारकेबाज़ारोंमें न जाना

(२) १९१३-१४ में उत्तरी भारतमें गेहूंकी फ़सलका कम होना और यहां अकालका पड़ना।

(३) १९१४-१५ में फ़ांस, जर्मनी, रूस और कुछ कुछ अर्जेन्टाइनमें गेहूंकी फ़सलका कम होना।

(४) इन कारणोंसे भारतके गेहूंकी बिदेशोंमें मांग और उसका बाहर जाना।

इस नई तेज़ीको रोकनेके लिये गत २८ दिसम्बरको भारत सर्कारने यह आज्ञा प्रकाशितकी थी कि दिसम्बर से मार्च तक ४ महीनोंमें भारत से गेहूं २८ लाख मनसे अधिक बाहरी देशोंको न जाने पावे। जब इससे भी यह तेज़ी न रुकी तब अंतमें लाचार हो गत २६ फ़र्वरीको भारत सर्कारको गेहूंका बहिर्गमन (निर्यातन) व्यापारियोंके लिये, अप्रैलसे दिसम्बरकी १५ तकके लिये, रोकही देना पड़ा। अब पूर्ण आशा है कि गेहूं अवश्य कुछ न कुछ मद्दा हो जावेगा।

अंतमें मैं ग्राहकोंको यह शुभ समाचार और भी सुना देना चाहताहूं कि बहुतसे अर्थशास्त्रज्ञोंके विचारमें नाजकी जो तेज़ी पिछले ५० वर्षोंसे बढ़ती चली जारहीथी वह युद्धके बाद (युद्धही के कारण) बंद हो जावेगी।

मूल लेखके लिख जाने पर सर्कार द्वारा नियुक्त मिस्टर दत्तकी "भारतीय महँगीके कारणों" की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है अतः इस लेखमें उस रिपोर्टका कुछ वर्णन न कर सका। आशा है कि किसी समय उसेभी पाठकोंके बिनोदार्थ लिखूंगा।

लघु-जीव-धारियोंका अपत्यस्नेह

[ले० शालिग्राम वर्मा, भरतपुर]

The deep affections of the breast,
That heaven to living things imparts,
Are not exclusively possesed
By human hearts.

स्वाभाविक अपत्यस्नेह जो प्रत्येक जीवधारीको ईश्वरकी ओरसे मिला है वह सब मनुष्य मात्रके ही हिस्सेमें नहीं आया।

यदि हम सृष्टि-क्रमकी ओर ज़रा गहरी दृष्टि डालकर देखें और अधिक दूर न जाकर पहिले अपने पासकी ही वस्तुओं के आन्तरिक रहस्यकी पूरी विवेचना करें तो हमें ऐसी ऐसी कौतूहल पूर्ण और आश्चर्यजनक शक्तियों, क्रियाओं अथवा नैसर्गिक-चमत्कारोत्पादक पदार्थोंका पता लगेगा, जो हमारे प्रति निकट होने पर भी हमारी निगाहसे अब तक छिपे हुये हैं।

अपने पासकी वस्तुओंके अधिक निकटवर्ती होनेके कारण हमें प्रायः उनका बहुत कम ज्ञान होता है, तिसपर भी हमलोग स्वभावतः कुछ ऐसे हतोत्साह और उदासीन हो गये हैं कि स्वतंत्र और प्रत्यक्ष रूपसे अनुभव करनेकी अपेक्षा केवल पुस्तकोंमें लिखे विचारों व निर्देशोंके ही दास होते जाते हैं। ऐसा लिखनेसे हमारा यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि अभी पुस्तकोंकी शिक्षा दूषित या निकम्मी ही होती है, किन्तु हम बड़े साहसके साथ कह सकते हैं कि अकेली पुस्तकोंकी शिक्षा, जब तक प्राकृतिक अनुभवसे परिपुष्ट न की जाय, नैसर्गिक नहीं कही जा सकती। यही कारण है कि आजकल

सभी सभ्य देशोंमें किन्डर-गार्टन आदि रीतियों से शिक्षा देनेकी प्रथा सार्वभौमसी हो गई है व होती जाती है। निस्सन्देह वैज्ञानिक शिक्षा दिये जानेकी यह प्रथम सीढ़ी है। पर शिक्षाकी रीति-पर हम इस निबन्धमें विचार न करके अपने पाठकोंके मनोरंजनकेलिए यह बतलानेकी चेष्टा करेंगे कि केवल मनुष्यही नहीं किन्तु क्षुद्रसे क्षुद्र जीव भी अपनी संतानसे अगाध स्वाभाविक प्रेम रखते हैं।

हम इस छोटेसे लेखमें विकासके सिद्धान्तों पर कुछभी कहनेकेलिए तैयार नहीं हैं, परन्तु अपने विषयकी यथावत आलोचना करनेके-लिए हमें यह अवश्यही लिखना पड़ता है कि जब पृथिवी सूर्यदेवसे अलग होकर घूमते घूमते तथा अपने उबलते हुये अग्नि-सागरमें से समय समय पर आगके गोले फेंकते फेंकते, ठंढी होने लगी, तो इसके ऊपरी पर्तके ठंढे होते ही क्रमशः उसकी नीचे वाली चट्टानेंभी ठंढी होने लगीं। मेघ वर्षा करने लगे, वायु चलने लगी समुद्रकी लहरें आ आकर थलसे टकराने लगीं, उसी समय अयोनिसृष्टिकी उत्पत्ति हुई। इसके पश्चात् स्थल पर वनस्पतियोंकी उत्पत्ति और जलमें शंख घोंघे आदि जल-जन्तु पैदा होने लगे। इन्हींके पीछे मछलियोंका विकास हुआ। अवश्यही यह निर्दिष्ट करना टेढ़ी खीर है कि सृष्टि पहिले थल पर हुई अथवा जलमें क्योंकि प्रत्येक जीवके लिये जल और ताप दोनोंही समान रूपसे प्राणधार है। दोनों की समान मात्रा होने से जीवन स्थिर रह सकता है पर तो भी अनुधावनसे यह अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय हमारी पृथिवी ज्वलन्त अग्निका गोलक होरही थी उसके पीछे ठंढी होने-के कारण जल और थलका विभाग हुआ तो सब से पहिले जलमें ही सृष्टि होनी प्रारंभ हुई होगी। पर फिर हमें यह कहनेका साहस नहीं होता कि सृष्टिके आदिमें पहिले जीव जन्तु पैदा हुये या पहले वनस्पतियों का विकास हुआ। [The Story of creation Edward Clodd p. 153]

इन्हीं (amphibious) जल और थल दोनोंमें रहनेवाले जीव और मछलियों में अपत्यस्नेहका ऐसा अपूर्व उदाहरण मिलता है कि जिसके सदृश अन्य स्तनपायी जीवों तकमें मिलना कठिन है। मेंढक Toads अण्डोंको अपने मुँहमें रख लेता है और उसके हलक या गलसुये में ही उसके बच्चे बड़े आराम और शीघ्रतासे बढ़ते रहते हैं। इस प्रकारके जीवोंका प्रत्यक्ष उदाहरण Rhinaderma Darwini है। बहुतसे मेंढक इस प्रकारके होते हैं कि उनकी मादाकी पीठमें शहदके छत्तेकी तरह छेद होते हैं। इन्हीं छिद्रोंमें अण्डे रख देनेके पश्चात् यह क्रमशः बन्द होने लगते हैं और अन्तमें अण्डे परिपक्व हो उनसे बच्चे निकल आते हैं, तब यह छिद्र फिर खुल जाते हैं। इस प्रकारके मेंढकोंमें पीपाही सर्वश्रेष्ठ कहा जा सकता है। कुछ मेंढक इस प्रकारके भी हैं जिनमें पिताही दाईका काम करता है। यह छोटे छोटे अण्डोंको अपने पिछले पैरोंमें उलझाकर प्रायः एक पखवारे तक (जब तक कि बच्चे पैदा नहीं हो जाते हैं) जीवित ही गड़ा पड़ा रहता है। इनमें Altles obste tricans की गणना सबसे पहिले की जानी चाहिये।

शिशु-रक्षण और पालनके विषयमें तो मछलि-योंकी बुद्धि इनसेभी कहीं विलक्षण होती है। यूरोप देशकी प्रसिद्ध मछलियोंमेंसे स्टिकलबैक Stickleback नामक मत्स्यको छोड़ कर (जिनका नर प्रायः घोंसला बनाने व पैत्रिक स्नेहके लिये प्रसिद्ध है) बहुधा सभी मछलियां इस विषयमें उदासीन पाई गयी हैं। परक्रांत-वलय (Tropics) तथा इसके नीचे वाले देशोंकी मछलियां अपनी विलक्षण प्रकृतिके लिये प्रसिद्ध हैं।
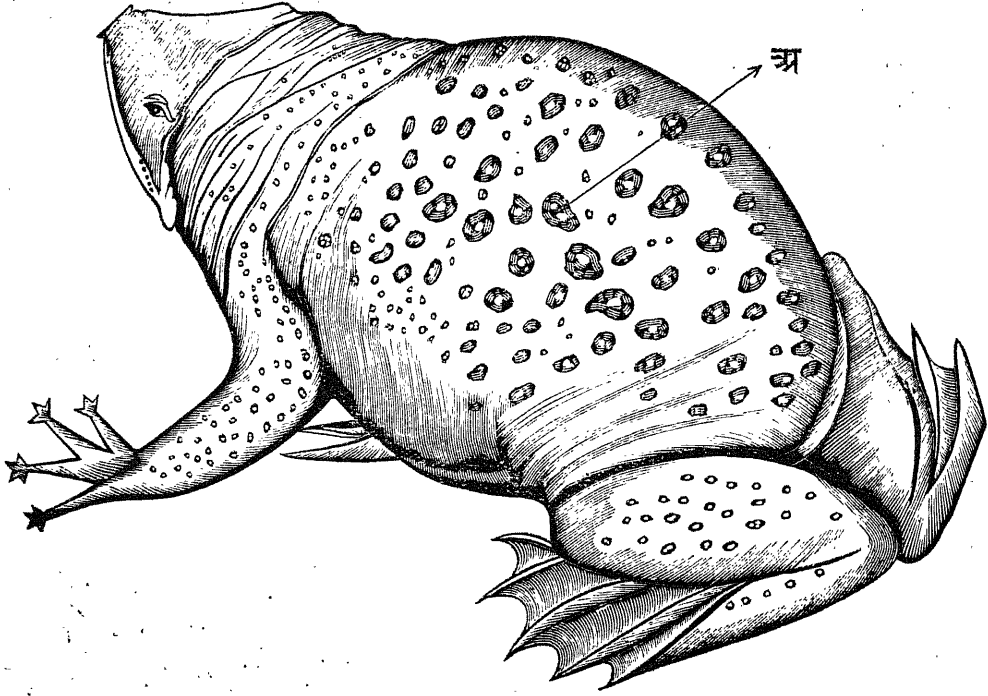
चित्र नं० १—पीप मेंढक
अ—यही छिद्र हैं जिनमें अंडों का पालन पोषण होता है।
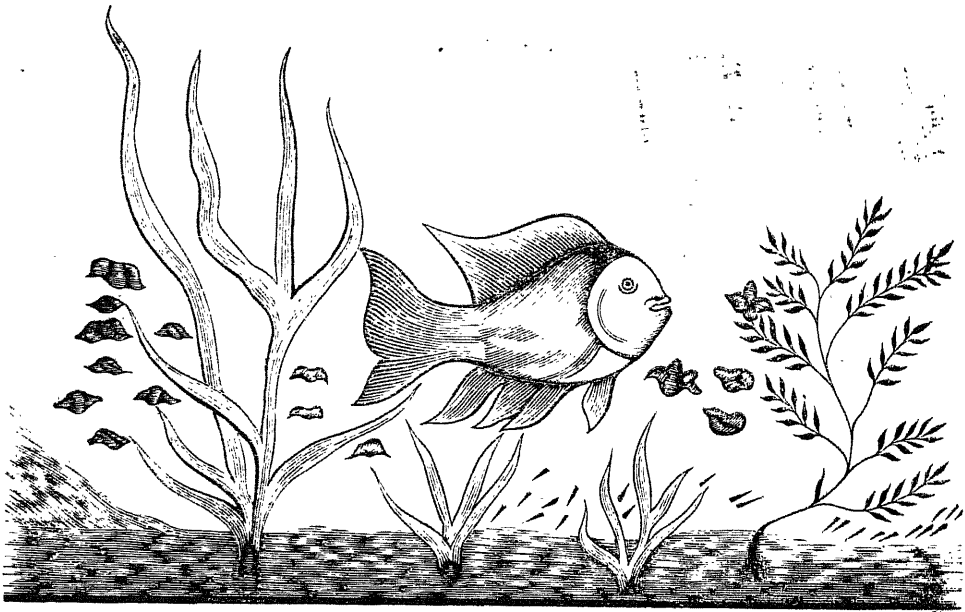
(चित्र नं० २) पिता और बालक मत्स्य

Paratilapia पैराटिलेपिया नामक मत्स्य जिनके मुखद्वारा संतानोत्पत्ति होती है इसी प्रकारकी बिलक्षण मछलियोंमेंसे हैं । जब तक इनके बच्चे यथेष्ट सयाने नहीं होते यह उन्हें अपने मुखमें ही रक्खे रहते हैं। छोटे छोटे बच्चोंका रक्षाकेलिए अपनी माताके मुखमें दौड़ कर घुस जाना बड़ाही अपूर्व दृश्य होता है। पिताका मुर्ग़ेकी भांति अपनेको बड़े प्रेम और आकुलतासे इधर उधर लिये फिरना भी बड़ाही मनोहर और चित्ताकर्षक तमाशा है।

विलायती शफरी (Carps) भी इसी प्रकारके जीव हैं। इनमें मादा अपने पतिसे बड़ी होती है और अपने लड़कोंको अपने शरीरमेंही पाल पोष कर बाहर निकालती है । यदि यह बच्चे इस अवस्थामें न निकलें तो माता पिता शीघ्रही उन्हें भक्षण कर लेते हैं । पर इस प्रकारकी समस्त मछलियोंमें मैक्रोपाड्स Macropods तथा दीर्घ-पाद मत्स्यही विशेष उल्लेख योग्य है। इनकी अनुपम बुद्धिके उदाहरण इनके बनाये हुये फेन आवास (Foam-nests) हैं। जिस चातुर्यसे यह घर बनाये जाते हैं वह अवश्यही सराहनीय है। इन्हें देख कर इस मत्स्यके कार्य-कौशल और बुद्धि-मत्ताका पता लगता है। पति पत्नीका प्रेमोत्पादक मनोहर नृत्य देख कर इन जीवोंके प्रगाढ़ प्रेमका थोड़ासा अनुमान होसकता है। यह नृत्य देख कर बहुतसे अनुभवी वैज्ञानिकोंने यहां तक कहा है कि "यदि सृष्टिका सर्व्वोत्कृष्ट जीव मनुष्य अपनी प्रियाकी प्रसन्नताकेलिए, तथा अमोद प्रमोदके वास्ते नृत्य कलाको इतना प्रिय समझता है तो वह अपनी उच्च पदवीके योग्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि इतना तो छोटे छोटे जीवभी नित्य प्रति किया करते हैं।" इनमें पिता-मत्स्यका आत्मत्याग भी अनुकरणीय है। जब पिता घोंसला बनानेमें निमग्न होता है तो माता उससे छिपकर अण्डोंको चुरा कर खा जानेकी ताकमें लगी रहती है। पर उसकी यह दुराभिलाषा ज्ञात होतेही पिता मत्स्य उसे काट काट कर उसकी खूब ख़बर लेता है।
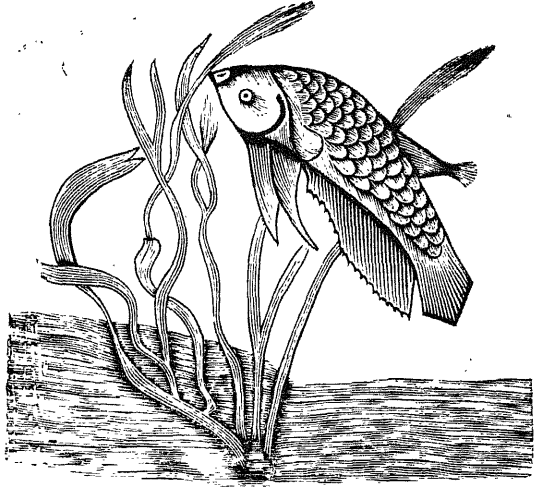
चित्र नं (३)

हमारे इस चित्रमें लड़ाकू-मत्स्य बड़ी बीरता व धीरता से अपने फेन-गृहकी रक्षा कर रहा है। जिस समय बच्चे अण्डोंमें से निकलते हैं, यह मत्स्य बहुत भयानक हो जाता है। यदि उस समय कोई अन्य मत्स्य घोंसलेके पाससे भी निकले तो यह उसे बिना संहार किये नहीं छोड़ता। इस समय तो यदि किसी मनुष्यका भी हाथ या पैर पानीमें हो तो यह मत्स्य उस पर बड़ी निर्दयतासे टूट पड़ता है।

विकास सिद्धान्तके अनुसार मत्स्योंके अनन्तर सर्पों या रेंगने वाले जीवों (Reptiles) का नंबर है। इन जीवोंमें बहुधा अपत्यस्नेह कमही देखा गया है क्योंकि इनके बच्चे पैदा भी नहीं हो पाते कि यह स्वयंही अपने अंडोंको भक्षण करने लग जाते हैं। यद्यपि यह प्रकृति सभी रेंगनेवाले जीवोंकी नहीं है, तो भी उनमें मत्स्योंके से चरित्रवाले विरलेही मिलते हैं।

पक्षियोंमें इस प्रेमकी न्यूनाधिक्यके बड़े बड़े विचित्र और जाज्वल्यमान प्रमाण मौजूद

हैं। एक ओर तो मोहान्ध चील गरुड़ आदिको देखिये जो अपने बच्चों पर प्राण तक न्योछावर करने को तैयार रहते हैं, और दूसरी ओर कबूतर मुर्गे आदिको देखिये जहां एक ओर पिताकी ओरसे अगाध प्रेमको परिचय मिलता है वहां दूसरी ओर रंग बिरंगे सुन्दर परोंसे भूषित पिता सिवा संयोगके समयके प्रेमसूचक मृदु मनोहर राग और अनुराग पूर्ण नृत्यके कुछ नहीं जानता और माताको ही अपने बालकोंके पालन और पोषणका सारा काम संभालना पड़ता है।

इन के पश्चात् खुर वाले जीवोंकी गणना है। क्योंकि इन जीवोंमें एक-स्त्री-व्रत- गुण बहुत कम पाया जाता है और प्रायः पति-पत्नी संबंध एक प्रकारकी संभोग-पीड़ाही है, इसलिये इनमें माता अपने बालकपर बड़ा स्नेह प्रगट करती है, पर पितामें यह स्नेह लेश मात्रभी नहीं होता। इस प्रकारके जीवोंका उदाहरण गधे, घोड़े, गाय आदिमें मिलता है।

अब स्तनपायी जीवोंकी ओर ध्यान दीजिये। इनकी तो धज ही निराली है। बन्दरों में बहु-पत्नी-व्रत प्रथाके प्रभावसे बानरी अपने बच्चे पर जैसा प्रेम दिखाती है वह प्रसिद्ध है ही, पर बनमानुषोंमें इसके प्रतिकूल उदाहरण देखनेको मिलते हैं। इनमें पिताको अपने सन्तानके प्रति प्रगाढ़ प्रेम होता है। वह कदापि उसे संकटमें नहीं देख सकता। अब रहा मनुष्य इसके विषयमें यहां पर कुछ कहना व्यर्थ मालूम होता है।

हमारे विचारमें हमारे सुधी-पाठकोंको हमारे उपरोक्त कथनके सत्यासत्य निर्णय करने में अब कुछ सुविधा होगी।

यदि हम यह मानलें कि स्पर्द्धा होने पर प्रायः दोनोंही पक्ष एक दूसरेसे बढ़ जानेका उद्योग किया करते हैं (और यह सत्यभी है) तो मनुष्य मात्रको अवश्यही इन महा क्षुद्र जीवोंसे अपनी उच्च स्थितिके अनुकूल अपना जीवन बनाने का उद्योग करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि क्या सब जीवधारियोंसे अपने को श्रेष्ठ मानने वाले मनुष्यके लिये यह लज्जा का विषय न होगा कि वह पैत्रिक-स्नेह सोपान में सबसे नीचे पाद पर रहे। क्या वैज्ञानिक शिक्षा यहां किसी धार्मिक शिक्षासे कम उपदेश पूर्ण है?

भोजन विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय]

आज कल भोजनके सम्बन्धमें बड़ा कोलाहल मच रहा है। भारत-वर्षहीमें नहीं किन्तु बिदेशोंमें भी इस बिषयपर बड़ी ज़ोरोंका बादाबिवाद चल रहा है कि मनुष्यको फलाहारी होना चाहिए या मांसाहारी अथवा फल और मांस मिश्रित भोजनही उसकेलिए परम श्रेय है। इस समस्या पर भिन्न भिन्न लोगोंने भिन्न भिन्न दृष्टिसे विचार किया है। मैं अपने लेखमें इन्हीं तर्कोंके छान बीन करनेका प्रयत्न करूँगा।

पाश्चात्य देशोंमें विशेषतः अमरीकामें इस प्रश्न पर बहुधा लोगोंने भोजन और उसके शरीर पोषण सम्बन्धकी दृष्टिसेही विचार किया है। जो भोजन मनुष्यको सबसे अधिक शक्ति और सामर्थ्य दे सकता है, उनकी दृष्टिमें वही सर्व श्रेष्ठ है। हां, कुछ लोगोंने मनुष्यके हृद्गत रमणीयता और सुन्दरताके भावोंकी दुहाई पुकारकर मांसाहारको मनुष्यकी जङ्गली दशाका शेषांश कहकर निंद्य ठहराया है। कुछ और भी ऐसे सज्जन हैं जिनके विचारमें मांस भोजनका एक परम्परागत नीच असर मनुष्यके सदाचार पर पड़ता आया है, अतः वे इसकी निंदा करते हैं।

इनके अतिरिक्त मांसाहार निषेधक एक समुदाय और है। इसमें औषधि-शास्त्रके कई एक आचार्य्य भी शामिल हैं। इन लोगोंने तो मांसाहारही क्या पशुयोनिसे प्राप्त सभी पदार्थोंके निन्दाकी हद करदी है। इनका कहना है कि सब प्रकार का पशुमांस और प्रत्येक खाद्य वस्तु जो जीवधारियोंसे मिल सक्ती है मनुष्यके लिये विषतुल्य है। यह ही नहीं बल्कि उन्होंने यहां तक कहडाला है कि उनका खाना मनुष्य-पदको नीचा करना है।

इस सम्प्रदायके लोग वर्जित भोज्य पदार्थकी सूचीमें दूधको भी शामिल कर लेते हैं। शायद अपने जोशमें ये बहुत मामूलीसी बात भूल जाते हैं कि दूधही—चाहे वह स्त्रीका हो या पशुका—बच्चोंके पालनेकी एकमात्र सामग्री है। भारतवर्षमें तो मनुष्यकी बात बात में धर्म्म भिड़ा है, धर्म्मसे मिलकर इस भोजनके प्रश्नने तो यहां पर एक विचित्रही विषमरूप धारण कर रक्खा है। हिन्दू पंडितोंने खाने पीने वाली वस्तुओंके तीन बिभाग किये हैं। उनकी कल्पना है कि जिन खाने या पीने वाली वस्तुओंसे मनुष्योंमें सतोगुण उत्पन्न होता है वे सात्विक, जिनसे रजोगुण बढ़ता है वे राजसिक, और जिनके खानेसे तमोगुणकी वृद्धि होती है वे तामसिक होते हैं।

इस सम्बन्धमें इतनाही कहना पर्य्याप्त होगा कि इस कल्पनाने हिन्दुओं और विशेष कर ब्राह्मणों पर अर्वाचीन और माध्यमिक कालमें बड़ा असर डाला है। हिन्दुस्तानमें बहुतसे ऐसे मनुष्य वर्त्तमान हैं जो बड़ी सावधानी और विचारके साथ उन पदार्थोंके संग्रहसे परहेज़ करते हैं जो बिना जीवहत्याके नहीं मिल सक्ते। इन लोगोंके और भी साथी वेश जातिके लोग हैं जो जानवरोंसे प्राप्त प्रत्येक पदार्थको—दूधको भी—मनुष्यके लिये हानिकारक और अस्वाभाविक बतलाते हैं। ये लोग आधुनिक विज्ञान शास्त्रकी दुहाई पुकारकर यह साबित करनेका प्रयत्न करते हैं कि प्रकृतिसे ही मनुष्य अपने पूर्वज एन्थ्रोपाइड बन्दरोंको तरह—एक प्रकारके मनुष्यसे सबसे अधिक समानता रखनेवाले बन्दरोंकी तरह—फलाहारी हैं। उनका कहना है कि मनुष्यने भ्रष्टशीलता और दुर्वृत्तिके कारणही मांस खाना प्रारम्भ कर दिया है।

आधुनिक फलाहारके पक्षपाती एक अमेरिकन डाक्टरने बड़े ज़ोरों के साथ ईसाके आठ शताब्दी पूर्वके ग्रीस देशके इतिहास लेखक हिस्चाइड के स्वर्णयुग-सतयुग-के वर्णनका हेवाला दिया है। हिस्वाइड ने लिखा है कि उस समय मनुष्य आमिष भोजनसे अपरिचित थे। इसी लेखके आधारपर डाक्टर साहेबने देवताओंसे प्रार्थनाकी है कि वे उनके लेखके पाठकोंके हृत्पटलपर स्वर्णयुग के साधारण जीवनका असर डालें। किन्तु इस कल्पित युगके इन प्रमाणों और ऐसे तर्क तथा प्रार्थनाओंका वैज्ञानिक दृष्टिमें कितना आदर है यह मैं अपने पाठकोंके पक्षपातरहित विचार परही छोड़ता हूँ।

मैं इसे उचित नहीं समझता हूँ कि भोजन और आत्मिक उन्नतिसे क्या सम्बन्ध है इस विषयका विचार भोजन और उसकी शरीर पोषण शक्तिके सम्बन्धसे अलग स्वतंत्र रूपसे किया जावे। मेरी इच्छा है कि मैं आप लोगोंका ध्यान उन वैज्ञानिक विचारोंकी ओर आकर्षित करूँ जिनसे हमें भोजनके इस महत्वपूर्ण प्रश्नके उत्तरमें सहायता मिले।

किसीभी जीवके स्वाभाविक भोजनके पतालगानेमें हम लोगोंको निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये :—

१—उसके भोजन करनेकी स्वाभाविक और सहज आदत का ज्ञान-वह जीवनके साधारण स्वाभाविक अवस्थामें जब उसे कोई भी बात किसी कार्य्यकेलिए उसकी इच्छासे बिरुद्ध बिवश करनेवाली नहीं है क्या खाता

है ? । इस खानेका जीवके शरीर पोषण और उसकी हरकतों पर कैसा असर पड़ता है ? ऐसेही अनेक प्रश्नोंका अनुसंधान—

२—जन्तुओंके पाचन यन्त्रका तुलनात्मक अध्ययन और उससे यथाशक्ति उसके भोज्य-पदार्थों का पता लगाना।

३—उसके शरीर शास्त्रका अध्ययन और इस शास्त्रके निर्धारित नियमोंके अनुसार उसके स्वाभाविक भोजनके सम्बन्धमें नतीजे निकालना।

आइये अब मनुष्यके सम्बन्धमें इन बातोंका अनुसंधान किया जाय। मैं सबसे पहले इस विषयसे सम्बन्ध रखने वाले शरीर-रचना-शास्त्रके विचारोंको उठाना चाहता हूँ।

यहाँ पर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि तन्दुरुस्त आदमीने अपना भोजन वैज्ञानिक विचारोंसे निश्चित नहीं किया है। उसका भोजनात्मक निश्चय रीति रवाज तथा अनुभव-का ही फल है। तथापि सब प्रकारके खाद्य पदार्थोंके अनुसंधानसे बहुतसी ऐसी मूल बातोंका पता लगता है जो किसी हदतक सच हैं।

भोजन चाहे वह शाक पात हो या मांस मनुष्यके स्वास्थ्य और स्फूर्तिको ठीक रक्खेगा और ठीक रखताही है- इस बातसे कोई भी इनकार नहीं कर सक्ता। परन्तु जब यह प्रश्न सामने आता है कि कौनसा भोजन मनुष्यके-लिए सबसे अच्छा है; जिसके सेवनसे ऐसे मनुष्य जातिकी उत्पत्तिमें सबसे अधिक सहायता मिले जो दृढ़ काय, उन्नत मस्तिष्क वाली और मेधावी हो और जीवनके घोर संग्राम में निश्चयसे टिक सके, तो बड़ी कठिनता आन पड़ती है। शरीर-रचना-शास्त्र इस बात पर बिल्कुल चुप है। यह बतला सक्ता है कि मनुष्यको इतना कार्बोहाइड्रेट (Carbo hydrate) शालिजानीय उपादान, इतना स्टार्च (Starch) मंड, इतना फ़ट चरबी बढ़ानेवाले द्रव्य, इतना नमक, और इतना पानी भोजनके-लिये चाहिए, पर ये खाद्य पदार्थ वनस्पति योंसे लेना चाहिए या पशुओंसे इस प्रश्न-का वह कोई उत्तर नहीं दे सक्ता; यों तो अपनी सुगमताके कारण मनुष्य कहीं मांस खाने लगता है और कहीं फल।

जिस समय संसार हिमाच्छादित था उस समय आदिम मनुष्य क्या खाता होगा ? वनस्पति तो उस समय ढूंढे भी न मिलती होगी। चारों ओर मांसाहारी जीवोंके बीच उसे निशस्त्र घूमना होता होगा। उस समय जीवन संग्राम बड़ा विषम था। एक जीव दूसरे जीवके मांस पर अपना जीवन निर्वाह करता था। सिवा मांसके खानेको मिलता ही क्या जिसे खाकर वह अपना पेट भर सक्ता। जिस कालमें पृथ्वीके ऊपर चौथी तह जमी थी उस काल में उत्पन्न हुआ फ़ैना (fanna) ही मनुष्यका मुख्य भोजन था। कभी कभी हैना (hyena) * भी उसके भोजनमें शामिल रहता था। भयङ्कर भीमकाय जानवरोंसे उसे ख़ाली हाथ कुश्ती लड़नी पड़ती थी। इस महा युद्धमें जो कोई मारा जाता वही दूसरेका भोजन बनजाता था।

स्वीज़रलैंडमें जो प्राचीन निवासी झीलोंमें लकड़ियोंके जङ्गली मकान बनाकर रहते थे (Lake dwellers) उनका भोजन केवल मछली ही थी। वे अपने घोड़ोंको भी मछली खिलाते थे। डेनमार्क देशके वे प्राचीन असभ्यनिवासी जिन्होंने बड़े बड़े मिट्टी या पत्थरके घेरे अपने बचाव के लिये बनाये थे (Mound Builders) घोंघे (Shell fish) खाकर ही जीते थे। इसके अतिरिक्त वे कभी कभी शिकार भी पा जाया करते थे।

* सुअरके समान एक लम्बी अयालवाला कुत्तेकी जातिका जानवर।

अभीतक बहुतसी जङ्गली और असभ्य ज़ातियां संसारमें मौजूद हैं जिन्हें न तो खेती करनेही का ज्ञान है और न जिनके पास शिकार खेलनेको हथियारही हैं। वे लोग अपने आप उगनेवाली प्राकृतिक जड़ी बूटियां या कंदमूल खाकर अपना निर्वाह करते हैं।

आजकलके ज़मानेमें अन्यजातियोंकी अपेक्षा अंग्रेज़ और अमेरिका निवासी अपने भोजनका प्रोटीड (Proteid) या नत्रजनीय (Nitrogenous) पदार्थोंको तो मांससे और शकर पैदा करनेवाले मांड़वाले (Starchy) पदार्थोंको शाक पातसे लेना पसंद करते हैं। फ्रांसीसी, इटालियन और स्पेननिवासी तो बनस्पतियोंमें मिलने वाले प्रोटीड (Proteid) काही अधिक उपयोग करते हैं। हिन्दोस्तानमें तो इसका ज़िक्रही क्या है न मालूम कितने प्रकारके शाक भाजियोंसे बने हुए भोज्य पदार्थोंसे हमलोग परिचित हैं।

सच तो यह है कि मनुष्यको जिन जिन द्रव्योंकी आवश्यकता है उनमें से शाक पातमें शकर पैदा करनेवाले माड़वाले (Starchy) द्रव्य और द्रव्योंकी अपेक्षा बहुतायतसे मिलते हैं और पशुयोनिसे प्राप्त होनेवाले पदार्थोंमें चर्बी और मांसके पालनेवाले प्रोटीड (Proteid) और नत्रजनीय (Nitorgenous) द्रव्य और द्रव्योंसे अधिक होते हैं। इसलिये बहुधा यह बड़ाही सुगम होगा कि हम लोग अपनी चर्बी और मांसके पालनेवाले द्रव्य तो पशुओंसे लें और स्फूर्ति तथा शक्ति संचालन करने वाले द्रव्योंको शाकपात से। यह तो प्रत्यक्षही है कि आजकलकी सबसे अधिक सभ्य जातियां ऐसाही करती हैं। वे मनुष्यभी जो मांसाहार के कट्टर बिरोधी हैं अपने शरीरकी चर्बी और मांसकी रक्षा पशुओंके दिये हुए दूधसे ही विशेषतः करते हैं।

अत्यन्त उष्ण या उष्ण देशोंकी जलवायु शाकपातकी बृद्धिकेलिए बड़ी हितकारी है। ऐसे जलवायु वाले देशोंमें बहुतसे शाक या नाज ऐसे मिलते हैं जिनमें हमारे शरीरके पोषण करनेवाले एक दो नहीं सब द्रव्य पाये जाते हैं। अतः ऐसे देशोंमें भोजनका बहुत बड़ा भाग शाकपात ही होगा। इसके बिपरीत ध्रुवदेशीय महाशीत जलवायु बनस्पतियोंके उपजके लिये हानिकारक है। ऐसे देशोंमें हरियाली बहुत कम होती है और मनुष्य अधिकतर मांस भोजनपरही बसर करते हैं। यह स्वाभाविक है कि अन्य भोजन पदार्थोंकी अपेक्षा मनुष्य उन पदार्थोंको अधिक पसन्द करेंगे जो सहजमें मिल सकें और सस्ते हों। इस बातके अनेक उदाहरण भरे पड़े हैं। जापानी और बङ्गाली और बातोंमें भिन्न होने परभी मछली और भात खानेवाले हैं। भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें ही इसके बहुतसे उदाहरण दिखलाई पड़ेंगे।

नव मील ऊँचा जीवन स्तंभ

समुद्रके नीचेसे पहाड़ोंके ऊपर तक

[ले० अध्यापक रामदास गौड़ एम. ए. तथा श्री०कृष्णदेव प्रसाद गौड़]

सारा संसार जीवोंसे भरा हुआ है। अत्यन्त नन्हे नन्हे कीटाणुओंसे लेकर जो सूक्ष्म दर्शक यंत्रोंसे भी नहीं देखे जाते बड़े भारी भारी जल थलके शरीर धारियों तक देखा जाय तो इस धरतीका कोई भाग एक बालभर भी जीवोंसे ख़ाली नहीं है। धरती क्या, समुद्रके गहरेसे गहरे भागमें तीन चार कोसकी गहराईके नीचे भी अनेक तरहके जल जंतु हैं और साथही हिमालयकी चोटियों पर बीस हज़ारकी उंचाई पर भी स्थल जंतु रहतेही

हैं। साथही विचित्रता यह है कि जहाँ बर्फ़से ढके हिमालयके ऊपर अनेक तरहके जीव पाये जाते हैं वहाँ उत्तर खण्डमें बर्फ़से ढके समुद्रके किनारे भी उतने तरहके जीव नहीं मिलते और यह भी अजब बात है कि जो जंतु बहुत गहराई या बहुत उंचाई पर रहते हैं उनका इस धरती पर मैदानोंमें आकर रहना असम्भव है।

अमेरिकामें इक्वेडोर नामक प्रदेशमें सोलह हज़ार फ़ीटकी उंचाई पर एक जातिका भालू रहता है जिसकी आंखें दोहरी होती हैं जो प्रकृति का दिया हुआ एक तरह का चश्मा लगाये रहता है। यह एक विशेष जातिका भालू है क्योंकि साधारण भालू सात हज़ार फ़ीट बल्कि इससे नीचे रहता और रह सकता है। उत्तर खण्ड वाला सफ़ेद भालू तो बर्फ़ोंमें समुद्रके किनारे पड़ा रहता है अर्थात् यह अपने ऐनक बाज़ भाईसे तीन मील नीचे रहता है।

बात क्या है? साधारण धरातलसे ज्यों ज्यों ऊँचे चलिये स्वभावके एक नियमके अनुसार हवा पतली मिलती जाती है और ठंढकभी बढ़ती जाती है। जिस समय मैदानोंमें बड़ी कड़ी गर्मी रहती है पहाड़ोंमें छ सात हज़ार फ़ीटकी ऊँचाई पर जाड़ा बहुत पड़ता रहता है। और बहुत ज़्यादा ऊंचे जाइये तो बर्फ़ गिरती मिलती है यहाँ हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि हम इस सर्दीके कारणोंकी चर्चा करें। हमारा मतलब इतना ही है कि जैसे बीस हज़ार फ़ीट ऊँचे हिमालय पर सदा बर्फ़ जमी रहती है उत्तर खण्डमें भी उसी तरह सदा बर्फ़ जमी रहती है। ऐसी दशामें अगर दोनों जगह एकसे जंतु पाये जांय तो कोई अचरजकी बात नहीं है। हां यह अन्तर अवश्य है कि पहाड़ पर की हवा अत्यन्त पतली होती है और उत्तर खण्डमें भी समुद्रके किनारेकी हवा मैदानोंकी सी गाढ़ी होती है। हिमालय सरीखे ऊँचे पहाड़ों पर निरन्तर बर्फ़ बनी रहती है पर गर्मियोंमें नीचेकी बर्फ़ गल जानेसे हिम-रेखा ऊँची हो जाती है और नीचेकी ओरसे हरियाली बढ़ कर कुछ ऊँची आ जाती है। साथ ही उस हरियाली पर जीनेवाले जंतुभी कुछ ऊपर चढ़ आते हैं। उत्तर खण्ड सरीखे देशोंमें जहाँ ऐसी उंचाईके बिनाही पृथवी बर्फ़से ढकी रहती है वहां हरियाली पर जीने वाले जंतु कैसे रह सकते हैं? पहाड़ों पर डेढ़ दो मीलकी उँचाई पर जहां खरहे और लंगूर तक पाये जाते हैं स्वीडेन और नार्वे जैसे बर्फ़से ढके देशोंमें उनका समुद्रके किनारेही मिलना सम्भव होता है।

हिमालयमें बीस हज़ार फ़ीटकी उंचाई पर भसे से भी ऊंचा और मज़बूत सींगों वाला एक जानवर रहता है जिसे याक कहते हैं। यह दुनियाकी छतसे दस हज़ार फ़ीटसे अधिक नीचे नहीं उतर सकता। उत्तर खण्ड-का सफ़ेद रीछ याकसे भी अधिक ढंढे देशमें रहता है परन्तु ऊपर नहीं जा सकता। इन दोनों बातोंका कारण कुछ तो हवा का पतलापन या गाढ़ापन भी हो सकता है और कुछ यह भी कि अधिक उँचाई या निचाई पर इन जंतुओंके योग्य भोजन मिलनेमें भी कठिनाई होती है।

भोजनकी खोजमें, बिना किसी विशेष हानिके, जितने ऊपर या नीचे जंतु जा सकते हैं उतना उनका प्रदेश समझना चाहिये। भार-तीय सिँह बारह हज़ार फ़ीट या दो मील ऊँचे पहाड़पर भी पाया जाता है क्योंकि इस उँचाई पर उसे घना जङ्गल और शिकार दोनोंही मिल जाते हैं परन्तु साथही उत्तरखण्डके साइबेरिया प्रदेश वाले सिंह लम्बे जाड़ोंमें नहीं मिलते क्योंकि उस समय उन्हें पहाड़ोंमें शिकार नहीं मिलता। इसी लिये यह कहना ठीक नहीं है कि हाथी भालू या सिंह ऊँचे या नीचे रहने वाले

जंतु हैं। अफ्रिकाका हाथी पन्द्रह हज़ार फ़ीट तक बनस्पतियोंको पाकर चढ़ जाता है पर भारतीय हाथी उसकी आधीही उँचाई पर पहुँच सकता है। इससे हम यह निष्पत्ति नहीं निकाल सकते कि हाथी भालू या सिंह अधिकही या कमही उँचाई पर रहने वाले जंतु हैं बल्कि बात यह मालूम होती है कि यह जंतु जैसी अवस्थामें अपने को पाते हैं उसके अनुसार अपना स्वभाव बना लेते हैं। और न हम यही निष्पत्ति निकाल सकते हैं कि इतनी अधिक उँचाई पर यह जंतु अपना घर बना लेते हैं। हाँ, इनके स्वभावका यदि अच्छी तरह अध्ययन किया जाय तो हमें जंगल और उँचाई और प्रदेशकी प्राकृतिक दशाका ठीक ठीक अनुमान हो सकता है। यदि सिंह सरीखे फाड़ खाने वाले जंतु या हाथी आदि बनस्पति खाने वाले जंतु मिलें तो हम यह समझ सकते हैं कि उस जंगलमें साल भरके लगभग शिकारकी और बनस्पतियोंकी बहुतायत रहती होगी और मौसिम न अत्यंत ठंढा होगा न अत्यंत गर्म और ऐसे प्रदेशमें मनुष्यको बसनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती।

ऐसी खोजोंमें यह भी पता लगता है कि बहुत बड़ी उँचाई पर कीड़े मकोड़ेभी नहीं रह सकते, मधुमक्खियां नहीं पाई जातीं। ऐसा कोई न समझे कि कीड़े मकोड़े निरर्थक हैं क्योंकि बहुतेरे कीड़े मकोड़े बनस्पतिको लाभ भी पहुँचाते हैं। हाँ हानिकारक कीड़ोंके पाये जानेकी एक हद है जिस हदके ऊपर उनका जीना असंभव है। मधुमक्खियां अफ्रिकामें तेरह हज़ार फ़ीटके ऊपर तक पाई जाती हैं पर निद्रा रोग फैलाने वाली मक्खियां चार हज़ार फ़ीटसे अधिक ऊँची नहीं जातीं। हमारे लिये यह सब वैज्ञानिक विषय निरीक्षा और परीक्षाके योग्य हैं पर साधारण जंगली इसी निरीक्षा पर अपना जीवन निर्भर करता है। उसनेही पहलेसे हमारे लिए जंगलके दरवाज़े खोल रक्खे हैं, खाने योग्य पदार्थोंका पता लगा रक्खा है। जंगली वेही फल खाता है जिन्हें बन्दरोंको खाते हुए उसने देख रक्खा है वह जानता है कि बन्दर जो कुछ खायगा मनुष्यको हानिकारक नहीं हो सकता।

जन्तुओंकी नाईं पेड़भी हवाके दबाव और ठंढ और गर्मीके सुभीतेके अनुसार पैदा होते हैं। मैदानोंमें बर, पीपल, पाकड़, ताड़, नीम, शीशम, सिरिस आदि पेड़ जो बहुतायतसे होते हैं पांच छ हज़ार फ़ीटके ऊपर नहीं पाये जाते और हिमालयपर देवदार, चीड़, बांझ, पद्म आदि जो पांच छः हज़ार फ़ीट ऊँचेपर होते हैं मैदानोंमें नहीं पाये जाते। जिन्हें हम यहां प्रायः विलायती फूल कहा करते हैं और उनके गन्ध हीन होनेकी शिकायत करते हैं हिमालयकी उंचाईपर उन्हींके सुवाससे जंगल का जंगल बसा रहता है। इस बड़े परिवर्तनका कारण ठंढक या गर्मी नहीं हो सकती क्योंकि मैदानोंमें दोनों दशाएँ पाई जाती हैं। इनका कारण हवाके दबावमें कमी वेशी मालूम होती है। जैसे समुद्रमें मछलियां रहती हैं हम भी हवाके समुद्रमें रहते हैं। सागरके किनारे या मैदानोंमें हवाका दबाव सबसे अधिक होता है पर ज्यों ज्यों ऊपर उठिये दबाव घटता जाता है। पहाड़ोंपर हवाका दबाव कम होनेसे और हवा पतली होनेसे वनस्पतियोंपर भी विशेष प्रभाव पड़ताही है। मनुष्योंको तो यह प्रभाव प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है। हज़ारों आदमी ऐसे हैं जो पहाड़ोंपर बहुत ऊँचे नहीं जा सकते। कालका-शिमला रेलपर जाते हुए सिरमें चक्कर आता है, मतली होती है, कै पर कै आती है। सात हज़ार फ़ीटकी उंचाईपर साधारण चढ़ाईमें भी कलेजा ज़ोर ज़ोरसे धड़कने लगता है, सांस लेनेसे कष्टसा होता है सिर घूमने लगता है और दर्द होने लगता

है। जानवरोंको जिन्हें मैदानोंसे ऊपर ले जाते हैं बड़ी तकलीफ़ होती है। देखा गया है कि ख़च्चरोंको जब बीस हज़ार फ़ीटकी उंचाईपर ले गये उनके शरीरसे मक्खियां और किलनी मर मरकर पृथ्वीपर गिरने लगीं। अब विचार करनेकी बात है कि इस उंचाईपर रहने वाले तिब्बतियोंके भारवाही जंतु याकने कितनी तपस्याके बाद अपनेको संसारके छतपर रहने योग्य बनाया होगा। याक दो गज़ ऊँचा बड़ा मज़बूत जानवर होता है। आश्चर्यकी बात है कि वह ऐसी पतली हवामें कैसे जीता है।

याकसे अधिक उंचाईपर केवल एक पक्षी पाया गया है जो अमेरिकाके पहाड़ोंमें रहता है। वहां वाले इसे कंडर कहते हैं और अपनी भाषामें इसके बल इसके आकार आदि पर विचार करके हम इसे गरुड़ कह सकते हैं। परन्तु गरुड़ देवता याकसे अधिक उंचाईपर उड़नेकी ही क्षमता रखते हैं वहां रहते नहीं।

यह तो हुई उंचाईकी बात अब गहराई पर विचार कीजिये। जिस तरह पहाड़पर जितने उंचे जाइये ठंढेसे ठंढा प्रदेश मिलता जायगा उसी तरह समुद्रके नीचे भी ठंडक मिलेगी परन्तु पहाड़ों पर नहीं। साथही पहड़ोंपर जैसे दबावकी कमी है उसी तरह समुद्रमें दबावकी अत्यंत अधिकता है। साधारण मछलियोंको जिन्हें हम जलमें पासही पाते हैं समुद्रमें बहुत गहराईमें रहना असंभव है। और वह मछलियां जो मील भर गहराईपरभी रहती हैं ऊपर नहीं आसकतीं। हमने चार मीलतककी उंचाईतकका विचार किया है। समुद्रकी गहराई पहाड़ोंकी उंचाईसे भी अधिक है। गहराई बहुधा छः सात मीलतक नापी गई है। यों पांच मीलकी गहराई कहदेना सहज है पर इस गहराईका अनुमान करना मनुष्यके लिये असंभव दीखता है। इस पांच मीलकी गहराईमें भी कोई भाग जल जंतुओंसे ख़ाली नहीं है पर जो जल जंतु एक मीलकी गहराईपर रहता है दो मीलकी गहराईमें जाकर नहीं रह सकता। यों तो साधारण मछलियां बाहर निकालने पर जल बिना तड़पने लगती हैं परन्तु यह और बात है। बहुत गहराई-की मछलियां थोड़ी गहराईमें आकर, या थोड़ी गहराईकी मछलियां बहुत नीचे जाकर मरजाती हैं। देखा गया है कि बहुत गहराईसे जो मछलि-यां पानीके बाहर निकाली जाती हैं उनकी आँखें कोएसे निकली पड़ती हैं, उनके शरीरसे सेहरे गिर पड़ते हैं, अंग अंग ऐंठने लगता है और सारे शरीरके फट पड़नेमें सारे लक्षण दिखाई देते हैं। बहुत ज़्यादः गहराईसे निकली हुई मछलियां तो पानीके ऊपर आतेही फट जाती हैं और उनका शरीर चीथड़ा चीथड़ा हो जाता है। बात यह है कि पानीके बहुत नीचे उनका अंग अंग दबा रहता है दबावके एकाएकी हट जानेसे शरीर फट जाता है। विमान पर उड़ने वाले मनुष्य जब बहुत ऊंचे जाते हैं तो दबावके हटनेसे ही उनके अंगभी फटे पड़ते हैं और नाक आँख कान आदि रन्ध्रोंसे लोहू बहने लगता है। हवा जैसी पतली चीज़के दबावका प्रभाव जब इतना हो सकता है* तो पानीका प्रभाव जिसका दबाव हवासे डेढ़ सौ गुना अधिक है क्या होगा यह समझमें आना कठिन है। डुबकी मारनेवाले मनुष्य आजकलके अच्छे यंत्रोंके साथ भी २०० फ़ीटसे अधिक गहरे नहीं जा सकते। हिसाबसे मालूम होता है कि जो जंतु पांच मील गहरे समुद्रके नीचे रहते हैं उनके शरीर पर प्रति वर्गइंच सवा सौ मनके लगभग दबाव रहता है। इस गहराईमें लोहेके मोटे मोटे नल जिनके भीतर कांच पिलाया हुआ

* समुद्रके किनारे धरातलपर प्रतिवर्गइंच हवाका दबाव साढ़ेसात सेर होता है। पानीका दबाव प्रतिवर्गइंच २५ मनसे अधिक होता है और प्रति मील गहराई पर इसीके लगभग बढ़ता भी जाता है।

था डाले गये। निकालने पर दबावका अजब तमाशा देख पड़ा। यह नल ऐसे चिपटे हो गये थे और फटसे गये थे कि मानो बज्र जैसे हथौड़ोंसे पीटे गये हों और इनके भीतरके कांचका तो मैदा बन गया था। प्रकृतिका एक नियम है कि एक तरल पदार्थके दबावसे दूसरा तरल पदार्थ दब नहीं सकता। इसी प्रकृतिके नियमने ऐसे कड़े दबावके भीतर जल जंतुओंकी रक्षा कर रक्खी है क्योंकि जंतुओंकी स्नायुतंतुओंमें रग रगमें और नस नसमें तरल रक्तही होता है। बाहर आने पर अवश्य दबाव हटनेसे झिल्लियां फट जाती हैं और शरीर छिन्न भिन्न हो जाता है।

एक और कुतूहलकी बात है। पाँच मील गहरे समुद्रमें मनुष्य तो मनुष्य सूर्यकी किरणों-की भी गति नहीं। तो क्या अंधेरा छुप रहता है? नहीं यदि ऐसा होता तो जल जंतुओंके बड़ी बड़ी आँखें क्यों होतीं? बात यह है कि अनेक जल जंतुओंका सारा शरीर ज्योतिर्मय होता है इनके प्रकाशसे वरुण लोकमें बारहमास दीवाली बनी रहती है। इस दीवालीका अद्भुत दृश्य मानव देहकी सौभाग्यमें नहीं है। भुवर्लोककी विद्युत् ज्योतिका आनन्द हम अनुभव कर सकते हैं, परन्तु इस वरुणलोकमें हमारी गति नहीं है।

चार मील ऊपर और पाँच मील नीचे, पूरे नव मीलकी उंचाईमें यह संसार जीवोंके समुद्रसा दीखता है। अनेक कोटिके, अनेक योनिके, अनेक आकारके, अनेक प्रकारके, विविध दशाओंमें रहनेवाले असंख्य जीव हैं। इस नवमीलके ऊंचे स्तंभ भर भी हमारी कल्पना पूर्णतया नहीं पहुँचती सोच कर आश्चर्य चकित रह जाती है। पर इस संसारका यह कितना अंश है? पृथ्वी आठ हज़ार मील गहरी है और वायुमंडल दो तीन सौ मील ऊंचा है, जिसमें सृष्टिमें सर्वोत्तम होनेका घमंड रखनेवाला यह तुच्छ मनुष्य प्राणी अपने बुद्धिबलसे अपने शरीर सहित केवल दो सौ फ़ीट गहराईसे लेकर पाँच छ ही मील उंचाई तक गति रखता है। इन हदोंके बाहर इस शरीरसे उसकी गति नहीं। सदेह स्वर्गगामी त्रशंकु और वरुणलोक गामी नन्द इत्यादि महात्माओंके शरीरका संगठन जिस विशिष्ट रीतिका रहा होगा वहाँ तक पाश्चात्य विज्ञान नहीं पहुँचा है। यही बात है कि वह इस गर्वीले मनुष्यकी अत्यन्त लाचारीको स्वीकार करता है।
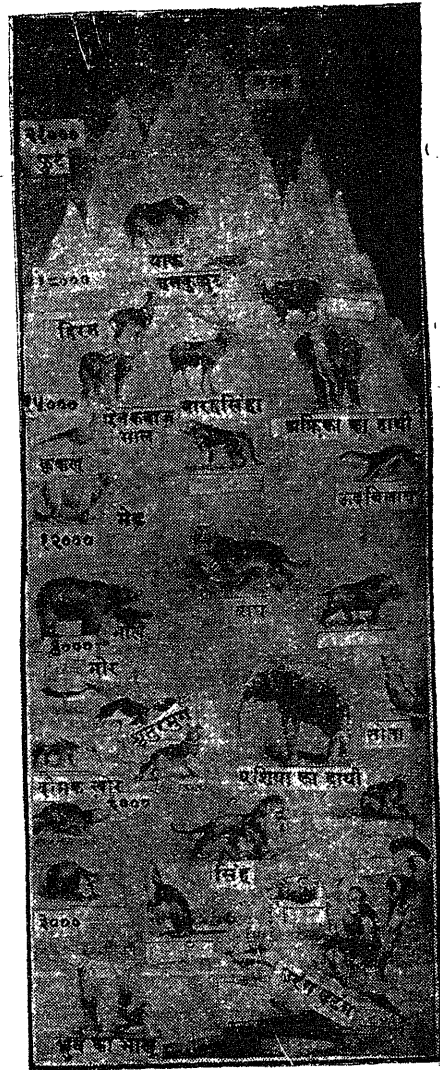
मङ्गलग्रह

एक गल्प

[ले० श्रीयत अनादिधन बंद्योपाध्याय]

और ग्रहोंकी अपेक्षा मंगलग्रह पृथ्वीके बहुत निकट है। साधारण तौर पर देखनेसे मंगलग्रहका रंग अंगारे सा लाल दीखता है। इसी कारण हमारे ऋषियोंने इस ग्रहका नाम अङ्गारक या लोहिताङ्ग रक्खा है। पराशर ऋषिका वचन है कि पूर्वकालमें प्रजापतिने सृष्टिकी इच्छासे निज तेजसे निर्गत अग्निद्वारा होम किया था। वही होमाग्नि पृथ्वी परिभ्रमण-कर पार्थिव अग्निसे मिल ऊपर चढ़ी। इसीलिए हम लोगोंके ज्योतिषादि शास्त्रोंमें इस ग्रहको 'प्रजापत्य' और 'भौम' कहा है। भूमिपुत्र, भूमिसुत, अंगारक, लोहितांग, मंगल इत्यादि नामोंसे यह ग्रह पुराणादि शास्त्रोंमें वर्णित है। ब्रह्माके आदेशानुसार भौमको भचक्रमें रमते रमते वक्राणुवक्र गति प्राप्त हुई। लिङ्गपुराणानुसार मंगल अग्निका पुत्र है जो विकेशी नाम पत्नीके गर्भसे उत्पन्न हुआ; यह पुत्र लोहितांग और युवा है। *

रोम और ग्रीक देशोंके प्राचीन साहित्यमें भी इसका उल्लेख है। उन्होंने भी इस ग्रहको जलते अंगारेकी नाईं देखा। रोमके लोग इसको युद्धके देवता कहकर मानते थे। यह तो हुई शास्त्रीय बात विज्ञानके मतानुसार मंगल ग्रहभी पृथ्वीकी भांति सूर्यसे निकला है। जिस समय मंगलग्रह सूर्यसे पृथक हुआ उस समय पृथ्वी सूर्यही में स्थित थी। कितने दिनों बाद मंगलग्रह जीवधारियोंके रहने योग्य हुआ इसका पता लगाना दुष्कर है।

इस ग्रहका व्यास ४४०० मील है। इसका व्यास पृथ्वीके व्यासका प्रायः आधा है। यह ग्रह जब पृथ्वीके बहुत समीप आ जाता है तो तीन करोड़ अड़तालीस मीलकी दूरीपर होता है। यह अपनी धुरीका (orbit) दो वर्ष और लगभग ४६$\frac{१}{२}$ दिनोंमें चक्कर लगा लेता है अर्थात् इसका एक दिन हमारे दो वर्ष और ४६$\frac{१}{२}$ दिनोंके बराबर है। चन्द्र, शुक्र और बुध ग्रहोंकी तरह इसे सूर्यसे ज्योति मिलती है। मंगलग्रहमें चन्द्रमाकी तरह कलायें नहीं होतीं। पृथ्वी परसे समय समय पर जैसा मंगलग्रह दिखलायी देता है वह चित्र नं० १ में दिखलाया गया है।
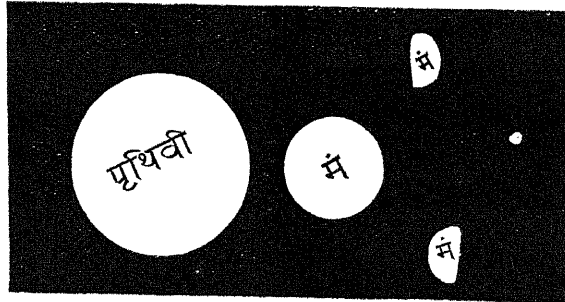
चित्र नं० १

मंगलग्रह दूरवीक्षण द्वारा:—

दूरवीक्षण द्वारा इस ग्रहको देखने पर बड़े बड़े चमत्कार प्रकट हुए हैं और प्रतिदिन नयी नयी बातें प्रकट होती जा रही हैं। दूरवीक्षणसे यह ग्रह चन्द्रके ही तरह गोलाकार दिखलायी

* बंगला भारतवर्षानुसार

पड़ता है। इसके भीतर लाल और हरे रंगकी लकीरें दिखलायी पड़ती हैं। यह लाल लाल चिन्ह वृक्षोंके झुंड या बनभूमि हैं। गणितज्ञोंका मत है कि मंगलग्रहके पेड़ और पौधे लाल हैं; क्योंकि उन्हे जांचसे यह पता लगा है कि यह वृक्षादि कभी तो दिखायी देते हैं और कभी दृष्टि-से हट जाते हैं। इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि हमारी वसन्तऋतुकी नाईं उनके यहाँ भी बसन्त होती हो और उस समय लाली (पृथ्वीकी भाषामें हरियाली) ही लाली दृष्टिगोचर होती हो और फिर कुछ समय बाद वृक्षादि फलते हों। दूसरा कारण यह जान पड़ता है कि इनके यहाँ भी खेती होती है। जब तक शस्य उगा रहता है तब तक लाली दिखलायी देती है और खेतीके कटजाने पर फिर लाली लुप्त होजाती है।

कुछ पंडितोंकी राय है कि लालरंगके जो चिन्ह हैं वे ऊँची ज़मीन हैं और हरे रंगके नीची ज़मीन। पर आजकलके विद्वान हरे रंग-को जल बतलाते हैं और यही बात ठीक जचती है। जो हो यह सब अक़ली गद्दे हैं। कोई कुछ कहता है कोई कुछ। सब गणक ख़याली पुलाव पका रहे हैं। कभी न कभी पुलावकी डेग़ची चूल्हेसे उतरेही गी। दूरबीक्षणसे मिस्टर नोबेल (Mr. Knobel F. R. G. S.) ने जैसे चिन्ह मंगलग्रहमें देखे थे उसका नक़शा चित्र नं० २ में खींचा गया है।
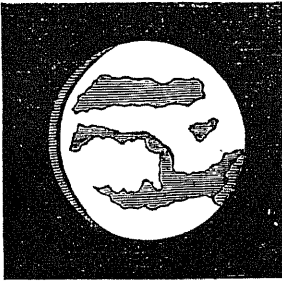
मई २३, १८७३
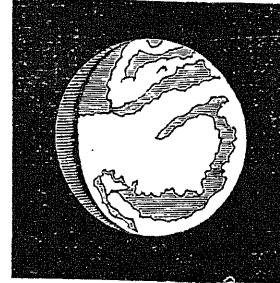
मइ २२, १८७३

मइ १६, १८७३

मई १३, १८७३

पृथ्वी और मंगलग्रह—

प्रायः सब विज्ञानके पंडितोंने मंगलकी तुलना पृथ्वीसे की है। यह बात स्वाभाविक भी है; क्योंकि अपनी पृथ्वीका उदाहरण लेकर हमलोग मंगलग्रहको सहजही में समझ सकते हैं। इससे नये नये अनुमानों के (Hypotheses) गढ़नेमें भी सहायता मिलती है। विज्ञानके बड़े बड़े नियम (law) पहिले अनुमान मात्रही थे जो आजकल सत्य और सिद्ध नियम जाने जाते हैं। मंगलग्रह और पृथ्वीमें तुलना करनेसे जो जो
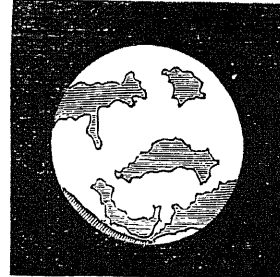
समतायें प्रकाशित हुई हैं वह नीचे नक़शेमें लिखी जाती हैं :—

पृथ्वी	मंगल
(१) सूर्य्यसे निकली है।	(१) सूर्यसे निकला है।
(२) इसे सूर्यसे रोशनी मिलती है।	(२) इसको भी सूर्यसे रोशनी नसीब होती है।
(३) इसके निकट चन्द्रमा है।	(३) इसके पास भी चान्द चमकता है। जो चान्द हमलोगोंको दिखलायी देता है वह इसका चन्द्रमा नहीं है। इसका एक और ही चान्द है। अमेरिकाके अध्यापक एसफ़हाल (Prof. Asaph Hall) ने १८७२ में यह सबसे पहले मालूम किया था कि मंगलग्रहके निकट भी एक चन्द्रमा है।
(४) यहाँ आँधी आती हैं और पानी बरसता है।	(४) वहाँ भी आँधी और पानीका सिलसिला है। पर कहते हैं कि वहां पानीकी वर्षा दिन दिन कम होती जाती है। और जलके अभावसे उत्तर और दक्षिणांशोंमें जो बर्फ़ जमा है वहाँसे पानी नहर काटकर लोग लारहे हैं।
(५) दिन रात चौबीस घंटेका होता है।	(५) यही हालत वहाँभी है, थोड़ाही अन्तर है।
(६) खेती होती है, हल चलते हैं।	(६) वहाँभी खेती होती है। कोई आश्चर्य्य नहीं कि स्टीमके हल चलते हों और घोड़े बैल काम न आते हों।
(७) पृथ्वीका उत्पन्न होना सूर्यसे कहा जाता है।	(७) इसी प्रकार मंगलग्रहकी भी सृष्टि हुई है यह वैज्ञानिकोंका मत है।
(८) यहाँके उत्तर और दक्षिण मेरु दबे हुये मालूम पड़ते हैं और बर्फ़से ढके हुये हैं।	(८) वहाँभी—ठीक ऐसाही प्रतीत होता है। बर्फ़ वहाँभी जमा है।
(९) हमारे पृथ्वीके सब ओर हवा है।	(९) इस ग्रहको भी हवा घेरे हुए है और उसमें जलका भी अंश है।

हम लोगोंके मंगलग्रहके साथ नाता जोड़ने से फल यह हुआ कि अब पृथ्वीवाले मंगल ग्रहके रहने वालोंसे भेंट करना चाहते हैं। दूरसे ग्रहके रहने वालों पर मुग्ध होकर अब पृथ्वी वाले विरहकी आगमें जल रहे हैं। कई बार उड़ने और तोपके गोलेमें जानेकी कल्पना कीगयी, पर सब स्वप्न मात्रही रहे। विख्यात कवि शेक्सपियर युवावस्थाका क्याही ठीक वर्णन करता है जब वह कहता है:—

"मर्य्यादा निज हठ करि राखै,
झट पट हो झगड़ाली।
फेन तुल्य शुहरत की इच्छा,
घुसै तोप मुंह काली॥"

लोग कहते हैं कि टेलीग्राफ़की नाईं मंगल-

ग्रहसे तार आरहे हैं पर हमलोग उन्हें पढ़ नहीं सकते। इन तारोंको अंग्रेज़ीमें मैग्निटिक शाक या चुम्बकके धक्के (Magne·tic Shock) कहते हैं। यह तो यह, पर पाठक सुनकर अचरज करेंगे कि मैं मंगलग्रहका एक चक्करभी लगा आया हूँ; जिसका हाल फिर कभी लिखूँगा। उस सैरके हालको समझानेके लिए आजकी प्रस्तावनाको ध्यानमें रखना अत्यन्त आवश्यक है।

वैज्ञानिकीय

प्राचीन सभ्यताके जीवित प्रमाण जो हाल में मध्य एशियमें मिले हैं, और भी अधिक आश्चर्यजनक हैं। नवीन खोजोंके प्रधान कर्त्ता 'सर अर्ल स्टीन' महाशय हैं। यह अपने कार्य-कर्त्ताके साथ अनेकों कठिनाइयोंका सामना करतेहुए इस ऐतिहासिक खोजमें लगे हुए हैं। यह महाशय आज कल उन नगरोंकी खोज करने और देखनेमें दत्त चित्त हो रहे हैं जोकि रानी बोडिशियाके समय बहुत फले फूले और समृद्धशाली थे।

यह उस मार्गमें आते हैं जो चीनसे एशिया के बड़े बड़े व्यापार केन्द्रोंमें होता हुआ योरोप को जाता है। समयका फेर भी बड़ा बिचित्र है वही नगर जहाँ कभी बड़ी भारी भारी आबादियाँ थीं, बड़े ज़ोरके साथ स्थानान्तर से व्यापार होता था आज श्मशानके समान पड़े हैं केवल उनके ध्वंसावशेष देखनेमें आते हैं। स्टीन उसी मार्गपर होकर जा रहे हैं जिस से ६०० वर्ष पहले मार्कोपोलो योरोपसे चीनको गया था उन्हीं स्थलों पर जहाँ मार्को पोलोने बड़ी बड़ी नदियाँ, झीलें व नगर देखे थे आज सूखी तली और खण्डहर पड़े नज़र आते हैं।

स्टीनने टींटसिन पहाड़ोंकी दक्षिण श्रृङ्खला-के नीचे १६० मील तक लगातार उजड़े हुए नगरोंके खण्डर देखे। खोतान नदीके तटसे पूर्व-दक्षिणकी ओर जाने वाले अन्वेषकोंको इन नगरोंके नष्ट होनेके कारणोंका पूरा पूरा प्रमाण मिल गया। यहाँ पर २०० से ३०० फुट तक ऊंचे रेतोंके टीलों पर चढ़कर जाना पड़ता था, इन टीलोंकी ढालें ऐसी तीव्र थीं कि ऊँट बहुधा गिरकर मर जाते थे। मार्कोपोलोके ही समयमें इन टीलोंके कारण जीवों व खेतों दोनोंका नाश होना आरम्भ हो गया था। यहाँकी अनेक घाटियोंमें जहाँ पवनका भी संचार कठिनाईसे होता है अब भी प्राचीन कालके पत्थरके औज़ार पाये जाते हैं।

* * * *

गढ़की कई भीतें अब भी ज्योंकी त्यों खड़ी हैं। इन भीतोंकी बनावट चीनकी प्रसिद्ध भीतके पश्चिमी भागसे मिलती है। स्टीनको पश्चिमसे पूर्वकी ओर यात्रा करते हुए मार्गमें और अनेक युद्ध, व्यापार सम्बन्धी चिन्ह मिले, जिनसे अनेकों घटनाओंके अनुमान हो सकते हैं। मार्गमें कुछ प्राचीन चीनी सिक्के भी मिले जिनकी बाबत अनुमान होता था कि सैनिकों-के पास से ही यह गिरे होंगे, चाहे यात्रा करते समय गिरे हों या और किसी घटनाके कारण।

* * * *

लकड़ीके घुन भी बड़ी हानि करते हैं, लेकिन घुनोंके सिवा एक प्रकारके और कीट होते हैं जो मरुड़ कर गोल हो जाते हैं। इन्हें प्रयागके ज़िलेमें जुरही, निगही नामोंसे प्रकार भेदके अनुसार पुकारते हैं। दिल्ली आगरेकी तरफ इन्हें गेंडारे कहते हैं। इन कीटों-ने बागों और टट्टियोंको ही नहीं और भी अनेकों प्रकारके पौधोंका नाश कर डाला है। अंग्रेज़ वनस्पति शास्त्रवित बतलाते हैं कि उनके देशमें सब ३५ प्रकारकी गेंडारें होती हैं जिनमें से ६ या १० ऐसी हैं जो बहुत घोर

शत्रुताका काम करती हैं। इनमें भी कोई कोई तो इतनी पायी जाती हैं कि एक फावड़े कूड़ेमें एक पाव वाला टीन भर जाता है। यह घरोंमें काठों व तखतोंके पीछे, पत्थरों, पौधों व पेड़ों की छालों के तले छुप रहती हैं और इतनी हानि करती हैं कि कभी कभी कियारियोंकी सारी मिट्टी फेक कर दूसरी डालनी पड़ती है, और टट्टियोंको उखाड़ कर फिरसे लगाना पड़ता है।

यह गेंडारें अनेक प्रकारके फल फूलों और पौधोंको नाश कर डालती हैं। इस सूचीमें उन कुछ चीजोंके नाम हैं जिन्हें यह कीट बरबाद करते हैं:–

फ़र्न, पाचिर्ड, स्ट्राबरी, छिलके, फूल, आलू, मशरूम, मटर, गुलाब की झाड़ी, गाजर, मूली, बीज, ककड़ी व खीरे।

इनका इलाज यही है कि झोपड़ों और सायबानोंको साफ़ रक्खें व कूड़े के ढेरों को जलादें। इससे यह कीट बहुत कम हो जाते हैं, फिर मिट्टी के तेल से भी इनको मार डालते हैं। इसका यत्न यह है कि आलूके टुकड़ों पर एक प्रकार का विष जिसे पैरिसग्रीन कहते हैं लगा देते हैं, इनसे यह आप ही आकर मर जाते हैं। इस लिए पैरिसग्रीन नाम के विष का पगडंडियों व मार्गोंके किनारे छिड़कना या हरी भरी कुंजों में तख्तेके नीचे लगा देना अच्छा होता है क्योंकि यहाँ यह कीट प्रायः छुपा करते हैं।

* * * *

बीजोंके फूटनेके बाद जो छोटे छोटे पौधे पहले पहल निकलते हैं उनकी अनेक प्रकारकी विचित्र चालें होती हैं। हाल में कुछ फ़ोटो लिये गये हैं। इनमें पौधोंकी लगातार गतिके जो चिन्ह कारख लगी हुई काँचकी पट्टी पर पड़े हैं, एक विचित्र बिधि प्रकट करते हैं। मिस्टर एस. आई. वेस्टिन ने गीली किरमिच पर बीजोंको उगा और किरमिचको एक धुएँसे कालीकी हुई काँचकी पट्टीपर फैला कर परीक्षा की। इसके पीछे उस धुआंये हुए काँचको फ़ोटो छापनेके चौखटेमें एक ऐसे काग़ज़के ऊपर रखते हैं जिस में फ़ोटो लेने वाले मसालेका लेप होता है। जब नन्हा सा कल्ला दीखता है एक पतली छोटी सी जड़ बनती है और इसी जड़की टेढ़ी बाँकी चालके कारण धुआंए हुए कांचपर खसोटे पड़ जाते हैं फल यह होता है कि इन खसोटो में होकर प्रकाश जाता है और फ़ोटोग्राफ़के मसालेदार काग़ज़ पर चित्र अंकित हो जाता है।

इन खोजोंके सम्बन्धमें और भी अनेक मनोरंजक बातें मालूम हुई हैं। 'निया' नाम एक स्थानके पास मिस्टर स्टीनको रेतके तले दबी हुई एक बस्ती मिली, इस बस्तीके गिरे पड़े खण्डहरोंके पास कुछ ऐसे काग़ज़ पत्र मिले जो २००० वर्ष के पुराने हिन्दी अक्षरों में थे। इन मकानोंके स्वामियोंके हाथके लकड़ीके काम और उनकी गृहस्थीकी चीज़ें भी मिली थीं। सबसे अधिक अद्भुत बात एक यह देखनेमें आयी कि रेतके भीतर दबी हुई एक वाटिका ऐसी मिली जिसमें सूखे हुए वृक्ष और मरी हुई बेल खिड़कियों और झरोखोंमें ज्यों की त्यों लिपटी पड़ी थीं।

और दूर जंगल में बढ़कर स्टीन साहब को एक पुराना गढ़ मिला। इसके चारों ओर बड़े बड़े मकान थे, जिनमें जहाँ तहाँ मसीहके जन्म से २०० वर्ष पहलेकी चीनी कारीगरीके दृश्य देखनेमें आये। इन घरोंकी बनावटका सौन्दर्य अब प्रगट हुआ और रेशम की उस कारीगरीका पता चला जो कभी उत्तमता की चोटीपर पहुँच चुकी थी। यह रेशम पश्चिमकी ओर कहीं ले जाते और वहाँसे इसके विनमय में और पदार्थ लाते होंगे। इस अनुमान का पता इतिहास के खोजने वालोंको लग सकना कठिन नहीं है।

स्टीनने इन रेशमके कामों और मकानोंकी

कारीगरीकी बड़ी प्रशंसा की है। यह दृश्य बड़े ही सुन्दर व मनोरम हैं। रेशमकी कारीगरी तो पूर्णतया सम्मुनत हो चुकी थी।

* * * *

मिस्टर वेस्टिन का अनुभव है कि जड़ धरती में लगातार इधर उधर इस लिए फिरती है कि उसे धरतीके भीतर धँसकर पक्की पड़नेकेलिए सबसे सरल मार्ग मिल जाय। आप यह भी कहते हैं कि बहुत बार प्रबल रूप-स्वतः प्रमाणित होता है कि पौधों के भूगर्भस्थ अंगोंमें ऐसे विशेष इन्द्रिय ज्ञान होते हैं जिन का हमें अभी तक पता भी नहीं है।

खादमें कालखसे लाभ

धुएँ का चमत्कार

कभी कभी क्यारियोंके किनारों पर कालख लगा देनेसे कई प्रकारके कीड़ोंसे बचाव हो जाता है। वे उसपर रेंग कर क्यारियोंके भीतर नहीं आसक्ते हैं। परन्तु कालखसे केवल इतनाही लाभ नहीं है। विलायतके कृषि विभागने (Board of agriculture) प्रकाशित किया है कि कालख उत्तम खाद है। वह धूपकी गरमीको साधारण मिट्टीकी अपेक्षा अधिक सोखता है जिससे वनस्पतिको विशेष लाभ पहुँचता है।

खेतों और बाग़ोंके लिये कालख जादूका असर रखता है। विशेषकर खाना पकाते समय चूल्होंमेंसे जो धुआँ निकलता है इसके कालखमें कर्बनका (Carbon) वह भाग जिसको जल जाना चाहिये अधिक होता है। कोयलेके अतिरिक्त इसमें नत्रजन (Nitrogen) का भी कुछ भाग रहता है जो पौधोंका प्राण है। साथही यह भी एक सिद्धान्त है कि काली चीज़ें गरमीको सोख लेती हैं और सफ़ेद या भूरे रंगकी चीज़ें गरमीके किरणोंको बाहर बिखेर देती हैं। यही बात है कि हम लोग गरमियोंमें उजले कपड़ोंका अधिक व्यवहार करते हैं।

खेत या बाग़की ज़मीन कालखसे काली हो कर सूर्यकी गरमीको अच्छी तरह सोख लेती है इससे धरतीका उपजाऊपन बढ़ जाता है।

[कृ० प्र० गौड़

मोर और तितलियोंके सुन्दर पर

इनमें रंग नहीं होता

हम लोग मोरके पंख देख कर चकित होते हैं और तितलियोंके रंगकी बड़ी प्रशंसा किया करते हैं परन्तु [Little paper march 1915] प्रोफ़ेसर सी. वी. बोयज़ ने रायल इन्सटिट्यूशन में [Royal Institution] व्याख्यान देते हुए कहा है कि मोरों या चिड़ियोंके परोंमें जो रंग हम लोगोंको दिखाई देते हैं वास्तवमें परोंमें मौजूद नहीं हैं। रंगीन फूल, पंख आदि में साधारणतः रंग होता ही है जिससे वह रंगीन दीखते हैं और उन वस्तुओंसे रंग निकाले जा सकते हैं। परन्तु मोरके परमें जहां गहरे नीले और हरे रंग दिखाई पड़ते हैं वहां इन रंगोंका वास्तवमें नाम निशान भी नहीं है। फिर यह रंग दिखाई क्यों देते हैं? इसका उत्तर अद्भुत है। मोर और तितलीके परोंको ध्यानसे देखिये। इसमें बहुतसे नन्हें नन्हें रोएं सरीखे अत्यन्त पास पास सटे हुए पत्त हैं। इन पत्तोंको प्रकृतिने ऐसे कोने तिरछे खड़े करके सजाया है कि इनमें सूर्य्यकी सातों किरणोंमें कुछ किरणें तो विलीन हो जाती हैं और दो एक विशेष रंगकी किरणें बिखरती हैं। जो रंग विरंगकी चित्रकारी दीखती है वह बिखरी हुई किरणोंकी सजावटमें है। पत्तोंकी सजावट बदल दी जाय तो रंग भी बदल जायगा।

[कृ० प्र० गौड़

बिना अन्नके पच्चीस दिन तक जीता रहा

कई महीने हुए इटलीमें जो भूकम्प आया था उसके विषयमें बहुतसी कहानियाँ सुनी जाती हैं। इस विषय में अभी एक नई बात मालूम हुई है। माइकल कैओलो Michael caiolo [Little paper march 1915] नाम का एक मनुष्य पच्चीस दिनों तक अन्धकारमें भूखा रहनेके बाद जीता लौट आया है। उसका कहना है कि ज्योंहीं उसे कुछ धक्कासा लगा, वह समझ गया कि भूकम्प आरहा है। भागकर वह एक अस्तबलमें छिप रहा परन्तु भूकम्पके वेगसे घर गिर गया और उसीके साथ अस्तबलभी ढल पड़ा। बेचारा कैओलो उसीके नीचे दब गया। उससे बाहर निकलनेको कहीं राह न मिली बिवश हो वहीं पच्चीस दिनों तक अंधेरेमें भूखा पड़ा रहा। परन्तु भाग्यवश एक नलके टूट जानेस उसके पास बह बह कर पानी आता रहा। वही पानी पीता था और सोता रहता था। हिलने डोलनेकी उसे कोई जगह न थी।

इतने काल तक वह कैसे जीता रहा ? यदि हम अपना शरीर बिल्कुल स्थिर रक्खें तनिक भी न हिलें डोलें तथा ऐसी जगह पड़े रहें जहां गरमी सरदी न घटे न बढ़े और पानी पीनेको मिलता जाय तो भोजनके न मिलने पर भी हम बहुत दिनों तक जीते रह सकते हैं। ऐसी दशामें शरीर अपनेही आधार पर जीता है। मनुष्य तथा और देहधारियोंमें चर्बीका भाग अधिक होता है जो भूखे रहनेकी हालतमें ख़र्च होता है। इससे मांस, रुधिर, मज्जा और मस्तिष्कका पोषण होता रहता है। परन्तु शरीर दुर्बल होता जाता है चर्बी कम होती जाती है चमड़ा सूख कर कड़ा हो जाता है और दिल और दिमाग़ हल्के होते जाते हैं। पहले तो दो तीन दिन तक भूख सताती है। फिर धीरे धीरे सुस्ती आती जाती है। यदि मनुष्य इसी तरह छोड़ दिया जाय तो बिना कष्टके कुछ दिनोंमें मरजाय। अनुकूल दशामें अन्न बिना मनुष्य साधारणतः चालीस दिनों तक जीता रह सकता है यह तो पाश्चात्य विद्वानोंका मत है। भारतीय तपोधन ऋषि मुनि इससे कहीं अधिक काल तक अन्न बिना जीवन रक्षा करते हुये सुने गये हैं।

[कृ० प्र० गौड़

हवाई लहर का बल

यह तो लोग जानतेही हैं कि जिस तरह समुद्रमें लहर उठा करती है उसी तरह हवामें भी लहरें होती हैं। हवाकी लहरोंका बल समुद्रकी लहरोंसे कम नहीं होता। फ्रांससे समाचार [Little paper March 1915] आया है कि लड़ाईके मैदानके पासही एक छतके नीचे कबूतर ख़ानेमें पांच अंगरेज़ी अफ़सर आराम कर रहे थे। एकाएक एक गोला आकर वहाँ गिरा और फट गया। धक्केकी वजहसे उसकी खिड़की टूट गई। गोलेने घरको छुआ तक नहीं। गोला फूटनेके कारण एक लहर पैदा हो गई। वह लहर बड़ी वेगसे उठी और खिड़कीमें घुसी। उसका वेग इतना था कि तीन कबूतर उसी स्थान पर जहां वे पड़े रहे, मर गये। यही हालत मनुष्यके सांसकी है। जिस तरहसे हम लोग साधारणतः सांस लेते हैं वही प्राकृतिक अवस्था है। यदि हम लोग किसी बाहरी बस्तुके, जो प्राकृतिक नहीं है, प्रयोगसे अपनी सांस तेज़ करें तो हम लोग मृत्यु को बुलाते हैं। साधारण हवा को जिसपर विमान थमें रहते हैं यदि किसी प्रकारसे हम तेज़ करदें तो वही हवा बड़े बड़े चट्टानोंको तोड़ देती है।

[कृ० प्र० गौड़

घास कब काटनी चाहिये

घास बहुत दिनों तक नहीं लगी रहनी चाहिये। ऐसा होनेसे या तो घास नाश हो

जाती है या इसमें बहुत हानि पहुँचती है। इसमें लकड़ीके रेशोंकी अपेक्षा भूसा (hay) कम होता है। घासमें रेशे उसके पकनेके साथ ही साथ बढ़ते जाते हैं। घासोंको तभी काटना चाहिये जब वे फूल उठें, क्योंकि जितने प्रवीण लोग हैं उन सब की यही सम्मति है कि घासमें शरीर पोषक (Nruitive) पदार्थ अधिकतर ऐसे ही समयमें पाए जाते हैं।

कुछ लोग ऐसे हैं जो तीमोथी, एक घास जो गायों और भैंसोंके लिये लाभ दायक है, (Timothy) को तभी काटना अच्छा समझते हैं जब वह काटने के पहले पक जाय। यह कहना आवश्यक नहीं कि पके हुए जई (oat) के तिनकेका शरीर पोषणसे कोई सम्बन्ध नहीं है पर जईको तो अवश्य पक जाने देना चाहिये। भूसा(hay)बनाने का काम अधिकतर घासके काटे जानेके ऊपर ही निर्भर है। खेतिहर इस बातको पहलेकी अपेक्षा अब अच्छी तरह समझने लगे हैं और अब घास जब फूल आती है तभी काटी जाती जाती है क्योंकि उस समय घासमें पोषक (Nutritive) पदार्थ बहुत बढ़ जाता है।

राधानाथ टण्डन

समालोचना

शुद्ध साबुन—बाबू मुख़्त्यार सिंह वकील लिखित तथा मैनेजर जनरल पबलशिंग कम्पनी मेरठ द्वारा प्रकाशित। आकार ७"×५", पृष्ठ संख्या २२०, पुट्ठे की जिल्द। सचित्र। मूल्य ४), असमर्थ और विद्यार्थियोंसे २) प्रकाशक से प्राप्य।

यह अनुपम ग्रन्थ विज्ञानपरिषदके एक सभ्यने लिखा है। उद्योग विषयक ग्रन्थोंका हिन्दीमें नितान्त अभाव है। जो अब तक निकले हैं ऐसे नहीं जिनसे उद्योगशीलोंको वास्तविक लाभ हो सके। हर्षकी बात है कि यह उन ग्रन्थोंमें नहीं है। इसमें बड़ी योग्यता पूर्वक साबुनके विषयमें संक्षेप रीतिसे समस्त क्रियाओंका वर्णन है। इसे पढ़कर साधारण साबुनका बनानेवाला अपनी रीतियोंका संशोधन कर लाभ उठा सकता है, तथा जो नहीं जानता वह इसके अनुसार प्रयोग करके सीख सकता है। लेखकने ठीक ठीक और शुद्ध शुद्ध वैज्ञानिक बातें लिखनेका प्रयत्न किया है और इसमें सफलताभी पायी है। शृंगार, पारदर्शक धोबी, मुलायम, कड़ा, सभी तरहके साबुनोंके बनानेकी क्रिया दी है। पंचम परिच्छेदमें गुरुत्वमापक और तापमापक यंत्रोंका वर्णन किया है। हमारी रायमें इस परिच्छेदके पहले जहां जहां इन यंत्रोंकी चर्चा आयी है वहाँ इस परिच्छेदका हवाला दे देना आवश्यक था। परिशिष्टमें जो तालिकाएं दी हैं, बड़ीही उपयोगी हैं। परन्तु अगर कमी है तो वह पुस्तकके अन्तमें (Index) अकारादि क्रम सूचीकी और प्रतिपृष्ठमें (Headlines) पृष्ठ विषय-सूचीकी। खेदकी बात है कि हिन्दीके ग्रन्थकार इन दोनोंकी उपयोगिता समझते ही नहीं। हमने बड़े प्रसिद्ध ग्रन्थकारों और सम्पादकोंमें यह त्रुटि पायी है। तबभी इस ग्रंथकी उपयोगिता ऐसी श्रेणीकी है कि सूची आदिके अभावसे उसमें विचारणीय क्षति नहीं आती। साधारण सूचीसे जो आदिमें दी हुई है काम चल सकता है। साथही वैज्ञानिक लेखकोंसे हमारा प्रश्न है कि जब संसारमें सब जगह मेट्रिक (Metric) प्रथाका प्रचार हो रहा है-यहां तक कि British Pharmacopea के नवीन संस्करणमें भी मेट्रिक प्रथाही अंगीकृत हो गयी है-तो हिन्दीके ग्रंथोंमें भी इसी प्रथाको क्यों नहीं स्थान देते और क्यों व्यर्थ अंग्रेज़ीकी पुरानी पुस्तकोंका अनुकरण कर औंस, पौंड, फ़ारनहैट आदि का प्रयोग करते हैं?

रा. गौड़।

विज्ञानपर सहयोगियोंकी सम्मति

ब्राह्मण सर्वस्व अप्रल १९१५—

"यह पत्र विज्ञान परिषद् प्रयाग का मुखपत्र है इसके निकलनेसे हिन्दी जगतकी एक अत्यावश्यकीय क्षति पूर्ण हुई है। जिस विज्ञानके बलसे अमेरिका और यूरोपके विज्ञानवेत्ता नाना प्रकारके आविष्कार करके संसारको सुख पहुँचा रहे हैं उसी विज्ञानकी गूढ़ बातोंकासरल हिन्दीमें प्रकाशित करने वाला यह पत्र है। पत्रके सम्पादक लाला सीताराम बी० ए० तथा पं० श्रीधर पाठक महोदय हैं। पहिली संख्यामें अनेक वैज्ञानकीय अध्यापकोंके (प्रोफ़ेसरों) विज्ञानसे सम्बन्ध रखने वाले विविधि विषयोंपर लेख हैं। विज्ञानके संयोजक बा० रामदास जो गौड़ एम० ए० का विज्ञान शिक्षाकी आवश्यकता विषय पर बड़ा प्रभावशालीलेख है पत्र सचित्र है।

विज्ञान से सम्बन्ध रखने वाले चित्रभी दिये गये हैं। + + + कागज़ चिकना और छपाई साफ़ है। हिन्दीमें इस पत्रके निकलनेसे एक बड़े अभावकी पूर्ति हुई।

प्रकाश लाहौर ९ मई १९१५

"विज्ञान इस नामका आर्य्यभाषाका एक माहवारी रिसाला इलाहाबादसे निकलना शुरुअ हुआ है। जिस तरह लाहौरकी साइंस प्रमोटिङ्ग सोसाइटीने अपने मिशनके प्रचारके लिये रिसाला रोशनी निकाल रक्खा है उसी तरह प्रयागकी विज्ञान परिषद्ने साइंस विद्याके प्रचारके लिये यह रिसाला जारी किया है। इसके पहले नम्बरमें कालिजोंके प्रोफ़ेसरों और दीगर लायक़ आदमियोंके फ़ाज़िलाना मज़ामीन और साइंटिफ़िक ख़बरें दर्ज हैं। ऐसे रिसालोंकी देशको किस क़दर ज़रूरत है आज इसके बतलाने की ज़रूरत नहीं"।

स्वदेश बांधव मई १९१५

"यह वर्ष हिन्दी भाषाके लिये बड़ा शुभ मालूम होता है। एकके पश्चात एक मासिक पत्र निकलता ही जाता है। हालमें प्रयागसे विज्ञान विषयका 'विज्ञान' पत्र बड़ी उत्तमतासे सम्पादित होकर निकला है। इस पत्रसे हिन्दी साहित्य भंडारके एक बड़े अभावकी पूर्त्ति होनेकी पूर्ण आशा है।"

कार्य्य विवरण

विज्ञान परिषत्की छठी साधारण सभा संध्याके ६¼ बजे म्योरकालेजमें हुई। लाला सीताराम बी. ए. एफ. ए. यू ने सभापतिका आसन ग्रहण किया।

बाबू शालिग्राम भार्गव एम. एस-सी सेक्रेटरीने ५वीं सभाकी कार्य्यवाही सुनाई और वह सर्व सम्मतिसे पास की गई।

बाबू शालिग्राम जी ने सूचना दी कि निम्नलिखित सज्जन परिषत्के उपसभ्य होना चाहते हैं। उन्होंने प्रस्ताव किया कि ये महाशय परिषत्के उपसभ्य चुने जाँय। प्रोफ़ेसर ब्रजराज ने इसका अनुमोदन किया। सर्व सम्मतिसे निश्चय हुआ कि—

१. बाबू रामजीवन लाल भार्गव अलवर
२. बाबू विश्वम्भरदयाल साइंस मास्टर अलवर
३. मिस्टर के. के. नानावती हेडमास्टर हाईस्कूल अलवर
४. बाबू भगवत्स्वरूप बी. ए. एल. एल. बी. मीर मुंशी अलवर
५. पं० भैरोंलाल टीचर नार्मलस्कूल अलवर
६. बाबू गङ्गादीन विद्यार्थी ९वीं क्लास हाईस्कूल अलवर
७. बाबू बंसीधरलाल अछरोल एडवर्ड मिशन हाईस्कूल जौनपुर
८. इन्द्रपालसिंह सेकेंडइयर कायस्थपाठशाला इलाहाबाद
९. बाबू पद्मदत्त रतौड़ी सेकेंडइयर कायस्थ पाठशाला इलाहाबाद
१०. बाबू लक्ष्मणप्रसाद जी ग्वालियर

११. बाबू जी. एन. सेन सिंहा टीचर कायस्थ-पाठशाला इलाहाबाद
१२. बाबू माधवप्रसाद गनेशगंज मिर्ज़ापुर

परिषत् के परिसभ्य नियत किये जायँ।

बाबू शालिग्राम भार्गवने सूचना दी कि डाकूर अन्नदाप्रसाद सर्कार और अध्यापक सतीशचन्द्र देव एम. ए. परिषत्के सभ्य नहीं रहना चाहते हैं। उनकी इच्छा है कि वे परिसभ्य बना दिये जायँ।

पंडित श्रीकृष्णजोशी ने प्रस्ताव किया और बाबू पुरषोत्तमदास टंडन एम. ए. एल. एल. बी. ने अनुमोदन किया कि इन महाशयोंसे प्रार्थनाकी जाय कि वे अपनी इच्छा पर फिरसे विचार करें। सर्व्वसम्मतिसे यह प्रस्ताव पास हुआ कि

"यह सभा डाकूर सर्कार और अध्यापक सतीशचंद्र देव की उस सेवा और सहायताके लिये जो उन्होंने परिषत्को प्रदानकी है, उन्हें अनेक धन्यवाद देती है और उनसे प्रार्थना करती है कि वे अपनी इच्छा पर फिरसे विचार करें"। इसके बाद बाबू पूरन चंद नाहर वकील कलकत्ता का त्याग पत्र बाबू शालिग्राम भार्गव ने उपस्थित किया। सर्व्व सम्मति से पास हुआ कि आपका त्याग पत्र स्वीकृत किया जाय और आप परिषत्के परिसभ्य बना दिये जांय।

उसके बाद फ़िज़िकल साइंस थियेटरमें लाला सीतारामके सभापतित्वमें बाबू शालिग्राम जी ने "दूर दूर देशोंसे सम्बन्धकी आसानियां" पर एक बड़ा मनोहर और शिक्षाप्रद व्याख्यान दिया। मैजिक लैंटर्नसे अध्यापक भार्गव जी ने बड़े बड़े सुन्दर चित्र दिख लाये। अन्तमें सभापति जी का व्याख्यान हुआ और प्रोफ़ेसर व्रजराजके सभापतिको धन्यवाद देनेके बाद सभा विसर्जित हुई।

सूचना

बहुतसे महाशयोंने पत्र भेजा है कि वे विज्ञानके ग्राहक तो ३) देकर अप्रैल से बनना चाहते हैं पर परिषत्के परिसभ्य नवम्बरके नवीन वर्षारम्भ से। उन सब महाशयोंको सूचना दी जाती है कि परिषत्के काउन्सिलने यह निश्चित किया है कि ऐसी इच्छा रखनेवाले महाशयोंको चाहिये कि वे अप्रेलसे नवम्बर तक के विज्ञानके अङ्क तो अलग दाम देकर ख़रीदलें और नवम्बरसे परिषत्के सभ्य या परिसभ्य बनजावें। ऐसा करनेसे उन्हें दूसरे साल नवम्बर तक विज्ञानके ग्राहक बननेका अधिकार रहेगा।

विज्ञान परिषत्के सभ्योंमें दो जगहें ख़ाली हैं। परिषत्के निर्वाचित सभ्य जिन महाशयोंका प्रस्ताव इन जगहोंके लिये करना चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे अपने अपने प्रस्ताव इस मासके अंत तक भेजदेवें।

सेक्रेटरी विज्ञान परिषत्

शनिवार २८ अगस्तको अध्यापक रामशरण निगम एम. एस—सी का मनोहर व्याख्यान "प्राचीनकालके दानवों" (Monsters of the past) पर संध्या के ६$\frac{1}{4}$ बजे म्योरकालेज फ़िज़िकेल थियेटरमें होगा। आशा है कि सब सज्जन आनेकी कृपा करेंगे।

सेक्रेटरी

प्राप्ति स्वीकार

अप्रैल से जूलाई मासके अन्त तक चंदा देनेवाले निम्न लिखित सज्जनोंके द्रव्य प्राप्तिको हम सहर्ष स्वीकार करते हैं।

१. पण्डित श्यामलाल भार्गव अजमेर ३)
२. बाबू रुद्रनारायण एजुकेशनल गज़ट क्लर्क प्रयाग ३)

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग १ } कन्या, संवत् १९७२। सितंबर सन् १९१५। { संख्या ६

मङ्गलाचरण

जिसने सबसे प्रथम सृष्टिके क्रमको जांचा
जांच-जंत्रका रचा प्रथमही अद्भुत ढांचा
जिसके सन्मुख सांच लाज तज निर्भय नांचा
ऊंचे स्वर सद्-ग्रन्थ गूढ़ गाथाका बांचा
जिसने स्व-सांचकी आंचसे जगती-तल दीपित किया
उस भारतीय विज्ञानका ध्यान करै हर्षित हिया—

श्रीप्रयाग,
जन्माष्टमी, १९७२ } —श्रीधर पाठक

अपनी चर्चा

विज्ञानके जीवनके ६ मास व्यतीत हो गये। इतने कालमें वह हिन्दीभाषा भाषियोंकी कुछ सेवा कर सका कि नहीं इसका विचार हिन्दीप्रेमी विज्ञानरसिक पाठकही कर सकते हैं। हमें केवल इतनाही कहना है कि जिस उद्देश्यके साथ विज्ञान कर्म्मक्षेत्रमें अवतीर्ण हुआ था उसके सहस्रांशकीभी लाभ-सिद्धि उसे अभी तक नहीं हो सकी है। हम वैज्ञानिक लेखोंको जितना सुपाठ्य, मनोरंजक और सरल बनाना चाहते थे नहीं बना सके। जिन सुन्दर और मनोहारी चित्रोंसे हम पाठकोंका मनोरंजन करना चाहते थे उन्हें हम अभी तक नहीं दे सके हैं। हमारी इच्छाएं अभी फलवती नहीं हुई हैं, हमारी चिन्ताएं अभी कम नहीं हुई हैं, हमारा भय अभी घटा नहीं है।

पश्चिममें वैज्ञानिक पत्र किस सजधजके साथ निकलते हैं, उनका सम्पादन कितनी योग्यतासे होता है, उनका आदर जनसाधारणमें कितना होता है यह सब देख कर हम आश्चर्य्य निमग्न हो जाते हैं। सम्पूर्ण भारतवर्षकी राष्ट्रभाषा बनने वाली हिन्दीमें केवल एकही वैज्ञानिक पत्रके होते हुए भी उसका कितना कम प्रचार है। हम जानते हैं कि विज्ञानमें अनेक त्रुटियां हैं, उसके बहुतसे लेखक अनुभवी

General साधारण]

विज्ञान नहीं हैं, उसमें सरसताकी मात्रा बहुत कम है तथापि इन सब दोषोंका भार केवल सम्पादकोंके सिर नहीं है। हम लोगोंका जितना उत्साह वर्द्धन होना चाहिए था नहीं हुआ। परिषत्के बहुतसे भक्त तथा हमारे बहुतसे सहयोगी यदि अपनी असीम कृपादृष्टिसे इस अकिञ्चन विज्ञानको न अपनाते तो यह जन्म-तेही अकाल मृत्युका ग्रास बन जाता। हिन्दीके लिए क्या यह कुछ कम लज्जाकी बात है ! मातृभाषाकी भक्तिसे प्रेरित जिन महानुभावोंने विज्ञानको अपनाया है, हम उनकी सहृदय कृतज्ञता स्वीकार करते हैं। परन्तु हमें उनसे यही निवेदन करना है कि विज्ञानको आपही ऐसे हिन्दी प्रेमियोंका सहारा है, यदि विज्ञानके ग्राहक कमसे कम तिगुने न हुए तो अपने जीवन की सङ्कटा दशासे बचकर निकलना उसकेलिए अत्यन्त कठिन पड़ जायगा। हम अपने काममें तत्पर हैं, परन्तु यह काम केवल हमाराही नहीं वरंच हिन्दीप्रेमी मात्रका है। यदि वे भी अपने कार्य्यमें हमारे समानही तत्पर रहे तो भी विज्ञानकी उत्तरोत्तर उन्नतिका मार्ग निर्विघ्न रहेगा। हम सदोष हैं किन्तु अपनी मातृभाषाको भक्ति पुष्पांजलि देना हमारा कर्तव्य है, अवगुणी बालकभी अपनी मां का प्रेम करताही है। हम अपने प्रेमोपहारसे मांको रिझानेका प्रयत्न करेंगे, आशा है यथाशक्ति मातृमन्दिरके विज्ञ और अनुभवी पुजारी हमें इस विशाल मन्दिरमें अपने पादपद्मोंके तले बैठने देनेमें सङ्कोच न करेंगे। उनके आशीर्वादही में हमारा मङ्गल है, उनकी कृपादृष्टिहीमें हमारी भलाई है।

* * *

हमें आशा थी कि जिनमहात्मा के प्रयत्न से 'विज्ञान'ने हिन्दी संसारमें जन्म लिया था, जिनके कठिन परिश्रमसे विज्ञान परिषत्की संस्थापना हुई थी और जिन्होंने परिषत्के मन्त्री रूपमें न मालूम उसकी कितनी सेवाकी थी, उन्हीं महानुभाव बाबू रामदास गौड़, एम. ए. की असीम विद्वत्ता और पूर्णानुभवसे हम लोग 'विज्ञान' की इस बाल्यदशामें बहुत कुछ लाभ उठाते रहेंगे। परन्तु यह आशा दुराशा मात्र ही निकली। कुछ काल तक हम लोग गौड़ बाबूके पाण्डित्यसे लाभ नहीं उठा सकते। साधारण परिस्थितमें रह कर भी, उन्होंने जिस पांडित्य लाभ और देशहितैषी कार्य्योंमें तत्पर-ताके कारण अपने शरीरको भुला सा दिया था, उसीने गौड़ बाबूके स्वास्थ्यको सत्यानाश कर डाला है। मस्तिष्कसे शक्त्यातीत काम लेनेसे आपको विकट शिरोरोगने घेर लिया है। आप कोई ४ महीनेसे बराबर छुट्टी पर हैं, परन्तु अभी तक आपकी पीड़ा कुछभी कम नहीं हुई है। अब आप ६ महीनेकी छुट्टी लेकर प्रयाग छोड़ बनारसको जाने वाले हैं। ऐसी अवस्थामें आप परिषत्का काम करनेसे सर्वथा असमर्थ हैं। आशा है गौड़ बाबू स्वास्थ्य लाभकर शीघ्रही हम लोगोंमें आ मिलेंगे। तब तक इस महत्व पूर्ण कार्य्यका भार हम लोगोंके अनुभव-हीन कंधोंही पर पड़ेगा। नहीं मालूम, हम लोग इस भारको कैसे सम्हाल सकेंगे। हिन्दीके धुरन्धर विद्वानों और विज्ञानाचार्य्योंकी सहा-यतासे ही हम अपने कामको पूर्ण करनेमें समर्थ हो सकेंगे। आशा है कि नित्यप्रति बढ़ने वाले विद्वान अपनी सहायतासे हमारे उस कामको अवश्य बटा लेंगे। जब तक गौड़ जी का स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक न हो जाय हम प्रार्थना करते हैं कि कोई सज्जन परिषद् संबंधी पत्र व्यवहार आपसे न करे। ऐसी दशामें उत्तर प्राप्त करनेकी प्रतीक्षा वृथा है।

———

हिन्दू रसायन शास्त्रका प्राचीनत्व*

[ले० डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र राय]

बहुत वर्ष पहले जब हम बालक थे तब युरोपके पण्डितवर्गोंके मुखसे सुना करते थे, कि प्राचीन कालके हिन्दू पण्डित केवल मनस्तत्वको ही लिये बैठे रहते थे। किन्तु आधुनिक अनुसंधान और गवेषणासे जाना गया है कि प्राकृतिक विज्ञानके चर्चामें भी प्राचीन भारत उस कालके अन्य देशोंकी अपेक्षा कहीं श्रेष्ठ था। जब हम सुश्रुत, रसार्णवतंत्र और रसरत्न समुच्चय प्रभृति प्राचीन ग्रंथोक्त परीक्षा और पर्य्यवेक्षण समूहका पाठ करते हैं तो मनमें बहुत क्षोभका उद्रेक होता है। क्या था और क्या हो गया! जिस देशमें सुश्रुतने कहा था "शव व्यवच्छेदभिन्न चिकित्सा शास्त्रका सीखना असम्भव है" उसी देशमें शवके छूने तकका निषेध हो गया है। जिस देशके कुलीन पण्डित सुवर्ण-रत्न-परीक्षा, धातुवाद (metallurgy) धातु और औषधियोंके संयोग क्रियाका ज्ञान, क्षार निष्काषण प्रभृति विविध कलाओंमें व्युत्पत्ति लाभ करना गौरवका विषय समझते थे उसी देशमें सुनार और लोहारोंका नाम उच्च जातियोंकी अवज्ञाका विषय हो पड़ा। जिस देशके मनीषि ढुंढुक नाथने कहा था "जो लोग शिक्षणीय विषय परीक्षा द्वारा दिखला सकते हैं वेही प्रकृति शिक्षक हैं" उसी देशके कविराजगण शरीर विज्ञान विषयक परीक्षा सम्बन्धमें सम्पूर्ण उदासीन रहकर चिकित्सा विद्याकी शिक्षता करने लगे। वस्तुतः जिस दिनसे समाजके बुद्धिमान और विद्वान लोग शिल्प-विज्ञानकी चर्चा त्यागकर उसका भार अशिक्षित निम्नश्रेणीके लोगोंपर छोड़ दिया उसी दिनसे हम लोगोंका भाग्य फूट गया। नाईके हाथमें अस्त्रचिकित्सा और किसानोंके हाथ उद्भिद्विज्ञानकी आलोचनाका भार छोड़कर हम लोग निश्चिन्त मनसे परलोक चिन्तामें व्यस्त होगये।

पर सम्प्रति देशकी हवा बदल गयी है। देशमें विज्ञानका आदर वृद्धिलाभ कर रहा है। भारतवर्षके युवकगणके रसायन विज्ञान, पदार्थ विज्ञान विषयोंकी गवेषणाएँ पाश्चात्य पण्डितवर्गोंकी श्रद्धा आकर्षण कर रही हैं यह देखकर वस्तुतः मनमें आशाका संचार होता है।

दूसरी आशाका संचार उस समय होता है जब मैं सोचताहूं कि यह अधोपतित जातिही एक समय विज्ञानचर्चामें शीर्षस्थानका अधिकार किये हुए थी। चरक, सुश्रुत, कणाद, वराहमिहिर, नागार्जुन व ढुंढुकनाथकी प्रतिभा हम लोगोंको उत्तराधिकारमें मिली है। इसलिए आज प्राचीन भारतके विज्ञानचर्चाके सम्बन्धमें कुछ आलोचना करनेको मैं प्रवृत्ति हो रहा हूं।

इस सम्बन्धमें इंगलैंडके वैज्ञानिक मंडलीके मुखपत्र 'नेचर' (Nature) ने हिन्दू रसायन-शास्त्रके प्राचीनत्व विषयमें जो अभिमत हालमें प्रकाशित किया है उसका स्थूल मर्म लिखा जाता है "हम लोग जिन आविष्कारोंको पाश्चात्यजातियोंका सम्पादित किया हुआ समझते थे, अब देखा जाता है कि, उनमेंके बहुतसे आविष्कार प्राचीन हिन्दू ग्रन्थोंमें लिपिबद्ध हैं। रसार्णवतंत्र प्रभृति पुस्तकमें ऊर्द्ध्वपातन, अधःपातन, तिर्यक्पातन, धातु निष्काषण, प्रभृतियोंकी वर्णना पाठ करनेसे तीक्ष्ण पर्य्यवेक्षणशक्ति (observation) का परिचय मिलता है। इंग्लैंडमें बेकनने (Bacon) जिस परीक्षा पद्धतिकी कथाका प्रचार किया और द्वितीय चार्ल्सके सम सामयिक रायल सोसाइटी (Royal Society) के 'परीक्षा परायण दार्शनिकगणों' (Experimentarian Philosopher) ने जिन सब मतवादोंकी आलोचनाकी वे सब बहुत काल पूर्वही प्राचीन भारतके बुधमंडलीको सुपरिचित थे"। इसके बाद ढुंढुकनाथकी कथा उद्धृत कर

* प्रवासीसे अनुवादित।

'नेचरने' लिखा है। "शिक्षा दान कार्य्यमें परीक्षाकी सहायता कितनी फलदायक है इसेभी हिन्दू भूले नहीं थे"।

सार्द्धने दो हज़ार वर्ष पहले तक्षशिलाके सुविख्यात विश्वविद्यालयमें जीवक कुमारभच्च आत्रेयमुनिके चरणोपान्तमें उपवेषणकर चिकित्सा विद्या प्राप्तकी थी। यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि व्याकरणवेत्ता पाणिनि एवं प्राचीन भारतके मैकियावेली सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ चाणक्यने भी इसी विश्वविद्यालयमें शिक्षा लाभ किया था।

जीवकने जो कुमार भच्चकी उपाधि प्राप्तकी थी उस उपाधिका महत्व प्राचीन भारतके विज्ञान चर्चाके सम्बंधमें गवेषणा करनेवालोंको सुपरिज्ञात है। यह संस्कृतके कौमार भृत्यका पाली अपभ्रंश है। कौमारभृत्य आयुर्वेदके अष्टशाखाका अन्यतम है। सारंश यह कि जीवक धात्रिविद्या और उसके सम्मिलित विषयोंमें विशेषज्ञ थे। हम लोग अब उस समयके सुदूर अतीत अवस्थाकी सुस्पष्ट धारणा करनेमें असमर्थ हैं। प्राचीन भारतमें केवल नाना बिधिःशिल्प और विज्ञानका अनुशीलन ही होता था यह बात नहीं, परन्तु कोई कोई मनुष्य अनेक विषयोंमेंसे एक विषयमें सम्यक व्युत्पत्ति लाभकर उस विषयमें विशेषज्ञ बन जाते थे। वात्सायन प्रणीत कामसूत्र नामक प्राचीन ग्रन्थमें जो चौसठ कलाओंके नाम लिखे हैं उनमेंसे 'सुवर्ण-रत्न-परीक्षा', 'धातुवाद' और "मणिरागाकरंज्ञानम्" (अर्थात् रत्नोंके रंग और उनके खनिज विषयक ज्ञान) के नाम उल्लिखित हैं।

वराहमिहिर प्रणीत 'बृहत्संहिता' नामक ग्रन्थमें लोहा और पारासे प्रस्तुत बलकारक औषधिकी कथा मिलती है। महाभाष्य प्रणेता पातञ्जलिने लोह-धातु-वाद संबंधमें एक ग्रन्थकी रचना की थी। इन कुछ ग्रन्थोंके विषयोंसे हिन्दुओंके रसायन शास्त्रके प्राचीनत्वका प्रमाण मिलता है। युरोपीय जातियों और अरबवासियोंके मध्यमें पारस पत्थर और अमृतके अनुसंधानसे ही रसायन शास्त्रकी पहली उत्पत्ति है। प्यारासेल्सके समय (१४९३से १५४१ खृष्टाब्द तक) से सत्रहवीं शताब्दीके शेष भागतक चिकित्सा विद्याके सहायक रूपमेंही रसायन शास्त्रका क्रम विकास हुआ था। भारतवर्षमें धर्म्म-संक्रान्त और क्रिया कलापसे ज्यामित् और ज्योतिष शास्त्रका प्रादुर्भाव हुआ है। डाक्टर थीबोने प्रमाणित किया है कि पैथोगोरेसके २०० वर्ष पूर्व हिन्दुओंने वैदिक यज्ञकी वेदी निर्माणके उपलक्ष्यमें ज्यामित्के पहले अध्यायकी ४७वीं प्रतिज्ञाका सत्य निर्धारण किया था। स्रोडारने भी सिद्ध किया है कि यह ग्रीक दार्शनिक पैथोगोरेस भारतवर्षके निकट ऋणी है। इस भारतमें योगके अङ्गरूपमें रसायनका सम्यक अनुशीलन हुआ था। महमूद ग़ज़नवीके सम सामयिक अल्बुरेनीने अपने भारतवर्ष संबंधी पुस्तकमें एक स्थान पर लिखा है कि पातंजलिके मतमें रसायन मोक्ष लाभका एक उपाय है। इसके बाद क्रमशः रसायन तंत्र शास्त्रके साथ घनिष्ट होकर घनिष्ठतर रूपमें मिल गया। रसार्णव नामक तंत्र संबंधी एक पुरातन ग्रन्थमें लिखा है "षट दर्शनके मतसे देहकी मृत्युके बाद मोक्ष प्राप्त होता है। किंतु यह मोक्ष करतलन्यस्त आमलकवत् नहीं मिलती। इसलिए पारा और औषधियोंसे देहकी रक्षा करना कर्तव्य है"। रसहृदय नामक एक और प्राचीन तंत्र ग्रन्थमें भी पारेसे बनी हुई औषधियोंकी बड़ी प्रशंसा मिलती है। "जिन लोगोंने हर (पारद) और गौरी (अभ्र) की शक्तिसे देहत्याग किये बिना नूतन शरीर लाभ किया है, उन्हें रससिद्ध पुरुष कहते हैं। ये सब

मंत्रोंके अधिकारी हैं"। जो योगी जीवित अवस्थामें मोक्ष लाभ करनेकी इच्छा करते हैं उन्हें पहले अपनी देहकी उन्नतिकी चेष्टा करनी चाहिए। हरसे पारद और गौरीसे अभ्र उत्पन्न होता है इस निमित्त हर और पारद तथा गौरी और अभ्र एकार्थ बोधक हैं। इस संबंधमें एक श्लोक का अर्थ ऐसा है "अभ्र तुम्हारा बीज और पारद हमारा बीज है। इन दोनों पदार्थोंके मिलानेसे जो पदार्थ बनता है वह मृत्यु और दारिद्र्य को ध्वंस करनेमें समर्थ है"।

इस तरहसे रसायन एक श्रेणीके तंत्रमें अंगीभूत हो पड़ा। प्राचीन हिन्दुओंके रसायन ज्ञानके संबंधमें जो लोग कुछभी धारणा लाभ करना चाहते हैं उन्हें रसार्णव, रसहृदय, नागार्जुन प्रणीत "रसरत्नाकर" और रससारमें वर्णित रासायनिक प्रक्रियाओंका यथार्थ रूपमें परीक्षा करना नितान्त कर्त्तव्य है।

इस श्रेणीके तंत्रोंकी आवश्यकता इतनी अधिक अनुभूत हुई थी कि पारेके सम्बंधमें एक नयेही दर्शन शास्त्रकी सृष्टि हो गयी। माधवाचार्य्य प्रणीत 'सर्व दर्शन संग्रह' में इस दर्शनको बहुत उच्चस्थान मिला है। इस आदर्श प्रमाण ग्रंथसे हम एक विषयपर एक मत उद्धृत करते हैं "नच रस शास्त्रं धातुवादार्थमेति मन्तव्यं मुक्तेरेव परम प्रयोजनत्वात्" अर्थात् रसशास्त्रके कहनेसे केवल रसायनकी एक शाखाही नहीं समझनी चाहिए परन्तु पारेसे बनी हुई औषधियोंके सेवनसे शरीरको अमरकर मुक्तिलाभ करनेका विषयभी रस शास्त्रमें सम्मिलित है।

इस स्थानमें 'रसायन' शब्दके अर्थ सम्बंधमें दो एक बातें कहना नितान्त अप्रासङ्गिक न होंगी। साधारणतः रसशब्दका अर्थ पारद होता है; किन्तु इसके द्वारा धातु और खनिज पदार्थ समूहोंकाभी बोध किया जाता है। चरक और सुश्रुत ग्रंथोंमें इसका अर्थ शोणितादिकोंको पैदा करनेवाला शरीरस्थ रस है। सुश्रुतमें 'रसक्रिया' शब्दका अर्थ घन क्वाथ है। इसके उपरान्त तंत्रयुगमें जब उद्भिज औषधियोंके साथ साथ पारा व अन्यान्य-धातुओंसे बनी हुई औषधियोंका प्रचलन प्रारम्भ हुआ तब शरीरस्थ रसपर पाराकी आश्चर्य्य शक्ति देख करही लोग पाराको रस कहने लगे। प्राचीन ग्रंथोंमें रसायन शब्दसे हर कहीं वार्द्धक्य मिटानेवाली और आयुवर्द्धक औषधियोंसे अभिप्राय है। क्रमशः पारा व अन्यान्य धातुओंसे बनी हुई औषधियोंकोही रसायन बोलने लगे। रुद्रयामल तंत्रके अङ्गीभूत 'धातुक्रिया' नामक पुस्तकमें रसायनी विद्या वर्त्तमान केमिस्ट्री (chemistry) के अर्थमें व्यवहरित होती है।

पारासे नाना प्रकारकी औषधियोंके बनानेमें जिन जिन रासायनिक प्रक्रियाओंकी आवश्यकता पड़ती है उनका क्रम विकाश हिन्दू रसायन शास्त्रके इतिहासका आलोच्य विषय है। किसी भी चिकित्सा ग्रन्थ या रासायनिक ग्रंथमें यह देखकर कि उसमें पारेके व्यवहार विषयमें किस प्रकारका वर्णन है इस बातका पता कि वह कब लिखा गया था सहजही में लग सकता है। ९०० खृष्टाब्दमें वृन्द प्रणीत सिद्धयोग नामक पुस्तक सबसे पहले चिकित्साकेलिए पाराके व्यवहार करनेके उपदेशमें प्रदत्त हुई है। उक्त ग्रंथमें पारासे 'कज्जली' बनाकर औषधिरूपमें व्यवहार करनेकी विधि लिखी है। ११०० खृष्टाब्दमें चक्रपाणिदत्तने इसी कज्जली विषय को लिखा है।

इस विषयमें उन्होंने वृन्दके ऋणको स्वीकार किया है। युरोपीय रसायनके इतिहास देखनेसे पता चलता है कि सत्रहवीं शताब्दीमें (चक्रपाणिदत्तसे छे सात सौ वर्ष पीछे) तुर्केदिमेयार्नने (Turquet de mayerne) इस विख्यात औषधिका प्रथम आविष्कार किया था। उन्होंने इसका

नाम 'इथियोपीय खनिज' रक्खा था। सोलहवीं शताब्दीमें प्यारासेलस्ने सबसे पहले युरोपमें पाराकी औषधियोंका प्रचार आरम्भ किया था। पेरिसके औषधि सभाने पारद घटित औषधियोंके सेवन करनेका निषेध किया था।

रासायनिक तंत्रोंकी संख्या इतनी अधिक है कि उन सबके उल्लेखकरनेसे प्रवन्धका कलेवर अत्यन्त दीर्घ हो जायगा एवं उसके वर्णनसे पाठक गणोंके धैर्य्यच्युतिकी भी सम्भावना है अतः हम यहांपर केवल रसार्णव नामक एक तंत्रके विषयमें कुछ लिखेंगे। यह ग्रंथ रसायनी विद्याका आधार है। इसमें तिर्य्यक पातन, ऊर्द्ध पातन, दहन, प्रभृति प्रक्रियाओंकेलिए जिन जिन यंत्र,पात्र और भट्टियोंका प्रयोजन पड़ता है उन सबके गठन विषयका सविस्तार और विशद वर्णन है। अधिक क्या, इसमें तीव्र पर्य्यवेक्षण शक्तिका परिचय मिलता है। किसीभी धातुके अग्निमें रखनेसे जो रङ्ग दिखलायी पड़ते हैं उन रङ्गों द्वारा धातुके निर्णयका उपाय इसमें वर्णित है। 'नेचर' नामक युरोपीय पत्रने मेरे प्रणीत 'हिन्दू रसायनके इतिहास' की समालोचना करते समय इस विषयपर लोगोंका ध्यान समधिक आकर्षित किया है। इस स्थानमें हम एक श्लोकका अनुवाद देते हैं "आगमें रखनेसे तांवा नीले रङ्गका प्रकाश देता है, टीन कवूतरके रङ्गके समान प्रकाश देता है, सीसा फीका पीलेरङ्गका प्रकाश देता है"। रास्को एवं शार्लिमारने (Roscoe and Schorlemer) इसी सम्बन्धमें लिखा है—"Lead compound imparts a pale tinge to the nonl minous gas flame"

किसीभी धातुके हाथमें लेनेसे जो विशेष गंध हाथमें पैदा होजाती है उससे यह कौन धातु है इस वातका पता लग जाता है। आधुनिक रसायनिक ग्रन्थोंमें इसविषयमें प्रायःकुछ लिखा नहीं जाता। सन १८९८ ईसवीमें व्रिटिश एसोसियेशन नामक सभामें अध्यापक आथार्टनने 'सकल धातुओंकी गंध' विषयपर जो वक्तृता दी थी उसमें उन्होंने श्रोताओंका ध्यान इसी ओर आकर्षित किया था। उन्होंने कहा था "सुपरिस्कृत तांबेके एक खंडको हाथमें रखनेसे कुछ कालके बाद उसमें तांबेकी गंध आजाती है। इसी उपायसे सोने और चांदीको छोड़ कर यावत् धातुओंसे भिन्न भिन्न गंध बाहर निकलती है"। इस स्थानपर रस-रत्न-समुच्चय' से सीसाके संबंधमें एक श्लोकका अनुवाद दिया जाता है "सीसा सहजहीमें गल जाता है, यह बहुत भारी होता है, तोड़नेपर यह उज्वल कृष्णवर्ण दिखलायी पड़ता है और यह पूतिगंध वाला (सड़े हुए पदार्थोंके समान गंध देने वाला है"।

इन सब पुरातन पुस्तकोंमें परीक्षा और पर्य्यवेक्षणकी प्रयोजनीयता विशेष रूपसे वर्णित है। 'रसेन्द्र चिन्तामणि' नामक तंत्रके रचयिताने लिखा है। "मैं निजकी परीक्षा द्वारा जो कुछ जान सकाहूं वही लिपिबद्ध करता हूं"। तंत्रानुयायी प्राचीन और प्रमाणिक ग्रंथोंके रचयिता ढुंढुक नाथने और भी लिखा है—

अध्यापयन्ति यदि दर्शयितुं क्षमन्ते
सूतेन्द्र कर्म्म गुरवो गुरवस्तु एव।
शिष्यास्तु एव रचयन्ति गुरोः पुरोये
शेषाः पुनस्तु दुभयाभिनयं भजन्ते॥

"जो शिक्षणीय विषय परीक्षा द्वारा दिखा सके वही प्रकृति शिक्षक है। जो समस्त छात्र शिक्षकके निकट परीक्षाओंको सीखकर अपने आप उन्हीं परीक्षाओंको कर सकें वेही यथार्थ शिक्षार्थी हैं। इनको छोड़कर अन्यान्य शिक्षक और छात्रगण रङ्गमंचके अभिनेता मात्रही हैं"।

अस्त्र चिकित्सा और उससे सम्मिलित नाना प्रकारके प्रयोजनीय तथ्योंसेपूर्ण प्राचीन 'सुश्रुत' ग्रंथमें प्रत्यक्ष ज्ञानकी आवश्यकताके संबंधमें निम्न लिखित श्लोक है।—

प्रत्यक्षतोहि यत्दृष्टं शास्त्र दृष्टं च यद्भवेत् ।
समासतस्तुदुभयं भूयो ज्ञान विवर्द्धनम् ।

जिस देशमें एक काल प्रत्यक्ष ज्ञानका इतना आदर था, कालवश आज उसी देशमें कविराज-गण शरीर-तत्वके प्रत्यक्ष ज्ञान लाभ करनेके बिनाही चिकित्सा करने लगे। यह कितने परि-तापका विषय है ! उस दिन जिस समय मधुसूदन गुप्तने सहस्र वर्ष व्यापी कुसंस्कारको पददलित करके मेडिकल कालेजमें शव देहपर अस्त्र प्रयोग किया था, उस समय उनको उत्साह देनेकेलिए फ़ोर्टविलियमसे तोपें दाग़ी गयीं थीं।

विक्रम काल

[ले० श्री नरेन्द्र देव, एम ए एल-एल. बी.]

भारतवर्षमें बहुतसे काल समय समयपर प्रचलित हुए हैं जिनमें-से अनेक तो कालके गालमें प्रवेश कर गये। केवल कुछ प्राचीन काल हैं जिनका प्रयोग आज कल भी होता है। भारतके प्राचीन इतिहासके ज्ञानके-लिए भिन्न भिन्न कालोंका ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है। पुरातत्ववेत्ता इसके बिना आगे बढ़ ही नहीं सकते। हम आज 'विज्ञान' के प्रिय पाठकोंके सन्मुख विक्रमकालका इतिहास उपस्थित करते हैं। यदि यह पाठकोंको उपयोगी तथा रोचक प्रतीत हुआ तो आगेकेअंकमें शक-कालका इतिहास प्रस्तुत करनेका साहस करेंगे।

विक्रम कालका सूत्रपात ५८ वर्ष ईसाके पूर्व (58 B. C.) कार्तिक शुक्ल १ को हुआ। इसके प्रभवः संबन्धमें हिन्दुओंका मत है कि महाराज विक्रमादित्य इसके प्रवर्त्तक हुए। कुछ विद्वानोंके विचारानुसार इस कालका सूत्रपात राज्याभिषेकके उपलक्ष्यमें हुआ और कुछके मतके अनुसार महाराज विक्रमादित्यकी मृत्युकी स्मृति-पुष्टिकेलिए यह काल प्रवर्त्तित हुआ। चाहे यह काल अभिषेककी स्मृति-पुष्ट करनेकेलिए प्रवर्त्तित हुआ हो या मृत्युकी स्मृति-पुष्टकेलिए इसमें सन्देह नहीं कि हिंदुओंके विश्वासके अनुकूल इस कालका संबन्ध विक्रमादित्य (शकारि) नामक किसी प्रतापी महाराजसे है। विक्रमा-दित्यके संबन्धमें जनसमुदायमें बहुतसी कथाएं प्रचलित हैं। प्रत्येक हिन्दूकेलिए वह धर्म, नीति तथा स्वदेशप्रेमके एक उच्च आदर्श हैं और इसीलिए हर एक हिन्दूके हृदयमें उनके लिए आदर तथा स्नेहका पवित्र भाव बना हुआ है। विक्रमादित्यके नवरत्नोंका हाल किससे छिपा है ? परन्तु जब हम भारतके प्राचीन इतिहासकी खोज करते हैं तब हमको इस नामका राजा ईसासे ५८ वर्ष पूर्व नहीं मिलता। कुछ राजा ऐसे अवश्य हुए हैं जिन्होंने विक्रमकी उपाधि ग्रहण की थी परन्तु वे बहुत पीछे हुए हैं। गुप्तवंशमें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य एक राजा हो गया है जिसके समयमें भारत-वर्षमें बड़ी उन्नति हुई थी। कतिपय विद्वान कवि-कुल-गुरु कालिदासको गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीयका समकालीन मानते हैं। इस लेखमें हमको इसपर विचार नहीं करना है कि यह मत उन विद्वानोंका कहां तक ठीक है। परन्तु इतना हम मान सकते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमकालके प्रवर्त्तक हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीयका समय ३७५-४१२ सन ईसवी है। कोई कारण नहीं देख पड़ता कि यदि यही महाराज विक्रमाब्दके प्रवर्त्तक हैं तो इन्होंने अपने समय-से ४३३ वर्ष पूर्व कालका आरंभ क्यों रक्खा ? कुछ लोग कदाचित् यह कहें कि कालको गौरवान्वित करनेकेलिए महाराज चन्द्रगुप्त द्वितीयने यह युक्ति निकाली हो। परन्तु हमको उनका यह कथन कदापि मान्य नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि जितनी ही प्राचीन संस्था हो

Archæology पुरातत्व].

उसका उतनाही अधिक आदर जनसमुदायमें होता है और स्वभावतः मनुष्यकी यह इच्छा रहती है कि उसकी संस्थाओंका सम्मान हो और वे स्थायी हों, परन्तु जब तक इस मतकी पुष्टिमें हमको दृढ़ ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलेंगे तब तक हम इस बातके माननेकेलिए प्रस्तुत नहीं हैं।

हिन्दुओंका विश्वास तो यही है कि ५८ वर्ष ईसाके पूर्व विक्रमादित्य नामक राजा हो गये हैं जिन्होंने शकोंको पराजित कर देशका उद्धार किया। इस विश्वासकी पुष्टिमें हमको कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिला है। हमको इस नामके राजाके अस्तित्वका पता ईसाके पूर्व नहीं लगता।

फ़्लीट साहब का मत है कि इस कालके प्रवर्त्तक महाराज कनिष्क हैं। आपका कथन है कि महाराज कनिष्कने अपने राज्याभिषेककी स्मृतिमें इस कालका सूत्रपात किया था। उनके वंशधरोंने इस कालको सुप्रतिष्ठित किया और तदनन्तर मालव जातिने, जो कुशन महाराजाओंके आधीन थी, इसको अपनाया। शिला लेखोंके पढ़नेसे यह विदित होता है कि आरंभकालसे लेकर ४७३ सन् ईसवी तक शिलालेखोंमें विक्रमकालका उल्लेख इस नामसे नहीं पाया जाता है परन्तु संवत्सर, संबत् वा केवल 'सं' इन संकेतों द्वारा इस कालका परिचय कराया गया है। ४७३–८७६ ईसवीके पाँच लेख ऐसे हैं जिनमें "मालवेशोंका संवन्सर", और "मालव काल" इन शब्दोंसे विक्रमकालका बोध कराया गया है। अभीतक विक्रम नामका प्रयोगभी नहीं किया गया है। सन् ८४१ ईसवीसे विक्रमका नाम इस कालके संबंधमें आता है[1]। अमितगतिके 'सुभाषितरत्नसन्दोह' नामक ग्रन्थमें 'समारूढ़े पूत त्रिदश वसतिं विक्रमनृपे' आता है। इस ग्रंथका समय ९९३ ईसवी है। १४ वीं शताब्दी तक 'विक्रम' शब्दका प्रयोग अनहिलवाड़के चालूक्य तथा बघेल राजाओंके राजकीय पत्रोंमें पाया जाता है।

फ़्लीट साहबका यह मत ग्राह्य नहीं है। अब तक विद्वानोंमें इस बातमें बहुत मतभेद था कि कनिष्कका समय क्या है। डाक्टर भाण्डारकर २७८ ईसवी तथा विंसेंट स्मिथ १२३ ईसवी-के सन्निकट महाराज कनिष्कका समय मानते थे। परंतु मतबाहुल्यसे अब उनका समय सन् ७८ ईसवी निर्धारित हुआ है। यही शक कालका भी आरंभ है। इस प्रकार कनिष्क शक कालके प्रवर्त्तक हुए न कि विक्रम कालके। विंसेंट स्मिथने भी अब इस मतको स्वीकार कर लिया है। हालमें डाक्टर मार्शलने जो तक्षशिला (Taxila) में खोजकी है उससे उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि कनिष्कका समय ईसाके पूर्व नहीं हो सकता। रैप्सन साहब तो पहलेही से कनिष्कको शक कालका प्रवर्त्तक मानते हैं। कनिष्कका समय अबभी विवादस्पद है परंतु इतने विद्वानोंके सन्मुख डाक्टर फ़्लीट तथा उनके अनुयायी केनेडी महाशय (Mr. J. Kennedy) का मत हम स्वीकार नहीं कर सकते।

फ़र्गसन साहब (Fergusson) का मत अब कोई विद्वान नहीं मानता परन्तु तबभी हम उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर देते हैं। आपके अनुसार ब्राह्मणोंने १० वीं वा ११ वीं शताब्दीमें विक्रम नामक किसी राजाकी स्मृति चिरस्थाई करनेकेलिए इस कालकी सृष्टिकी और इसका प्रारंभ ५४४ ईसवी से किया (इस वर्षमें विक्रमादित्यने कोरूर का संग्राम जीता था), और ६०० वर्ष पूर्व इसकी स्थापना की।

यह मत सर्वथा अमाननीय है। ब्राह्मणोंने किस स्वार्थलाभकेलिए इस छलको रचा इसकी पुष्टिमें आपने कुछ भी प्रमाण नहीं दिया

[1] गतस्य कालस्य विक्रमाख्यस्य

है। यह आपकी केवल शुद्ध कल्पनाका फल है। इसके अतिरिक्त दो लेख हमारे पास ऐसे हैं जो ५४४ ईसवीके पूर्वके हैं। पहला लेख कुमारगुप्त बन्धुवर्मन्का है जिसकी तिथि ४३६ ईसवी है और दूसरा शिलालेख यशोधर्मन् विष्णुवर्धनका है जिसकी तिथि ५३२ ईसवी है।

कुछ विद्वानोंका यह भी मत है कि शक-कालकी प्रथा उठानेकेलिए ब्राह्मणोंने विक्रम-कालकी कल्पना की। इन विद्वानोंके कथनानुसार शककालका बौद्धधर्मसे घनिष्ठ संबंध था और इस कारण ब्राह्मणोंने इसका प्रतिद्वंदी दूसरा काल रचा और उसका नाम विक्रम-काल रक्खा।

इसके उत्तरमें हमको यह कहना है कि विक्रमकालका प्रयोग केवल ब्राह्मणही नहीं करते थे परन्तु प्राचीन कालमें इसका प्रयोग अनहिलवाड़के राजाभी करते थे। अनहिलवाड़ जैनधर्मका केन्द्र रह चुका है। यदि विक्रमकालका सूत्रपात बौद्धधर्मका विरोध करनेकेलिए हुआ होता तो जैनधर्मावलम्बी इसका प्रयोग कभी नहीं करते। दूसरी बात इसके संबंधमें यह है कि ब्राह्मण सदा चैत्रादि से गणना करते थे। शककाल चैत्रादि संबत् है। राजाओंमें विक्रमकालका अधिक प्रचार था जिसका वर्ष कार्त्तिकादि था। इन आधारों पर यह मत हमको स्वीकृत नहीं है।

डाक्टर कीलहार्न (Dr, Kielhorn) ने इंडियनऐन्टीकेरी(Indian Antiquary)मेंविक्रम तथा शककालपर कुछ निबन्ध प्रकाशित किये थे। इन लेखोंमें उन्होंने बड़े परिश्रमसे एकत्र कर उन शिलालेखोंकी सूची दी है जिनकी तिथि विक्रम वा शककालमें दी गयी हैं। इन साधनोंके आधारपर उन्होंने दोनों कालोंके प्रभवके सम्बन्धमें अपना विचार प्रकट किया है। उन्होंने इस बातके सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि विक्रम नामक किसी महाराज विशेषने इस कालका सूत्रपात नहीं किया है परन्तु कार्तिक माससे काल आरंभ होनेके कारण लोग इसे विक्रम-काल कहने लगे। उन्होंने कई प्राचीन ग्रन्थोंसे वाक्य उद्धृत कर यह दिखाया है कि कार्तिक युद्ध (विक्रम) का काल माना जाता है और इस कालका प्रचार बहुत काल तक अनहिलवाड़के चालूक्य तथा बघेल बंशी राजाओंमें रहनेके कारण इसका नाम विक्रमकाल पड़ गया।

संस्कृत साहित्यके कई ग्रन्थोंमें हमको इसका परिचय मिलता है कि शरत्कालही युद्ध आरम्भ करनेका काल था।

ऋग्वेदमें (१, १३१, ४, २. १२, ११) लिखा है कि इन्द्रने दस्युओंके दुर्गका विध्वंस शरत्कालमें किया। रामायण (किष्किन्धा काण्ड, अ० २६, श्लोक १४-१७ तथा अ० ३०, श्लोक ६०-६१) में रामचन्द्र लक्ष्मणसे कहते हैं कि कार्तिकके आनेपर तुम रावणके बधकेलिए उद्योग करो। अब वर्षाऋतु आगयी है; तुम शरत् की बाट जोहो तब तुम रावणको राष्ट्र तथा गण सहित मारोगे[१]।

रघुका दिग्विजय भी शरत्कालमें आरम्भ होता है (रघुवंश, ४ सर्ग, श्लोक १४, २२, २४)। बाणभट्टके "हर्षचरित" में शरदारम्भ विक्रम-काल बताया गया है। मुद्राराक्षसके तृतीयांकमें चाणक्य कहता है—यह उद्योगका समय है न कि उत्सव का[२]।

विक्रमकालका प्रवर्त्तक कौन था यह विषय अन्धकारसे आच्छिन्न है। इसपर प्रकाश डालना और इसका असंदिग्ध विवेचन करना उचित

१. कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावण बधेयत, कि० अ० २६, १७ शरत्कालं प्रतीक्षस्व प्रावृट्कालोऽयमागतः। ततः सराष्ट्रं सगणं रावणं त्वं वधिष्यसि॥ कि० अ० २७ श्लोक ३६।

२. सोऽयं व्यायामकालो न उत्सवकाल इति
मुद्राराक्षस, अङ्क ३।

ऐतिहासिक सामग्रीके लोप होजानेके कारण असंभवसा प्रतीत होता है, परन्तु कीलहार्न साहबकी कल्पना विचारमें लेने योग्य है। पुराने शिलालेख विक्रमके नामसे परिचित नहीं हैं। पहले पहल विक्रमका नाम सन् ८४१ ई० के एक लेखमें आता है।

पाठकोंको ऊपर यह पढ़कर विस्मय हुआ होगा कि विक्रमाब्दका आरंभ कार्तिक शुक्ल १से होता है। आजकल उत्तरीय भारतमें इसका आरंभ शककालके समान चैत्र शुक्ल १ से होता है परन्तु प्राचीनकालमें वर्षारम्भ कार्तिकसे होता था. जिसके कारण कीलहार्नके विचारानुसार कालका नाम विक्रमकाल पड़ा। अब भी काठियावाड़ और गुजरातमें विक्रमाब्द कार्तिकादि है। प्राचीन शैली अभी तक इन प्रदेशोंमें प्रचलित है। काठियावाड़में एक अन्य प्रकारसे भी विक्रमाब्दकी गणना होती है, विक्रमाब्द आषाढ़ादि भी है।

इस कालका प्रयोग ग्रन्थोंमें दैनिक व्यवहारमें होता है। बहुतसे प्राचीन शिला लेखोंकी तिथि इसी कालमें दी गयी है। ये लेख विशेष करके उत्तरीय भारतमें पाये गये हैं। दक्षिण भारतमें इस कालका सबसे पहले सन् १२१८ ई० में प्रयोग हुआ है।

हमारी सैर

[लेखक-पं० शालग्राम भार्गव एम. एस-सी]

वर्षा ऋतु तो आगयी, आषाढ़ मास समाप्त हो चुका श्रावणके भी दस बारह दिन निकल गये, परन्तु वर्षाके चिन्ह अभी तक नहीं दिखायी देते। कहां तो इस समय काली कजराली मेघमाला, जो कभी कभी विद्युतके प्रकाशसे प्रदीप्त हो उठती, देखनेकी आशा थी, कहां आज ज्येष्ठ मासकीसी लू चल रही है, गर्मी मनुष्योंको बिकल कर रही है। दिनभर गर्मीसे तपकर ठंढी हवा मिलनेकी आशासे मनुष्य बाग़ोंकी ओर क़दम बढ़ाये चले जा रहे हैं, परन्तु वहां जाकर भी हताश ही होना पड़ता है। पर हां, यद्यपि गरम हवा यहां भी उनका पीछा नहीं छोड़ती तो क्या? मित्रोंसे भेंट ही हो जाती है। उनसे वार्तालाप करनेमें कुछ समयही कट जाता है। दो दो चार चार मित्रोंकी बहुतसी टोलियां बाग़के तख़्तोंमें टहलती हुई या घास पर बैठ कर बातें करती हुई दिखायी देती हैं। हमभी अपने परिचित विद्यार्थियोंकी एक टोलीमें जा मिले और बातें करने लगे।

एक विद्यार्थी–कल रात्रिको हमने चन्द्रमाकी चारों ओर एक रंगीन मण्डल (घेरा) सा देखा था। क्या आप लोगोंनेभी ध्यान दिया था?

दूसरा—यह कोई नई बात नहीं है। इसे देखकर प्रायः यही कहा जाता है कि दोही चार दिनमें पानी आने वाला है।

तीसरा—भाई यह कहते तो हमने बहुतोंको सुना है परन्तु जबसे हम 'विज्ञान' पढ़नेलगे हमें योंही अकस्मात किसी बातमें विश्वास नहीं होता। यदि यह बतलादो कि पानीका इस मण्डलसे क्या सम्बन्ध है, तो हम यह निश्चित कर सकें कि प्रचलित सिद्धान्त सचमुच ठीक है या नहीं।

दूसरा—यदि एक प्यालेमें पानी भरकर रखदें तो कुछ देरमें पानी उसमेंसे विलुप्त हो जायगा। यह पानी कहां जाता है?

तीसरा—यह सब कोई जानता है कि पानी भाप बनकर उड़ गया।

दूसरा—बस इसीतरह पानी, समुद्रों नदियों और नालोंसेभी सूर्य्यकी गर्मी पाकर उड़ा करता है। यह भाप हवासे हलकी होनेके कारण ऊपर चढ़ जाती है। आप जानतेही हैं कि ऊपर जाकर यहांसे अधिक ठंड पड़ती है। लाट साहब गर्मियोंमें यहांसे बहुत ऊंचे पर शिमलेमें रहते

Physics भौतिक शास्त्र]

हैं वहभी इसीलिए कि वहां पर अधिक ठंढक रहती है। भाप भी ठंढक पाकर पानीकी बहुत ही नन्हीं नन्हीं बूंदोंमें बदल जाती है। यह बूंदें हवामें लटकी रहती हैं और इन्हींको बादल, मेघ, इत्यादि नामोंसे पुकारते हैं।

जब यह भाप और अधिक ऊपर चढ़ जाती है तो ज़्यादा सर्दी खाकर ठोस कणोंके रूपमें जमजाती है। यही कण जब इकट्ठे होकर पृथ्वीपर गिरते हैं तो ओलोंकी बौछार आती है। इन कणोंके हवामें लटकते रहते जब चन्द्रमा निकलता है तो वह रंगीन मण्डल आकाशमें बनजाता है जिसे देख हम कह सकते हैं कि पानी हवामें मौजूद है और समय पाकर गिरनाही चाहता है।

पहला—यह बात तो ठीक मालूम होती है परन्तु जब भाप जमकर पानीकी बूंदें या बरफ़के कण बन जाती है तो यह भारी चीज़ें हवामें कैसे लटकती रहती हैं?

दूसरा—इसका मुख्य कारण यह है कि किसी वस्तुको चीरकर उसमें होकर रास्ता बनानेमें श्रम करना पड़ता है। दूसरे तरल पदार्थ अपनेमें निमग्न हुई वस्तुओंको उछालते हैं। इन बूंदोंमें, उनके बहुत ही हलके होनेके कारण, इतनी शक्ति नहीं कि हवाको चीरकर पृथ्वीपर आ गिरें।

तीसरा—यह भी समझ में आया, परन्तु आपने यह न बतलाया कि यह मण्डल कैसे बन जाता है और यह रंग इसमें कहांसे आ जाते हैं।

दूसरा—सोलहवीं शताब्दीमें, इङ्गलिस्तानमें न्यूटन (Newton) नामी एक बड़ा वैज्ञानिक हुआ था। उसका मन सदैव संसारकी प्राकृतिक घटनाओंकी छानबीनमें लगा रहता था। एक समयकी बात है कि उसने अपना कमरा चारों तरफ़से बन्द कर दिया और एक छेदमें होकर सूर्य्यकी किरणें कमरेके अन्दर आने दीं। यह किरणें सामनेकी दीवालपर गिरकर उसके एक भागको प्रकाशित करने लगीं और वहांपर सूर्य्यका छोटा चित्र बन गया। अब उसने इन किरणोंके रास्तेमें एक कांचकी तिपहली फली, जो प्रायः झाड़ों में लटका दी जातीं हैं, छेदके पास रख दी। इसके रखनेकी रीति निम्न चित्रमें दिखलायी गयी है।

क ख ग घ कमरा है, छ, छिद्र है; फ, फली है द, दीवाल है, जहाँ प्रकाश फलीमेंसे छन कर पड़ा।
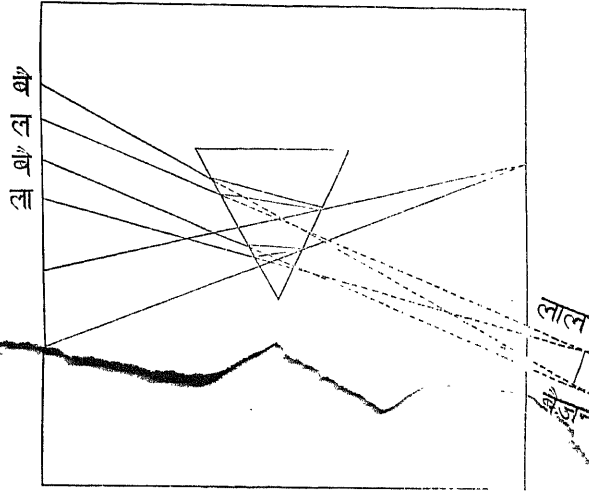
अब सामनेकी 'द' दीवाल पर सूर्यके सात रंगीन चित्र, क्रमसे बैंजनी, नीला, आसमानी, हरा, पीला, नारंजी और लाल, एक दूसरेसे सटे हुए दिखायी देने लगे—अर्थात् एक गोलाकार श्वेत प्रकाशित चित्रकी जगह अब एक रंगीन चौड़ी लकीर दिखायी दी—इसके ऊपरका सिरा बैंजनी और नीचेका लाल था। ऊपर दिये हुए क्रमसे बाकी रंगीन टुकड़े बीचमें थे।

यह भी देखा गया कि नीचेका लाल सिरा भी उस जगहसे ऊपरकी तरफ़ हटा हुआ था, जहाँ कि श्वेत चित्र पहले दीवारपर बना था।
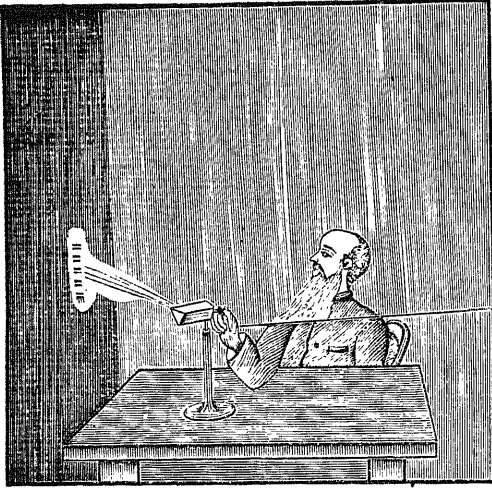
यह भी स्पष्ट है कि बैंजनी टुकड़ा सबसे अधिक और लाल सबसे कम हटा हुआ था। बाक़ी रंगीन टुकड़े बैंजनीसे कम और लालसे अधिक हटे हुए थे। यह सब रंगीन टुकड़े त्रिपार्श्वके मोटे भागकी तरफ़ हटे हुए हैं और इसी कारणसे यदि त्रिपार्श्व बिलकुल उलट दिया जाय तो यह नीचेकी तरफ़ हटे हुए नज़र आयेंगे।
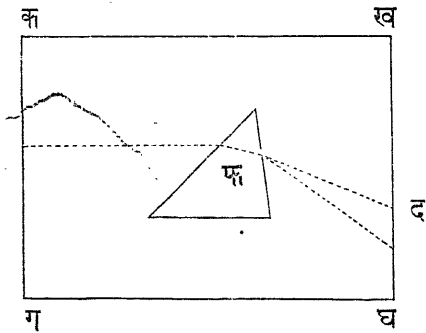
तीसरा—क्यों साहब यह रंग कहाँसे आ जाते हैं? क्या कांचमें होकर निकलनेहीसे यह रंग पैदा हो जाते हैं?

दूसरा—यह सफ़ेद रोशनी सात रंगीन रोशनियोंके मिलनेसे बनी है। जब तक यह रोशनी एकही साथ चलती रहती है तब तक इनके रंग नज़र नहीं आते परन्तु जब इनके रास्ते पृथक पृथक् हो जाते हैं तो इनकी असलियत ज़ाहिर हो जाती है। कांचकी फली या त्रिपार्श्व रोशनीको रँग नहीं देता, वह केवल उनके रास्तोंमें अन्तर पैदा कर देता है। यह बैंजनी रंगकी रोशनीका रास्ता सबसे ज्यादा हटाता है लालका सब से कम। यदि हम एक गोल तख़ता लें और उसपर बराबरके सात त्रिभुज काटकर चिपका दें। इन त्रिभुजोंको क्रमसे बैंजनी, नीले, इत्यादि रंगोंसे रंग दें और तख़्तेके केन्द्रमें कील ठोक कर, उसे ज़ोरसे चक्कर दें, तो हमें रंग दिखायी न देंगे। ऐसा मालूम होगा कि तख़ता रंगीन है ही नहीं बल्कि बिल्कुल सफ़ेद है। इस प्रयोगसे भी मालूम होगा कि सात रंगोंके मिलनेसे सफ़ेद रंग दिखायी देता है।

तीसरा—अब यह बतलाइये कि रंगीन मण्डल कैसे बनता है?

दूसरा—जब हवा में लटकते हुए जलके ठोस कण ऐसी शकलके होते हैं, कि जो रोशनी उनमेंसे निकलती है, वह मुड़कर पृथ्वीपर आती है, तो यही कण त्रिपार्श्व कासा काम करते हैं और उक्त रंगीन मण्डल पैदा कर देते हैं। इसका रंगभी सूर्यकी रोशनीके रंगोंके पृथक कणोंके कारण है। इस मण्डलके सम्बन्धमें मुख्य बात यह है कि इसका भीतरी हिस्सा लाल और बाहिरी नीला होता है।

पहिला—अजी, बहुधा एक और छोटासा हलक़ा दीख पड़ता है, जिसमें यह रंग उलटे होते हैं। उसका भीतरी सिरा नीला और बाहिरी लाल होता है, इसकी उत्पत्तिका कारण क्या है?

दूसरा—इसको तेजस कहते हैं। इसके बननेका कारण हवामें छोटी छोटी पानीकी बूंदों या पतलेसे बादलका चन्द्रमाके सामने आजाना-

ही है। इन छोटी छोटी बूंदोंके बीचमेंसे जब रोशनी निकलती है तो उसके रंग पृथक हो जाते हैं ?

पहला—क्यों जी, आपकी बातके प्रमाणमें क्या कोई प्रयोग नहीं किया जा सकता ?

दूसरा—क्यों नहीं फ्रेनहोफ़रने पहलो दफ़ा एक शीशेके टुकड़ेपर बारीक रेत डाल कर और उसमेंसे सूर्यकी ओर देखकर यह बात सिद्धकी थी। आपभी इसको इस साधारण रीतिसे देख सकते हैं। मिट्टीके एक दीपककी ओर (दीपककी लौ चौड़ी न हो और यदि चौड़ी हो तो सिरेकी तरफ़से देखना चाहिए) इस प्रकारसे आंख मूंद कर देखो कि रोशनी पलकोंके बालोंके बीचमें होकर आंख पर पड़े, तो सटेहुए दीपकोंकी एक पंक्तिसी दिखायी देगी जिसमें बीचके मध्यस्थ चिराग़को छोड़ सबही सात रंगोंसे रंगे होंगे और बैंजनी रंग कम और लाल अधिक हटा हुआ होगा।

तीसरा—क्यों जी क्या सबही दीपकोंके प्रकाशमें यह सातों रंग रहते हैं ?

दूसरा—हाँ होते तो यही सात रंग हैं, पर जितनी मात्राओंमें यह सूर्यके प्रकाशमें मौजूद होते हैं उतने और रोशनियोंमें नहीं। इसी कारण रंगीन चीज़ोंके रंग रात्रिमें कृत्रिम प्रकाशमें कुछके कुछ दीखते हैं।

तीसरा-क्या इसका कारण भी आप बतला सकते है ?

दूसरा-अभी मैं आपको बतला चुका हूं। न्यूटनके ऊपर दिये हुए प्रयोगसे यह और भी स्पष्ट हो जायगा। ऊपर दी हुई रीतिसे किसी दीवालपर रश्मि चित्र बनाओ और किसी भी रंगका काग़ज़ या कपड़ा (यथा लाल रंगका) लो और रश्मि चित्रके भिन्न भिन्न रंगीन हिस्सोंमें रखो। जब वह लाल हिस्सेमें रखा जायगा तो लाल दिखायी देगा परन्तु और किसी रंगके हिस्सेमें रखनेसे काला दिखलायी देगा। इससे यह स्पष्ट है कि लाल रंगके देखनेमें केवल सफ़ेद रोशनीका लाल अवयवही सहायक होता है। इसके न्यूनाधिक होनेसे रंग गहरा या फीका दीख पड़ेगा। यदि इसका अभाव होगा तो रंग काला दीखेगा। इस बातकी इस रीतिसेभी जांचहो सकती है कि दो कांचके टुकड़े लिये जायँ जिनमेंसे एक गहरा लाल रंगका हो और दूसरा हलके रंगका। इन शीशोंमेंसे रोशनी निकलकर जब लाल कपड़ेपर गिरेगी तो कपड़ेका रंग भी गहरा या हलका दिखायी देगा।

अब यह स्पष्ट है कि यदि हम इस लाल कपड़ेको ऐसी चिराग़की रोशनीमें देखें कि जिसमें इतनी मात्रा लाल रोशनीकी न हो जितनी कि सूर्य्यकी रोशनीमें होती है तो कपड़ेका रंग जैसा है वैसा दिखायी न देगा। और यदि इस रोशनीमें लाल अवयवका सर्वथा अभावही है तो कपड़ा काला दिखायी देगा।

पहला--बड़ा हलक़ा अर्थात् मण्डल तो बरफ़के टुकड़ोंको पार करके जब रोशनी जाती है तब बनता है, परन्तु छोटा हलक़ा अर्थात् तेजस नन्हीं नन्हीं बून्दोंके बीचके छूटे हुए स्थानोंमें रोशनीके निकलनेसे बनता है। अब हमारी यह इच्छा है कि इन्द्रधनुषके बननेकी रीति भी जानें।

दूसरा-यह भी बहुतही सरल बात है। किसी दिन सूर्यकी तरफ़ पीठ करके खड़े होना और सामने किसो तरकीबसे छोटी छोटी बूंदें ऊंचेसे गिराना। इन बूंदोंके बीचमें इन्द्रधनुषके दर्शन हो जायंगे। यह भी देखा होगा कि धनुष ठीक सूर्यके सामनेकी दिशामें बनता है। यदि सूर्य पश्चिममें हो तो धनुष पूर्वकी ओर दिखायी देगा। जब रोशनी पानीके किसी बड़ी बूंदमें जाती है व उसकी पिछली तरफ़से प्रतिबिम्बित (reflect) होती है तब उसके रंग अलग अलग हो जाते हैं। रोशनीका जाना और निकलना नीचेके चित्रमें दिखलाया है। बाईं ओर सूर्य समझना चाहिए
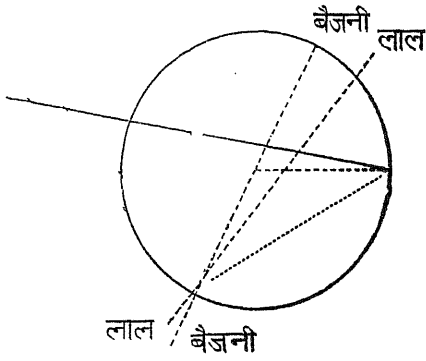
धनुषका रंग सूर्यकी ओर बैंजनी और बाहरकी ओर लाल होगा। इसी प्रकार लाखों बूंदोंमेंसे रोशनीके जाने आनेसे धनुष दिखायी देता है।

तीसरा–कभी कभी दो धनुषभी तो दिखायी देते हैं दूसरेमें रंग उलटे क्रमसे रहते हैं। उसमें लाल भीतरकी ओर और बैंजनी बाहरकी ओर रहता है। एक दूसरेका प्रतिबिम्बसा दिखायी देता है। इसकी बाबत फिर कभी बतलायेंगे।

भोजन विचार

पाचनयंत्रका विकास

[ले० डाक्टर एस. पी. राय, एम. बी.,
एम. आर. सी. एस.]

(गतांक से आगे)

अच्छा अब मनुष्यकी पाचन शक्तिकी कुछ मोटी मोटी बातोंका विचार करना चाहिए। मनुष्यके भोजन पचानेकी क्रियाका यथेष्ट वर्णन कुछ अधिक दुर्बोध होगा अतः छोटे छोटे जानवरोंमें पाचनयंत्र (alementry apparatus) का विकास (ɔvolution) कैसे हुआ इसका वर्णन अधिक सुगम होनेके कारण पहले किया जाता है।

काम करनेके कारण मनुष्यके तन्तुओंका (tissues) सदा नाश हुआ करता है। भोजनका उद्देश्य इन्हीं तन्तुओंके पुनरोत्पत्ति करनेका है। परन्तु बचपनमें जब तक लड़का बढ़ता रहता है भोजन नष्ट तन्तुओंको फिरसे उत्पन्न करनेके अतिरिक्त लड़केकी बाढ़केलिए समुचित सामग्री भी इकट्ठा करता है।

भोजनके सम्बन्धमें एक साधरण पौधा एक साधारण जानवरसे इस बातमें भिन्न है कि पौधा तो बना बनाया भोजन पृथ्वी मातासे खींच लेता है पर जानवरको अपने जीवन निर्वाहकी सामग्री दूसरे पदार्थोंसे स्वयं बनानी पड़ती है। पौधेने तो पृथ्वीका रस खींचा और तैय्यार होने लगा परन्तु जानवर जब तक अपने भोजनको पचा न ले कभी तैय्यार नहीं हो सकता। पचानेकी क्रिया खाये हुए पदार्थोंसे शरीरके पोषण योग्य पदार्थोंका तय्यार करना और अनावश्यक पदार्थको बाहर फेंक देना है।

सम्पूर्ण जीवोंमें पाचन यंत्र और पाचन प्रणालीके अध्ययनसे पता लगता है कि ज्यों ज्यों जानवरका विकास होता जाता है त्यों त्यों भोजन पचानेके अवयवोंमें अपने अपने कार्य्य करनेमें कुशलता और विशेषता आती जाती है। जिस तरहसे एक छोटासा रोज़गारी पहले अपने आपही सामान ख़रीदता है फिर अपने हाथहीसे चीज़ें बनाता और बेंचता है मगर ज्यों ज्यों उसका रोज़गार बढ़ता जाता है सामान ख़रीदनेके नौकर अलग, चीज़ें तय्यार करनेके अलग और बेंचनेके अलग होते जाते हैं। काम और बढ़नेपर चीज़ें बनाने वाले कारीगरोंको अलग अलग विशेष काम दिया जाता है। कोई लोहा ही साफ़ करता है, कोई गलाता है, कोई ढालता है, कोई पीटता है कोई काटता है और कोई पालिश करता है। ठीक इसी तरह जानवरोंकी उन्नतिके साथ उनके भोजन पकानेके कारख़ानेमें भी बराबर उन्नति होती जाती है।

सबसे छोटा जानवर प्रोटियन अमीबा (protein ameba) है। अमीबा एक अर्द्धतरल जीवित पदार्थका जीवित टुकड़ा है जो सदा भोजनकी तलाशमें बहता फिरता है। इसका भोजन बहुत छोटे पौधे हैं। इसके शरीरमें कोई अङ्ग नहीं होते, इसके न तो कोई अवयव होते हैं और न कोई विशेष तन्तु। कभी कभी उसके अत्यंत सूक्ष्म दर्शनीहीसे दर्शन योग्य महासूक्ष्म पारदर्शी (जिसके भीतरसे देखा जा सके) जलावके सदृश तरल शरीरसे झूठे पैर या हाथ निकल पड़ते हैं और पानीमें तैरने वाले सूक्ष्म पौधोंको पकड़ते हुए दिखलायी पड़ते हैं। इन पौधोंको अपने शरीरमें खींच-कर ये हाथ ग़ायब हो जाते हैं। सम्भवतः कोई विशेष पचाने वाला रस जो पहलेहीसे अमीबा-के शरीरमें भरा हुआ हो या जो भोजन पाकर निकल पड़ता हो इन पौधोंपर अपना काम करता है और इस प्रकारसे पौधे उसके शरीरमें पचकर खप जाते हैं।

अमीबामें हम पाचन प्रणालीकी बहुतही मोटी बात पाते हैं ; यानी बाहरसे लिये हुए ठोस कणोंका एक घुली हुई अवस्था या शरीरमें खपने वाली अवस्थामें परिवर्तित होना। पाचनप्रणालीकी और सब घटनायें इसी आवश्यक घटनाकी सहायकारिणी हैं।

अमीबा यह कार्य्य बिना किसी मुँह, पेट या किसी दूसरे प्रकारके पाचक अवयवोंके सिद्ध करता है। उसके सम्पूर्ण शरीरमें यह शक्ति है कि उचित भोजन कणोंको अपने चारों ओरसे लेकर उन्हें रासायनिक या किसी दूसरे प्रकारकी क्रियासे अपने शरीरके पदार्थोंमें परिवर्तित करदे तथा उस पदार्थको जो शरीरमें खप नहीं सकता अलग करदे।

यहाँपर यह बतलाना शायद अरोचक न होगा कि मनुष्यके रक्तकी जीवन धारामें असंख्य महासूक्ष्म एक कोष (cell) से बने हुए जीव तैरते और चक्कर लगाते घूमते हैं। ये जीव (organism) मनुष्य रक्तके सुफ़ेद जीवाणु (corpuscels) कहलाते हैं। यह कोष अगर चक्कर लगाते हुए रोगाणुओं (disease germs) के समीप आ जायँ तो उन्हें चट कर सकते हैं। इसका कारण यह है कि रोगके कीड़े सजीव छोटे छोटे पौधेही हैं। खूनके ये सुफ़ेद कोष न मालूम कितने रोगाणुओंको खा खाकर मनुष्यके प्राण बचाया करते हैं।

अमीबासे उन्नत अवस्थाके जीवोंमें हम पाते हैं कि जब उनके शरीरका कोई अङ्ग भोजनके कणोंके निकट आता है तो उस कणके चारों ओर थोड़ी देरकेलिए एक छोटा सा पेट तैयार हो जाता है। यहाँ पर पहली बार भोजनके रखने और पचानेके पात्र या पेट बनानेका प्रयत्न हमें देखनेको मिलता है। इस प्रकारके जीवोंको हम गैस्ट्रोपाड्स (gastropods) या पेटपर चलनेवाले जीव कह सकते हैं। अमीबाकी तरह इन जीवोंके सम्पूर्ण शरीरमें भी भोजन पचानेकी शक्ति रहती है। इन जीवोंसे अधिक उन्नत अवस्थाका जीव क्यूले (cule) है। अपने चारों ओरके पदार्थोंके (irritations) स्पर्श जनक दुःख संभोगसे बचनेकेलिए इसे एक ऐसी झिल्लीकी आवश्यकता पड़ती है जो अधिक मुलायम और लचीली न हो। ऐसी झिल्ली कुछ सख़्त और लचीली होनेके कारण भोजनके कणोंको पचा नहीं सकती। अतः दो ऐसे अङ्गोंकी आवश्यकता हुई जिन पर यह सख़्त और लचीली झिल्ली न हो—एक अङ्ग तो भोजनके निगलनेके कामके-लिए और दूसरा मल त्यागकेलिए। इसतरह पहले पहले (oral) मौखिक और (anal) गुदादेशीय छिद्रों की उत्पत्ति हुई।

इस अवस्थामें भी कोई नियत और स्थिर भोजन पचानेकी (cavity) खोल नहीं पायी जाती है। यहाँ तो एक किनारेसे भोजन

शरीरके पदार्थोंमें ले लिया जाता है और दूसरे किनारेसे मल त्याग हो जाता है।

इस निश्रेणीमें हम जब और आगे बढ़ते हैं तो ऐसे जीवोंका पता लगता है जो अमीबाके समान कई एक कोषोंसे बने हुए होते हैं। शरीर रचनात्मक श्रम विभाग अब हो सकता है अतः भिन्न भिन्न कोषोंको भिन्न भिन्न कार्य्य दे दिये जाते हैं। इन्हीं कोषोंमेंसे शरीरके कुछ कोष पाचन क्रियाकेलिए अलग रख छोड़े जाते हैं और सुविधाकेलिए एक थैली भोजन भरनेको सदाकेलिए स्थिर करदी जाती है। बहु कोष वाले जानवरोंकी उन्नतिमें निम्न लिखित सीढ़ियाँ मिलती हैं:—

पहली सीढ़ी—नीच श्रेणीके जीवोंमें केवल एक छिद्र रहता है। यह छिद्र शरीरके अन्दर एक थैली तक चला जाता है, जिसे पेट कहते हैं। यहाँपर भोजन जमा होता है और पचता है। बिना पचा हुआ भोजन या मल उसी छिद्रसे बाहर निकल जाता है। इन जीवोंमें मल त्यागकेलिए दूसरा छेद नहीं होता।

दूसरी सीढ़ी—श्रेणीके दूसरे नम्बरके जीवोंमें एक नली सम्पूर्ण शरीरके भीतर होती हुई अन्तमें एक दूसरे छिद्रपर समाप्त होती है। पहली श्रेणीके जीवोंके उदाहरण आँटेकी तरह स्थिर मूंगे, समुद्रीय (anemone) एनीमोन और तैरती हुई जेलीफ़िश हैं। इन जीवोंका मुंह बहुत स्पष्ट होता है। इस मुंहसे भोजन एक बड़ी पाचक थैलीमें फ़ौरन पहुंच जाता है। यहां पर पाचक रसकी रासायनिक क्रियासे भोजन हज़म होता है और बिना पचे हुए भोजनका शेषांश मुंहसे निकल जाता है।

केचुए और जोकें दूसरी श्रेणीके जीव हैं। इनके पाचनयंत्रकी रचनामें पहलेसी कहीं अधिक चतुरता दिखलायी पड़ती है। इनमें एक पूर्ण पाचन नलिका शरीरके एक ओरसे दूसरे ओर तक चली गयी है। यह नलिका एक ओर तो मुंह और दूसरी ओर गुह्य देशमें अन्त होती है।

तीसरी सीढ़ी—उन्नतिकी अगली सीढ़ीमें पाचन नलिकाके कुछ कोष इकट्ठे हो जाते हैं। भोजन पचानेवाले रस इन्हीं कोषोंसे निकलते हैं। केचुए और जोकोंमें पूरी नलिका पचाने वाले भागका काम कर सकती है जैसेकि एक कोषीय जीव अमीबाका शरीर। इन प्राणियोंके नये कोष एक झुंडमें इकट्ठा होकर पाचन नलिकामें चिपटे रहते हैं और इनका कार्य्य केवल पाचक रसोंका निकालना है। पाचक रस निकालनेवाले थैलों (glands) के यह पूर्व रूप हैं। कोषोंके मिलनेकी इस अवस्थामें एक नियत रक्त प्रवाह यन्त्र (circulatory system) भी बन जाता है, जिससे पचा हुआ अन्न सम्पूर्ण शरीरमें पहुंच जाय।

चौथी सीढ़ी—इन सबोंसे बढ़कर उन्नत अवस्थाके जीव मोल्यूसेस (molluses) मामूली घोंघे (oyster) हैं। इनमें पाचन नलिका सीधी नहीं होती किन्तु घुमावदार होती है। नलिकाके इस कुंडलिका रूपमें होनेसे दो लाभ हैं। एक तो भोजन यकायक सीधी नलिकाओंकी तरह अन्त तक नहीं पहुंच जाता किन्तु घूम घूम कर देरमें अंत तक पहुंचता है। इस दशामें भोजन पचनेको अधिक समय मिलता है और उसका पाक अच्छा होता है। दूसरे थोड़ीसी जगहमें ही भोजन खपाने वाली झिल्ली बहुत मिल जाती है इससे शरीरके पोषक रसोंका शोषण अच्छा होता है। प्राणियोंकी इस अवस्थामें पाचन नलिकाके पहली बार भिन्न भिन्न विभाग मिलते हैं और प्रत्येक विभक्त देशमें कोई एकही विशेष कार्य्य होता है। इस तरहपर मुंहकी नली या गला (gullet), पेट और अंतड़ियें उपजती हैं।

इन प्राणियों (molluses) में पेट विशेष महत्वका होता है। इसमें रस टपकाने वाले

थैलों (glands) से एक ऐसा विचित्र रीतिसे संगठित (complex) रस निकलता है जिससे हम लोगोंके भोजनके प्रत्येक द्रव्य चाहे वे शकर पैदा करने वाले (Starchy) मांडजातीय, चर्बी पैदा करने वाले (fatty) और एल्ब्यूमेनाइड (albumenoid) या अंडेकी सफ़ेदीके समान गुणवाले द्रव्य हों सभी घुल जाते हैं।

पांचवीं सीढ़ी--इन प्राणियोंसे आगे बढ़कर जब पतङ्गोंका विचार करते हैं तो हमें और भी उन्नति दिखलायी पड़ती है। मोल्यूसेसकी तरह एक पूर्ण पाचन यन्त्रके अतिरिक्त इनके मुंहमें कुछ ऐसी थैलियां मिलती हैं जो सदा लार टपकाया करती हैं। पेटके रसोंमें न घुलने वाले मांडजातीय स्टार्ची पदार्थ इस लारसे शकरमें बदल जाते हैं और रक्तमें बड़ी सुगमतासे खप सकते हैं।

उच्चतम सीढ़ी--रीढ़दार प्राणियोंमें, जिनमें मनुष्यभी शामिल हैं, कुछ और भी विशेषताएं मिलती हैं। इस अवस्थामें पाचन यंत्र निगूढ़ताकी हद्दको पहुंच जाता है। मछलियां, मेंढक, कीड़े मकोड़े, चिड़ियां और दूध पिलाने वाले जानवर ये सब तीन प्रकारके पाचक रस निकालते हैं। ये रस पाचन क्रियाका रासायनिक भाग पूरा करते हैं।

(१) पहला रस--गैस्ट्रिक रस (gastric juice) है। यह रस पेटकी दीवालमें सटे हुए (peptic glands) पेप्टिक नामी थैलोंसे निकलता है और प्रोटीड और एलब्यूमनाइड्स नामक अंडेकी सुफ़ेदीके समान पदार्थोंपर रासायनिक क्रिया करता है।

दूसरा रस-पैनक्रियेटिकरस (pancreatic juice) है। यह रस रस टपकाने वाले दूसरे थैले पेन्क्रियास (pancreas) से निकलता है और भोजनके अंतड़ियोंमें जानेके समय उससे मिलता है। यह (starch) स्टार्च (albmenoids) एल्ब्यूमेनाइडस और फ़ैट्स (fats) पर रासायनिक क्रिया करता है।

तीसरा रस—बाइल (Bile) या पित है। यह पाचन क्रियाको बहुत कुछ सहायता देता है और चर्बीवाले पदार्थोंपर असर करता है। इसका वर्णन आगे विस्तार से किया जायगा।

दूध पिलानेवाले जानवर (mamals) एक प्रकारका चौथा रस लार टपकाते हैं। यह रस थैलोंसे निकलकर मुंहमें आजाता है और न घुलनेवाले मांडको घुलनेवाली शकरमें परिवर्तित कर देता है।

इस तरह हम लोगोंको पता लगता है कि पाचन यंत्र वास्तवमें प्राणीके ढकने वाली झिल्लीका विकसित रूप है जिसमें भोजन पचानेवाले रसोंके निकलनेका विशेष प्रबन्ध किया गया है। इससे यह स्पष्ट है कि शरीरके पाचक विभागमें पड़ा हुआ भोजन प्राणीके शरीरसे बाहर है।

मनुष्य शरीरमें भोजनके वे विकार जिन्हें हम पाचन कहते हैं चार प्रकारसे होते हैं।

पहला—मुंह, पेट या अंतड़ियोंमें भोजनका छोटे छोटे टुकड़ोंमें तोड़ा जाना।

दूसरा—इन टुकड़ों पर तेज़ाब (acid) या अम्लों (alkalis) का असर।

तीसरा—(ferments) चैतन्य ख़मीर उठाने वाले जीवाणुओंसे उत्पन्न हुए विकार।

चौथा—अति सूक्ष्म जीवधारी प्राणियोंकी वृद्धिसे भोजनके पदार्थोंका अन्य पदार्थोंमें पृथक किया जाना।

अतः पाचन क्रिया मुख्यतः दो भागोंमें विभक्त है। पहली क्रियामें भोजनके ठोस पदार्थोंके बारीक बारीक टुकड़े बिना किसी परिवर्तनके किये जाते हैं जिससे पाचक रसोंको काम करनेमें सुबिधा हो। दूसरी क्रिया रासयनिक क्रिया है जिसमें भोजनके परिमाणु घुलनशील बन जाते हैं और शरीर पोषणकेलिए शरीरमें खपने योग्य हो जाते हैं। भोजनके खपनेमें ख़मीर (ferments) विशेष रूपसे सहायता देते हैं।

पाचन नलिकाकी जो तुलना कलके कारख़ानेसे लोगोंने की है वह बड़ीही उपयुक्त है। भोजन सामग्रीही इस कारख़ानेका कच्चा माल है। इस कच्चे मालसे मनुष्यके उपयोगी पदार्थोंके बनानेमें बहुतसी रासायनिक क्रियाओंका उपयोग होता है। भोजनका रुधिरमें खपनाही बने हुए पक्के मालकी खपत है। वास्तवमें इस उपमापर जितनाही विचार किया जाय वह उतनी ही ठीक जंचती है।

कारख़ानेमें पहले एक विभागमें कच्चे मालके टुकड़े किये जाते हैं फिर दूसरे विभागमें उसे भिगोते और सौंदते हैं फिर तीसरेमें उसपर रासायनों और घोलने वाली द्रव्योंका उपयोग करते हैं। इसी तरह उसे एक विभागसे दूसरे विभागमें भेजते रहते हैं और अन्तमें सुन्दर पक्का माल तैय्यार हो जाता है।

इसी प्रकार मनुष्यके भोजन पचाने वाले कार्य्यालयमें कच्चा माल यानी भोजन पहले विभाग मुंहमें छोटे छोटे टुकड़ोंमें तोड़ा और पीसा जाता है, फिर दूसरे विभाग पेटमें उसपर घोलने वाले पदार्थ और रसायन अपनी क्रिया करते हैं फिर वह तीसरे विभाग अंतड़ियोंमें भेजा जाता है और अन्तमें पक्का माल तो रुधिर ले लेता है और बचे हुए अनुपयोगी पदार्थ शरीरके बाहर निकाल दिये जाते हैं।

छाया पुरुष

[ले० श्री० प्रेमबल्लभ जोशी, बी. एस्-सी]

बाबू जी! बाबू जी! जाड़ेके दिन थे। अभी दिसम्बरकी २०वीं तारीख़ हुई है पर सरदी इतनी कड़ी है कि दस बजे दिन चढ़ेतक लिहाफ़ छोड़नेको जी नहीं करता। मैंने आँखें खोलीं और चौकन्ना होकर सुनने लगा। फिर वही बाबू जी बाबू जी शब्द कानोंमें पड़ा। मुझे निश्चय होगया कि शब्द मेरेही दरवाज़ेसे आया है। घरमें दूसरे और कोई 'बाबूजी' न थे इससे मैं ही चारपाईसे उठकर बाहर निकला। स्वच्छ वस्त्र पहने एक ख़ानसामा आकर मेरे सामने खड़ा होगया। उसने सलाम करके एक पत्र मेरे हाथमें दिया। जिसमें यह लिखा था—

Court House,
Ajmere
19-12-14.

Dear Mr.—

Last night I received information that the village of Mashi is haunted. The villagers tell me a very beautiful story and I am sure some pleasant surprise awaits us. If you have no particular engagement you will please come over to me at 10-30 this morning to drive together to Mashi.

Yours truly,
C. D. BURKITT,
C. I. D.

मैं नौकरको बिदा करके मकान पर गया और हाथ मुँह धोकर कुछ खापी ठीक १०-३० बजे कोर्ट हाउस जा पहुँचा। साहब मेरी बाट जोह रहे थे। पहुँचकर मैंने माशीका हाल पूँछा। साहबने केवल इतनाही कहा कि अभी चलके देख लेंगे।

दिनके दो बजे हम लोग माशी पहुँचे। यह गाँव पहाड़की ढाल पर बसा हुआ है। दूसरी ओर पहाड़ अगम्य है। इसके आगे एक और पहाड़ नज़र आता है। इन दो पहाड़ोंके बीच पृथ्वीराजके समयका बना हुआ एक भारी कुण्ड है। यह कुण्ड देखने योग्यही नहीं बल्कि अद्भुत है। दो पर्वतोंके बीच झूलेकी भाँति लटकता हुआ यह कुण्ड बड़ा सुन्दर दिखलायी देता है। कुण्डका हमारी ओरका सिरा पहाड़के भीतर तक चला गया है और इस कारण नज़र नहीं पड़ता। दूसरे सिरे पर ऊँची दीवार है जो
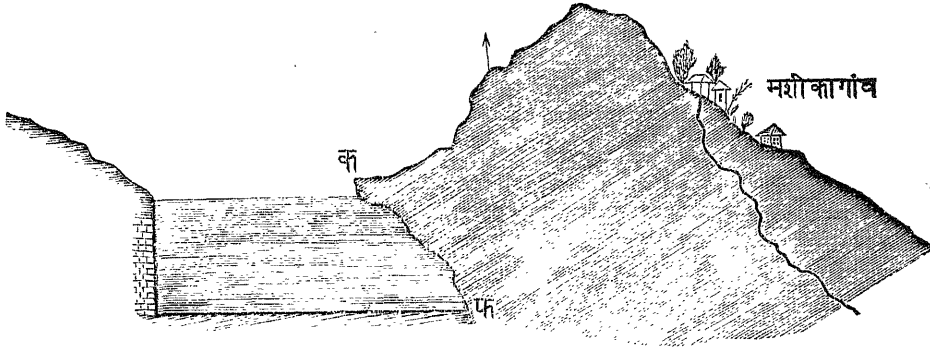
बीस फ़ीटसे कम न होगी। यह दीवार पहाड़से मिल जाती है इस कारण इस ओर कुण्ड तक पहुँचना और भी दुस्साध्य है। कुण्डका चित्र नीचे दिया गया है।

कुण्डमें पानी लानेका बहुत अच्छा प्रबंध है। यह पानी दूर पर्वतसे नालीमें होकर कुण्डमें गिरता है। नाली कई बर्षोंसे बेमरम्मत पड़ी हुई थी और कुण्डमें पानी आता है तो 'क' स्थान तक भरतेही पानी फिर ऊपर चढ़नेके बदले कम होने लगता है। इसका कारण यह है कि कुण्डमें दो छेद पानी निकलनेके हैं एक 'फ' स्थानपर और दूसरा 'क' पर। जब पानी 'क' तक भर जाता है तो ढालके कारण छेद द्वारा 'फ' स्थानपर पहुँचता है। यहाँपर एक फिरकी लगी हुई है जिससे छेद बंद रहता है। इस फिरकीमें पानी भरतेही यह घूम जाती है और सब पानी बह कर कुण्ड ख़ाली हो जाता है। पर कुण्डके ख़ाली होतेही फिरकी भी घूमती है और छिद्र फिर बंद हो जाता है। जैसा हमने पहले कहा है यह कुण्ड कई बर्षोंसे टूटा पड़ा था। अभी जूनके महीनेमें इसकी मरम्मत की गयी थी और तभीसे कुण्डमें पानी आता है।

उस दिन एक ग्वाला † चिन्हित स्थान पर बैठा कुण्डकी शोभा देख रहा था। ज्यों ज्यों कुण्डमें पानी भरता जाता त्यों त्यों उसको एक मनुष्यकी छाया जैसी आगेको बढ़ती दीखती। यह छाया 'फ' की दिशासे आती दीखती थी। ज्योंही पानी कम होने लगा यह भी भीतरको जाने लगी और अन्तमें बिल्कुल अदृष्य हो गयी। ग्वाला यह देख बहुत घबराया और भागकर गाँव वालोंको बुला लाया। गाँव वालोंने भी इस चमत्कारको देखा और सबकी यही राय हुई कि इस कुण्डमें भूतका बास है। लोग भागकर गाँवमें गये और उस दिनसे किसीको उस ओर आनेका साहस नहीं हुआ। अन्तमें गाय बैल भूखों मरने लगे और गाँवमें खलबली मचगयी।

कलही तो गाँववालोंने भूत पूजा करायी थी। २००) ख़र्च हुआ। कई पण्डित वेद मंत्रादि पढ़ कर हवनमें जाबैठे थे और गाँववालोंसे भूत भगा देनेकी प्रतिज्ञा की थी।

एक बड़ा साहसी लड़का इस बातको देखनेके निमित्त कुंड तक गया। पर उस समय भूतराजको बाहरकी ओर आता देख वह भागकर गाँवमें आया और सबको समाचार सुनाया कि उनका यज्ञ बृथा गया।

इस समय दो बजे होंगे अजमेरसे फुलेरा जाने वाली गाड़ी मासीके स्टेशन पर रुकती है। इस गाड़ीसे इस गाँवका रहनेवाला शालग्राम जो अजमेरमें पढ़ता है उतरा। यह दो दिनकी छुट्टीमें अपने मा बापसे मिलने घर जा रहा था। अजमेरमें पालनपुर वाले मामलेकी बड़ी चर्चा थी और कप्तान बरकिट-

के नामसे सभी परिचित थे। शालग्रामने घर पहुँच कर देखा कि गाँववाले सब पूजामें लगे हुए हैं और भूतकी चर्चा हो रही है। जब इसने सब समाचार सुना तो उसको बरकिट साहबकी याद आयी। पालनपुरका ब्यौरा अजमेरके 'प्राचीन' समाचार पत्रमें दिया गया था। यह पत्र भाग्यवश आज शालग्रामके पासही था। इसने लोगोंको इकट्ठाकर पालनपुरका हाल पढ़कर उनको सुनाया और उनको बरकिट साहबके पास जानेकी सलाहदी। पाँच बजे गाड़ी अजमेरको लौटती थी, उस गाड़ीसे गाँववाले बरकिट साहबके पास आये और उनसे सब ब्यौरा कहा। दूसरे दिन जो कुछ हुआ वह पाठकोंको विदितही है।

(२)

बरकिट साहबका ढंग निराला है। आपने कुण्डपर पहुँचकर इसकी शोभा देखी और कुछ समय उपरान्त कपड़े उतारकर कुण्डमें कूद पड़े और आनन्दसे पैरने लगे। अब आपने ग़ोता लिया और ठीक भूतराजके सिर पर जा पहुँचे। लोग इसे देख आश्चर्य करने लगे। कुछ समय उपरान्त आप ऊपर पहुँचे और एक पत्थरमें लाल सिन्दुर लगा फिर कुण्डमें जा उसे रख आये। उस समय कुण्ड ख़ाली होगया था और यह पत्थर गुफाकी ओर होनेके कारण हमको नहीं दीखता था। बरकिट साहब ऊपर पहुँचे और लोगोंसे इस पत्थरके देखनेको कह स्वयं कपड़े बदलने चल दिये।

कुछ देरमें पानी भरने लगा और हमको लाल पत्थर दीखने लगा। अन्तमें जब पानी पूरा भरगया तो क्या देखते हैं कि यह पत्थर ठीक उस काली छायाके माथे पर पड़ा हुआ है। काली छाया पूरी पूरी दीख रही थी और अब ज्यों ज्यों पानी कम होता गया छायाभी हटती गयी और कुछ देरमें छाया और पत्थर दोनों अदृष्य हो गये।

मेज़में एक थाली पड़ी हुई थी और एक किनारे पानीका भरा एक लोटा तथा एक कांचकी टेढ़ी नली रक्खी थी। बरकिट साहब चुरट मुंह पर लगाये कुर्सी पर बैठे कुछ सोचने लगे। मुझसे लोगोंको दूर हटानेका संकेत किया। लोगोंकी भीड़ बड़ी थी। माशीके आस पासके सब गाँववाले साहबका तमाशा देखने आगये थे।

बरकिट साहबने अब भूत लीला बतानी आरम्भकी। आपका व्याख्यान सारगर्भित और मनोहर हुआ, जिसका कुछ अंश हम नीचे लिखते हैं।

"आदमी ज्योतिके कारण सब वस्तुओंको देख सकता है।

"जब ज्योति नहीं रहती तो वस्तु देखनेमें नहीं आती जैसे कि रातको अंधेरेमें होता है। अंधेरा ज्योतिके अभावको कहते हैं। सूर्यकी ज्योतिके कारण सब चीज़ें दीखती हैं। एक बात और है। सूर्यकी ज्योति तमाम दुनियाकी वस्तुओंमें पड़ती है पर हमको कोई वस्तु एक साथ तब तक नहीं दीखती जब तक कि उसके और हमारे बीचमें आड़ हो। इससे यह प्रत्यक्ष है कि सूर्यकी ज्योति वस्तुसे टकरा कर हमारी आंखोंमें पड़ती है। और इसके कारण हम वस्तुको देख सकते हैं"। एक महाशयने प्रश्न किया "हुजूर ज्योति तो आंखोंमें होती है तब आप यह कैसे कहते हैं कि वस्तुसे टकराकर ज्योति आंखों में पड़ती है?" बरकिट साहब ने कहा "ठीक है आखोंकी रोशनी बोल चालका महावरा है पर यदि आखोंमें ज्योति है तो रातको अथवा अंधेरेमें वह कहां चली जाती है? वह केवल दिनहीमें अथवा केवल बत्तीकी ही रोशनीमें क्यों हमारी आखोंमें रहती हैं? इससे यह प्रत्यक्ष है कि हमारा किसी वस्तुको देखना दो बातों पर निर्भर है। (१) उस वस्तुपर ज्योति पड़े (२, वह ज्योति उस वस्तुपर टकराकर ठीक हमारे आखोंपर पड़े

अथवा उस वस्तु और हमारे बीचमें कोई आड़ न हो। इस पर कोई प्रश्न करेगा कि क्या ज्योति सीधी चलती है जो कि आड़ होनेसे रुक जाय? क्या ऐसा सम्भव नहीं है कि ज्योति आड़पर मुड़ करके हमारे आंखोंसे आ टकराये? इसका उत्तर यह है कि साधारणतः ज्योति कभी नहीं मुड़ती अथवा सीधी रेखाओंमेंही चलती है। इस बातको तुम लोग प्रत्यक्ष देखते हो—उदाहरण छाया है। जैसी वस्तु है ठीक वैसेही उसकी छाया पड़ती है। छाया ज्योतिके अभावका नाम है। जब ज्योतिके मार्गमें कोई वस्तु रख दी जाती है तो जितनी बड़ी अथवा जिस प्रकारकी वस्तु होगी उतनी ज्योति इस वस्तुके कारण रुक जाती है, जिससे वस्तुके सामने कोई ज्योति नहीं पड़ती और ज्योतिके अभावसे छाया पड़ती है। यदि ज्योति मुड़ती होती तो कोई कारण नहीं था कि वह वस्तुके पास मुड़कर उसके सामने उजियाला न करे। और एक उदाहरण लो। दूर की वस्तुको तुम भली भांति देख रहे हो। उसके और तुम्हारे बीच में कोई आड़ नहीं है। अब एक छोटेसे तिनकेको अपनी आंखके सामने रक्खो तो वस्तु नहीं दीखेगी। कारण यह है उस स्थानमें ज्योतिकी कुछही किरणों (१ या २) तुम्हारी आंखोंमें पड़ती हैं। इनको रोकनेकेलिए छोटा तिनकाही बहुत होता है और वस्तु तुमको नहीं दीखती। यदि किरण मुड़ जाती तो वस्तु अवश्य दीखती।

"किरण शब्दको तुम लोग भली भांति जानते हो। अंधेरे कमरेमें यदि किसी प्रकार सूर्यकी ज्योति पहुंचती है तो उसका एक लम्बा डंडा सा दीख पड़ता है। यह डंडा किरणोंका समूह है। हमने अभी कहा है कि ज्योतिकी किरणें सीधी चलती हैं और मुड़ती नहीं हैं परन्तु किरणोंका मुड़ जाना कभी कभी सम्भव होता है और इसी कारण तुम्हारा कुण्ड परका भूत भी दीखता है। जो छाया तुमको दीखती है वह केवल काली मिट्टी है। इस पहाड़की मिट्टी काले रंगकी है। तमाम कुण्डका तला चूने और बजरीसे बना हुआ है। गुफाके भीतर यह बजरी उखड़ गयी है और उखड़भी इस प्रकार गयी है कि उखड़ा हुआ भाग ठीक मनुष्यकी आकारका बन गया है इस कारण यह तुमको काला आदमीसा दीखता है। इसमें टकराकर ज्योतिकी किरणें तुम्हारी आखोंपर नहीं पड़ती हैं जिससे तुम इसे देखते नहीं। पानी भर जाने पर किरणें मुड़कर तुम्हारी आंखों तक आ पड़ती हैं और छाया तुमको दीखने लगती है। पर पानी खाली हो जाने पर फिर किरणें तुम्हारी आंखोंसे दूर हो जाती हैं।

"इस बातको हम अभी प्रत्यक्ष दिखाते हैं" यह कह कर बरकिट साहबने थालीके बिलकुल कोनेपर एक पैसा मोमसे ऐसा चिपका दिया कि वह हिले नहीं। अब उन्होंने लोगोंको कुछ दूर खड़ा होनेको कहा। लोग पीछे हटने लगे यहां तक कि पैसा किसीको दीख न पड़ा।
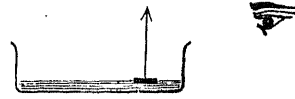
बरकिट साहब बोले, "देखो इस पैसेपर ज्योति पड़ रही है पर यह तुम्हारी आखोंपर नहीं पड़ती पर कुछ दूर ऊपरको चली जाती है और तुम इसे नहीं देख सकते जैसा कि हमने चित्रमें दिखाया है। तुम लोगोंकी आखोंपर यह किरण तब ही पड़ेगी जब कि यह किसी प्रकार मुड़ जाय। उसके मुड़नेका उपाय हमको मालूम है। बरकिट साहबने बिना थालीको छुये उसपर पानी भरा। ज्यों ज्यों पानी भरता गया पैसा लोगोंको दीखने लगा। अन्तमें जब थाली भर गयी पैसा पूरा पूरा दीखने लगा"

"इसका कारण यह है कि पानी और हवाके मेलकी जगहपर या पानीकी सतहपर ज्योतिकी किरण मुड़ जाती है, और तुम्हारी आखोंपर पड़ती है जिससे तुमको पैसा दीखता है।"

बरकिट साहबने टेढ़ी नलीमें पानी भर कर उसका एक मुंह थाली पर डुबो दिया। दूसरे मुंहसे सरासर पानी थालीसे नीचे निकलने लगा और थाली ख़ाली हो गयी। ज्यों ज्यों थाली ख़ाली होती गयी पैसा कम दीखता गया और अंतमें बिलकुलही अदृष्य हो गया।

"अब देखो पानी निकाल देनेसे फिर पैसा अदृष्य हो गया है इससे यह बात प्रत्यक्ष है कि पानी और इसके सम्मिलन स्थानपरही ज्योतिकी किरण मुड़ जाती है। वास्तवमें यही होता है। संसारमें जितनीभी वस्तु हैं सब एक ही प्रकार की ठोस नहीं होतीं। जैसे १ सेर रुईका ढेर होता है और एक सेरही लोहेका छोटा टुकड़ा—कारण यह है कि लोहेके कण एक दूसरेसे गठे रहते हैं और रुईके गठे नहीं होते हैं। इस बातको हम लोग यों कहते हैं कि संसारकी सब वस्तुएँ समान घनी नहीं होतीं अथवा वस्तुओंका घनत्व एकसा नहीं होता। पानी और हवाके घनत्वमें भी भेद है।

"हमने देखा है कि जब तक ज्योतिकी किरणें पानीही पानीमें चलती हैं वह सीधी रहती हैं और जब तक हवाही हवामें चलती हैं तब तकभी सीधी रहती हैं। पर जहां पानी और हवाका मेल होता है वहां किरण मुड़ जाती है। यह हाल कोई भी भिन्न भिन्न वस्तुओंके सम्मिलन पर होता है। यदि तुम तिकोना कांचका टुकड़ा आखोंके आगे लगाकर देखो तो धरती सामनेको उठी हुई दीखती है। इसका कारण यह है कि ज्योतिकी किरण काचकी सतहपर अथवा काच और हवाके सम्मिलनपर मुड़ जाती है"।

व्याख्यान समाप्त हुआ। भूतराजका महत्व गांवसे उड़ गया। लोग सब अपने अपने घर लौटे। मैं भी बरकिट साहबके साथ हँसता बोलता अजमेर पहुंचा। हालमें फिर माशी जानेका अवसर मिला था वहां अब छोटे बच्चेभी थालीके पैसेका प्रयोग किया करते हैं। बच्चे खेल रहे थे। एक बरकिट साहबकी भांति व्याख्यान देने लगा। इसके व्याख्यानमें जो विज्ञानका अंकुर उगता देख मुझे आनन्द प्राप्त हुआ उसका वर्णन करना असम्भव है।

अलुआ (शकरकन्द)

[लेखक..."हलायुध"]

ईश्वरकी विचित्र महिमा है। विश्वमें कोई भी ऐसी वस्तु नहीं देख पड़ती जिससे कि हम उसकी महान् शक्तिका अनुभव न कर सकें। समय समयपर भांति भांतिके फल फूल तथा अन्नोंका देना उसकी परम दयालुता है। यद्यपि दैविक दुःखोंके आक्रमण वा हमारे पापोंके कारण आज दिन प्रायः हमको अतिवृष्टि वा अनावृष्टिसे खेतोंसे यथोचित अन्न नहीं मिलता तथापि ऐसे अवसरपर भी देशके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें या उसी पीड़ित देशमें कोई न कोई खाद्य वस्तु ऐसी भी उपज जाती है जिसको कि मनुष्य समुदायके साधारण जन अर्थात् बेचारे दीन किसान आहार करके अपना जीवन व्यतीत कर लेते हैं। इस प्रान्तमें १९०६ की वर्षाऋतु सैकड़ों वर्षतक लगभग सभीको परन्तु विशेषकर किसानोंको स्मरण रहेगी। दरभंगाका पूरा ज़िला तथा मुज़फ़्फ़रपूरका अधिकांश जब अतिवृष्टिसे अत्यन्त दुखित हो गया, सब धान मारा गया तथा अन्य भदईकी फ़सलेंभी मारी गयीं, किसानका डाला

हुआ बीजभी खेतसे नहीं निकला तब आश्विन तथा कार्त्तिक मासमें एक वस्तु अलुआ जिसको बिहारमें अन्यत्र कन्दा, युक्तप्रदेशमें शकरक़न्द बम्बईमें रतालू कहते हैं, ऐसा उपजा मानो खेतोंमें फट पड़ा। जो लोग बोते गये उन्होंने अधिक धन उपार्जन किया। बहुत लोग काल-करालके मुखसे स्वयं बचे तथा दूसरोंको भी बचा सके। मुजफ़्फ़रपूर निवासी एक हमारे विश्वासपात्र मित्रने हमसे वर्णन किया कि उनके खेतमें भी अलुआ ऐसाही पैदा हुआ था और उसी ज़िलेमें उनके परिचित एक निकट-वर्ती ग्रामवासीने ५ बीघे अलुआ बोकर ११००) रुपये प्राप्त किये।

मुझे इस ज़िला (दरभंगा) में रहते ६ वर्ष हुए। मैंने यह भलीभांति जान लिया कि इस प्रान्तमें यदि समस्त तिरहुतके नहीं तो दरभंगा और अधिकांश मुज़फ़्फ़रपूरके साधारण किसान प्रतिदिन अलुआहीका आहार करते हैं। उन लोगोंसे प्रायः वार्तालाप होनेसे मुझे निश्चय हुआ कि अलुआकी खेती तथा उसका आहार वे लोग निम्न लिखित कारणोंसे करते हैं।

(१) यह गुरु होता है अर्थात् खानेसे देर तक भूख नहीं लगती।

(२) साधारण अन्नकी अपेक्षा शरीरमें अधिक गरमी लाता है।

(३) स्वादिष्ट होता है और इसके साथ शाकादि अर्थात् तर्कारी वा मसाले की आवश्य-कता नहीं होती।

(४) ज़मींदार और किसान प्रायः मज़दूरोंको मज़दूरीकी जगहपर अलुआआही देते हैं।

(५) उसकी हरी हरी लतायें गाय भैंसोंको खि-लाकर उनको सन्तुष्ट करते हैं और उनसे उनका दूधभी अधिक मीठा और गाढ़ा हो जाता है।

पाठकवृन्द, इस अलुआकी कृषिके साधा-रण लाभ आपको उपरोक्त पंक्तियोंसे ज्ञात हो गये होंगे। परन्तु मेरी अभिलाषा यही नहीं है कि मैं आप लोगोंको केवल इन्हीं गुणों व लाभों-को दरसाकर आपकी रुचि आकर्षित करूँ। किंतु मेरा अभीष्ट यह है कि आपको विशेष-कर इसकी कृषिके मुख्य लाभ (Main objects) अर्थात् (१) कृषिकी सुगमता (२) व्ययकी अत्यन्त न्यूनता प्रकट हो जाय। इसलिए मुझे जो कुछ इसके विषयमें उचित समझ सर्वसाधारणके हितार्थ नीचे लिखता हूँ। सज्जन गण केवल विषयके आशयको ग्रहण करके इसकी खेतीका प्रचार शीघ्र अपने अपने गाँव और नगरमें करें तो अवश्य अधिक लाभ होगा—

जन्म भूमि—(Habritat)

अंग्रेज़ीमें इसको (sweet potatoes) स्वीट पोटोज़ कहते हैं। और अङ्गरेज़ी जानने वाले बनस्पति शास्त्रज्ञों (botanists) ने इसको (inpomea batata) इन्पोमिया 'बटाटास' कहा है। विशेषकर उन लोगोंकी सम्मति है कि इसकी जन्मभूमि (Brazil) ब्रेज़िल, (Chilli) चिली तथा (South Ameriea) दक्षिण अम्रीका है। और इस देशमें यह हालही में लाया गया है। पुस्तकोंके अव-लोकनसे उनका निश्चित सिद्धान्त तो यह भी प्रतीत नहीं होता वरन् जैसाकि (Dictionary of Economic Product) डिक्शनरी ऑफ इको-नामिक प्रोडक्ट्स् में प्रायः इसको (foreigu crop, acclimatised) विदेशी फ़सल जो लाकर लगायी गयी है कहा है उसके विदेशी होनेका कारण यह दरसाया गया है कि उसका संस्कृतमें नाम नहीं है। यह कारण भी इस विषयमें नहीं घटता। कई मुख्य कारणोंसे ज्ञात होता है कि अलुआ प्राचीन है तथा अनुमानसे यहभी कहा जा सकता है कि युगोंसे इसकी यहांपर कृषि होती चली आती है। कारण यह है—

(१) कन्द स्वयम् संस्कृत शब्द है

(२) जब श्री रामचन्द्रजीको बनवास हुआ तो उन्होंने अपनी प्रिया सीताजीसे बनाहार कन्दही बतलाया है। श्रीरामचन्द्रीजीको हुए सहस्रों वर्ष हुए, एवम् कन्दमूलकी कृषि चिरकालीन है।

(३) गांठगोभी (cabbage), शलजम (turnip) इत्यादि कई तरकारी सनातनधर्म्मावलेम्बी (orthodox) हिन्दूलोग विलायती होनेके कारण नहीं सेवन करते, परन्तु आज तक कोई भी हिन्दू गृहस्थ या सन्यासी ऐसा नहीं देखा या सुना गया जो कन्दमूलको विलायती कह कर न सेवन करें। किन्तु उसको तो रुचिपूर्वक प्रायः व्रतके दिनभी जहां कहीं जिस जिस देशमें प्राप्त होता है लोग आहार करते हैं।

(४) सात्विक होनेसे सन्यासी तथा बानप्रस्थ मनुष्योंका यह प्रिय आहार है और नदीतट और बनमें यह सुगमतासे उपजता है। अतएव जान पड़ता है कि जैसे ऋषि लोग दुग्धपानकेलिए अपने आश्रमोंमें गौएँ पालते थे वैसेही कन्दमूलभी लगाते होंगे। एवम् यह प्राचीन है।

जाति (Varieties)

अलुआ प्रायः दोही रंगका होता है लाल व सफ़ेद। तिरहुतमें अधिकतर सफ़ेदही बोया जाता है। परन्तु लाल सफ़ेदसे अधिक मीठा होता है। इसकी लता वा इसका आकार इस प्रान्तमें वैसाही होता है जैसा कि अन्य प्रान्तोंमें। कन्दमूलका मोटा या पतला होना लताके अच्छा लगने वा पुष्ट होने और विशेष कर भूमिके अनुकूल होनेपर निर्भर है।

कृषिके अनुसार इसके दो नाम हैं अर्थात् (१) अषाढ़ो जो पौष माघमें बोते हैं और ज्येष्ठ आषाढ़में खोदा जाता है (२) साही जो भादों कुआरमें रोपते हैं और पौष माघमें खोदते हैं।

इसकेलिए भूमि न बहुत ऊंची न बहुत नीची चाहिए। बराबर भूमिही इसकेलिए उत्तम है। यदि कुछ ऊंची हो तो हानि नहीं परन्तु अधिक नीची होनेमें पानी इकट्ठा हो जानेका भय और लताके सड़ जानेका भी सन्देह रहता है। नदीतटकी, वा अन्यत्रकी बलुई ज़मीन सर्वोत्तम है। दूसरी वह ज़मीन जो नीचे कुछ गीली होती है अर्थात् जिसमें आसानीसे जड़ बैठ जाय। तीसरी ज़मीन वह है जो उपरोक्तकी अपेक्षा कड़ी और ऊँची हो।

भूमिका बनाना (Treatment of the soil)

तिरहुतमें तो प्रायः अलुआके खेत बनाने या उसमें खाद डालनेकी चेष्टा तक भी किसान नहीं करते। परन्तु जब वे देखें कि धरती अनुकूल प्रतीत नहीं होती तो खेत बना लें। ऐसे खेतको भी अधिक नहीं दो एकबार जोतनेके पश्चात् खाद दे दें। खाद देना मानो सोना और सुगन्धका मेल है। सर्वोत्तम सस्ता खाद गोबर है। तत्पश्चात् कूड़ा और राख है। यद्यपि खादका अनुमान भूमिके ऊपर होता है तथापि १ बीघेकेलिए ७–८ गाड़ी खाद बहुत होता है।

समय Time

अलुआको भादोंके अन्त व आश्विनके आदिमें लगाते हैं, अगहन पौषमें खोदते हैं और पौष या माघमें लगाते हैं और ज्येष्ठ आषाढ़में खोदते हैं। सच तो यह है कि इस प्रान्तमें साल भरही अलुआका व्यवहार करते हैं। एकही खेतमें भी दो बार लगाते और खोदते हैं। परन्तु यह दीन ही किसान करते हैं जिनके अधिक खेत नहीं होता या जिनका अधिकतर आहार यही होता है।

लताका नाप और उसकी लगाने की रीति
Descriptein of cuttings and mode of planting.

डेढ़ दो बीतेकी (१५-१८ इंचकी) लता लेते हैं। यह लता या तो किसी किसानसे या

अपने यहांकी पहलोही फ़सलसे लीजाती है। बीतेका नाप बड़ा छोटा होता है। अतएव लत्ती लगानेकेलिए इस ढङ्गसे लें कि भूमिके ऊपर नीचे बराबर हो अर्थात् ऊपर $\frac{१}{३}$ और नीचे $\frac{२}{३}$ रहे। नीचे अधिक इसलिए रखते हैं कि लत्तीका कुछ अंश अवश्य भूमिमें दबकर जड़ पकड़ लेता है जिससे कि समयपर जड़ कन्दमूल होकर निकलता है। लत्ती लगानेमें न बहुत मोटी और न बहुत पतली हो। जड़की ओरकी लत्ती कदापि न लेनी चाहिए। जो लत्ती लगाये उनमेंकी छोटी गांठें पहलेही लगानसे अलग करलें। पंक्तिमें एक लताका दूसरेसे अन्तर प्रायः १२–१४ इञ्चका और एक पंक्तिका दूसरेसे अन्तर १६–१८ इञ्चका होना चाहिए। ज़मीनके ऊपरकी डंठी और पत्तियाँ ठंढक पाकर दिन दिन पनपती जाती हैं। एक मनुष्य एक देशी हल जिसका फाड़ चोखा हो लेकर चलाता जाता है और दूसरा आदमी लता लगाता जाता है और हेंगा चलाकर दबा देता है अथवा कुदालीसे मिट्टी खोदता जाता है और दूसरा आदमी लतियां लगाता जाता है। पुनः वही आदमी जो कुदाली चलाता है लौटते समय मिट्टी डालता और पांवसे दबाता जाता है।

सिंचाई (Irrigation)

पन्द्रह बीस दिनमें यदि पत्तियां लहलहाती दीख पड़ें तो पानीकी आवश्यकता नहीं रहती। हां यदि खेत ऊंची भूमिपर हो और पानीका पूर्ण अभाव देख पड़े तो पानी दे दें। पानी कदापि अधिक न दें अथवा इस ढंगसे दें कि कहीं परभी पानी एकत्र न हो जाय क्योंकि पत्तियां बहुतही कोमल होती हैं। उनके पानीसे सड़ने की संभावना रहती है।

निरौनी और उलट पलट (Weeding and turning of stems.)

कमैनी सोहनी वा निरौनी तभी तक करता रहे जब तक लताओंसे भूमि ढक न जाय। हां, डंडियोंको अवश्य छः सात दिनपर विशेषकर जब लतायें हरी भरी हों इसलिए उलटता पलटता रहे कि जगह जगहपर ज़मीनसे लगकर लताकी अनेक जड़ें न पैदा हों और कन्दमूल अर्थात् मूलजड़ अति क्षीण न हो जाय।

कन्दका पकना और उसका चिन्ह (signs of maturity and digging.)

जब कन्दमूल पककर खोदने योग्य हो जाता है तो प्रायः ऊपरकी डंठी कड़ी हो जाती है। पत्तियोंका रङ्ग पीला होने लगता है परन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण तो यही समझा जाता है कि उसके आस पासकी धरती फटने लगती है। कहीं कहीं ऊपरसे कन्दभी देख पड़ता है। इन चिन्होंके अतिरिक्त निश्चय करनेकेलिए दो एक जगह खोदकर देख लेना चाहिए। खोदनेकेलिए कुदालही काममें लाते हैं। यही उत्तम होती है।

सड़नेसे बचानेका उपाय (After treatment.)

यदि यह सड़ने लगता है तो खेतमें एक जगह बड़ा गड्ढा खोदकर रखदेते हैं और उसमें वायुका प्रवेश अवश्य होता रहता है। धूपभी लगती रहती है। कोई कोई उस मिट्टीकी कोठीमें रख देते हैं और ऊपरका ढकना अलग कर देते हैं। इस ढंगसे वह प्रायः सड़नेसे बच जाता है।

प्रति बीघा व्यय वर्णन (Cost of cultivation per bigha.)

	न्यूनसे न्यून रु०		अधिकसे अधिक रु०	
खेतकी बनाई	१।)	१॥।)	२॥)	३)
लताका मूल्य	१।)	१॥।)	४)	५)
लताकी लगवाई	१।)	१॥)	२)	२॥)
नराई	१।)	१॥)	२)	२॥)
सिंचाई	२)	२॥)	३॥)	४)
खोदाई	१॥।)	२)	२)	२॥)
	योग ८॥।)	१०॥)	योग १६)	१९॥)

प्रति बीघा प्राप्ति (outturn per bigha, in weight and money)

प्राप्ति (मन) २५ऽ २००ऽ
प्राप्ति (रुपया) ४०)-४५) २००)-२२५)

Late Mr. W Gollan (Supdt., Saharanpur Botanical Gardens) स्वर्गीय गालन साहब जो इस विषयमें प्रवीण और चतुर माने गये हैं लिखते हैं :—" The sweet potatoes will grow in any soil, but the sweetest and best flavoured tubers are produced in a sandy soil lightly manured" अर्थात यह (अलुआ) प्रत्येक ज़मीनमें उपज सकता है परन्तु सर्वोत्तम और स्वादिष्ट बलुई भूमिमें जिसमें थोड़ा खाद हो पैदा होता है। उनकी रायमें यह ३००० फ़ुट तककी भूमिमें उपज सकते हैं । आगे चलकर इस विषयमें अपने पुस्तकमें वह लिखते हैं " The tubers are ready to use in autumn and the early months of the cold weather, and as the variety of vegetables is then some what limited the sweet potato is deserving of more attention from the European than it at present appears to receive." [Vide "The Indian Vegetable Garden" 2nd Edn, 1896.] भावार्थ यह है कि अङ्गरेज़ लोगोंकोभी इसके कृषिपर अधिक ध्यान देना चाहिए । J. Mollison साहेब (भूतपूर्व I. G. A) अपनी पुस्तक "A Text book on Indian agriculture, vol. III" में इस विषयमें बहुत कुछ लिखते हैं ।

बिहारमें तथा युक्तप्रदेशमें विशेष कर काशीके समीप जहां नहरें नहीं हैं और अकालका बहुधा आक्रमण हुआ करता है या जहां कहींकी ज़मीन ऊंची और कड़ी होती है इसकी (शकरकन्द) कृषिका,कालसे बचनेकेलिए अवश्य प्रबन्ध करना चाहिए। ऐसे स्थानोंमें इससे बहुत लाभ तो होही होगा किन्तु जहाँ कहीं भूमि अनकूल होगी वहां तो लाभ का कहना ही क्या है।

Physics भौतिक शास्त्र]

नेत्राभास

[ले० वी० एस० तम्मा, एम. एस -सी०]

यदि हम अपने नेत्रोंकी रचनापर क्षणमात्र विचार करें तो हमें उस अनन्त शक्तिमान परब्रह्म परमेश्वरकी अप्रतिम बुद्धिपर आश्चर्य और उसके प्रति हमारे अन्तःकरणमें बड़ा आदर उत्पन्न होता है । सृष्टिमें मानवबुद्धि प्रणीत जितने यंत्र आज हमारे नेत्रोंकी वृद्धिकेलिए उपलब्ध हैं उनमें किसीसे भी हमारे नेत्ररूपी यंत्रकी तुलना नहीं हो सकती। हमें पदार्थोंके देखनेमें नेत्र जिस प्रकारकी सहायता देते हैं उसके समझनेकेलिए हमें अपने नेत्रोंकी रचनापर सूक्ष्मरीतिसे विचार करना चाहिए। हमारे नेत्रोंकी तुलना फ़ोटोग्राफ़िक केमरा नामक यंत्रके साथ जिससे पदार्थोंके छाया चित्र लिये जाते हैं खूब हो सकती है।

इस केमराके मुख्य भाग पांच हैं। प्रथम कांचका लेन्स या ताल (Lens), दूसरे पीतलकी एक खिड़की तीसरे लेन्स का ढक्कन चौथे एक कांचकी पट्टी जिसपर चांदी मिश्रित रासायनिक योगका पतलासा प्रलेप होता है, पांचवें एक चमड़ेकी धौंकनी*। जिस पदार्थकी

* केमराका आकार एक छोटेसे कमरेके सदृश होता है। उसके पार्श्वभागमें एक चौखट लगी होती है जिसमें कांचकी पट्टी लगायी जाती है। अपनी इच्छानुसार इसमें रासायनिक लेपयुक्त अथवा सादी धुंधली कांचकी पट्टी लगायी जासकती है। इस कमरेके आसपासकी दीवारें मुड़े हुए चमड़ेकी होती हैं । इन्हीं दीवारोंसे धौंकनीका काम लिया जाता है। इनकी सहायतासे चौखट आगे पीछे हटायी जासकती है। अगली दीवारमें एक गोल खिड़की

तसवीर लेनी होती है उसके समीप यह केमरा रक्खा जाता है लेन्सपरका ढक्कन निकाल कर उसके द्वारा पदार्थका प्रतिबिंब प्रथम सादी धुंधली कांचकी पट्टीपर लिया जाता है जिसपर रासायनिक लेप नहीं होता । धौंकनी द्वारा लेन्स और पट्टीके बीचका अन्तर तब तक घटाते बढ़ाते रहते हैं जब तक कि पट्टीपर पदार्थका प्रतिबिंब अत्यन्त स्पष्ट नहीं दीखता। इसके पश्चात् धुंधली कांचकी पट्टी निकालकर लेपदार कांचकी पट्टी केमरामें लगायी जाती है। इस रसायनके प्रलेपका विशेष गुण यह है कि इस पट्टीके जिन जिन भागोंपर प्रकाशकी किरणें पड़ती हैं उन उन भागोंपर एक प्रकारका विशेष प्रभाव होता है केमराके समीपस्थ होनेसे कांचकी पट्टीके जिन भागोंपर उसका प्रतिबिंब पड़ता है उन्हीं भागोंपर प्रकाशकी किरणें अपना विशेष प्रभाव दिखलाती हैं । फिर इस पट्टीको निकालकर दूसरे मसालोंसे धोनेपर उसका प्रतिबिंब स्पष्ट व स्थायी बन जाता है । इसके बाद इस लेपदार पट्टी परकी प्रतिमूर्तिकी सहायतासे कागज़ोंपर तसवीरें ली जाती हैं। ऊपर लिखे हुए वर्णनको पढ़कर केमराकी सहायतासे तसवीर कैसे ली जाती है इसका मोटा ज्ञान सुगमतासे हो सकता है। अब हमको इस बातका विचार करना चाहिए कि हम अपने नेत्रों द्वारा पदार्थोंकी तसवीर अपने मस्तिष्कमें किस प्रकार खींचते हैं। कहा जा चुका है कि हमारे नेत्रोंकी रचना एक केमराके सदृश है। जैसे केमरामें लेन्स रहता है उसी प्रकार हमारे नेत्रोंमें पारदर्शकद्रव पदार्थसे भरा हुआ एक लेन्स होता है। इसी लेन्सकी सहायतासे हमारे दृष्टिगोचर पदार्थोंका प्रतिबिंब लेन्सके पार्श्वभागमें स्थित एक विशेष पटपर जिसे 'रेटिना' (retina) अर्थात् नेत्रपटल कहते हैं पड़ता है। जो कार्य केमरामें लेपदार कांचकी पट्टी करती है वही काम यह परदा हमारे नेत्रोंमें करता है। जैसे केमरामें लेन्सके आगे लगी हुई खिड़कीके द्वारा लेन्सका थोड़ा वा अधिक भाग, जैसा चाहें, खुल सकता है वैसेही हमारे नेत्रोंकी पुतलीपर भी एक खिड़की होती है जिसकी सहायतासे हम उन्हें सिकोड़ अथवा फैला सकते हैं। जब जब हम अत्यन्त प्रकाशित या चमकती हुई वस्तुकी ओर देखते हैं तो हम उन्हें आकुंचित कर लेते हैं जिससे हमारे नेत्रोंमें थोड़ेही प्रकाशकी किरणें प्रविष्ट हों। जब हमें अंधेरेमें किसी वस्तुकी ओर देखना पड़ता है उस समय हम अपनी पुतलीको जहां तक बन सकता है खोलकर देखनेका प्रयत्न करते हैं। यह तो भली भांति विदित होगा कि ऐसे समय हमें निहार निहार कर देखनेकी आवश्यकता होती है। जैसे कि केमरामें लेन्सको ढकनेकेलिए एक ढक्कन होता है वैसेही हमारे नेत्रोंपर पलकें होती हैं। इनकी सहायतासे हम अपनी इच्छानुसार आंखोंको खोल अथवा बन्द कर सकते हैं। केमरामें लगे हुए ढक्कनसे जैसे लेन्सकी रक्षा होती है वैसेही यह पलकभी हमारे नेत्रोंकी रक्षा करते हैं। यदि हमारे नेत्रोंको हानि पहुंचानेकी कोई इच्छा करे तो उसी समय हमारे पलक आंखोंको बन्द करके बचाते हैं। हमारे पलकोंपरके बालभी नेत्रोंके खुले रहनेपर पवनके झकोरोंसे पड़ने वाले धूलि कणोंको उनमें पड़नेसे रोकते हैं।

यहां तक तो केमराकी और हमारी आखोंकी

होती है, इसमें एक पीतलकी नली लगी रहती है। इसी नलीमें प्रथम लेन्स लगा होता है उसके आगे ही पीतलकी खिड़की होती है। इस खिड़कीकी सहायतासे इच्छानुसार लेन्सके थोड़े अथवा अधिक भागपर प्रकाशकी किरणें डाली जासकती हैं। अन्तमें इस नलीके सिरेपर एक ढक्कन होता है जिसके द्वारा हम अपनी इच्छानुसार लेन्सको खोलकर निकाल सकते हैं।

रचनामें साम्य है परंतु इन दोनोंमें कुछ महत्वके भेद भी हैं। ऊपर कह चुके हैं कि केमरामें एक धौंकनी होती है। पदार्थोंके और लेन्सके बीचके अन्तरके अनुसार इस धौंकनीकी सहायतासे लेन्स और कांचकी पट्टीका अन्तर तब तक बदला जाता है जब तक उनका स्पष्ट प्रतिबिंब पट्टी पर न पड़े। परंतु हमारे नेत्ररूपी केमरामें लेन्सके पार्श्वभागमें स्थित जो परदा होता है, उसके और लेन्सके बीचका अन्तर नहीं बदला जा सकता। मनुष्यके बनाये हुए लेन्समें केवल इतनीही शक्ति होती है कि उसकी सहायतासे किसी विशिष्ट अन्तरपर स्थित पदार्थोंके प्रतिबिंब किसी अन्य विशिष्ट अन्तरपरही बन सकते हैं। इसीके कारण जब पदार्थोंका और लेन्सके बीचका अन्तर बदल जाता है तब उन पदार्थोंका स्पष्ट प्रतिबिंब कांचकी पट्टीपर लेनेकेलिए उससे लेन्सका अन्तरभी बदलना पड़ता है। परन्तु परमेश्वरके बनाये हुए हमारे नेत्ररूपी केमरामें एक ऐसा लेन्स रक्खा गया है कि जिसकी सहायतासे, पदार्थों और नेत्रोंके लेन्सका अन्तर चाहे १० गज़ हो अथवा दशलाख गज़ हो, पदार्थकी स्पष्ट तसवीर हमारे नेत्रोंके परदे-पर पड़तीही है। यह सत्य है कि यदि कोई वस्तु हमारे नेत्रके अति समीप लायी जाय तो हमारे नेत्र उसे स्पष्ट नहीं देख सकते। परन्तु हमारे नेत्रोंमें एक ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा हम उस पदार्थको जिसका अन्तर हमारे नेत्रोंसे १० इंचसे अधिकहो साफ़ साफ़ देख सकते हैं। समीपस्थ वस्तुके देखते देखते यदि हम एकाएक बहुत दूर-स्थित वस्तुकी ओर देखने लगें तो हमें अपने नेत्रों-के लेन्समें कुछ फेरफार अवश्य करना पड़ता है परंतु यह काम इतने सहजमें हो जाता है कि हमें जानभी नहीं पड़ता। इस विशिष्ट शक्तिके होनेके कारणही हमारे नेत्रोंमें धौंकनीकी आव-श्यकता नहीं होती। लेन्सके पार्श्वभागमें स्थित जो परदा होता है उसका संबंध बहुतही सूक्ष्म तंतुओंके द्वारा हमारी मज्जासे है। जब किसी वस्तुका प्रतिबिंब उस परदेपर पड़ता है तो उस प्रतिबिंबका बोध हमारी मज्जाको इन तंतु-ओंके द्वारा होता है। हमारे नेत्रोंमेंका लेन्स नेत्रपटलपर केवल तसवीरही बनाता है उसका बोध होना इन तंतुओंपरही निर्भर है। इतनाही नहीं वरन इस प्रतिबिंबके बनने और हमारी मज्जाको इसका बोध होनेमें कुछ कालकी भी आवश्यकता होती है। यदि कोई वस्तु हमारे नेत्रोंके सन्मुख बहुतही थोड़े काल तक ठहरे तो उसका ज्ञान हमारी मज्जाको और फलतः हमारे अन्तःकरण-को ठीक ठीक नहीं होता। परंतु ठीक ठीक बोध होनेकेलिए बहुत समय नहीं लगता है। काँचके लेन्ससे जो सच्चा प्रतिबिंब बनता है वह वस्तुके सानुरूप तो होता है परंतु उलटा होता है। उदाहरणार्थ यदि किसी वस्तुका आकार आकृति (१) † के सदृश हो तो उसका प्रतिबिंब आकृति (२) † के तुल्य होगा। हमारे नेत्रोंके लेन्ससे भी उसी प्रकारका प्रतिबिंब बनता है परंतु इस प्रतिबिंबका जो बोध हमें मज्जा तंतुओंके द्वारा होता है वह उलटा नहीं होता। इसी कारण हमें वस्तुएँ ज्योंकीत्यों दिखायी देती हैं। हमारे अवलोकनमें यह भी एक विशेषता है कि किसी वस्तुके हमारी दृष्टिसे हटा दिये जानेपर भी कुछ काल तक उसका प्रतिबिंब हमारे नेत्रोंको दिखायी देता है जिससे उस वस्तुके भिन्न भिन्न भागोंको देख उन्हें भली भांति समझ सकें। नेत्रोंकी रचना इतनी उत्तम होनेहीके कारण हमें जो जो वस्तुएँ नेत्रोंसे दीखती हैं उनके अस्तित्वपर तिलमात्रभी सन्देह नहीं रहता। इसी कारण इस जगतमें 'चक्षुर्वैसत्यं' सिद्धान्त सर्वत्र प्रसिद्ध है। तिसपर भी हमें नेत्रोंसे कभी कभी मिथ्याभास भी हुआ करते हैं। प्रस्तुत लेखमें उनमेंसे कुछ थोड़े उदाहरणोंका जिनमें

ऐसे मिथ्याभास होते हैं उल्लेख किया जायेगा। नेत्रोंको मिथ्याभास होनेके कारण अनेक हैं। प्रथम वस्तुके दृष्टिके सामनेसे हट जानेपर भी हमारे नेत्रोंको उसके दीखनेका आभास होना, दूसरे और पदार्थोंका दृश्य वस्तुओंके समीप होना, तीसरे किसी पदार्थके भिन्न भिन्न भागोंपर भिन्न भिन्न प्रमाणोंसे प्रकाशका पड़ना, चौथे भिन्न भिन्न रंगोंका पास पास होना, पाँचवें द्विनेत्र दृष्टिका होना, छठे प्रकाश शास्त्रके अनुसार किरणोंके प्रतिफलन (reflection) और परावर्तन (refraction) से उद्भूत आभासोंका होना इत्यादि। अब हम इनमेंसे एक एकको ले कर उदाहरणोंके साथ विचार करेंगे।

प्रथम तो किसी वस्तुके दृष्टिसे बाहर होनेपर भी उसका प्रतिबिंब हमारी आंखोंमें कुछ काल तक बने रहनेसे अनेक आभास होते हैं। साधारणतः निरोग मनुष्योंको वस्तुओंके हटानेपर लगभग $\frac{1}{8}$ सेकेंड तक उस पदार्थका प्रतिबिंब दीखता रहता है। उदाहरणार्थ यदि हम एक लकड़ीका टुकड़ा, जिसका कि एक सिरा जलता हो, लेकर ऐसे घुमायें कि घूमनेका मार्ग अंडेकी शकलका हो जाय तो हमें ऐसा भास होता है कि हमारे नेत्रोंके सन्मुख प्रज्वलित अग्निकी आकृतिही स्थित है। इसका कारण केवल यही है कि उस लकड़ीको ऐसी आकृतिपर एक बेर घुमानेमें $\frac{1}{8}$ सेकेंडसे कम समय लगता है। यदि इसमें समय $\frac{1}{8}$ सेकेंडसे अधिक लगे तो हमें संपूर्ण आकृति दृष्टिगोचर न हो। इसी घटनाके कारण हमें पुस्तकोंके पढ़नेमेंभी सुगमता होती है, क्योंकि थोड़ी देर तक जैसे जैसे हम आगे पढ़ते जाते हैं, पहले पढ़े हुए अक्षरोंका प्रतिबिंब दीखते रहनेके कारण उनके मनन करनेको हमें अवकाश मिलता है। ऐसा न होता तो हमें पुस्तक पढ़ते पढ़ते बार बार ठहर कर पुस्तकमें लिखी हुई बातोंका मनन करके समझनेकी आवश्यकता होती। इसी घटनाका उपयोग कई प्रकारके यंत्रोंमें जिससे कि चलते फिरते चित्र दिखलायी देते हैं, किया जाता है। किसी दृश्य विशेषके थोड़े थोड़े कालके अन्तरपर ली हुई तसवीरें शीघ्र और यथानुक्रम हमारे नेत्रोंके सन्मुख लायी जांय तो ऐसा ज्ञात होता है कि मानो उसी दृश्यको देखते हों और उसके अन्तर्गत जीव यथाशक्ति चलते फिरते हों। उदाहरणार्थ इस विषयमें इतनाही कहना पर्याप्त होगा कि बायस्कोप (bioscope) में हमें अनेक चित्र इसी प्रकार दिखलाये जाते हैं और हमें इसी कारण उसमें चलते फिरते चित्रोंको देखनेका भास होता है। इसमें विशेष बात केवल यह है कि परदेपरके एक चित्रको हटाकर दूसरा सामने लानेमें समय इतना कम लगता है कि हमारे नेत्रोंको 'एकही चित्र दीखते हैं वा अनेक' इसका ज्ञान ठीक ठीक नहीं होता। आतिशबाज़ीमें जो चित्र विचित्र प्रकारके भिन्न भिन्न रंगोंसे प्रज्वलित फूल और झाड़ दिखलायी देते हैं उनका असली कारण भी यही है। इस बातके और भी अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं।

दूसरा कारण जिससे हमारे नेत्रोंको आभास होता है, अन्य पदार्थोंका दृश्य वस्तुओंके समीप होना है। इस घटनाको उदाहृत करनेके-लिए कई उदाहरण उपलब्ध हैं। जैसे यदि दो उन्नतोदर वा नतोदर वक्र रेखाओंके बीच दो समानान्तर रेखाएं खींची जावें तो इन रेखाओंके सान्निध्यके कारण समानान्तर रेखाओंका अन्तर सम मालूम नहीं होता। दो उन्नतोदर रेखाओंके बीचकी समानान्तर रेखाओंका अन्तर मध्यभागमें कम मालूम होता है, और वैसे ही नतोदर रेखाओंकी समानान्तर रेखाओंके मध्यभागमें अन्तर अधिक मालूम होता है। आकृति (६) की ओर देखनेसे लम्बी समानान्तर रेखाएं समीप-

आकृति (६)
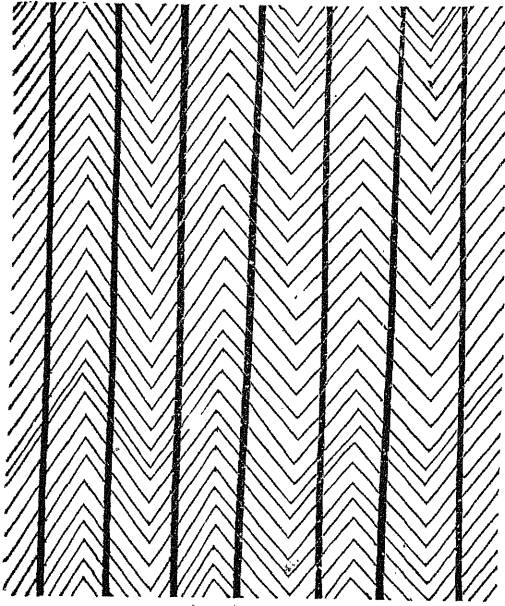
वर्ती रेखाओंके कारण टेढ़ी मालूम होती हैं। अन्य रेखाओंके सान्निध्यसेही यह समानान्तर रेखाएं टेढ़ी मालूम होती हैं यह सिद्ध करनेके लिए केवल इस कागज़को आँखोंकी सीधमें लाकर देखनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारसे देखनेसे अन्य रेखाएं इन समानान्तर रेखाओंके साथही नहीं दीखती, अतएव ये रेखाएं सीधी दिखायी देती हैं। आस-पासकी रेखाओंके देखनेसे उनमेंके अन्तरोंका ठीक ठीक अनुमान हमारे नेत्रोंको नहीं होता।

वैसेही यदि कोई रेखा क ख [आकृति-(७)] खींचकर उसे काटनेवाली दो समानान्तर रेखाएँ ट ठ, ब भ खींची जांय और उसके पश्चात् क ख। जो भाग इनका दोनों रेखाओंके वीचमें हो
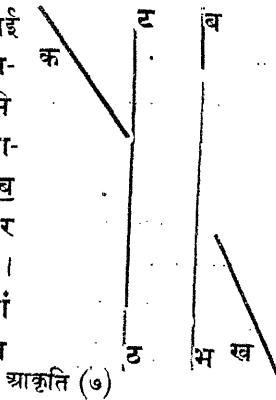
आकृति (७)

वह मिटाकर यदि क ख रेखाकी ओर देखें तो ऐसा भान होता है कि उसके दोनों टुकड़े एक सीधमें नहीं हैं किन्तु एक दूसरेसे ऊपर नीचे हैं।

इसका और एक उदाहरण यह है कि यदि काग़ज़का एक चौकोन टुकड़ा लेकर उसके छः भाग किये जायें और किसी फीके रंगका हाथ संपूर्ण कागज़पर फेरा जाय, फिर दूसरी बार ८/६ भागपर, फिर तीसरी बार ४/६ भागपर, फिर चौथे बार ३/६ भागपर, फिर पांचवे बार २/६ भागपर, फिर छठे बार १/६ भागपरही फेरा जाय और उसकी ओर देखें तो उसका एक एक भागही एक ओर रंगमें हलका और एक ओर गहरा मालूम होता है। इसका कारण केवल यही है कि किसी भागका जो हिस्सा गहरे रंगवाले भागके समीप है वह उसके समीप हलका जान पड़ता है वैसेही जो भाग हलके रंगवालेभागकी ओर है वह उसके सामने गहरा दिखायी देता है।

तीसरा कारण मिथ्याभासका पदार्थोंकेभिन्न भिन्न भागोंपर भिन्न भिन्न प्रमाणसे प्रकाशका पड़ना है। इसके उदाहरणार्थ यदि किसी कागज़-पर दो वृत्त एक सफ़ेद व दूसरा काला खींचा जाय, तो उस कागज़की ओर देखनेसे ऐसा भान होता है कि सफ़ेद वृत्त काले से बड़ा है। और यदि सफ़ेद वृत्त काले कागज़पर और काला सफ़ेद कागज़पर खींचा जाय तो हमें इसका आभास बहुत सुगमतासे होता है। अथवा किसी काले कागज़पर सफ़ेद लकीर, और, उतनीही मोटी सफ़ेद कागज़पर काली लकीर खींची जाय तो हमें ऐसा भान होता है कि सफ़ेद लकीर काली लकीरसे मोटी है।

वैसेही यदि हम सूर्यका प्रतिबिंब किसी तारके खम्भेपर डालकर उसकी ओर देखें तो ऐसा भान होता है कि जितने भागपर सूर्यका

प्रतिबिंब पड़ता है उतने भागकी मोटाई बहुत कम है। आकृति (८) में उस दृश्यका चित्र दिया गया है। यदि तारके थम्भेके बदलेमें किसी बारीक तारकी ओर देखें तो ऐसा जान पड़ता है कि मानों तारके दो टुकड़े हैं और जितने भागपर प्रतिबिंब पड़ता है उतने भागपर तार है ही नहीं। इसी घटनाका और एक उदाहरण यह है कि जो प्लाटिनम धातुका पतला तार थोड़ी दूरसे पतला होनेके कारण दिखायीनहीं देता वही तार, यदि विद्युत शक्तिका प्रवाह करके प्रकाशित किया जाय, तो बहुत मोटा दीखने लगता है और जिस कमरेमें हो उस कमरेमें रक्खी हुई वस्तुओंके देखनेकी सामर्थ्य
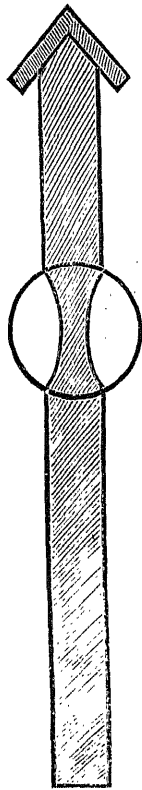
आकृति (८)

देता है। इन सब घटनाओंका भीतरी कारण यह है कि प्रकाशित वस्तुके द्वारा आस पासका प्रकाश रहित भाग प्रकाशित हो जाता है अतएव प्रकाशित वस्तु हमारे नेत्रोंको बड़ी मालूम होती है।

चाथा कारण जिससे मिथ्याभास होते हैं वह भिन्न भिन्न रंगोंका पास पास होना है। किसी चित्रमें लाल रंगकेपास हरारंग अथवा नीलेके पास नारंगी वा पीलेके पास बैंगनी रंग हो तो दोनों रंग अधिक चमकते हुए मालूम होते हैं क्योंकि इनमेंसे एकरंग दूसरे की न्यूनताको पूरी करता है। उदाहरणार्थ लालरंगमें हरेका मिश्रण होनेसे सफ़ेदका भान होता है। जो कमी लालरंगमें होती है वह हरेके पास होनेसे मिट जाती है। ऐसे रंगोंमें (complementary colours) विशेष गुण यह होता है कि वे एक दूसरेकी चमकको बढ़ाते हैं। ऐसाही भास नीले और नारंगी और पीले और बैंगनीके पास पास होनेसे होता है। यदि हमारे नेत्रोंके सन्मुख दो लकड़ियाँ एक आठ इंच और दूसरी पौन फुट लम्बी साथ साथ रक्खी जांय तो इन लकड़ियोंमें छोटी लकड़ीकी कम लम्बाईकी ओर हमारा ध्यान अधिक जल्दी जाता है। आठ इञ्चकी लम्बाई जो दोनों लकड़ियोंमें वर्तमान है उसकी ओर हमारा ध्यान इतना शीघ्र नहीं जाता जितना कि दूसरी लकड़ीके एक इञ्च अधिक लम्बाईकी ओर जाता है। इसी प्रकार किसी रंगकी ओर देखते समय नेत्रोंका ध्यान उस रंगको सफ़ेद बनानेकेलिए किस रंगकी आवश्यकता है इसकी ओर अधिक शीघ्र जाता हैं। यदि पासका रंग ऐसा हो कि दोनोंके मिश्रणसे सफ़ेद रंगका भान होता है तो उस दशामें ये रंग एक दूसरेकी न्यूनताको पूरी करते हुए अधिक चमकदार मालूम पड़ते हैं*। परन्तु यदि पास पास ऐसे रंग न हों और इनके बदले और और रंग हों जैसे कि नीला और पीला, तो नीला रंग बैंगनी और पीला नारंगीसा मालूम होने लगता है। जैसे नीले रंगको सफ़ेद बनानेकेलिए लाल और पीलेकी आवश्यकता होती है वैसेही पीलेको सफ़ेद बनानेकेलिए लाल और नीलेकी आवश्यकता होती है। नीले और पीले रंगोंमें आपसकी न्यूनताको दूर करनेकी शक्ति न होनेके कारण हमारे नेत्र इन रंगोंको देखते देखते थक जाते हैं और उन्हींमें लाल रंग, जिसे इनमें मिलानेसे सफ़ेद रंग बनता है, देखने लगते हैं। अतएव नीले रंगमें कुछ बैंगनी और पीलेमें कुछ नारंगी झलक दिखायी देने लगती है।

* क्योंकि दो वस्तुओंकी ओर देखते समय हमारे नेत्र तुलनात्मक दृष्टिसे देखते हैं।

ऐसीही यदि किसी सफ़ेद कागज़पर लालरंगकी आकृति हो और हमारे नेत्र उसकी ओर एकाग्र दृष्टिसे कुछ समय तक देखें और इसके पश्चात् यदि वह तसवीर एकाएक हटादी जाय और उसके स्थानपर सफ़ेद कागज़ रक्खा जाय तो हमारे नेत्रोंको उस सफ़ेद कागज़पर हरा चित्र दीखने लगता है। इसका भी कारण यही है कि लाल चित्रकी ओर देखते देखते हमारे नेत्र थक जाते हैं और सम्मुख रखे हुए सफ़ेद कागज़मेंके लाल रंगको देखनेको असमर्थ होकर उसपर हरे रंगका चित्र देखने लगते हैं।

और भी यदि हम किसी सफ़ेद कागज़पर काली आकृति खींचकर उसकी ओर कुछ देर तक एकटक देखें तो हमें ऐसा भास होता है कि मानो हमारे नेत्रोंके सन्मुख काले कागज़पर सफ़ेद आकृति खिंची है। इसकाभी कारण यही है।

भिन्न भिन्न रंगोंके पास पास होनेसे हमारे नेत्रोंको कैसा जान पड़ता है, इस बातका जानना हमारे चित्रकारोंकेलिए अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसके जाननेसे वे अपने चित्रोंकी ऐसी व्यवस्था कर सकते हैं जिससे चित्र नेत्रोंको मनोहर मालूम होने लगें।

अब तक जितने मिथ्याभासके कारण ऊपर लिखे गये हैं वे एक या दोनों नेत्रोंको दीख सकते हैं परंतु कुछ ऐसीभी घटनाएं हैं कि जिनमें हमें दो नेत्र होनेके कारण मिथ्याभास होते हैं। इसका एक अति सरल उदाहरण यह है कि यदि हम कागज़की पौनइञ्चके लगभग मोटी और पांच इञ्च लम्बी नली बनाकर दोनों नेत्रोंको खोल अपनी दाहिनी आंखसे उस नलीमें देखें और अपने बांये हाथकी हथेली उस नलीके मध्य भागपर बाहरकी ओर लगाकर रक्खें तो हमें ऐसा भास होता है कि मानो कागजकी नली हमारी हथेलीमेंही होकर पार निकली हो। यदि किसी कमरेमें रखे हुए विस्तृत पदार्थकी ओर दो ओरसे देखें तो एक ओरसे उस वस्तुका दाहिना भाग अधिक और दूसरी ओरसे बांया भाग अधिक दीखता है इसी प्रकार हम किसी वस्तुको अपनी दाहिनी आंखसे देखते हैं तो उस पदार्थका दाहिना हिस्सा अधिक व बांयी आंखसे बांया हिस्सा अधिक दिखलायी देता है। जब हम अपने दोनों नेत्रोंसे देखते हैं तब इन्हीं दो दृश्योंके मिश्रणसे हमें पदार्थोंको मोटाईका ज्ञान होता है। इसी सिद्धान्त पर 'स्टीरास्कोप' (stereoscope) नामक यंत्रकी रचनाकी गयी है। किसी दृश्यकी दोनों ओरसे ली हुई दो तसवीरें ऐसे दो कांचोमेंसे, जिनके द्वारा पदार्थ अपने वास्तविक आकारकी अपेक्षा अधिक बड़े दिखायी देते हों, देखी जाती हैं। इस प्रकारके देखनेसे दोनों तसवीरोंका सम्मिश्रण होकर उन दो सपाट तसवीरोंके बदलेमें हमारे नेत्रोंको मोटाईसे युक्त एकही दृश्य दीखने लगता है। वास्तविक सपाट तसवीरोंका इस प्रकारसे दीखनेका कारण केवल द्विनेत्र दृष्टिही है।

आकृति ९
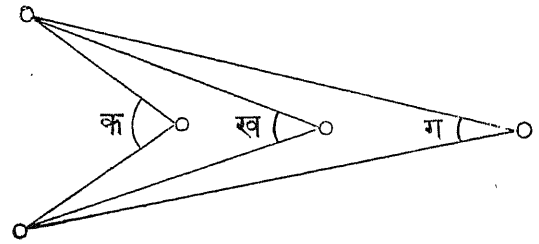
इसके अतिरिक्त हमारे नेत्र वस्तुओंके आकारका अनुमान उस कोणसे करते हैं जो नेत्रोंसे उस वस्तु तक खींची हुई रेखाओंमें होता है। जैसे जैसे वस्तु हमारे नेत्रोंके समीप आने लगती हैं वैसे वैसे यह कोण बड़ा होता जाता है (आकृति ९)। यदि हम किसी मैदानमें होकर जाती हुई रेलकी पटरियोंकी ओर देखें तो हमें ऐसा मालूम होता है मानों रेलकी पटरियोंका अन्तर घटता जाता हो।

अन्तमें मृगजलादि जो आभास हमारे नेत्रोंको होते हैं वे प्रकाश शास्त्रके अनुसार

किरणोंके प्रतिफलन और परावर्तनसे होते हैं। यथार्थमें इन्हें नेत्राभास नहीं कह सकते क्योंकि इन दृश्योंका समर्थन प्रकाश शास्त्रके नियमानुसार किया जा सकता है। यदि हम इनकी भी अभासोंमें गणना करें तो हमें जो काँचके दर्पणमें अपने चेहरेका प्रतिबिंब दिखायी देता है उसकोभी अभासोंमेंही गिनना पड़ेगा, क्योंकि वास्तवमें प्रकाशकी किरणें दर्पणमें होकर उसके पार्श्वभागमें नहीं जातीं किंतु उनके दर्पणपर पड़ने और वहाँ से उनका प्रतिफलन होनेके कारण यह प्रतिबिंब दीखने लगता है। अर्थात् हमें प्रतिबिंबका भासही होता है परन्तु वहाँ प्रतिबिंब नहीं होता। शास्त्रके नियमोंके अनुसार होने वाले आभासोंको वैज्ञानिक घटनाओंकी संज्ञा दी जा सकती है।

नेत्रोंको मिथ्याभास दिलाने वाले कुछ कारणोंका उल्लेख ऊपर किया गया है और उनको उदाहृत करने वाली कुछ घटनाओंका भी वर्णन किया गया है। इनको छोड़कर नेत्रोंको आभास होनेके कारण और भी अनेक हैं। आशा है कि हमारे प्रिय वाचक इन उदाहरणोंको पढ़कर इसी प्रकारके अन्य उदाहरणोंके ढूँढने और उनके समझनेका प्रयत्न करेंगे।

पहाड़ों का बनना और बिगड़ना

[ले० श्री० राधामोहन गोकुलजी]

विज्ञान न जानने वालोंकेलिए पहाड़ बहुत ही बड़े और शाश्वत होते हैं। किन्तु विज्ञानकी दृष्टिमें न इतने बड़े ही होते हैं न बहुत दिनों तक स्थिर ही रहते हैं। उनकी निगाहमें तो वे कीचड़के उन कीटोंके समान हैं जिन्हें वर्षा जब चाहे बना दे या बिगाड़ दे।

जब हम पहाड़ोंके जीवनकी दीर्घतापर विचार करते हैं तो हमें सिद्ध होता है कि पहाड़ शाश्वत (कभी नाश न होने वाले) नहीं होते। अपेक्षाकृत उनकी थोड़ीही उमर होती है। वैज्ञानिकोंने हिसाबकरके देखा तो ज्ञात हुआ कि एण्डीस (Andes) पहाड़की भी बड़ी भारी भीत ६ करोड़ वर्षमें घिसकर अदृश्य हो जायगी। नव करोड़ वर्ष इस जगतीतलकी आयुमें ऐसे ही हैं जैसे हमारे दिन रातमें एक पहर।

फिर जहाँ विज्ञान न जानने वाले पहाड़ोंके बड़प्पन, भारीपन और अचलता या स्थिरताकी इतनी अत्युक्ति करते हैं, वहाँ वे इनके ढालकी बड़ाईमें भी कसर नहीं छोड़ते। हम बहुधा लोगोंको कहते सुनते हैं कि अमुक पहाड़की अमुक चोटी सीधी लम्बाकार खड़ी है। परन्तु विज्ञानकी दृष्टिमें किसी भी पहाड़की चोटी ऐसी नज़र नहीं आती जिसकी ढाल ३० कक्षासे अधिक हो। जिनकी ढाल ४० कक्षासे अधिक है उनमें प्रायः चट्टाने ही हैं।

तथापि जहाँ उसने विज्ञानके न जानने वालोंके धोकोंको यों मिटाया है वहाँ वह पहाड़ोंकी प्रतिष्ठा भी करता है क्योंकि इन पत्थरके अंकोंमें उन बलवान बनाने और बिगाड़ने वाली शक्तियोंका महत्त्वपूर्ण इतिहास लिखा हुआ मिलता है जिन्होंने धरतीको सांचोंमें ढाला और ढालती जा रही हैं। इन पहाड़ोंके बनाव बिगाड़ोंमें विज्ञानको धरा परिवर्तन संबंधी सार्वभौम कारीगरीका पता लगता है।

विज्ञानकेलिए यह प्रश्न कि पहाड़ कैसे बन गये बड़ा ही मनोरंजक और हृदयग्राही है। चाहे पहाड़ धरतीके देखते कितने ही छोटे क्यों न हों, चाहे पहाड़ युगके देखते क्षण ही क्यों न प्रतीत होते हों, यद्यपि पृथ्वी उस समयसे है जब कि चन्द्र आदि ग्रहोंने जन्म लिया और जल सिमिट सिमिट कर समुद्र बना, तो भी

यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि पहाड़ बने तो कैसे बने। इस प्रश्नकी मीमांसा ऐसा होनी चाहिए जो धरतीके प्रादुर्भाव और समुन्नतिके साथ ठीक ठीक जोड़ खाती हो। भूमण्डलपर खुरखुरे पहाड़ उपत्यका अधीत्यका सहित कैसे पैदा हो गये इसीकी हमें मीमांसा करनी है।

पहले तो हम उपस्थित प्रश्नकी मीमांसा-केलिए पहाड़ों और पहाड़ी शृङ्खलाओंके भूकृत् (geology) सम्बन्धी लक्षणोंपर ध्यान दें तो थोड़े ही अनुभवसे बड़ी बड़ी महत्व-की बातें निकलती हैं। हम देखते हैं पहाड़ोंके तीन भेद माने जा सकते हैं प्रथम ऐसे पहाड़ जो वृष्टिके द्वारा और पासकी मिट्टीके सिमिट-कर एकत्र होनेसे बने जान पड़ते हैं। जैसे रोरायमा (roraima) पहाड़। इन्हें बहाऊ पहाड़ कह सकते हैं। दूसरे वह पहाड़ जो धरतीके भीतरकी आगके कारण निकले हुए पदार्थोंसे बन गये हैं, जैसे भारतका ज्वाला-मुखी पहाड़ जो पञ्जाब में है; इन्हें संग्रहित पहाड़ कह सकते हैं। तीसरे प्रकारके पहाड़ ऐसे होते हैं जैसे हिमालय जोकि तलस्थ चट्टानोंसे बन गये हैं। इन्हें तलोत्थि पहाड़ कह सकते हैं। पहाड़के इन तीन भेदोंमेंसे अन्तिम ही बड़े महत्त्वका है क्योंकि सभी पहाड़ोंकी शृङ्खला इसी प्रकारकी हैं। अतः जब हम पहाड़ोंके प्रादुर्भावकी मीमांसा करने लगें तो तलोद्भूत पहाड़ोंकी ही व्याख्या करनी बहुत ज़रूरी जान पड़ती है।

इस प्रकारके पहाड़ोंकी तलोद्भव-प्रकृति-का खोज बड़ी ही आश्चर्य्य वर्द्धक है क्योंकि जान पड़ा है कि इस प्रकारके पहाड़, जैसे अल्पाचल और हिमालय, किसी समय समुद्रकी तलीमें पड़े थे। यह ऐसी अचम्भेकी बात है कि जब तक इसका आकाट्य प्रमाण न मिले विश्वास नहीं हो सकता। पर नहीं, इस बातके इतने पुष्ट प्रमाण हैं कि हम किसी प्रकार इसकी सत्यतामें सन्देह ही नहीं कर सकते। जब हम बड़ी बड़ी पहाड़ी शृङ्खलाओंको देखते हैं तो वह तलछटकी परतोंसे बनी मिलती हैं। यह तलछटें ऐसी हैं जो कभी निस्सन्देह समुद्रकी तलीमें जा बैठी होंगी। इनमें केवल इस प्रकारकी तहपर तह ही नहीं जमकर पक्की पड़ गयी प्रत्युत अनेकों तहें, जैसा हमने कहा है, चूना, समुद्री जीवोंके कचकड़ों और जल जन्तुओंकी हड्डियोंके योगसे बनी मिलती हैं। इस प्रकारके पथराये हुए जलीय पदार्थ युरोप-के अल्पाचल पर १००० फ़ुट और हमारे हिमा-लयपर १६५०० फ़ुट ऊँचे पाये गये हैं।

अब हम तीसरे प्रकारके विचित्र पहाड़ोंका ही वर्णन करते हैं जो कि समुद्रकी तलीमें तलछटके जमा होनेसे बनते हैं। सब तलछट जो समुद्रकी तलीमें जाकर गिरती है, चाहे बालू (silica) हो चाहे हड्डीका चूना (lime-shell) चाहे और कोई चीज़ हो, नदियों और बरफ़की चद्दरोंके पिघले पानीके प्रबल प्रवाहसे ही समुद्रमें पहुँचती हैं। इन पथरीली चीज़ोंको नदियाँ प्रायः पहाड़ और पहाड़ियोंसे ही काटकर लाती हैं। इस तरह हमें दूसरी बात यह भी मालूम होती है कि नदियाँ केवल नये पहाड़ बनाती ही नहीं प्रत्युत पुराने प्रस्तुत पहाड़ों और पहाड़ियों-को विनष्ट भी करती हैं और मसाला ले जाकर नये पहाड़ोंका निर्म्माण करती हैं। ठीक जैसे ईंट पजावेसे ले जाकर मनुष्य दूसरी जगह घर बनानेमें व्यवहार करता है वैसे ही नदियाँ भी पहाड़ बनानेमें करती हैं। जो पदार्थ घोंघे डोबरके चट्टानोंको बनाते हैं उनकेलिए भी नदियोंने पहाड़ोंको तहस नहस करके मसाला पहुँचाया था और इस तरह पहाड़ोंको जौ जौ भर बनाया है।

हमने नदियोंका जो बिगाड़नेका काम अभी अनुमानसे देखा है उसे जब याद करते हैं और

इस बातको भी याद करते हैं कि गंगा और ब्रह्मपुत्र हर वर्ष समुद्रमें १६॥ करोड़ मन कीचड़ मिट्टी पहुँचाते हैं (अमेरिकाकी महानदी मिसिसिपी हर वर्ष अनुमान इसका ६ गुना अर्थात् एक अरब मनके लगभग कीचड़ मिट्टी समुद्रको देती है) तो हमें विश्वास होता है कि समयान्तरमें सहस्रों मील हिमालय बनानेके योग्य कीचड़ मिट्टी समुद्रमें पहुँच जाती है। अब हमें इस बातके समझनेमें कठिनाई पड़ती है कि कीचड़ और मिट्टीका इतना आश्चर्य्यजनक भारी बोझ समुद्रमें जाकर इतना ऊँचा कैसे उठ गया। इसे तो चपटा पड़ा रह जाना था न कि तहपर तह जमकर आकाशसे बातें करता पहाड़ बन जाना!

जब हम इन तलोद्भूत पहाड़ोंकी जाँच करते हैं तो देखते हैं कि इनकी अनेकों परतें प्रायः सदा टेढ़ी बाँकी, झोलझुर्रीदार और टूटी फूटी बनी रहती हैं। आदिमें जब यह समुद्रमें जमा हुई होंगी अवश्य ही चपटी और बेंड़ी तहें पड़ी होंगी। अब हम इन्हें उठी हुई खड़ी देखते हैं। हमें ऐसी तहें मिलती हैं जो अवश्य सबके तले रही होंगी पर अब सबके ऊपर हैं। हम ऐसी भी तहें पाते हैं जो टूटी हैं और सैकड़ों हज़ारों फ़ीटके अन्तरपर जा पड़ी हैं। इस तरह हर प्रकारके तोड़ फोड़ और स्थान परिवर्त्तन हमें प्रत्यक्ष होते हैं। इसलिए सिद्ध होता है कि निस्सन्देह प्रचण्ड शक्तियोंने ही इन तलछटी तहोंको ऊपर उठाया होगा। यह शक्ति निस्सन्देह बड़ी प्रचण्ड होगी तब तो बड़ी बड़ी ठोस चट्टानें झुक, सिकुड़ और टूट गयीं हैं। अनेक पहाड़ी शृङ्खलाएँ तो जान पड़ती हैं कि कई बार नीचे से ऊपर, ऊपरसे नीचे, पटकी और उठायी गयी हैं, क्योंकि इस अनुमानके आधार रूप अनेक चिह्न पाये जाते हैं, जैसे एक तलछटकी तहें दूसरी तहोंपर बेंड़ी पटकी हुई मिलती हैं जिससे कोई झुक गयी हैं, कोई सिकुड़ गयी हैं और कोई टूट गयी हैं। इन सब प्रमाणोंसे इनका बारम्बार गिरना व उठना सिद्ध होता है। अब हम इन पतनों और उत्थानों और उन शक्तियोंके जिन्होंने इनकी गतिमें काम किया कारणोंका कैसे पता लगायें? गौरीशंकर शिखर और ब्लैंक पहाड़ोंकी शिकनोंका कारण कैसे ढूढें? यह पहाड़ प्राचीन समुद्रसे वहिर्गत हुए हैं।

ऐसी कोई बात नहीं मिलती जिससे हम अनुमान कर सकें कि यह स्तरीभूत चटानें पहाड़ी शृङ्खलामें ही किसी भीतरी प्रचण्डताके ऊपर सीधी रेखामें उठानेके करण टेढ़ी और शिकनदार होगयी हैं। सच तो यह है कि चट्टानोंकी सिकुड़नें और लपेटें इस प्रकारकी हैं जो इस अनुमानका प्रतिवाद करती हैं। सब तरहपर ऐसे ही अनुमानके कारण मिलते हैं कि यह चटानें किसी बग़ली दबावके कारण वक्र और विद्रूप हुई हैं। इनकी बहुत कुछ समता मेज़की उस चादरसे होती है जिसे किसीने दोनों हाथोंकी तर्जनीसे एक साथ इस तरह रगड़ा हो जिससे उसमें झुर्रियाँ व शिकनें पड़ गयीं हो। एक विद्वानने इस बातको उदाहरणसे प्रत्यक्ष करनेकेलिए एक भारी बोझके नीचे कपड़ेकी तहें रखीं और बाहरसे बग़ली दबाव डाला, तो अनुमान ठीक निकला। कपड़ेपर जो शिकनें पड़ीं वह वारिक शहर (Warwickshire) के समुद्री घाटके सैलूरियन स्तरसे बहुत घनिष्ट समता रखती थीं।

इटली देशके एक भूवृत्तज्ञने रबड़के टुकड़ेको खूब खींचकर फैलाया। उसने उसपर गीली मिट्टीकी तहें जमायीं और यह बात प्रत्यक्ष करके दिखलायी कि जब रबड़का टुकड़ा सिकुड़ता है तो मिट्टीकी तहें तोड़ मरोड़ कर ठीक वैसीही उलट पलट प्रकट करती हैं जैसी कि हमें बड़ी पहाड़ी शृङ्खलामें देख पड़ती हैं।

इसी प्रकार अनेक विद्वानोंके नानाभाँतिकी

परीक्षासे दृढ़ अनुमान किया गया है कि यह सब बग़ली दबावका ही फल है जो चट्टानोंमें हमें टेढ़े, बांके शिकन, और मरोड़ दीखते हैं।

इस तरहपर यह सिद्धान्त ठहराया गया है कि धरतीकी तहपर शिकनोंका कारण बग़ली दबावही है, और इसीका परिणाम पहाड़ी शृङ्खलाओंका ऊँचा उठना है। यहाँ तक तो न विद्वानोंका कोई मत भेद है न कोई कठिनाई ही है। मत भेद जाकर तब पैदा होता है जब हम बग़ली दबावके ठीक कारणकी खोजकेलिए चेष्टा करते हैं।

डाँड़ीके अद्भुत खेल और उसका सिद्धान्त

तुलादंड और तौलने की रीतियाँ
(गतांक से आगे)

[ले० अ० महावीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी. एल्. टी.]

पहले भाँति भाँतिके तराज़ूकी बनावट और तौलनेकी बिधियाँ कही जाती हैं। इस सम्बन्धमें एक बात और सन्देहकी रहगयी है। कभी कभी चलती हुई रेलगाड़ीपर इन्सपेक्टर आ जाते हैं और यह जाँच करते हैं कि कोई यात्री ऐसा तो नहीं सवार है जो बिना टिकटके है या जिसके पास बोझा नियमके विरुद्ध अधिक है। यह लोग बड़ी आसानीसे २०, ३० सेरका बोझा एक छोटेसे हुकमें लगाकर तौल लेते हैं और फिर उस हुकको जेबमें रख लेते हैं। भला इस हुकसे भारी भारी बोझोंका पता वह कैसे चलाते हैं?

वह केवल हुक नहीं है। उसमें एक और पेंच रहता है जो दूरसे नहीं दिखायी पड़ता। ऐसे यन्त्रको पैकेट-बैलेन्स अथवा स्प्रिङ्गबैलेन्स कहते हैं। हिन्दुस्तानी भाषामें इसका नाम जेबी-तराज़ू अथवा कमानीदार तराज़ू कहा जा सकता है। इसकी बनावट बहुतही विलक्षण और सरल है। इसमें साधारण तराज़ूकी भाँति पलड़ा, घुमाव इत्यादि कुछभी नहीं रहता और न डंडी ही रहती है। इसके बनानेका नियमभी अब तक जो नियम तौलनेके सम्बन्धमें बतलाये जा चुके हैं उनसे जुदा है। चूंकि तौलनेका विषय कहा जा रहा है और पैकेट-बैलेन्ससे तौलनेका काम लिया जाता है इस लिए यह बतला देना उचित है कि इसमें तौलनेकेलिए कौनसी युक्ति होती है।

यह बतलाया जा चुका है कि पदार्थोंमें भार होनेका कारण पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति है और आकर्षणशक्ति (खिंचाव) उसके परिमाणके घटने बढ़नेसे घटती बढ़ती है अर्थात् यदि किसी पदार्थपर आकर्षण शक्ति 'क' है तो उसके आधेपर (आधे परमाणुओंके साथ आकर्षण शक्ति 'क' की आधी होगी। इसका यह तात्पर्य्य हुआ कि आकर्षणशक्तिसे पदार्थके परिमाणका पता चलता है। कमानीदार तराज़ूसे किसी पदार्थका खिंचाव नापकर उसके तोलको जिस प्रकार जान लेते हैं उसीका वर्णन नीचे दिया जाता है।

किसी खींचनेसे फैल जाने वाली चीज़को यदि दो लड़के अपना पूरा पूरा बल लगाकर अलग अलग खींचें तो क्या उनसे बलका अनुमान नहीं किया जा सकता? मान लो कि रबड़का एक टुकड़ा लिया गया, जिस लड़केसे यह अधिक बढ़ेगा वह अधिक शक्तिमान् नहीं है। इसी प्रकार यदि रबड़के एक सिरेपर पहले एक पदार्थ लटकाया गया जिससे रबड़ एक इंच बढ़ गया और फिर दूसरा पदार्थ लटकाया गया जिससे वह आधा इंच बढ़ा तो समझना चाहिए कि दूसरी वस्तुका भार (खिंचाव) पहली वस्तुके भारका आधा है। बस, जेबी-तराज़ूमें ऐसीही एक युक्ति है जिसमें भिन्न भिन्न पदा-

Mechanics यंत्रशास्त्र]

थोंके लटकानेसे भिन्न भिन्न खिंचाव अथवा फैलाव होता है और इसी फैलावके हिसाबसे पदार्थोंका भार भी समझा जाता है। पर जेबी-तराज़ूमें रबड़ नहीं प्रयोग किया जाता। इसका कारण एकतो यह है कि रबड़ बहुत फैलता है इसलिए फैलावको नापनेकेलिए बड़ा भारी प्रबन्ध होना चाहिए, दूसरे यह कि बहुत फैलनेसे रबड़ पतला भी होजाता है जिससे भारी पदार्थोंके भारको नहीं सह सकता और टूट जाता है, इत्यादि। इन सब बुराइयोंको दूर करनेकेलिए लोहेका तार प्रयोग किया जाता है। लेकिन लोहेका तार खींच कर फैलाना ऐसा वैसा काम नहीं है। हां, एक युक्तिसे यह ऐसा बनाया जा सकता है कि जिससे आसानीसे बहुत सिकुड़ जाता है और फैल जाता है। यदि किसी पतले तारका एक सिरा पेन्सिलपर बायें हाथसे अंगूठेसे दबाया जाय और तारको पेन्सिलके चारों ओर लपेटा जाय तो उसका रूप 'अ' चित्रकी भाँति हो जायगा। इस रूपमें यह खींचनेसे बढ़ जाता है और छोड़नेसे सिकुड़कर अपनी प्रथमावस्थाको ग्रहण कर लेता है। एक बात इसमें ध्यान देने योग्य यह है कि यदि तार बहुत पतलाहो और भारी चीज़ लटकायी जाय तो इतना फैल जाता है कि चीज़के हटा लेनेपर भी यह सिकुड़कर प्रथमावस्थामें नहीं आता किन्तु कुछ बढ़ जाता है। इसलिए तारमें उतनी भारी चीज़ लटकानी चाहिए जिसके हटालेनेपर वह सिकुड़ कर पहली अवस्थामें चला जाय। यदि बहुत मोटा तार रक्खें तो हलकी चीज़ोंके लटकानेसे वह कुछ फैलताही नहीं। इसलिए जेबी तराज़ू भी हलके और भारी दो तरहके बनाये जाते हैं। हलके तराज़ूके तार पतले होते हैं और हलकी चीज़ोंके तौलनेके काम आते हैं और भारी तराज़ूके तार मोटे होते हैं और भारी चीज़ोंके तौलनेमें प्रयोग किये जाते हैं।

जेबी तराज़ूके भिन्न भिन्न अवस्थाओंके चित्र
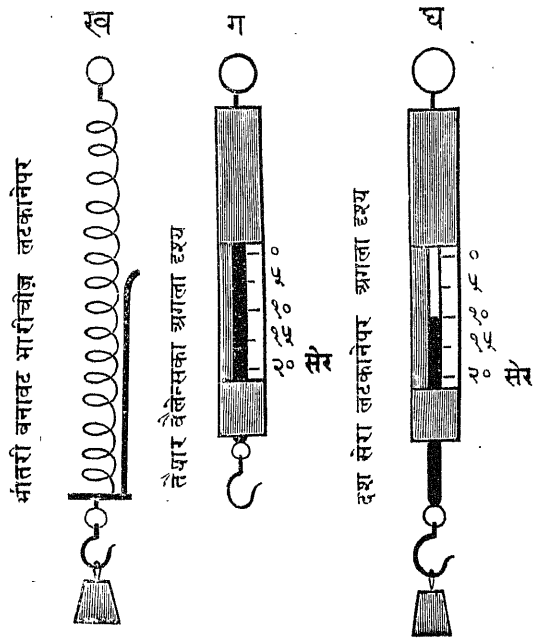
देखनेसे मालूम होता है कि वह एक लपेटा हुआ चक्करदार तार है जिसका ऊपरी सिरा सीधा है। इसीपर एक छल्ला जोड़ा हुआ है इस छल्लेके द्वारा कुल यंत्रको किसी खूटीमें टाँग सकते हैं। निचले सिरेपर भी एक छोटासा छल्ला जुड़ा हुआ है जिसमें एक कटिया (हुक) लगी हुई है। इसी कटियामें छल्लेदार बाट लटकाये जाते हैं। नीचेके सिरेपरसे एक सीधा चपटा लोहा जुड़ा हुआ है जिसके दूसरे किनारेपर नोक है। यह चपटा लोहा तारमें और किसी स्थानमें नहीं जुड़ा है। इसलिए जब नीचेकी कटियामें बाट लटकाते हैं तो चक्करदार तारके बढ़नेसे चपटे लोहेकी नोक नीचे खसक आती है जैसा 'ख' चित्रसे प्रकट होता है। 'ग' चित्रमें यह दिखलाया गया है कि नोक जिस बाटके लटकानेसे जिस स्थानपर आती है उसी जगह उस बाटका परिमाण लिख देते हैं। 'घ' चित्रमें नोक जिस

स्थानपर दस-सेरा लटकानेसे चली आयी है वहाँ दस सेर निशान बना हुआ है। इसी भाँति और निशानोंको समझ लेना चाहिए।

तौलनेकी साधारण प्रचलित रीतियाँ और उनके गुण दोष—बनिया अथवा और किसी मनुष्यको जब बहुतसा अनाज तौलना होता है तो सब अनाज एकही पलड़ेसे नहीं तौलते, वरन् जब आधा तोल चुकते हैं तब तराज़ू फेर देते हैं अर्थात् जिस पलड़ेपर पहले बाट रक्खे हुए थे उस पर अनाज रखते हैं और अनाजके पलड़ेपर बाट। यह क्यों?

तराज़ूके दोषसे तौलनेमें जो गड़बड़ हो सकता है उसीको रोकनेकेलिए फेर कर तौलते हैं। यह बात बतलायी जा चुकी है कि तराज़ूकी डंडी ऐसी होनी चहिए कि बीचो-बीच (जहाँ छेद रहता है और जिस स्थानसे डंडी घूमती है) थाँमने या लटकानेसे वह पृथ्वी-तलसे समानान्तर हो तभी घुमावसे बराबर दूरीपर बराबर भारकी चीज़ोंको दोनों सिरेपर लटकानेसे वह फिर समानान्तार होगी। किन्तु साधारण व्यवहारमें इन बातोंका ठीक रखना कुछ कठिन है; कारण यह है कि प्रयोगसे कोई पलड़ा अधिक घिस जाता है और कोई कम। इससे दोनों पलड़ोंके भारमें असमानता हो जाती है। दूसरे यह सम्भव है कि डंडीके बीचोबीच घुमावका छेदनहोकर तनिक सा इधर उधर हो जाय अथवा डंडीके खरादनेमें कसर पड़ जानेसे घुमावका छेद बीचोबीच रहनेपर भी वह समानन्तर पर न लटक सके। इन सब दोषोंसे तौलमें बहुत अन्तर पड़ सकता है। यदि डंडी ठीक खरादी गयी है और घुमावका छेदभी ठीक स्थानपर है किन्तु पलड़े असमान घिस गये हैं तो जो पलड़ा हलका होजाता है उसको दूसरेके बराबर करनेकेलिए पसंघा रखकर भारी कर देते हैं। इसकेलिए यातो वे तौलते समय कुछ कंकड़ी या अनाज रख देते हैं या उस पलड़ेके पेंदामें कुछ लगा देते हैं या उसकी डोरीमें कौड़ियां बांध देते हैं। यदि आधी चीज़ एक पलड़ेपर रखकर तौलें और फिर फेरकर आधी चीज़ दूसरे पलड़ेपर तो भी कोई हानि नहीं होती।

किन्तु यदि तराज़ूकी डंडी उचित रीतिसे न खरादी गयी हो और पलड़े घुमावसे बराबर दूरीपर न लटकाये गये हों और ख़ाली तराज़ूके देखनेसे पसंघा भी न मालूम होता हो तो ऐसे तराज़ूसे तौलनेमें बेचनेवाले या ख़रीदनेवाले किसीको अवश्य हानि होगी। कदाचित् फेरकर तौलनेसे भी तोल ठीक न उतरे। यह सब बातें ठीक ठीक जाननेकेलिए गणितकी सहायता लेनी होगी। इसलिए कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) एक तराज़ूके पलड़े घुमावसे ९ इंच और १० इंचकी दूरीपर हैं। जब ख़ाली तराज़ूको लटकाते हैं तब डंडी धरातलसे समानान्तर रहती है अर्थात् कोई दोष नहीं दीख पड़ता। ऐसे तराज़ूसे फेरकर अनाज तौलनेवालेसे बेचनेवाले और ख़रीदनेवालेमें से किसको हानि होगी?

मान लो कि १ सेरका बाट पहले 'क' पलड़ेपर रक्खा गया और अनाज 'ख' पलड़ेपर जिसका तोल यथार्थमें 'त' है तो नियमानुसार यह सम्बन्ध हुआ, १ सेर × ९ इंच = त × १० इंच ...... (१)। दूसरी बार फेरकर तौलनेसे एक सेरका बाट 'ख' पर चला जायगा और अनाज 'क' पर। इस बार यह सम्बन्ध होगा, १ सेर × १० इंच = ता × ९ इंच [दूसरी बार वाले अनाजका तोल यथार्थमें 'ता' है]

(१) सम्बन्धसे 'त' $= \frac{९ \text{ सेर}}{१०} = \frac{९}{१०}$ सेर

(२) " 'ता' $= \frac{१०}{९}$ सेर

दोनों बारमें मिलाकर कुल अनाजका तोल 'त' + 'ता' हुआ जो $\frac{९}{१०}$ सेर + $\frac{१०}{९}$ सेरके बराबर है अर्थात् $\frac{१८१}{९०}$ सेर वा २$\frac{१}{९०}$ सेरके बराबर है। अब बनिया तो समझता है कि ख़रीदारको २ सेर अनाज मिला किन्तु यथार्थमें उसको २$\frac{१}{९०}$ सेर या २ सेर १ तोलाके लगभग मिला। इसलिए ऐसे तराज़ूसे जिसमें पलड़े घुमावसे असमान दूरीपर हों बनियाको टोटा होगा और ख़रीदारको यदि वह फेरकर अनाज तौलवाये तो लाभ होगा। किन्तु यदि वह दूरवाले पलड़ेपर सदैव अनाज रखकर तोले तो प्रतिसेर $\frac{१}{१०}$ सेर कम दिया करेगा और यदि पासवाले पलड़ेपर अनाज रखकर तौला करे तो ख़रीदारको प्रतिसेर $\frac{१}{९}$ सेर अधिक जाया करेगा।

एक युक्ति ऐसी है जिसको करनेसे तराज़ूमें दोनों प्रकारके दोष होते हुए भी बेंचनेवाले और ख़रीदनेवाले किसीको हानि नहीं पहुँच सकती। वह यह है—एक पलड़ेपर बाट रखदो और दूसरेपर इतना बोझा (कंकड़ी, ईंटोंके टुकड़े अथवा अनाजही) रख दो कि डंडी समानान्तर हो जाय। अब बाटको हटालो और इसके स्थानमें वह पदार्थ रक्खा जिसको तौलना हो। जब तक उतना पदार्थ न रक्खा जायगा जितना उस हटाये हुए बाटका भार है तब तक डंडी धरातलसे समानान्तर न होगी। इस तरह १ सेर, २ सेर, ४ सेर मन दो मन इत्यादि तकके तौलनेमें कोई असुबिधा न होगी और न कोई हानि पहुँचेगी। घी इत्यादि तौलना हो तो इसी नियमके अनुसार इस तरह तौल सकते हैं। जिस बर्त्तनमें घी तौलना हो उसको और जितना घी तौलना हो उतने बाटको एक ही पलड़ेपर रक्खो और दूसरे पलड़ेपर इन्हीं दोनोंका धरा बाँधनेकेलिए ईंटोंके टुकड़े इत्यादि रखते जाओ, यहाँ तक कि डंडी समानान्तर हो जाय। इसके पश्चात् बाटोंको हटालो और बर्तनमें घी भरते जाओ, जब डंडी फिर बराबर हो जाय तो घीका रखना बन्द कर दो। जितने बाट रक्खे हुए थे उतनाही घी अब बर्तनमें है। अङ्गरेज़ी भाषामें इसको डबल-वेइङ्ग (Double weighing) कहते हैं। अपनी भाषामें इसे "दोहरा तोल" कह सकते हैं।

सार—अभी तक केवल दो प्रकारके लीवर-(lever) का वर्णन किया गया है। पहले वैसा लिया गया है जिसमें घुमाव-विन्दु बीचमें रहता है, बल-लगानेवाला भाग (दस्ता) एक किनारे घुमावसे बहुत दूर रहता है और काम करनेवाला भाग घुमावके पासही रहता है। दूसरे प्रकार वाले लीवरमें घुमाव एक सिरेपर रहता है, बल-लगानेवाला भाग दूसरे सिरेपर और काम-करनेवाला भाग बीचमें घुमावके पास। इन दोनों प्रकारके लीवरमें बल लगानेवाला भाग कामकरनेवाले भागकी अपेक्षा घुमावसे दूर रहता है, इसलिए ऊपर सिद्ध-किये हुए नियमके अनुसार थोड़ेही 'बल' से अधिक काम निकल सकता है। एक तीसरे प्रकारका भी लीवर होता है जिसमें घुमाव एक सिरेपर होता है, काम करनेवाला भाग दूसरे सिरेपर और बललगानेवाला भाग बीचमें। ऐसे लीवरके द्वारा अधिक बल लगानेपर थोड़ा काम निकलता है। इन तीनोंका चित्र भी दिया जाता है जिससे यह भेद अच्छीतरह ध्यानमें जम जाय—

'क' को काम करनेवाला भाग अथवा बोझा उठानेवाला भाग, 'ब' को बल लगाने वाला भाग और 'घु' को घुमाव-स्थान समझना चाहिए।

पहले प्रकारके लीवरके कुछ उदाहरण—
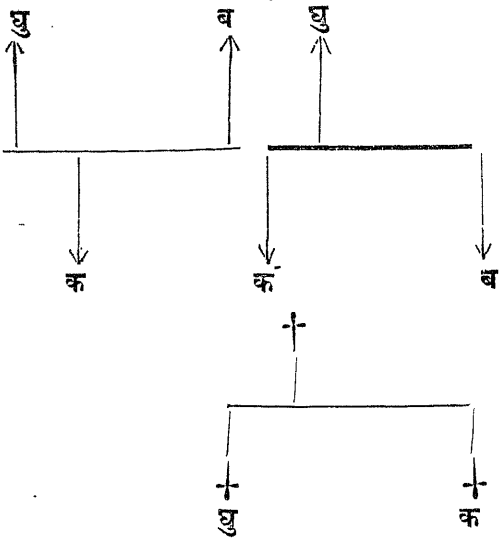
अकेला—लोहारकी धौंकनी, चिउड़ा कूटने-

चित्र २

का मूसल, रम्मा जो एक किनारेके पास कुछ झुका हुआ रहता है और इसी झुके हुए भाग-को पृथ्वीमें अड़ाकर उसके पास वाले सिरेसे दबी हुई रेलकी पटरियोंको ऊपर उभाड़ते हैं और दूसरे सिरेपर बल लगाते हैं; स्टेशनोंपरके तराजू इत्यादि।

दोहरे—कैंची, सोनार या लोहारके चिमटे, सँडसी इत्यादि।

दूसरे प्रकारके लीवरके उदाहरण—

अकेला—सीधा रम्मा।

दोहरा—सरता।

तीसरे प्रकारके कुछ उदाहरण—

अकेला—मनुष्यका हाथ जब वह कोई बोझा उठाता है। इसमें काम करनेवाला भाग हथेली है जिससे पकड़कर या जिसपर रखकर बोझा उठाते हैं, घुमाव-स्थान किहुनीपर है जहां हाथ घूमता है और बल किहुनीके नीचे नसोंके द्वारा लगाया जाता है जो काम करते समय उठ आती है और साफ़ साफ़ दीख पड़ती हैं।

दोहरा—पाकशाला (रसोई) का चिमटा वा सँडसी - इनमें उठानेवाला भाग एक सिरे-पर रहता है, घुमाव दूसरे सिरेपर और बल लगानेका स्थान अथवा जहाँ मनुष्य हाथ लगा-कर चीज़ोंको उठाता है वह कहीं बीचमें होता है।

साझेकी खेतीसे लाभ

कृषि-सहकार वा खेती-भंडार

[ले० विज्ञान-कल्पतरु सम्पादक श्रीयुत मुख़्तार सिंह वकील, मेरठ]

(गताङ्क से सम्मिलित)

(१) पुस्तकालय—इस पुस्तकालयमें कृषि संबंधी सब पुस्तकें इकट्ठी की जांय और सब सभासदोंको पढ़नेकेलिए तथा मोलभी दी जाया करें। कृषिसंबंधी समाचारपत्रभी मंगाये जांय और सबके पास पढ़नेको भेजे जांय।

(२) रसायन विभाग—इसका प्रबन्ध किसी विद्वानके हाथमें हो जो बतलाये कि किस खेतमें किस फ़सलके बोनेसे लाभ होगा और उसमें क्या खाद डालना उपयोगी होगा। इस विभा-गकी खेत पीछे कुछ फ़ीस बांधदी जाय जिसमें इस विभागपर जो कुछ व्यय हो प्राप्त हो जाया करे।

(३) बिक्री विभाग—इन सब गावोंमें जो कुछ बिक्री और ख़रीद हो वह सब इस कृषि संबंधी कार्य्यालयके द्वारा हुआ करे और इसके अधिकारी अधिकसे अधिक मूल्यपर माल बेचनेका प्रयत्न करें और बाज़ारोंमें जो अनेक छल किसानोंके साथ होते हैं, न होने पायें। उनको यह ध्यान रखना होगा कि किस वस्तुका भाव घटता बढ़ता है तथा किस वस्तुकी बाज़ार-में किस प्रकारकी आवश्यकता है। उन्हें चाहिए कि वह अपने सभासदोंको उत्तम उपज बाज़ारके योग्य बनानेके तरीक़े सिखलायें। जैसे, यदि

किसी किसानके यहां कई तरहका कपास है ते उनका कर्त्तव्य है कि वे उसे अलग अलग करें और उसके अनुसार उचित मूल्यपर बेंचें। बाज़ारोंमें मालको लेजाकर अथवा देसावरको सीधाही लादकर भेजदें। इस तरह जो बिक्री हो उसमें निश्चित भाग कार्य्यालयमें जमा होता रहे।

(४) खाद विभाग—खेतोंकेलिए खाद बड़ी ही उपयोगी वस्तु है किंतु भारतवर्षमें गोबरकी खादके अतिरिक्त और किसी खादसे काम नहीं लिया जाता। गोबरकी खाद ऐसी बुरी तरहसे डालदी जाती है कि उसमेंसे सारा अमोनिया उड़ जाता है और गाँवके पास पड़े रहनेसे वायुको बिषैली करके रोगका कारण हो जाता है। जो किसान खादके महत्व-को भली भांति जान भी गये हैं काफ़ी खाद न मिल सकनेसे अधिक लाभ उठा नहीं सकते। हड्डी, पत्ते आदिकी खादभी बनाना आरम्भ किया जाय तो बड़ा लाभ हो। मेरे विचारमें कूड़ा करकट गोबर आदि उठानेका काम इस भंडारके आधीन हो और वह अपने आधीन गाँव गाँव खत्ते बनाये। उसका यह कर्त्तव्य हो कि हर एक घरकी सफ़ाई पूरीहो सके और पशुओंका मूत्र पत्तों, रेत आदि द्वारा खादमें पहुंचता रहे। पानी, धोवन आदि सब-का प्रबंध इस भंडारके आधीन हो और वह प्रत्येक किसानके कूड़ेकी मात्राके अनुसार उनको खाद दिया करे और जो खाद वह आप तैयार करे उसे सभासदों और किसानोंके हाथ बेच दिया करे। ऐसे प्रबंधसे भारतमें अनेक रोग शांत हो जायंगे, खाद उत्तम और पर्याप्त मात्रामें मिलसकेगी। हड्डी अब बाहर न जाकर भारतकी उपज बढ़ा सकेगी तथा नीमकी निबौली, जामनकी गुठलियां, पत्ते इत्यादि इकट्ठे करके खाद बनाये जा सकेंगे। यदि अनेक रासा-यनिक खादोंको काममें न भी लाया जाय और बनाना कुछ दिनों तक न भी आरम्भ हो तो भी इस विभागसे बड़ा भारी लाभ हो सकता है।

(५) बीज विभाग—भारतवर्षमें बीज रखने-की प्रथा बड़ी पुरानी है और हर एक किसान यह चाहता है कि वह अपने खेतका उपजा हुआ बीजही अगली फ़सलकेलिए रक्खे। यद्यपि यह प्रथा बड़ीही उपयोगी थी किंतु अब प्रत्येक वर्षकी अनावृष्टि, कीड़ा लगना आदि कारणोंसे लाभदायक होनेके स्थानमें हानि कारक हो रही है। बहुतसे वर्षोंमें कोई जिन्स बिलकुल उत्पन्न नहीं होती। ऐसी दशामें किसान जैसा बीज बाज़ारसे मिलता है ख़रीद कर बोते हैं। उनके खेतोंकी पैदावार अच्छी न हुई हो तो भी वह अपनाही ख़राब बीज बोनेके-लिए रखते हैं। आवश्यकता यह है कि उत्तमसे उत्तम बीज बोनेकेलिए रक्खा जाय और यह तभी हो सकता है जब कृषि भंडार उत्तमसे उत्तम बीज प्रत्येक वर्ष फ़सलके दिनोंमें ऐसे खेतोंका लेकर रक्खे जिनमें कोई रोग न हुआ हो तथा बीजमें और किसी अन्य बीजोंकी मिलावट न हो। यह बीज या तो जिस क़ीमत-पर लिया गया है उसपर कुछ मुनाफ़ा लेकर बेच दिया जाय, सरकार जिस प्रकार प्रताप-गढ़ आदि स्थानोंमें करती है,या बीज का सवाया फ़सलके दिनोंमें वापस ले लिया जाय। प्रत्येक स्थानके तथा सब सभासदोंकी आवश्य-कतानुसार यह कार्य्य किया जा सकता है। किंतु किसानोंको यह बताना अत्यन्त आवश्यक है कि यदि उत्तम बीज न बोया जाय तो खेती अच्छी होना असभंव है।

(६) औज़ार विभाग—कस्सी, फावड़े, दरांती, खुरपे आदि अनेक कृषि संबंधी औज़ारोंकी आव-श्यकता होती है पर इनकेलिए कोई उत्तम प्रबंध अब तक नहीं है। यदि यह काम भी इसी कार्य्यालय द्वारा हो तो बहुत लाभ हो सकता है। कार्य्यालय अपने लुहार, बढ़ई आदि नियत

करें और उत्तमसे उत्तम माल बनवाकर उचित लाभपर सभासदोंके हाँथ बेचता रहे। इसी तरह कोल्हू, कढ़ाव, पम्प आदि और बड़े बड़े खेतीके औज़ार बेचे जा सकते हैं, जिनकी परीक्षामें कुछ व्यय नहीं करना पड़ेगा।

(७) पशु विभाग—गाय भैंस बैल आदि बाहरसे ख़रीद कर बेचनेका कामभी महत्वका है। बैलोंके व्यापारियोंकी बदौलत सहस्रों किसान उभरने नहीं पाते और सदा इनके ऋणी बने रहते हैं। यदि यह काम इस कार्य्यालयके आधीन हो तो बड़ा लाभ हो सकता है।

(८) आवेदन विभाग—अपने सभासदोंको आवश्यकताओं और शिकायतोंको सरकार तक पहुँचाना और उनको दूर करनेके उपाय सोचना।

(९) औषधिभंडार—मवेशियोंकेलिए साधारण औषधियोंका एकत्रित रखना और उनको बहुत कम लाभ लेकर बेचना।

(१०) दूकान—पात्र, कपड़ा, आदि अनेक पदार्थ जो किसानोंको साधारणतया आवश्यक होते हैं उनको एकत्रित करके रखना और थोड़े लाभपर बेचना।

(११) चारा विभाग—अनेक प्रकारके मवेशियोंके खाद्य पदार्थका इकट्ठा करके बेचना; और ऐसे समयपर जब कि विशेष प्रकारसे चारेका दुर्भिक्ष हो ऐसे उपाय सोचकर माल पहुँचाना कि कमसे कम ख़र्चमें चारेका प्रश्न हल हो सके।

(१२) प्रश्नविभाग—जिस सभासदका कृषि संबंधी कोई बात पूछनी हो उसको ढूँढ़ कर बताना और आवश्यक हो तो बाहरसे सरकार द्वारा अथवा अन्य स्थानोंसे उसकी खोज करना। यदि इस कार्य्यकेलिए आपसमें मिलकर धन संचय करना कठिन हो अथवा पर्याप्त धन न मिल सके तो देही बैंकोंसे यह धन लिया जा सकता है। यदि सरकारका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय तो ज़राअती बैंकोंके क़ानूनमें तबदीली कर यह भी कार्य्य उसीके अंतर्गत लाया जा सकता है अथवा सरकार उन्हीं नियमोंपर इसकेलिए एक क़ानून बना सकती है। इंगलिस्तानमें इस प्रकारकी कई सौ सोसाईटी हैं और उनको सरकार बड़ी सहायता देती है। अब तक सरकारके खेती विभागसे भारत निवासियोंको कोई भी विशेष लाभ नहीं हुआ बल्कि सरकारी परीक्षणोंमें खांडकी परीक्षाके पीछे बड़ी अश्रद्धा हो गयी है। पर यदि सरकार इन सहकारिणी संस्थाओंमें अपने इन्स्पेक्टरोंको मुफ़्त नियत करे तथा खेतीकी पुस्तकें जो सरकारकी ओरसे छापी जाती हैं अमरीकन सरकारके समान मुफ़्त देना स्वीकार करे तो बड़ा उपकार हो। ऐसे काम जिनकी परीक्षा कोईभी साधारण किसान नहीं कर सकता जैसे पम्पिंग अंजन, मोटर प्लाऊ (बिजलीसे चलने वाला हल) इत्यादि वे सरकारकी ओरसे परीक्षार्थ किरायेपर अथवा मुफ़्त सहकारिणी संस्थाओंको दिये जाँय और जब लोगोंको यह भली भाँति ज्ञात हो जायगा कि इस कार्य्यसे लाभ है तो वे स्वयम् उन वस्तुओंको ख़रीदनेका प्रयत्न करेंगे।

भारतवर्षकी खेतीके ढंग इतने अच्छे और सुगम हैं कि अबभी बहुतसी बातें संसारके कृषक भारतवर्षसे सीख सकते हैं किंतु शोक है कि हमारे किसान जिन कार्य्योंको नित्य प्रति करते हैं यह किन नियमोंके अनुसार प्रचलित किये गये हैं, यह नहीं जानते। इसीलिए उससे लाभ नहीं उठा सकते। दृष्टांतकेलिए ईखके खेतोंमें अरहरके चारों ओर बोदेनेसे सलाई कीड़ा नहीं लगता किंतु कितने किसान हैं जो इसको इसलिए बोते हैं। इसी प्रकार और भी अनेक बातें हैं जिनके उद्धृत करनेको यह स्थान उचित नहीं है किंतु यदि

ऐसे भंडार बन जायँगे और किसानोंमें खेती संबंधी चरचा आरम्भ हो सकेगी तो पूर्ण विश्वास है कि थोड़ेही दिनोंमें यह कार्य्य सफल हो सकेगा।

हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि जगदीश्वर ! आपहीकी अपार कृपासे संसारमें सच्चे ज्ञानकी वृद्धि होती है। हमारे हृदयमें सत्य ज्ञानका प्रकाश करो और हमारी दीन अवस्थाको सुधारो। ईश्वर करे कि हमारा उद्योग और विचार सफल हो और हम संसारमें फिर अपने खोये हुए मान और गौरवको प्राप्त कर सकें।

सम्पादकीय

विज्ञानके पिछले अङ्कोंके सम्पादनमें जो विशेष त्रुटियां रह गयी हैं, उनकेलिए हम अपने दयालु पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं। भाषा और व्याकरण संबंधी अनेक दोषोंका उल्लेख करना हमारी शक्तिसे बाहर है। ऐसा करनेमें एकतो विस्तार बहुत बढ़ जायगा और दूसरे इन दोषोंका उल्लेख करनाही विवादस्पद हो जायगा। ऐसे दोषोंके भविष्यमें होजानेकीभी अनेक सम्भावना हैं। आजकल हिन्दी लेखकोंमें बहुतसे शब्दोंके लिखनेको अनेक परिपाटियां प्रचलित हैं। ऐसी अवस्थामें हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे इस प्रकारके दोषोंको अपनी रुचिके अनुसार शुद्ध कर लिया करें।

परन्तु भाषादोषोंके अतिरिक्त विज्ञानमें कुछ छापा संबंधो ऐसी भयानक भूलें हो गयी हैं, जिनके कारण हम अपने पाठकोंके निकट विशेष रूपसे अपराधी हैं। उनमें से कुछभूलोंका वर्णन नीचे दिया जाता है। आशाहै कि हमारे सहृदय पाठक उन्हें शुद्ध कर हमें क्षमा करेंगे।

१. मई मासके विज्ञानके ८६ पृष्ठके अन्तमें जो वैज्ञानिकीय नोट दि[illegible]राबीमें एक बड़ा भारी [illegible] प्रजाके अप्रैल मासके ४६ पृष्ठपरभी प्रकाशित है।

२. जून महीनेके १०१ पृष्ठपर जो लेख सेना विभागपर छपा है, विषय सूचोमें वह मनोविज्ञानके नामसे छप गया है।

३. जूलाई मासके १७५ पृष्ठपर मनो-विज्ञानका जो लेख छपा है विषय सूचीमें वह भूलसे रह गया है।

४. अगस्त मासकी विषय सूचीमें "प्रकाश क्या है ?" के लेखक का नाम श्री० ब्रजराजके स्थान पर ब्रजराज किशोर छप गया है।

५. अगस्त मासके कार्य्य विवरणमें परिसभ्यके स्थानमें उपसभ्य और मंत्रीके स्थानमें सेक्रेटरी छप गया है।

६. अगस्त मासके वैज्ञानिकीयमें प्रेसकी भूलोंसे बड़ा गड़बड़ हो गया है। स्टीन साहबके यात्रा विषयक नोटका पूर्वांश २३३ पृष्ठके दूसरे कालम की १२ वीं सतरपर समाप्त होता है। उसके आगेका भाग २३४ पृष्ठके दूसरे कालम की १० वीं सतरसे प्रारम्भ होकर २३५ पृष्ठके पहले कालमके तीसरी सतर तक चला गया है। अन्तका भाग २३३ पृष्ठके दूसरे कालमको १३ वीं सतरसे २२ वीं सतर तक चला गया है।

छोटे पौधोंकी-विचित्र चाल संबंधी नोटका प्रथमांश २३४ पृष्ठके पहले कालमकी २६ वीं सतरसे लेकर दूसरे कालमके १० वीं सतर तक है। आगेका अंश २३५ पृष्ठके पहले कालमकी चौथी सतरसे प्रारम्भ होता है। इसी अंशके पांचवीं सतरके आगेका रूप यों होना चाहिए था "आप यह भी कहते हैं कि पौधेकी बहुतसी दशाओंमें यह बात बड़े प्रबल रूपसे स्वतः प्रमाणित हो चुकी है कि पौधोंके भूगर्भस्थ अंगोंमें ऐसे विशेष इन्द्रिय ज्ञान होते हैं जिनका हमें अभीतक पता नहीं है"।

तीसरा नोट ठीक छपा है। यह सब नोट

करे और उत्तमसे उत्तम् जी के लिखे हुए हैं, यह बाभग्भ। गत अङ्कमें अप्रकाशित रह गयी।

वैज्ञानिकीय

यद्यपि भारतमें अभी अथेष्ट जागृति नहीं हैं पर सन्तोषकी बात है कि और देशोंमें खानेके पदार्थोंमें लाभकेलिए मेल करने वालोंके विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ हो गया है। लोग समझते हैं कि जब इंगलैंडमें 'फ़ुड एक्ट' नामका आहार सम्बन्धीय क़ानूनपास हुआ खानेके चीज़ोंमें और पदार्थोंका मिलाना बहुत कुछ बन्द हो गया है, लेकिन यह धारणा ठीक नहीं है। 'विशुद्ध आहार समिति' (the Pure Food Society) बहुत दिनसे हमारे आहारोंको विशुद्ध रखनेकेलिए निगरानी करती रही है और अब ५०००० पौंडकी सहायता माँगती है जिससे समिति क़ानूनकी स्थिति सुधारनेमें समर्थ हो और वर्तमान क़ानूनका बर्ताव जैसा होना चाहिए वैसा करवा सके।

इस देशके बहुतसे हिस्सोंमें प्रजाके आहारकी रक्षाकेलिए जो क़ानून बने हैं स्थानीय अधिकारीगण उन्हें काममें नहीं लाते। इसलिए सबसे बड़ी आवश्यकता इस बातकी है कि एक बलवान केंद्रिक सरकारी बोर्ड स्थापित हो जिसके अधीन निरीक्षकों और रासायनिकों का दल रहे जो उन दोषों व चालोंका सामना करे जिनके द्वारा अब भी ग्रेटब्रिटनके अधिकांश स्थानोंपर आहरोंमें मिलावट हो रही है।

मिलावट करने वाले बड़ेही धूर्त व मायावी होते हैं। वह विज्ञानके द्वारा उन बातोंका छिपा देते हैं जिनसे वह प्रजाको हानि पहुँचाते हैं। अब साधारण विज्ञान न जानने वाली प्रजाके-लिए इस बातका जानना दुस्तर है कि अमुक खाद्यपदार्थ विशुद्ध है अथवा मिलावटी।

हम नीचे कुछ ऐसे ढंग प्रकट करते हैं जिनसे यह मायावी प्रजावंचक मिलावट करने वाले अखाद्य मिलाकर खूब लाभ उठाते हैं।

मक्खनमें बहुधा नारियलका तेल मिलाया जाता है, प्रायः पशु चरबी मिलाकर भी ये लोग मक्खन बेचते हैं। मक्खनमें बहुतसा जल मिलानेकाभी छल कम नहीं होता। पानी सस्ता होताही है, मक्खनमें मिलावट करने वाले किसी न किसी चालसे कई औंस पानी एक बार में १ शिलिंग या डेढ़ शिलिंगको बेच लेते हैं। यह पानी मक्खनमें कलके द्वारा मिलाया जाता है। शर अर्थात् मलाई (cream) में भी वही चीज़ें मिला देते हैं जिन्हें मक्खन, सुअर-का मांस, मुर्गा, मछली, आदिसे इन्हें सुरक्षित रखनेकेलिए मिलाया करते हैं। शर-को गाढ़ा करनेकेलिए उसमें जिलेटिन (एक पदार्थ पशु देहसे निकलता है जो पानीमें गल जाता है और ठंढा होनेपर गाढ़ा रह जाता है, ठोस नहीं होता) मिला देते हैं, कभी कभी चूने-का बना हुआ एक योग मिलाकर शरको गाढ़ा कर लेते हैं। परन्तु खुशीकी बात है कि चूने-का योग मिलानेका ढंग अब उठसा गया है। कोको एक तरहका युरोपीय पदार्थ है। चा व काफ़ीकी तरह यह पानी व दूधमें पकाकर पिया जाता है। इसमें सस्ते स्वेतसार मिलाये जाते हैं जैसे आलू, सागू और अरारोटके स्वेतसार या आटे। पांच आने सेर वाली खाँड भी इसमें मिलायी जाती है। साथही कभी कभी रद्दी हज़म न होने वाले कोकोके दानोंको पीसकर उसका चूर्ण असली कोकोमें मिला देते है। चाकोलेट नामकी चीज़में (जो कोको-की भांति ही एक पदार्थ है) भी कोकोकी ही तरह मिलावट होती हैं, अधिकता यह है कि कभी कभी अनेक प्रकारकी सस्ती चरबी भी इसमें मिलायी जाती है। चामें एक बार काम में लायी हुई चाको सुखाकर फिर मिला

देते हैं और दूसरी झाड़ियोंकी भी सूखी हुई पत्तियाँ मिलाते हैं।

लार्ड नामके चरबीके भक्ष्यमें भी मक्खनकी सी मिलावट होती है, लेकिन अधिकतर पेराफ़िन मोम (paraffin cake), व नर्मपेराफ़िन भी काममें लाते हैं। पेराफ़िन (डामरकी बनी हुई एक चीज़) के दूष्प्रयोग कई प्रकारके मारबोरीन (एक प्रकारका नक़ली मक्खन जो युरोपमें बहुत पाया जाता है, जैतूनके तेलसे बनता है) में भी मिलाये जाते हैं। चीज़ (पनीर) शर निकाले हुए दूधका बनाते हैं और फिर चरबी भी मिला देते हैं। पिसी कालीमिर्चमें बालू मिलाते हैं, या जैतूनकी गुठलीका चूर्ण और स्वेतसार। राईका सस्ता चूर्ण कभी कभी रंगोंमें आटा मिलाकर बना लिया जाता है अथवा सोंठके पेड़को पीसकर मिला देते हैं। सिरका लकड़ीसे प्राप्त तेज़ाबोंसे बनाया करते हैं।

मिठाइयोंमें पेराफ़िनकी मोम मिलाकर निर्दोष डामर coal tar) से निकले रंगोंसे रंग देते हैं। मुरब्बों व चटानियोंमें शर्कराके बदले ग्लूकोस या एक भयानक हानिप्रद जड़ी अथवा सेलीमाइलिक एसिड मिलाते हैं। यह बुरी जड़ी बहुधा नींबूके रस, बिजौरेके रस और दूसरे पेयोंमें भी मिलायी जाती है, यहाँ तक कि बिअर शराब व माधवी (wines) में भी डाल देते हैं। हानिकारक डामरका बना योग जिसे फ़ार्मेलिन कहते हैं दूध में बिगड़ने न देनेकेलिए मिला देते हैं। इसी प्रकारके और अनेक करतूतें यह मिलावट करने वाले किया करते हैं। आटोंमें भी मिलावटें की जाती हैं।

भारतमें आटोंमें मिलावट करना, दूधमें पानी मिलाना तो बहुत दिनोंसे चल पड़ा है। आजकल घीमें चर्बी आदिके स्थानमें एक विलायती विषैला गाढ़ा तेल जो मिट्टीके तेलके क़िस्मका होता है मिलाया जाने लगा है। प्रजाके स्वास्थ्यकी ख़राबीमें एक बड़ा भारी कारण इन अर्थ लोलुप अदूरदर्शी प्रजाके हितको भूल जाने वाले लोगोंकी मिलावट भी है। इस पापको रोकनेकेलिए सरकारसे स्वास्थ्य रक्षाके निमित्त नगरोंमें हेल्थ आफ़िसर रहते हैं तो भी इस दुष्टताकी कमी नहीं है। प्रजाको सावधानीसे काम लेना चाहिए और जो ईमानदार दुकानदार हैं उनसे ही सौदा ख़रीदना चाहिए क्योंकि कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ सबही बेइमान हों और ईमानदार दुकानदार होहीं नहीं।

गोकुल जी

* * *

आध्यात्मिक तथा आधिभौतिक विद्या

आजकल प्रायः शिक्षित समाजमें यह सिद्धान्त स्वीकृत हो रहा है कि आधिभौतिक (physical) और आध्यात्मिक (philosophical) विद्यामें अहिनकुल अथवा अश्वमहिषसा विरोध है। पर ऐसे समझनेवाले प्रायः दोनों विद्याओंके सारांशके अनभिज्ञ हैं। और देशोंकी हालत तो मैं नहीं जानता पर भारतवर्षमें जितने आध्यात्मिक शास्त्रके प्रधान ग्रंथ प्राचीनकालसे प्रचलित हैं, सभोंहीमें आत्मज्ञान अथवा आत्मानात्म--विवेकको परमपुरुषार्थ माना है। अर्थात् आत्मा और अनात्मामें भेद है—क्या भेद है कैसे भेद है—इसीका अन्वेषण बुद्धिमानोंका परम कर्त्तव्य है। यह समझनेकी बात है कि यह आत्मा और अनात्माका भेदज्ञान दोनोंके तात्विक ज्ञान बिना असम्भव है। जब तक हम यह अच्छी तरह नहीं समझलेंगे कि ईंट क्या है और पत्थर क्या है तब तक हमको ईंट और पत्थरमें क्या भेद है सो समझमें नहीं आ सकता। इसी तरह आत्मा क्या है और अनात्मा क्या है यह जब तक हम पूर्णरूपेण नहीं समझलेंगे तब तक आत्मानात्म विवेकज्ञान असम्भव होगा। इसी उद्देश्यसे

सभी प्राचीन दर्शन ग्रन्थकारोंने पदार्थ निरूपण ही से अपने अपने ग्रन्थोंका प्रारम्भ किया है और इन पदार्थोंमें भी सबसे पहले द्रव्योंका विचार किया है। इस विचारसे अन्तात्मा—'अर्थात् आत्मासे अतिरिक्त जितने पदार्थ भूत भौतिक इत्यादि संसारमें हैं' इन सभोंके यथार्थ स्वरूपका निर्णय करके यह चरम सिद्धान्त किया है कि आत्मा इन भूत भौतिक पदार्थोंसे कोई भिन्न पदार्थ अवश्य है। इससे यह सिद्ध होता है कि आध्यात्मिकताकेलिए आधिभौतिक विद्याकी परमआवश्यकता है।

आधिभौतिक विद्याके तात्विक परिशीलनकेलिए आध्यात्मिक दृष्टि और बुद्धिकी कितनी आवश्यकता है सो आजकलके चरम श्रेणीके वैज्ञानिकोंसे छिपा नहीं है। अनेकमें एकका अन्वेषण तथा अनुभव करना और दूसरोंको समझाना यही चरम वैज्ञानिकोंका कर्त्तव्य है। नाना प्रकारके भौतिक प्रपंच किस एक वस्तुके विवर्त वा परिणाम हैं यही खोज उनका परम उद्देश्य है। और जिस अद्वैतवादके चरम सिद्धांतको यहांके दार्शनिक वैज्ञानिकोंने चित्तकी अन्तर्मुख वृत्ति द्वारा सिद्ध किया था उसको आजकलके वैज्ञानिक वहिर्मुख वृत्तिके द्वारा सिद्ध कर रहे हैं। और हमारा दृढ़ विश्वास है कि कुछही दिनोंमें अपने यंत्रोंके द्वारा वैज्ञानिक लोग यह सिद्ध कर देंगे कि नाना प्रकारकी वस्तु, नाना प्रकारके भौतिक तथा मानसिक प्रपंच, सभोंहीमें एक व्यापक चैतन्य शक्ति, अनुस्यूत है। एक मात्र विद्युच्छक्तिहीका परिणाम वा विवर्त समस्त सांसारिक प्रपंच है इस सिद्धान्तको तो उन लोगोंने अपनी परीक्षा द्वारा सिद्धही कर दिया है अब थोड़े दिनोंमें वे इस बातको भी सिद्ध कर देंगे कि केवल चिन्मात्र एक सद्वस्तु है औरसब वस्तु इसीके परिणाम वा विवर्त्त हैं। जब यह दिन आवेगा तब सब लोग समझेंगे कि आधिभौतिक और आध्यात्मिक विद्या दोनों परस्पर कैसे संश्लिष्ट हैं।

२६-७-१५. गङ्गानाथझा

* * *

समालोचना

बाल धर्म्म शिक्षक—ले० श्रीयुत काशीनाथ जी, प्रकाशक श्रीयुत गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रतापप्रेस, कानपुर। १९१५। आकार ४. ३"×७"। पृष्ठ संख्या ७२। मूल्य ≡)

प्रचलित शिक्षा प्रणालीमें धार्मिक शिक्षाके अभावसे या तो लड़के 'नास्तिक' हो जाते हैं या साम्प्रदायिक कट्टर बन जाते हैं, अथवा बेपेंदी वाले लोटेकी नाईं ढुलमुल विचारके हो जाते हैं। यह वास्तविक दोष है। परन्तु ऐसी धर्म्म शिक्षाभी कठिनही है जिसमें सब वैज्ञानिक सत्योंकी ही व्याख्या हो और साथही किसी सम्प्रदायसे विरोधभी न हो। यद्यपि हम जानते हैं कि इस पुस्तिकाकी कई बातें नयी रोशनीके साम्प्रदायिकभी सर्वथा माननेको तय्यार न होंगे, तथापि हम हर्षके साथ कहते हैं कि वैज्ञानिक आस्तिकताकी दृष्टिसे हमारे देखनेमें उसके आदर्शके अति निकट पहुँचने वाली पुस्तिका हिन्दीमें यही है। इसे प्रत्येक बालक बालिका को पढ़ाना चाहिए। इसके पढ़नेसे सदाचार, सद्व्यवहार, सद्विचार देशभक्ति आदिकी बहुत अच्छी शिक्षा मिलती है। इससे लाभ होनेकी बड़ी आशा है, एवं हानिकी कोई भी संभावना नहीं है। यह स्कूली पाठ्य ग्रन्थोंमें रखने योग्य है।

रा. गौड़.

* * *

व्यापारी—जुही कानपुरसे यह पत्र इसी वर्षसे प्रकाशित होने लगा है। हिन्दी भाषाकेलिए यह बड़े गौरवकी बात है कि उसके सपूत अब अपनी भाषाके वैज्ञानिक और व्यापार संबंधी अङ्गवृद्धिकी चेष्टामें तत्पर हो गये हैं।

व्यापारी ऐसे पत्र हिन्दीमें नितान्त आवश्यक हैं। जिस व्यापार और विज्ञानके बलसे पश्चिमसे उदय होने वाले सूर्य्यका अस्त नहीं होता, आज श्रीहत भारतमें इसी महाशक्तिका लोग समुचित आदर नहीं करते यह कितने दुखकी बात है। व्यापारीने जिस कार्य्यका भार अपने सरपर लिया है वह कोई सरल कार्य्य नहीं है। किन्तु उसके सुयोग्य सम्पादनसे हमें आशा होती है कि भविष्यमें वह शीघ्रही विस्तृत स्वरूपमें व्यापार संबंधी गहन विषयोंकी आलोचना करनेमें समर्थ होगा। पत्रका आकार अभी छोटा है, वार्षिक मूल्यभी केवल १।) है। छपाई सफ़ाई सब उत्तम है।

जयाजी प्रताप—यह पत्र जिस योग्यतासे सम्पादित होता है वह हिन्दी पाठकोंसे छिपा नहीं है। इसमें व्यापार, कृषि, कला और साहित्य संबंधी लेखोंकी भरमार रहती है। हिन्दीमें कोई भी दूसरा साप्ताहिक पत्र ऐसा नहीं है जिसमें इतने विषय समाविष्ट हों और साथही पत्रका संपादन भी इतनी योग्यतासे होता हो। हम अपने सहयोगीको उसके विशेष उद्योग और परिश्रमकेलिए धन्यवाद देते हैं। हालहीमें जयाजी-प्रतापका ग्वालियरमें शिक्षा संबंधी एक विशेष अङ्क निकला है। यह अङ्क जितने परिश्रमसे निकाला गया होगा वह इसके आकार और विषय सूचीहीसे प्रकट है। शिक्षा संबंधी कोई भी विषय इसमें नहीं छोड़ा गया है। इसके अन्तमें जो नक़्शे दिये गये हैं वे बड़ेही मार्केके हैं। सन् १९१२ से ग्वालियरमें स्त्री शिक्षामें जो आशातीत उन्नति हुई है वह अवश्यही आश्चर्य्यमय है। यदि स्त्री शिक्षाकी वृद्धि योंही बराबर होती रही तो हमें पूर्ण आशा है कि दश बारह वर्षही के भीतर ग्वालियरकी काया पलट हो जायगी। ग्वालियरमें हिन्दी लेखकोंकी सूची देख कर हृदयको बड़ा आनंद होता है। इस सूचीसे स्पष्ट है कि हिन्दीका आसन दिनोंदिन कितना ऊँचा हो रहा है।

* * *

विज्ञान पर सहयोगियोंकी सम्मति

(continued)

जयाजी प्रताप—५ मई १९१५

"हिन्दी साहित्यका वैज्ञानिक अङ्ग अत्यंत बलहीन और अपूर्ण है। इसकी पूर्त्ति केलिए ही इस विज्ञान पत्रने जन्म लिया है। इस अनुकरणीयकार्य्यकेलिए कौन ऐसा साहित्य प्रेमी है जो इसकी सफलता न चाहेगा। ....

इस कठिन कार्य्यके भविष्यत्के उत्तरोत्तर उन्नति होनेमें कोई शङ्का नहीं की जा सकती। जो लेख पहले अङ्कमें निकले हैं वे सब विज्ञान परिचत विद्वानोंके मस्तिष्कका फल हैं और विषयोंके गम्भीर होने परभी उनके मनोरंजन बनानेमें कोई कसर नहीं रक्खी गई है।

हम इस अद्वितीय और उपयोगी पत्रका स्वागत करते हैं और आशा करते हैं कि यह भविष्यतमें उन्नतिशाली हो। चन्दा ३) वार्षिक है जो पत्रकी उपयोगिताके मुक़ाबिलेमें नाम मात्र है"।

अलमोड़ा अखबार—३ मई १९१५

"विज्ञान नामका एक मासिक पत्र निकलनेका समाचार पहले हम दे चुके थे। गत अप्रैलमें वह निकल गया और खूब अच्छा निकला। प्रयागकी विज्ञान परिषत्का यह मुखपत्र है।

पत्रका आकार सरस्वतीका सा है छपाई सफाई सब सुन्दर लेख भी प्रायः सब योग्य वैज्ञानिकोंके हैं और सब मनन करने लायक हैं। कई छोटे छोटे उपयोगी चुटकले भी दिये गये हैं। .... विज्ञानकी आवश्यकता अब निर्विबाद है। पाश्चात्योंकी उन्नतिका यही कारण है। इसलिए हम इस योग्य कार्य्यकी सराहना करते हैं और यही चाहते हैं कि दिन दिन इस विज्ञानकीउन्नति हो"।

कार्य्य विवरण

विज्ञान परिषद्के कौंसिलकी मीटिंग ठीक ४$\frac{3}{4}$ बजे संध्याको प्रारम्भ हो गयी परन्तु महा-वृष्टिके कारण परिषद्की ७वीं साधारण सभा, यथा निश्चित समयपर नहीं हो सकी। किन्तु पानीके रुकतेही म्योर कालेजके फ़िज़िकल थियेटरमें व्याख्यान सुननेकेलिए श्रोताओंकी आश्चर्य्य जनक भीड़ लग गयी। श्रोताओंसे हाल भर गया था। ठीक ६$\frac{1}{4}$ बजे अध्यापक रामशरण निगम, एम. एस-सी ने अपना मनोहर व्याख्यान 'प्राचीन कालके दानवों पर' प्रारम्भ कर दिया। व्याख्यान बड़ा ही प्रभावशाली हुआ। मैजिक लैंटर्नसे तसवीरें बड़ी प्रचुरताके साथ दिखलायी गयीं। इसके अतिरिक्त कालेजके प्राणिशास्त्र विभागके अजायब घरकी (Biological museum) भी बहुतसी आश्चर्य्य जनक सामग्री प्रदर्शितकी गयी अ० ब्रजराज बी. एस-सी एल. एल. बी के वक्ता महोदय को धन्यवाद देनेके बाद ७$\frac{1}{2}$बजे सभा विसर्जित हुई।

मंत्री

* * *

प्राप्ति स्वीकार

निम्न लिखित सज्जनोंकी द्रव्य प्राप्ति हम सहर्ष स्वीकार करते हैं।

१. प्रोफ़ेसर सैय्यद मोहम्मद अली नामी, इलाहाबाद, १२)
२. प्रोफ़ेसर दा. वि. देवधर, एम. एस-सी. इन्दौर (नवम्बर १९१५ से नवं० १९१६ तक) १२)
३. ,, डी ओझा एम. ए, इलाहाबाद १२)
४. बा० अनन्तलाल व्यास, गवर्न्मेंन्ट हास्टेल इलाहाबाद ३)
५. ,, हरिकृष्ण अग्रवाल, इलाहाबाद १)
६. प्रोफ़ेसर शिवाधार पांडे एम, ए. एल-एल. बी (नवम्बर १९१३ से १९१४ तथा १९१४ से १९१५ तक) ५)
७. बा० राम प्रसाद, नागपुर, ३)
८. ,, जुगुल किशोर रईस, दरभंगा १२)
९. , के. सी. पांड्या, आगरा ३)
१०. ,, आर. एस. मिश्र, मुजफ़्फ़रपुर ३)
११. ,, बासुदेव नारायण, ,, ३)
१२. कुंवर महेन्द्रपालसिँह डिप्टी कलेक्टर, अलीगढ़ १२)
१३. पं० सुदर्शनाचार्य्य, इलाहाबाद (नवं० १९१५ से नवं० १९१६ तक) १२)
१४. मोलवी सैय्यद इसहाक़ अली, इलाहाबाद २)

गोपाल स्वरूप भार्गव, एम- एस-सी
कोषाध्यक्ष

* * *

सूचना

शनिवार ता० २५ सितम्बरको सवा पांच बजे सायंकाल के समय डा० अनोदा प्रसाद सर्कार डी० एस० सी० " नन्हे नन्हे दानव और उनसे लड़नेके उपाय " पर म्योर कालेजके फ़िज़िकल साइन्स थियेटरमें व्याख्यान देंगे। आशा है कि सब सज्जन आनेकी कृपा करेंगे।

सम्पादक

श्रीयुत् मुख़्यारसिंह जी वकील, मेरठ। सूचित करते हैं कि वे अपनी पुस्तक शुद्ध साबुन विज्ञानके ग्रहकोंको अर्धमूल्यपर देंगे। पुस्तककी समालोचना पिछले अङ्कमें निकल चुकी है।

मंत्री

विज्ञापन छपाईके नियम।

१—कवर पर प्रति पृष्ठ प्रति मास		१५)
प्रति पृष्ठ २ कालम	... ...	१०)
१ ,,	... ...	७)
आधा ,,	... ...	४)
आधे कालमसे कमका	... ...	२)

२—राज, समाज व सभ्यताके विरुद्ध कोई विज्ञापन विज्ञानमें न छप सकेगा।

३—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा। जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें।

४—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी।

५—७) रुपये से कम दामका विज्ञापन छपाने वालों को ।) प्रति कापी पत्रकामूल्य अधिक देना पड़ेगा।

६—विशेष बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएं।

निवेदक

के. सी भल्ला, एफ़. बी. टी. (इंगलेंड)

ए. एल ए ए. (लण्डन)—प्रकाशक

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग २ | तुला, संवत् १७९२ । अक्तूबर सन् १९१५ । | संख्या १

मङ्गलाचरण

मूल-प्रकृतिकी धूल व्योम-मगमें बगरायी,
दृढ़ करनेको तारोंकी बजरी बिछवायी,
छाया पथपर मायाकी गाड़ी चलवायी,
रजकणमें नक्षत्र-राशिकी राशि उड़ायी,
जय जय जिसने रविसे बड़े रोड़े छोड़े दस दिशा,
जय देश-कालसे रहित चित, जिसे न दिक दिन
वा निशा ।

मसूरी
३०-९-१५

—रामदास गौड़

विज्ञानका मार्ग

[ले० पं० गंगाप्रसाद वाजपेयी, बी. एस-सी०]

आजकल विज्ञानकी इतनी चर्चा है, इतनी धूम है कि सारा संसार उसकी प्रशंसासे गूंजसा रहा है। जिधर देखिये उधर आश्चर्य्य ही आश्चर्य्य दिखलायी पड़ते हैं। जहांपर कल बबूलके कांटे और करीलके फल लगते थे, जहांपर कटैयाके जङ्गलोंके अतिरिक्त कुछ दिखलायी न देता था, वहां आज सुपक्क फलोंसे लदे हुए लहलहाते उद्यान नन्दन वनको मात कर रहे हैं। जिन देशोंकी कहानियां सुनकर हृदयका रुधिर जम जाता था, भयसे मुख पीला पड़ जाता था, कल्पना और अनुमानसे ही प्राणान्तसा होने लगता था, वहांपर आज वैज्ञानिकोंकी मधुर वंशोध्वनि सुनायी पड़ती है। आकाशसे बात करनेवाली हिमालयकी गौरीशङ्कर चोटीपर वैज्ञानिक अपनी विजय बैजयन्तीको फहरानेकेलिए उत्कटसा हो रहा है। सूर्य्यके प्रकाशको ६ मास तक न देख सकने वाले विकराल कालके निर्जन, निर्ध्वस्त, विस्तृत, हिमाच्छादित साम्राज्यमें वैज्ञानिकके सजीव पादपद्म अपनी मृदुलगतिसे आनंद झङ्कार मचा चुके हैं। शरीरको झुलसा देनेवाले उत्तप्त, प्रचंड, मार्त्तंडके तेजोनिकरका उपहास और नरकयातनासे भी अधिक पीड़ा पहुँचानेवाली अग्निमय वायुके झोकोंकी अव-

हेलना करता हुआ, जलती हुई बालूके बिकट तूफ़ानोंमें अपनी जानको हथेलीपर रख यमपुरी सहाराके मरुस्थलमें वैज्ञानिक आनंदसे विचरण कर चुका है। उसके कानोंने नायग्राके जल प्रपातकी मधुरध्वनि पहले पहल सुनी थी। आफ्रिकाके बिकट जङ्गलोंमें, आस्ट्रेलियाके निर्जन बनोंमें वह आनन्दकी हिलोरोंपर भूलता हुआ पहले पहल निर्द्वन्द घूमा है। सभ्य संसार-की तो उसने कायाहीपलट कर रक्खी है। कहां तो कल लढ़ियोंकी खच खच मच रही थी कहां आज बिजलीसे चलनेवाली बिना पटरियोंके रेलकी बात चल रही है। जिस जगह अभी कल कबूतर बाज़ अपने अपने कबूतरोंकी आकाशमें गिरह बांधकी प्रशंसा कर अपनी हीनता स्वीकार कर रहे थे, वहींपर आज यह ६ फ़ीटका लम्बा, सीधा चलनेवाला जानवर आकाशमें गिरह बांध रहा है। कहां तक कहें, विज्ञानकी अनंत महिमा और उसके अनंत आश्चर्य अकथनीय हैं। एडेनकी बाग़में नङ्गे विचरण करनेवाले हज़रत आदम यदि इस समय पृथ्वीपर कहीं फिर आजांय तो वे अपनी सन्तानको कभी भी न पहचान सकेंगे।

मनुष्यने यह दिग्विजय कैसे की? किस अधिष्ठात्री देवीके उपासना या अनुष्ठानसे उसने इस देव दुर्लभ असीम शक्तिभंडारपर अपना राज्य जमाया है? वैज्ञानिक किस पंथका पथिक है? उसके उन्मादकी मदिरा कहां है? उसके पूजाकी सामग्री क्या है? उसके कालीका मन्दिर कौन है? उसकी यज्ञवेदी कहां है? इन बातोंको बिना जाने विज्ञान मार्गपर आरूढ़ होना केवल विज्ञानका उपहास कराना है।

पाठको! क्या तुम्हारा हृदय एक बारभी इस अक्षयशक्ति भंडारकी ओर नहीं दौड़ता? क्या तुम्हें एक बारभी यह लालसा नहीं होती कि तुमभी इस घोर जीवन संग्राममें, महाकालीके इस बिकट अट्टहासमें, शिवके इस ताण्डव नृत्यमें, एक भक्तके एक मनुष्यके रूपमें कूद पड़ो? देखो कहीं उस वेदीसे निकलनेवाली अग्निशिखा चट न कर जाय! सुख और शांतिसे पोषित यह थुलथुला शरीर कहीं फट न पड़े! पागल वैज्ञानिक, अपनी जानसे न डरनेवाले वैज्ञानिक, भलेही अपने जानको गवां दें पर तुम्हारा अमूल्य जीवन कहीं उत्तरीय ध्रुवमें जाकर दो कौड़ीका न बन जाय! जात पांत और चूल्हे चौकोंमें चक्कर लगानेवाला चित्त वेद और शास्त्रोंमें डुबकी मारनेवाला मन, इस पापकर्ता, प्राणहर्ता, अधोगामी कलङ्कित विज्ञानको अङ्गीकार नहीं कर सकता। स्वर्गकी ओर टकटकी लगानेवाली आंखें, प्रकृतिके विशाल मन्दिरमें जलवर्षा नहीं करतीं। कार्पण्य दोषसे भ्रष्ट बुद्धि अर्जुन कृष्ण भक्तिके बिना अपना गांडीव उठा नहीं सकता। उसे स्वर्गदान भलेही मिल जाय पर वह परमपदका अधिकारी कदापि नहीं हो सकता।

जब कभी विज्ञानकी चर्चा हम लोगोंके सामने आती है तो हम झट कह बैठते हैं "क्या हम भी वायुयान बना सकते हैं? क्या सचमुच विज्ञान हमें ऐसे आश्चर्योंका अधिपति बना देता है? यदि ऐसा है तो हमभी विज्ञान पढ़ेंगे"। परन्तु यह देखा गया है कि विज्ञान-पाठके अनन्तर बहुधा विद्यार्थी यही रोते मिलते हैं:—"क्या कहें भाई समय नष्ट गया। जिन आशाओंके पुल बांधकर हम जीवन पार करना चाहते थे वे टूट गये। जिस शक्तिके लालचमें हमने अपनी जान पिचो की वह हाथ न आयी। बस मिला तो यों ही जी बहलाने भरको थोड़ासा ज्ञान"। भारतवर्षमें विज्ञान-शिक्षा-प्रारम्भके शुभ मुहूर्तमें यह अमङ्गल नाद बड़ा ही खटकनेवाला है। करोड़ों भाइयोंने तो इस वैज्ञानिक तांडवनृत्यका नाम ही नहीं सुना है। इने गिने दस पांच भक्तोंने इस विकट नृत्यके देखनेका साहसभी किया

तो उनमेंसे बहुतोंकी सामर्थ्यने कोरा जवाब दिया। यही कारण है कि वैज्ञानिक शिक्षाकी जितनी उन्नति होनी चाहिए उसकी कोट्यांश भी इस प्राचीन समृद्धशालिनी रत्नप्रसू भारत वसुंधरामें होती हुई दिखलायी नहीं देती।

हम लोगोंके सिरपर जो विशेष उत्तरदायित्व रक्खा हुआ है वह कदापि हमें सोनेकी अनुमति नहीं देता। जागृत अवस्थामें, अपनी बड़ी बड़ी आंखें फैलाकर हमें इस अन्धकारमें अवनतिके कारणोंको ढूंढना होगा। जिस विज्ञान ने पश्चिमको पश्चिम बना रक्खा है, उसका भारत इतना अनादर क्यों कर रहा है? पाश्चात्योंकी कामधेनु क्या पूर्वमें फल नहीं देती? भारतने अभी विज्ञानके सच्चे मार्गको नहीं जाना है। पाठको! आओ आज इसका निरीक्षण करें।

हम लोग कर्म्मभोगी हैं, वैज्ञानिक उत्कृष्ट कर्म्मयोगी है। हमारा मार्ग वेद-वाद-रत है, वह भोग और ऐश्वर्यके प्रदेशमें होकर निकला है, विज्ञानकी गङ्गा सत्य और धर्म्मके प्रदेशोंमें होकर बही है। निष्काम-व्रतकी दुर्गम गिरि शृङ्खलाओंमें अपना मार्ग काटती हुई कल्लोल-वाहिनी, पुण्यसलिला भगवती कलकल नाद करती हुई अनन्त कालसे अनन्त सागरकी ओर चली जा रही है। उसके इस दिव्यमार्गके दोनों तट विशाल मन्दिरों और ऋष्याश्रमोंसे परिपूर्ण हैं।

पश्चिमके स्वार्थ और कौटिल्य जनक पापोंको धोनेवाली विज्ञान गङ्गाही है। उसके कर्म्मभोगी जनसमुदायको वैज्ञानिकोंके आशीर्वादने अक्षत बना रक्खा है। वैज्ञानिकोंकी निष्काम प्रवृत्ति, उनकी प्रकृतोपासना और उनके प्रेममदने ही नीचसे नीच तथा हीनकाय पाश्चात्यके हृदयमें दुर्दम्य आत्माका संचार कर रक्खा है। जब तक ऋषिराज वैज्ञानिक अपने कर्म्मयोगसे विचलित न होंगे पश्चिमकी जनताका कोई बालभी बांका न कर सकेगा।

पाश्चात्य वैज्ञानिक केवल सत्य मार्गका ग्राही है। बड़ी बड़ी प्रयोग शालाएं ही उसकी अधिष्ठात्री देवी प्रकृति माताके विशाल मन्दिर हैं। मां, जिस मनोहारिणी छटासे अपना मधुर नृत्य विस्तीर्ण ब्रह्मांडमें दिखलाती है, वैज्ञानिक उसी छटाका, उसी नृत्यका रास अपने प्रयोग शालामें सजाता है। उसकी उपासनाका मुख्य अङ्ग रासलीलाही है। प्रकृतिके मन्दिरमें वह किसी इच्छासे नहीं घुसता। मांकी भक्तिके मदमें मत्त वैज्ञानिक संसारकी सब वस्तुओंको तृणवत समझता है। उसका हृदय मातृभक्तिसे परिपूर्ण रहता है। उसका कंठ प्रकृतोपासनाकी प्रशस्ति-पाठमें निरन्तर रत रहता है। उसके हाव, भाव, भ्रूभङ्ग और कटाक्षोंसे प्रकृति-प्रेमका मनोहर रस टपका करता है। कान मांके मधुरध्वनि सुना करते हैं, आंखें मांकी दिव्य छटा देखा करती हैं। जिस समय पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रकृतोपासनामें तन्मय होता है, उसे देहकी सुध बिसर जाती है, आत्मा निर्जीव संसारको छोड़ कर भक्ति और आनंदकी तरङ्गोंमें तैरती हुई श्री चरणोंके सामने गंभीर नृत्य करने लगती है। ऐसे समयमें जाकर आप इस महर्षिके शरीरको चाकुओंसे छेदिये, उसके शिरको धड़से अलग कर दीजिये, क्या मजाल कि उसके देहका एक रोम भी कंप कर जाय। मांकी एक एक छटापर उसका हृदय बावला होकर नाचने लगता है, उस नृत्यमें महीनों तक उसकी समाधि नहीं टूटती। खाना, पीना, उठना, बैठना सभी कुछ भूल जाता है। यही अनन्यभक्ति उसकी शक्ति है, यही प्रेम उसका आहार है और यही प्रेम मांका प्रेमोपहार है।

एक समय था जब वैज्ञानिक निष्कामोपासना नहीं जानता था। नीच धातुओंसे सोना बनानेके प्रयत्नोंमें व्यग्र वैज्ञानिक प्रकृतिके मन्दिरमें करोड़ों बार, स्वार्थ और लोभके भारको लादकर घुसना चाहा था, परन्तु

मन्दिरका फाटक कभी न खुला। वह बहुत रोया और चिल्लाया, कादरभावसे मंत्र जंत्र और टोना टटकाओंका उपहार मन्दिरके ड्योढ़ी पर चढ़ाया, दुम हिलायी और फूंक झाड़की, किन्तु मांका दर्शन-लाभ न हो सका। यह लालचकी फंसरी उसे बहुत दिनों तक सोनेहीमें सुलाया की। बहुतसे वैज्ञानिकोंने प्रकृतिकी समीपताकी आशा छोड़ दी। किन्तु कुछेक वैज्ञानिकोंकी निद्रा भङ्ग हुई। कर्म्मयोगका कौशल उन्हें ज्ञात हो गया और उसी दिनसे वैज्ञानिक संसारमें एक नया युग प्रारम्भ हुआ।

निष्काम कर्म्मकी कुशलता जानते ही, वैज्ञानिक नव पथारूढ़ हुआ। मार्गमें उसे बहुत बड़े सङ्कट मिले। व्यसनों और इन्द्रियोंसे उसे युद्ध करना पड़ा, किन्तु अन्तमें उसकी-ही विजय हुई। अर्जुनके प्रेमसे प्रसन्न होकर जिस प्रकार कृष्ण भगवान्‌ने अपने मानुषी रूपमें उसे ब्रह्मांड दर्शन कराया प्रकृति माताने भी ठीक वैसेही अपने प्रिय वैज्ञानिकको एक एक कणमें विस्तृत ब्रह्मांडकी रचना दिखलायी। वैज्ञानिकके प्रेमने माताका सामीप्य पाया। माता धीरे धीरे अपने रहस्योद्घाटन करने लगी, (और करती जारही है)। इन रहस्योद्घाटनोंके अनन्तरही मनुष्यकी दिग्विजयका आरम्भ हुआ। भगवतीसे बरदान पाकर वैज्ञानिकोंने संसारमें अपना राज्य स्थापित करना प्रारम्भ कर दिया। प्रकृतिके प्रत्येक रहस्यने दधीचिकी हड्डियोंसेभी अधिक बल दिखलाया। एक एक रहस्यसे इतने इतने बिकट बज्र बनने लगे जो दिग दिगान्तरोंको कंपाते हुए करोड़ों मेरु श्रृङ्गोंको एक एक क्षणमें उड़ाने लगे। भक्ति युगके बाद शक्ति युगका साम्राज्य फैला। महाकालीके भ्रूभङ्गसे मरुस्थल नंदन कानन बन गया और नंदन कानन समुद्रगामी हो चला। विज्ञान पश्चिममें ऐसेही फूला और फला है। आज जन संहारिणी तुमुल शक्तियोंका परिचय जो युरोपीय महाभारतमें हो रहा है, उसे देखकर बहुतसे शान्तप्रिय भारतवासी विज्ञानकी व्यर्थ निंदा करने लगे हैं। महाकालीके इस बिकट हास्यसे उनका कायर हृदय कांप गया है। कालीके खप्पड़में रुधिर देखकर उनका मुख रक्त विहीन हो रहा है। परन्तु यह उनकी केवल हृदयदौर्बल्यता है। आज यदि उन्नतशर, प्रशस्तललाट, दुर्दम्य सैनिकोंके प्रति यह अपना कादरभाव प्रकट करें तो वे इनका कितना तिरस्कार करें यह ईश्वरही जानता है।

युरोपीय रणक्षेत्रमें प्रलयकालकी जो रासलीला आजकल हो रही है अवश्यही उससे प्रसन्न होकर, प्रकृतिदेवी ऐसे नूतन रहस्योंकी थैली वैज्ञानिकोंके आगे खोल देगी जो अमृतधारा बहाकर भविष्यमें मनुष्य जीवनको सजीव और सार्थक बना देगी।

विज्ञानका मार्ग, कर्म्मयोगका बिकट मार्ग है। जिस भारतने कर्म्मयोगकी सबसे प्रथम शिक्षा लाभकी है वह अभी तक विज्ञानके सच्चे स्वरूपको न पहचान सका यह कितने आश्चर्य्यकी बात है। जिस विज्ञानमें आज कल पंडित छुआ छूत और धर्म्म अधर्मका पच्चड़ लगा रहे हैं वह विज्ञान इन सबसे परे त्रैगुणयातीत है। मुमुक्षु पथ प्रदर्शी, अनन्तशक्तिशाली विज्ञानका तिरस्कार कर भारत कभी अभ्युदय नहीं कर सकता। कर्म्मके बंधनोंसे बंधा हुआ सुख और दुखके हिलोरोंमें उसे जीवन काटना पड़ेगा। किन्तु विज्ञानको होमाग्निमें यदि कर्म्म बन्धनोंको जला दिया जाय तो कर्म्मयोगका अलौकिक प्रकाश भारतीय हृत्पटलपर अपना निर्मल प्रभाव फैलाकर शान्ति और स्वच्छन्दताकी अमृत वर्षा करने लगेगा। जिस विज्ञानकी दीक्षा भगवान कृष्णने कुरुक्षेत्रके रणक्षेत्रमें की थी उसी दीक्षामें निरत करानेवाले पाश्चात्य

विज्ञानका समुचित आदर करना हमारे लिए परमश्रेय है।

प्रकृतिके अनंत भक्त होनेहीमें हमारा मङ्गल है। मांके प्रेममें तन्मय हो जाना ही हमारा मार्ग है। बड़ी बड़ी प्रयोग शालाओंका निर्म्माणही देवीके बिशाल मन्दिरोंकी वास्तविक रचना है। प्राकृतिक खेलोंका रास रचानेमेंही भगवान कृष्णकी रास लीलाका पूर्ण स्वाद है। निर्भीक, निर्द्वन्द, प्रेम सागरमें गोते लगानेसेही हमारी शुद्धि होगी। जिस दिन भारतीय विज्ञानके शून्याकाशमें डाकूर जगदीशचंद्र बसुके समान अनन्त मरीचिमाली अनन्त दिशाओंसे उदित होंगे, उसी दिन भारत माताके पुनर्गौरवका सुप्रभात होगा। पाठको! आओ विज्ञान शिक्षाका वैज्ञानिक मार्गपर प्रचार कर हम उस शुभ घड़ीकी तैय्यारियां करें। भारतीय अर्जुन! अपने चित्तकी दुर्बलताको छोड़ गांडीव हाथमें उठा तो सही फिर तुझे मालूम होगा कि कृष्णने कौनसा रहस्य तेरे लिए पहलेहीसे रच रक्खा है।

गति-विज्ञान

[ले० अ० महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी. एल. टी]

क्या चलनेकेलिए बलकी आवश्यकता है?

बलवन्त—कहो निश्चल! भला तुम समझा सकते हो कि चलती हुई चीज़को रोक देनेसे बल प्रकट होकर कैसे काम करने लगता है?

निश्चल—इसका उत्तर तो बड़ाही सहज है। आजही स्कूलके विज्ञान-भवनके पश्चिम दिशाके दरवाज़े खुले हुए थे और उसी दिशासे वायु बड़े वेगसे बह रही थी। अचानक किसी चीज़के गिरनेका शब्द सुनायी पड़ा। गुरुजी दौड़कर गये तो क्या देखते हैं कि अलमारी वाले शीशेका किवाड़ अलमारीसे उखड़कर गिर गया है और उसके शीशे चूर चूर हो गये हैं। उसके उखड़ जानेका कारण यही न था कि उसने वेगवान् वायुके सामने पड़कर रोक लगायी परन्तु वह उसके धक्केको सहन भी न कर सका और उखड़कर चूर चूर हो गया। यदि कोई बलवान् मनुष्य बड़े ज़ोरसे धक्का लगाता तो उससेभी यही दशा होती। इसी तरह बरसातका चलता हुआ पानी मेड़ोंको काट डालता है क्योंकि मेड़ उसके मार्गमें पड़कर उसकी गतिको रोकना चाहती हैं।

बलवन्त—जब चलती हुई वायु अथवा पानीको रोक देनेसे बल प्रकट होता है तो इसका तात्पर्य्य यह हुआ कि चलते समय यह बल उन पदार्थोंमें अप्रकट (गुप्त) रहता है, और जिस समय चलना रोक दिया जाता है उस समय यह प्रकट हो जाता है।

निश्चल—हां, यह ठीक है। परन्तु यदि ऐसा न कहकर यह कहें कि पदार्थोंके चलनेका कारण बलही होता है तो और भी अच्छा हो क्योंकि संसारमें जितने पदार्थ चलते हुए दिखायी पड़ते हैं उन सबके चलनेका कारण कोई न कोई बल है। हवाके चलनेका कारण सूर्य्यका बल है क्योंकि सूर्य्यकी गरमीसे जब एक स्थानकी हवा गरम होकर हलकी हो जाती है और ऊपरको चली जाती है तो आसपासकी ठंढी हवा उस स्थानको भरनेकेलिए तीव्र वेगके साथ यहां तक पहुँचनेके लिए तैयार हो जाती है और मार्गमें पड़ी हुई वस्तुओंको धक्का लगाती हुई अपना उद्देश्य पूरा करती है। पानीके बहने अथवा चलनेका कारण पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति है। रेलगाड़ी वा जहाज़के चलनेका कारण पानीकी भाफ अथवा कोयलेकी आग है। मनुष्यके चलनेका कारण मनुष्यका बल है, इत्यादि।

बलवन्त—तो इससे यह सिद्ध होता है कि

यदि थोड़ासा बल लगा देनेसे कोई पदार्थ चलने लगजाय तो वह सदैव चलताही रहेगा क्योंकि जब तक उसका चलना न रोका जायगा तब तक वह बल उसमेंसे कहीं नहीं जा सकेगा और गुप्त रहेगा। जब वह रोक लिया जायगा तब बलभी प्रकट होकर कुछ काम कर डालेगा। परन्तु यह बात कहीं देखनेमें नहीं आती। यदि ऐसा हो कि रेलगाड़ीमें एक बार बल लगा देनेसे वह सदैव चलाकरे तो लाखों मन कोयले जलानेकी आवश्यकता न पड़े; यदि एकही बारके घुमादेनेसे चक्की सदैव चला करती तो पिसनहरियोंको दिन रात पीसना न पड़ता; यदि एकही बार कुल्हाड़ी लगानेसे लकड़ी सदैव चिरा करती तो बेचारे मज़दूरोंका रोज़गारभी कहीं न लगता। प्रत्यक्षमें तो यह दीखता है कि बलके लगानेसे गति अवश्य पैदा होती है किन्तु बलको बिना प्रकट किये ही गति मन्द होकर बिल्कुल रुक जाती है और बार बार बल लगाना पड़ता है।

निश्चल—किन्तु गतिके मन्द पड़नेका कारण क्या है? यदि कोई रोक न हो तो गति कभी मन्द पड़ही नहीं सकती और एकही बारके बल लगानेसे वही गति सदैव बनी रहती। देखो रेलगाड़ी हवामें घुसती हुई और लोहेकी पटरियोंको घिसती हुई चलती है। इसी लिए यह उसकी गतिमें बाधा डालती है और उसको एकही बारके बल लगानेसे चलने नहीं देती वरन् निरन्तर बल लगानेकी आवश्यकता पड़ती है। चक्की एकही बारके घुमा देनेसे सदैव नहीं चला करती क्योंकि इसके दो पत्थरोंके बीचमें अनाज और दांत उसको चलनेसे रोकते हैं। इसी लिए बल प्रकट होकर अनाजको पीस डालता है और साल दो सालमें दांतोंको भी घिसकर पत्थरोंको चिकना कर देता है। इन्हीं बातोंको सोच समझकर न्यूटन नामक एक बड़े गणितज्ञने यह नियम बना डाला है कि वस्तु यदि स्थिर है तो सदैव स्थिर रहना चाहेगी और चल रही है तो सदैव सीधी रेखामें चला करेगी यदि उसके लिए कोई रोक न हो अथवा यदि और कोई बल उसपर न लगाया जाय। इसका प्रमाण पूर्णतया कहीं नहीं मिलता क्योंकि संसारमें कोई पदार्थ ऐसा नहीं है जिसके चलनेमें कोई रुकावट न हो। हाँ, यह बात अवश्य है कि जहाँ तक प्रतिबंधक (रुकावट) कम किया जाय वहाँ तक यह नियम लगभग ठीक उतरता है। यदि किसी खुरखुरे धरातलपर कोई गोली लुढ़काई जाय तो बहुत जल्द रुक जाती है, लेकिन यदि उसी बलसे वही गोली समतल और चिकनी भूमिपर लुढ़कायी जाय तो अधिक दूर तक चली जाती है। समतल शीशेके अथवा बर्फ़के धरातलपर वह और दूर जायगी। पालिश किये हुए चिकने तख़्तेपर वही बात पायी जाती है।

बलवन्त—ऐसे नियमके बनानेसे लाभ ही क्या हुआ जब इसको हम अनुभव द्वारा जाँच नहीं सकते केवल स्वतः सिद्ध मान लेते हैं?

निश्चल—इस नियमको स्वतः सिद्ध माननेमें कोई बुराई नहीं मालूम पड़ती। इसकी सच्चाईका पता ऐसे चल जाता है कि ज्यों ज्यों चलती हुई वस्तुका प्रतिबन्धक कम कर दिया जाता है त्यों त्यों उसका चलना बना रहता है। इसके सिवाय इस नियमके द्वारा सूर्य तारे इत्यादिकी स्थिति प्रथम ही निकाली जाती है और पञ्चाङ्गोंमें लिख दी जाती है। पीछे देखा जाता है कि सूर्य्य और तारे ठीक उसी नियमित समयपर प्रकट होते हैं। जब जिस बातके अस्तित्वकी कल्पना करके कोई काम किया जाय और वह ठीक उतरे तब क्या यह समझमें नहीं आता कि उसका अस्तित्व अवश्य है?

बलवन्त—यह नियम थोड़े शब्दोंमें कैसे कहा जा सकता है?

निश्चल—यदि कोई बाहरी बल न लगाया जाय तो प्रत्येक वस्तु या तो अपनी अचल (निश्चल) दशामें या सीधी रेखामें समानगति (uniform motion) वाली दशामें स्थिति रहना चाहती है। इसी नियमको तमोरूपिणी-नियम (law of inertia) कहते हैं क्योंकि इससे यह पता चलता है कि कोई वस्तु अपनी दशाको नहीं बदल सकती जब तक उसके बदलनेकेलिए बल न लगाया जाय। इसीको संक्षेपसे यों कह सकते हैं कि पदार्थ जड़ है अर्थात् वह स्वभावतः अपनी वर्तमान दशामें रहना चाहता है।

इस नियमको जानकर बल (शक्ति) के रूपकाभी ज्ञान होता है क्योंकि बल वही है जो किसी वस्तुकी अचलताको या समान गति वाली दशाको बदल दे और जब तक बल नहीं लगाया जाता तब तक दशा नहीं बदलती। इसलिए बलकी परिभाषा यह हो सकती है "बल वही है जो किसी वस्तुकी अवस्थाको बदल दे"।

इस नियमसे समान समयकाभी ज्ञान होता है। यदि किसी चलती हुई वस्तुमें कोई बाहरी बल न लगाया जाय तो वह निरन्तर समान गतिसे सीधी रेखामें चला करेगी। इसलिए समान दूरीके चलनेमें समान समय लगेगा अर्थात् एक मीलके चलनेमें उसको जितना समय लगता है, दो मीलके चलनेमें उसका दूना लगेगा और आधमीलके चलनेमें आधा लगेगा।

इस नियमको गतिका पहला नियम कहते हैं और चूंकि न्यूटनने प्रमाणोंसे सिद्ध करके ज्योतिष शास्त्रमें इससे बहुत काम लिया था इस लिए यह 'न्यूटनीय गतिका पहला नियम' के नामसेभी प्रसिद्ध है। इस नियमके दो एक दृष्टान्त यह हैं—(१) किसी कटोरेमें पानी भर कर उसको हथेलीपर रख दो और जब पानी स्थिर हो जाय तो ज़ोर से दौड़ो। दौड़ना आरम्भ करनेके समय पानी अपनी प्रथमावस्थाहीमें रहनेकेलिए पीछेकी ओर छलकेगा (उछलेगा)। दौड़ते समय पानीभी गतिमें है इसलिए जिस समय दौड़ना बन्द कर दोगे उस समयभी पानी अपने चलनेकी अवस्थामेंही रहनेके-लिए आगेकी ओर छलकेगा। (२) इसी तरह यदि कोई घोड़ेपर चुपचाप बैठा हो और घोड़ा एक बारगी चल पड़े तो वह मनुष्य पीछेकी ओर गिर पड़ेगा। परन्तु यदि घोड़ा तीव्र गति-से दौड़ता हुआ यक बारगी रुक जाय तो सवार आगेकी ओर गिर पड़ेगा या झुक जायगा।

बलवन्त इसको मैं अनुभवसे तो जानता था परन्तु यह विचार कभी नहीं किया था कि ऐसा क्यों होता है और जिस नियमसे यह होता है उसी नियमसे सूर्य्य चन्द्रमाकी गतिभी बंधी हुई है।

निश्चल—सरकसमें एक तमाशा ऐसा भी दिखलाया जाता है कि एक मनुष्य घोड़े-पर सवार होकर बड़े ज़ोरसे उसको दौड़ाता है और जिस समय घोड़ा दौड़ता होता है मनुष्य उछलकर एक बँधी हुई रस्सीको डांक कर फिर दौड़ते हुए घोड़ेकी पीठपर आजाता है। इसमें बात केवल यही है कि जिस समय वह घोड़ेकी पीठपरसे ऊपरको उछलता है उसके शरीरमें आगे बढ़नेका उतनाही वेग है जितना घोड़ेका, इसलिए उछलनेपरभी वह उसी वेगसे आगे बढ़ता जायगा। उसको केवल ऊपर जानेका प्रयत्न करना पड़ता है। जिस समय वह गिरेगा घोड़ेकी पीठहीपर गिरेगा। सवारकी कार्यपटुता केवल इसीमें है कि घोड़ेकी पीठपर आकर वह संभल जाय।

तुमने यह बहुधा देखा होगा कि चलती हुई रेलगाड़ी जिस समय अचानक रुक जाती है उस समय यात्री आगेकी ओर झुक जाते हैं। और जिस समय गाड़ी एक बारगी चलने लगती है यात्री पीछेकी ओर झुक जाते हैं।

यदि चलती हुई गाड़ीपरसे कोई उतर पड़े तो वह आगेकी ओर फटसे गिर पड़ता है क्योंकि उसका पैर एकबारगी पृथ्वीपर अचल हो जाता है परन्तु और सब शरीर गाड़ीके वेगके बराबर वेगवान् रहता है। इस लिए उतरने वालेको चाहिए कि जिस ओर गाड़ी जा रही हो उसी ओर कूदनेपर दौड़ने लग जाय। जैसा गार्ड या और रेलके कर्म्मचारी करते हैं। दृष्टान्त कहां तक दिये जांय? वास्तवमें जितने कर्म्म संसारमें होते हैं सब प्राकृतिक विज्ञानके एक न एक नियमके दृष्टान्तही हैं।

इसीके साथ गतिका दूसरा नियमभी जान लेना अच्छा होगा। वह यह है—गतिका परिवर्तन, लगाये जाने वाले बलके मानानुसार होता है और यह परिवर्तन उस सीधी रेखाकी दिशामें होता है जिस दिशामें बल लगाया जा रहा हो।

बलवन्त—इसके समझनेमें तो कोई कठिनाई नहीं मालूम होती क्योंकि यदि कोई गेंद लुढ़क रहा हो और फिर उसी दिशामें ढकेल दिया जाय तो अधिक वेगसे लुढ़कने लगेगा। ढकेलनेमें जितनाही अधिक बल लगाया जाय उतनेही अधिक वेगसे वह लुढ़केगा। यदि उस दिशामें बल न लगाकर बग़लमें लगाया जाय तो उसके लुढ़कनेकी दिशा बदल जायगी।

निश्चल—इसी प्रकार पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति, वायुकी रगड़ और चलती हुई हवाकी शक्ति बन्दूककी गोलीको सीधी रेखामें नहीं जाने देतीं वरन कुछ देरमें नीचे भूमिपर गिरा देती हैं, और जितनाही अधिक फेंकनेका बल लगाया जाता है उतनीही गोली अधिक दूर जायगी।

गतिका तीसरा नियम यह है:—प्रत्येक क्रियाके समान और उसके विरुद्ध दिशामें प्रतिक्रिया होती है। अर्थात् जितना आघात एक वस्तु दूसरे वस्तुपर पहुंचाती है उतनाही दूसरी वस्तुभी पहलेके ठीक विरुद्ध दिशामें पहुंचाती है। जिस समय मैं हाथसे मेज़पर थप थपाता हूं मेज़ धक्केसे हिल जाती है और मेरे हाथकोभी उतनेही बलसे धक्का लगाती है। यहां तक कि यदि बड़ा बल लगाकर मैं मेज़को हाथसे मारूं तो मेरे हाथको मेज़भी उतनेही बलसे मारती है और चोट लगती है।

यदि तुम तराज़ूके पलड़ेपर एक सेरका बाट रखदो तो दूसरा पलड़ा उठ जायगा। परन्तु यदि उँगलियोंसे उठे हुए पलड़ेको दबाओ तो पलड़ा नीचे चला आवेगा और अंगुलियोंको मालूम होगा कि पलड़ा उनको ऊपरकी ओर दबाकर उठानेका प्रयत्न कर रहा है। जिस समय दोनों पलड़े समान हो जांयगे उस समय अंगुलियां पलड़ेको एक सेरके बलसे नीचेकी ओर दबायेंगी? और पलड़ा भी अंगुलियोंको एकही सेरके बलसे ऊपरकी ओर दबायेंगी।

यदि एक लुढ़कती हुई गेंद दूसरी गेंदको धक्का लगाये तो जिस वेगसे दूसरी चलने लगेगी उसीके अनुसार पहलेका वेग कम हो जायगा।

गाड़ी खींचनेवाला घोड़ा जितने बलसे गाड़ीको आगे खींचता है उतनेही बलसे गाड़ीभी घोड़ेको पीछे खींचती है।

बलवन्त—यदि गाड़ी भी घोड़ेको उतनेही बलसे खींचती है तो गाड़ी आगे क्यों बढ़ती जाती है? यह तो समझमें नहीं आता।

निश्चल—इसके समझनेमें तो कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि गाड़ीके कारण घोड़ेका बढ़ना कुछ कम हो जाता है अर्थात् यदि गाड़ी न खींचती हो तो घोड़ा उतनाही बल लगा कर अधिक तीव्र जा सकता है। इस लिए घोड़ेका बढ़ना जितना कम हो जाता है उतनाही गाड़ी उसको पीछेकी ओर खींचती है।

फिर यदि तुम किसी नावमें बैठकर किसी दूसरी नावको खींचो तो तुम्हारेही खींचनेसे दूसरी नाव तुम्हारी ओर बढ़ेगी और तुम उसकी ओर, मानो वह नाव तुमको भी खींच रही है यदि दोनों नावोंका भार समान हो तो दोनों एक दूसरेसे समान दूरी तक खिचकर बीचोबीचमें मिलेंगी।

यदि कोई नाव पानीके किनारेसे कुछ दूर हो और उसकी रस्सी किनारेपर किसी खूंटे-से बंधी हो और कोई मनुष्य नावमें बैठा हुआ रस्सीको पकड़कर अपनी ओर खींचे तो वह स्वयम् खूंटेकी ओर खिंचजायगा यद्यपि वह रस्सीको अपनी ओर खींच रहा है। बात यही है कि जितने बलसे वह रस्सीको या रस्सीके द्वारा खूंटेको अपनी ओर खींचता है उतनेही बलसे खूंटा रस्सीके द्वारा मनुष्यको और नावको अपनी ओर खींच लेता है।

चाहे तुम मिट्टीके बने हुए खपड़े, घड़े इत्यादिको पत्थर पर पटक दो चाहे पत्थरको उनपर पटकदो, टूटेगा तो मिट्टीका बना हुआ वर्तन ही पत्थर नहीं, यद्यपि एकबार पत्थर उसको मारता है और दूसरी बार वह पत्थर को मारता है, क्योंकि क्रिया और प्रतिक्रिया समान और एक दूसरेकी प्रतिकूल दिशामें होती हैं और जितनी ठोकरसे मिट्टीका वर्तन टूट सकता है उतनीसे पत्थर नहीं टूट सकता गोकि दोनोंमें बराबर चोट लगती है।

शक काल

[ले० श्री नरेन्द्रदेव, एम०ए० एल-एल० बी०]

शक कालका प्रभव चैत्र शुक्ल १ सन् ७८ ईस्वीको हुआ, प्राचीन कालमें इसका प्रयोग शिलालेख तथा ताम्रशासनोंमें होता था। छठी शताब्दीसे गणनाकेलिए भी इसका प्रयोग होने लगा। भारतके दक्षिण भागमें नर्मदा तथा महानदीके दक्षिण इस कालका प्रयोग मुख्यतः होता था। उत्तरीय भारतके कुछ भागोंमें भी इस कालका प्रयोग होता था। ११वीं शताब्दीमें हिन्दुओंका विश्वास था कि इस कालका भी सूत्रपात महाराज विक्रमादित्यने किया। उस समय जनसमुदायका यह विश्वास था कि महाराज विक्रमने शकजातिपर जो विजय पायी थी उसीके उपलक्ष्यमें इस नवीन कालका सूत्रपात्र किया। परन्तु आधुनिक विश्वासके अनुसार प्रतिष्ठान (पैठान, गोदावरीके तटपर एक स्थान) के राजा शालिवाहन इस कालके प्रवर्त्तक थे।

Archeolgy पुरातत्त्व]

डाक्टर फ्लीटके विचारके अनुसार काठियावाड़के राजा पल्हव वंशीय क्षहरात नहपानने शककालको जन्म दिया। डाक्टर साहबके मतानुसार नहपानने (७८-१२५ ईस्वी) ४७ वर्ष तक राज्य किया। इन्होंने गुजरात, उज्जैन, नासिक और खानदेश अपने वशमें किया और अपनी राजधानी दोहद (पंच महालमें एक स्थान) में स्थापित की। नहपानके दो प्रतिनिधि थे—(१) भूमक काठियावाड़में और (२) चष्टन उज्जैनमें। सन् १२५ ईस्वीके लगभग गौतमीपुत्र श्री शातकर्णीने नहपानपर विजय पायी और जो प्रदेश नहपानने उनसे छीन लिये थे उनको फिर से प्राप्त किया। कुछ समयके अनन्तर चष्टन या उसका पुत्र जयदामन् नहपानके राज्यके उस भागका अधिपति होगया जो नर्मदा नदीके उत्तर था और उसके वंशधरोंने तीन शताब्दी तक राज्य किया। इन्होंने नहपान द्वारा प्रवर्त्तित कालका प्रयोग किया और धीरे धीरे शकाब्द एक प्रतिष्ठित काल होगया।

सन् ३६८ ईस्वी तक 'शककाल' का उल्लेख लेखोंमें नहीं मिलता है केवल 'वर्ष' शब्दका प्रयोग पाया जाता है।

डाक्टर फ्लीटका यह मत हमको मान्य

नहीं है, जैसा हम 'विक्रम काल' संबंधी लेखमें दिखला चुके हैं डाक्टर फ्लीटका यह कहना कि कनिष्क ईसाके ५७ वर्ष पूर्व हुए अन्य विद्वानोंको स्वीकृत नहीं। बहुमतके अनुसार महाराज कनिष्कका समय सन् ७८ ईस्वी है। विंसेंट स्मिथनेभी इस मतको अब स्वीकार कर लिया है कि महाराज कनिष्कही शककालके प्रवर्त्तक हैं।

डाक्टर कीलहार्न (Dr. Kielhorn) ने Indian Antiquary में शककालपर कुछ लेख प्रकाशित किये थे। उनमें ४०० लेखोंपर विचार किया गया है। सन् ३६८ ईस्वी तक जिन लेखोंमें केवल 'वर्ष' शब्दका प्रयोग किया गया है उन लेखोंके विषयमें डाक्टर कीलहार्नका मत है कि 'वर्ष' शककालका सूचक है। इस विचारकी पुष्टिमें डाक्टरने जो तर्क दिया है वह सन्तोषप्रद है। आपका कथन है कि 'वर्ष' का प्रयोग विशेषतः शककालके संबंधमें पाया जाता है और 'संवत्' का प्रयोग मुख्यतः विक्रम कालके संबन्धमें पाया जाता है। १५० लेखोंमेंसे, जिनके विषयमें निश्चितरूपसे ज्ञात है कि वे शक कालका प्रयोग करते हैं, ६० लेख ऐसे हैं जिनमें 'वर्ष' आता है और केवल ६० ऐसे हैं जिनमें 'संवत्' शब्दका प्रयोग होता है। विक्रमाब्द् लेखोंमें १२३ में से १२० लेखोंमें 'संवत्' आता है। जिन लेखोंमें केवल 'वर्ष' शब्दका प्रयोग पाया जाता है वे लेख कलचूरि चेदि तथा हर्ष कालके नहीं माने जा सकते क्योंकि इन कालोंके जो लेख हमको अबतक मिले हैं उनमेंसे किसीमें भी 'वर्ष' नहीं प्रयुक्त हुआ है। ये लेख गुप्त और वल्लभी कालका प्रयोग करते हुए भी नहीं माने जासकते क्योंकि ७१ लेखोंमेंसे, जिनके बारेमें ठीक प्रकारसे विदित है कि ये गुप्त तथा बल्लभी कालका प्रयोग करते हैं ६७ लेख ऐसे हैं जो 'संवत्' शब्दका प्रयोग करते हैं। क्षत्रपोंके लेखोंमें निरन्तर 'वर्ष' का प्रयोग होता है। ऐसी अवस्थामें हम इस बातके माननेमें बाध्य हैं कि सन् ३६८ ईस्वी तक जिन लेखोंमें केवल 'वर्ष' शब्द आता है वे शक कालका प्रयोग करते हैं।

'लोक विभाग' नामका एक संस्कृत ग्रंथ है। यह ग्रंथ हालहीमें खोजमें मिला है। इसका सन् ४५८ ईस्वी है। इसी ग्रंथमें पहले बार शक कालका प्रयोग हुआ है। कांचीके सिंहवर्मन्के समयमें यह ग्रंथ लिखा गया था। धीरे धीरे गणनाकेलिए इस कालका प्रयोग होने लगा। और बराहमिहिरकी 'पंचसिद्धान्तिका' में शक कालका उल्लेख है। पंचसिद्धान्तिकाका समय सन् ५०५ ईस्वी है। लेखोंमें शककालका स्पष्ट रूपसे उल्लेख सबसे पहले चालुक्य वंशीय महाराज रणविक्रान्त मंगलेश्वरके बादामी गुफाके लेखमें मिलता है। यह लेख सन् ५७८ ईस्वीका है। इसके अनन्तर दक्षिण भारतके बहुतसे लेख इसी कालका प्रयोग करते हैं। सन् ५७८ ईस्वीके बादके लेख 'शककाल', 'शकनृपकालातीत संवत्सर', 'शकवर्ष' 'शकसंवत्सर' 'शकाब्द', 'शाके' वा 'शालिबाहनशक' का प्रयोग करते हैं। यद्यपि कुछ लेखों या ग्रंथोंमें शालिबाहनका नाम आता है तथापि इसके साथ साथ 'शक' शब्दका प्रयोग पाया जाता है।

अभी तक शक कालका प्रयोग दक्षिण भारतहीमें पाया जाता है। उत्तरीय भारतमें सबसे पहले इसका प्रयोग सन् ८६२ ईस्वीके एक जैन लेखमें पाया है जो देवगढ़ (ललितपुरके निकट) एक स्थानमें मिला है। यह लेख भोजदेवका है, इसमें विक्रम तथा शक दोनों कालोंमें तिथि दी गयी है। इस समयसे उत्तरीय भारतमें भी लेख पाये जाते हैं जिनमें शक कालका प्रयोग है परन्तु बहुतायतसे इसका प्रयोग सन् ११३७ ईस्वीसे ही हुआ है।

भारतवर्षके बाहर भी शक कालका प्रयोग हुआ। भारतका जिन जिन देशोंसे व्यापार था

वहां वहां इस कालके प्रचारकी संभावना हो सकती है। सन् ६२४ ईस्वीमें (cambodia) कम्बोजमें इसका प्रचार हुआ और सन् ७३२ ईस्वीमें इस कालका अस्तित्व जावा (यवद्वीप) में पाया जाता है। तदनन्तर लंकाद्वीप तथा नैपालमें भी इसका प्रचार हुआ।

तारद्वारा चित्र एक स्थानसे दूसरे स्थानतक पहुंचाना

[ले० श्रीयुत निहालकरण सेठी एम. एस-सी]

तार द्वारा समाचार संसारके एक छोरसे दूसरे छोर तक नित्य प्रति आते जाते हैं और समाचार पत्रोंमें छप कर तुरन्त ही सर्वधारणके पास पहुँचते रहते हैं। यह बात बहुत पुरानी हो गयी है अतः इसे देखकर आज कल किसीको भी आश्चर्य नहीं होता। बहुत लोग समझते होंगे कि वैज्ञानिक इस विषयको छोड़ बैठे हैं और इसकी खोजमें अब अपना समय नहीं लगाते। इन्हें यह मालूम नहीं कि जिसे विज्ञानसे प्रेम हो जाता है वह कभी चुप नहीं बैठ सकता। यदि भाषाको सुदूर स्थानतक तार द्वारा पहुँचा देनेमें मनुष्यको सफलता होगयी तो उसकी यह इच्छा स्वाभाविक ही थी कि अब वह चित्रोंको भी भेजनेका प्रयत्न करे। जब इसमें भी सफलता हो लेगी तब कदाचित ऐसा भी समय आजाये कि वह अन्य वस्तुएँ भी इसही प्रकार मिनटोंमें महासागरके पार भेज सकनेकी इच्छा करे। इस समय यह असम्भव प्रतीत होता है सही किन्तु विचारकी बात है कि लगगभ ६० वर्ष पहले चित्र भेजना भी असम्भव ही जान पड़ता था। जो वैज्ञानिक इंजीनियर इस कार्यमें लगे थे उन्हें साधारण लोग पागल बतलाया करते थे। परन्तु उन्हें विश्वास था कि सफलता अवश्य प्राप्त होगी। समाचार पत्रोंमें चित्र छापनेका जो प्रचार हो रहा था उससे इस विद्याको व्यापारिक लाभ भी होनेकी उन्हें पूरी आशा थी इसके अतिरिक्त अपराधीको पकड़ लेनेमें इससे पुलिसको कितनी सहायता मिल सकती है इस बातसे भी वे अपरिचित न थे। जब एक दो चित्र इस प्रकारके प्रकाशित होगये तो जनसाधारणकी भी यह इच्छा प्रबल हो उठी कि किसी घटनाके एक ही दो घंटे बाद उसका चित्र देखनेको उपलब्ध होजाना चाहिए। यही कारण हुआ कि पिछले ७-८ वर्षोंमें इसे असाधारण सफलता प्राप्त हुई है। तब क्या आश्चर्य है कि जो इस समय असम्भव है उसे विज्ञान कल सम्भव ही नहीं सरल कर डाले।

क्या बिजली भी चित्र खींच सकती है? क्या इस विशाल किन्तु निर्जीवशक्तिमें चैतन्यता और बुद्धि भी विद्यमान है जो चतुर चित्रका[illegible] की नाईं एक स्थानपर एक चित्रको देख [illegible] मीलपर जाकर फिर वैसाही चित्र [illegible] चाहे उसमें ऐसी बुद्धि हो [illegible] है कि सिली- उसके स्वामीके कंधोंपर जो [illegible]दी नहीं बदलती हुआ है उसमें इसकी कमी नह[illegible] प्रकाश पड़नेके

जिस प्रकार लिखित समा[illegible] न पड़े तो भी टुकड़े किये जा सकते हैं, उसही प्र[illegible] काग़ज़पर भी विभाग हो सकते हैं। जिस प्र[illegible]ब भी पड़ अक्षर उचित रीतिसे मिलकर एक स[illegible]को कैसे की रचना करते हैं, जिस प्रकार तारघरमें [illegible]के और विन्दुओं द्वारा अक्षरोंका ज्ञान हो जाता है उसही प्रकार भिन्न भिन्न परिमाणके और पृथक् पृथक् गहराईके छोटे छोटे टुकड़ोंको एकत्रित करके चित्र भी बनाया जा सकता है यह ठीक है सही किन्तु प्रश्न तो यह है कि इन छोटे छोटे टुकड़ोंको तारद्वारा कैसे अंकित करें।

पहले पहल तो यही सूझी कि चित्रके ऐसे हज़ारों भाग करके प्रत्येक भागकी गहराईके अनु-

Electricity विद्युत् शास्त्र]

सार उसका संकेत निश्चित कर लिया जाय। किसी हलके रंगवाले भागका c. d. इत्यादि और गहरे रंगवालेका y. z. इत्यादि। फिर पानेवाला इन संकेतों द्वारा चित्र बना डाले। इसे कार्यमें परिणत करनेमें कितनी आपत्ति है इसका अनुमान करना कठिन नहीं। तारद्वारा चित्र भेजनेसे मतलब तो यह है कि समय बहुत ही थोड़ा लगे। मिनिटों और सेकेंडोंकी भी बचत हो और यहां १० सहस्र टुकड़ोंको भेजनेमें घंटों ही लग जाँय। रेलगाड़ियां, वायुयान आदि आजकल इस वेगसे चलते हैं कि यदि १००-२०० मील ही की दूरी हुई तो तारसे पहले तो वे ही चित्रको पहुँचा देंगे।
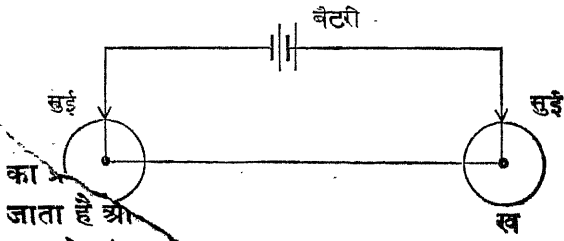
का ...
जाता है औ...
कालके संबन्धमें...
से, जिनके विषयमें...

चित्र नं० १

शक कालका प्रयोग (Bidewell) ने ही सबसे प्रथम जिनमें 'वर्ष' आता है सफलता प्राप्त की इस समय- जिनमें 'संवत्' शब्द न रीतियोंमेंसे एकका अविमाब्द लेखोंमें १२के बतलाये मार्गद्वारा हुआ है। आता है। जि बहुत ही सीधा था। भेजने और प्रयोग पाया दोनोंपर एक एक धातुका बेलन था। तथा हर्ष दोनों एक साथ एक ही वेगसे घूमते थे। इन दोनोंपर एक एक सुई ठीक फ़ोनोग्राफ़की भांति बेलनपर चलती थी अर्थात् बेलन घूमता था और सुई धीरे धीरे बेलनकी लम्बाईकी दिशामें आगे बढ़ती जाती थी। भेजनेके स्थानपरके बेलनपर एक टीनका पत्र जिसपर चपड़े (shellaec) की बनी हुई स्याहीसे चित्र खिंचा होता था लपेट दिया जाता था और पानेके स्थानके बेलनपर रासायानिक काग़ज़ लिपटा रहता था। यह काग़ज़ ऐसा था कि ज्योंही सुईमें होकर विद्युत प्रवाह हो, उसपर एक दाग़ बन जाय।

क और ख दोनों धातुके बेलन हैं—एक बैटरी भी जोड़ दी गयी है। जिस समय क की सुई टीनपर लगी होती है, विद्युत प्रवाह जारी हो जाता है औ ख के काग़ज़पर चिन्ह बन जाता है किन्तु जब इस सुईके नीचे चित्रकी चपड़ी आजती है तब यह प्रवाह रुक जाता है और ख के काग़ज़पर निशान नहीं बनता। इस प्रकार क की सुई सम्पूर्ण चित्रपर फिर जाती है। जब जब सुईके नीचे चपड़ी आती है काग़ज़पर निशान नहीं बनता पर जब जब सुई टीनसे लग जाती है वहां चिन्ह बन जाता है। इस प्रकार फ़ोटोग्राफ़ीकी भांति उलटा चित्र (Negative) तारद्वारा बहुत ही सरलतासे बन जाता था।

६० वर्ष पहले इसही रीतिका अनुसरण किया जाता था। किन्तु उस समय यह रीति बहुत दूर तक कामदेनेमें असमर्थ निकली। इस ही कारण इसका व्यापारिक प्रयोग न होसका। इसके अतिरिक्त और और वैज्ञानिकोंने भी चित्र भेजनेकी रीतियोंका आविष्कार किया है। उनमेंसे केवल उन दोका यहां उल्लेख किया जायगा जिनका समुन्नत स्वरूप इस समय काममें आता है।

बाइडवैल (Bidewell) ने सिलीनियम धातुसे काम लिया। इस धातुमें विशेषता यह है कि विद्युत प्रवाहको जो रुकावट इसके द्वारा मिलती है वह इसपर प्रकाश पड़नेपर बहुत ही घट जाती है। यहां तक कि यदि अंधेरेमें इस रुकावटका परिमाण ढाई लाख था तो १६ मोमबत्तियोंका तीन इंचकी दूरीसे जो प्रकाश इसपर पड़ेगा वह इसे घटाकर साठ हज़ार कर देगा। इस धातुकी छोटी छोटी 'सेल' बनाकर काममें लाते हैं।

मान लीजिये कि जिस चित्रको तार द्वारा भेजना है उसका अक्स प्रकाश द्वारा एक परदे-पर गिराया गया और सिलीनियम सेलके आकारके भागोंमें इसे विभक्त कर दिया। अब यदि वह सेल भिन्न भिन्न भागोंमें रखी जाये तो किसीमें अधिक और किसीमें कम प्रकाश होनेसे उसमें होकर बहनेवाली बिजलीको कभी अधिक और कभी थोड़ी रुकावट मिलेगी। अतः उसका प्रवाह भी घटता बढ़ता रहेगा। चित्र जहां पहुंचाना है वहां एक फ़ोटोग्राफ़ी-के काग़ज़पर जो प्रकाश पड़े वह यदि इस बिजलीके प्रवाहके अधिक होनेपर अधिक और कम होनेपर कम होता रहे और यह प्रकाश हज़ार टुकड़ोंपर क्रमशः पड़े तो उस काग़ज़-पर भिन्न भिन्न गहराईके एक हज़ार भाग होंगे जिन्हें दूरसे देखनेपर वही तस्वीर देख पड़ेगी। यह रीति तो बहुत सरल है परन्तु जब इससे वास्तविक काम लिया गया तो बहुत कठि-नाई हुई। अब अध्यापक कार्न (Korn) ने इन कठिनाइयोंको बहुत कुछ दूर कर दिया है।

वे चित्रको पहले एक पारदर्शक पदार्थ सल्यूलायड (celluloid) पर फ़ोटोग्राफ़ीद्वारा खींच लेते हैं। इसे एक कांचके बेलनपर लपेट देते हैं। इस बेलनके बीचमें एक बिजलीका लैम्प जलता रहता है। इसका प्रकाश एक ताल या लेंस (lens) द्वारा चित्रके एक छोटेसे भागमें होकर एक सिलीनियम सेलपर पड़ता है। यह बेलनभी उपरोक्त बेकवेलके बेलनकी भांति घूमता है और अपनी अक्षकी दिशामें आगे भी सरकता जाता है। लैम्प और सिली-नियम सेल स्थिर रहते हैं। इस प्रकार बेलनके घूमनेसे क्रमशः चित्रके भिन्न भिन्न भागोंमें हो कर भिन्न भिन्न शक्तिका प्रकाश सिलीनियम सेलपर पड़ता है और उसमेंसे बहने वाली बिजलीके प्रवाहको भी घटाता बढ़ता रहता है। यही बिजली जाकर दूसरे स्थानपर एक त्रिकोण छिद्रको अपनी शक्तिके अनुसार खोल देती है और शक्ति न होनेपर बन्द ही रहने देती है। इस छिद्रमें होकर प्रकाश फ़ोटोग्राफ़ीके काग़ज़के एक छोटे भागपर पड़ता है। यह काग़ज़ भी एक बेलनपर लिपटा रहता है जो ठीक भेजनेवाले बेलनके समान घूमकर क्रमशः भिन्न भिन्न भागोंको प्रकाशके सम्मुख करदेता है इस प्रकार पुनः चित्र बन जाता है।
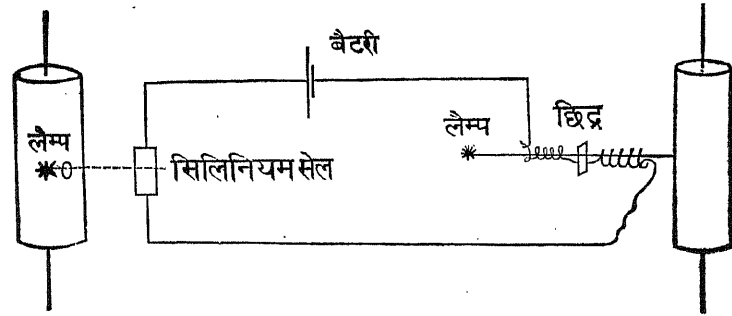
चित्र नं० (२)

परन्तु इसमें कठिनाई यह है कि सिली-नियमकी रुकावट जल्दी जल्दी नहीं बदलती और इस कारण बहुत अधिक प्रकाश पड़नेके बाद ही यदि कुछ भी प्रकाश न पड़े तो भी उधर छिद्र बन्द नहीं हो जाता और काग़ज़पर जब प्रकाश नहीं पड़ना चाहिए तब भी पड़ जाता है। वैज्ञानिकोंने इस कठिनाई को कैसे दूर किया है और आजकल इस सीधेसे यंत्रके स्थानमें किन किन जटिलताओंका प्रयोग किया जाता है यह जानना कुछ सरल कार्य नहीं। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि अध्यापक कार्नने इसमें इतनी उन्नति करली थी कि ११ मिनिटमें पूरा ६ इंच × ५ इंचका चित्र लंडनसे मैं-चेस्टर बिना कठिनाईके भेजदिया जाता था।

इतना होनेपर भी कार्न चुप बैठने वाले न थे। उन्होंने इससे भी अधिक सरलतासे काम

कर सकनेकेलिए टेलाटोग्राफ़ (Telautograph) नामक यन्त्र निकाल डाला। इसकी विशेष आवश्यकता यों हुई कि यद्यपि वे चित्र जिनमें बहुत सूक्ष्मताकी आवश्यकता नहीं होती (यथा स्त्री पुरुषोंके चित्र) सिलीनियम द्वारा भेजे जा सकते थे परन्तु प्राकृतिक सौंदर्यको यह रीति बिलकुल ही बिगाड़ देती थी। इस यंत्रमें उन्होंने बेकबैलकी और अपनी रीतियोंको मिला डाला। भेजनेका काम वही चपड़ी और धातुका पत्र एक सुईकी सहायतासे करते हैं और नियत स्थानपर पहुँचकर एक छिद्रके सामनेसे छोटा तार हट कर फ़ोटोग्राफ़ीके काग़ज़पर प्रकाश डाल देता है। १६०८ ई० में यह यंत्र पैरिस और बर्लिनमें प्रयुक्त हुआ और धीरे धीरे लंडन और मैंचेस्टरमें भी सिलीनियमके स्थानमें इसहीका राज्य होगया।

एम्स्टट्जने (Amstutz) एक और ही तरकीब निकाली थी। उन्होंने फ़ोनोग्राफ़की चूड़ीके समान ही एक बेलनपर ऐसा चित्र बनाकर लपेटा कि जिसमें कालेपन और सफ़ेदीके स्थानपर उँचाई निचाई थी। जहाँ जितना अधिक प्रकाश पड़ा हो वहाँ उतना ही अधिक उभार था और जहाँ जहाँ प्रकाश न पड़ा वहाँ ख़ूब गहरा खुद गया था। ऐसा चित्र बहुत सरलतासे बन जाता है। एक काग़ज़पर अंधेरेमें बाई क्रोमेट (Bichromate) मिली हुई जिलेटीन (gelatine) लगा देते हैं। ऐसा बना हुआ काग़ज़ कार्बन टिस्यू (carbon tissue) कहलाता है। इसपर साधारण फ़ोटोग्राफ़ीके प्लेटसे प्रकाश द्वारा चित्र छाप लिया जाता है। तब गरम पानीसे धोनेपर जहाँ जहाँ प्रकाश पड़ा हो वहाँ तो गरम पानी कुछ नहीं कर सकता और जहाँ प्रकाश नहीं पड़ा वहाँसे जिलेटीन घुलकर एक गड़हासा बन जाता है।

ऐसे चित्रकी पहाड़ियोंपर चढ़ती और खाइयोंमें उतरती हुई एक सुई ठीक उपरोक्त सुइयोंकी भांति यात्रा करती है और अपने उत्थान-पतनके कारण विद्युत्प्रवाहको कम ज़्यादा कर देती है। दूसरी ओर भी ऐसी ही एक सुई धातुके पत्रपर ठीक इसही प्रकारका चित्र खोद देती है। इस प्रकार केवल चित्र ही नहीं बन जाता वरन चित्र छापनेका ब्लाक भी अपने आप तैयार हो जाता है। अंतर केवल इतना होता है कि यह ब्लाक रेखाओंसे बना होता है और हाफ़टोन चित्रसा देख पड़ता है। किन्तु इसमें कठिनाइयां इतनी हैं कि स्वयं आविष्कर्त्ताने कहा है कि व्यापारिक कार्यकेलिए यह रीति उपयोगी नहीं हो सकती।

फ्रांसके बेलिन (Belin) नामी महाशयने इसे भी काट छांटकर एक टेलीस्टीरियोग्राफ़ (Telesteriograph) बना लिया है। इसमें टेलीफ़ोनके सिद्धान्तकी भी सहायता ली है। यद्यपि यह चित्र भेज देता है किन्तु ब्लाक नहीं बना सकता। इसका कारण स्पष्ट ही है। २०० मील लम्बे तारमें होकर क्षुद्रवेगसे बहने वाली बिजलीमें इतनी शक्ति कहाँसे आये कि किसी धातुके पत्रपर कुछ खोद डाले?

इस समय जो सबसे अधिक उत्तम यन्त्र है वह थार्न-बेकर (Thorne-Baker)का बनाया हुआ टेलेक्ट्रोग्राफ़ (Telectrograph) है। यह भी बेकबैलके बनाये हुए सिद्धान्तकाही समुन्नत रूप है। परन्तु बैकवेलको सफलता न हुई और इन महाशयने अपना यन्त्र सबसे अच्छा बना डाला इसका कारण केवल यह था कि इसमें अगणित असफलताओं और प्रयोगों द्वारा निश्चित बातोंको ध्यानमें रख कर, सब कठिनाइयोंको जानकर उनके दूर करनेकी चेष्टाकी गयी है। यही एक मात्र वैज्ञानिक उन्नतिका मार्ग है।

यद्यपि इस समय यह नहीं कहा जा सकता कि तारद्वारा चित्र भेजनेमें जैसी चाहिए वैसी सफलता हो गयी, अथवा चित्र भी उतनी ही

सरलतासे भेजे जा सकते हैं जैसे शब्द, परन्तु 'डेली मिरर' इत्यादि कई समाचार पत्र पाश्चात्यदेशोंमें ऐसे हैं कि जिनमें नित्य प्रतिही तार द्वारा चित्र आते हैं और छपते हैं। उन्हें देखकर अब बहुत आश्चर्य्य नहीं होता। किन्तु वैज्ञानिकोंको इससे संतोष नहीं हो सकता। जब तक वे लंडनमें बैठकर अमरीकाकी घुड़-दौड़का ठीक उसही प्रकारका चित्र न बना सकें जैसा फ़ोटोग्राफ़र सामने खड़ा होकर बना लेता है और जब तक दौड़ समाप्त होनेके एकही घंटेके पश्चात संसार भरके समाचार पत्रोंमें यह चित्र प्रकाशित न हो सके तब तक वे चुप नहीं बैठ सकते। इस विषयमें सफलता होनेपर भी वे इसमें उन्नति करना छोड़ देंगे ऐसा नहीं हो सकता। अब बेतारके समाचार जाने लगे हैं। तब स्वाभाविक इच्छा यह होनी ही चाहिए कि चित्र भी बिना तार ही पहुंच जाया करें। यह स्वप्न नहीं है। अभीसे ही बहुतसे वैज्ञानिकोंने इसकी भी अनेक युक्तियाँ निकाल डाली हैं और आशा है कि बहुतही शीघ्र बेतार द्वारा चित्र भेजनेसे अधिक सरल और अच्छी युक्ति बिनाही तार भेज सकनेकी निकाल देंगे।

यह सब कार्य करनेवाली शक्तिने मानव समाजके लाभार्थ क्या क्या कर दिखाया है इसपर विचार करनेसे इस विद्युत्‌केलिए हृदयमें आदरका भाव उत्पन्न होता है और जो लोग इस शक्तिको देवता समझकर पूजते थे उनसे विशेष सहानुभूति होजाती है। समाचार भेजनेके अतिरिक्त यह शक्ति आज कैसे कैसे कार्य करती है यह कहना कठिन है क्योंकि कदाचित् ही कोई कार्य बचा हो जिसमें इसके प्रयोग ने लाभ न पहुँचाया हो। इसके द्वारा हम उष्णता, प्रकाश, शब्द और यंत्र संचालन शक्तिको एक स्थान-से सैंकड़ों सहस्रों मील दूर आसानीसे भेज सकते हैं। पिछले कुछ वर्षोंमें एक्स किरण X-rays के रूपमें शरीरके अन्तर्गत अवयवोंके देखनेका सामर्थ्य हमें मिला है। जो वस्तुएं मर्त्यनेत्रोंसे प्रकृति छुपा रखना चाहती थी उन्हें भी देखलेना अब केवल बायें हाथका खेल है। क्या आश्चर्य है कि शीघ्रही वह हमारी देखनेकी शक्तिकी सीमाकोभी विस्तृत करदे और यहां बैठकर लंडनमें होते हुए नाटकको और फ्रांसके युद्धको सरलतासे नेत्रही द्वारा देख सकें।

भोजन-विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय, एम. बी. एम. आर. सी. एस]

(गताङ्कसे आगे)

मनुष्यकी पाचन क्रियाका सविस्तार वर्णन।

अब मैं मनुष्यकी पाचन क्रियाका सविस्तार वर्णन करना चाहताहूं। यह वर्णन उसी क्रममें किया जायगा जिस क्रमसे भोजन स्वभावतः पचा करता है।

१—मुखमें पाचन।

हम लोगोंको मालूमही है कि मुंह शरीरका एक खोल है जिसमें बत्तीस दांत जड़े हुए हैं। इसमें एक गूदेदार जीभ होती है। जिह्वाको हम स्वादेन्द्रिय कह सकते हैं। जिह्वाके चारों ओर एक मुलायम तथा तर झिल्लीकी झालर लगी हुई है। मौखिक खोलमें रस टपकानेवाली बहुतसी थैलियां हैं जिनमेंसे लारकी थैली बहुत प्रसिद्ध है। मुंह एक नलीसे जिसे गला (gullet) कहते हैं मिला हुआ है। इस नलीमें कोई भी पाचन क्रिया नहीं होती। वह केवल भोजनको मुंहसे पेटतक पहुंचा देती है। जवान आदमियोंके बत्तीस दांत होते हैं। इनमेंसे आगे वाले दातोंके कोने बहुत तेज़ होते हैं। ये भोज्य पदार्थको पकड़ने और नोचनेमें काम आते हैं। मांसाहारी

जानवरोंमें अगले दांत और दाढ़के बीच वाले दांत बड़े भयङ्कर और तीव्र होते हैं। परन्तु मनुष्योंमें ये अपनी प्राथमिक अवस्थामें पाये जाते हैं और प्रायः मनुष्यकेलिए निकम्मे होते हैं। पीसने वाली दाढ़ें इन दांतोंसे पीछे होती हैं। सब दांतोंकी अपेक्षा ये बहुत आवश्यक हैं। दाढ़ें ठोस भोजनके छोटे छोटे टुकड़े कर डालती हैं।

अन्यत्र कहीं मैंने मनुष्यके दांतोंकी विशेषताओंका वर्णन किया है और मनुष्य तथा एन्थ्रोपाइड बन्दरोंके दातोंकी समानताओं और असमानताओंकी तुलनाकी है। मैंने दिखलाया है कि किन विशेष बातोंमें मनुष्यके दांत बन्दरोंके दांतोंसे भिन्न हैं। बन्दरोंके दांतोंकी समानता केवल दिखाऊ है। इस ऊपरी समानताका कोई यह नतीजा नहीं निकाल सकता है कि मनुष्य बन्दरोंकी तरह स्वभावसेही फलाहारी है।

भोजन पचानेके कारखानेका मुँह पहला विभाग है। यहाँपर भोजनके टुकड़े किये जाते हैं और यहाँपर लार आकर भोजन से मिलती है। यह लार दो थैलियोंके रसोंका मिश्रण है एक तो लार टपकानेवाली थैली (salivary glands) का रस और दूसरे थूक या खखार निकालनेवाली थैली (cucous glands) का रस। यह लार आदमीके बड़े कामकी है। उसके निम्न लिखित कार्य्य हैं।

(१) मुँहकी खोलके चारों ओर लगी हुई पतली झिल्ली (mucous membrane) म्यूकसमेम्ब्रेनको लार भोजनके साथ खाये हुए झुलसानेवाले या झिल्लीमें झनझनाहट पैदा करनेवाले पदार्थोंके हानिसे बचाती है। जब वह ऐसे पदार्थोंसे आकर मिल जाती है तो वे पदार्थ लारमें घुलकर पतले हो जाते हैं और उनका ज़ोर कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त लार मुँहको भोजनके कणोंसे शुद्ध रखती है। यदि कोई भी भोजन का कण मुँहमें रह जाय तो वह वहाँपर विकृत होने लगेगा और उसमें विकार होनेसे दाँतोंको बड़ी हानि पहुँचेगी क्योंकि भोजनके बिगड़नेपर कुछ ऐसे तेज़ाब बनते हैं जो दाँतो और उनकी जड़ोंको घोल डालते हैं।

(२) वह भोजनके निगलनेमें बड़ी सहायता देती है। ठोस और सूखे पदार्थको गीला कर देनेसे वे असानीसे निगल लिये जाते हैं। बहुतसे घुलजानेवाले पदार्थोंको तो लार घोल देती है और न घुलने वाले ठोस और भारी पदार्थोंके चारों ओर लारकी एक चिकनी फिसलने वाली झिल्ली बन जाती है।

(३) वह मांड (स्टार्च) को पचाती है। स्टार्च नाजोंका एक आवश्यक उपादान (ingredient) है। गेहूँ, चावल, जौ और हर एक प्रकारकी दालमें स्टार्च मिलता है। पचनेके पहले स्टार्चको अंगूरकी शकरमें तबदील होना पड़ता है। जिस प्रकार जौ वग़ैराकी शराब बनानेमें पहले जौके भिगोने और उसमें अङ्कर इत्यादि फूटनेके बाद ख़मीर उठता है ठीक इसी तरहसे लारके मिलनेसे स्टार्चमें ख़मीर उठता है और स्टार्च ख़ूनमें शीघ्रतासे मिल जाने वाले शकरके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। भोजनके मुँहमें आने और चबानेके कारण लार निकलने लगती है और यह उतनी ही निकलती है जितना कि भोजन पकानेकेलिए आवश्यक है। प्रत्येक प्रकारके भोजनको लारकी आवश्यकता एक समानही नहीं होती है। रसीले पदार्थको जैसे गुलगुले या साबूदानेको, पचानेकेलिए उतनी लारकी आवश्यकता नहीं है जितना कि सूखे चबेनोंकेलिए। अतः चबेनोंका अच्छी तरहसे चबाया जाना नितान्त आवश्यक है।

जब हम लोग आंटा देनेवाले पदार्थोंको पकाते हैं तो उसके स्टार्चका जलाव बन जाता है। लारसे निकलनेवाले ख़मीरका सबसे

महत्वका काम इस लपसीवाले स्टार्चको पतला कर देना है। गैस्ट्रिक रस और तो सब पदार्थोंमें घुस जाता है परन्तु स्टार्चके अन्दर घुसना उसकेलिए महा कष्ट साध्य है। हम लोगोंके भोजनोंमें लेई रूपमें स्टार्च रोज़ पड़ोसा जाता है। गुलगुलों और फुलौड़ियोंमें तो इसकी बहुत ही अधिकता होती है। इस-लिए इसप्रकारके भोजनोंको चबलाकर खाना बहुत ज़रूरी है।

लारमें ख़मीर उठानेवाले पदार्थका नाम प्टाइलीन (Ptyline) है। यह बड़े आश्चर्य्य-की बात है कि स्टार्चको शकर बनानेवाली शक्ति जानवरोंकी लारमें नहीं पायी जाती है। इसका शायद यह कारण है कि प्रकृत कोई भी सामग्री व्यर्थ व्यय नहीं होने देती। प्टाइ-लीनको बहुत बड़ी आवश्यकता पके हुए भोजनको पचानेमें पड़ती है। जानवर कच्चा नाज ही खाते हैं इसलिए उनकी लारमें यह शक्ति शाली पदार्थ नहीं मिलता। इसी ढङ्गपर विचार करनेसे यह जाननेकी उत्कंठा होती है कि आदिम मनुष्यकी लारमें स्टार्चको शकर बनानेवाली शक्ति थी या नहीं क्योंकि आगका पता लगनेके पहले मनुष्य कच्चा अन्न ही खाता होगा। यहांपर यह बात ध्यानमें रखनी चाहिए कि उस समय मनुष्य अधिकतर बहुत प्रकारके मांसोंपर ही जीता था। उस समय उसे ये मीठे मांडवाले स्टार्ची भोजन नहीं मिलते थे।

इन बातोंसे चबाने और मुंहमें भोजन पच-नेके विषयमें सारांशसे ये सिद्धान्त निकलते हैं।

क—भोजनके टुकड़े किये जाते हैं, फिर वह पीसा जाता है और अंतमें लेईसा बन जाता है।

ख—स्टार्चका घुलनेवाली शकरमें परिवर्तन प्रारम्भ होता है।

गालके जोड़ और जिह्वाकी सहायतासे ठोस भोजन एक लेईकी तरह लसदार टिकियामें बन कर मानुषी पाकशालाके दूसरे विभाग पेटमें पहुंचता है और वहां उसके पाचनकी दूसरी क्रियाका आरम्भ होता है।

२—पेटमें पाचन।

पेट एक बड़ा भारी भिन्न भिन्न प्रकारकी थैलियोंका मिश्रित थैला है। इसके दीवालोंमें उन छोटी छोटी नलियोंके अतिरिक्त झिल्ली रस विशेष निकलते रहते हैं पुट्ठोंके रेशे [illegible] हुए हैं। पेटके खोखलेके चारों ओर ए[illegible]rine) और झिल्ली चढ़ी हुई है। इस झिल्लीमें छे[illegible]वभक हो नलियों (tubes) के आकार वाल[illegible] थैलियां धंसी हुई हैं। इस खोखलेमें एक बहुत ही गूढ़रूपसे मिश्रित र[illegible]ट जाता है करता है जिसे गैस्ट्रिकजूस (gastr[illegible] जाता है। कहते हैं। इस रसका उद्देश्य भोजनपरथम गीले तीव्र आक्रमण करनेका है। पेट, एक मर्था चाइम तरह घूमता हुआ भोजनको इस रससेक कार-तरह मिलजानेमें बड़ी सहायता देता रहता जाता

गैस्ट्रिकजूस पहले पहल भोजनके— दर्शन या घ्राणसे ही निकलने लगता है [illegible] हुए प्रकारकी ज्ञानतंतुओंकी रचनासे लार [illegible] आप ही भोजनके पाते ही निकलने लगती है ठ[illegible] उसी प्रकारकी ज्ञानतन्तुओंकी रचना (nerv-ous system) गैस्ट्रिकजूसके निकलनेमें काम करती है। बाहरसे लालच या जोश दिलाने-पर इस प्रकारके निकलनेवाले गैस्ट्रिक रसके अतिरिक्त और प्रकारका भी गैस्ट्रिक रस उन भोजनोंसे मिलनेकेलिए निकलता रहता है जो पेटमें पहुंचनेपर ही उसे अपने थैलेको छोड़ने-का लालच दे सकते हैं। दूसरे प्रकारसे रस निकलवानेवाले पदार्थ मांसके निष्कर्ष और जल हैं। यह देखा गया है कि यदि वे पदार्थ जिनके रसना, घ्राण, या दर्शनसे ही गैस्ट्रिक रस निकलने लगता है, पेटमें एक नली द्वारा इस प्रकारसे पहुंचाये जायँ कि उनका पंचेन्द्रियोंमेंसे

किसीके साथ स्पर्श न हो, तो उस भोजनके बहुत कालतक पेटमें पड़े रहनेके बाद कहीं गैस्ट्रिक रसका निकलना प्रारम्भ होता है। इसके अतिरिक्त यदि दूसरे प्रकारके भोजन पेटमें इसी तरह पहुंचाये जायँ तो यह रस तुरन्त निकल कर अपना काम करने लगता है।
हैं। तेल या चर्बीवाले पदार्थ पेटमें पहुंचकर इस
हैं। दाढ़े से निकलनेमें बाधा डालदेते हैं, परन्तु स्वादका
डालती हैं। ानेवाली तन्तु (reside) को बारबार चैत-
अन्यत्र कहीं यह विघ्न दूर हो सकता है। गैस्ट्रिक
ताओंका वर्णन विशेष ज़ोरदार रस मिले हुए हैं।
पाइड बन्दरोंके द नमकका तेज़ाब (hydrochloric
मानताओंकी तुलूसरा भोजनको प्रोटीन (protein)
कि किन विशेष करनेवाला ख़मीर पेप्सिन (pepsin)
दांतोंसे भिन्न हैं डेकी तरह सफ़ेद भोजन पदार्थ या
केवल दिखाऊ (proteid) को घोलता और पचाता है।
यह नतीजा न दूधको थक्का करनेवाला ख़मीर रेनिन
बन्दरोंकी तरह है। इनके अतिरिक्त इस रसमें एक
भोजन पर पदार्थका पता लगा है जो चर्बी और
विभाग है। यानोंको घोलकर एक सफ़ेद इमल्शन
हैं और यहाँ lsion) तैयार करदेता है।
है। यह ला अभी थोड़े दिनों तक बड़ी बड़ी पुस्तकोंमें
एक तोह लिखा रहता था कि ज्योंहीं पेटमें स्वतन्त्र नमकका तेज़ाब आ जाता है स्टार्चका शकरमें परिवर्तन होना बन्द हो जाता है। ऊपरके वर्णनसे यह प्रकट ही है कि ऐसे ख़यालोंको अब उड़ा हुआ समझना चाहिए।

पेटके बायें ओरका हिस्सा दूसरे हिस्सेसे बड़ा है। मुंहसे नली द्वारा भोजन इसी हिस्सेमें आता है। पेटका दूसरा हिस्सा अँतड़ियोंतक चला गया है। आधुनिक अनुसंधानोंसे इस बातका पता लगा है कि पेटका मन्थन इस अंतड़ीवाले हिस्सेमें उसके दूसरे स्थूल अङ्गकी अपेक्षा अधिक वेग और फुर्तीसे होता है। शायद नमकका तेज़ाब इसी अँतड़ीवाले हिस्सेमें पेटके अन्तमें निकलता होगा। लारके साथ आया हुआ प्टाइलीन (ptylin) अपना असर स्टार्चपर इस वजहसे बेखटके कर सकता है और भोजनके पेटके अंतमें आने तक उसका काम समाप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त एक साधारण भोजन करनेके बाद आध घंटेतक जो नमकका तेज़ाब तैयार होगा वह नत्रजनीय भोज्यपदार्थ (nitrogenous foodstuff) या प्रोटीडपर पहले आक्रमण करेगा। जब प्रोटीडको नमकके तेज़ाबकी बिल्कुल आवश्यकता नहीं रहती है तभी वह पेटकी दूसरी धरोहरसे आमिलता है।

इससे यह स्पष्ट है कि स्टार्चके हज़म होनेकेलिए रियायती समय बहुत मिल जाता है। साधारण रीतिसे एक मामूली मांस और शाक मिश्रित भोजनके एक घंटे बाद यदि पेटका मल निकाला जाय तो उसमें स्टार्चका पता न लगेगा। इसे हम पेटकी सामग्रीके घोलमें किसी पदार्थमें घुली हुई आयोडीन (iodine) डालकर देख सकते हैं। यदि घुले हुए जलमें स्टार्चका कुछ भी अंश होगा तो आयोडीनके डालतेही एक बैंजनी रङ्ग दिखलायी पड़ेगा।

लार टपकानेके यन्त्रकी रचनाके समान गैस्ट्रिकरस टपकानेवाले यन्त्रकी रचना भी बड़ी ही सुन्दर है। यह यन्त्र इस तरहसे बना हुआ है कि किये हुए भोजनके अनुसार ही रस निकालता है। यह देखा गया है कि जब एक कुत्तेको १०० ग्राम (एक ग्राम १५·३७ ग्रेनके बराबर होता है) मांस दिया गया तो एक सेंटीमीटर ('३९ इंचके बराबर) घेरे वाली नलीमें निकला हुआ गैस्ट्रिकरस २६ सेंटीमीटरतक भर गया, जब भोजन २०० ग्राम दिया गया तब रस उसी नलीमें ४० सेंटीमीटर भरा और जब मांस ४०० ग्राम दिया गया तो निकला हुआ गैस्ट्रिकरस १०६ सेंटीमीटर चढ़ा।

दूध और रोटीके मिश्रित भोजनका ५० ग्राम खाना दिया गया तो रस १२ सेंटीमीटर

एक सेंटीमीटर वाली नलीमें भरा और जब वही भोजन १०० ग्राम दिया गया तो उसी नलीमें रस २४ सेंटीमीटर भरा।

इसके अतिरिक्त भोजनके प्रकृतिके अनुसार इस रसके द्रव्यों में घटी बढ़ी और तेज़ी या नर्मी हुआ करती है। यदि भोजन पचनेमें कठिन है तो ज़ोरका रस निकलेगा और यदि वह सुपाच्य है तो मामूली ज़ोरका। उदाहरणकेलिए हम रोटी और मांसका मुक़ाबिला करते हैं। गैस्ट्रिक रसके प्रोटीड घोलनेवाली शक्तिको यदि हम मांसकी प्रोटीड पचानेमें ३·६६ मान लें तो केवल रोटीमें खाई हुई प्रोटीडके पचानेमें ६·६४ शक्तिवाले रसकी आवश्यकता पड़ेगी। इससे यह स्पष्ट है कि रोटी खानेपर मांस भोजनसे पचानेवाले रससे दूनी शक्ति वाला गैस्ट्रिक रस टपकता है अतः पेटकी पाचन क्रियामें रोटीका हज़म होना मांसके पचनेसे अधिक कष्ट साध्य है। इसका कारण यह है कि रोटीका ग्लुटेन (gluten) नामक प्रोटीड स्टार्चके साथ बड़ी घनिष्टतासे मिला रहता है। यह स्टार्च उसे कुपाच्य कर देता है है और भोजन पानेपर पेटको कहीं अधिक शक्तिवाला रस टपकाना पड़ता है।

गैस्ट्रिक पाचनके सारांशमें ये फल हैं।

(१) पुट्ठोंके रेशे उनके ढकनेवाले पदार्थोंके घुल जानेसे छोटे छोटे चक्रोंमें फट जाते हैं और चर्बीकी बूंदें अलग हो जाती हैं।

(२) मांसके वह हिस्से जो गरम पानीमें घुल जाते हैं और ठंढे होनेपर जलावकी तरह लसलसे हो जाते हैं (gelatinous yielding parts) जैसे कि नसोंके जोड़नेवाले तन्तु, सुफ़ेद रेशेदारतन्तु मरमरी हड्डी (cartilege), चबनीहड्डी (gristle) इत्यादि, घुल जाते हैं और पेप्सीनसे मिलकर एक ऐसा घुला हुआ द्रव पदार्थ बनाते हैं जो शरीर पोषणके योग्य बन जाय।

(३) रोटीका प्रोटीड ग्लुटेन (gluten) और तरकारियोंके नत्रजनीयकोष मांसके समानही पेप्टोन्स बन जाते हैं। परन्तु वनस्पतियोंके कोषको ढकनेवाली मोटी झिल्लीका पदार्थ सेल्यूलोस (cellulose) वैसाही बना रहता है। वह बिल्कुल नहीं पचता।

(४) गन्नेकी शकर और स्टार्च क़रीब क़रीब पूरेतौरसे रुधिरमें खप जानेवाली शकरमें बदल जाते हैं।

(५) कुछ चर्बी ग्लिसरीन (glycerine) और चर्बीके तेज़ाबोंमें (fatty acids) विभक्त हो जाती है।

(६) दूध यदि पिया गया हो तो फट जाता है और उसका प्रोटीड जमकर अलग होजाता है।

पचा हुआ भोजन अब एक मुलायम गीले लुगदीदार रूपमें आजाता है। इसे चाइम (chime) कहते हैं। यहांसे वह पाचक कारखानेके तीसरे विभाग बड़ी अँतड़ियोंमें जाता है। चाइममें निम्नलिखित चीज़ें होती हैं—

(क) मुंह और पेटमें पूरी तरहसे पचे हुए पदार्थ।

(ख) वे द्रव्य जो आधे तो पच गये हैं पर अभी अपने अन्तिम रूपमें नहीं आये हैं जैसे बिना पचा हुआ स्टार्च, घुला हुआ जिलेटिन, एल्ब्यूमेन और अधपचे बिथरे हुए प्राथमिक पुट्ठोंके ढेर।

(ग) वे द्रव्य जो अभी बिल्कुल अपरिवर्तित हैं जैसे सेल्यूलोज़, चर्बी और चर्बीके तेज़ाब।

(घ) वे द्रव पदार्थ जिन्हें पेट खपा नहीं सकता है जैसे भोजनके साथ पिये जानेवाले पान, ख़ुद गैस्ट्रिक रस और घूंटी हुई लार।

(च) बहुधा कुछ खखार या थूक भी मौजूद रहती है।

कीड़े पतङ्गे

[ले० पं० मधुमङ्गल मिश्र, बी. एस-सी]

बचपनमें हम देखा करते थे कि जब चावल घरमें आता था तो बरतन-में धरेजानेके पहले किसी स्वच्छ सुथरे स्थानपर ढेरमें रक्खा जाता था। उस समय चावलोंमें चौथाई इंच लम्बे दो सूत मोटे कीड़े देख पड़ते थे। बहुधा वे एक साथ ही बहुतसे रेंगते हुए थोड़ी दूरपर दिखलायी देते थे। उनका शरीर गड़रेदार लगता था अर्थात् किसी लकड़ीपर सुतली लपेटी जाय तो जिसप्रकारका आकार गोलाई लिये हुए उठा

Zoology जीव विज्ञान] चित्र नं० १

और बीचमें लम्बा तथा गहिरासा देख पड़ेगा ठीक वैसाही उनका शरीर देख पड़ता था।

उनका नाम है भोंड़िला। उन्हें छूतेही स्पर्शमें उनका नरम शरीर गुजगुजासा लगता था। चलनेमें एक विशेष प्रकारकी गुदगुदाहटके कारणसे उन्हें मैं हाथ परसे गिरा देता था। उनका शरीर चावलके तुल्य सफ़ेद पर उनका मुंह काला होता है। चावल बीननेके समय भी मैं उन्हें निकाले जाते देखता था। मुझे विश्वास नहीं होता कि वे सभी अलग कर दिये जाते होंगे। कोई न कोई अदहनमें अवश्य पड़ जाते होंगे यह सोचकर जी मचल उठता था, हीक आने लगती थी। पर यह सब केवल विचार मात्र ही था। थाली सामने आनेपर उनके दर्शनका स्मरण भी न होता था। भात हमारा प्रिय भोजन है। उस समय उनके जीवनकी समाप्ति कैसे होती है इस ओर तनिक भी मेरा ध्यान न जाता था।

माघके महीनेमें मटरकी छीमी और हरे हरे नये चने छीलके खाये जाते हैं। कभी कभी बालकगण छीमीको मुंहमें डालकर दाना निकाल फलीको थूक देते हैं। पर सयाने लोग इसे सदा रोकते रहते हैं क्योंकि कभी कभी फलीके भीतर आधा या एक इंच (पैसे भर) लम्बा हरा भोंड़िला निकलता है। यह पतली सुतली सा अथवा उससे कुछ न्यूनाधिक मोटा होता है। इस बड़े कीटको देखकर जी और भी अधिक घिनाता था। पर जो हो, जैसे हो ये भोंड़िले निकल ही आते थे। वे कहांसे आते हैं उनका क्या भविष्य होता है इसकी कोई भावना चित्तमें न उठती थी।

कुछ समय पश्चात् अंग्रेज़ीकी पाठ्य पुस्तकमें रेशमके कीड़ेपर एक पाठ पढ़ा। उसमें एक चित्र था। चित्रमें एक पत्तेपर एक भोंड़िला बना था। पर मेरी आंखोंने इसमें तथा चावल, और मटरके भोंड़िलेमें कोई समानता न देखी। हां, चित्रका मानसिक संस्कार बहुत दिन तक बना रहा।

आगे चलकर फिर एक अंग्रेज़ी पाठ्य पुस्तकमें मच्छड़के जीवनकी रामकहानी पढ़ी और चमत्कृत भी हुआ परन्तु भोंड़िला और कैटरपिलरकी समानता या एकतापर कभी ध्यान न गया। लखनऊका अजायबघर देखने कई दिन गया। रेशमके कीड़ोंकी विविध अवस्थाएं देखीं। कैटरपिलरकी पहले देखे हुए पत्तेपरवाले चित्रसे सादृश्यताकी भी याद आयी। चित्रमें रंग काला था यहां मलाई या साढ़ीसा मैला सफ़ेद रंग दिखलायी पड़ा। अतः भोंड़िलाकी समानताका विचार कभी हृदयमें उत्पन्न भी न हुआ।

इसके पश्चात् कोसेका थान भी कई बार मोल लिया, पर वह कपड़ा कोसा क्यों कहाता है यह मनमें न आया। रेशमके कीड़ेका एक पाठ पढ़ाते समय भाषामें एक नया शब्द कुशियारा दृष्टिगोचर हुआ। शब्दको जाननेकी उत्कंठा हुई। एकदिन सायङ्कालको वायु सेवन और विनोदकेलिए कई मित्र एक साथ बाहर निकले। एक तलैयाके किनारे बेरके झाड़में एक कोसा देखकर एक मित्रने कहा वह देखो कुशियारा। कुशियारा शब्द परिचित होनेसे उसे मैंने देखा। पर डाल ऊंची थी। मैंने पूछा क्या इसके भीतर कीड़ा होगा? लोगोंने कहा हां जो फटा न हो तो अवश्य होगा। थोड़ा आगे चलके मैंने पहुंचकर भीतर एक कोसा देखा। मैंने उसे डाल समेत तोड़ लिया और एक डेक्सके भीतर रख दिया। प्रायः छः सप्ताह पीछे मैंने एक दिन डेस्क खोला उसमेंसे एक बड़ी तितली देखते देखते उड़कर निकल गयी। मैं आश्चर्य करता ही था कि मुझे कोसेकी याद आयी। उसे उठाकर देखा तो वह फट गया था। परन्तु रंगीन पंखवाली तितली इतने ही कालमें हाथ बाहर होगयी थी। इतने दिन तक

बिना भोजन और वायुके पड़े रहनेपर भी मुझे उसके जीनेपर आश्चर्य हुआ, पर अभी लों मुझे यह न विदित था कि इस कोसेका पूर्व रूप वही भोंड़िला होता है।

इस समयसे कोसेके बारेमें मैं विशेष जानने-की इच्छा रखने लगा। विलासपुरसे आये विद्यार्थियोंसे विदित हुआ कि कोसाकी तितली जब कोसेको फाड़कर बाहर निकलती है तो कोसेके सूत्रतन्तु टूट जाते हैं फिर उनसे कपड़ा बनानेको बड़ा सूत नहीं मिलता। इसलिए कोसेको गरम पानीमें उबालकर कीटको मार डालते हैं (हा! शोक!)। फिर उसे राखसे रगड़के लम्बा सूत, मकड़ीके लारसे बनाये जालके समान, निकालकर कपड़ा बनता है। मुझे खेद हुआ कि एक साफ़ेकेलिए कितने कीटोंके प्राण जाते हैं। फिर भी यह कपड़ा रेशमके समान रुईके वस्त्रोंसे पवित्र माना जाता है। इसका भी कोई विशेष कारण होगा।

मुझे कालिदास का श्लोक "चीनांशुकइव केतोः प्रतिवातंनीयमानस्य' याद आया। इससे अनुमान होता है कि उस कालमें भी रेशमी वस्त्रोंका लोग बड़ा उपयोग करते थे। जीव दयाकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता था। लोक आम खाना जानता है पेड़ गिननेसे प्रयोजन ही क्या है ?।

यद्यपि कोसेका यह ज्ञान मुझे तबलों अविदित था पर लोक उसे सदासे जानता था। जीवकेलिए पुराने शास्त्रकार उदाहरण देते हैं कि वह कोश कीटकी नाईं अपनी अविद्याका जाल रचकर उसीके भीतर अन्धकारमें पड़ा रहता है।

कुछ काल पश्चात् मुझे प्राकृतिक अवलोकन (Nature-study) की कक्षा देखनेको

चित्र नं० २
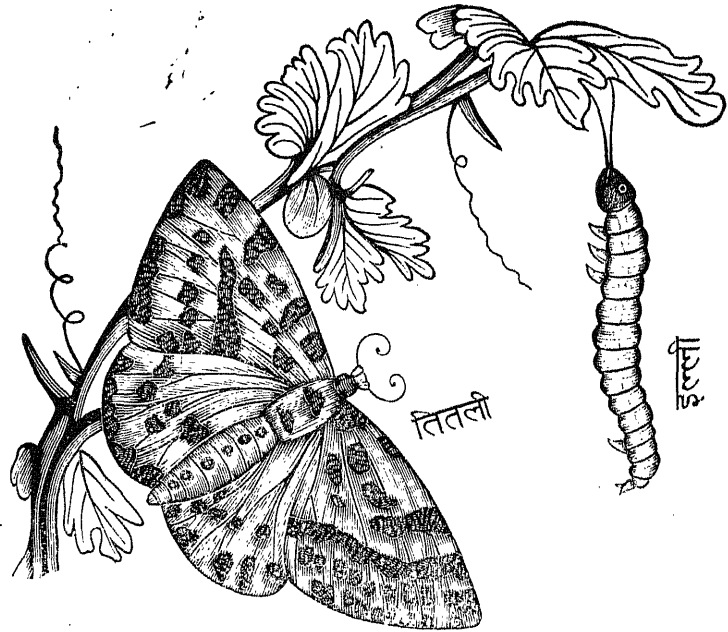
मिली। उसमें बहुधा मुझे इल्ली शब्द सुन पड़ने लगा। मैंने अनुमान किया कि इल्ली किसी कीड़ेका नाम है। एक दिन रचनाकेलिए शिक्षकने इल्लीके अवलोकनपर लेख लिखनेको कहा। बालकोंके लेख मुझे देखनेको मिले। मैंने लेखोंको तो भाषाकी दृष्टिसे देखना प्रारम्भ किया पर उसका विषय भी कुछ कुछ हृदय पटलपर खिंच गया। यह ज्ञान ऐसा ही कुछ था कि इल्ली अंडेसे निकलती है, उसका शरीर गड़रेदार होता है, उसके आगे कई जोड़े पैर होते हैं और पीछे भी कुछ जोड़े पैरके होते हैं। उसका मुख कैसा होता है? वह पत्ता कैसे काटती है? वह किस वा किन पत्तोंपर पायी गयी? उसका रंग कैसा था?

वह कै दिन लों खाती रही? उसने कितनी काँचल वा खोल छोड़ी? वह कितने दिनमें सुस्त पड़ गयी? वह कैसे डब्बेके किसी भागमें चिपकके संखी (कोसाका नाम भेद वा छोटा
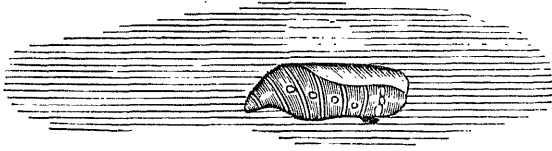
चित्र नं० २

स्वरूप) बन गयी और कितने दिन पीछे उसमें-से पंखी या तितली या कीड़ा निकला और डब्बेके बाहर हुआ? इन विषयोंका भी ज्ञान मुझे कई एक विद्यार्थियोंके भिन्न भिन्न लेखोंके अवलोकनसे प्राप्त हो गया।

पर इतनेपर भी मेरा ज्ञान अधूरा ही रहा। भाग्यवशात् ड्राइङ्ग मास्टरने प्राकृतिक अवलोकनके शिक्षककी रायसे तितलीके जीवनकी भिन्न भिन्न स्थितिके चित्र खिंचवानेकेलिए कुछ इल्लियां एक टीनके डब्बेमें पालीं। उन्हें देख देख विद्यार्थी लोग अपने अपने चित्र खींचने लगे। तब मेरा ध्यान आपाततः उनकी ओर आकर्षित हुआ और रचनाके लेखकी बातें मूर्तिमान् रूपसे मेरे दृष्टिगोचर हुईं। कोई इल्ली पत्ती खा रही थी। कोई सुस्त पड़ी थी। कोई संखी बन रही थी। किसी संखीकी खोली धीरे धीरे छूट रही थी। किन्ही किन्हीं इल्लियोंका चलनाभी विचित्र है, वे तृण जलौका न्यायसे चलती हैं। अर्थात् जैसे जलमें जोंक एक तृणसे दूसरे तृणपर जाते समय पिछले पैरोंके बल खड़ी होकर आगेके तृणको पकड़ कर तब पिछले पैर हटाती हैं उसी भाँति इल्ली भी अगले पैरोंको बढ़ा कर नये स्थानपर पैर जमाकर पिछले पैरोंको खींचती है। उस समय उसके मध्यका शरीर दोहरा होकर ऊपर उठता है। (देखो चित्र संख्या २)

बरसात का समय था। इल्लियोंका रंग बहुधा हरा था। इसी समय भिन्न भिन्न प्रकारकी तितली फैल जाती हैं। उनका जीवन क्षणिक होता है। काव्यकारोंने मनुष्य जीवनको क्षणिक कहा है 'नलिनी दलगत जलमति तरलं। तद्वज्जीवन-मतिशय चपलं। भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़ मते'। तितलियोंके क्षणिक जीवनमें पंखोंकी सुन्दरता देख बालक लोग पकड़कर उन्हें मार डालते हैं। यह अनुचित है। उनका जीवन ६ घण्टेसे ६ दिनके बीचमें होता है। इतने ही कालमें वे पति या पत्नीसे संयुक्त हो गर्भ धारण कर अंडे देकर शिथिल हो मर जाती हैं। पर अपने भावी संतानके हितका स्वाभाविक बुद्धि उन्हें होती है। वे अपने अंडे उन्हीं वृक्षोंके पत्तों, गोबरके ढेर या दलदलमें छोड़ जाती हैं जहाँ अंडेसे निकलनेपर उस जातिका भोजन उपयुक्त और सुलभ हो। इस सम्बन्धमेंभी एक विलक्षणता उसी समय दृष्टिगोचर हुई। एक लड़केने एक काँचकी शीशीमें कुछ इल्लियाँ पालीं। उन इल्लियोंके शरीरपर विष्ठापरकी मक्खियोंने अपने अंडे रक्खे। समय पाकर इल्ली संखी बन उसके भीतर बन्द हो गयी पर उसपर मक्खियोंके अंडे बने रहे। उन अंडोंमेंसे फूटकर मक्खियोंकी इल्ली निकली। वह इल्ली मांसाहारी होती है। उसने संखीके भीतरके सोते हुए कीटको भीतर ही भीतर खा लिया और उसीपर पुष्ट होकर वह इल्लीसे मक्खीकी संखी फोड़कर पंखदार मक्खीके रूपमें निकल आयी। इस प्रकारसे यदि प्रत्येक इल्लीपर मक्खी सात आठ अंडे दे तो सात आठ मक्खियाँ निकलती पायी जायेंगी। अधिक कितनी इल्लियाँ निकल सकती हैं यह परीक्षा द्वारा जाना जा सकता है। इन मक्खियोंको परपोषी कहते हैं क्योंकि ये मांसाहारी जीवधारी दूसरेके शरीरसे अपना पोषण करते हैं।

संस्कृतमें कोयलको परभृत कहते हैं। कोयल अपने अंडे आप नहीं सेती वरन कौए-के अंडोंके साथ रखकर आप निश्चिन्त हो जाती है। कौवी अपने अंडोंके साथ कोयलके भी अंडे सेती है। जब कौवी चुगनेकेलिए बाहर जाती है तब अंडेसे निकला कोयलका बच्चा बिना फूटे अंडोंको स्वभाव ही से अपने घोंसलेसे फेंक देता है। जनमते ही उसमें यह बुद्धि आ जाती है। यदि कौएका बच्चा अंडा फोड़के निकला हो तो उसे भी फेंकनेको चेष्टा करता है। उसके कंधेमें एक गड्ढा होता है जिसपर रखकर वह घोंसलेके ऊँचे भागपरके द्वारसे अंडे या बच्चेको फेंक देता है। कौए-के बच्चे उनसे जीत नहीं पाते। अंडेका तो कहना ही क्या है। कभी कभी कोयलके दो अंडे फूटनेसे दो बच्चे निकलते हैं, तब वे स्वभावतः एक दूसरेको फेंकनेका यत्न करते हैं जो बलवान् होता है वह सफल होता है। तुल्यबल हुए तो कुछ दिनलों झगड़ा चलता रहता है, कौवी बिचारी इन्हीं सन्तानघाती बालकोंको सन्तानकी ममतासे चुगाती और पालती है। बड़े होनेपर ये परभृत अर्थात् दूसरोंकी सदयतासे भरण पोषण पाये बालक अपनी जातिमें जा मिलते हैं।

यों अंडेसे इल्ली * इल्लीसे संखो (कोसा) और कोसेसे पंखी या पंखदार कीड़ा निकलता है। इन कीड़ोंका शरीर तीन विभागोंमें बंटा रहता है। एक भागमें सिर दूसरेमें धड़ और तीसरेमें पेट होता है। बहुतसे फनगे पतङ्गे कीड़े मकोड़े गोबरैले आदि कीट ऊपर कही गयी अवस्थाओंमें होकर उत्पन्न होते हैं और सैकड़ों या लाखों अण्डे देते हैं। कोई शाकभोजी होते हैं कोई मांसाहारी होते हैं। कोई खेतीकेलिए हानिकारक और कोई लाभदायक होते हैं। कोई कोई लाभदायकको खानेवाले और कोई कोई लाभदायकको मारनेवाले होते हैं। बर-सातमें ये अधिक होते हैं। बहुधा वृक्षों या वनस्प-तियोंकी पत्तियां बीच या किनारोंमें कटी होती हैं। इन्हींकी बहुतायतके कारण सावनमें सागकी पत्तियां बहुत कटी रहती हैं और उनका खाना इस कहावतके अनुसार बर्जित है, "सावन साग न भादों दही। क्वार करैला कातिक मही। मरी न तो परी (बीमारपड़ेगा) सही"।

इन कीड़ोंके धड़ और पेटके भागपर एक कड़ी चिमड़ी, लम्बी तथा गोल पर्त या खोली रहती है। जैसी बरैयाके होती है। ये छल्लेके समान कई एक होती हैं। और पूरी गोल न होकर अर्द्ध गोल दो चिमिड़ियोंसे जुड़कर बनी होती हैं। बहुतेरे कीड़ोंके छातीपर ऐसे तीन छल्ले और पेटपर नौ छल्ले होते हैं। उनके शिरोंपर छल्ले नहीं होते। इनके शिरमें मस्तिष्क या भेजा नहीं होता। उसके बदलेमें ज्ञान तन्तुओंकी गाठें शरीरमें भिन्न भिन्न स्थानोंपर होती हैं। उनकी आंखें शिरके दोनों बग़लमें होती हैं आगे नहीं होतीं। ऐसा होनेसे वे अग़ल बग़लके सब पदार्थ देख सकते हैं। उनकी आंखें मानों आंखोंके झुण्ड हैं। उन्हीं आंखोंकी सहायतासे वे अपने अनेक शत्रुओंसे बच सकते हैं। उनके शिरके दोनों तरफ़ टटोलने, टोने या छूनेकेलिए दो लम्बे हाथ से (feelers) होते हैं। उनसे वे सुनने, टटोलने या देखनेका काम लेते हैं। इन-के मुँहभी भोजनके उपयुक्त होते हैं। कितने कीड़ोंके एक जोड़ा कतरने योग्य और एक जोड़ा चबाने योग्य जबड़ा होता है। ये वनस्पतिभोजी

* ये इल्ली वे ही हैं जिनका नाम ऊपर भोंड़िला कहा गया है। उसीका स्त्रीलिंग भोंड़िली है। यदि इसमेंसे भद्दा वाचक भोंड़ा शब्द निकाल दिया जावे तो इली वा इल्ली शेष रह जायगा। इल्ली भी गोली या गिल्ली का रूप भेद हो सकता है। इल्लियां अपने लम्बे शरीरके दोनों छोरको जोड़कर गोली सी बन जाती हैं। अंग्रेज़ोंमें उन्हें कैटर पिलर कहते हैं। इसमें पिल शब्द गोली वाचक है।

या मांसाहारी होते हैं। अधिकतर ये तितली, मक्खी आदिका रस खींचकर पीते हैं। उनके चूसनेकेलिए सूंड़के समान विशेष अवयव होते हैं जबड़े नहीं होते। उनके जबड़े अग़ल बग़ल हटते हैं हम लोगोंके समान ऊपर नीचे नहीं हटते।

चित्र नं० ३

धड़के ऊपर पंख और नीचे पैर होते हैं। बहुतेरे कीड़ोंके दो जोड़े पंख होते हैं। यदि दूसरा जोड़ा पंख न हुआ तो अग़ल बग़ल गिरनेसे सम्हालने वाले दो लम्बे पासंग होते हैं। कितनोंके पंख होते ही नहीं।

कीड़ोंके तीन जोड़ी पैर होते हैं। पैरोंके भी तीन भाग होते हैं जो हम लोगोंकी जांघ, टांग और पांवके समान बड़े होते हैं, उनके पैर भी उनके भिन्न भिन्न जीवनके उपयुक्त होते हैं। कितनोंके पिछले पैर फनगों या मेंढकके समान बड़े होते हैं जिनकी सहायतासे उन्हें उछल या फुदकके चलनेमें सुभीता रहता है। कितनोंके अगले पैर छछूंदर या खरहोंके समान भूमि खोदनेके उपयुक्त होते हैं। मधुमक्खियोंके पैरमें एक गड्ढा होता है जिसमें रखकर वे फूलोंकेलिए पराग लाती हैं। कीड़े नाकसे श्वास नहीं

लेते वरन उनके शरीरमें दो लम्बे छेद होते हैं उनसे होकर वायु फेफड़े में पहुंचती है। उनका लोहू ठण्ढा और बे रंगका होता है।

कीड़ों मकोड़ोंके जीवनकी बहुतसी बातें पाठकगण चाहें तो स्वयं देख सकते हैं। जिस डब्बे या बरतनमें उन्हें रक्खें उनमें वायुके आने जानेकाभी प्रबन्ध रहना चाहिए। भोजनके लिए टटका पत्ता या मांस नित्य बदल देना अच्छा है। जो इल्ली जिस वृक्ष, डाल, पत्ते मांस या गोबरपर पायी जाय उसी में उसका भोजन मिल सकता है ऐसा जानना चाहिए।

उस महामहिम करुणावरुणालयकी विलक्षण विचक्षणता और अप्रतिम प्रतिभाको धन्य है जिसने ऐसी सृष्टि बनाकर अपनी सत्ताका प्रमाण हम लोगोंको दिया।

वायुके शेष गैस

[ले० पं० रघुबर प्रसाद द्विवेदी, बी. ए]

रमेश-महाराज जी ! उस दिन आपने वायुके दो प्रधान गैसोंका वर्णन करके (भाग १ पृ० ११३) मेरा चित्त विज्ञानकी ओर ऐसा आकृष्ट किया है कि मैं प्रकृतिके सारे नियमोंको जान लेना चाहता हूँ। मैंने आपके दिये हुए पाठपर जो नोट लिख लिये थे उनपर घर जाकर बहुत कुछ मनन किया है जिससे मैं उतना विषय भली भांति समझ गया हूँ। पिता जी पूछने लगे कि "रमेश यह क्या घोख रहे हो ?" तो मैंने उन्हें जैसे तैसे टरका दिया, यह नहीं कहा कि वायु मिश्रित पदार्थ है तत्व नहीं। यदि मैं ऐसा कह देता तो न जाने वे कितने क्रुद्ध होते और कहते कि अँग्रेज़ी पढ़कर लड़के नास्तिक होते जाते हैं शास्त्रका प्रमाणतक नहीं मानते। उस दिन मेरे मुंहसे निकल गया कि पृथिवी सूर्य्यकी परिक्रमा करती है तो पिताजीने खासा हिरण्य कश्यपका रूप धारण किया। मैं समझा कि बस, अब तो मुझे प्रहलाद बनना पड़ेगा। अच्छा हुआ कि पिताजीने दो चार श्लोक कहकर पृथिवीको अचला सिद्ध करनेका प्रयत्न किया और कहने लगे कि यदि पृथिवी चलती होती तो पुराणादि ग्रंथ उसे अचल ही क्यों कहते। मैंने मनमें सोचा कि गलेलियो बननेकी आवश्यकता नहीं है सो चुप रह गया। इतनेमें ठाकुर साहिबके यहांका मनुआ बुलाने आया और पिता जी उसके साथ चले गये।"

सो०भट्टा०-देखो रमेश, मैं तुम्हें पहले ही बता चुका हूँ कि धर्म्म ग्रंथका प्रयोजन ही दूसरा है, इसलिए वे वही कहते हैं जो प्रत्यक्ष दिखायी देता है। वायुको तत्व माननेका कारण तो मैं तुम्हें बतलाही चुका हूं। अब पृथिवीको पुराण अचला भले ही कहे पर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि हमारे पूर्वज उसे सूर्य्यकी प्रदक्षिणा करनेवाला ग्रह नहीं मानते थे। खगोलमें यह बात स्पष्ट दिखायी गयी है।

अब रहा प्रकृतिके सब नियमोंका जान लेना सो यह मत समझो कि कभी भी कोई एक व्यक्ति इन सबके जाननेमें समर्थ होगा। प्रकृतिके नियम एक अपार और अगाध महासागरके सदृश हैं। बड़ेसे बड़े विज्ञान-वादी उसके तटके एक छोटेसे सागरमें मानो रंग विरंग कंकड़ों, सीपों आदिके साथ खेल रहे हैं। विज्ञान-विद्या बहुत बड़ी है। वह अभी पूर्ण नहीं है। उसके एक अंशका ज्ञान प्राप्त करनेमें विद्वानोंका सारा जीवनकाल व्यतीत हो जाता है तब भी बहुत कुछ जाननेकेलिए रह जाता है। हां, कई शताब्दियों तक अहर्निश उद्योग करनेसे इतनी उन्नति हुई है अवश्य, पर किसी कालमें भी इसकी पूरी पूरी शिक्षा लाभ करना असंभव ही है।

रमेश--जी हां, यह बात तो आपने कई बार बतलायी है। अब कृपापूर्वक यह बतलाइये कि ये दो प्रधान गैस जिनको आक्सिजन और नाइट्रोजन कहते हैं वायुमें बराबर बराबर हैं अथवा कम ज़्यादा ? उस दिन आपने कहा था कि आक्सिजनकी उग्रताको कम करनेकेलिए ही उसके साथ नाइट्रोजन रहता है। अब मैं जानना चाहता हूं कि वायुमें इन दोनोंकी मात्रा कितनी कितनी रहती है।

सो०भट्टा०--देखो रमेश, इसी प्रकार खोजी बननेसे विज्ञानमें मनुष्य उन्नति कर सकता है। मैं तुम्हारे इस प्रश्नसे बड़ा सन्तुष्ट हुआ। अब सुनो, इन दो गैसोंकी मात्रा दो प्रकारसे बतलायी जाती है अर्थात् एक तो मिक़दारसे दूसरे वज़नसे। दोनों प्रकारका हिसाब इस तरह है—

	मिक़दारसे	वज़नसे	
आक्सिजन	२०.८	२३.२	१०० अंशों मेंसे
नाइट्रोजन	७९.२	७६.८	
	१००.०	१००.०	

Chamistry रसायनशास्त्र]

रमेश--अच्छा गुरू जी! इसे मैंने नोट कर लिया, अब कृपाकर यह बतलाइये कि वायुमें ये दोनों प्रधान गैस हुए, अब क्या कोई अप्रधान गैस भी हैं?

सो०भट्टा०--हां, हैं क्यों नहीं। यदि येही दो होते तो मैं उन्हें प्रधान ही क्यों कहता?

रमेश--गुरू जी, उनका नाम बतलानेके पूर्व यह तो कहिये कि आपने इन गैसोंको प्रधान और अप्रधान किस लिए कहा? इन्हें इस प्रकार दो वर्गोंमें विभक्त करनेकी आवश्यकता ही क्या है?

सो०भट्टा०-मैंने आक्सिजन और नाइट्रोजनको प्रधान इसलिए कहा कि इनके न रहते अन्य गैस मिलकर वायु नहीं कहा सकते। ये दो गैस सदा ऊपर लिखे परिमाणमें पाये जाते हैं न्यूनाधिक नहीं होते। अन्य गैस जिनका वर्णन आगे होगा मात्रामें घटते बढ़ते ही रहते हैं।

अब शेष दो गैसोंके नाम भी नोट करलो ये कार्बानिकएसिडगैस और वाष्प कहलाते हैं।

रमेश-गुरूजी, कार्बानिकएसिडगैस तो कार्बन और आक्सिजनके रसायनिक संयोगसे बनता है उस दिन आपने यह बतलाया था सो मुझे याद है। अब, कृपाकर इस तीसरे गैसका वर्णन कीजिये।

सो०भट्टा०--देखो रमेश, सृष्टिका रचनेवाला कैसा बुद्धिमान और कार्य्य-कुशल प्रमाणित होता है। मैं पहले बतला चुका हूं कि वायुमण्डलका आक्सिजन फेफड़े या फुस्फुसमें प्रविष्ट होकर वहां रुधिरमें एकत्र होनेवाले दूषित कार्बनसे मिलकर कार्बानिकएसिड बन जाता और बाहर निकल जाता है। यह गैस सब प्राणियोंकी श्वाससे तथा पदार्थोंके सड़ने गलनेसे निकला करता है और वायु मण्डलमें फैला रहता है।

रमेश--गुरू जी, सहस्रों वर्षसे यह क्रिया जारी है, तब तो वायुका आक्सिजन गैस घटता और कार्बानिक एसिडगैस बढ़ता जाता होगा। इस तारतम्यसे तो किसी दिन अक्सिजन गैसका अभाव ही होजाना संभव है; पर आप कहते हैं कि उसकी मात्रा घटती बढ़ती नहीं एकसी रहती है। यह कथन मेरी समझमें नहीं आता। आपने यह भी कहा है कि कार्बानिकएसिडगैस घटता बढ़ता रहता है। इस प्रकार तो वह बढ़ता ही जाता होगा, घटेगा कैसे?

सो०भट्टा०--रमेश, तुम्हारी यह शंका उचित है, पर स्मरण रक्खो कि जगत्-नियन्ताने ऐसे नियम बना रक्खे हैं जिनमें कभी रत्ती भर फ़रक़ नहीं पड़ता। यदि आक्सिजन गैस घटे और का. ए. गैस बढ़े तो प्राणियोंका जीना कठिन हो जाय। इसलिए परमात्माने वृक्षादि वनस्पतियोंको यह शक्ति दी है कि वे वायुसे अथवा भूमिसे का. ए. गैस ग्रहण करें और उसे आक्सिजन और कार्बनमें अलग कर आक्सिजनको मुक्त कर दें। इससे उसकी मात्रा वायु मंडलमें घटने नहीं पाती। वृक्षादि कार्बनसे अपना शरीर पुष्ट करते हैं। यही दहन-शील कार्बन यावत् वनस्पतिमें रहनेसे उन्हें जलोती है।

इस नियमसे आक्सिजन तो घटने और कार्बानिक एसिड गैस बढ़ने नहीं पाता। याद रक्खो कि यह गैस अन्य कई गैसोंके समान प्राणघातक होता है अर्थात् श्वासमें जानेसे प्राणियोंको हानि पहुँचाता है। धन्य है ईश्वरीय प्रबन्ध! यह गैस अन्य गैसोंकी अपेक्षा अधिक वज़नदार होनेसे पृथ्वीके बहुत ऊपर नहीं उठता वरन् जहाँ तक वृक्षादि होते हैं उतनी ही दूरी तक रहता है। यदि बहुत ऊपर चला जाया करता तो वृक्ष उसे ग्रहण करनेमें असमर्थ होते, जिससे वह जैसाका तैसा बना रहता और बहुतसा आक्सिजन गैस उसमें फंसा रहता।

यह गैस वज़नदार होनेसे सूखे कूपों, खड्डों

आदिमें कभी कभी जमा रहता है। यदि उनमें प्राणी घुसें तो तुरन्तदम घुटकर मर जायें। कभी कभी ऐसा होता है कि किसी किसी कुएँमें एक आदमी जब उतरकर बाहर नहीं आता तो उसका पता लेनेकेलिए दूसरा और फिर तीसरा जाता है और सबके सब वहाँ मर जाते हैं। मूर्ख लोग ऐसे कूपोंमें प्रेत-बाधा समझकर रह जाते हैं। वे यह नहीं जानते कि वहाँ प्रेत वेत कुछ नहीं, यही प्राण-घातक कार्बानिक एसिड गैस है जिसमें पड़ जानेसे लोग दम घुटनेसे मर जाया करते हैं।

रमेश—(बड़े कौतूहलसे) ठीक गुरू जी यह बात मेरी समझमें आज आयी। सरहनके समीप एक कुँएको ग्राम-वासी प्रेतोंका घर समझते हैं। दादा जी कहते थे कि एक बार ज़िमींदारने उस कुँएको साफ़ कराकर और उससे पानी लेकर खेत सींचने चाहे थे, पर दो तीन मज़दूर उसमें घुसकर मर गये, तब से वह प्रेत-निवास समझा जाने लगा और उसके पास-से रातको कोई नहीं जाता। यहाँतक कि उसके समीपके खेतोंतकको डरके मारे कोई जोतता बोता नहीं। वाह! प्रकृतिके नियमोंको न जानने-से मनुष्य कैसी कैसी विचित्र कल्पनाएँ कर बैठते हैं।

सो० भट्टा०—इसीसे तो विज्ञानका प्रचार होना आवश्यक है। यदि अपने देश बान्धव आरोग्यता सम्बन्धी वैज्ञानिक नियम जानने लगें तो हमारा देश प्लेग, मलेरिया आदि रोगों-की रङ्ग-भूमि कदापि न बना रहे। रसायन शास्त्रकी मोटी मोटी बात जान लेनेसे सहस्रों देश-भाई अनेक उपयोगी कार्य्य करके अपना निर्वाह कर सकते हैं। समझे रमेश! वैज्ञानिक शिक्षाका प्रचार हुए बिना हम लोग कला-कौशल तथा औद्योगिक कार्य्योंमें दिनों दिन पीछे ही पड़ते जा रहे हैं। कपड़ा बनाने, रंगने, चमड़ा कमाने, स्याही बनाने, खेती करने आदि सब कार्य्योंमें विज्ञानसे बहुत बड़ी सहायता मिलती है। इसी विज्ञानके बल जर्मन सम्राट विलियम कैसर अपनेको ईश्वरका अवतार समझने लगे हैं। जर्मनीमें वैज्ञानिक शक्ति बढ़ने से वे महान्ध हो गये हैं, पर यह कोई आवश्यक बात नहीं है कि विज्ञानोन्नति होनेसे लोग नास्तिक ही हो जायँ।

रमेश—गुरू जी, आप ठीक कहते हैं। सुना है कि जापानियोंने भी विज्ञानमें बड़ी उन्नति की है और जापानी अध्यापक विचित्र विचित्र आविष्कार करने लगे हैं। मैंने किसी समाचार पत्रमें उस दिन पढ़ा था कि जापानियोंने एक प्रकारकी बारूद निकाली थी जिसके कारण उन लोगोंने रूसके सदृश प्रबल शत्रुके दाँत खट्टे किये थे। जर्मन लोगभी जो थोड़े समय-से इतने चढ़े बढ़े हैं सो ठीक है विज्ञानहीकी कृपासे। निस्सन्देह यह वैज्ञानिक युग है। इस युगमें विज्ञान-देवताकी आराधना किये बिना कोई जाति उन्नति नहीं कर सकती। उन्नति करना तो दूर रहा उसका अस्तित्व ही सन्दिग्ध हो जाता है। यदि विज्ञान-विशारद जर्मनोंसे विज्ञान-हीन जातियोंकी मुठभेड़ होती तो क्या ये उनसे पार पा सकतीं? दोही चार सप्ताहमें उनका सर्व्वनाश हो जाता।

गुरू जी! अब कृपा कर यह तो बतलाइये कि वायुमें और कौन कौनसे गैस रहते हैं। आपने जल-वाष्पका नाम लिया था। अब इसका निरूपण करके आजका पाठ समाप्त कीजिये।

सो० भट्टा०—हाँ, रमेश, वायु में चौथा पदार्थ जल-वाष्प अर्थात् पानीकी भाप है।

रमेश—गुरू महाराज, इंजनसे जो धुआँसा निकला करता है वही भाप है न? उसका भूरा भूरा रंग होता है न जैसा बादलका होता है?

सो० भट्टा०—रमेश, सच्ची भाप देखनेमें ही नहीं आती, फिर उसका रूप रंग कहाँसे हो

सकता है ? जिस प्रकार वायु अदृश्य है उसी प्रकार अन्य सब वायु रूपी पदार्थ अर्थात् गैस भी अदृश्य रहते हैं। इंजनसे जो भूरा भूरा धुआँ सा निकला करता है वह वाष्प या भाप नहीं वरन् जलकणोंमें परिवर्तित वाष्प है। जबतक भाप इस रूपमें नहीं आती तबतक दृश्यमान नहीं होती। यह पदार्थ जब तक हवामें वाष्प रूपसे रहता है तबतक दीख नहीं पड़ता पर ज्योंही शीत पाकर वह जल-कणोंमें परिवर्तित हो जाता है त्योंहीं कुहरा, बादल आदिके रूपमें दिखायी देने लगता है।

रमेश—तो गुरू जी, ये बादल जल-कणोंमें परिवर्तित भाप मात्र हैं। पिता जी यदि मेरे मुंहसे यह बात सुन लें तो मुझे नास्तिक कहे बिना न रहें। पुराने पंडित तथा उनके शिष्य कहा करते हैं कि बादल भीमसेनके फेंके हुए हाथी हैं जो समुद्रसे पानी भर भरकर लाते और बरसाते हैं। अब इस जल-वाष्पका वर्णन पूर्ण रीतिसे सुनना चाहता हूं। वास्तवमें ये बातें बड़ी मनोरञ्जक प्रतीत होती हैं।

सो०भट्टा—भापकी शक्ति बड़ी प्रबल होती है। तुमने सुना होगा कि रेल, जहाज़, पुतलीघरके यंत्रादि सब इसी भापकी शक्तिसे बनाये जाते हैं। इसी भापके बादल वर्षा करते, ओस फ़सल, घासादिको हरा भरा रखती, शीत देशोंमें यही बर्फ़ बनकर गिरती। इसके कई उपयोग हैं जिनका वर्णन हम अन्य पाठोंमें करेंगे।

रमेश—गुरू जी, मैंने सुना तो बेशक है कि रेलका इंजन भाप (स्टीम) के बल चलनेसे स्टीम इंजन कहलाता है पर मेरी समझमें अभी तक नहीं आया कि यह होता कैसे है। भापमें शक्ति कहांसे और कैसे आजाती है और उसका प्रयोग भी किस तरह किया जाता है?

सो०भट्टा०—सुनो रमेश ! संसारमें जितने पदार्थ हैं वे तीन कक्षाओंमें विभक्त हो सकते हैं अर्थात् ठोस, द्रव और वायु रूपी या गैस। प्रायः सभी पदार्थ इन तीनों दशाओंमें रह सकते हैं। बरफ़ ठोस, पानी द्रव और वाष्प—वायु रूपी पदार्थ या गैस—है। ठोस पदार्थोंमें परमाणु बहुत समीप रहते हैं, द्रव पदार्थोंमें फैले हुए और वायु रूपी पदार्थोंमें बहुतही फैले हुए रहते हैं। ठोस पदार्थोंमें स्नेहाकर्षणबल अधिक और गर्मीका दूर दूर करनेवाला बल कम रहता है। द्रव पदार्थोंमें दोनों बराबर और वायु रूपी पदार्थोंमें गर्मीका दूर करनेवाला बल बहुत ही अधिक रहता है। एक बोतल पानीको जितना स्थान लगेगा उससे अधिक उससे बनने वाली बरफ़को लगेगा और उससे बनने वाली भाप तो फैलकर घर भर देगी। साधारण नियमानुसार तो बरफ़से जो पानी बने उसे अधिक स्थान चाहिये पर ऐसा नहीं होता यह नियम नहीं अपवाद है जिसका कारण और कभी बताऊँगा। सारांश यह कि पानीसे बनी हुई भाप अधिक स्थान चाहती है। इसी तरह बारूदसे जब गैस बनती है तो उसे चार हज़ार गुणा अधिक स्थान चाहिये। इसके फैलनेके गुणसे विचित्र शक्ति उत्पन्न होती है। यदि पानी किसी बर्तनमें रखकर गरम किया जाय और वह सब भाप होता जाय पर इस भापको बाहर निकलने या फैलनेको अवकाश न मिले तो अवश्यही वह बर्तन चाहे कितनाही दृढ़ क्यों न हो टुकड़े टुकड़े हो जायगा। यदि उसमें कहींसे भाप निकलनेका मार्ग हो और उसके सामने कोई पदार्थ आजाय तो निकलती हुई भाप बड़े ज़ोरसे उसे धक्का देती है। बन्दूक़ या तोपसे गोली इतनी तेज़ीसे भागती है उसका कारण यही है कि बन्दूक़के भीतर कारतूसमें जो बारूद रहती है वह एकाएक गैस रूपमें परिणत होनेसे गोलीको बड़े ज़ोरसे धक्का देती है और गोली नलीसे निकल कर कई मीलकी ख़बर लेती है। आतिशबाज़ी सुरंग, आदि सब इसी नियमके अनुसार

चलते और फूटते हैं। अब तुम देखते ही हो कि इंजनके पहियोंमें लोहेकी छड़ेंसी लगी रहती हैं और जब वे आगे पीछे हिलने लगती हैं तो पहिये भी घूमने लगते और इंजन चलने लगता है। इन छड़ोंका सम्बन्ध बायलरमें पैदा होनेवाली भापसे रहता है जो इनको धक्का देती जाती है। बस इसीसे रेल गाड़ी भापके बलसे चला करती है।

रमेश—गुरू जी आजका पाठ तो अत्यन्त मनोरंजक रहा। कई बहुत उपयोगी बातें मालूम होगयीं अब गर्मी अधिक मालूम होने लगी सो आपको बैठनेमें कष्ट हो रहा है। आजका पाठ यहीं समाप्त कीजिये। किसी दिन भापकी शक्ति और उपयोगके विषयमें पाठ दीजिये।

सो० भट्टा०—बहुत अच्छा, रमेश अबमैं सन्ध्या-वंदन करके भोजन करूँगा, तुम आजके पाठपर विचार करो और एक निबन्ध लिख कर विज्ञान-सम्पादकके पास मुझे दिखला कर भेज दो।

प्राणियोंके जीवनाधार वृक्ष

[ले० अध्यापक नन्दकुमार तिवारी, बी. एस-सी.]

पाठक! आइये मैं आपको वृक्षोंके बारेमें कुछ बातें सुनाऊँ। आपमें-से कोईभी ऐसा न होगा जिसने वृक्षोंको न देखा हो। एक नहीं दो नहीं बल्कि हज़ारों लाखों वृक्ष हम लोग देख डालते हैं। प्रतिदिन ही वह हमारे दृष्टिगोचर हुआ करते हैं। परन्तु आपमेंसे कितनोंने इनपर विचार किया है? कितनोंने यह बात सोची है कि यह बनस्पति जो हमारे नगरोंको सुशोभित करती है, जो हमारे उपवन व बाटिकाओंको आनन्दमय कर देती है, इतनाही नहीं बल्कि जो हमको हमारा नित्यका भोजन देती है, क्या चीज़ है? क्या इनमें जान भी है या यह बेजान हैं? अगर जानदार हैं तो उसका क्या सुबूत है? वह किन कारणों से जीवित हैं? किन कारणोंसे वह नष्ट हो जाते हैं और अपने वंशको जीवित रखनेकेलिए वह कौनसे उपायोंको काममें लाते हैं? ऐसे बहुत कम मनुष्य होंगे जिन्होंने इन बातोंपर विचार किया होगा और ऐसा तो कोई बिरला ही होगा जिसने विचार करके इनके जाननेकी इच्छाकी हो। क्रमशः मैं आपको इन बातोंके बारेमें थोड़ा थोड़ा हाल सुनाऊंगा जिससे कि आप लोगोंका चित्त उत्तेजित हो और आप स्वयं इन बातोंपर ध्यान दें और अधिक जाननेकी चेष्टा करें। इसके पहले कि वृक्षोंका कुछ हाल बतलाया जाय थोड़ीसी और बातें जान लेना आवश्यक हैं।

Botany बनस्पति शास्त्र]

विद्वानोंने इस संसारकी सारी वस्तुओंके दो बड़े विभाग किये हैं:—१—जानदार जैसे मनुष्य, पशु, पेड़ इत्यादि २—बेजानदार जैसे पत्थर, पानी, मिट्टी इत्यादि।

अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जान क्या है? वह क्या चीज़ है जिसके कारण हम किसी वस्तुको जीवित कहते हैं और जिसके न होनेसे हम उसीको मुर्दा कहने लगते हैं? यह एक बड़ाही कठिन प्रश्न है। इसीकी खोजमें हमारे ऋषियोंने वर्षों तक विचार किया। आज भी इसीकी खोजमें उन्नतिके शिखरपर चढ़े हुए पश्चात्य देशोंके विज्ञलोग समय और धन पानीकी भांति बहा रहे हैं परन्तु इस दुर्गम रास्तेपर अभी हम पैर न बढ़ायेंगे। हम अपना मतलब एक सुगम ही रीतिसे निकाल लेंगे।

विचार करनेसे मालूम होता है कि जानदार और बेजान वस्तुओंमें कई अन्तर हैं। ये अन्तर उसी अज्ञात वस्तुके जिसे हम प्राण या जान कहते हैं होने या न होनेके कारण दिखलायी पड़ते हैं। जिस प्रकार धुएंके होने या

न होनेसे आगका होना और न होना जान लिया जाता है उसी तरह इन अन्तरोंसे हम जीवित या निर्जीवित वस्तुओंका बोध कर लेते हैं। कुछ मोटी मोटी बातें जिनसे हम जीवित वस्तुओंको पहचान लेते हैं नीचे दी जाती हैं।

१—जीवित पदार्थ एक जगहसे दूसरी जगह स्वयं जा सकते हैं।

२—वह छोटे आकारमें पैदा होकर बढ़ सकते हैं।

३—उनमें अपनीसी दूसरी चीज़ें पैदा करनेकी शक्ति होती है।

४—वह अपनेसे भिन्न वस्तुओंको अपने शरीरके भीतर लेकर उनको अपने रूपमें बदल लेती हैं। अर्थात् वह अपनेसे भिन्न वस्तुओंका भोजन करके उनको अपने रक्त मांसादिकोंके रूपमें ले आती हैं।

५—जीवित पदार्थ सांस ले सकते हैं।

जानदार चीज़ोंके दो भाग किये गये हैं

१—जानवर २—वृक्ष

इस बातपर सब लोग एकमत हैं कि जानवरोंके जीव होता है। उसके नामका मतलबही यही है। पर कुछ लोग ऐसे हैं जो कहते हैं कि पेड़ बेजान हैं। यह उनकी बड़ी भूल है। उनका यह मत केवल इस बातपर निर्भर है कि पेड़ चलते फिरते नहीं देखे जाते, न वह खानाही खाते हैं न वह सांसही ले सकते हैं और उनके बच्चेभी नहीं होते। परन्तु यह बात उनके अविज्ञता प्रगट करनेके अतिरिक्त कुछ भी माने नहीं रखती। जिन पेड़ोंको हम प्रतिदिन देखते हैं वह अवश्य चलने फिरनेकी ताक़त नहीं रखते लेकिन क्या उसी एक बातके न होनेसे हम उनको मुर्दा कहने लगें? अगर हम उनको बेजान मानें तो हरे और सूखे पेड़में कोई अन्तर ही क्यों होना चाहिए? हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि इन दोनोंमें कितना फ़र्क़ है। हरे पेड़ फूलते फलते और पत्तियां पैदा करते हैं। सूखे पेड़ोंमें इसका पैदा होना तो अलग रहा जो कुछ उनके शरीरमें होता है वह भी नष्ट हो जाता है। फिर उनको चलने फिरनेकी ज़रूरत ही क्या है? अगर ध्यानसे देखा जाय तो चलने फिरनेका केवल यही तात्पर्य्य प्रतीत होता है कि कहींसे जाकर भोजनकी चीज़ें इकट्ठाकी जायें। असलमें यह है भी बात ऐसी। अगर जानवरोंका रोज़का खाना उनके पास ही आ जाया करे तो उनको अपनी जगह छोड़नेकी आवश्यकता ही क्या? बहुतसे दृष्टांत ऐसे मालूम ही हैं जिनमें अमीर आदमियोंको अपना मकान छोड़कर बाहर जानेकी और मामूली लोगोंकी तरह दौड़ धूप करनेकी ज़रूरत ही नहीं होती। अगर शौच इत्यादिका झगड़ा न होता तो उनको घरके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें भी जानेकी कोई आवश्यकता न पड़ती। यही हाल पेड़ोंका है। उनके सब काम एकही जगह होजाते हैं और इसी कारण वह वहीं खड़े रहते हैं। लेकिन यह बात कहना कि वह खाना नहीं खाते, सांस नहीं लेते और अन्डे बच्चे नहीं देते बड़ी भूल है। यह सब बातें पेड़ोंमें मौजूद हैं और इनको धीरे धीरे पाठक सुनेंगे।

ऐसेही और बहुतसी बातोंके सोचनेसे मालूम होता है कि पेड़ जानदार पदार्थ हैं अर्थात् अन्य जानदार चीज़ोंकी तरह उनके खाने, पीने और सांस लेनेकी आवश्यकता होती है। इन चीज़ोंके न मिलनेसे वह धीरे धीरे कुम्हलाकर सूख जाते हैं। अन्य जीवधारियोंकी तरह इनको मारनेसे चोट लगती है, घाव होजाते हैं और भांति भांतिकी बीमारियां हो जाया करती हैं। अन्तमें इनको अपना बंश चलानेकेलिए नये पेड़ोंको पैदा करनेकी आवश्यकता होती है। इनमेंसे बहुतसी बातें ऐसी हैं जिनको हम पहलेही से जानते हैं जैसे अगर पेड़ सींचे न जायें और खाद न पायें तो वे शीघ्रही मुर्झाकर सूख जाते हैं इत्यादि। परन्तु इनके अतिरिक्त कुछ और भी

ऐसी बातें हैं जिनको हम पाठकोंको अभी नहीं दिखला सकते। इनकेलिए पहले कुछ और बातोंका ज्ञान लेना आवश्यक है।

अब अगर मान लिया कि पेड़ ज्ञान रखते हैं तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पेड़ोंमें और जानवरोंमें क्या भेद है और वह क्यों है ?

(१) पहले सबसे बड़ा अन्तर यही है कि जिन पेड़ोंको हम देखते हैं वह अपनी जगह छोड़ कर दूसरी जगह नहीं जाते परन्तु जानवर एक जगहसे दूसरी जगह आते जाते हैं।

(२) जानवर खानेका अधिकांश भाग ठोस टुकड़ोंके (solid form) रूपमें अपने शरीरके अन्दर ले लेते हैं, परन्तु पेड़ तो ऐसा बिलकुलही नहीं कर सकते। उनको अपने खाद्य पदार्थोंको रसरूपमें अर्थात् पानीमें घुली हुई दशामें लेना पड़ता है।

(३) जानवर पहलेसे तैयारकी हुई (organic) चीज़ोंको अपने भोजनके काममें लाते हैं परन्तु बनस्पतियोंको निर्जीव (inorganic) चीज़ोंसे ही अपने शरीर पालने योग्य पदार्थ तैय्यार करने पड़ते हैं।

(४) पेड़ोंमें क्लोरोफील (chlorophyll) नामक हरे हरे दाने होते हैं जो जानवरोंमें नहीं होते।

(५) जानवर ओषजनको सांससे अन्दर ले जाते और कार्बन डाइआक्साइड (carbon dioxide) को सांससे बाहर निकालते हैं, पेड़ोंमें बिलकुल इसका उलटा हाल होता है।

उपयोगिताकी दृष्टिसे भी बनस्पति शास्त्रका जानना बहुत ही आवश्यक है। इससे कहीं यह न समझना चाहिए कि जानवर मनुष्यकेलिए उपयोगी होते ही नहीं। यह बात नहीं, मतलब यह है कि वृक्ष जानवरोंकी अपेक्षा मनुष्यों और अन्य जीवधारियोंकेलिए अधिक उपयोगी हैं। यद्यपि जानवर न होनेसे मनुष्यको अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है परन्तु यह ऐसी नहीं होता कि उनके कारण जीना असम्भव होजाय। वृक्षोंके न होनेसे किसीभी जीवित वस्तुका होना असम्भव है। नीचे इसके कारण लिखे जाते हैं। यों तो सभीको मालूम है कि कुछ न कुछ लाभ सभी जीवधारियोंको बनस्पतियोंसे पहुंचता है। मनुष्यको वे खानेकेलिए फल और जलानेकेलिए लकड़ी देते हैं। अपने शीतल छाँहसे वे बटोहियोंको धूपकी गर्मीसे बचाते हैं। अनेक रोगोंसे बचानेवाली दिव्य औषधियां इन्हीं पेड़ोंकी बदौलत प्राप्त हैं। यही पेड़ फल और उपवनोंमें लगाये जानेके कारण नगरों और वाटिकाओंको शोभा देते हैं। बहुतसे चौपायोंके तो यह मुख्य भोजन हैं। इन चौपायोंकेलिए ही नहीं वरंच समस्त प्राणिमात्रका मुख्य जीवनाधार बनस्पतियाँ ही हैं। यदि किसी भांति संसारके सारे पेड़ नाश कर दिये जायें तो यह असम्भव है कि कोइ भी चीज़ ज़िन्दा रह सके। उसी दिन यह पृथिवी जीव शून्य हो जाय !

थोड़ासा विचार करनेसे इस भयंकर दशाका हमको तुरन्त ही ज्ञान हो जाता है। जीव क्यों नष्ट हो जाता है ? मृत्यु क्यों होती है ? इन प्रश्नोंके जाननेकेलिए यह जान लेना आवश्यक है कि किन कारणोंसे कोई वस्तु जीवित है। इसके कई कारण हैं जो उचित स्थानपर बतलाये जायेंगे परन्तु मुख्य कारण ही यहां पर कहा जायगा। यह मुख्य कारण जीवधारियोंका भोजन है। साधारण दशामें भोजन ही जीवित रहनेकी और अनेक कार्य्य करनेकी शक्ति देता है। यह ठीक है कि बिना भोजनके भी जीवित रहना कुछ कालकेलिए सम्भव है परन्तु वह कुछ ही काल तक हो सकता है। अन्तको थोड़े या बहुत समय पीछे मृत्यु अवश्य ही हो जाती है। कदाचित यह भी कहना ठीक नहीं कि कुछ काल भी बिना भोजनके जीवित रहना सम्भव है क्योंकि जिस समयसे भोजन मिलना बन्द

होता है और जब मृत्यु होती है इस बीचमें जो पहलेका इकट्ठा किया हुआ भोजन हमारे शरीर में कई रूपोंमें वर्तमान है, काममें लाया जाता है और उसीके ख़र्च होजानेसे दिनपर दिन दुर्बलता आती जाती है। जब कुछ भी भोजन नहीं मिलता मृत्यु आ घेरती है।" इसके सिवा ऐसे जीनेसे फ़ायदा ही क्या जिसमें कोई काम न हो सके ? यही दशा शिथिलतासे भोजन न मिलनेके कारण हो जाती है। तो यह निश्चय हुआ कि जीवित रहनेकी साधारण दशामें पहला आधार भोजनही है। भोजनके बिना जीना असम्भव है। ध्यान देनेसे जान पड़ेगा कि अधिकांश भोजन मनुष्यों और जानवरोंका (मांसाहारी मनुष्यों और जानवरोंको छोड़कर) पेड़ोंहीसे मिलता है। कोई वस्तु रोज़के खानेकी ले लीजिये और यह खोज कीजिये कि उसके होनेका मुख्य कारण क्या है तो आपको अवश्य यह विदित हो जायगा कि या तो यह किसी वृक्ष या पौदेसे ही सीधी बनायी गयी है या उसके बनानेका मुख्य कारण वृक्षही हुए हैं। इस विचारसे जान पड़ेगा कि मांसाहारी मनुष्य और जानवर भी अपना भोजन पेड़ोंहीकी मेहनतके कारण पाते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ बातें कही जाती हैं जिससे यह बात ठीक ठीक समझमें आजायगी। पहले हम उस श्रेणीके जीवधारियोंके भोज्य पदार्थोंका विचार करेंगे जो मांस भक्षण नहीं करते। इस दरजेके प्रायः सभी भोजन रोटी, दाल, चावल, तरकारी इत्यादि वस्तुओंके हुआ करते हैं। इनमें बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि रोटी किसी नाजके आटेसे बनती है। दाल भी किसी न किसी पेड़के फलके दानेसे बनी है। चावलभी धानके पेड़से पैदा होते हैं। तरकारियोंका कहना ही क्या है। या तो वह सीधी ही खेतसे रोज़ आती हैं या खेतोंसे तोड़कर रक्खी गयी होंगी। इसके सिवा मसाले जो भोजनको चटपटा और स्वादिष्ट बनानेके-लिए छोड़े जाते हैं प्रायः सभी पेड़ोंकी मेहनतका फल हैं। कदाचित कोई कोई आपमेंसे यह कहें कि घी तो पेड़ोंसे नहीं निकलता, लेकिन ज़रा सोचिये तो कि वह आता कहांसे है ? आप कहेंगे गायके दूधसे और न गाय ही, न दूध ही पौधों में से है। ठीक, पर गाय जीवित कैसे है और दूध कैसे बनता है ? अन्तमें वही पौदोंसे। तो विचार करनेसे यह जान पड़ेगा कि नमक और पानीको छोड़कर लगभग सभी वस्तुएं पेड़ोंसे आती हैं। यहां तक कि आग जिससे खाना पकता है वह भी पेड़ोंकी लकड़ी जलानेसे बनती है।

दूसरी श्रेणीके वह जीव हैं जो अन्य जीवधारियोंका शिकार करके भोजन करते हैं। यद्यपि इनके भोजनका अधिक भाग भी मांस ही रहता है परन्तु मांसाहारी मनुष्य भी पेड़ोंके कारण ही जीवित हैं क्योंकि उनका बसर निरा मांस ही पर नहीं होता। यदि मान लिया जाय कि कुछ ऐसेभी मनुष्य हैं जो बाघ और चीतेकी भांति निरे मांसभक्षी हैं पर जिन बिचारे जानवरोंका वे भोजन करते हैं वे पले हैं अन्तमें तो उन्ही पेड़ोंके खाने से। इससे यही निश्चय हुआ कि मांसाहारी मनुष्य और अन्य जानवरभी पेड़ोंके कारण जीवित हैं। इसी भांति हम किसी भी प्रकारके खाद्य पदार्थको लें और सोचें कि वह किन कारणोंसे इस रूपमें आया तो हमको अन्तमें यही उत्तर मिलेगा कि उसकी उत्पत्तिका मुख्य कारण पेड़ ही हैं। मिठाई आदिका भी उत्तम स्वाद हमको इन्ही जीवधारियोंके कारण प्राप्त है। शक्कर गन्नेके रससे बनती है, आटा आया किसी पेड़के फलसे, और खोया घास इत्यादिके भोजनसे गाय भैंसोंसे मिला है। इसी भांतिके उदाहरणोंका ढेर लगाया जा सकता है। वास्तवमें सोचनेसे भी यही जान पड़ेगा कि यदि हमारे भोजनोंकी वस्तुओंमेंसे वे चीज़ें

निकाल दी जायें जो किसी न किसी रूपमें पौदोंसे बनायी गयी हैं तो कोई वस्तु न रह जायगी जो जानवरोंके अधिक लाभकी हो। पेड़ोंके दुनियामें न रहनेका एक मतलब यही होता है कि पृथ्वी जीव शून्य हो जाय।

इतनी तो हुई भोजनोंकी बात। अब यदि हम अपने सुबिधाओंकी ओर देखें तो भी मालूम होता है कि वह सभी बनस्पतियोंकी दी हुई महिमाका फल हैं। भोजनोंके अनन्तर दूसरी आवश्यकता वस्त्रोंकी होती है। पशुओं और पक्षियोंको छोड़कर जिनके बदनमें रोयें या पर प्रकृतिने जमा दिये हैं मनुष्योंको अपनी रक्षा करनेकेलिए किसी न किसी पोशाककी आवश्यकता होती है और इन सबका पहला आश्रय यही पेड़ हैं। इतिहासमें भी यही कहा गया है कि बहुत पुराने जंगली मनुष्य और जंगली जातियां (जो अब भी हैं) पत्तोंके आवरण अपने लिए बनाती थीं। इस जंगली अवस्थासे लेकर क्रमशः बढ़ियासे बढ़िया पोशाक इन्हीं वनस्पतियोंकी बनायी हुई है। रेशमका कीड़ाभी शहतूतकी पत्ती खाकर रेशम पैदा करता है। इसी तरहके अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं। पग पगपर हमको वनस्पतियोंका ही सहारा लेना पड़ता है।

एक और बात कह कर हम इस विषयको छोड़कर और कुछ बातें कहेंगे। वह बात यह है कि वृक्ष हवाको साफ़ करते हैं। हवा कई प्रकारकी गैसोंका मिलाव है और उनमेंसे एकका नाम ओषजन है जो सांस लेनेसे हमारे भीतर जाकर खूनको साफ़ करती है। जब हम सांस बाहर निकालते हैं तो यह ओषजन हमारे खूनकी अशुद्धियोंको लेकर दूसरे रूपमें बाहर निकल आती है। इस दूसरे गैसका नाम है कारबोनिक एसिड गैस। यह गैस सांस लेने लायक़ नहीं होती। इसके सांस लेनेसे बहुत ही हानि हो सकती है यहां तक कि मृत्युका होजाना भी सम्भव है। यह गैस सब जानवरोंकी निकाली हुई सांसमें होती है। यदि यह बराबर इकट्ठा होती रहे और इसके ख़र्च करनेका या रूप बदल देनेका कोई उपाय न हो तो यह हम भलीभांति विचार सकते हैं कि ऐसा समय आसकता है जब हम सब ओषजनको सांस लेकर ख़तम कर डालेंगे और उसकी जगह "कारबोनिक एसिडगैस" जमा कर देंगे। इसका फल यह होगा कि जानवर सांस न ले सकनेसे सबके सब मर जायेंगे। परन्तु दुनियांको इतने वर्ष बने हुए हो गये और कभी ऐसा नहीं हुआ कि उसका सब ओषजन ख़तम हो जाय। इसका कारण क्या है? इसका मुख्य कारण यही है कि दूसरी हानिकारक गैस पेड़ अपने काममें लाकर उसका रूप फिर ओषजनमें बदल देते हैं। अर्थात् "कारबोनिक एसिड" को सांस लेकर ओषजनको बाहर निकालते हैं। यही कारण है कि एकका भंडार कभी कम नहीं होता न दूसरेका बढ़ता है। प्रकृतिका कैसा अच्छा प्रबन्ध है इस बातको सोचकर हमको चकित रहजाना पड़ता है। यह पेड़ कैसे गैस रूपका अदल बदल करते हैं हम ठीक समय ठीक जगह पर पाठकोंको बतलायेंगे।

इन सब बातोंको सरसरी तौरपर सोचनेसे यही मालूम होता है कि पेड़ ही सब जीवधारियोंका एकमात्र कारण हैं। पेड़ न होते तो खाना न मिलनेके कारण, हम कैसे जीते? वस्त्रहीन होकर हम कैसे निर्वाह करते और हानिकारक गैस किस तरह हटायी जासकती? पेड़ स्वास्थ्यको ठीक रखनेकेलिए बड़ीभारी सहायता देते हैं क्योंकि साफ़ हवा अच्छी स्वास्थ्यका मुख्य कारण है। इसीलिए हर शहरमें कमसे कम एक फूलबाग़ हुआ करता है और ऐसे बाग़ोंका यही मतलब है कि लोग वहां जाकर साफ़ हवामें सांस लेकर अपने स्वास्थ्यको जिसके दिनभर घरोंमें काम करने से बिगड़ जानेकी सम्भावना है, ठीक करें।

इसके अतिरिक्त ऐसे जगहोंमें आनेसे एक और लाभ है। भांति भांतिके फूलों और पेड़ोंके रंग बड़े ही सुहावने मालूम होते हैं और हमारे किसी कारणसे मुर्झाए हुए चित्तको प्रफुल्लित करदेते हैं। इसी वास्ते वाटिकाओं और उपवनोंमें जाना बड़ा ही आवश्यक है; क्योंकि वहां जानेसे न केवल भांति भांतिके मनुष्योंको देखते हुए उनकी बातोंको सुनकर हम लाभ उठाते हैं वरन हम अपने चित्तको प्रफुल्लि करते हैं और स्वास्थ्यकी जो मनुष्यका एक बड़ा अनमोल रत्न है, रक्षा करते हैं।

मदिराका निष्कर्ष

(ले० श्रीयुत गि०)

इस देशमें जितने नशीले पदार्थ काममें लाये जातेहैं उनमें मदिरा सबसे निषिद्ध समझी जाती है। हिन्दू और मुसलमान दोनोंके धर्ममें मदिरापान पाप है और इसमें सन्देहभी नहीं है कि इसमें दोष बहुतेरे हैं। फिर भी यह मानना ही पड़ता है कि सब मादक पदार्थोंमें इसीका नम्बर औवल है। मुसलमान कवियोंने "मै" और "शीशे" को अपनी कवितामें प्रधान स्थान दिया है। महाकवि कालिदासने भी 'हाला-मभिमतरसां' और "शशिप्रतिमाभरणंमधु" का वर्णन किया है। आबकारी विभागकी रिपोर्टोंसे भी यह मालूम होता है कि मदिराहीके द्वारा इस विभागकी आमदनीका विशेष अंश प्राप्त होता है। इन्हीं कारणोंसे "विज्ञान" के पाठकोंको इसकी तैयारीका संक्षिप्त ब्यौरा सुनाना आवश्यक समझा गया।

पहले एक मोटी बात यह बता देना आवश्यक है कि मदिरा अर्थात शराब दो प्रकारकी होती है। एक जो किसी मीठे रसको सड़ाकर औरछानकर पी जातीहै; उसे शराब मुख़म्मर कहते हैं। इस प्रकारकी विलायती शराबें बियर (beer), स्टाउट (stout), एल (ale) इत्यादि हैं। शाम्पेन (champagne), क्लैरेट (claret) आदि वाइंस (wines) भी "शराब मुख़म्मर" हैं। भेद इतना है कि बियर, स्टाउट आदि शराबें अन्नोंसे बनती हैं और वाइंस (wines) फलोंके रसोंसे। देसी शराब मुख़म्मर भी कई प्रकार की होती है यथा ताड़ी, सेंधी, दखहरा, बोज़ा इत्यादि। इनमें मुख्य करके इस प्रान्तमें ताड़ीही पी जाती है।

दूसरे प्रकारकी मदिराको शराब मुक़त्तर कहते हैं अर्थात् वह शराब जो खींचकरके (distill), डिस्टिल-करके, बनायी जाती हैं। विलायती खिंची हुई शराबें ह्विस्की (whisky) ब्राण्डी, (brandy) रम (rum) और जिन (gin) हैं; देशी महुए और शीरेका ठर्रा। इसी देसी ठर्रेकी बनानेकी विधि बतलाना इस निबन्धका उद्देश्य है।

संयुक्त प्रान्तके पूर्वीय ज़िलोंमें महुएके ठर्रेका ख़र्च अधिक है। शीरेकी शराब कभी कभी मसाला डलवाकर शौक़ीन लोग विशेष प्रबन्धसे बनवाते हैं। कानपूरसे पच्छिम महुएकी शराब कोई नहीं पीता और न उधर महुएके पेड़ बहुतायतसे होते हैं। महुएसे शराब निकालना इस देशकी एक विशेष बात है। युरोपीय देशोंमें या तो जौसे शराब खींची जाती है या अंगूर या सेबसे। जावा आदि द्वीपोंमें जहां शकरके कारख़ाने बहुत हैं, शीरेकी शराब बनती है। महुएसे केवल इस देशमें काम लिया जाता है।

नीच जातियोंमें शराब बनानेकी पुरानी विधि यह है कि महुएको एक घड़ेमें भिगो देते हैं। दूसरे ही दिन वह "बजबजा" उठता है। इसे 'पास' या लहन कहते हैं। गरमीमें ५ या ६ दिनोंमें और जाड़ेमें ८ या दस दिनमें इस 'पास' का "बजबजाना" ठहर जाता है। 'पास' के ठहरतेही इसे भट्टीपर चढ़ा देना चाहिए नहीं तो सड़ जानेसे शराब कम आती है और खट्टी हो

chemistry रसायनशास्त्र]
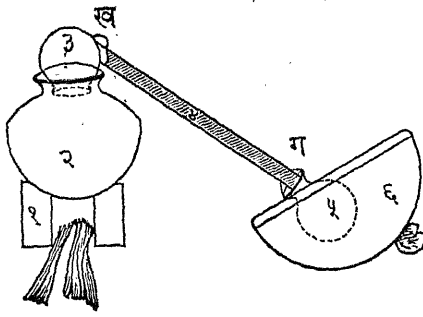
चित्र नं० १

जाती है। इसके खींचनेका सामान यह है।

(१) एक साधारण चूल्हा।

(२) एक छोटी मटकी जिसे 'चखी' या चटौआ कहते हैं।

(३) एक छेददार हंड़िया जिसे 'भभका' या 'बखरा' कहते हैं।

(४) एक रेंडका नल जिसे 'नार' भी कहते हैं। इसपर कपड़ा लपेट कर उसपर डोरी लपेट देते हैं।

(५) एक साधारण छोटा घड़ा।

(६) एक नांदी या हौदी।

इनमें (५) को छोड़कर सब सामान मिट्टी-का होता है और शराब बनानेके सिवा इनसे दूसरे काम भी लिये जा सकते हैं। पहले चखी (२) में सड़ा हुआ महुआ पानी सहित (fermented Mahua) भर दिया जाता है। फिर यह चूल्हे पर चढ़ादी जाती है और इसपर भभका (३) उल्टा रखकर उसमें नल (४) पहिना दिया जाता है। इसके पीछे घड़े (५) को नांदीमें (६) पानी भरकर रख देते हैं और नल-का दूसरा सिरा घड़ेके मुंहमें डाल देते हैं। ख ग इन जगहोंपर मिट्टी लेसदी जाती है। चूल्हेमें साधारण लकड़ीका ईंधन दिया जाता है। नलको थोड़ी थोड़ी देरपर भिगोते रहते हैं और नांदीका पानी बदलते रहते हैं। प्रायः २ या २$\frac{१}{२}$ घंटोंमें शराब "आ" चुकती है। फिर नल खोल लिया जाता है। चरुईका महुआ गाय बैल खा लेते हैं और उसमें जो पानी बच जाता है इसे रसी या गोरा (spent wash) कहते हैं। जब फिर कभी 'लहन लगाना' (महुआ सड़ाना) हो तो यह 'रसी' महुएमें मिला देनेसे 'पास' जल्दी तैयार हो जाता है। घड़ेमें शराब आ-जाती है और ठंडी होनेपर पीनेके काम आ-सकती है।

इस रीतिसे पहले देशी कशीददार (Distiller) अथवा कलवार लोग शराब खींचते थे। अब केवल इलाहाबाद, प्रतापगढ़, रायबरेली और फ़तेहपुर ज़िलोंके पासी इस रीतिसे काम लेकर राजदण्डके भागी होते हैं; क्योंकि लैसंसदार कशीददारोंके सिवा और बिना सर्कारी निगरानीके कोई मादक वस्तु बनायी नहीं जा सकती। फिर भी देशी आबकारी गोदामोंमें जहां सर्कारी कर्मचारियोंकी निग-रानीसे शराब बनती है खींचनेकी जो रीति प्रचलित है उसमें और ऊपर लिखी रीतिमें बहुत भेद नहीं है। छोटे चूल्हेके बदले एक बड़ी भट्टी, चखीके बदले देग, हँड़ियाके भभकेके बदले एक बड़ा नोकदार मटका (जिसे 'बावरी' कहते हैं) रेंड़के नलके बदले बांसका नैचा, छोटे घड़ेके बदले तांबेका कलसा और नांदीके बदले पक्का हौज़ होता है। किसी किसी आबकारीके गोदाममें कलसा ज़मीनमें काठके खूंटोंसे जड़ा रहता है और इसके पेंदेमें एक "जलेबी" (spiral pipe) लगी रहती है जो एक जगहपर हौज़की दीवार फोड़कर बाहर निकल पड़ती है। इसी जलेबीके रास्ते शराब निकलती है और घड़े या मटकेमें गिरती है।

पास लगानेकेलिए कहीं कहीं काठकी बाल्टियां काममें लायी जाती हैं। इससे काममें कुछ सफ़ाई आ जाती है। पुरानी रीतिमें

बहुधा पासके घड़े ज़मीनमें गाड़ दिये जाते थे। इनमें कभी कभी चूहे, मेढक, छिपकलियां, या चिमगादड़ गिर पड़ते और पासको बिगाड़ देते थे। इसीसे अब घड़े गाड़नेका रवाज नहीं रहा। शीरे से शराब खींचनेकी भी यही रीति है। भेद इतनाही है कि इसके 'पास' में कोई घनपदार्थ (solid matter) न रहनेसे खींचनेमें सुबिधा हो जाती है।

बहुतसे शराब बेंचनेवाले अपने ग्राहकोंको सौंफ़ी, नारंगी, जामुन आदिकी शराब दे देकर दूना ड्योढ़ा दाम लेते हैं। असलमें यह शराबें भी महुए या शीरेकी होती हैं। भेद इतना है कि खींचते समय देगमें या खींचनेसे एक दिन पहले 'पास' में यह मसाले मिला दिये जाते हैं। शौक़ीन लोग कभी क़भी मांस डलवा कर शराब खिंचवाते हैं। इसे 'माउल लहम' कहते हैं। मुंडी, पुदीना, गुलाब, केवड़ा, खीरे, ककड़ी के बीज आदि मसाले भी डाले जाते हैं।

कुछ दिनोंसे अंगरेज़ी रीतिसे शराब खींचनेवाली कम्पनियोंको भी देसी शराब (ठर्रा) खींचनेका ठेका सर्कारसे मिल गया है। इनकी रीति देशी रीतिसे भिन्न है और इसमें दाम भी अधिक लगते हैं। देसी भट्टी साधारणतः ५०) से १००) तक और "जलेबीदार" २५०) तकमें तैयार हो सकती है पर अंगरेज़ी मशीन २० हज़ार रुपयेके लगभगमें आती है और इसका कुल सामान इकट्ठा करनेमें १ लाख रुपये तक लग जाते हैं। इस देशमें जो मशीन काममें लायी जाती है उसे (coffye-still) काफ़ेकी भट्टी कहते हैं। इसकी रचना विचित्र है। (देखोचित्र नं० ३) इसे बार बार खोलकर भरना आवश्यक नहीं है। भापके ज़ोरसे यह चलती है पर इसमें महुएके पासके घनपदार्थ पहले छानकर अलग कर दिये जाते हैं अर्थात् महुएके छने हुए रस का "पास" 'उठा' कर खींचा जाता है। इसके कल पुरज़ोंका सविस्तार वर्णन करनेसे लेख बहुत बढ़ जायगा। इसी कारण 'पास' उठने (fermentation) या "खींचने" में जो
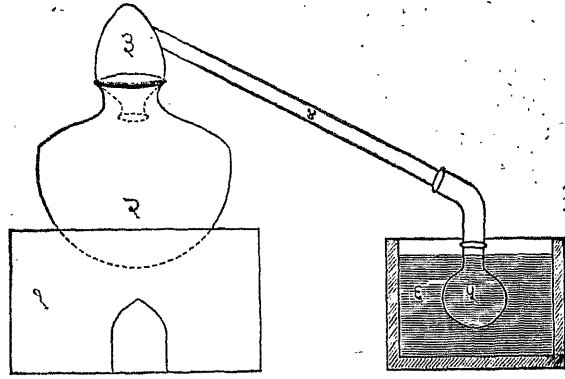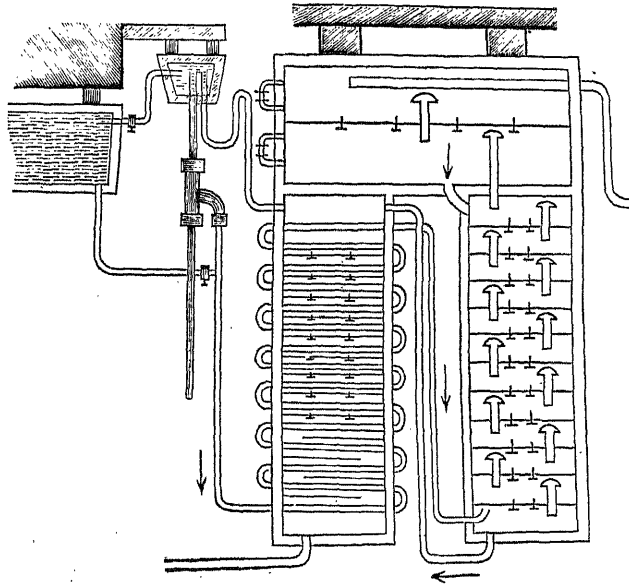
चित्र नं० २

चित्र नं० ३

(chemical reaction) रसायनिक प्रयोग होते हैं उनकी भी चर्चा नहीं की गयी। आबकारी बिभागकी "परिभाषा" से भी कुछ काम नहीं लिया गया है। केवल इस देशके शौण्डिक अर्थात् कलवार जिस परिभाषासे काम लेते हैं उसके कई, शब्दोंका व्यवहार हुआ है पर इनके बिना काम भी नहीं चल सकता था।

खेतीका प्राण और उसकी रक्षा

२—जल—

[लेखक—संकर्षण, बी० एस-सी०]

इस पृथ्वीपर ईश्वरकी अपूर्व मायाका चमत्कार है। ऐसा कोईभी पदार्थ नहीं कि जिसमें उस परब्रह्म परमात्माकी कारीगरीका नमूना न मिले। जल, थल, सभी जगह उसकी लीला देखी जासकती है। मनुष्य इस लीलाके समझने तथा किसी क्रियाके होने न होनेका पता लगानेमें कितना समर्थ है यह लिखना तनिक भी आवश्यक नहीं जान पड़ता। कितने पदार्थ इस संसारमें कितने प्राणियोंको न जाने क्या क्या सुख देते हैं, पर अपने आहारकेलिए बिलकुल मामूलीसी चीज़ें चाहते हैं। कितने जीव जन्तु, पौदा, बेल इत्यादि केवल जलहीमें पलते और रहते हैं। योंतो वायु सबही कुछ है और, बिना इसके जलचर, नभचर कोई भी जी नहीं सकते पर पानीका भी नम्बर उसके बादही आता है। भूगोलके अवलोकनसे प्रतीत होगा कि इस भूमण्डलके $\frac{3}{4}$ हिस्सेमें जलही जल है। जलको वैज्ञानिकोंने मिश्रित पदार्थ साबित कर दिखाया है। उन्होंने स्वच्छ जलसे दो गैसें अर्थात् हाइड्रोजिन (hydrogen) और आक्सिजन (oxygen) निकालीं तथा इन दोनों गैसोंके समावेशसे फिर पानी बना दिया।

Agriculture कृषिविद्या]

ऐसा स्वच्छ जल जिसमें केवल यही दो गैसें उपस्थित हों मिलना सहज नहीं। जो जल बर्षा कुंआ, नदी, समुद्र इत्यादिसे आता है उसमें बहुतसी चीज़ें घुलकर तथा मिलकर आजाती हैं। इनमें कुछ तो लाभदायक और कुछ हानिकारक भी होती हैं। बर्षाके पानीसे हमारे बहुतसे काम चलते हैं और जब वृष्टिमें कुछ भी उलट फेर होता है, अवश्य कर हमारे कार्य्योंमें भी वैसे ही वरन् कुछ अधिक ही गड़बड़ पड़ जाती है।

प्रायः सभी कृषक बर्षाके पानीके सहारे ही अपनी जीविका-नौकाको कृषि-सरितामें छोड़ देते हैं। तब तो बड़ी ही सरलतासे समझमें आसकता है कि इसके अभाव तथा अच्छी तरहसे प्रयोग न करनेमें खेतीको कितना बड़ा धक्का लग सकता है। बर्षा ऋतु जूनसे सितम्बर तक (आषाढ़से आश्विन तक) रहती है। इस बीचमें हमको चाहिए कि इससे पूरा लाभ उठायें।

बर्षा होनेके पहलेहीसे खेत जोतकर ठीक कर लेना चाहिए। अप्रैल मईमें (जबकि कड़ाकेकी धूप पड़ती है और खेत प्रायः परती पड़े रहते हैं) खेत जोत देनेसे जो लाभ होते हैं वह पिछले लेखमें दरशाये जाचुके हैं। इस समय पाठकोंका ध्यान उसी ओर ले जाकर फिर इतना कहना आवश्यक समझता हूं कि ऐसा कर देनेसे धरतीको वर्षाके जलसे भली प्रकार लाभ पहुंच सकता है, क्योंकि भूमि स्वयम् भली भांति उलट पुलट जानेपर जलको पूरी तरहसे पी सकती है। पर अनेक स्थानको धरती तथा बहुतसे खेत ऐसे भी होते हैं जिनकी मिट्टी कड़ी होती है और उन दिनोंमें उनमें हल बड़ी कठिनतासे अथवा कहीं कहीं तो, बिलकुल ही नहीं प्रवेश कर सकते। इसकेलिए हमें कोई उपाय ढूंढना पड़ा। सौभाग्यवश उपायका अभाव नहीं। हम लोगोंको इस कष्टके निवारणार्थ उसी देवलीलाका आश्रय लेना चाहिए। कभी कभी माघ फागुनमें

या इसके आगे पीछे कुछ पानी हो जाता है। इस पानीको कुछ लोग "महावटका पानी" कहते हैं (अङ्गरेज़ीमें इसे साधारणतः untimely rains कहते हैं)। इन महावटोंके पानीसे कड़ी ज़मीन वाले खेतोंकी मिट्टी नम्र, ठीक हल चलाने योग्य, हो जाती है, तब यह बड़ी सुगमताके साथ जोते जासकते हैं। इस प्रकार परती खेत सहजहीमें बर्षाके पानीसे पूरा लाभ उठाने योग्य बनाये जासकते हैं।

पानीसे यदि किसी चीज़को धोओ अथवा पानीकी धार उसपरसे बहाओ, तो जो कुछ भी उसमें घुल आने वाली चीज़ें होंगी सब घुल आयेंगी। पानी जब बरसता है तब वायु मण्डल-में होकर नीचे गिरता है। अतएव वायु मण्डल-मेंसे घुल आनेवाली चीज़ोंको अपने साथ वर्षा-का जल ले आता है। ऐसी चीज़ें अमोनिया और नित्र (ammonia and nitrates) हैं। यह दोनों चीज़ें पानीमें घुल जाती हैं और दोनोंहो नत्रजन (nitrogen) के दो भिन्न भिन्न योग हैं। इनमें नत्रजनका अंश होनेके कारण इनसे पौदोंको लाभ पहुंचता है। पहले पहल बरसे हुए पानीमें इनका अंश अधिक होता है क्योंकि वायुमण्डल उस समय तक इन पदार्थोंसे वंचित नहीं होता। हाँ, यह निश्चय है कि पहले पानीसे घुल चुकनेपर वायु मण्डलमें यह चीज़ें कम होजाती हैं और फिर पीछेके पानीमें इनका अंश पहलेकी अपेक्षा कम पाया जाता है।

खेतोंमें वर्षाके कुछ दिन बाद मट्टीकी ऊपरी सितह (Surface) सूर्य्यकी गरमीसे सूखकर पपड़िया जाती है। इसीको "पपड़ी पड़जाना" भी कहते हैं। इस ऊपरी सितहके नीचेकी मट्टी यदि कुछ हटाकर देखी जाय तो सीली मिलेगी पर यदि खेत इसी दशामें छोड़ दिया जाय तो कुछही दिनोंकी कड़ी धूपके बाद नीचेकी मट्टीमें उतना सीलापन न रहेगा। इसका कारण यह है कि सील बराबर नीचेसे खिंच खिंच कर ऊपरी सितहपर आती रहती और सूर्य्यकी गरमीसे सूख सूख कर नष्ट होती रहती है। इसको अङ्गरेज़ीमें loss due to evaporation by capillary action कहते हैं और इससे खेतमें बर्षा द्वारा प्राप्त हुआ जल, बर्षा-के बाद, बातकी बातमें उड़ जाता है। किसानको इससे बचनेका उपाय करके पानी-को नष्ट न होने देना चाहिए। इस नाशको जड़ जैसा कि दरशाया जाचुका है, ऊपरी सितह-पर पपड़ीका बनना है, अतएव इसीको बराबर तोड़ते रहना चाहिए। इसके तोड़नेमें कुछ असुविधा नहीं। बर्षाके बाद कुछ धूप होनेपर जैसे ही पपड़ी पड़ना आरम्भ हो, वैसे

वर्षाके पानीका माप "इञ्च" है। "इञ्च" एक फुटके बारहवें तथा एक गज़के छत्तीसवें और एक हाथके अठारहवें अंशको कहते हैं। "अमुक स्थानमें १ इञ्च पानीबरसा" इसका मतलब यह है कि यदि उस स्थानकी बर्षाका जल भूमिमें सोखने तथा इधर उधर नालियों द्वारा न बढ़ने दिया जाय तो वह सब जल भूमिसे १ इञ्च ऊँचा खड़ा होगा। इस मतलबको समझकर गणितके द्वारा किसी खेतमें बरसे हुए जलकी तौल भी निकाली जा सकती है। उदाहरणार्थ एक खेत जिसका क्षेत्रफल १ एकड़ (=३२ विस्वा=४८४० वर्गगज़) हो लीजिए, १ इञ्च बर्षा होनेपर उस खेतमें ऊपर लिखे समझौता से—सालभरकी बर्षाका औसत लगानेसे प्रतीत होता है कि प्रति एकड़, अमोनिया और नित्रके रूपमें ३ से ३·५ पाउण्ड तक नत्रजन बर्षा-जल द्वारा आजाता है?

$$४८४० \times ६ \times \frac{१}{१२} \text{ घनफुट पानी पहुंचेगा}$$

= ३६३० घनफुट पानी पहुंचेगा

१ घनफुट पानीका तौल ६२·३ पाउण्ड (= ३१ सेर) है इस हिसाब से—

१ एकड़ क्षेत्रफलवाले खेतमें १ इञ्च बर्षा होनेपर } ३६३० × ६२·३ पाउण्ड पानी हुआ

= २२६१४९० " " "

= २८२६९ मन " "

इसी प्रकार १ बीघा क्षेत्रफलवाले खेतमें १ इञ्च बर्षा होनेपर } १७६६८ मन " "

ही खेतको एक बार कोड़ देना चाहिए। कोड़नेकेलिए हलको गहरा देनेकी तनिक भी आवश्यकता नहीं, इतना ही बहुत है कि इस पपड़ीका नीचे वाली सीली मिट्टीसे लगाव न रहे। इसे अपनी भाषा में "कोड़ना" तथा अङ्गरेज़ी में harrowing कहते हैं।

अन्तमें केवल एक बात और मुझे इसी बर्षा-जलके सम्बन्धमें कहना है। आशा है कि मुझे आजकलके नामाचारके भड्डरी, ब्राह्मणगण तथा ज्योतिषी महाशय क्षमा करेंगे। गांववालोंको इन महापुरुषोंपर बड़ा भरोसा होता है और विशेष कर खेतीबारीके कार्य्यमें इनसे परामर्श अवश्य ही किया जाता है। कहीं कहीं तो पूर्णतः इनके आज्ञानुसार ही कार्य्य करते हैं। यह लोग बुद्धिमान तो बड़े होते हैं और अपने तजुरबेसे जो मनमें आता है अपने आँखके अन्धे गाँठके पूरे जजमानको बता देते हैं। वहां तो जजमान ने "ना" सीखा ही नहीं बस "बाबा वाक्यं प्रमाणम्" जैसा पण्डितजीने कहा वैसा ही किया। कभी कभी इन लोगोंका अनुमान ठीकभी उतरता है। बस फिर क्या लगे पुजने। परन्तु बहुधा जब जब इनका अनुमान उलटा घटता है तब यह महापुरुष तरह तरहके ग्रह तथा नक्षत्रोंको दोषी बना और कभी कभी अपनी ज्योतिष विद्याको अपूर्ण कह, स्वयम् निर्दोष हो निकल जाते हैं। बात असल यह है कि पञ्चाङ्गमें सारे भारतवर्षका योगफल रहता है यह लोग उससे एक ख़ास जगह तथा गांवका किसी एक नियत समयपर पानी पड़ने तथा न पड़नेका हाल बतलाना चाहते हैं। इसका ठीक होना असम्भव है। एक दूसरेसे मिले हुए गांवों तकमें तो एकसी वर्षा होती नहीं! यदि कहीं इनका अनुमान ठीक भी होजाय तो उसे भाग्यकी बात समझना चाहिए न कि श्रीमान्के ब्रह्म वाक्य की!! पानीके बरसने न बरसनेका हाल जान लेना यदि इतना ही आसान होजाता तो फिर क्या था!!!

बर्षा-जलके विषयमें यह सब बातें जानकर यह स्पष्ट होगया कि इससे पूरा लाभ उठानेके हेतु सबसे मुख्य उपाय खेतको जोतना है। महावट होते ही या, अगर कड़ी ज़मीन न हो तो, उसके पूर्व ही जोत देनेसे अनेक लाभ होते हैं —

(१) धरती अच्छीतरह उलट पुलट कर पानी पूरी तौरपर ले सकती है।

(२) महावटोंके पानीसे, वायु मण्डलसे धुल आये हुए अमोनिया और नित्रके द्वारा, भूमिमें पौदोंकेलिए कुछ और सामग्री हो जाती है।

(३) बर्षाका पानी, बाहर न बह जाकर खेतहीमें प्रवेश कर सकता है।

(४) ऐसा होनेसे खेतकी वायु, अथवा जलद्वारा संग्रह की हुई सामग्री भी बह नहीं जा सकती और साथ ही साथ पपड़ी तोड़ते रहनेसे यह सब प्राप्त किया हुआ जल सूर्यकी किरणों द्वारा भी उड़ नहीं जा सकता।

यहां तक तो बर्षाके पानीका जिसका संबंध दैवलीला से है, वर्णन रहा। अब कुछ मनुष्यके हाथ पाँव मारनेसे प्राप्त अर्थात् नदी, नहर, और कुवेंके पानीका हाल सुनिये।

पौदे या पेड़ सभी अपने पालन पोषणके हेतु भूमिसे जो सामग्री ग्रहण करते हैं वह सब जल ही द्वारा करते हैं। इनकी जड़ोंमें यह गुण होता है कि वे तरल पदार्थोंको खींच सकते हैं। इस क्रियाको अङ्गरेज़ीमें osmosis कहते हैं। खादमें जितने ही घुलनेवाले पदार्थ होंगे अथवा जितने पदार्थ किसी क्रिया द्वारा कुछ समयमें घुलनेवाले पदार्थोंमें परिवर्तित हो जायंगे वे ही पौदेका लालन पालन कर सकते तथा उसे लाभ पहुंचा सकते हैं। नदी नहरके

पानीमें कई पदार्थ * जिनका बर्षाके जलमें अभाव होता है मिले रहते हैं। इस बातका पता यों लगसकता है कि कुछ पानीको किसी बर्तनमें रखकर धीरे धीरे गरम करें और बराबर आँच लगाते रहें, अन्तमें बर्तनकी तलीमें कुछ स्वेत वस्तुसी रह जायगी इसे total solids (टोटल सालिड्स) या जलकी पूरी तलछट कहते हैं और इसीका घट बढ़ होना पानीमें मिले हुए पदार्थोंका माप है। इनकी बर्षा, नदी, नहर और कुँएके पानीमें मात्रा लगभग यों है—

बर्षा-जलमें, प्रति १००० भागमें, total solids का ·०३ भाग है।

नदी, नहर, झील के पानीमें ,, ,, ,, ,, ·१० ,,

गहरे कुँवोंके ,, ,, ,, ,, ,, ·४४ ,,

बर्षा-जलकी उपयोगिता तो स्पष्ट ही है, उसके विषयमें क्या कहा जाय। नदी नहरके पानीके उपयोगमें एक बड़ा भारी कष्ट यह है कि खेतोंको उनसे सींचनेसे उनमें टोटल सालिड्स-की मात्रा दिन पर दिन बढ़ती जाती है। थोड़े ही कालमें यह मात्रा इतनी अधिक हो जाती है कि पौदोंका पनपना बन्द हो जाता है और विशेषतः वे मृत्युको प्राप्त होने लगते हैं। इनकी मात्रा प्रति १००० भाग पानीमें ५ भाग भी होना बहुत है। १०००में १ भाग तक होनेसे कोई हानि नहीं होती ; पर जहाँ २-३ भाग तक मात्रा पहुँची कि हानि पहुँचनेका सन्देह होने लगा।

* (१) Sodium chloride (मामूली नमक), (२) Sodium Sulphate (खारीनमक), (३) Magnesium Sulphate, (४) Calcium, chloride (५) Sodium Bicorbonate, (६) Magnesium chloride (७), Calcium Carbonate (खरिया मिट्टी) (८), Calcium Sulphate, (६) Some Silicates, Iron and Alumina Compounds.

Astronomy ज्योतिषि]

जो पदार्थ कि नदी, नाले, कुँएके पानीमें पाये जाते और बर्षा-जलमें नहीं पाये जाते और जिनकी सूची दी जा चुकी है उनमेंसे पहले छः पानीमें घुल जाने वाले हैं। खेतोंमें इस पानीके सींचनेसे इन घुलजाने वाले पदार्थोंकी मात्रा (soluble mineral matter) बढ़ती है। वास्तवमें इन्हीं घुल जाने वाले पदार्थोंकी मात्रा खेतोंमें अधिक हो जानेसे बेचारे पौदोंका पनपना बन्द हो जाता है और वे मृत्युको प्राप्त होते हैं। ऊपरकी सूचीमें इन छः को छोड़कर अन्य पदार्थ पानीमें नहीं घुलते। पानीके सूख जानेपर ये अलग होजाते हैं। इसी कारण उनके द्वारा भूमिमें soluble mineral matter का संग्रह नहीं होता।

इन सब बातोंको जानकर कृषकको चाहिये कि नहर बम्बेका पानी सिंचाईके हेतु मरभुखों-की तरह अपने खेतोंमें न भरलें, केवल जितनी आवश्यकता समझें उतना ही लें। ऐसा न करने-से उनको लाभके बदले हानि होगी—

(क) सबसे पहले तो खेतकी भूमिसे वायुका सम्बन्ध टूट जायगा। (water logging.)

(ख) पानीमें मिले हुए हानिकारक पदार्थोंकी मात्रा अधिक होगी।

(ग) ऐसा होने से—

(१) भूमिमें जलप्रवेशकी शक्ति कम हो जायगी,

(२) प्रायः पैदाहुए पौदोंकी मृत्यु भी होगी।

मंगल ग्रह

[एक गल्प]

(भाग १ पृ० २३० से सम्मिलित)

[ले० श्री अनादिधन बंद्योपाध्याय]

मंगल ग्रहकी यात्राको आज मैं पच्चीस बर्षके बाद लिखने बैठा हूं। वह एक दिन था जिस दिन मैं बेलून (Balloon) में बैठकर ग्रहकी सैर करने गया था और

आज एक दिन है कि हवाई जहाज़ोंने इतनी उन्नतिकी पर एकभी पृथ्वीके बाहर न उड़ सका। वह तो मेरा ही भाग्य था कि मेरी पहुंच मंगल ग्रह तक हो गयी। देखें दूसरा कौन जाता है? कदाचित इस वर्त्तमान युद्धके बाद योरपवाले इधर ध्यान दें। ख़ैर भाई जो कुछ होनेको होगा हो जायगा मुझे क्या? आजकल तो मैंही अकेला पृथ्वीपर ऐसा मनुष्य हूं जो दुनियाके बाहर दौरा लगानेका दावा कर सकता है। अब हमारे उड़ानका हाल मन लगाकर सुनिये।

मंगल ग्रहकी यात्राके पहले मैं तीन बार गुब्बारा या बेलूनपर उड़ चुका था। लक्ष्मी बिन मांगे बहुत कुछ जमा हो गयी थी। जो अपने आप आती थी उसे भला मैं क्योंकर रोक सकता!

पहले पहल मैं कलकत्तेमें उड़ा था। रेशमी छतरी या पाराशूट (Parachute) से जो उतरने लगा तो सीधा गंगाकी गोदमें जा उतरा। मल्लाह भा योंने कृपा करके मुझे उठा लिया। दूसरे बार फिर कलकत्तेहीमें अपना खेल लाखों आद मियोंके सामने दिखलाया। इस बार कुशल पूर्वक कलकत्तेके पास एक दमदम कह कर क़सबा है वहां मज़ेसे उतर गया।

तीसरी दफ़ा मैं लाहौर पहुंचा। वहांभी आप लोगोंकी अनुग्रहसे नामही पैदा किया। बस एक गोरखपूरमें मेरी दाल नहीं गली। सब बन्दोबस्त ठीकठाक था। हुई पार्कमें हज़ारों आदमी, घोड़े-गाड़ी, मेम,साहब,बच्चासे ले बूढ़ा और जवानसे ले पहलवान तक सभी टकटकी लगाये मेरी ओर देख रहे थे। मगर ज्योंही मैं मिट्टीके तेलका कनस्तर खोल गैस बनानेवाला था त्योंही बाईं आँख फड़क उठी। मेरा जी दहल उठा और मैंने उड़ना बन्द कर दिया। मैंने चिल्लाकर कह दिया। "उड़ना बरख़ास्त" (Flying postponed") सब लोग बिगड़ उठे। कारण पूछने लगे मगर बन्दा ख़ामोशी-की मोहर लगा मिट्टीकी मूरत बन रहा।

अन्तिम बार मैं बेलूनपर मरनेहीकेलिए अर्थात् मंगल ग्रहका तीर्थ करनेकेलिए सवार हुआ। मेरी स्त्री रो रोकर आँखें फोड़ने लगी, नाकफुसफुसाने लगी और होंठ फुलाकर सिसकने लगी, मगर ईंजानिब टस से मस नहीं हुए। यहाँ तो जानेकी धुन्ध सवार थी कहाँकी पत्नी और कैसे दोस्त। मैंने एक न सुनी। विज्ञापन दे ही डाला कि फ़लां दिन कप्तान जयसिंह म्योरकालेजके मैदानसे बेलूनपर सवार हो मंगल ग्रहकी ओर रवाना होंगे। दूसरे दिन प्रयागके उक्त विद्यालयसे मेरा उड़नखटोला उड़ा। मैं अपने विमानको उड़न-खटोला कहता था। चतुर्दशीके शामके छः बजे मैं भूमिसे अलग हुआ। साथमें खाने, पीने, और ओढ़नेका सामान तो था ही मगर विज्ञानकी और भी कितनी ही चीज़ें ज़रूरतकेलिए साथ ले लीं जिन्हें मैं धीरे धीरे बतलाता जाऊँगा। अभा उनको अगड़म बगड़मकी पेटीमें बन्द रहने दीजिये। एक बरोमीटर (Barometer) हवाके दबाव नापनेका यंत्र मैंने सामने रख लिया था। बेलून सीधा ऊपर चढ़ने लगा। पश्चिमकी ओर सूर्यका अस्त होना कुछ बिचित्रसा जंचने लगा। ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें आग लग गयी है। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ने लगा बरोमीटरका पारा भी नीचेकी ओर खसकने लगा। इसका कारण यह था कि ज्यों ज्यों मैं ऊपर उड़ता जाता था त्यों त्यों हवाका दबावभी कम पड़ता जाता था इस कारण बरोमीटरमें फ़र्क़ भी होता जाता था।

वह चाँदनी रातका उड़ना मुझे जन्मभर याद रहेगा। दुख तो यह है कि मैं कवि नहीं हूँ नहीं मैं आज हिन्दीका एक विख्यात कवि-कुल-कुमुद-चन्द बन चमकने लगता! चन्द्रमाकी शीतल किरण मेरे हृदयमें प्राणको उछाल रहीं थीं। नीचे अति नीचे कुछ चमकीले, कुछ सफ़ेद और कुछ धुन्दले धुन्दले वस्तु दृष्टिगोचर

हो रहे थे। धीरे धीरे केवल धुएंके और कुछ नीचे नहीं दिखलायी देता था। मैंने एक बार सोचा कहाँ जा रहा हूँ? कहाँ से आया हूँ? और क्या कर रहा हूँ? इनके उत्तर सोचनेके पहले ही शरीरका रक्त सूखने लगा। जीभ सूख कर लकड़ी हो गयी। गलेमें अजीब तरहकी हरकत पैदा हो गयी। मैंने एक लेमेनेडकी बोतल खोलकर पी, और फिर बेलूनकी टोकरीमें पैर फैलाकर बैठ गया। इस डरसे कि सोते सोते कहीं अपनेको बेलूनके बाहर न पाऊँ जो कहीं शरीर बेचारा तो यहीं छूट जाय और मुझे अकेले ही मंगल ग्रहकी सैर करना पड़े। मैंने अपनेको टोकरीसे रस्से और चमड़ेके फ़ीतेसे अच्छी तरह बाँध रक्खा था। मैं अभी बैठा ही था कि एक इतने ज़ोरसे हवा-का झोंका आया कि मुझे ऐसा विदित हुआ कि मेरे नाक कान फटे जाते हैं। मैंने अपना मुँह एक पिटारीमें छिपा लिया। और मारे भयके नहीं मालूम अज्ञानावस्था या स्वपनास्थामें ४ घंटे तक पड़ा रहा। घंटेका हिसाब घड़ीसे लगाता था जो मेरे जेबमें चेनसे लगी हुई थी। आखें जो खुलीं तो देखता हूँ कि सूर्य्यकी किरनें आकर मेरे मुँहपर गिर रही हैं। नीचे जो निगाह डाली तो अंधेरा हो अंधेरा मालूम पड़ा। बहुत विचारनेसे विदित हुआ कि मैं पृथ्वीसे बहुत ऊँचे हवामें हूँ इस कारण सूर्य्यकी ज्योति मेरे पास पहले पहुँचेगी भूमि पर बादको। मैंने सोचा देखना चाहिए कि मैं भूमिसे कितने ऊँचेपर उड़ रहा हूँ। मैं बरो-मीटर टटोलने लगा मगर नहीं मिला। बहुत कुछ ढूँढा पर कोई पता न चला। ख़याल किया कि रातके हवाके झोकेमें नीचे गिर गया होगा क्योंकि वह बाहर ही लटकाया हुआ था। एक और बारोमीटर बक्समें था मैंने उसे बाहर निका-ला। मालूम हुआ कि मैं कोई २५०० फ़ीट भूमिसे ऊँचेपर हूँ। मैं इससे पहले कभी ५०० फ़ीटसे ऊँचे पर नहीं गया था। मैंने बरोमीटरको इस डरसे फिर बक्समें बन्द कर दिया कि कहीं यह भी नीचे ही न चलता बने। हवा धीरे धीरे मेरी टोकरीमें बह रही थी। मेरा बेलून इस समय बहुत धीरे धीरे उड़ रहा था और ऊपर न चढ़कर हवाकी सतहपर सीधा जा रहा था। मैंने सोचा कि इस हिसाबसे न मालूम कितने सालमें मंगल ग्रहमें पहुँचूंगा। अतः मैंने बेलूनको तेज़ करनेकेलिए पाल बाँधा। पहले दो ही गुब्बारे थे अब एक और गुब्बारा उज्जन (Hydrogen) गैस भर कर ठीक किया। चार छोटे छोटे गुब्बारोंसे क्या लाभ है और एक बड़े गुब्बारेसे क्या हानि है वह मैं आगे चलकर पाठकों को बतलाऊँगा। इस समय एक बहुत हास्यजनक घटना हुई। ज़रा उसेभी सुन लीजिये। ज्योंहीं मेरा उड़न खटोला ऊपर चढ़नेवाला था त्योंही पाली और गुब्बरोंमें चटाचटकी आवाज़ होने लगी। मैं सोचने लगा कि यह क्या मामला है बादल और बिजलीका तो पता नहीं यह ओले कहाँसे बरसने लगे। सामने जो देखता हूँ तो दो इंचकी टिड्डियांआके पिटारीमें जमा होने लगीं। एक दो नहीं सैकड़ों हज़ारों टिड्डियाँ मुझपर टूट पड़ीं। मैंने इस समय अपने नेत्रोंको बहुत बचाया। कितनी एक टिड्डियोंको पकड़ पकड़कर बाहर फेंक दिया और कितनी ही को दबाकर रख दिया। ख़ैरियत तो यह हुई कि मेरा वेलून इस टिड्डी दलके एक कोनेसे ही टकराया था नहीं तो आज इस पृथ्वीपर यह मज़ेदार कहानी सुनाने-वाला कोई न रहता। जब इन जीवोंका धावा कम हुआ अर्थात् जब मेरा उड़नखटोला इन कीड़ोंके मेघसे ऊपर चढ़ गया तब मैंने बाक़ी टिड्डियोंको पिटारीसे साफ़ किया। अब मेरा बेलून ऊपर धड़ाकेसे चढ़ने लगा। यदि कोई प्राचीन कालका जङ्गली मनुष्य मुझे इस प्रकार उड़ता देखता तो निश्चय ही वह मेरी पूजा पुष्प चन्दनसे भय और प्रेम पूर्वक करता। (अपूर्ण)

वैज्ञानिकीय

खानमें कनारी पक्षी ।

अनुमानसे पंद्रह वर्ष व्यतीत हुए होंगे कि डाक्टर जान हल्डेन साहबने, जिन्होंने कार्नवालमें कोयलेके खानकी दशाओंका अध्ययन किया था, यह सम्मति दी कि कनारी पक्षियां विषैली वायुसे मनुष्यकी प्राणरक्षामें बड़ी लाभदायक सिद्ध हुई हैं। इन कोमल पक्षियोंमें दूषित वायुको सहजहीमें जान लेनेकी शक्ति होती है। इस प्रकारसे ये मनुष्यको उससे बचनेकी सूचना दे देती हैं। प्रथम बार कनारियोंकी परीक्षा विस्लिलीटेनके क्रास (cross) पर्वतकी खानकी दुर्घटनामें हुई थी। यहां पर सरकारी रक्षक अपनी पीठपर ओषजन (oxygen) बनानेवाली कलोंको और हाथोंमें कनारी चिड़ियोंके पिंजड़े लिए हुए प्रवेश किया। उनके पीछे और स्वयं सेवक बिना सामानके घुसे। लोग इन चिड़ियोंकी ओर देखते रहें और जब तक वे प्रसन्न रहीं सब ठीक था, परन्तु जब उन्होंने अपने पंखोंको ढीला कर दिया और सांस बढ़ने लगी तो यह ज्ञात हो गया कि बिना ओषजनकी कलके उसके आगे बढ़ना ठीक नहीं। इस प्रकार कनारियोंने उस स्थानको नियत कर दिया जहांसे आगे बढ़ना हानिकारक था और मनुष्योंको मरनेसे बचालिया।

[शिवबालक मिश्र]

* * *

काले होनेसे लाभ ।

यदि मनुष्य चर्म सूर्य्यके तापमें कुछ समय तक रहता है तो उसकी गर्मी साधारण गर्मीसे तीन चार डिगरी बढ़ जाती है, परन्तु पसीनेके कारण साधारण गर्मी अधिक नहीं होती। मलाया बासियोंके भूरे चर्ममें, जिसमें वैज्ञानिक मतानुसार अधिक गर्मी व्याप्त होनी चाहिए, महा कठिन उष्णतापमें श्वेतचर्मसे कम गर्मी बढ़ती है। इसके प्रमाणमें यह कहा जाता है कि काले मनुष्यके शरीरमें पसीना शीघ्र और अधिक आता है और वह शीघ्रही भापके रूपमें परणित होजाता है। इसी कारण उसमें गर्मीनहीं बढ़ती। इसी काले होनेके कारणसे काले मनुष्यके शरीरमें पसीना निकालनेवाली, गुल्थियाँ दीर्घ और पुष्ट होती हैं। यदि यह डाक्टरी सिद्धान्तके अनुकूल है तो काले मनुष्य शारीरिक गर्मीके स्थितिमें गोरे मनुष्यसे अच्छी अवस्थामें है।

[शि० बा० मिश्र]

* * * * *

कच्चे भोजनसे लाभ ।

मनुष्यके रक्तके श्वेत जीवाणु (white corpuscle) उसके प्राणरक्षामें बहुत बड़ी सहायता देते हैं। इस व्याधिमन्दिर शरीरमें न मालूम कितने रोगाणुओंको ये नित्य प्रति चट कर जाते हैं। बिना फ़ौजके जैसे किसी देशकी रक्षा होना दुर्लभ है वैसेही इन श्वेताणुओंके बिना इस शरीरका चलना दुस्तर है। बड़ी बड़ी महामारियोंसे बचनेकेलिए जो टीके लगाये जाते हैं उनका उद्देश्यभी इसी फ़ौजको रोग भक्षणके लिए तैयार कर देना है। बीमारीके मरे हुए निकम्मे कीड़े ज्योंही टीका द्वारा रुधिरमें पहुँचाये जाते हैं त्योंही ये जीव सुसज्जित होकर रणस्थलीमें पहुँच जाते हैं। इनकी फ़ौजमें भरती बढ़ती जाती है, और रोगके कीड़ोंको इनका सामना करनेका साहस नहीं रहता।

माडर्न रिव्यूके जूलाईके अङ्कमें निकला है कि यह बात अब परीक्षा द्वारा सिद्ध हो गयी है कि यदि एक मनुष्यको तोलकर उतना ही कच्चा भोजन दिया जाय जितना कि वह पका हुआ भोजन करता है तो कच्चे भोजन करनेसे उसके शरीरमें यह सुफ़ेद फ़ौज पक्के भोजनकी अपेक्षा

६ गुनी पायी जाती है। यदि पके हुए भोजनकी मात्रा दूनी भी करदी जाय तोभी वह इतने सुफ़ेद जीवोंको उत्पन्न नहीं कर सकता। कच्चा या अधपका भोजन करनेवाले अर्द्धसभ्य या असभ्य जातियोंके दीर्घजीवी होनेका सम्भवतः यह भी एक बहुत बड़ा कारण है।

* * * *

पुच्छल तारोंका प्रभाव

मध्यकालमें यूनान (Greece) के लोग ज्योतिष शास्त्रमें पश्चिमीय देशोंमें सबसे अग्रसर गिने जाते थे। उनका यह मत था कि पुच्छल तारा अन्य तारागणोंके सदृश अपने नियमित मार्गमें भ्रमण करते हैं और समय समयपर सूर्य और पृथ्वीसे दूर होजानेसे अदृष्ट हो जाते हैं। उनके गतिका नियत समय परीक्षासे ज्ञात हो सकता है। विद्वद्वर्य सेनेका (seneca) का भी यही सम्मति थी।

अरस्तूका सिद्धान्त यह था कि आकाश कभी बदलता नहीं। पुच्छलतारे आकाशके और तारागणोंके सदृश नहीं हैं, किन्तु ये एक प्रकारकी भाप है जो ऊपर जाकर कुछ समय तक चमकते हैं और फिर नाश होजाते हैं। मेट्रोडोरस (Metrodorus) का मत था कि ये सूर्यके प्रकाशके प्रतिफलन (reflection) से दृष्टगोचर होते हैं। डिमाक्रीटस (Democritus) के विचारमें ये बहुतसे तारागणोंके झुण्ड हैं। स्ट्रबो (strabo) का अनुमान था कि यह मेघमें छिपे हुए तारागणोंकी शोभा है। और किसीका मत था कि ये उभरे हुए बादल हैं जो बहुतही चमकीले हैं। कोई कोई कहते थे कि ये बादलोंके घूमने और फैलनेसे आग लगजानेके कारण चमकीले दीखते हैं। पूर्व समयमें पुच्छल ताराको लोग भयकी दृष्टिसे देखते थे और इसके उदय होनेसे राष्ट्रकेलिए एक कुशकुन मानते थे। परन्तु कभी कभी यह शकुन सूचक भी समझा जाता था। यह किसी महापुरुषके अवतारके प्रादुर्भाव या किसी सेनापतिके विजय लाभकी शुभ सूचना देनेवाला समझा जाता था।

इन शुभ लक्षणोंके सूचक होते हुए भी यह किसी समय किसी देशके विवित होनेका कारण माना जाता था। सन् ४०० ईसवीमें यह तारा कुस्तुनतुनियाके ऊपर उदय हुआ था और उसी समय उस नगरपर अनेक आपत्तियां आयीं। और जब सन १२०४ ई० में लैटिन लोगोंने उसे अपने अधिकारमें कर लिया था तब भी इन्हीं महाशयके दर्शन हुए थे। रोमकी अवनतिका कारण भी इसी ताराके दर्शनोंका फल कहा गया था। जोजेफ़सने लिखा है कि एक दीर्घ पुच्छल ताराके दर्शनके पश्चात् जेरूसलम पर टाइटसने आक्रमण किया था। जो लोग इनके बुरे परिणामकी सूचना देते थे वे दोनों ओरसे मज़ेमें रहते थे। यदि उसका असर बुरा हुआ तो वे लोग बड़े ज्योतिर्विद समझे जाते थे और यदि परिणाम उलटा हुआ तो कहते थे कि परमेश्वरने पश्चात्तापसे प्रसन्न होकर क्षमा कर दिया है। पूर्वकालमें इन तारोंका प्रभाव लोगोंको बहुत भयभीत करता था परन्तु आज कल भी अनेक मनुष्य इसके पक्षपाती हैं। इसबातका समर्थन होना कठिन नहीं है। सन १६०६ या १६१० के पुच्छल तारेके निकलनेसे भारतवर्षमें बहुतसे लोगोंने इसके विषयमें अनेक बातें लिखी थीं।

शि० वा० मिश्र

* * * * *

गिलहरी व प्लेग।

आजतक हम लोग यह समझे हुए थे, कि प्लेगकी उत्पत्ति एक मात्र चूहेसे है। प्लेग सर्व प्रथम मूषकराजके विवर प्रदेशमें आक्रमण करते हैं तदनतर उसके कीटाणु-रूपी मिसनरी (प्रचारक) निष्कामभावसे स्वधर्मपालनार्थ मनुष्य-

शरीरमें इसका प्रचार करते हैं। पर हालमें अमेरिकाके एक प्रसिद्ध, वैद्यकके आचार्य डाक्टर डरिकटी ह्वेलने वह आविष्कृत किया है कि गिलहरीभी एक प्रकारके प्लेगकी जनयित्रि है। यह प्लेग गिल्टीवाले प्लेगसे थोड़ा भिन्न है। इसके रोगोत्पादक कीटाणु व मामूली प्लेगके रोगोत्पादक कीटाणुओंमें थोड़ा अन्तर है। इनमें विषभी कम होता है। इस प्लेगके विषयमें एक बात यह कही जाती है कि कीटाणु इसका प्रचार नहीं कर सकते। गिलहरी स्वयं इसे फैलानेमें समर्थ है अन्यकोई नहीं। इसका आविष्कार इस प्रकार से हुआ। डाक्टर ह्वेल एक ऐसे रोगीको देख रहे थे जिसकी आंखें दुख रहीं थीं। उन्होंने उसके पलकोंके ऊपरकी हड्डीका भी निरीक्षण किया। उसमें उन्होंने गिलहरीसे उत्पन्न हुए प्लेगके कीटाणु पाए। उनका कहना है कि इस रोगका उल्लेख प्राचीन व अर्वाचीन किसीभी पुस्तकमें नहीं पाया जाता। गिलहरियोंके विषयमें संयुक्तराज्य अमेरिकाकी सरकारके स्वास्थ्यविभागने अपनी रिपोर्टमें जो उसने दिसम्बर १९१४में प्रकाशितकी है उक्त विभागके अध्यक्ष डाक्टर जे. ओ. लिअन की सम्मतिरूपसे लिखा है कि गिलहरी बहुत हानिकारक जीव है। इनका नाश करना स्वास्थ्यके लिए बहुतही लाभदायक है।

(मेडकल रेकर्ड, न्यूयार्क) हेमचन्द्र जोशी

विज्ञानपर सहयोगियोंकी सम्मति

गढ़वाली, गढ़वाल

विज्ञान—हिन्दी साहित्यमें विज्ञान संबंधी पत्रोंका आज तक सर्वथा अभाव था, किन्तु धन्यवाद है इलाहाबादकी "विज्ञान परिषद्" का जिसने हिन्दी साहित्यके इस अभावको मिटा दिया है। 'विज्ञान' वास्तवमें अपनी किस्मका एक ही पत्र है। इसमें विज्ञान संबंधी लेख बड़ी गवेषणा पूर्वक लिखे जाते हैं। इसके लेखक बड़े बड़े विद्वान हैं। इसके सम्पादक लाला सीताराम बी० ए० और हिन्दी-साहित्यकी प्रसिद्धि प्राप्त पं० श्रीधर पाठक हैं। बस इसीसे इस पत्रकी उपयोगिता समझी जा सकती है।

ब्रह्मचारी, ऋषिकुल हरिद्वार

विज्ञान—प्रयाग, इसने हिन्दीकी बड़ी भारी कमीको दूर किया है। नामसे ही विज्ञ पाठक समझ लेंगे कि आधुनिक विज्ञानके प्रचारकेलिये इसका जन्म है। ईश्वर हिन्दी पाठकोंको इसका आदर करने योग्य सुमति देवे।

प्रह्लाद, देहली।

विज्ञान—इलाहाबाद वैज्ञानिक सोसाइटीका हिन्दी मासिक पत्र है। लाला सीताराम बी. ए. एफ. ए. यू. और पण्डित श्रीधर पाठक इस पत्रके अवैतनिक सम्पादक हैं। पत्रमें रसायन विद्या शारीरिक, ज्योतिष् भौतिकी विद्याके अति उत्तम पायेके लेख होते हैं। लेख सुगम और सरल हिन्दीमें बड़ा मनोहर लिबास लिये होते हैं। हमारी सम्मतिमें पत्रने जातिकी एक बड़ी ज़रूरतको हल कर दिया है। बच्चों गृहस्थियों और सर्व साधारणको ऐसे पत्रोंसे विशेषतासे घना सम्बन्ध रखना चाहिये क्योंकि उनकी विद्याकी उन्नतिकेलिये एक मात्र यही उपयोगी और लाभकारी साधन होगा। लेख बहुत योग्य लेखनियोंसे निकलते हैं।

इस मासके पत्रमें डाक्टर P. C, Roy का लेख हिंदू रसायन शास्त्रका प्राचीनतत्व और S. P. Roy का पाचन यन्त्रका विकास "Evolution of Alementary appartus" बड़ी योग्यतासे लिखे हुए हैं। लेख एक एकसे उत्तम हैं। हम आशा करते हैं कि प्रत्येक भारतीय इस अद्वितीय पत्रका हृदयसे स्वागत करेगा।

शारदा (संस्कृत मासिक पत्रिका) प्रयाग।

विज्ञान-प्रयागीयैर्विद्वद्भिः स्थापिता "विज्ञान-परिषत्" नाम्नी संस्था शारदावाचकानां श्रुतिपथमागतैव भवेत्। तस्या एव परिषद इदं मुखपत्र मेषार्कात् प्रकाशयितुमारब्धम्। अस्य सम्पादकौ लाला सीताराम बी० ए०, श्रीधरपाठकश्च। एतौ महाभागौ परिचितौ हिन्दीवाचकानाम्। उभावपि सम्पादकौ कवी, अनयोः कवित्वं प्रसिद्धं हिन्दीरसिकेषु। साम्प्रतमनयोर्वैज्ञानिकता स्फुटीभविष्यति विद्वत्समाज इति विलोकयन्तः प्रसीदामः। अद्य यावत् तिस्रः संख्याः समधिगता विज्ञानस्य अत्र एम्. एस्. सी, बी. एस्-सी उपाधिभाजो विद्वांसो लिखन्ति। अत्र महोपकारिणो लेखा मुद्राप्यन्त इति निर्वशङ्कं वक्तव्यम्। एतेन पत्रेण महानुपकारो भविष्यति देशस्येति जनोऽयमभिमन्यते। महनीयोऽयं प्रयत्नःपरिषदः।

नव जीवन, इंदौर

हिन्दी भाषामें विज्ञान सम्बन्धी साहित्यका बड़ा अभाव है। हमें आशा है कि विज्ञान परिषद प्रयागके द्वारा यह अभाव अवश्य बहुत कुछ दूर हो जायगा। इस परिषदके सञ्चालक प्रसिद्ध मनन शील विद्वान हैं। "विज्ञानं" भी इसी परिषदका मुखपत्र है। गत ५, ६ माससे प्रकाशित हो रहा है। प्रत्येक संख्यामें महत्व पूर्ण वैज्ञानिक लेख प्रकाशित होते हैं। चित्र बना बनाकर कठिन बातोंको बड़ी सरलताके साथ समझाया जाता है। इसका आकार "नवजीवन" जैसा है और छपाई तथा कागज़ आदि भी अच्छे हैं। हम इस पत्रकी उन्नति हृदयसे चाहते हैं।

कार्य्य विवरण

विज्ञान परिषत्की ७ वीं साधारण सभाका अधिवेशन २५ सितम्बर सन् १९१५ को ५ बजे सायंकाल म्योर कालेजमें आरम्भ हुआ। महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा एम०ए० डि० लिट्० ने सभापतिका आसन ग्रहण किया। सभाके गत अधिवेशनका विवरण मंत्रीने सुनाया और वह सर्व सम्मतिसे स्वीकृत हुआ। श्री ब्रजराज बी० एस० सी० एल-एल० बी० के प्रस्ताव और श्री हीरालाल बी० एस० सी० के अनुमोदनपर (१) श्री ब्रह्मदीन सकसेना, महेवागंज लखीमपुर और (२) श्री सी० सी० देसाई स्टार टेक्नालाजिकल वर्क्स मतारडिस्ट्रिक्ट केरा, परिषद्के सभ्य और निम्नलिखित सज्जन परिसभ्य निर्वाचित हुए—

(१). पं० मदनमोहन वाजपेयी कलकत्ता।

(२). बा० भगवन्नारायण भार्गव, बी० ए० प्लीडर झांसी (३) श्री जगदम्बा प्रसाद बी० एस०-सी० प्रयाग (४) पं० गौरीशंकर मिश्र बी० ए० प्रयाग (५) मि० लक्ष्मी नारायण गुप्त, प्रयाग (६) पं० भैरोंप्रसाद तिवारी, प्रयाग (७) मि० चौधरी ध्यान सिंह प्रयाग (८) मि० आर० एल० विश्वकर्म्मा, प्रयाग (९) मि० महेश शरण, प्रयाग (१०) मि० विष्णुदत्त भार्गव, प्रयाग (११) मि० भवानी दत्त पंथ, प्रयाग (१२) मि० गणेशप्रसाद सेठ, प्रयाग (१३) मि० शीतल प्रसाद मोहिलजी प्रयाग (१४) बा० केदारनाथ गोयनका, कटर देहली (१५) ठाकुर अनिरुद्ध सिंह बड़ा बाज़ार कलकत्ता (१६) मि० डी० जी० डाडेकर, हाई स्कूल, कोटा (१७) मि० दुर्गाप्रसाद सिंह, टेकना, आज़मगढ़ (१८) पं० रामाधीन त्रिपाठी, बिलासपुर (१९) मि० मनीराम कपूर, कानपूर (२०) पं० शोभालाल शास्त्री, उदयपूर (२१) पं० बद्रीनारायण जोशी, नागपूर (२२) मि० रामप्रसाद अहीर, नागपूर (२३) बा० वासुदेव नारायण, मुज़फ्फ़रपूर (२४) मि० आत्मानन्द गुप्त, आगरा।

उसके बाद म्योर कालेज फ़िज़िकल सायंस थियेटरमें डा० अन्नदाप्रसाद सरकार, डी०

एस-सी० ने,डाक्टर एम एन मित्र हेल्थ आफि-सरके सभापतित्वमें, "नन्हे नन्हे दानव और उनसे बचनेके उपाय" पर अत्यंत मनोहर व्याख्यान दिया। आपने मैजिक लैन्टर्नद्वारा अनेक चित्र भी दिखलाये जिससे आपके व्याख्यानकी मनोहरता और भी बढ़ गयी। डा० मित्रने अत्यन्त सरल भाषामें बतलाया कि किस प्रकार मनुष्य इन दानवोंसे अपनी रक्षा कर सकता है। लाला सीताराम बी. ए. एफ. ए. यू. ने सभापति और व्याख्याताको परिषद्-की ओरसे धन्यवाद दिया। इसके अनन्तर सभा विसर्जित हुई।

* * * *

प्राप्ति स्वीकार

निम्नलिखित सज्जनोंके द्रव्य प्राप्तिको हम सहर्ष स्वीकार करते हैं।

१. माननीय, सी० सी० देसाई, मतार (नवं० १९१५—नवं० १९१६) १२)
२. डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा, बी. एस-सी, एम-बी., बी. एस., लखनऊ ३
३. „ बंसीधर लाल, सेलाना १)
४ „ गौरशङ्कर प्रसाद, बी. ए. एल-एल. बी. वकील, काशी ३)
५. अध्यापक श्याम नरायण, एम ए., कायस्थ पाठशाला, प्रयाग ४)
६. श्रीमान गणेशदत्त पाण्डेय, अनूपशहर ३)

योग २६)

गोपालस्वरूप भार्गव
कोषाध्यक्ष

* * *

NOTICE

As some of the Fellows have expressed their desire to retire from the Fellowships there will be a few vacancies for which Fellows of the Society can recommend their friends. They are, therefor, requested to send their names to the Secretary by the end of October, 1915.

Secretary.

विशेष सूचना ग्राहकों से निवेदन है कि पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक नम्बर अवश्य लिखें।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग २ } वृश्चिक, संवत् १९७२ । नवम्बर सन् १९१५ । { संख्या २

मङ्गलाचरण

जिसने प्रति अंडाणु बीच ब्रह्मांड बनाया,
अणु अणुसे जिसने निजमुख स्वचरित कहलाया,
रक्त-स्रोतमें अखिल विश्वका दृश्य दिखाया,
देवासुर संग्राम प्रतिक्षण जहां कराया,
उस पराशक्तिके विविधविधि पेखन देखनहार जय,
विज्ञान अ-नाथ अ-कर्तृ अज प्रकृति-परेखनहार जय ।

सेवकाश्रम, देहरादून । ५-७-७२ —रामदास गौड़

निवेदन

विज्ञ पाठकोंने 'विज्ञानके' गत अंकोंमें कई त्रुटियां और भूलें देखी होंगी–कई स्थानों-पर चित्र उलटे छप गये हैं, कहीं कहीं भाषा सम्बन्धी अशुद्धियां रह गयी हैं, और छापेकी अशुद्धियां भी बहुतसी देखनेमें आती हैं । पाठक जानते हैं कि अभी हिन्दीमें मुद्रणका काम सुन्दर और यथोचित रीतिसे करनेवाले प्रेसोंका अभाव है । विशेषतः विज्ञान जैसे विषयके पत्रका सम्पादन और मुद्रण तो हिन्दी भाषाकेलिए सब प्रकार नयी बात है। यही कारण है कि बहुतसी अशुद्धियां मुख्यतः प्रेसकी असावधानी अथवा अनुभव-शून्यताके कारण रह गयी हैं। निःसन्देह पत्रसंचालक भी कुछ अशुद्धियोंकेलिए उत्तरदायी हैं। हम इसकेलिए क्षमा प्रार्थी हैं और इतना कह देना आवश्यक समझते हैं कि विषय सम्बन्धी कोई अशुद्धि जहां तक हमें ज्ञान है 'विज्ञानमें' अबतक नहीं हुई है। त्रुटियोंकी तालिका अन्तिम पृष्ठ पर पायी जायगी। हम अपने प्रिय पाठकोंको सविनय विश्वास दिलाते हैं कि अतः परम् 'विज्ञानमें' यथासंभव किसी प्रकारकी त्रुटिका अवसर न दिया जायगा। ऐसे कार्योंकी प्रारंभिक स्थितिमें विघ्न प्रायः अनिवार्य होते हैं–परन्तु कार्यकर्ताओंके अदम्य अध्यवसाय और सहायकोंके निश्चल प्रेमसे क्रमशः सब

विघ्न विलीयमान हो जाते हैं। आशा है पाठक गण इस महत्कार्यको सब भांति अपना ही जान इसकी आरंभिक त्रुटियोंसे हताश वा क्षुब्ध न होंगे। उनकी सेवामें यह निवेदन करना अनावश्यक है कि विज्ञान वह साधन है कि जिसके द्वारा अनतिदूर भविष्यमें ही हमारे भारतवर्षका सच्चा कायापलट अवश्यंभावि है, जिससे घर घर और दर दर सकल प्रकारका सुख सौभाग्य सदाकेलिए दास्यभावसे समुपस्थित होगा—अतः इस पत्रमें इस समय योग देना परम आवश्यक ही नहीं, परम पुण्यका कार्य है।

हिन्दू रसायनशास्त्रका प्राचीनत्व*

[ले० डाक्टर प्रफुल्लचंद्रराय डी. एस-सी.]

(गताङ्कसे सम्मिलित)

हिन्दुओंके रसायन साहित्यमें जिन क्रियाओंका कथन है उन सबके वर्णनसे लेख बहुत बड़ा हो जायगा। अतः मैं औषध बनानेकी रीति और धातुवाद इन्हीं दो विषयोंकी आलोचना करता हूं।

खार बनाना।

उद्भिदोंकी राख जलमें घोलकर और छानकर उसमें जली हुई कौड़ियोंका चूना मिलानेसे तीखा खार बनानेकी रीति विज्ञान-सम्मत है। सुश्रुतमें 'मृदु' और 'तीक्ष्ण' खारोंका वर्णन है। वस्तुतः यह प्रणाली इतनी विज्ञान-सम्मत है कि आधुनिक रसायन सम्बन्धी किसी पुस्तकमें हम इसे ज्योंकी त्यों उठाकर रख सकते हैं। सुविख्यात फ़रासीसी रासायनिक बार्थेलो मेरी लिखी हुई हिन्दू रसायनके इतिहासकी समालोचना करते समय इस पद्धतिकी वैज्ञानिकता और मौलिकताके दर्शनपर इतने मुग्ध हो गये थे कि इन्हें भ्रम हो गया था कि सुश्रुतका यह अंश भारतवर्षमें युरोपवासियोंके संसर्ग होनेके बाद लिखा गया होगा। किन्तु चूना मिलाकर मृदुक्षारको तीक्ष्णक्षारमें परिणत करनेकी प्रणाली वाग्भट्ट और चक्रपाणिमें भी दी हुई है। इसके अतिरिक्त यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि यह प्रणाली युरोपीय रासायनिकोंसे नहीं ली गयी है। 'मिलिन्द-प्रश्न' नामक पालीग्रंथके पाठ करनेसे जान पड़ता है कि प्राचीनभारतमें तीक्ष्णक्षार द्वारा दुरारोग्य समस्त क्षतोंके जलानेकी प्रणाली प्रचलित थी।

हिन्दुओंने धातुओंसे बने हुए पदार्थोंके प्रस्तुत करनेमें जो अद्भुत निपुणता प्राप्तकी थी दिल्लीमें कुतुबमीनारके पासवाला लोहेका स्तम्भ (पृथ्वीराजकी कीली) उसका उत्कृष्ट प्रमाण है। इस लौह-स्तंभके बृहत आकारने रासायनिकोंको बहुत दिनोंतक चक्करमें डाल रक्खा था। इस संबंधमें रास्को और शार्लिमारने लिखा है "वर्त्तमान कालके बृहत यंत्रादिकोंकी सहायतासे भी इसप्रकारका स्तंभ बनाना सहज काम नहीं है। हिन्दुओंने केवल हाथके बलसे इसे कैसे बना डाला यह हमलोगोंकी समझमें नहीं आता"।

उच्च कक्षाके एक और रासायनिकने कहा है "उस समयमें इस प्रकारका बृहदायतन लौह-स्तंभ प्रस्तुत करनेमें उपयोगी यंत्रोंका कैसा अभाव था इसकी विवेचना करनेसे ही पता चलता है कि उस समयके कारीगर भरने और ढालनेके काममें कितने निपुण थे। सन् १८५१ ई० में युरोप और अमेरिकाके समस्त लोहेके कारखाने मिलकर भी इस प्रकारका विशाल लौह-स्तंभ प्रस्तुत कर सकते थे कि नहीं यह संदेहजनक है"।

लोहेके विषयमें पारदर्शी राबर्ट हेडफ़ील्डने प्राचीन भारतके लोहा प्रस्तुत करनेके विषयपर

---

* 'प्रवासी' से अनुवादित।

गवेषणा कर यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि हिन्दू ही इस विषयमें अग्रगामी थे।

सुश्रुतसे रसरत्नसमुच्चय पर्य्यन्त ग्रंथोंमें छै धातुओंका उल्लेख दिखायी पड़ता है। इन छै धातुओंके नाम सोना, चांदी, रांगा, सीसा, तांबा और लोहा हैं। शेषोक्त ग्रंथोंमें पीतल और कांसा मिश्र-धातु गिने गये हैं। राजा मदनलाल कृत चिकित्सा विषयक अभिधानमें सबसे पहले १३७४ ई० में जस्तेका उल्लेख दिखायी पड़ता है।

हिन्दुओंने पहले रसक (calamine) से

चित्र नं० १
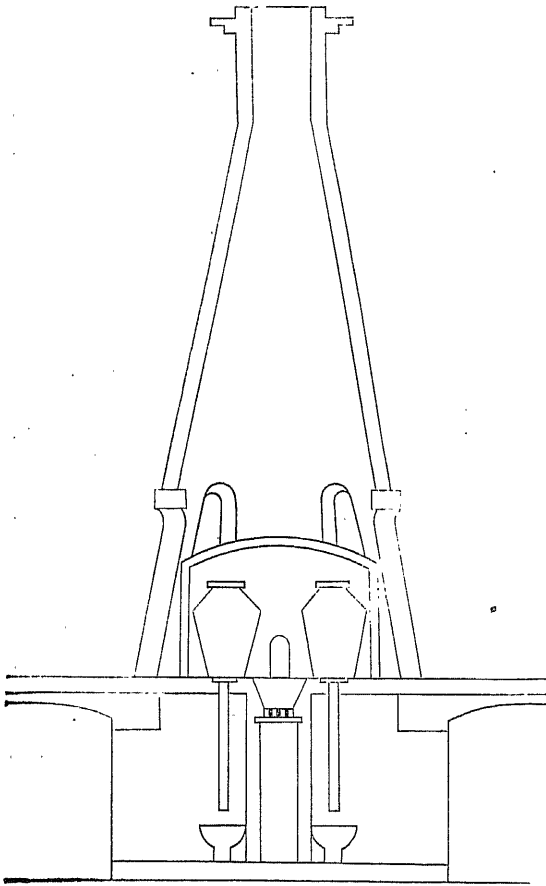
जस्ता प्रस्तुत करनेकी अर्वाचीन प्रणाली

जस्ता प्रस्तुत किया था। प्यारासेल्सने जस्तेका उल्लेख तो अवश्य किया है किन्तु उन्हें इसकी प्रकृतिके संबंधमें स्पष्ट धारणा थी कि नहीं यह संदेह जनक है। उनका कथन है कि जस्ता आघातोंको नहीं सह सकता। रसार्णव तंत्रमें जस्ता प्रस्तुत करनेकी प्रणाली वर्णित है। चौदहवीं शताब्दीके पहले लिखे हुए रसरत्न समुच्चय नामक पुस्तकमें जस्ता तैयार करनेकी जो पद्धति वर्णित है वह आजकलकी पाठ्य पुस्तकोंमें दी हुई पद्धतिके बिलकुल अनुरूप है। नवीन युरोपीय प्रणाली और प्राचीन हिन्दू प्रणालीके चित्र दिये जाते हैं। दोनों प्रणालियोंका मूल एक है। इस प्रणालीका प्राचीन शास्त्रोक्त नाम अधःपातन और अंग्रेज़ी पुस्तोक्त नाम (distillatio per descensum) एकार्थ वाचक हैं।

चित्र नं० २
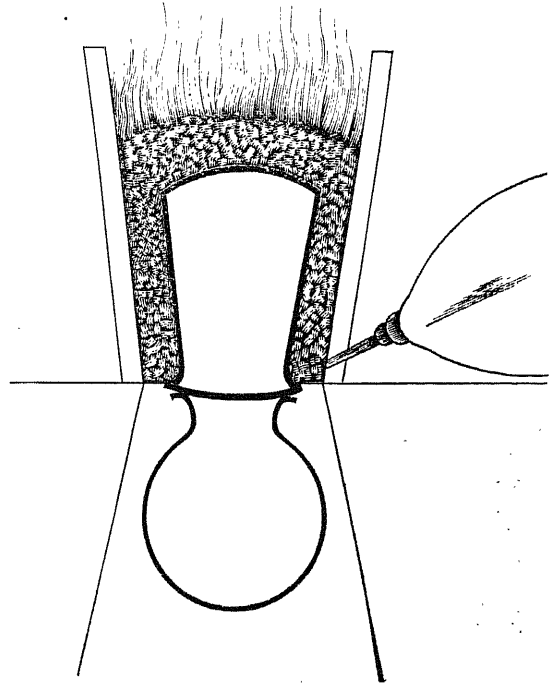
जस्ता प्रस्तुत करनेकी प्राचीन प्रणाली

दोनों प्रणालियोंमें एक ढके हुए पात्रके

बीचमें रसक और ओषजनहारी कोई पदार्थ (अंग्रेज़ी प्रक्रियाके अनुसार कोयला एवं हिन्दू प्रक्रियाके अनुसार गुड़, लाख, सोहागा इत्यादि) रखकर खूब गरम करते हैं। कुछ क्षणके बाद जस्ता बाहर निकल कर अधिक तापके कारण भाफ बन जाता है और पात्रके नीचे एक छिद्र-में होकर एक दूसरे शीतल पात्रमें जा गिरता है और वहां जमकर कठिन जस्तेके रूपमें परिणत हो जाता है।

यद्वा जलयुतां स्थालीं निषणेत् कोष्ठिकोदरे।
सच्छिद्रं तन्मुखे मल्लं तन्मुखेऽधो मुखं क्षिपेत्॥
मुखोपरि शिखित्रांश्च प्रक्षिप्य प्रधमेद्दृढम्।
पतितं स्थालिका नीरे सत्वमादाय योजयेत्॥
(रसरत्नसमुच्चय, २ अध्याय
१६५-१६६ श्लोक)

आजकल हम जानते हैं कि इस प्रक्रियामें प्रथम कर्बन एकाम्लजिद् गैस (carbon monoxide) निकलकर जलने लगता है, इस कारण इस ज्वालाकी शिखाका रंग नीला दिखलायी पड़ता है। प्राचीन हिन्दुओंने इस व्यापारका पर्य्यवेक्षण कर लिया था-चाहे वे इसका कारण न भी जानते हों। रसरत्न समुच्चयमें स्पष्ट लिखा है "खर्परे प्रहृते ज्वाला भवेन्नीला सिता यदि"।

तंत्रोंका कालनिर्धारण करनेमें बहुत यत्न और विवेचनाकी आवश्यकता है। इस विषय-की गवेषणा करते समय निष्पक्ष होना उचित है तथा हर्बर्ट स्पेंसरने जिसे देशभक्ति जन्य पक्षपात 'bias of patriotism' कहा है उससे भी अलग रहना उचित ही है। इस संबंधकी पुस्तकोंके रचियताओंको ध्यान रखना चाहिए कि वे इतिहास लिख रहे हैं काल्पनिक उपन्यास नहीं। अपने प्रणीत हिन्दू रसायन शास्त्रके इतिहासकी सामग्री एकत्रित करते समय मैंने इस धातुक्रिया नामक पुस्तक-की दो प्रतियां देखी थीं-एक पुस्तक अलवर महाराजके पुस्तकागारसे मिली थी और दूसरी काशीसे। इन दोनों पुस्तकोंमें परस्पर बहुत कुछ समानता दिखलायी पड़ी। दोनों पोथियां प्राचीन रुद्रयामल तंत्रकी अङ्गीभूत कही जाती हैं। मैंने बड़े ध्यानके साथ इस ग्रंथ-का पाठ किया है।

आप लोगोंको मालूम है कि यह बात बहुतही प्रसिद्ध है कि अधिकांश तंत्रग्रंथ शिव पार्वतीके संवाद रूपमें रचे गये हैं। अतः विश्वासी हिन्दु-ओंके निकट इनमें कोई भूल नहीं हो सकती। किन्तु इस धातुक्रिया ग्रंथके पाठ करनेपर मुझे मालूम हुआ कि इसके अंतके कई अंश अपेक्षाकृत आधुनिक हैं। मैं इनकी आधुनिकता-का एक दृष्टांत देता हूं। इसमें फ़िरंगरोग (syphlis) की चिकित्सा विषयक उल्लेख है। पोर्तुगीज़ियोंके गोआ उपनिवेश बसानेके बाद ही भारतवर्षमें फ़िरंग रोगका आविर्भाव हुआ है। अतः धातुक्रिया सोलहवीं अथवा सत्रहवीं शताब्दीके पूर्वकी लिखी हुई नहीं है। इससे उस समयके भारतवर्षके अनेक संवाद मिल सकते हैं।

चिकित्सा और औषध बनानेकी विद्यामें अरबवासी हिन्दुओंके निकट कितने ऋणी हैं इसका वर्णन मेरी लिखी हुई 'हिन्दूरसायन शास्त्रका इतिहास' नामक पुस्तकमें विशद रूपसे किया गया है। सच तो यह है कि अरबवासी भारतवर्षकी बहु युग संचित ज्ञानराशिको युरोप ले गये।

हिन्दुओंका परमाणुवाद।

वैशेषिक दर्शनके परमाणुवाद विषयमें जो कुछ लिखा है उस संबंधमें केवल दो चार बातें लिखकर इस क्षुद्र प्रबंधका उपसंहार करूंगा। एम्पोडाक्लिस, एनाक्सागोरास, डिमोक्रिटास प्रभृति ग्रीक दार्शनिकोंके परमाणुवादके साथ हिन्दुओंके परमाणुवादमें कुछ सादृश्य है इसमें तो कोई सन्देह नहीं, पर यह सादृश्य यथार्थ-सादृश्य नहीं, वाह्य सादृश्य मात्र ही है।

कणादका शब्द-विस्तार-विषयक मत आधुनिक विज्ञान-सम्मत है। इसका पाठ करनेसे एकाएक विस्मय और हर्षका उद्रेक होता है। नीचे इसके एक अंशका अनुवाद उद्धृत है—

एक स्थानमें उत्पन्न हुआ शब्द जो दूसरे स्थानमें सुनायी पड़ता है इसका कारण अनुसंधान करनेसे देखा जाता है कि शब्द किसी एक केन्द्रसे निकलकर तरङ्गाकारमें चारों दिशाओंमें फैल जाता है। प्रथम और मध्यवर्ती तरङ्ग समूहोंको हम नहीं सुन पाते। जो तरंगें शेष रह जाती हैं केवल उन्हींका हमारे कानोंके साथ संस्पर्श होता है। हम उन्हींको सुन पाते हैं। अतः "मैंने ढोलक सुनी है" ऐसा कहना सम्पूर्ण रूपसे शुद्ध नहीं है।

कणादने कहा है कि उत्ताप और आलोक एकही पदार्थके भिन्न भिन्न आकार हैं। चरकने जल, शब्द और प्रकाशकी गतिके विषयका उल्लेख किया है। चक्रपाणिके मतमें शब्द तरंग जल तरङ्गकी अपेक्षा द्रुततर वेगसे एवं आलोक रश्मिकी अपेक्षा मन्दतर वेगसे विस्तार लाभ करता है।

उपरोक्त घटनाओंसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन भारतमें विज्ञानकी समधिक आलोचना होती थी, एवं वैज्ञानिक परीक्षाओंद्वारा नये नये तथ्योंका आविष्कार होता था। ज्ञानानुशीलन यथार्थ तपस्याके समान गिना जाता था। छात्रगण किस प्रकारसे यत्न शील थे यह नागार्जुन प्रणीत रसरत्नाकर ग्रन्थमें रसायनकी अधिष्ठात्री देवीकी निम्नोद्धृत-प्रार्थना पाठ करनेपर जाना जा सकता है—

द्वादशानि च वर्षाणि महाक्लेशः कृतोमया।
यदि तुष्टोसि मे देवि सर्वदा भक्तिवत्सले।
दुर्लभं त्रिषुलोकेषु रसबंधं ददस्वमे।

"मैंने बारह वर्षतक कठोर परिश्रम किया है। हे देवि! यदि आप संतुष्ट हैं, तो मुझे तीनों लोकोंमें दुर्लभ रसायन ज्ञान प्रदान कीजिये।"

हिन्दूजाति अतीत गौरव मंडित है। इस जातिकी अंतः शक्ति अति विशाल है। अतः आशा की जाती है कि इसका भविष्यत अधिकतर गौरवसे देदीप्यमान होगा। मैंने इस प्रबंधमें जो सब कथाएं लिखी हैं, उनके द्वारा यदि हमारे स्वदेशवासीगण मानवीय ज्ञानके राज्यमें अपना पूर्व स्थान फिरसे प्राप्त करनेकी चेष्टामें उत्साहित होंगे, तो मेरा श्रम सफल होगा।

भोजन विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय., एम. बी., एम. आर.सी. एस.]

मनुष्यकी पाचन क्रियाका सविस्तार वर्णन
(गताङ्कसे आगे)

३—छोटी अंतड़ियोंमें पाचन।

छोटी आंत भिन्न भिन्न लम्बाइयोंकी एक मांसल (muscular) और लचीली नली है। यह नली आमाशय या पेटके अंतसे प्रारंभ होती है। कुंडली या घरकी बिनी हुई ऐंड़दार डलियोंके समान आकारवाली बहुतस कुंडलिकाओंमें लपेटी हुई यह नली पेड़ूमें रक्खी हुई है। इस नलीके आरंभमें ही उसके समीपस्थ दो थैलोंके—यकृत् और पैंक्रियासके—महा निगूढ़ रूपसे मिश्रित रस गिरते हैं।

इस स्थान पर प्रकृतिका एक विलक्षण प्रबंध देखनेको मिलता है। जिस समय आमाशयसे भोजनकी लुगदी चाइम छोटी आंतमें आती है पैंक्रियाटिक रस उसका स्वागत करता हुआ उसे पहलेसे ही वहां विराजमान मिलता है। इस विलक्षण विधानका कारण गैस्ट्रिक रस ही है। गैस्ट्रिक रसमें भोजनपर अपनी क्रिया करनेके अतिरिक्त पैंक्रियासको रस टपकानेकी उत्तेजना देनेकी शक्ति भी रहती है।

[Medical वैद्यक]

हम जानते ही हैं कि मुखमें भोजनके आते ही पेटमें गैस्ट्रिक रस निकलने लगता है। इस सादृश्यपर विचार करनेसे हमें उपरोक्त विलक्षणतामें कोई आश्चर्य्य नहीं देख पड़ता।

प्रकृति सब वस्तुओंमें एक समान ही नियमका पालन करती है। अतः हम युक्ति पूर्वक इस बातका अनुमानकर सकते हैं कि वह अपनी व्यवस्थाको न्याय और तर्ककी अकाट्य सीमा तक पहुंचानेकेलिए इस बातका प्रबंध करेगी कि पचानेवाली इस विशाल फ़ैक्टरीके किसी भागमें भोजनके उपस्थित होते ही दूसरे भागमें जहां भोजन जानेकी बारी है आवश्यक रसोंके निकलनेकी उत्तेजना स्वयमेव पहुंच जाये।

इस प्रकार पैंक्रियाटिक रसके टपकनेमें उत्तेजना मिलती है और तेज़ाबके समान गुणवाले चाइम तथा पेटकी मुलायम झिल्ली म्यूकस मेम्ब्रेनकी उत्तेजनाके कारण इच्छाके न होते हुए भी परावर्तित प्रक्रियाएं (reflex action) प्रारंभ हो जाती हैं*।

अतः ज्योंही आमाशयके अन्तर्गत पदार्थोंमें नमकके तेज़ाबका दर्शन होता है पैन्क्रियाटिक रसका टपकना प्रारंभ हो जाता है। पैन्क्रियाटिक रस, छोटी अंतड़ियोंके रस तथा यकृतसे निकलनेवाले रस पित्त (bile) की सहायतासे सब प्रकारके भोज्य पदार्थोंपर—मांड, प्रोटीड और चर्बीपर भी आक्रमण करता है।

छोटी अंतड़ियोंमें पाचनका सारांश यह है-

(क) मांडका शकरमें परिवर्तन होना। यह क्रिया मुखसे प्रारंभ हुई थी और आमाशयमें भी जारी रही थी। अंतड़ियोंमें आकर यह क्रिया बड़ी तीव्रताके साथ पूरी होती है। कच्चे तथा पकाये हुए मांडका सम्यक् पाचन यहीं होता है। जितना मांड खाया जाता है उसका आधा भाग तो माल्टोस नामकी एक प्रकारके फलोंकी शकरमें परिवर्तित हो जाता है और आधा भाग उन्हीं तत्वोंके जिनसे मांड बनता है मांडके समान ही प्रमाणोंमें मिलकर बना हुआ एक पदार्थ जिसे डेक्स्ट्रिन कहते हैं बन जाता है। डेक्स्ट्रिन रवेदार होता है, मांडके समान लपसीदार नहीं और पानीमें घुल जाता है।

(ख) चर्बीका एक बहुत ही बारीक और उत्तम तथा चिरस्थायी इमल्शन-स्काट साहेबके मछलीके तेलके इमल्शनकी तरह-बन जाता है। जिस यन्त्रसे यह इमल्शन बनता है उसकी रचना बड़ी ही मनोहारिणी है।

यदि साधारण ताज़ी चर्बी जिसमें तेज़ाब, या अम्लोंका लेश भी न हो किसी घुलेहुए अम्लके पानीमें हिलायी जाय तो उसपर अम्लका कोई भी असर नहीं होता। पर यदि चर्बीमें कुछ भी चर्बीके तेज़ाबोंका* अंश हो, तो वह अम्ल युक्त जलमें मिलाने और हिलानेसे तुरंतही इमल्शन बन जाती है। यदि चर्बी बासी होजाय तो उसमें एक प्रकारकी सड़ाइंद प्रारंभ हो जाती है, और चर्बीके तेज़ाब चर्बीसे पृथक् होने लगते हैं।

पैंक्रियाटिक रसमें एक प्रकारका विशेष ख़मीर, स्वल्प मात्राओंमें, रहता है। सबसे पहले यह रस इस ख़मीरके द्वारा थोड़ी सी चर्बीको ग्लिसरीन और चर्बीके तेज़ाबमें विभक्त कर देता है। इस प्रकारसे चर्बीमें जब उसके तेज़ाबका कुछ अंश आ मिलता है तो पैन्क्रियाटिक रस, यकृतसे निकलनेवाला रस पित्त और अंतड़ियोंके रसमें मिले हुए अम्ल, चरबीका इमल्शन बड़ी शीघ्रतासे तैयार कर देते हैं। अंतड़ियोंकी म्यूकसमेम्ब्रेन नामवाली मुलायम झिल्ली सूक्ष्मदर्शी यन्त्रोंसे ही देख पड़नेवाले बहुत छोटे छोटे

* मनुष्यकी क्रियाएं दो विभागोंमें बांटी जा सकती हैं, एक ऐच्छिक (voluntary) और दूसरी परावर्तित (reflex)। जब हमारा हाथ किसी वस्तुके उठानेकी इच्छासे उठता है तो ऐच्छिक क्रिया होती है। सोते समय अज्ञानावस्थामें किसी सङ्कटके समय एकाएक हाथ उठजानेकी क्रिया परावर्तित है।

* वे तेज़ाब जो चिकने पदार्थोंसे निकलते हैं।

कोषोंसे बनी है। इन कोषोंको अंतड़ियोंके इपोथीलियम (epithelium) कहते हैं। उपर्युक्त विधिसे तैय्यार हुआ इमल्शन इन कोषोंके ग्रहण करने योग्य बन जाता है। इन कोषोंसे निकल कर धातुप या अन्नरस बहानेवाले यंत्रोंमें यह इमल्शन पहुंचता है।

अन्नरस बहानेवाले यंत्रकी रचना शुद्ध और अशुद्ध रुधिरवाहक यंत्रोंकी रचनासे भिन्न है। वह द्रव पोष्य पदार्थोंको पाचन नलिकासे ले जाकर रुधिरवाहक यंत्रके एक भागमें जहां नसोंमें बहनेवाला अशुद्ध रुधिर इकट्ठा रहता है, पहुंचा देता है। इस प्रकारसे अन्नरस पाचन नलिकासे निकलते समय एक अद्भुत, दुर्बोध और आश्चर्य्यमय विधानसे कच्चे,अशुद्ध रुधिरमें परिवर्तित हो जाता है। इसके अनंतर वह शरीर पोषण योग्य शुद्ध रुधिरके स्वरूपमें आ-जाता है।

(ग) वे प्रोटीड जो आमाशयमें पचनेसे बचगये हैं, यहां आकर पेप्टोस बनजाते हैं।

(घ) जो कुछ दूध आमाशयसे ज्योंका त्यों चला आया है यहां आकर जम जायगा। पैंक्रियाटिक जूसका एक ख़मीर जिसे प्रोटियोलिटिक फ़र्मेन्ट (proteolytic ferment) कहते हैं, दहीके समान जमेहुए दूधके थक्केको पचा देता है।

४—बड़ी अंतड़ियोंमें पाचन

बड़ी आंतमें वास्तविक पाचन बहुतही कम होता है। इसका मुख्य व्यापार तरल पदार्थोंका खपाना ही है। पाचन नलिकाके स्नायु बिना किसी प्रकारकी इच्छाके सहज ही भोजनको यथा समय आगे ढकेलते जाते हैं। इस क्रियाको अंग्रेज़ीमें पेरिस्टैल्टिक क्रिया (peristaltic action) कहते हैं। अन्नरसका जो तरल भाग रुधिरमें मिल सकता है और जिसे छोटी अंतड़ियोंने ग्रहण नहीं किया, बड़ी अंतड़ियां उसे सोख लेती हैं। पेरिस्टैल्टिक क्रिया द्वारा अन्नरसके इस प्रकार आगे बढ़नेसे उसका तरल भाग खपता जाता है, बचा हुआ अग्राह्य रस गाढ़ा होता जाता है।

प्रयोगोंसे इस बातका पता चला है कि बड़ी आंतमें रस खपानेकी शक्ति बहुत बड़ी है। केवल साग पातके रेशोंमें मिलनेवाला सिल्यूलोस (cellulose) ही एक ऐसा पदार्थ है जिसका विशेष परिवर्तन केवल बड़ी आंतोंमें ही होता है। सेल्यूलोस अबतक सब स्थानोंसे ज्योंका त्यों चला आता है। कहीं भी उसपर कोई आक्रमण नहीं करता। बड़ी अतड़ियोंमें आते ही वहांके रहनेवाले एक प्रकारके कृमि या बैक्टीरिया (bacteria) उसका एक पाचन विशेष कर डालते हैं। २४ घंटेमें निकम्मे पदार्थों या बचेहुए फ़ुज़लाका मान लगभग १७० ग्रामके होता है। फ़ुज़लेमें निम्न लिखित द्रव्य मिले रहते हैं—

१. भोजनसे प्राप्त हुए पदार्थ—पाशविक या वानस्पतिक द्रव्योंकी खोभी या तलछट, जो पाचन नलिकामें पच तो गयी है, पर जिसकी खपत कहीं न हो सकी। नीचे लिखे पदार्थ इस प्रकारके होते हैं—

(क) कुपाच्य पदार्थ—वे पदार्थ जो हज़म नहीं हो सकते।

(ख) वे पदार्थ जो पूरी तरहसे चबाये नहीं गये हैं।

(ग) वे पदार्थ जो बहुत बड़ी मात्रामें खाये गये हैं।

२. अंतड़ियोंकी नलीसे प्राप्त द्रव्य जिनकी रचना शरीर पोषणकेलिए हो चुकी है या जो पहलेसे हो वहां विद्यमान हैं, जैसे रुधिरके लाल कोष, सफ़ेद कोष, छोटे छोटे कोष या एपीथीलियम (epithelium)।

३. रङ्ग देनेवाले द्रव्य जिनमें यातो (क) पित्त या बाइलसे बने हुए पदार्थ मिले हुए रहते हैं अथवा जिनमें (ख) भोजनमें

मिलनेवाले लोहा और गंधकसे मिलकर बना हुआ काला लौह गंधिक (iron sulphide) या रुधिरके लाल कोषोंमें लाल रङ्ग देनेवाले पदार्थ हेमोग्लोबिन (hemoglobin) का संबंधी हेमेटिन (hematin) नामक एक भूरा गेहुआं पदार्थ शामिल रहता है।

४. खमीर उठने और सड़नेके कारण पैदा हुए पदार्थ।

५. वहुत ही सूक्ष्म गोल गोल विन्दुके आकारवाले जीव जिन्हें माइक्रोकोकाई (micro cocci) कहते हैं अथवा वैक्टीरिया नाम वाले लम्बे सूक्ष्म कृमि। वीट या फुज़लामें इनका बहुत बड़ा भाग होता है।

मनुष्यकी पाचन क्रियाके उपर्युक्त वर्णनमें मैंने इच्छापूर्वक पाचक विभागोंके भिन्न भिन्न अवयवोंका शरीरव्यवच्छेद शास्त्रके (anatomy) अनुसार विस्तृत वर्णन नहीं किया है। शरीरव्यवच्छेद विद्या विषयक लम्बे लम्बे विचार पाठकोंको चकरा देते और पाचन प्रणालीके सुवोध ज्ञानमें वाधाएं डाल देते।

गैलिलियो।

[ले० अध्यापक गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी. एस-सी.]

ईसाकी सोलहवीं शताब्दीके आरम्भसे यूरोपके इतिहासमें एक नया युग आरम्भ हुआ। विद्याके पुनरुत्थान ने 'मध्ययुग' के अंधकारका नाशकर वर्त्तमान युगकी अतुलित सुख समृद्धिका मार्ग खोल दिया। जिन महापुरुषोंने इस मार्गको प्रशस्त करनेमें अपना जीवन बिताया उनमेंसे गैलिलियोका नाम वैज्ञानिक संसारमें बड़े आदरके साथ लिया जाता है।

इटाली देशके टसकनी प्रान्तके अन्तर्गत फ़्लोरेन्स और पिसा नामक दो प्रख्यात नगर हैं। गैलिलियोके मातापिता फ़्लोरेन्सके निवासी थे। एक समय वे किसी कार्यवश पिसा गए हुए थे। वहीं ता० १८ फ़रवरी सन् १५६४ ई० को गैलिलियोका जन्म हुआ। पिताका नाम विन्सेञ्ज़ो था। वे सुशिक्षित किन्तु धनहीन थे। यद्यपि उनका विचार अपने पुत्रको बज़ाज़ीके धन्धेमें लगानेका था तथापि अनेक कठिनाइयोंको झेलकर भी उन्होंने उसे उचित शिक्षा देना अपना कर्त्तव्य समझा। सन् १५८१ ई० में स्कूलकी शिक्षा समाप्त होनेपर, डाक्टरी पढ़नेकेलिए गैलिलियो पिसाके विश्वविद्यालयमें भरतीकर दिये गये।

सन् १५८३ में एक दिन संध्याके समय गैलिलियो पिसाके कथीड्रल (गिरजाघर) में थे। वहीं एक महत्वपूर्ण घटना हुई। छतसे लटकता हुआ वहांका भारी लैम्प (दीपक) जलाये जानेकेलिए एक ओर थोड़ासा खींचा गया था। इसीसे वह झूलने लगा था। झूलते हुए अथवा झोका खाते हुए उस लैम्पपर गैलिलियोकी दृष्टि पड़ी। उसीको वे टकटकी लगाये कुछ देर देखते रहे। उन्होंने अनुमान किया कि प्रत्येक झोकेमें समय ठीक उतना ही लगता है। इस बातकी जाँच घड़ीकी सहायतासे सहल ही में हो सकती थी। किन्तु उन दिनों आजकल कीसी घड़ियाँ बनी ही न थीं। उस समय उन्होंने अपनी नाड़ीपर उँगली रखकर यह गिन लिया कि एक झोकेमें वह कितनी दफ़े चलती है। जब झोके बहुत धीमे हो गये तब भी एक झोकेमें उतनी ही देर लगती पायी गयी जितनी कि पहलेवाले बड़े झोकोंमें लगा करती थी। इसी प्रकार गणित अथवा यंत्रशास्त्र सम्बन्धी एक नये नियमका आविष्कार हुआ।

किसी आधारसे लटकते हुए भारका नाम लोलक या पेंडुलम है। लोलक सम्बन्धी उपर्युक्त नियमके ज्ञानके पश्चात् उसकी उपयोगिता

समयके अंशोंको नापने अथवा घड़ी बनानेमें, स्पष्ट ही है। किन्तु उस समय गैलिलियो डाकृरी पढ़ रहे थे। उनका ध्यान रोग तथा रोगियोंकी ओर था। आवश्यकता थी रोगियोंकी नाड़ियोंका वेग जाननेकी। अतएव इस कार्यकेलिए लोलकका उपयोग शीघ्र ही होने लगा।। घड़ी अभी नहीं बनायी गयी। उसके बनानेका प्रयत्न उन्होंने अपने जीवनके अन्तिम वर्षमें किया।

उस्टिलियो रिक्सी नामक एक व्यक्ति उस समयके अच्छे गणितज्ञ थे। गैलिलियोके पिता विन्सेञ्जोसे उनकी बहुत पुरानी मित्रता थी। अतएव वे गैलिलियोसे भी परिचित थे। एक दिन वे ज्यामिति-विषयक व्याख्यान दे रहे थे। वह व्याख्यान गैलिलियोने सुना। उसका प्रभाव उनके चित्तपर ऐसा पड़ा कि वे तुरन्त रिक्सीके शिष्य बन गये और अपने अवकाशके समय ज्यामितिका अध्ययन करने लगे। यह विद्या मानो उनकी मानसिक प्रवृत्तिके अनुकूल थी। उसमें उन्होंने बड़ी शीघ्रतासे उन्नतिकी, किन्तु धीरे धीरे डाकृरीके ग्रंथोंके स्थानमें युक्लिदस तथा अर्कमीदिसके गणित विषयक ग्रंथोंने अपना अधिकार जमा लिया। जब पिता विन्सेञ्जोने यह समाचार सुना तब पहले तो ये खिन्न हुए किन्तु फिर, कुछ सोच विचार कर, उन्होंने पुत्रको अपनी साहजिक मनोवृत्तिके अनुकूल कार्य करनेकी अनुमति दे दी। अतएव, डिग्री प्राप्त करनेके पूर्व ही, सन् १५८५ ई० में गैलिलियोने विश्वविद्यालय छोड़ दिया।

इसके कुछ काल पश्चात् उन्होंने एक विशेष प्रकारकी तराजू बनायी जिसका उपयोग जलस्थित पदार्थोंके विज्ञानमें होता है। इस 'जलतुला' के कारण उनकी ख्याति इटाली देशभरमें फैल गयी। सन् १५८८ ई० में उन्होंने ठोस पदार्थोंके गुरुत्वकेन्द्रके विषयमें एक ग्रंथ रचा। इसके दूसरे वर्ष टसकनीके शासक, ग्रैंड ड्यूक, ने उनकी योग्यताको देख उन्हें पिसाके विश्वविद्यालयमें गणिताध्यापकके पदपर नियुक्त किया। इस समय उनकी अवस्था केवल २३ वर्षकी थी।

इस पदपर वे लगभग ३ वर्ष रहे। यहां भूमिकी ओर गिरनेवाले पदार्थोंके विषयमें उन्होंने अनेक परीक्षाएं कीं और कई नई नई बातें निकालीं।

उन्होंने सिद्ध किया कि सब पदार्थ नीचेकी ओर समान वेगसे गिरते हैं-चाहे वे हलके हों, चाहे भारी। यह बात, जनसाधारण ही नहीं, विज्ञजनोंके भी विचारोंके विरुद्ध थी। यूनानी दार्शनिक महामति एरिस्टाटल प्रायः २००० वर्ष पूर्व कह गये थे कि गिरनेवाले पदार्थोंका वेग उनके भारपर अवलम्बित है-जो पदार्थ दुगना भारी है वह दुगने वेगसे गिरता है, अर्थात् भूमितक पहुँचनेमें उसे हलकेकी अपेक्षा आधा ही समय लगता है। यह बात स्वयंसिद्ध जँचती थी। शताब्दियोंसे लोग इसपर विश्वास करते आये थे। किसीको उसके सत्यासत्यकी परीक्षा करनेकी न सूझी थी। महामति एरिस्टटलके विचारोंपर संशय प्रकट करना भी तो अपनेको हास्यास्पद बनाना था।

किन्तु गैलिलियोने निर्भय होकर सत्यका पक्ष लिया। जब अन्य युक्तियाँ निष्फल हुईं तब वे, प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा, अपने विपक्षियोंका विरोध शान्त करनेपर उद्यत हुए।

पिसामें एक सुन्दर मीनार है (चित्र नं० १) उसका पाया किसी कारण एक ओर धसक गया है किन्तु मीनार गिरा नहीं-झुक जानेपर भी वह अबतक विद्यमान है। वहीं विश्वविद्यालयके अधिकारियों और नगरके गण्यमान्य सज्जनोंको एकत्रित करके वे उस मीनारपर चढ़े। अपने साथ दो गोले लेते गये-एक १ पौंडका दूसरा १०० पौंडका। ऊपर पहुँचकर इन दोनों गोलोंको उन्होंने एक ही संग छोड़ दिया। लोगोंने देखा कि वे गोले साथ ही साथ गिरे। उनके भूमिपर गिरनेका शब्द भी साथ ही

सुन पड़ा। कुछ लोगोंको तो संतोष हो गया। कुछ अपनी दृष्टिपर विश्वास न कर सके। घर लौटकर उन लोगोंने एरिस्टाटल कृत ग्रंथोंके पन्ने लौटाये पौटाये और उन्हींके मतपर स्थिर रहना अपना कर्तव्य समझा।

कागज़, रुई, पत्ती इत्यादिक वस्तुएँ बहुत धीरे धीरे गिरती देखी जाती हैं। इसका कारण यह है कि उनपर वायुकी रोधक शक्तिका प्रभाव अधिक पड़ जाता है। गैलिलियोके समयमें वायुनिष्कासक यंत्र बना न था। इस यंत्रके द्वारा जो स्थान वायुशून्य कर दिया जाता है उसमें कागज़ और पत्थर साथ ही साथ समान वेगसे गिरते देखे जाते हैं।

गैलिलियोने गिरनेवाले पदार्थोंकी गतिके नियम भी ढूँढ़े। यथा—

(१) नीचेकी ओर गिरनेमें पदार्थों-का वेग प्रत्येक सेकंडमें प्रायः '३२ फुट प्रति सेकंड' के हिसावसे बढ़ा करता है। अर्थात्, आरम्भसे लेकर बढ़ते बढ़ते एक सेकंडके अंतमें पदार्थका वेग ३२ फुट प्रति सेकंड हो जाता है। इसी प्रकार, वेग का मान

२ से० के अन्त में ३२ × २ = ६४ फुट प्रति से० ,

२$\frac{१}{२}$ „ ३२ × २$\frac{१}{२}$ = ८० „ ,

३ „ ३२ × ३ = ९६ „ ,

इत्यादि हो जाता है।

(२) आरम्भसे लेकर जितने सेकेंड बीत चुके हों उस संख्याको, उस समयके अन्तमें जो वेग हो उसके आधेसे, गुणा करनेपर, जितनी दूरी तै हो चुकी होगी वह निकल आयेगी। जैसे—

चित्र नं० १
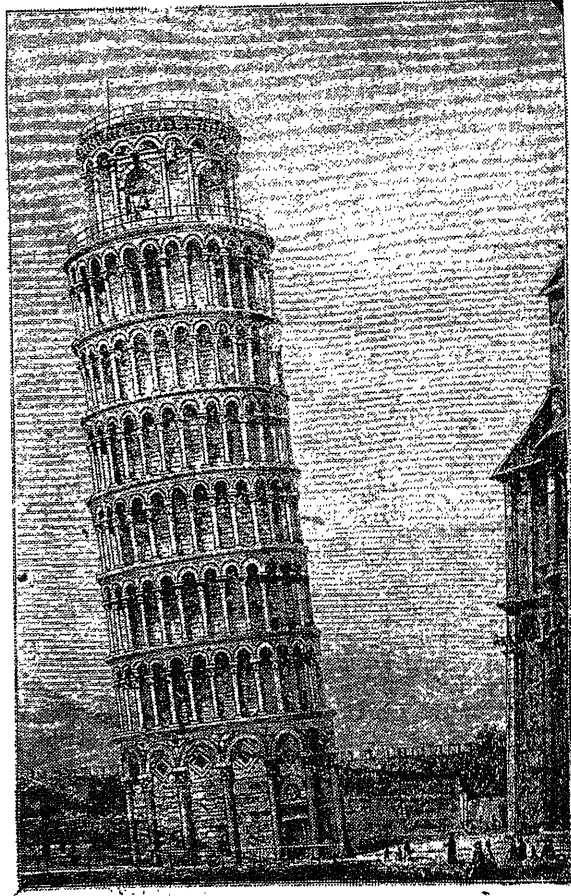
(*From 'Pioneers of Science'*)

समय जब तक गति होती रही (सेकेन्ड)	अन्तिम वेग (फुट प्रति सेकेन्ड)	दूरी जो तै हो चुकी (फुट)
१	३२	$\frac{३२}{२}$ × १ = १६ × १^{२} = १६
२	३२ × २	$\frac{३२ × २}{२}$ × २ = १६ × २^{२} = ६४
३	३२ × ३	$\frac{३२ × ३}{२}$ × ३ = १६ × ३ = १४४
...	..	...

समयके वर्गको १६ से गुणकरने पर भी वही उत्तर मिल जाता है।

चित्र नं० २
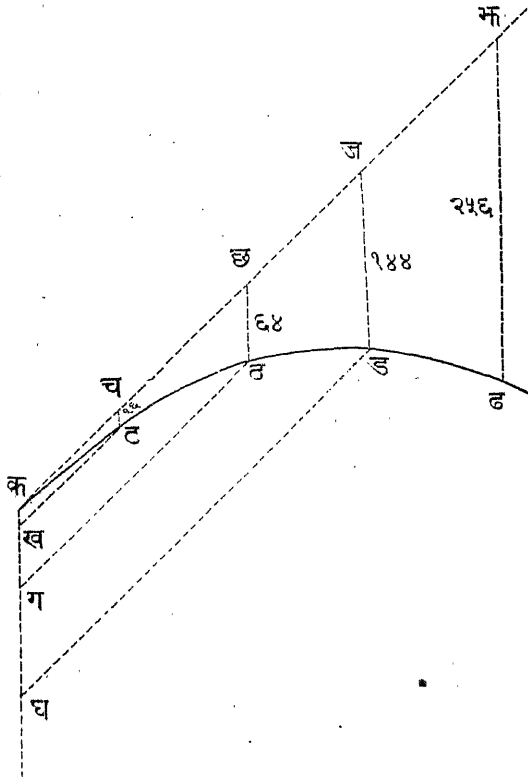
(From '*Pioneers of Science*')

यदि आरम्भमें भी पदार्थका नीचेकी ओर कुछ वेग हो तो अन्तिम वेगके आधेमें आरम्भिक वेग जोड़कर, उस योगफलका समयसे गुणा करना चाहिए।

(३) फेंका हुआ पदार्थ जिस मार्गका अनुसरण करता है उस मार्गकी आकृति भी निश्चित की गयी। यह मार्ग 'परबलय' (Parabola) नामक एक विशेष 'शङ्कुच्छिन्न' के आकारका होता है।

क स्थानसे (चित्र नं २) यदि झ की ओर एक पत्थर फेंकें तो उसका मार्ग क ट ठ ड ढ के आकारका होता है। यदि वह फेंका न जाय, केवल छोड़ दिया जाय, तो उपर्युक्त नियमोंके अनुसार क ख ग मार्गसे वह नीचे गिरता है। फेंके जानेपर यदि उसे पृथ्वी अपनी ओर न खींचे अथवा और किसी प्रकारका बल उसपर न लगे तो वह ठीक क झ रेखामें उसी वेगसे आगे बढ़ता ही जायगा। किन्तु वास्तवमें वह ज्यों ज्यों झ की ओर बढ़ता है त्यों त्यों नीचे भी उतरता जाता है। मान लीजिये कि अपने आरम्भिक वेगसे एक सेकेंडमें वह पत्थर च स्थानतक पहुँच सकता है। अब, यह तो मालूम है कि पृथ्वीके आकर्षणके कारण उतने ही समयमें वह १६ फुट नीचे उतर आता है। अतएव १ सेकेंडके अन्तमें उसका स्थान ट होगा। इसी प्रकार दो सेकंडमें उसे छ स्थानतक पहुँचकर ६४ फुट नीचे उतरना होगा, अर्थात्, वह ठ स्थानपर पहुंच जायगा। इत्यादि।

लोग समझते थे कि बन्दूक़से फ़ैर की हुई गोली ठीक सीधी जाती है। बारूदकेद्वारा दिया हुआ वेग जब नष्ट हो जाता है तब वह भूमिकी ओर गिरती है। यह भ्रम है। उसका भी मार्ग 'परबयल'के सदृश टेढ़ा है किन्तु अधिक विस्तृत होनेके कारण उसके किसी अंशकी वक्रता देख नहीं पड़ती।

परीक्षाओंके द्वारा गैलिलियोने गतिविद्या सम्बन्धी अनेक आविष्कार किये। उनके समयमें लोगोंको परीक्षाओं अथवा प्रयोगोंद्वारा ज्ञानकी प्राप्तिमें श्रद्धा न थी। विज्ञानकी उन्नतिके इस सच्चे मार्गसे वे प्रायः परिचित ही न थे। उनकी धारणा थी कि प्राचीनकालके विद्वानोंके ग्रंथोंमें सारा ज्ञानभांडार प्रस्तुत है। वे लोग उन्हींके अवलोकनसे सब प्रकारके विवादग्रस्त विषयोंका भी निर्णय किया करते थे। नये मार्गको दिखलाने और उसपर चलने ही के कारण गैलिलियोकी कीर्ति संसारमें अटल हो गयी।

तत्कालीन विद्वान गैलिलियोसे अप्रसन्न हो

गये थे। एरिस्टाटल जैसे महा दार्शनिकके विचारोंका खंडन करनेका साहस एक सामान्य व्यक्ति (कलका छोकड़ा) करे-यह उन लोगोंको असह्य था। दैवयोगसे गैलिलियोने ग्रैंड ड्यूकके कोर्ट (दरबार) के जिओवानी डिमेडिसी नामक एक उच्च पदाधिकारीको भी अप्रसन्नकर दिया। जिओवानीने लेघौर्न बंदरस्थानके साफ़ करनेकेलिए एक यंत्र बनाया था। उसपर गैलिलियोकी सम्मति माँगी गयी। उन्होंने यथार्थ बात निस्संकोचपूर्वक कह दी-कि यंत्र बेकाम है। यंत्र बेकाम निकला भी। किन्तु गैलिलियोका उस पदपर रहना कठिन हो गया। इन्हीं सब विरोधोंके कारण उन्होंने उस विश्वविद्यालयसे सम्बन्ध तोड़ने ही में अपनी भलाई समझी, और सन् १५९१ में इस्तीफ़ा देकर वे अपने घर, फ्लोरेन्स, लौट आये।

सन् १५९२ ई० में अपने मित्र मार्किस गीड युबल्डीके प्रयत्नसे वे पैडुआके विश्वविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुए। यहाँ १८ वर्ष रहकर उन्होंने ऐसे ऐसे आविष्कार किये कि जिनके कारण उनकी कीर्त्ति यूरोपभरमें शीघ्र फैल गयी। उनसे शिक्षा ग्रहण करनेकेलिए, राजासे रंकतक, सभी श्रेणीके विद्यार्थिगण दूर दूरसे आया करते थे। विश्वविद्यालयके अधिकारियोंने भी उनका वेतन १८० फ्लोरिनसे १००० फ्लो० तक बढ़ाकर अपनी गुणग्राहकताका परिचय दिया था।

सन् १५९७ ई० में गैलिलियोने कम्पास नामक वह सरल यंत्र बनाया जिसका उपयोग चित्रकारी (ड्राइंग) में अबतक किया जाता है।

इसी समयके लगभग थरमामीटरका भी आविष्कार हुआ। इसमें प्रायः दो बीते लम्बी एक काँचकी नली थी जिसका छिद्र बहुत ही सङ्कीर्ण-एक सींकके बराबर था। इसके एक छोरपर नींबूके आकारकी एक काँचकी कुप्पी लगी थी। इस कुप्पीको ज़रा गरम करनेपर नलीमें लगभग आधी दूरतक पानी चढ़ जाता था। शेष आधे भागमें और कुप्पीमें हवा बंद हो जाती थी। अब, यदि कुप्पी किसी कारण गरम या ठंढी हो जाती तो भीतरकी हवा भी गरम या ठंढी होकर फैलती या सिकुड़ती थी। इसीसे नलीमें पानी उतरता या चढ़ जाता था। पानीके चढ़ने उतरने ही से घटते बढ़ते तापक्रमका साधारण ज्ञान हो जाता था। किन्तु इस यंत्रसे तापक्रमका ठीक ठीक मान नहीं जाना जा सकता था, क्योंकि इसमें कई दोष थे जो धीरे ही धीरे दूर हुए।

पैडुआमें गैलिलियोने अनेक विषय पढ़ाये जिनमें ज्योतिष भी एक था। इस विषयके पढ़ानेमें उन्होंने प्रचलित प्रथाके अनुसार पुराने भूकेन्द्रक सिद्धान्तका ही अनुसरण किया था, किन्तु उनकी श्रद्धा उसपरसे प्रायः हट चुकी थी। मिस्रदेशीय दार्शनिक टालमी (सन् १०० ई०) के परिश्रमसे यूनानियोंके भूकेन्द्रक सिद्धान्तका प्रचार यूरोपमें हुआ। इसीसे उसे टालमीका सिद्धान्त भी कहते हैं। इस सिद्धान्तके अनुसार खगोलके मध्यमें पृथ्वी स्थिर है और क्रमशः अधिकाधिक दूरीपर (१) चन्द्रमा (२) बुध (३) शुक्र (४) सूर्य (५) मंगल (६) बृहस्पति (७) शनि और (८) खगोलका समग्र अवशिष्ट भाग--ये आठ उसकी परिक्रमा करते हैं। इस सिद्धान्तके विरोधी सदा ही उत्पन्न होते रहे हैं। किन्तु विद्वद्वर कोपर्निकस (१४७३-१५४३ ई०) ने उसके स्थानमें अपना नया सिद्धान्त चलाया। कोपर्निकसके सिद्धान्तमें आवश्यक संशोधन और उसका समर्थन जर्मनीके केप्लर, इटालीके गैलिलियो और इग्लैंडके न्यूटन जैसे विद्वानोंने मिलकर पूराकर दिया। इस नये सिद्धान्तके अनुसार सूर्यसंप्रदायके मध्यमें सूर्य है। पृथ्वी स्थिर नहीं वह अपनी अक्षपर घूमती है और अन्य ग्रहोंके सदृश सूर्यकी परिक्रमा भी करती है।

जब गैलिलियो पिसामें थे तभी से वे इस विषयपर विचार करने लगे थे। नये सिद्धान्त पर उनकी श्रद्धा दिनों दिन बढ़ती जाती थी। पैडुआ आनेके प्रायः बारह बरस बाद उन्होंने प्रकट रूपसे भी उस सिद्धान्तका पक्ष लेना आरंभकर दिया था।

सन् १६०४ ई० में एक नया तारा सर्पनक्षत्र (constellation of the serpent) में उदय हुआ। यह घटना बिलकुल असाधारण नहीं है क्योंकि ऐसे कई तारे समय समयपर देखे जा चुके हैं। इस नये तारेपर गैलिलियोने तीन व्याख्यान दिये जिनको सुननेकेलिए १००० से भी अधिक लोगोंकी भीड़ एकत्रित हो जाती थी। इस अवसरका मुख्य उपयोग उन्होंने महात्मा एरिस्टाटलके 'अविकार-वाद' (immutability) के खंडन करनेमें किया जिसके अनुसार खगोलमें वृद्धि और क्षय द्वारा विकार होना असंभव माना जाता था।

सन् १६०८ में हौलैंड निवासी हंस लिपशे नामक किसी ऐनक बनानेवालेने एक प्रकारका विचित्र खिलौना बनाकर बेंचना आरम्भ किया था। इसमें शीशेके दो वैसे ही ताल या लेन्स, आगे पीछे, लगे थे जैसे कि ऐनकोंमें लगे रहते हैं। इनमेंसे देखनेपर दूरकी चीज़ें कुछ बड़ी, किन्तु उलटी, देख पड़ती थीं। इस अचरजकी उड़ती ख़बर सन् १६०९ में गैलिलियोने सुनी। ताल और प्रकाशके गुणोंसे वे भली भाँति अभिज्ञ थे। उन्होंने स्वयम् वैसे ही आश्चर्यजनक वस्तु बनानेकी युक्तियाँ सोचीं। एक रातभर इसी विषयपर विचार किया। दूसरे दिन देखा तो सोची हुई युक्तियोंमेंसे एक सफल हो गयी। वह युक्ति इतनी अच्छी थी कि उसके द्वारा दूरके पदार्थ तिगुने बड़े और उलटे नहीं किन्तु यथास्थित देख पड़ते थे। इसमें सन्देह नहीं कि उनकी युक्ति लिपशेकी युक्तिसे भिन्न थी। उन्होंने शीघ्र ही और भी अच्छे यंत्र बनाये जिनसे दूरकी चीज़ें तीस बत्तीस गुनी बड़ी और बहुत स्पष्ट देख पड़ती थीं। इन दूरदर्शक यंत्रोंकी उत्कृष्टताका प्रमाण इससे अच्छा और क्या हो सकता है कि उनके मोल लेनेवाले यूरोपके अन्य देशों ही में नहीं किन्तु दूरदर्शककी जन्मभूमि हौलैंडमें भी अनेक मिले। आजकल 'आपरा ग्लास' के नामसे जो यंत्र बिकते हैं उनमें गैलिलियो हो की बनायी युक्तिका अनुसरण किया जाता है।

अपने बनाये दूरदर्शक यंत्रकी सहायतासे उन्होंने खगोलकी ज्योतियोंको देखना आरम्भ किया। जिस ओर यंत्र फेरा जाता था उसी ओर नये नये चमत्कार दृष्टिगोचर होते थे।

पहले पहल उन्होंने चन्द्रमाको देखा। उसका दृश्य बहुत कुछ पृथ्वी ही के समान देख पड़ा। उसपर उन्होंने ऊँची पर्वत श्रेणियां, गहरी तराइयां, बड़ी बड़ी चट्टानें, भयङ्कर ज्वालामुखी पर्वत और विस्तृत समुद्र देखे। आजकलके शक्तिशाली यंत्रोंके द्वारा जाना गया है कि चन्द्रमापर समुद्र नहीं है। गैलिलियोने बड़े बड़े मैदानोंको देखकर ही, भ्रमसे, उन्हें समुद्र समझा था। उन्होंने कुछ पर्वतोंकी उंचाई भी नापी और जाना कि उनमें से कई हिमालयसे भी अधिक ऊँचे हैं।

बहुतेरे लोग जानते हैं कि शुक्लपक्षके आरंभमें, विशेषकर द्वितीयाको, चन्द्रबिम्बकी पूरी गोलाई देखी जा सकती है। बिम्बका जो भाग अंधकाराच्छन्न रहता है उसके भी स्पष्ट रूपसे देखे जानेका कारण गैलिलियोने यह बताया कि जिस भाँति स्वयम् प्रकाशहीन चन्द्र, सूर्यका प्रकाश पाकर, प्रकाशवान हो जाता अथवा चमकने लगता है ठीक उसी भाँति पृथ्वी भी सूर्यका प्रकाश पाकर चमकने लगती है, अतएव जिस भाँति चन्द्रमाकी चाँदनी पृथ्वीको मिलती है उसी भाँति पृथ्वीका

प्रकाश जाकर चन्द्रमापर भी पड़ता है। इस प्रकाशके पड़नेसे बिम्बका वह भाग जो अन्यथा दिखायी न देता अस्पष्ट रूपसे दिखायी देने लगता है।

सूर्यकेन्द्रक सिद्धान्तके ग्रहण करनेमें एक आपत्ति यह बतायी जाती थी कि यदि वह सच हो तो पृथ्वीको भी अन्य ग्रहोंके समान चमकना चाहिए। इस आपत्तिका निवारण गैलिलियोने उपर्युक्त रीतिसे कर दिया।

दूरदर्शककी सहायतासे ज्ञात हुआ कि आकाशगङ्गा यथार्थमें कोटिशः तारागणोंका घना समूह है। इसी प्रकार, यंत्रके द्वारा आकाशके सब भागोंमें ऐसे असंख्य तारे देखे जा सके जो साधारणतः दृष्टिगोचर नहीं होते।

ता० ७ जनवरी सन् १६१० ई० को गैलिलियोने अपना दूरदर्शक बृहस्पतिकी ओर फेरा। उस ग्रहके समीप उन्हें तीन छोटे तारे देख पड़े जो बिना दूरदर्शककी सहायताके दिखायी नहीं देते। दूसरी रात्रिको उन तारोंकी पारस्परिक स्थितिमें अन्तर पड़ गया, यह देख उन्हें बड़ा अचम्भा हुआ। कई रात्रियोंतक लगातार वे इस ग्रहको देखते रहे। उनको स्पष्ट रूपसे विदित हो गया कि वे तारे बृहस्पतिकी परिक्रमा किया करते हैं, अतएव वे उसके उपग्रह हैं। एक रात्रिको उन्हें चौथे उपग्रहके भी दर्शन हो गये। गैलिलियोने इन सबका भ्रमणकाल भी निश्चित किया।

इस आविष्कारसे भी सूर्यकेन्द्रक सिद्धान्तकी पुष्टि होती थी, क्योंकि भूकेन्द्रक सिद्धान्तके अनुसार जो पद पृथ्वीको प्राप्त है वह खगोलमें और किसीको प्राप्त नहीं—सूर्यचन्द्रादि पृथ्वी हीके लाभार्थ उसकी परिक्रमा किया करते हैं। किन्तु नये सिद्धान्तके अनुसार उसका पद ठीक अन्य ग्रहोंके समान है। बृहस्पति और उसके उपग्रहोंके रूपमें, अब, इस सिद्धान्तकी सूर्यसम्प्रदायवाली कल्पनाके अनुरूप ही एक अत्यन्त लघु सम्प्रदायका अस्तित्व खगोलमें प्रकट हो गया।

गैलिलियोको पैडुआमें रहते अब लगभग १८ वर्ष बीत चुके थे। अध्यापन कार्यसे उनका जी उकताने लगा था। खगोलके चमत्कारोंके अवलोकन और परिशीलनकेलिए समय भी यथेष्ट नहीं मिलता था। उनकी अभिलाषा थी कि किसी प्रकार इस नये कार्यकेलिए अधिक अवकाश मिले। इसी समयके लगभग टसकनीके ग्रैंड डयूकके पदपर द्वितीय कास्मो डिमेडिसी आरूढ़ हुए थे जो किसी समय गैलिलियोके शिष्य थे। उनको पत्र लिखकर गैलिलियोने अपना मनोरथ प्रकट किया। इसका पहले तो कोई फल नहीं हुआ। किन्तु जब बृहस्पतिके उपग्रहोंका आविष्कार हुआ और गैलिलियोने उनका नाम, ग्रैंड ड्यूकके घरानेके सम्मानार्थ, 'मिडिशियन वर्ग' रक्खा, तब ग्रैंड ड्यूकने भी अपनी कृतज्ञता प्रदर्शित करते हुए, उन्हें अपने यहाँ बुला लिया और अपने कोर्टके 'वैज्ञानिक' के पदपर नियुक्त किया। अतएव ता० १० जुलाई सन् १६१० ई० को वे फ्लोरेन्स लौट आये। यहाँ, स्वच्छन्दता पूर्वक खगोलके अवलोकनमें लगे रहना—यही उनका काम था।

सन् १६१० ई० के उत्तरार्धमें गैलिलियोने शनि और शुक्र, इन दो ग्रहोंको देखा। उनको अपने दूरदर्शकसे शनिका आकार स्पष्ट न देख पड़ा। वास्तवमें इस ग्रहके मध्यभागको एक अत्यन्त विचित्र कटिबन्ध घेरे हुए है जिसका रूप चित्र नं० ३ में दिया गया है, किन्तु उन्हें ऐसा जान पड़ा मानों वह ग्रह तीन भागोंमें विभक्त है। उन्होंने जैसी आकृति देखी वह भी चित्रमें अंकित कर दीगयी है।

दूरदर्शकके द्वारा शुक्रको देखनेसे एक बात और भी अचम्भेकी मालूम हुई। जैसे चन्द्रमाकी कलाएँ घटा बढ़ा करती हैं ठीक

उसी प्रकार इस ग्रह की कलाओं-में भी वृद्धि और ह्रास होता पाया गया।

चित्र नं० ३

(From *Pioneers of Science*)

इस आविष्कारसे कोपर्निकसके सिद्धान्तकी पुष्टि और भी हो गयी, क्योंकि इससे यह अनुमान निकला कि शुक्र भी पृथ्वी हीके समान स्वयम् प्रकाश हीन है सूर्यहीका प्रकाश पाकर वह चमकने लगता है। अतएव पृथ्वीको भी शुक्रके समान एक ग्रह मानना अनुचित नहीं।

सूर्यसे शुक्रकी दूरी पृथ्वीकी दूरीसे कम है, इसलिए उसकी कलाओंमें वृद्धि और ह्रास होना आवश्यक है। यह स्वीकार करना होगा कि वह स्वयम् प्रकाशहीन है-उसके जिस अर्ध-भागपर सूर्यका प्रकाश पड़ता है वही चमकने लगता है। जब उसके और पृथ्वीके बीचमें सूर्य रहता है तब उसका सारा प्रकाशित अर्ध-भाग पृथ्वीकी ओर फिरा रहता है। उस समय उसका आकार पूरा गोल (चित्र नं० ४)

चित्र नं० ४
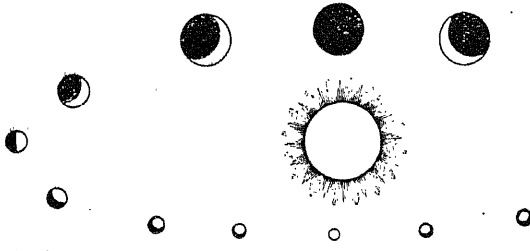
(From *Pioneers of Science*)

दिखायी देता है। फिर सूर्यकी परिक्रमा करते हुए जैसे जैसे वह अपनी कक्षामें आगे बढ़ता है वैसे वैसे उसका प्रकाशित भाग क्रमशः हमारी दृष्टिकी ओटमें होता जाता है। इसीको उसकी कलाओंका ह्रास होना कहते हैं। जब वह हमारे और सूर्यके बीचमें आजाता है तब उसका केवल अप्रकाशित भाग ही हमारी ओर फिरा रहता है, अतएव उस समय वह अदृश्य रहता है। इसके बाद जैसे जैसे वह आगे बढ़ता है वैसे वैसे उसका प्रकाशित भाग क्रमशः हमारी ओर फिरता जाता है। इस प्रकार उसकी कलाओंमें वृद्धि होते होते वह फिर पूरा गोल हो जाता है। चित्रमें ग्रहका आकार सर्वत्र समान इसलिए नहीं बताया गया कि पृथ्वीसे उसकी दूरीमें अन्तर पड़ता रहनेके कारण उसके आकारमें भी अन्तर पड़ता देखा जाता है।
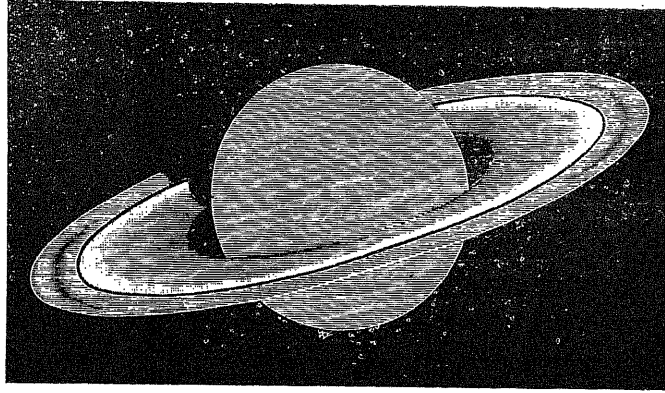
सन् १६११ ई० के मार्च महीनेमें दूरदर्शकने उन्हें नए चमत्कारका ज्ञान कराया। उन्होंने प्रत्यक्ष देखा कि सूर्यबिम्बपर कहीं कहीं काले धब्बे हैं जैसा कि चित्र नं० ५ में दिखलाया गया है। इनका रूप धीरे धीरे बदलता पाया गया। ये धब्बे बिम्बके पूर्वी किनारेसे पश्चिमी किनारेकी ओर सबके सब एक साथ चलते देखे गये। पश्चिमी किनारेपर पहुँचकर वे

अदृश्य हो जाते और कुछ कालके बाद फिर पूर्वी किनारेपर प्रकट होते थे। इससे गैलिलियोने अनुमान किया कि सूर्य भी अपनी अक्षपर पृथ्वीके ही समान घूमता है और कुछ कम एक महीनेमें एक फेरा पूरा करता है। गैललियोके विपक्षियोंको उनके पुराने आविष्कार अरुचिकर थे ही, अब सूर्यका कलङ्कित किया जाना और भी असह्य हुआ।

कोपर्निकसका सिद्धान्त ईसाईमतके विरुद्ध समझा जाता था। अपने धर्मग्रंथके वचनोंको अपनी आँखों देखी बातोंके प्रतिकूल पाकर गैलिलियो जैसे धर्मभीरु सज्जनको आन्तरिक क्लेश होता था। वे चाहते थे कि किसी प्रकार इस विरोधभावका समाधान हो सके। किन्तु चर्चके अधिकारियोंने जब उनके आविष्कारों द्वारा नये सिद्धान्तका बड़ी शीघ्रतासे प्रचार होते देखा तब उन लोगोंके मनमें भय उत्पन्न हुआ। उन दिनों रोमन चर्चका कर्तव्य था कि वह अपने धर्म सम्बन्धी मतोंके विरोध करनेवालोंको उचित दंड दे। प्रचलित प्रथाके अनुसार मतविरोध (heresy) सरीखे महापापका प्रायश्चित्त था-जीता जलाया जाना। अभी सन् १६०० ई० में, जब गैलिलियो पैडुआमें थे, प्रख्यात दार्शनिक ब्रूनोको रोममें ६ वर्षके कारागार वासके अनन्तर यही कठिन दंड भोगना पड़ा था। गैलिलियोके प्रति अपना कर्तव्य पालन करनेकेलिये चर्चने सन् १६१५ ई० में कमर बाँधी।

दिसम्बर सन् १६१५ में अपने विचारोंको स्पष्ट रूपसे समझानेकेलिए वे रोम बुलाये गये। वहाँ कुछ दिनोंतक वाद विवाद हुआ। किन्तु जिन विश्वासोंकी जड़ सहस्रों वर्ष पुरानी थी उनको केवल वादविवाद द्वारा कुछ ही दिनोंके भीतर निर्मूल सिद्ध करनेका प्रयत्न कैसे सफल हो सकता था। फल यह हुआ कि ता० २६ फरवरी सन् १६१६ ई० को उन्हें पोपकी यह आज्ञा सुनायी गयी कि "अबसे आगे कोपर्निकसके सिद्धान्तको मत मानो--न उसका पक्ष लो और न उसका प्रचार करो"। ता० ५ मार्चको 'इंडेक्स-समिति' ने भी अपनी यह आज्ञा प्रकाशित करदी कि कोपर्निकसका ग्रंथ और उनके सिद्धान्तका पक्षलेनेवाले किसी ग्रंथको कोई न पढ़े। इसपर खिन्नहृदय गैलिलियो जून मासमें फ्लोरेन्स लौट आये।
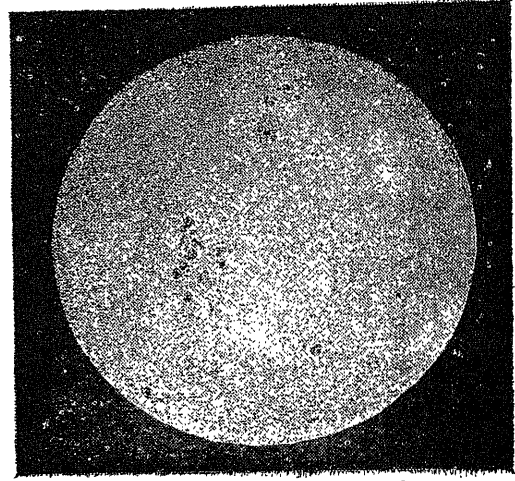
चित्र नं० ५

(From *Pioneers of Science*)

फ्लोरेन्स नगरसे प्रायः एक मील बाहर आर्सेट्री नामक स्थान था। रोमसे लौटनेपर वे कभी फ्लोरेन्समें और कभी आर्सेट्रीमें रहा करते थे। जिस सिद्धान्तके प्रचारमें उन्होंने इतना परिश्रम किया था अब उसके सम्बन्धमें कठिन मौनव्रत धारण करना पड़ा। इसलिए उन्होंने अपना ध्यान एक नये विषयकी ओर फेरा। जो पदार्थ पानीपर तैरते हैं, विशेष कर उन्हींके सम्बन्धमें अब उन्होंने परीक्षाएँकी और कई नयी नयी बातें ढूँढीं। इसप्रकार जलस्थिति विज्ञानकी बहुत कुछ उन्नति हुई।

गैलिलियो जब रोममें थे तब वहां कार्डिनल बार्बेरिनीने उनसे मित्र भाव प्रकट किया था। सन् १६२३ ई० में वे ही पोपके पदपर आरूढ़ हुए। यह सुनकर गैलिलियोको बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें आशा हुई कि अब कदाचित् सन् १६१६ की आज्ञाकी उग्रता कम कर दी जाय। यह दुराशा थी। तौभी उन्होंने रोम जाकर बार्बेरिनीसे भेंटकी और उनकी पद प्राप्तिपर अपना हर्ष प्रकट किया। पोपने भी उनका समुचित आदर सत्कार किया।

वहांसे लौटकर उन्होंने 'टालमी और कोपर्निकसके सिद्धान्तोंकी चर्चा' नामक एक ग्रन्थ लिखना आरम्भ किया। पूरा होनेपर वह चर्चके सेन्सरकी सेवामें भेजा गया किन्तु उन्होंने असावधानता की और उसे प्रकाशित करनेकी अनुमति दे दी। इस ग्रंथमें तीन व्यक्तियोंके बीच बातचीतके रूपमें दोनों सिद्धान्तोंका विवेचन किया गया था। तीनमें से एक केवल टीका-टिप्पणी करता था, दूसरा नये सिद्धान्तका पक्षपाती था और तीसरा--सिम्प्लिशिओ, टालमीके सिद्धान्तका समर्थन करता था। इसी सिम्प्लिशिओकी पद पदपर हार होती थी। यद्यपि कौन सिद्धान्त सत्य है और कौन मिथ्या—इस बातका निर्णय नहीं किया गया था तथापि पाठकोंको लेखकका मत अनुमान करना कठिन न था। सन् १६३२ में यह ग्रंथ प्रकाशित हुआ। लोगोंने इसे बड़े चावसे पढ़ा। किंतु चर्चवालोंको ज्योंहीं इस ग्रंथका वास्तविक रूप ज्ञात हुआ त्योंहीं उन्होंने उसकी बिक्री एकदम बन्दकर दी। गैलिलियोके कुछ विपक्षियोंने एक अनर्थ और भी किया। उन्होंने पोपसे जाकर कहा कि गैलिलियोने सिम्प्लिशिओके मिस आपहीका अनादर कराया है। फल यह हुआ कि तबसे पोपकी कृपा दृष्टि भी दुर्लभ हो गयी।

शीघ्रही गैलिलियोपर सन् १६१६ की आज्ञा उल्लंघन करनेका अपराध लगाया गया। ता० १ अक्टूबर सन् १६३२ ई० को इन्किज़िशन अर्थात् चर्चके न्यायालयने उन्हें रोम बुला भेजा। इस समय उनकी अवस्था ६८ वर्षसे भी अधिक थी। शरीरमें रोगोंने अपना बसेराकर लिया था। उनके मित्रोंने रोमको पत्र लिखकर प्रार्थना की कि ऐसी दशामें यात्रा करना बहुत कठिन होगा। ऋतु भी अनुकूल नहीं। सड़कें बुरी हैं। प्लेगके कारण कारंटाइनके नियमोंका पालन करना ही पड़ेगा। किंतु कोई फल न हुआ। यात्रा करनी ही पड़ी। ता० १३ फ़रवरी सन् १६३३ ई० को वे रोम पहुँचे। यहां, यदि इन्किज़िशन चाहता तो, अपनी प्रथाके अनुसार, उन्हें क़ैदख़ानेमें रख सकता था। किन्तु गैलिलियोके साथ, केवल अभी ही नहीं, आगे भी बहुत दयामय बर्ताव किया गया। रोममें टस्कनीके राजदूत निकोलिनी थे। उन्हींके यहां रहनेकी अनुमति दे दी गयी, किन्तु आज्ञा थी कि जहांतक हो सके बाहर मत निकलना।

ता० १२ अप्रैलसे वे इन्किज़िशनके कमरोंमें रक्खे गये और वहां कई बार उनके इज़हार हुए। यहां, और सब बातोंका तो आराम था, केवल चिन्ता ही दुःखका कारण थी। इसीसे स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा। इसपर निकोलिनीने उन्हें फिर अपने यहां लौटा लानेकेलिए प्रार्थना की। वह प्रार्थना सफल हुई और वे ता० ३० को उनके यहां लौट आने पाये। किन्तु जितने दिनोंतक इज़हार लिये जाते रहे उतने दिनोंतक चिन्ता सताती ही रही। कारण यह था कि जब जब इज़हार होते थे तब तब उनके शरीरपर उस भीषण यंत्र—रैक—के प्रयोग किये जानेका भय रहता था। उन दिनोंकी प्रथाके अनुसार आवश्यकता पड़नेपर रैकका प्रयोग किया जाना कोई असामान्य बात न थी। ता० २१ जूनतक वे निकोलिनीके यहां रहे। उस दिन अन्तिम बारके इज़हारके-

लिए बुलाये गये और ता० २४ तक इन्किज़िशन के कमरोंमें ही रक्खे गये। इस बीचमें यदि रैकका प्रयोग किया गया हो तो आश्चर्य नहीं। किन्तु बहुत सम्भव है कि उसके प्रयोगकी आवश्यकता न हुई होगी, क्योंकि उन्होंने अपने इज़हारमें जो कहा उसका सारांश यह था कि सन् १६१६ ई० की आज्ञा पानेके दिनसे मेरा विश्वास कोपर्निकसके सिद्धान्तपर नहीं रहा और न मैंने जानबूझकर किसी भाँति उस आज्ञाका उल्लंघन किया है।

ता० २२ जूनको कन्वेंट आव् मिनर्वामें कार्डिनल, प्रिलेट इत्यादिक चर्चके प्रधान अधिकारी एकत्रित हुए। वहीं फ़ैसला सुनाया गया। सज़ा मिली—(१) जन्मभरकेलिए क़ैद, अथवा उस कालतककेलिए जिसका निश्चय पीछेसे किया जाय; और (२) तीनसालतक प्रति सप्ताह सात पश्चात्तापसूचक 'साम'-भजनोंका पाठ। फ़ैसला सुनाये जानेकेबाद उन्हें घुटने टेककर, और बाइबिलको हाथसे छूते हुए, एक प्रतिज्ञापत्र पढ़ना पड़ा जिसका सारांश था कि "कोपर्निकसका सिद्धान्त धर्मके विरूद्ध ही नहीं, वह नितांत मिथ्या है। मैं आजसे यह कदापि विश्वास न करूंगा कि सूर्य स्थिर है और पृथ्वी अस्थिर"।

कहते हैं कि जब गैलिलियो यह पत्र पढ़कर खड़े हुए तब उन्होंने एक मित्रसे धीमे स्वरमें कहा "पृथ्वी फिर अस्थिर है"। इतिहासकारोंने सिद्ध किया है कि यह बात विश्वसनीय नहीं। पहले तो उनका कोई मित्र वहां उपस्थित न था। दूसरे, उस अवसरपर, ऐसे शब्दोंका उच्चारण करना उनके पक्षमें अत्यन्त हानिकर होता। तीसरे, उनका हृदय मानसिक संतापोंसे परिपूर्ण था—वहां पृथ्वी अथवा खगोल संबंधी तुच्छ विचारोंकेलिए जगह न थी।

ता० ६ जुलाईतक वे रोम ही में क़ैद रहे। उसके बाद साएन्ना भेजे गये। वहां आर्चबिशप पिकोलोमिनीके साथ दिसम्बर मासतक रहे। दिसम्बरमें अपने आर्सेट्रीवाले घर जानेकी आज्ञा मिली। वहीं उन्होंने अपने जीवनके शेष ८ वर्ष बिताये। इन सब स्थानोंमें इन्किज़िशनके नियमोंका पालन करना पड़ता था। बिना अनुमति मांगे न कोई मित्र उनके यहां आ सकता था और न वे ही कहीं जाने पाते थे। यह इन्किज़िशनकी दयाका फल था कि वे रोमके कारागारमें न रक्खे जाकर इस प्रकार अर्ध-स्वातंत्र्यका उपभोग करने पाये।

ऐसे कठिन समयमें भी उनके मस्तिष्ककी स्फूर्त्ति ज्योंकी त्यों बनी रही। सन् १६३६ में गतिविद्या संबंधी 'डायालोग्ी' नामक ग्रंथ समाप्त किया गया। जो गतिविद्या आज अपनी अत्यन्त उन्नत दशामें है उसकी नींव डालनेका यश गैलिलियो ही को प्राप्त है—इस विद्याके स्रष्टा वे ही माने जाते हैं। यही उनकी अटल कीर्त्तिका प्रधान आधार है।

सन् १६३७ ई० में ज्यौतिष विषयक अन्तिम आविष्कार किया गया। यह चन्द्रामाके संबंधमें था। पृथ्वीकी ओर चन्द्रमाका ठीक वही भाग नित्य फिरा रहता है किन्तु जिस दिशामें हम उसे देखते हैं उसमें नित्य परिवर्तन हुआ करता है। यह परिवर्त्तन तीन प्रकारका है—पहला दिनभरमें पूरा होता है, दूसरा महीनेभरमें और तीसरा सालभरमें। अतएव चन्द्रमंडल अपने केन्द्रपर प्रायः उसी भाँति फिरतासा प्रतीत होता है जैसे कोई अपना मुख (१) दाहिनी ओर फेरकर फिर बाईं ओर फेरे, (२) ऊपर उठाकर फिर नीचे गिरा दे और (३) दाहिने कंधेपर झुकाकर फिर बाएँ कंधेपर झुकाये। ये, तीनों प्रकारके, फेर या घुमाव– दैनिक, मासिक और वार्षिक–बहुत ही छोटे होते हैं। किन्तु इस सूक्ष्म बातका अनुभव भी सबसे पहले गैलिलियो ही को प्राप्त हुआ।

आर्सेट्रीमें इन्किज़िशनके कोपके कारण जीवन दुःखमय था ही, कराल कालने भी, एक एक करके, कई प्रिय परिजनोंका वियोग दुःख सहन कराया। बहुत दिनोंसे उनके वृद्ध शरीरपर बातरोगने अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इस प्रकार मानसिक और शारीरिक पीड़ाएं एक दूसरेको सहायता करनेमें तत्पर थीं। अब भी दुःखोंकी जो कमी थी वह विधाताने सन् १६३८ में पूरी कर दी। इसी वर्षके भीतर उनके दोनों नेत्रोंकी दृष्टि जाती रही।

ऐसी अवस्थामें इन्किज़िशनने अपनी सख़्ती कुछ कम कर दी। अब गैलिलियोके अनेक मित्रोंको, जो उनसे भेंट करनेकी इच्छासे आते थे, अपनी अभिलाषा पूर्ण करनेकी अनुमति मिल जाती थी। टारिसेली, विवियानी, कैस्टेली प्रभृति कुछ शिष्य भी उनकी सहायता करने आया करते थे।

सन् १६४१ ई० में गैलिलियोने एक ऐसे यंत्र बनानेकी युक्ति सोची जिसमें लोलकका उपयोग हो और जो घड़ीका काम दे सके। इसका सचित्र वर्णन उनके शिष्य विवियानीने लिख रक्खा था। उस समयका खींचा हुआ चित्र अबतक विद्यमान है, किन्तु उसके अनुसार सन् १६४६ में विवियानीने जो घड़ी बनायी थी वह कहीं खो गयी इसका फल यह हुआ कि गैलिलियोने जो आविष्कार किया था उसका प्रचार नहीं हो पाया।

गतिविद्या सम्बन्धी उनके नये नये विचार नित्य ही शिष्योंकेद्वारा लिपिबद्ध हुआ करते थे। इसी प्रकार 'डायालोग्री' नामक ग्रंथका परिवर्धन हो रहा था कि एक दिन ज्वरने आ घेरा। इससे वे प्रायः दो महीने पीड़ित रहे। अन्तमें न ज्वर रहा न और कोई क्लेश। शान्ति पूर्वक, ता० ८ जनवरी सन् १६४२ ई० को, लगभग ७८ वर्षकी अवस्थामें, गैलिलियो परलोक सिधारे।

महाप्रलयकारी परमाणु

[ले० श्रीकृष्णदेवप्रसाद गौड़]

सोनेके चूर्णकी एक कणिका पीटकर पतोंमें फैलायी जाय फिर उसे अत्यन्त छोटी कणिकाओंमें विभक्त करें। ऐसी क्रिया जितनी बार जितनी बारीकीसे हो सके करते रहें तो अन्तमें ऐसी दशा होगी जब उस रेणुके इतने बारीक भाग, इतनी बारीक कणिकाएं बन जायँगी जिन्हें बिना यंत्रके सहारे हम देख न सकेंगे। इसी भांति बालूके ज़र्रे भी जिनसे बालूका एक रेज़ा बना हुआ था निकाल सकते हैं और जिस भांति बालूके एक रेज़ेको हम बारीक चिमटीसे उठा सकते हैं उसी भांति इस रेज़ेके ज़र्रे भी यदि यह अत्यन्त छोटे न होते तो उठा सकते। नन्हेसे नन्हे, बारीकसे बारीक टुकड़े करते करते हम ऐसी कणिकाओंका भी अनुमान कर सकते हैं जिनकी सूक्ष्मता इतनी बढ़ी हुई हो कि यंत्र भी देखनेकेलिए लाचार हों, जिनसे अधिक बारीक टुकड़ा होना असंभव हो जाय, जिसे हम केवल कल्पना और गणितसे समझ सकें, ऐसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणिकाओंको शास्त्रकार और वैज्ञानिक दोनों "परमाणु" कहते हैं। हमने मान लिया कि "परमाणु" वह भाग है जिसके टुकड़े न हो सकें। साथही यह भी स्मरण रहे कि "परमाणु" के विभागकी कल्पना असंभव नहीं है। बात इतनी ही है कि परमाणु दृश्य पदार्थोंका अन्तिम विभाग है। हम जिसे देखकर सोना कहते हैं वह सोनेके अनन्त परमाणुओंका समूह है। इस परमाणुके खण्ड खण्ड जहां हुए, सोना रफूचक्कर हो गया। वास्तवमें सोनेको खोना तब तक असंभव है जबतक सोनेके परमाणुओंको खण्ड खण्ड न कर सकें।

चाहे हम चांदीका टुकड़ा लें या सोनेका या

[Chemistry रसायनशास्त्र]

रांगेका, जस्तेका या हीरेका–जोकि कर्बन (कोयले) का बना हुआ है–चाहे पारा लें चाहे हवाके अम्लजन (oxygen) या नत्रजन (nitrogen) का भाग लें, यदि पहलेके भाँति उसके टुकड़े करें तो हरएक पदार्थोंके परमाणु कमसे कम विचारमें निकाल सकते हैं।

जिन पदार्थोंको नाम ऊपर लिखा गया है वे बिल्कुल अमिश्रित पदार्थ हैं। क्यों? ऐसा क्यों है? क्योंकि इनमेंसे हरएक पदार्थके सब परमाणु एक ही प्रकारके होते हैं। उदाहरणतः सोनेको लीजिये सोनेके जितने परमाणु होंगे सब एक रूप और एक तौलके होंगे, इसीभाँति और तत्वोंके परमाणु भी होंगे। परन्तु एक पदार्थके परमाणु दूसरे पदार्थके परमाणुसे भिन्न होते हैं।

इन अमिश्रित पदार्थोंको वैज्ञानिक परिभाषा में "तत्व" कहते हैं। और इस कहनेका कि हम सौ तत्वोंको जानते हैं वही मतलब है जो कि यह कहनेसे कि हम सौ भिन्न भिन्न तत्वोंको जानते हैं। इनके अतिरिक्त हमें संसारमें ऐसे पदार्थ भी मिलते है जिनमें दो या ज़्यादः भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणु मिश्रित होते हैं। ऐसे पदार्थको संयुक्त पदार्थ कहते हैं। संयुक्त पदार्थोंमें सबसे विख्यात तथा साधारण पदार्थ जल है। लोग बहुत कालतक पानीको तत्व ही समझते रहे परन्तु पाश्चात्य विद्वान कैवेन्डिशने उन्नीसवीं शताब्दीके अंतमें इस बातको साबित कर दिखाया कि पानीमें दो भिन्न भिन्न तत्व मिले हुए हैं[१]। रसायनिक लोग भिन्न भिन्न पदार्थोंको मिलाकरके देखा करते थे (और देखा करते हैं) कि दो वस्तुओंके मिलादेने पर एकका प्रभाव दूसरेपर क्या पड़ता है और अंतमें कौन पदार्थ बनता है। इसी भांति वैज्ञानिकोंने बहुत कुछ प्रकृतिका रहस्य मालूमकर लिया है।

जितने पदार्थ संसारमें हैं वे किन्हीं न किन्हीं तत्वोंमें विभक्त हो सकते हैं। यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि तत्वोंके परमाणु भिन्न भिन्न रूप और तोलके होते हैं। जितने पदार्थ अभीतक जाने गये हैं उनमें उज्जन (hydrogen) सबसे हलका है।

उज्जनका परमाणु सबसे हलका होता है इसलिए उसका वज़न "एक" माना गया है। इस उज्जनके तोलके हिसाबसे और तत्वोंके परमाणुओंका भी वज़न नियत किया गया है। उदाहरणतः सीसेके परमाणुका वज़न २०७ है अर्थात् सीसेका परमाणु उज्जनके परमाणुसे २०७ गुना भारी है। पदार्थ चाहे अमिश्रत हो चाहे संयुक्त उसमें व्याप्त तत्वोंके परमाणुओंका वज़न सदैव एकसा रहता है। यूनानके एक दार्शनिकने पहले पहल एक परमाणुओंका सिद्धान्त निकाला और उसमें उसने यह प्रसिद्ध किया कि किसी पदार्थका सबसे छोटा भाग परमाणु होता है और परमाणु सदा एकही रूपमें रहते हैं[२]। यह केवल सिद्धान्त ही सिद्धान्त था। उन्नीसवीं शताब्दीमें डेलटनने इसे प्रमाणितकर दिखाया कि परमाणुओंके अस्तित्वका कल्पना कोरी कल्पना ही नहीं है वरंच प्रकृतिके रहस्योद्घाटनकी अमूल्य कुञ्जी है। लोगोंका यह विचार था कि ईश्वरने थोड़ेसे भिन्न भिन्न पदार्थोंके परमाणु बना रक्खे हैं जो न फिर बन सकते हैं न बिगड़ सकते हैं, और न एक तत्वके परमाणुसे दूसरे तत्वके परमाणु ही बन सकते हैं। परन्तु किसीने अब तक यह

१ पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम. ए. अपनी किताबमें एक वेद मंत्र देते हैं जिसका अर्थ वे यह लगाते हैं कि जल अम्लजन (oxygen) और उज्जन (hydrogen) से संयुक्त है।

२ कणादके परमाणुओंका सिद्धान्त यूनानके दार्शनिकके सिद्धान्तसे बहुत पहले निकला था। कणादने अपने सिद्धान्तमें कल्पनाकी आश्चर्य्य जनक हद करदी है। पाठक इस विषयको डाक्टर प्रफुल्लचन्द्र रायकी सुन्दर पुस्तक "हिन्दू रसायन शास्त्रका इतिहासमें" पायेंगे।

विचार न किया था कि परमाणुओंके भीतर क्या होता है।

कहीं कहीं कुछ वैज्ञानिक इस विषयपर भी चुपके चुपके विचार कर रहे थे। इनमेंसे एक रूसी रसायनिक मेंडेलजेफ़ने ढूंढ निकाला कि भिन्न भिन्न तत्वोंके परमाणुओंमें एक विचित्र सम्बन्ध है। बादको यह बात इतनी ठीक मालूम हुई कि लोग इस बातकी शंका करने लगे कि परमाणुओंमें कोई एक गुप्त सम्बन्ध है और एक तत्वके परमाणुसे दूसरे तत्वके परमाणु बन सकते हैं।

पारस

यदि यह बात सम्भव होती कि एक परमाणुसे दूसरा परमाणु बना सकते तो आज संसारमें लोग कम क़ीमत लोहेका सोना बना कर बेचते हुए दिखलायी पड़ते। रसायनशास्त्रके पितामह कीमियागरोंको इस बातका अनुमान हुआ था कि संसारमें कोई पारस नामका गुप्त पदार्थ पड़ा हुआ है जिसके स्पर्शसे निकम्मी धातुएँ सोना बन जाती हैं। बस पारस पानेकी धुनमें मस्त इन लोगोंने कई शताब्दियां इसी प्रयत्नमें नष्ट करदीं और अन्तमें हताश होकर पारस खोजनेवालोंको बावला और पागल कहकर अपने आंसू पोंछे। कुछ समयतक तो इन लालची लोगोंके पागलपनपर हंसना एक मामूली बात होगयी थी। पर थोड़े दिनोंसे वैज्ञानिक पारसका फिरसे सपना देखने लगे हैं। एक ऐसा विचित्र तत्व उनके हाथ आगया है जो उन्हें आश्चर्यके समुद्रमें कई सालोंसे ग़ोते लगवा रहा है।

इस आश्चर्यमय तत्त्वका नाम रेडियम है। सर विलियम क्रूक्स नामक एक अँगरेज़ने कहा है कि संसारमें एक पदार्थ है जो सब तत्वोंमें पाया जाता है और उसीसे संसारके परमाणु बने हैं। यह अनुमान किया गया है कि इस पदार्थमें कुछ न कुछ विद्युतका कर्तब अवश्य ही होगा। सर विलियम रामसेने रस संस्कारशालामें प्रयोगोंद्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि रेडियमके परमाणु अपने अंगोंसे फूट फूटकर दूसरे तत्वोंके परमाणु पैदा करते हैं। हीलियम नामक एक तत्व रेडियमके परमाणुओंसे निकल आया है। इस निरूपणके बाद यह ख़याल जाता रहा कि एक परमाणुसे दूसरे तत्वके परमाणु नहीं बन सकते। पहले तो रामसेकी बातोंको लोगोंने माना ही नहीं पर बादको बेवस होकर उन्हें इस बातकी सचाई माननी पड़ी और उस समयसे रसायन शास्त्रके इतिहासमें एक नये युगका प्रारम्भ हुआ।

परमाणु स्थिर नहीं हैं

दूसरी बड़ी भारी जांच जो हुई है वह यह है कि रेडियमकी भांति और तत्वोंके परमाणु भी टूटते रहते हैं और दूसरे क़िस्मके परमाणु उनसे बनते रहते हैं। विकास नियम (Law of Evolution) के अनुसार जैसे सब चीज़ें बदलती जाती हैं उसी तरह परमाणु भी बदलते जाते हैं। जब परमाणु पहले पहल बदलते हैं तब ऐसे नये परमाणुओंकी सृष्टि होती है जिनका जीवन बहुत ही स्वल्प और क्षण भंगुर होता है। इस क्षण भंगुर जीवनके समाप्त होते ही वे तुरंत ऐसे परमाणुओंमें बदल जाते हैं जो अपने नये स्वरूपमें हज़ारों सालतक स्थिर रह सकते हैं। ८० तरहके परमाणु जो हमें मालूम हैं वे उस श्रेणीके हैं जो बहुत दिनतक एक स्थितिमें रह सकते हैं और इनके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे परमाणु हैं जो केवल दो एक सेकण्डतक ही एक हालतमें रह सकते हैं और जिनकी इस दशाका मालूम करना भी बड़ा कठिन है। रेडियमके परमाणु इसी तरहपर टूट टूट कर हीलियमके अतिरिक्त बहुतसी तरहके अन्य परमाणुओंमें बदल जाते हैं और कुछ कालकेलिए अपनी नयी अवस्थामें रहकर अंतमें सैकड़ों वर्ष-

तक टिकनेवाले सीसेके परमाणुओंमें परिणत हो जाते हैं।

यहांपर हम लोगोंको इस बातका ध्यान रखना उचित है कि जितने परमाणु हैं वह सब किसी एक ऐसे पदार्थसे मिल कर बने हैं जिसकी मिलावट भिन्न भिन्न परमाणुओंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे है। सर जोसेफ़ टामसनने इधर बारह वर्षमें परमाणुओंके बारेमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की है। इनका कहना है कि प्रत्येक परमाणु छोटे छोटे ज़र्रोंसे बने हुए हैं जिन्हे वैज्ञानिक एलेक्ट्रोन (electron) कहते हैं। इन ज़र्रोंका यह नाम इस कारणसे पड़ा कि इनमें बिजलीकी शक्ति भरी होती है और अंगरेज़ीमें बिजलीको एलेक्ट्रीसिटी (electricity) कहते हैं।

परमाणु चाहे कैसे ही हों, किसी तत्वके हों एलेक्ट्रोन सब एक ही तरहके हैं। यदि सौ तरहके परमाणु हम लोगोंको मालूम हैं तो सौ तरहके एलेक्ट्रोन नहीं होते। तत्व चाहे इस पृथ्वीपर हो चाहे किसी सितारे या सूर्य्यमें हो उसके एलेक्ट्रोन एक ही प्रकारके होंगे। बिजलीकी धारा दो प्रकारकी होती हैं एकको धन (positive) दूसरेको ऋण (negative) कहते हैं। धन धारा ऋण धाराको खींचती है और धनधाराको हटाती है इसी भांति ऋण भी। एलेक्ट्रोनमें हमेशा एक ही तरहकी बिजली रहती है। प्रत्येक एलेक्ट्रोन एकही अवस्थामें एक दूसरेसे एक ही प्रकारका व्यवहार करता हैं। यह सचमुच अजीब बात है कि प्रत्येक तत्वमें एक ही तरहके एलेक्ट्रोन हों।

एलेक्ट्रोनमें ऋण विद्युत रहती है। इस कारण उपरोक्त नियमानुसार दो या अधिक एलेक्ट्रोन एक ही तरहकी बिजलोकी शक्ति रखते हुए एक ही परमाणुमें तबतक स्थिर नहीं रह सकते जबतक कोई वस्तु उन्हें वहांपर दृढ़ रोकनेवाली न हो। यदि आवश्यकतानुसार परमाणुमें बिजलीकी धन शक्ति आजाय तो वह परमाणु और सब एलेक्ट्रोनोंको एक साथ बंधा हुआ रक्खे। ऐसी ही शक्ति हरएक परमाणुमें होती है। इस तरह एलेक्ट्रोन और परमाणु एक साथ होकर तत्वोंके परमाणु बन जाते हैं।

प्रत्येक तत्वमें एलेक्ट्रोनोंकी संख्या और उनकी सजावट दूसरे तत्वोंसे भिन्न होती है। ऐसा अनुमान किया गया है कि उज्जनके प्रत्येक परमाणुमें लगभग ७०० या १००० एलेक्ट्रोन होंगे। पारेमें उनकी संख्या २००००० और रेडियममें २$\frac{१}{४}$ या २$\frac{१}{२}$ लाखके लगभग है।

एलेक्ट्रोनका परिमाण

जिन चीज़ोंका वर्णन किया गया है उनके रूप, वज़न इत्यादिका निर्णय करना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है। उन्नीसवीं शताब्दीमें परमाणु सबंधी सबसे बड़े विद्यार्थी लार्ड केलविन थे। बहुत हिसाब और विचार करके उन्होंने यह बतलाया था कि यदि किसी यंत्रमें इतनी शक्ति हो कि उसमेंसे देखनेसे पानीकी एक बून्द पृथ्वीके बराबर दीखे तो उस अवस्थामें जल-बिन्दुके अणु क्रीकेटके गेंदके बराबर दीखेंगे। जल बिन्दुके प्रत्येक अणुमें दो तत्वोंके तीन परमाणुहोते हैं। इनमेंसे एक तत्वके दो परमाणु सदृश परिमाणवाले और तीसरा परमाणु भिन्न परिमाणका होगा। फिर इन परमाणुओंके बीचमें शून्य पड़ा है। यह तो हुई परमाणुओंकी बात। एलेट्रोनकी बात भी सुनिये। यदि एक परमाणु कुतुबमीनार देहलीके बराबर बड़ा किया जाय तो एलेक्ट्रोनका परिमाण कोष्टमेंके बिन्दुसे (.) बढ़ कर नहीं हो सकता।

परमाणुमें एलेक्ट्रोन हमेशा चलते फिरते रहते हैं। जब परमाणु टूटने लगते हैं, एलेक्ट्रोन भी निकल पड़ते हैं। रेडियम धातुमें यह तमाशा हम लोग देख सकते हैं। पहले लोगोंका यह अनुमान था कि एलक्ट्रोनोंके एक दूसरेसे

लड़ जानेके कारण ही रेडियमके परमाणुओंका तांडवनृत्य होता है। परंतु यह बिल्कुल असम्भव है क्योंकि एक तो एलेक्ट्रोनोंके बीचमें इतना स्थान ख़ाली पड़ा है कि उनका टकराना कठिन है दूसरे यह कि जैसा ऊपर कहा गया है एलेक्ट्रोनोंमें एक ही प्रकारकी बिजलीकी शक्ति होती है। इस कारण वे स्वयं ही एक दूसरेको हटा देंगे उनका आपसमें टकराना तो नितान्त ही नियम विरुद्ध होगा।

ऋण--विद्युत-वाही एलेक्ट्रोनोंको एकट्ठा रखने वाली धनधारा कहां है इस बात का पता अभीतक ठीक नहीं लगा है। यह तो ऊपर कहा जा चुका है कि धन विद्युत पदार्थके परमाणु में है। पर वह इस परमाणु में कहां पर है? वह कैसे बनी है और कहांसे आयी है? इन प्रश्नोंका उत्तर अभी तक नहीं मिला है। सर जोसेफ़ टामसनका मत है कि 'परमाणु गोला कार होता है। इस गोलेमें एलेक्ट्रोनोंकी ऋणधाराके उपयुक्त धनधारा होती है। एलेक्ट्रोन इस गोलेके अंदर सजे हुए होते हैं।" इस मतसे भी उपरोक्त प्रश्नोंका उत्तर नहीं मिलता। अवश्यही परमाणुओंकी रचना बड़ी आश्चर्य्य मय है।

हालमें सर जोसेफ़ टामसनने कुछ और भी बातोंका पता लगाया है। उदाहरण--चाँदी उजली और सोना पीला क्यों है? केवल इस लिए कि उनके परमाणुओंमें भेद है। सोनेके परमाणुपर जब रोशनी पड़ती है तो वह प्रकाशके एक रंगको किरणोंको फेर देता है इसलिए उसका रंग पीला मालूम देता है। चाँदीका परमाणु दूसरे रंगकी किरणोंको लौटाता है इसलिए वह उजला दिखायी देता है। जब कोई धातु गर्म की जाती है तो उस समय वह जिस प्रकारका प्रकाश निकालती है इससे हम लोग एलेकट्रोनोंके बारेमें बहुत कुछ जान सकते हैं क्योंकि धातुओंमें रोशनी इन्हीं एलेक्ट्रोनों की चालसे पैदा होती है।

परमाणुओंकी रचनाका जो अनुमान वैज्ञानिकोंने किया है वह बड़ाहा सुंदर है। परमाणुके गोलेके भीतर एलेक्ट्रोन मुंदरीदार घेरोंमें सजे हुए होते हैं। कुछ तत्वोंकी मुंदरियोंमें एलेक्ट्रोनोंके रखनेका ऐसा प्रबंध है कि यदि उनमेंसे दो एक एलेक्ट्रोन घट बढ़ जांय तो भी परमाणुकी स्थिरतामें कोई भेद नहीं आता। इसके विपरीत कुछ तत्व ऐसे हैं जिनके परमाणुमें एलेक्ट्रोनोंकी घटती बढ़ती होते ही परमाणुकी रचना अङ्ग भङ्ग हो जाती है। उसमें से टूट टूट टूट कर एलेक्ट्रोन बाहर निकलते जाते हैं। जब तक एलेक्ट्रोनोंकी संख्या घट कर उतनी नहीं रह जाती जितनी एक नये तत्वके परमाणुकी स्थिर रचनाकेलिए आवश्यक हैं यही क्रिया जारी रहती है। इस क्रियामें ऋण और धन दोनों ही प्रकारकी विद्युत शक्तिका परमाणुमें तो ह्रास होता रहता है, पर यही विद्युत महा शक्तिके रूपमें परमाणुकी मृत्यु शय्या-पर संसारको दृष्टि गोचर होती है। रेडियम इस प्रकार स्थिर रचना वाले तत्वोंमें-से हैं। इसी कारण संसारमें वह इतना कम मिलता है और इतने आश्चर्य्यके कौतुक कर दिखलाता है।

तत्वोंमें मुंदरियोंके अनेक घेरे होते हैं। इन घेरोंकी संख्या किसी तत्वमें कम और किसीमें अधिक होती है। जिन तत्वोंमें परमाणुके केन्द्रके समीपस्थ मुंदरीकी रचना एकसी होती है उनके गुणोंमें कुछ न कुछ समानता अवश्यही पायी जाती है। यों वैज्ञानिकोंने इन मुंदरियोंकी सहायतासे रसायन शास्त्रकी अनेक दुर्बोध बातोंको सरल कर डाला है। इसके अतिरिक्त जो कुछ ज्ञान तत्वोंके विषयमें हम लोगोंको मालूम है वह सबका सब इन मुंदरियोंकी सहायतासे बड़ीसुगमता से समझाया जा सकता है।

पर परमाणुमें धन और एलेक्ट्रोनमें ऋण विद्युत कहां छिपी हुई है? इस प्रश्नने भी

वैज्ञानिकोंके हृदयमें बड़ी उलझन मचा रखी है। पृथ्वी पदार्थोंको अपनी ओर खींचती है एक पदार्थ दूसरे पदार्थको खींचता है। इस आकर्षण शक्तिको तो हम नित्य देखते हैं, पर यह शक्ति आकाश (ether) में कहां छिपी हुई है? संभव है कि परमाणु रचनाके इस रहस्यके खुलनेपर आकर्षण शक्तिका भी रहस्य खुलजाय।

जबतक परमाणु एक कठोर बालूके कणकी महासूक्ष्म अदृश्य असंख्य कणिकाओंमें एक कणिका समझा जाता था उस समयतक मानना पड़ता था कि परमाणुओंमें कोई भी शक्ति नहीं है। हम लोगोंके ज्ञानकी अब वृद्धि हुई है। अब हमें उस महा प्रभावशालिनी शक्तिका पता लगा है जो परमाणुओंके एलेक्ट्रोनोंको एक साथ बाँधे हुए है। विश्वभरकी सम्पूर्ण शक्ति परमाणुओंकी शक्तिसमूहका समुदाय है। पावभर रेडियम यदि इकट्ठा मिल जाय तो उसमें इतनी शक्ति पैदा हो सकती है जिससे एक रेल भारतवर्षमें उत्तरसे दक्खिन तक जा सकती है। सरजोसेफ़ टामसनने बतलाया है कि परमाणुओंमें इतनी शक्ति होती है कि यदि उसका पूर्ण उपयोग किया जाय तो एक मुल्कका मुल्क देखते ही देखते उड़ा दिया जा सकता है। इन बातोंसे परमाणुओंकी शक्तिका कुछ पता लग सकता है। जिस महाशक्तिने संसारभरमें प्रलय मचा रक्खा है, सम्पूर्ण विश्व जिस शक्तिके भीषण भ्रूभङ्गसे बनता और विगड़ता है, वह शक्ति एक छोटेसे परमाणुके गर्भमें छिपी पड़ी है। क्या ही अच्छा होता कि मनुष्य इस गुप्त शक्तिको अपने काममें लाने लगता। बारह बर्षके कठिन परिश्रमके बाद भी आजतक अभी यह नहीं मालूम हो सका है कि इस महाशक्तिको किस तरह वशमें करलें। वैज्ञानिक इस शक्तिको हाथमें लानेकेलिए परमाणुओंको लगातार अङ्ग भङ्ग कर रहा है, आशा है कि एक दिन यह अगम्य शक्ति उसके हाथमें अवश्य आ जायेगी। जिस दिन उसे जयलाभ हुआ उस दिन उसके भांडारमें किसी बातकी कमी न रहेगी। जिस बस्तुकेलिए मनुष्य आजकल लाखों रुपये व्यय करता है और सालोंतक कड़ा पसीना चुआता है वे वस्तुएं इस शक्तिके पानेपर चुटकियोंका खेल हो जायेंगी।

चींटी।

[ले० श्री० राधामोहन गोकुलजी]

बड़े अचम्भेकी बात है कि मनुष्यकी भांति सभ्यताका जीवन यद्यपि अच्छे और बलिष्ट बड़े जीवोंमें नहीं मिलता परन्तु कीटों या छोटे जन्तुओंमें पाया जाता है। प्रकृतिके साम्राज्यमें मनुष्य जातिको छोड़कर हमें ऐसी योग्यताकी करामात जो कहीं मिलती है, तो साधारण चींटियोंके ढेरमें या मक्खीके छत्तेपर। ऊदबिलावोंके कोई कोई आश्चर्य कर्म्म और कई प्रकारके जंगली बानरोंका सहयोगबल चित्तपर बड़ा ही प्रभाव डालता है। इसी प्रकार कई जातिके कुत्तोंका मिलकर शिकार करना भी ऐसा ही दृश्य है जिसे हम सहजमें नहीं भूल सकते। परन्तु इसपर भी इनमें कोई बात ऐसी नहीं मिलती जो चींटियोंकी कृषि, पशु रक्षा, युद्ध और दूसरोंको अपना दास बनानेकी समताका दावा कर सकती हो और मधुमखियोंके पूर्ण प्रबन्ध युक्त कामोंकी तो स्वप्नमें भी बराबरी नहीं हो सकती।

इन कीटोंने अपने जातीय जीवनकी इतनी आश्चर्यजनक समुन्नति कैसे करली, इस बातका हमें कुछ भी पता नहीं लगता। विद्वानोंमें मतभेद है, कोई कोई तो कहते हैं कि यह विचित्र बातें इन कीटोंमें स्वाभाविक बुद्धिके अनुसार अन्ध परम्परा मात्र हैं। परन्तु कितनोंकी

Nature study प्राकृतिक अवलोकन]

सम्मतिमें यह इन जीवोंकी तर्कशील बुद्धिका प्रतिफल है। जिन बातोंमें उन विद्वानोंका मत-भेद है जिन्होंने अपनी सारी उमर खपाकर खोजें की हैं हम अपना हस्तक्षेप करना अनुचित समझते हैं। विशेषतः इस छोटेसे लेखमें इस विषयको लेकर किसीका समर्थन या खंडन करना युक्तसङ्गत नहीं प्रतीत होता। एक विद्वान् फ़ोरलका अनुमान है कि किसी किसी कीटमें छठी और सातवीं ज्ञानेन्द्रिय भी होती हैं, जिनका हमें कुछ भी पता नहीं है। प्रसिद्ध दार्शनिक डारविन और इनके समर्थक एवबरी महाशयका मत है कि इनमें परमात्माने विवेककी भी एक मात्रा दानकी है। इनके विरुद्ध बहुतेरे संशयात्मकोंका यह कथन है कि कुत्तेमें तर्क या विवेक शीलता नहीं है क्योंकि वह ताला तोड़कर बन्धनसे छुटकारा नहीं पासकता। इस दशामें बुद्धिमान लोग स्वयम् अपने कठिन अनुभवसे ही निश्चय करसकते हैं कि कौनसा मत उनके समर्थन करने योग्य है।

चींटी चौपांखी जातिका जीव है। इस जातिको अंगरेज़ीमें (hymenoptera) हिमनोप्टेरा कहते हैं। इनके परमें चार तनुत्वक् होते हैं इसीसे इन्हें चौपांखी या चार परवाले कीट कहते हैं। इस जातिके अनेक कीट होते हैं। जैसे पाटन कीट (saw fly) काठभेदी (wood leader) रंगकुसारी (gall) परान्नभोजी बर्रें (naraxtic wasps), तन्तनाभहा (spider killing) उदासीन व सामाजिक बर्रें और मक्खियां। अनुमानसे ३०–४० हज़ार भेदके ऐसे कीट तो जाने जाचुके हैं परन्तु शायद इसके चार पांच गुनेसे अधिक अभी और अज्ञात हैं। यद्यपि इस जातिके कीटोंका प्रधान लक्षण चार पंखका होना माना गया है तथापि अधिकांश चींटियोंके पर होते ही नहीं इस कारण इन कीटोंके वर्गीकरणमें चींटियोंको एक विलक्षण स्थान जन्तुतत्ववेत्ताओंने दिया है। चींटियां तीन प्रकारकी होती हैं–रानी चींटियां और नर चींटियां, इन दोनोंके पर होते हैं, तीसरी उदासीन बिना परकी काम करनेवाली चींटी हैं, यही अधिक पायी जाती हैं।

चींटीका उपनिवेश या तो एक ही रानी चींटी स्थापित करती है अथवा कई रानियां मिलकर करती हैं। अपने जन्मगृहमें छोटी रानी दूसरी रानियों और परदार नरों और काम करनेवालियोंके साथ मिलकर सारा ही काम करती है। इसके छोटेसे शरीरमें काम करनेकी बड़ी शक्तिका सञ्चय होता है। एक नियत दिनको यह वायुमण्डलमें उड़ती हैं, उस समय वायुमण्डल विविध उपनिवेशोंके नरों और रानियोंसे काला हो जाता है। जीवनभरमें यह एक ही बार उड़ती हैं, यही इनका पहला और अन्तिम उड़ान होता है। धरतीपर आकर फिर यह अपने उपचारगृह (nursery) के कामोंमें लग जाती हैं। नर भी उसी दिन उड़ते हैं जिस दिन रानियां उड़ने जाती हैं। पर इनका जीवन कुछ घण्टोंमें समाप्त हो जाता है क्योंकि यह उसी दिन मर जाते हैं, या तो इन्हें शत्रु मार डालते हैं या धरतीमें कहीं दब रहते हैं और मर जाते हैं। यह लौटकर अपने नीड़में नहीं पहुँचते। इनके मरनेपर भविष्यत रानियों और श्रमियोंके आधीन रहता है।

रानीका भविष्यत् अदृश्यके हाथ रहता है। या तो यह दूसरी फली फूली रानियोंके संसदमें रहती है, जहां इसे काम करनेवाली चींटियां खींच ले जाती हैं, नहीं तो यह कहीं अपना न्यारा छोटासा घर बनाकर रहती है। जो कहीं अकेला नया घर बसाना पड़ा तो इसे सन्तोषसे अपने अंडे पालकर बड़े करने पड़ते हैं। यह बड़े होकर काम करने वाली चींटी बन जाते हैं। यही चींटियां आगे चलकर सन्तानोंके पालने पोषनेका काम करती

हैं और कुटुम्ब बढ़ने लगता है। इस दशामें रानी चींटी अपने नीड़को नहीं छोड़ती और अपने अंगके भीतरके संचित आहारपर जीवन व्यतीत करती रहती है।

यह आहार इसके शरीरमें पहले वाले नीड़का ही सञ्चित किया होता है जहां कि इसे किसी चीज़की कमी न थी। यह अपने लवों (कीट डिंभ) को अपने ही अङ्गसे आहार ला लाकर खिलाती और पालती है और जबतक नई सन्तति आहार एकत्र करने योग्य नहीं होती अपने ही अंगसे पालती रहती है। सन्तान तय्यार होती है और काम करनेवाली चीटियां नगरको जल्दी जल्दी बढ़ाकर बड़ा कर देती हैं। यह सब ओर कमरे, भूगर्भमार्ग व सुरंगें तय्यार कर देती हैं। इनका सब काम एक पद्धतिके अनुसार होता है। इनकी कार्य्य विधि जैसी पहलेसे चली आरही है वैसी ही होती है। चाहे चींटी दूसरे कुटुम्बमें जाकर रहे चाहे नया घर आबाद करे पर अपना बेपर जीवन लेकर ही काम करती रहती है।

धरतीपर आनेपर यदि रानी अकेली हुई तो वह अपने पर नोचकर फेंक देती है। यदि वह काम करनेवालियोंके ही झुण्डमें आ मिली तो वे इसके पर नोच डालती हैं जिसमें फिर वह उड़नेकी इच्छा न कर सके। जब काम करनेवाली पास होती हैं तो यह धरतीपर लौटी हुई रानी मज़ेमें रहती है। काम करनेवाली आहार लाती हैं और यह सुखसे पेटभर खाती है। कामकरनेवाली ही उसके अंडे बच्चोंको धात्रीगृहमें रखकर पालती हैं और नित्य इस घरसे उस घरमें लिये फिरती हैं। कभी कभी वे इन्हें सूर्य्यके प्रकाशमें सैर कराने लेजाती हैं और रातको किसी तहख़ानेकी गैलरीमें रख छोड़ती हैं। सार यह कि इनके सेवा-काजमें अंडोंको यथावत शक्ति और गरमी मिलती रहती है। अंडे ऋतुके अनुसार १४ दिनसे ३० दिनतकमें या कभी ४० दिनतकमें पक जाते हैं। छोटे खेत बच्चे मांसकेसे लोथड़े शङ्काकार (conical) होते हैं। यह बालकोंकी तरह विवश होते हैं, कामकरनेवालियोंको ही इन्हें चुगाना पड़ता है। बच्चोंको अधपचा आहार दिया जाता है। इनकी वृद्धिका भी क्रम प्रकृतिके आधीन होता है। अनुकूल दशामें लर्व एक महीनेमें कभी डेढ़ महीनेमें कच्चे बन जाते हैं। किसी किसी जातिके बच्चे इसी दशामें जाड़ेभर पड़े रहते हैं और समस्त जाड़ेभर धात्रियोंको बड़ी सावधानीसे इनकी सुध लेनी पड़ती है। वह कच्चे, बच्चेहोनेके पहले यातो नंगे होते हैं या सुन्दर रेशमी कीटकोष (cocoon) पहने होते हैं।

उपकारका तिरस्कार

[लेखक एक कबाड़ी]

"कोई पचीस दफ़ा कहा होगा, पर सुनते ही नहीं, देखो न अब यह सब क्या होरहा है!"

"कहां! कहां!! क्या हो गया!!!" कहते हुए ऊधमप्रसाद अपनी बगियासे निकलकर जिधरसे उपरोक्त शब्द सुनायी दिये थे उसी ओर झपटे।

बाबू नफ़रदास जी एक बड़े घरके आदमी और ऊधमप्रसाद जी उनके पुराने लंगुटिया यार हैं। ऊधमप्रसाद बड़े परिश्रमी पर अपनी समझके आदमी हैं। जबसे यह खेती करने लगे नफ़रदास बराबर अपने गांवपरसे दसवें पन्द्रवें इनके खेतोंको देखने तथा इनसे मिलने चले आते हैं। आज वैसा ही एक दिन है और नफ़रदास ऊधमप्रसादके खेतोंकी ओर आनिकले हैं। आते ही उन्होंने बगियाके बाहर ही एक वृक्षको देखकर उपर्युक्त शब्द कहे

और ऊधमप्रसाद उन्हें सुन कुछ घबड़ाकर बाहर निकल आये।

ऊधमप्रसाद-कहिये तो सही क्या होगया कि जो आप आज आते ही गरम हो रहे हैं।

नफ़रदास-हो क्या गया! देखते नहीं कि इस पेड़की क्या दशा होगयी है। उस दिन जब मैं आया था तुमसे कहा था कि यह अमरबेल (dodder) बड़ी बुरी बला है, इसे उस पेड़ सहित जला डालो, पेड़से हाथ धोओ नहीं तो इधर उधरके और पेड़ भी चल बसेंगे और सब तरफ़ अमरबेल हीका राज्य हो जायगा। सो तुमने एक न सुनी। देखो वह वृक्ष तो अब बिलकुल सूख ही गया, यह दूसरा उससे इतनी दूर, दूसरी मेंड़पर होते हुए भी उसी सत्यानाशी अमरबेलके पाले पड़ गया है। उधरसे किसी प्रकार इसकी लत्तीका अंश इधर पहुंच गया होगा, बस फिर अब क्या है इसकी दया इसपर दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ेगी और थोड़े ही दिनोंमें देखोगे कि यह भी बेचारा सूख जायगा।

ऊ०—कुछ समझमें नहीं आता कि आख़िर ऐसा होता क्यों है; अमरबेल अगर पेड़पर फैलती है तो फैले, पेड़ क्यों सूख जाते हैं। भला इससे और उनके सूखनेसे क्या सम्बन्ध है?

न०—बस निरे आदमी ही रहे। भाई साहब ध्यान देकर सुनिए अमरबेल एक लत्ती है और इसका स्वभाव लिपट जानेका है। जहां पहुंच जाती है भूतकी तरह पेड़ तथा पौधेसे चिमट जाती है और जो पदार्थ वह पेड़ या पौधा पृथ्वीसे अपने सेवन तथा पालन पोषणके हेतु खींचता है उसका यह रस पानकर आप तो शैतानकी आंतकी तरह बढ़ने लगती है और बेचारा पेड़ या पौधा रस न मिलनेसे सूखता जाता है। कुछ ही दिनों बाद वृक्ष बिलकुल नष्ट हो जाता है। इस लत्तीमें यह गुण है कि इसका जौ भरका टुकड़ा भी कहीं किसी खेतमें या पेड़पर पड़ जाय तो वह सारी जगहको दबा लेता है।

ऊ०-हूं! तो आपके कहनेका अभिप्राय यह है कि यह एक बला है। अच्छा तो इससे छुटकारा पानेकी कोई तरकीब भी है या नहीं?

न०-केवल एक ही उपाय इस्से पीछा छुड़ानेका है और वह यह कि जहां यह दिखायी दे पेड़ या पौधा समेत काटकर जला डालो सिवा इसके दूसरी दवा नहीं। हाथसे तो आप इसे सुलझा चुके। जहां यह चिमटती है वहांसे आप किसी प्रकार इसे अलग नहीं कर सकते। जलानेसे हानि तो अवश्य होती है पर इस व्याधिकी भी इति श्री हो जाती है।

ऊ०-बस अब मैं बिलकुल समझ गया। जैसा कहते हो वैसा ही होगा, फिर अब दूसरी बार इसे न देखोगे। चलो अब घरकी ओर चलें।

दोनों साथ साथ खेतोंकी मुंडेरोंपर होते हुए कभी बराबर और कभी कभी आगे पीछे चलने लगे। थोड़ी दूर चलकर ऊधमप्रसादके कुछ खेत दिखायी दिये जिनमें लहरा (बाजरा) बोया था।

न०-क्योंजी यह घास पात क्यों बो रक्खा है?

ऊ०-बाबू साहब यह घास पात नहीं बाजरेका खेत है। ज़रा अच्छी तरहसे पास चलकर देखिये।

न०-मैं पास जाकर क्या देखूँ क्या यहाँसे नहीं दिखायी देता......(खेतकी मेंडपर पहुँचकर)......हूँ! तो यह बाजरे का खेत है...... ईश्वरकी कृपासे जन्मा तो अच्छा था मगर तुम्हारे मारे जब कुछ होने पावे।

ऊ०-आख़िर मैंने क्या कर दिया? जब बड़ा होगा और बाल लगेंगी एक आदमीको इसकी रखवालीपर नियत कर दूंगा और स्वयम् भी कभी कभी वक्त बेवक्त आकर देख भाल किया करूँगा और क्या करूँ आप ही बताइये?

न०-यार तुम भी बस अपनी समझ के एक ही आदमी हो। अभीसे तो इसकी कुछ ख़बर नहीं लेते जब बाल लगेंगी तब रखवाली-को आदमी रक्खोगे! ठीक !! भला क्यों साहब ऐसे लच्छनोंसे बाल कितनी बड़ी आवेंगी?

ऊ०-आज तो आपका पारा कुछ शुरू ही से चढ़ा हुआ है। बताइये न साहब कि क्या नहीं हुआ, क्या रह गया, अब भी कुछ हो सकता है कि बस जो कुछ होना था सब हो चुका?

न०-यह बाजरा एक एक बीते (बालिश्त) होने आया मगर पेड़ोंमें जान नहीं मालूम पड़ती। यह देखो मेंडसे मेंड लगा लाला नैन-सुखका लहरा कैसा लहलहा रहा है, यह तुमसे कुछ पीछे ही बोया था।

ऊ०-भाई साहब तो इसे मैं क्या करूँ?

न०-सुनो, लाला नैनसुखने अपना खेत निरवा दिया है। देखो उसमें तनिक भी जंगल (घास, पात, कबाड़--weeds) नहीं। एक तुम्हारे खेत हैं जो जंगल कबाड़से बिलकुल भरे पड़े हैं। बस यही जंगल तो इन पेड़ोंको कमज़ोर कर देता है।

ऊ०-सो कैसे?

न०-सो ऐसे कि खेतकी मट्टीमें जितनी सामग्री पेड़के लालन पालनकेलिए संगृहीत होती है उसमेंसे बहुत कुछ तो कबाड़के भेंट होती है, बाक़ी जो रही सो फ़सलके पेड़ोंको मिलती है। यह कबाड़ (घास पात) छिछलते भी जल्दी ही हैं। इससे बेचारे फ़सल-के पेड़ोंको इनके सामने बढ़नेका अवकाश भी पूरा नहीं मिलता। इसीसे तो खेत जल्दी निरवा दिये जाते हैं। किसी भी निरानेवालेसे पूछो वह तुरंत कह देगा कि बिना निराये पेड़ोंका ज़ोर मारा जाता है। अब तो आपकी समझमें आ गया होगा कि यह जंगल किस प्रकार फ़सलके पेड़ोंको कमज़ोर कर देता है।

ऊ०-जी हाँ, मैं बिलकुल समझ गया। इसीसे आपने इस खेतमें घास पात बोया हुआ कहा था। कलही मैं इसे निरवा दूंगा।

इसके बाद दोनों फिर राह राह घरकी ओर चलने लगे। रास्तेमें ऊग्रमप्रसादने कहा।

ऊ०-भाई साहब आज तो आपने बहुतसी बातें बतायीं। लगे हाथों इस जंगल कबाड़के विषयमें और जो कुछ आप आवश्यक समझते हों कह डालिए। उस वक़्त तो आपने किसी खेतमें उगे हुए जंगलके विषयमें कहा था।

न०-अच्छा सुनिए। इस जंगलसे बड़ी बड़ी हानियाँ पहुँचती हैं। बाज़ जंगल तो इस बुरी तरहसे पेड़को घेर लेते हैं कि बेचारेको धूप और वर्षाका जल भी अच्छी तरहसे प्राप्त नहीं होने पाता। बहुतेरे बहुतसी जगह अगोटकर पेड़को पूर्णतः बढ़ने तथा छिछलने नहीं देते। कहीं कहीं खेतोंमें कांस इतना हो जाता है कि खेतके खेत छोड़ देने पड़ते हैं। उनमें कांसके मारे जुताईतक नहीं हो सकती और यदि जुताई कराई भी जाय। तो अधिक धन व्यय होता है। कोई कोई घास पात विषैले भी होते हैं और उनके विषका प्रभाव उपजे हुए फलोंतक में पड़ता है।

ऊ०-हूँ! ...तो सब हानि ही हानि पहुंचाते हैं कोई लाभदायक नहीं!

न०-लाभ! लाभका नाम ही न लो। इनको जहाँ देखो बिनवादो। इन्हें बढ़नेका अवसर ही न दो नहीं तो यह बड़ा दुन्द मचावेंगे। बढ़ जानेपर इनसे छुटकारा पाना कठिन हो जायगा।

ऊ०-तो यह कहिए कि "कृतज्ञता" इनतक फटकी भी नहीं। यह उपकारका तनिक भी पुरस्कार नहीं देते। यदि कुछ लाभ नहीं करते तो हानि भी तो न पहुंचायें।

न०—इसीको कहते हैं "उपकारका तिरस्कार"। समझे भाई साहब जितनी ही आप इनके साथ भलाई करेंगे यह उतनी वरन् उससे अधिक ही आपके साथ बुराई बरतेंगे।

इतने में ऊधमप्रसादकी चौपाल आगयी, वहाँ पहुँचकर दोनोंने नित्य कर्मसे निवृत्ति पायी। रातमें नफ़रदासने ऊधमप्रसादके हिसाबकी बही देखी और फिर सो रहे।

सृष्टि

[ले० श्रीयुत शिवचरण सत्यवादी, बी. ए]

तस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः।

तत्तिरीयोपनिषद

जब परमात्माने ब्रह्माण्डकी रचना आरम्भ की तो प्रथम उसने आकाश रचा। आकाशसे वाष्प-युक्त ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। यह वाष्प, प्रज्वलित दशामें परिणत हुई। उससे तरल दशामें आई और तरलसे स्थूल दशामें। इस स्थूल पृथ्वीसे बनस्पति तथा बनस्पतिसे अन्न उत्पन्न हुआ। अन्नसे वीर्य और वीर्य से पुरुषकी उत्पत्ति हुयी।

ईश्वरकी महिमा अपार है और स्वाभाविक नियम अटल हैं। इस संसारका प्रत्येक परमाणु इसीका राग गा रहा है। यह अपना कार्य्य करते हुए संसार तथा लोकोंका साधन किये हुए है। क्या हमें इस संसारकी ओर अवलोकन करनेसे यह आश्चर्यमय जिज्ञासा नहीं होती कि यह अक्षय शक्तिशालिनी मनुष्यजाति, ये विचित्र प्राणधारी जीव, ये सुन्दर अट्टालिकाएं तथा ये मनोहर बन, उपबन, नदी, तड़ागादि कब तथा किस प्रकार निर्माणित हुए? इस लेखका उद्देश्य यही है कि संक्षिप्तमें आधुनिक संसारके निर्वाचनके विषयमें कुछ लिखा जाय। वर्तमान ज्योतिष-विद्याके विद्वानोंके अनुसंधानसे यह स्पष्ट प्रकट हुआ है कि नभमें अनेकानेक स्थूल ज्योति-रहित ब्रह्माण्ड भ्रमण किया करते हैं। ये पृथ्वीकी अपेक्षा अत्यन्त दीर्घ तथा विस्तीर्ण हैं। हमारे शास्त्रोंके लिखनेवालोंने इन ब्रह्माण्डोंकी एक और दशा बतलायी है वह आकाशीय दशा है। जिसमें प्रत्येक परमाणु नभमें अत्यंत सूक्ष्मरूपसे अलग ही अलग भ्रमण करता है। कुछ आधुनिक खगोलदर्शी विद्वान् भी इस दशाका अनुमोदन करते हैं। वे उसे एथीरियल (ethereal) दशा कहते हैं। कालके परिवर्तनसे घूमते घूमते ब्रह्माण्ड आपसमें टक्कर खा जाते हैं। इस घर्षणका फल यह होता है कि अत्यधिक वेग तथा विस्तीर्णताके कारण ये प्रज्वलित हो जाते हैं। इन ब्रह्माण्डोंका प्रत्येक कण किसी एक केन्द्रकी ओर सरकने लगता है। इस कारण वह नवीन ब्रह्माण्ड एक केन्द्रपर तो अत्यंत वेगसे घूमने लगता है पर टक्करके कारण उसके आकाशमें जानेकी गति न्यून हो जाती है। अपनी इस उत्पन्न हुई न्यूनगतिसे ही वह आकाशमें भ्रमण करने लगता है।

करोड़ों तथा शंखों साल पहले एक ऐसी ही आकस्मिक घटना आकाशमें हुई थी जिसके कारण आज यह रमणीय संसार उत्पन्न हो गया। दो शुष्क ब्रह्माण्डोंकी टक्करसे अथवा दो प्रज्वलित किंवा एक निर्जीव और एक प्रज्वलित ब्रह्माण्डकी टक्करसे एक नवीन ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। यही आकाशमें एक नवीन तारा तथा हम लोगोंके सौर्य जगतके सूर्य्य देव बन गये। इस ब्रह्माण्डमें भी परमाणुओंकी टक्करके समयकी गति तथा केन्द्रकी ओर सरकनेकी गतिके कारण चारोंओर एक अक्षपर घूमनेकी शक्ति आगयी। अतः अत्यंत वेगसे घूमते हुए वह अपनी आकाश मार्गकी यात्रा भी स्थिर रखने लगा। सूर्य्य इतने वेगसे अक्षके चारोंओर घूमने लगा कि उसमेंसे अनेक छोटे और बड़े

टुकड़े टूट टूटकर निकल पड़े। यही बड़े बड़े टुकड़े तो कालान्तरमें ग्रह बन गये परन्तु छोटे छोटे टुकड़े अब भी ग्रहोंकी नाईं सूर्य्यके चारों ओर घूम रहे हैं। यह टुकड़े अपनी पुरानी गतिके अनुसार ही सूर्य्यके चारोंओर फिरने लगे। सूर्य्यके आकर्षणके कारण इन्हें दूर जाना असम्भव हो गया। इनकी ठीक वैसी ही दशा है जैसी कि उस पत्थरकी जो रस्सीमें बांधकर हाथसे फिराया जाय। परन्तु सूर्य्य-से निकले हुए इन टुकड़ोंमें एक और विशेषता थी।

इन टुकड़ोंके वाष्प समान होनेके कारण उनके परमाणु भी एक केन्द्रकी ओर सरकने और ठंढे होने लगे। अन्तमें वे भी अक्षके चारों-ओर कुछ तो पहले हीसे घूमने लगे थे अब और भी अधिक वेगसे घूमने लगे यहां तक कि इन टुकड़ोंमेंसे और भी नये टुकड़े टूट टूटकर बाहर जाने लगे। ये नये टुकड़े ही उपग्रह हो गये। ये भी अपने ग्रहोंका चक्कर लगाते हुए उनके साथ साथ सूर्य्यके चारों तरफ़ फिरने लगे। इन उपग्रहोंमें भी कणोंके ठंढे होनेसे अक्ष रेखाके चारों ओर घूमनेकी शक्ति आ गयी।
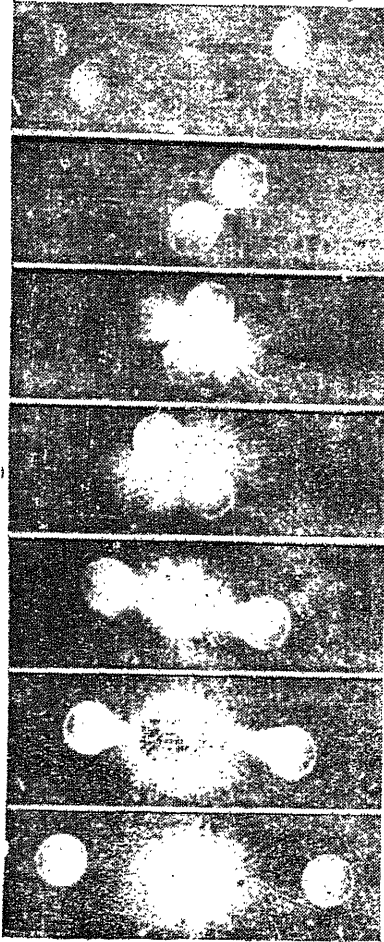
१—दो ब्रह्मांड समीप आ रहे हैं।

२—दोनों टकराया चाहते हैं।

३—दोनों टकरा गये।

४—टकराकर अलग हो रहे हैं।

५—टकरानेका फल (नये ब्रह्मांड को उत्पत्ति)।

६—नया ब्रह्मांड बन रहा है।

७—नया ब्रह्मांड बन गया।

इन सब ग्रहों तथा उपग्रहोंमें विशेषता यह हुई कि वे सबके सब अपने पिता तथा पितामह सूर्य्यकी नाईं अपने अक्षपर एक ही ओर घूमने लगे।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रहोंके अक्षपर घूमनेकी गति बहुत नहीं तो थोड़ी अवश्य सूर्य्यसे ली गयी है। बात यह हुई कि टुकड़े जितने ही छोटे होते जाते थे उतने ही कम वेगसे वे अक्षपर घूम सकते थे। इसका फल यह हुआ कि यह उपग्रह अपनेलिए पुनः एक भी उपग्रह न बना सके। बेबस हो उपग्रह होनेके बदले इन टुकड़ोंने छल्लोंकी नाईं ग्रहके चारों ओर फैल जानेपर संतोष कर लिया। अन्य उपग्रहोंके समान उन छल्लोंके कण भी ग्रहोंके चारों ओर घूमा करते हैं। शनि तथा वारुणी (uranus) में ऐसे छल्ले देखे गये हैं। अपनी पृथ्वीने भी एक उपग्रह उत्पन्न किया है और वही अपने चन्द्रदेव हैं। चन्द्रदेव भी अद्भुत हैं परन्तु इनके गुणगानका अभी अवसर नहीं है। अभी उनकी मातु श्री पृथ्वीका वर्णन करना ही उचित है। चन्द्रदेव छोटे होनेके कारण शीघ्र ही जल रहित तथा निर्जीव हो गये। आपकी निर्बलताका अनुमान इसीसे हो सकता है कि आप अपने अक्षपर पूरे २७ दिन $7\frac{2}{3}$ घंटेमें पूरा चक्कर लगा सकते हैं। परन्तु तो भी आप अपनी जननीकी अनेक रीतियोंसे सेवा करते रहते हैं। आप ही समुद्रमें बड़े ज्वार भाटा उत्पन्न करते हैं। रात्रिमें अपने मनोहारी निर्म्मल प्रकाशके कारण पृथ्वीके जीवोंमें आप निशापतिके नामसे तो प्रसिद्धि ही हैं पर अपने अमृत कणोंको बरसाकार प्राणीमात्रकी जीवनाधार बनस्पतियोंको आल्हादित करनेके कारण आप औषधिपति हो गये हैं।

जब पृथ्वीने अपने उपग्रह चन्द्रमाको निकाल फेंका तब भी वह बड़े वेगसे अपने अक्ष रेखापर चक्कर लगा रही थी। उसके वेगका अनुमान इसीसे हो सकता है कि उस समय दिन केवल ३ घंटेका होता था। क्रमशः पृथ्वीकी उष्णता आकाशमें लोप होने लगी और उसका पहला वाष्प रूप बदलने लगा उसके वाष्प जमकर तरल रूपमें परिणत होने लगे। इसी समयमें जलते हुए समुद्र तथा लोहे और सोनेकी उबलती हुई खानें बन गयीं और इसी दशामें पृथ्वीकी अक्षके चारों ओर घूमनेकी शक्तिके कारण पृथ्वी ध्रुवोंपर चपटी हो गयी। उन दिनों जब कि केवल ३ घंटेका दिन और ३ घंटेकी रात विषुवत रेखापर होती थी, संसारमें चन्द्रदेव तथा सूर्य्यके आर्कषणसे छै सौ मील ऊंचे ज्वार भाटे आया करते थे। इन ज्वार भाटोंके कारण संसारके तरल पदार्थ धरातलसे उठ जाते थे और पृथ्वीकी गतिपर रेलके ब्रेकका कार्य्य पूर्ण करते थे। अक्षके चारों ओर घूमनेकी गति क्रमशः यहाँतक धीमी होती गयी कि आजकल हम लोगोंका १२ घंटेका दिन और १२ घंटेकी रात्रि होती है, और यद्यपि आजकल ज्वार भाटे बहुत छोटे हो गये हैं तथापि दिन धीरे धीरे बड़े होते जाते हैं और लाखों सालमें एक आध सेकंड बढ़ जाते हैं।

जब संसारपर द्रव पदार्थ भी कुछ ठंढे हुए तो कहीं कहींपर ठोस पदार्थ जमने लगे। इस प्रकार संसार अपने जीवनकी भिन्न भिन्न दशाएं अलग अलग पूरा करने लगा। परसीवेल लावेलके मतानुसार पृथ्वीकी छै दशा होती हैं।

(१) सूर्य्य दशा जब कि वह स्वतः एक चमकते हुए तारेकी नाईं वाष्पका गोला रहती है।

(२) द्रव दशा जब वह गरम परन्तु ज्योति रहित होती है।

(३) जमनेकी दशा जब कि ठोस सतह बन जाती है और समुद्रोंकेलिए गड़हे बन जाते हैं।

(४) जल-पृथ्वीदशा जब जल भली प्रकार पृथ्वीपर वहने लगता है। इस अवस्थामें पृथ्वी जीवन-युक्त हो जाती है।

(५) स्थूल पृथ्वीदशा जब कि समुद्र लोप हो जाते हैं।

(६) निर्जीवदशा जब वायु भी लोप हो जाती है।

पृथ्वीकी आधुनिक कालमें चतुर्थ दशा है। जब पृथ्वी तृतीयदशामें आयी तब ही जल बनने लगा। अब एक आश्चर्यजनक घटना हुई। जीवाद्यमकेलिए केवल ६ तत्वोंकी आवश्यकता होती है। यह तत्व जब नियुक्त परिमाणमें मिल जाते हैं और उष्णताप भी यदि नियत कक्षाकी है तो जीवन संपादन अवश्य ही हो जाता है। यह छै तत्व कारबन (carbon) उज्जन (hydrogen) ओषजन (oxygen) नत्रजन (nitro-gen) स्फुरज (phosphorous) और गंधक (sulphur) हैं। उस समय ये छहों तत्व पृथ्वीपर विद्यमान थे। उनमें उष्णता तथा जलकी प्रचुरता थी परन्तु ताप कम था। ऐसे समयमें वनस्पतियोंकी उत्पत्ति कोई आश्चर्यजनक वात नहीं। अब धीरे धीरे नई नई बनस्पतियां उत्पन्न होने लगीं। वैज्ञानिकोंका मत है कि संसारमें जोवदान उन्हींके गुणोंके कारण हुआ, किसी उल्कापात या अन्य दैविक प्रयोगसे उसमें बाहरसे जीव परमाणु नहीं आये। उनका यह भी मत है कि समुद्र ही में प्रथम जीवनयुक्त बनस्पति तथा पश्चात् जीवधारी उत्पन्न हुए। इसी कारण यह निश्चय है कि वे टुकड़े जो दूसरे ग्रह हुए हैं यदि एक दम ठंढे नहीं हो गये तो अवश्य जीवन युक्त हैं या होंगे क्योंकि जिन तत्वोंसे जीवाद्यमका निर्माण होता है वे तत्व सूर्य्यमें प्रचुरतासे पाये जाते हैं और दूसरे ग्रहोंमें भी अवश्यमेव हैं। उल्कापातोंके कारण जो पत्थर पृथ्वीपर आते हैं उन सवमें ये तत्व मिला करते हैं।

बनस्पतिके उपरान्त क्रमशः जीवधारी प्रकट होने लगे। विज्ञान शास्त्रसे यह अबतक स्पष्ट अनुसंधान नहीं हो सका है कि किस समय और कैसे बनस्पति जीवधारियोंमें परिणत हो जाती है। इतना अवश्य है कि यदि ब्रह्मांड बड़ा हो तो ठंढा होनेपर उसमें जोवधारी किसी न किसी प्रकार अवश्य प्रकट होंगे।

जब पृथ्वी ठंढी होने लगी तो जीवधारी चारों ओर पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे। उस समयके जीव अत्यन्त दीर्घ शरीरधारी तथा बलवान होते थे। संसारमें बड़े बड़े दलदल पाये जाते थे। उन्हींमें ये जीव रहा करते थे। ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ कि जीवधारी न हों। मरे साहेबने एक बड़ी ठोस बर्फ़की चट्टानमें १५ फुट छेद करनेपर अनेक जीव पाये। ये जीव वहाँ बरसोंसे रहते थे। ये जीव अनेक प्रकारके थे। उनमेंसे कुछ तो केवल $\frac{१}{२५}$ इंच लम्बे थे। डार्विन साहबके मतसे जिस मतको संसारके सभी विद्वान मानने लगे हैं सकल जीवधारियोंका कालान्तरमें विकाश होनेके कारण रूपान्तर हो जाता है। इसी प्रकार पुराने प्राणी एक रूपसे दूसरेमें बदलते रहे। कुछ प्राणियोंमें मानसिक शक्तियोंका विकाश होता रहा और अन्तमें वे बन्दर हुए। बन्दरोंका विकास मनुष्योंमें हुआ। मनुष्योंमें सत्यासत्य विवेचन शक्ति उत्पन्न हो गयी और वे भी विकाश मार्गमें उन्नति करते ही गये। अग्नि तथा वाष्प यन्त्रोंका अविष्कार हुआ। मनुष्य धीरे धीरे ज्ञानके शिखरपर चढ़ते चढ़ते उस दशामें पहुंच गये जिस दशामें वर्तमानकालमें हम उनका दर्शन करते हैं।

अब भविष्यमें क्या होगा सो मनुष्य नहीं कह सकता परन्तु जिस प्रकार नियमानुसार संसार सदा परिवर्तित होता रहा है यदि इसी प्रकार संसारकी प्रकृति रही तो अवश्य ही वह भविष्य अंधकारमय है। सूर्य्यके परमाणु सदा उसके केन्द्रकी ओर सरक रहे हैं और सूर्य्यकी

उष्णता दिन दिन कम होती जाती है। कई करोड़ बरसोंमें यदि उसके पहले कोई घटना न हुई तो सूर्य्य ठंढा हो जायगा और फिर उसके कई करोड़ पीछे पृथ्वीकी नाईं उसमें हरियाली तथा जीवधारी उत्पन्न होंगे। उस समयतक संसार तथा सौर जगतके अनेकानेक ग्रह जल रहित, वायु रहित होकर धीरे धीरे सूर्य्य के चारों ओर निर्जीव भ्रमण करेंगे और सूर्य्यके निकट पहुंच जायंगे। अब भी संसारके समुद्र कम गहरे होते जा रहे हैं वर्षा पहलेसे कम होती जाती है। कुछ जल संसारके केन्द्रकी ओर सरकता जा रहा है और कुछ वायुमंडलसे निकल आकाशमें चला जा रहा है। जब जल कम होगा तथा वायु भी कम हो जायगी तब जीवधारी भी कम होंगे परन्तु ईश्वरकी कृपासे ऐसा समय अभी बहुत दूर है।

तबतक मनुष्य उन्नति-मार्गपर चलते रहेंगे और यदि डार्विन साहबका मत सत्य है तो कई हज़ार बरसोंमें मनुष्योंके पर निकलने लगेंगे क्योंकि मनुष्य जाति वायुविचरणके अनेक प्रयत्न कर रही है। वे तबतक मछलीकी नाईं जन्म ही से पर भी पाने लगेंगे। इसप्रकार संसार अपने नाशके दिनोंकी ओर चला जा रहा है। और मनुष्य जाति उत्तरोत्तर ज्ञान संपादन करती है। हे ईश्वर आप वरदान दें कि इस उन्नतिके आकाश-भेदी शिखरपर यह जाति शीघ्र पहुंच जाय। जिसमें इस महोन्नत दशामें रहनेका उसे बहुत समयतक अवकाश मिले। मनुष्यगण, तुम भी अपनेको उन्नतिके मार्गके योग्य बनाओ और बुद्धि तथा शुद्ध आचरण द्वारा उन्नतिके शिखरपर जिसे आनंद शिखर कह सकते हैं पहुंचनेका मनसा वाचा कर्मणा प्रयत्न करो। आश्चर्य्य नहीं कि ऐसा करनेसे नाश होनेके पूर्व हो तुम मृत्युञ्जय बन सको।

चिड़ियोंका संसार

[ले० श्री हृदयनारायण मेहरोत्रा]

यों तो सभी जानते हैं कि चिड़ियाँ क्या चीज़ हैं, ये किस प्रकारके जीव हैं, कहाँ रहती हैं और किस प्रकार अपना पेट पालती हैं,पर ऐसे सभी मनुष्य नहीं हैं जिन्होंने दो चार भाँतिकी चिड़ियाँ पाली हों और उन्हें पालकर यह जाननेकी कोशिश की हो कि वे किस प्रकार अपने अंडे सेतीं हैं, छोटे बच्चोंको खिलाती हैं और बड़ा होनेपर उन्हें चलना फिरना और उड़ना सिखाती हैं। ये सब बातें पालतू चिड़ियोंमें स्वाभाविक दशामें नहीं पायी जातीं क्योंकि उनको उनकी जीवनोपयोगी चीज़ें पिंजरेके अंदर या उसके पासही दे दी जाती हैं इससे उनको कुछभी परिश्रम नहीं करना पड़ता। उनके ये काम और उनका स्वाभाविक रहन सहन हम तभी जान सकते हैं जब हम यह जान लें कि घोसलेमें रहनेवाली चिड़ियाँ किस प्रकार अपना घर बनाकर अंडे देतीं और सेतीं तथा अपना और अपने बच्चोंका पेट पालती हैं।

चिड़ियाँ भी मनुष्यकी तरह रातको अपने बाल बच्चोंको लेकर अपने अपने घर अर्थात् घोसलेमें चुपचाप सोया करती हैं। यदि कोई मनुष्य किसी घने जंगलमें जिसमें कि चिड़ियोंके बहुतसे खोते हों रातको जाय तो उसको वहांपर वैसाही सुनसान मालूम होगा जैसा कि कुछ रात बीते घनी बस्तीमें मालूम होता है। बस्तीमें इस सुनसानके बीच कभी कभी पहरा देनेवालोंकी आवाज़ सुन पड़ती है और कहीं कहीं दो चार चोर आपसमें धीरे धीरे अपने घातकी बातें किया करते हैं। लेकिन चिड़ियोंमें कोई पहरा देने वाला नहीं होता। हाँ, इनमें चोर

Toology जीव विज्ञान]

अवश्य होते हैं और ये चोर बड़ी कड़ी आवाज़से बोलते हैं क्योंकि इनको पहरेवालेका डर नहीं होता। इन उड़ने वाले चोरोंमें दो का नाम तो सभीने सुना होगा। एक तो उल्लू और दूसरा चिमगादड़ है। इनमेंसे चिमगादड़को लोग उड़नेवाला जानवर कहते हैं अर्थात् इसकी गिनती चिड़ियोंमें नहीं होती क्योंकि इसके दांत भी होते हैं। रातमें जब ये चोर बोलते हैं तो चिड़ियों-के बच्चे डरकर अपनी मांके पंखके नीचे और भी सिकुड़ जाते हैं और उस समयतक ऐसेही सिकुड़े पड़े रहते हैं जबतक कि बुलबुल या और कोई चिड़िया अपनी मीठी और सुरीली आवाज़से इस बातका ढिंढोरा नहीं पीट दे कि अब थोड़ीही देरमें सूर्य भगवान् अपने किरणोंके प्रकाशसे इन चोरोंको दूर भगायेंगे।

इस शुभ समाचारको सुनकर प्रत्येक चिड़िया अंगड़ाई लेने और अपना पंख फटकारने लगती है और थोड़ीही देरमें अपने अपने घोसले-से निकलकर पेड़ोंकी चोटीपर पहुंचकर सूर्य-नारायणको धन्यवाद देती और उनकी किरणों-का स्वागत करती हैं। इन चिड़ियोंने और इनके बच्चोंने रातभर कुछ नहीं खाया है क्योंकि यह उन मनुष्योंकी भाँति नहीं होतीं जो चैती और कुंआरकी फ़सल काटकर सालभरका खाना घरमें रख लेते हैं। बल्कि यह उन बेचारे ग़रीब मनुष्योंकी भाँति हैं जिनका काम रोज़ कुआँ खोदना और रोज़ पानी पीना है। इसलिए इन बेचारी चिड़ियोंको सबेरा होतेही भूख सताने लगती है और यह अपना और अपने बच्चोंका पेट भरनेकी कोशिशमें लग जाती हैं। उनके खानेको देखकर हम चिड़ियोंको दो भागोंमें रख सकते हैं। एक तो वे चिड़ियाँ हैं जिनके कड़ी चोंच नहीं होती, ये प्रायः छोटे छोटे जीव जंतु और कीड़े मकोड़े खाकर रहती हैं; दूसरी वह चिड़ियां जिनकी चोंच कड़ी होती है और नाज और नाजसे भी कड़ी चीज़ोंको तोड़ कर खा जाती हैं। दोनों तरहकी चिड़ियाँ सबेरेका भोजन (नाश्ता) करनेकेलिए प्रायः कीड़े मकोड़ेही लाती हैं और बादको कड़ी चोंचवाली चिड़ियाँ कुछ दिन चढ़नेपर नाजकी खोजमें निकलती हैं।

जिस समय चिड़ियाँ कुछ खाना अपने बच्चोंकेलिए लेकर अपने घोंसलेको आती हैं उनकी आवाज़ और आहट सुनतेही उनके बच्चे चीं चीं करते हुए ऐसा मुँह बाते हैं कि मानो अब वे बिना कुछ खाये एक मिनट भी नहीं जी सकते। बहुतेरी या क़रीब क़रीब सब चिड़ियोंके एकसे अधिक बच्चे होते हैं पर वे एकबारमें सबकेलिए खाना नहीं लासकतीं। बारी बारीसे सबकेलिए लाती हैं और सबको बारी बारीसे खिलाती हैं। ऐसा कभी नहीं होता कि किसी चिड़ियाका एक बच्चा भूखों मरजाय और दूसरा अधिक खानेसे पेट फूलकर मरजाय। चिड़ियाँ यह जाने रहती हैं कि उन्होंने पहली बार किसे और दूसरी बार किसे खिलाया था और अब किसकी बारी है। परमात्माने उन्हेंभी इतनी बुद्धि दी है कि वे इन सब बातोंको सहजमें समझ लें। उनको पहचाननेकी ताक़त बहुत होती है।

अबाबील एक चिड़िया होती है जो सर-दीके दिनोंमें ठंढे देशोंसे निकल जाती है और गरमी आतेही फिर उसी देशके उसी शहरमें और उसी गांवमें उसी पेड़पर या उसी घरमें फिर खोता लगाती है जहाँ पिछले साल लगाया था। एक मनुष्यने इस बातकी जांच करनेके-लिए एक अबाबीलपर कुछ ऐसे निशान लगा दिये जो मिट न सकें। उसने यह देखा कि वह चिड़िया सर्दीमें कहीं उड़ गयी पर गरमी आतेही उसी पेड़पर फिर आगयी।

कोयल और अबलखा या सारिक (star-ling) बड़े तड़के उठने वाली चिड़ियाँ हैं। लवा को भी लोग बहुत सबेरे उठने वाली चिड़िया

बताते हैं लेकिन अबलखा उससे भी सबेरे उठती है। वह थोड़ी देरतक उस पेड़की डालियोंपर जिसपर कि उसका खोता हो, इधर उधर फुदकतो और चहचहाती है जिसके बाद वह खानेकी खोजमें निकल जाती है। यह चिड़िया अपने और अपने बच्चोंके खानेकेलिए छोटे छोटे कीड़े, मकोड़े, घुन, गोबरइला, सूँड़ा, घोंघा इत्यादि ले आती है। उसके एक बारके खाना लानेसे बच्चोंका पेट नहीं भरता बल्कि उसे दिनभर यही करते बीतता है।

थोड़ेही बरस बीते होंगे कि एक मनुष्यने कई दिनोंतक इस बातकी जाँच की कि यह चिड़िया दिनमें कितने बार अपने बच्चोंकेलिए खाना लाती है। उसने देखा कि दो अबलखें दिनभरमें तीनसौ बार अपने खोतेसे कीड़े मकोड़ोंके खोजमें गयीं और कुछ कुछ लेकर लौटीं। यह चिड़िया अपने बच्चोंकी बड़ी ख़बरदारी करती है। इसलिए कभी कभी जब उसे शिकार मिलनेमें देर होती है तो बिना कुछ लिये ही अपने खोतेको लौट आती है और बच्चोंको देख कर फिर चली जाती है। जब कभी इसको पासही अधिक खाना मिल जाता है तो यह इतनी जल्दी जल्दी फेरे लगाने लगती है कि एक घंटेमें पचीस फेरेतक लगा लेती है। शिकारकी कमी पड़नेसे पचीसही फेरोंमें तीन घंटेतक लग जाते हैं। कुछ भी हो ऐसा देखा गया है कि दिन भरमें कमसे कम तीन सौ ऐसे फेरे यह चिड़िया लगा लेती है कि जिनमें कुछ न कुछ बच्चोंके खानेकेलिए अवश्य लाती है। इस दशामें बच्चोंके पेट ठसाठस भर जाते हैं और पेट भरनेपर भी जब उनके माता पिता घोसलेको आते हैं तो ये बच्चे ऐसी आवाज़से चिल्लाते हैं मानो भूखके मारे उनके प्राण निकल रहे हों।

एक बार ऐसा देखा गया कि तीन चिड़ियाँ एक साथ खाना लेकर एक ही खोतेपर जा बैठीं और बच्चोंको खिलाने लगीं। इनमें से दो तो उन्हीं बच्चोंके माता पिता थे और एक कोई और चिड़िया भूलकर उस घोसलेपर आगयी थी। उन दोनों चिड़ियोंने इससे कुछभी न कहा क्योंकि वे जान गयी थीं कि यह चिड़िया खाना लायी है और हमारे बच्चोंको खिलायेगी। यदि यह चिड़िया किसी और मतलबसे आती तो वे दोनों उसको उसी दम मार भगातीं। इससे यह मालूम होता है कि चिड़ियोंको भी उड़ती चिड़िया पहचाननेकी ताक़त होती है।

जिस समय चिड़ियोंके बच्चे बहुत छोटे होते हैं और कीड़े मकोड़े या नाज हज़म नहीं कर सकते तो उन बच्चोंके मा बाप हज़म किया हुआ खाना या उसीसे निकला हुआ एक प्रकारका दूध पिलाते हैं। कबूतर अपने खाये हुए खानेसे एक प्रकारका दूध (pigeon's milk) बनाते हैं और जब बच्चोंको पिलाना होता है तो वे अपना मुँह खोल देते हैं और बच्चे अपनी चोंच उसके अंदर कर देते हैं। ऐसा करनेपर कबूतर इस दूधको मुँहसे उगलते हैं और बच्चे पीते जाते हैं। जब यह बच्चे कुछ बड़े हो जाते हैं तो कबूतर उनको खाया हुआ नाज जोकि आधा हज़म हो चुकता है उसी भाँति खिलाते हैं और धीरे धीरे करके छोटे छोटे नाजके टुकड़े खिलाने लगते हैं।

कीड़े मकोड़े खानेवाली चिड़ियां पेड़ पौधोंके साथ बड़ा उपकार करती हैं। पिद्दी एक बारमें छः सात बच्चे देती है। नर और मादा पिद्दी दोनों इन बच्चोंकेलिये खेतोंसे ऐसे कीड़े पकड़ कर लाती हैं जो कि पत्तियोंको जिनपर पेड़का जीवन निर्भर है खा जाते हैं। यह चिड़ियाँ दिनमें बारह घंटे बच्चोंके खानेकेलिए कीड़े लाया करती हैं। यदि नर और मादा दोनों हर घंटेमें तीस तीस कीड़े लायें तो एक दिनमें वे ७२० कीड़े साफ़ कर देंगे। इनके बच्चे लगभग

२० दिनमें बड़े हो जाते हैं इसलिए बीस दिनमें यह बच्चे १४८०० कीड़े खा जायँगे । जब इन बच्चोंके बाल बच्चे होंगे तब तो अनगिनतियों कीड़े ख़तम हो जायंगे ।

बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने इस बातका पूरा पता लगा लिया है कि चिड़ियोंकी नसल रेंगने वाले जानवरों [जैसे छिपकली, गिरगिट, बिसखोपड़ा इत्यादि] से है । इनके अगले पैर बढ़कर डैने और पर बन गये हैं । इस बातकी सच्चाई तभी मालूम होगी जब हम यह रोज़ देखते रहें कि चिड़ियोंके बच्चे जिस दिनसे अंडेसे निकलते हैं और जतबक पूरीतौरसे बढ़ नहीं जाते क्या क्या सूरतें बदलते हैं । पर निकलनेके पहले उनके बाज़ूमें अँगूठे और उंगलियां नाखून सहित दिखायी देती हैं । यही रेंगनेवाले जानवरोंके अगले पैर हो जाते हैं और चिड़ियोंके डैने । बहुत दिन पहले चिड़ियाँ उड़ नहीं सकती थीं केवल थोड़ा थोड़ा इस डालीसे उस डालीपर फुदकती थीं और अपने पिछले और अगले पैरोंके बल रेंगती और पेड़ोंपर चढ़ती थीं । उस समय पर पूरे तैय्यार न थे । चिमगादड़के बाजू जिनपर अभीतक पर नहीं हैं और छोटे छोटे नाखून मौजूद हैं पुरानी बातका पूरा सबूत देते हैं । चिड़ियोंके डैनोंमें जब पर निकल आयेतो नाखूनकी ज़रूरत न रही और वे झड़ गये । बहुतेरी चिड़ियोंके पैरके कांटे (Scales) बहुतसे रेंगने वाले जीवोंसे मिलते हैं । चिड़ियोंका रुधिर सब जानवरोंसे अधिक गर्म होता है और रेंगनेवाले जानवरोंका रुधिर ठंढा होता है लेकिन इनकी बनावटमें उनके रक्ताणु (corpuscles of blood) एक दूसरेसे बहुत मिलते हैं । चिड़ियाँ अपने अंडे सेती हैं, रेंगने वाले जीवोंके अंडे बिना सेये धूपकी गरमीसे आपही आप बढ़ते हैं । परन्तु अबतक बहुतेरी ऐसी चिड़ियां पायी जाती हैं, जैसे फ़ील मुर्ग़ या पीरू (turkeys) जो अपने अंडे पत्तियोंसे ढक देती हैं । ये अंडे सूर्यकी गर्मीसे आपही आप बढ़कर फूट जाते हैं और बच्चे निकल जाते हैं ।

यह चिड़ियोंकी सृष्टिका थोड़ासा वर्णन है । जितना हम उसमें घुसकर पता लगाते जाते हैं उतनीही अधिक अद्भुत बातें हमें मालूम होती हैं । संसारमें सदैव कुछ न कुछ नयी बातें सीखनेको रहतीही हैं । यद्यपि वैज्ञानिकोंने इस "संसार" का बहुत कुछ पता लगाया है तथापि परमात्माकी सृष्टिके किसी विभागका पूरा पूरा पता लगाना उनकी शक्तिके बाहर है ।

स्थान निर्णय

भुज समुदाय ज्यामिति

[ले० श्रीयुत रामस्वरूप भार्गव बी. ए.]

बाल, कृष्ण और नारायण तीनों भाई एक ही स्कूलमें पढ़ा करते थे–बाल और कृष्ण सातवीं कक्षामें थे और नारायण तीसरीमें । एक दिन पाठशालासे लौटकर नारायणको, उसके दोनों बड़े भाई खिलाने लगे । इनके पिताने भी आठ शीशेकी गोलियां नारायण को देदीं । थोड़ी ही देरमें नारायण इन गोलियोंको, अपने घरके चौखूंटे चौकमें इधर उधर डाल कर अन्दर चला गया । अब बाल, कृष्ण और उनके पितामें इस प्रकार बातें होने लगीं ।

पिता–बाल ! देखो यह गोलियां एकही आकार और रङ्गकी हैं । यदि हम किसी विशेष गोलीको तुमसे उठवाकर मंगवाना चाहें, तो हम तुम्हें उसे कैसे बतावें और तुम उसे कैसे पहचानोगे ।

बाल–पिता जी यह तो सब एक ही रंगकी हैं और आकार भी बराबर है । इनमें किसी प्रकारका भेद होता तो मैं अवश्य पहचान लेता । अब तो यही उपाय है कि मैं प्रत्येक गोली

को जाकर छूऊँ, जिस गोलीको आप उठवाकर मंगाना चाहते हों, उसको स्पर्श करनेपर आप मुझे उठानेकी आज्ञा दें, मैं उठा लाऊँगा।

पिता—कृष्ण तुम्ही कुछ उपाय बतलाओ।

कृष्ण—यह गोलियां भिन्न भिन्न स्थानोंपर पड़ी हुई हैं। इस भेदपर विचार करके उस विशेष गोलीको उसके स्थानसे सूचित कर सकते हैं।

पिता—अच्छा अब हम इन गोलियोंपर छोटे छोटे कागज़के टुकड़े संख्या लिखकर चिपकाये देते हैं।

बाल—फिर तो किसी भी गोलीको उसपर दी हुई संख्यासे लक्षित कर सकते हैं।

पिता—यदि संख्या न दें तो क्या करोगे ?

कृष्ण—तो अवश्य कठिनाई होगी।

पिता—यह संख्या केवल इस कारणसे देते हैं कि समझनेमें आसानी हो (यह कहकर आठों गोलियोंपर संख्या देदी) अब बतलाओ कि २री गोलीका स्थान कैसे निश्चित हो—

बाल—यह तो बड़ी आसान बात है—उत्तरकी दीवारसे (नाप कर) ४ हाथ है।
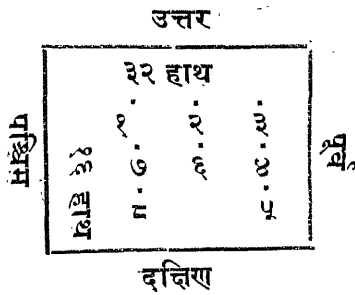
कृष्ण—परन्तु १ली और तीसरी भी तो लगभग ४ हाथ ही की दूरीपर हैं।

बाल—तो इनकी दूरी दक्षिणकी दीवारसे नाप लो।

कृष्ण—दक्षिणकी दीवारसे भी यह बराबर ही की दूरीपर होंगी। परन्तु एक बात अवश्य है कि यद्यपि यह दोनों गोलियां उत्तर और दक्षिणकी दीवारसे बराबर दूरीपर हैं, परन्तु पश्चिम या पूर्वकी दीवारोंसे भिन्न भिन्न दूरीपर हैं। अतः इनका स्थान उत्तर या पश्चिमकी दीवारोंसे इनकी दूरी निकालनेसे निश्चत हो जायगा।

१ली ही गोली ऐसी है जो उत्तरकी दीवारसे ४ हाथ और पश्चिमकी दीवारसे ५ हाथ है ३री गोली पश्चिमकी दीवारसे २८ हाथ है।

पिता—यदि हम यह निश्चय करलें कि उत्तरकी दीवारसे दूरी पहले दिया करेंगे और पश्चिमकी दीवारसे पीछे तो १, २, ३, ४ का तो स्थान इस प्रकार दिया जा सकता है:-

१ ली का स्थान	४, ५
२ री ,,	४, १५,
३ री ,,	४, २८
४ थी ,,	१२, २८
६ थी	८, १६ इत्यादि

बाल—इस प्रकार तो कागज़पर दिये हुए विन्दुओंके स्थानका निर्णय हो सकता है।

पिता—हां ठीक कहा। परन्तु कागज़पर दीवारोंकी बजाय दो रेखाएँ ले लेते हैं और उनसे दूरी नाप लेते हैं।

बाल—यह रेखा समानान्तर होनी चाहिएं या किसी और प्रकार की ?

पिता—बाल,—तुम भूल गये। तुमको बतलाया था कि उत्तर और दक्षिणकी दीवारोंसे दूरी नापनेसे काम न चलेगा, हमको ऐसी दो दीवारोंसे अन्तर नापना पड़ा था जो मिलती हों। यहाँ भी हमको ऐसी दो रेखा लेनी पड़ेंगीं जो मिलती हैं, चाहे एक रेखाएं दूसरेकी लम्ब हो चाहे वे झुकी हुई रेखा हों। प्रायः झुकी हुई नहीं ली जातीं। मान लो कि दो रेखाएँ मभ और मक म पर मिलती हैं। म को मूलबिन्दु मभ को भुजरेखा और मक को कोटिरेखा कहते हैं।

कोई विन्दु मभ मक के बीचमें लेलो। उससे (व से) वट और वश मभ और मक पर लम्ब डालो। यह स्पष्ट है कि

ब की दूरी मभ से = बट = शम
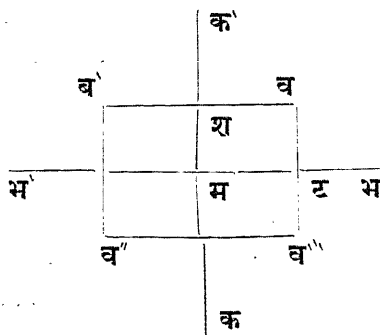
" " " मग " = बश = मट

इस विन्दुका स्थान शम, मट, से निश्चित होता है। शम और मट ब के भुज युग्म कहे जाते हैं।

शम ब की कोटि और मट उसकी भुज कहलाती है।

प्रत्येक विन्दुका स्थान देते हुए भुज पहिले और कोटि पीछे दी जाती है, इस प्रकार ब विंदु का स्थान हुआ (मट, मश)।

अब कम और भम को क' और भ' तक बढ़ादो बश को ब' तक इस प्रकार बढ़ाओ कि ब'श = बश'। मभ' पर ब'ट' लम्ब गिरा दो। अब यह स्पष्ट है कि विन्दु ब' का अन्तर मभ और मक से उतना ही है, जितना कि ब' का। इस तरह ब'' और ब''' का भी अन्तर इन रेखाओंसे उतना ही है जितना ब का।

अब प्रश्न यह उठता है कि इन विन्दुओंमें कैसे भेद किया जा सकता है।

इसका उपाय इस प्रकार निकाला गया है। जो अन्तर कि मक और मभ पर नापे जायें, वह घनात्मक और जो कि मभ, मक पर नापे जायें, वह ऋणात्मक माने जाते हैं ; इस रीतिसे—

ब' का स्थान हुआ (–मट, मश,)
ब'' " " " (-मट,-मश)
ब''' " " " (-मट,-मश)

इससे मालूम होगा कि जितने विन्दु कम भ में होंगे, उनके भुज और कोटि दोनों घनात्मक होंगे, कम भ' में भुज ऋणात्मक और कोटि घनात्मक होंगे, भ' म क' में भुज और कोटि दोनों ऋणात्मक और भ म क' में भुज घनात्मक और कोटि ऋणात्मक होंगी यह नियम नीचे दिये चित्रमें दिखलाया गया है—
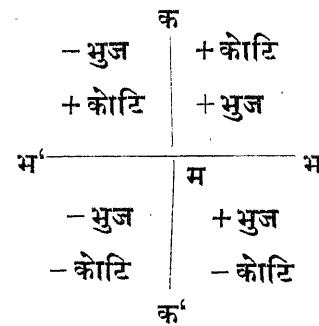
यह नियम इस प्रकार भी कहा जा सकता है भभ रेखाके ऊपर कोटि घनात्मक और उसके नीचे ऋणात्मक होती है। क क' की दाईं ओर भुज घनात्मक और उसकी बाईं ओर ऋणात्मक होती है'।

बाल—पिता जी कुछ उदाहरण दीजिये।

पिता—अच्छा, (३,५) विन्दुको लक्षित करो।
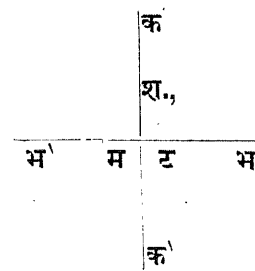
बाल—मभ पर हम मट तीन इकाईके बराबर काट लेंगे इसी प्रकार मश पांच इकाईके बराबर नापकर ट और श में से टब और शब; मभ और मक पर लम्ब खींच लेंगे, जहां यह मिलेंगे, वही विन्दु ब (३, ५) होगा ?

पिता—मानलो कि इस विन्दुके भुज युग्म फुटोंमें दिये हुए हैं, तो क्या मट तीन फुटके बराबर लोगे ?

बाल—तो अवश्य कठिनाई होगी। यदि

भुजयुग्म गज़ोंमें दी जायं तो और भी मुशकिल होगी; गज़ों लम्बे चौड़े कागज़ लेने पड़ेंगे ।

पिता—तुम बिलकुल भूल गये । भूगोलमें हज़ारों कोस लम्बे चौड़े देशोंके नक़शे तुमने एकही पृष्ठपर दिये हुए देखे होंगे वहां क्या किया जाता है ?

कृष्ण—नक़शोंपर कुछ स्केल 'Scale' दिया हुआ तो होता है ।

पिता—इस शब्दका अर्थ तुम भली प्रकार नहीं समझे । देखो, यदि हम मानलें कि नक़शेमें एक इकाई (इञ्च या सेंटीमीटर) एक मीलकी सूचक है, तो दस मीलका फ़ासला नक़शेमें दस इञ्चोंसे दिखलाया जायगा । यह तुमने एक परिमाण (Scale) मान लिया । इसकी सहायतासे मीलोंके फ़ासले इञ्चोंसे दिखलाये जा सकते हैं । नक़शेपर दिये हुए दो स्थानोंकी दूरी इञ्चोंमें नाप सकते हैं और उनको मीलोंमें बदल सकते हैं । मानलो कि किसी नक़शेमें परिमाण यह दिया हुआ है, कि १ इञ्च = ५०० मील, तो बताओ कि उसपर ४ इञ्चकी दूरीपर दिये दो स्थानोंका कितना अन्तर है ?

कृष्ण—उनका अन्तर २००० मील है ।

पिता—चित्रमें दिये हुए बिन्दुओंके भुजयुग्म बतलाओ ।
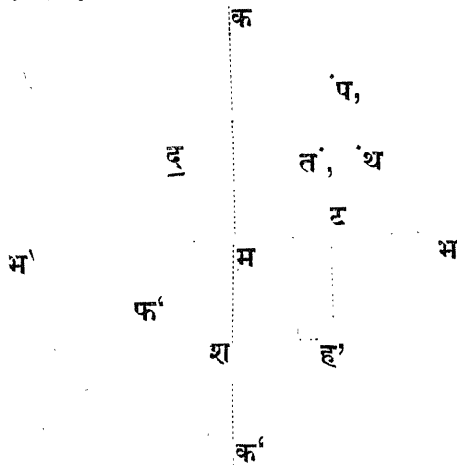
बाल—ह से हम हट, हश लम्ब मभ, मक पर गिरादें मट और मश को नापलें मट = ४ शम = −४ इसलिए ह का स्थान (४,−४) इस प्रकार त, थ, प, द, फ के स्थान (२, ३), (३, ३), (३, ५) (−२, २) और (−२,−२) हैं

पिता—ट और श के भुजयुग्म बताओ ।

कृष्ण—ट की कोटि = ०, इसलिए उसका स्थान हुवा (४, ०), श का स्थान हुवा (०,−४) क्योंकि उसका भुज = ० और कोटि = ४

बाल—पिताजी इससे कुछ लाभ भी है या यों ही समय नष्ट करना है ।

पिता—यह फिर कभी तुम्हें बतायेंगे ।

दैवी आविष्कार ।

[ले० श्रीयुत नवीनानन्द]

बहुतसे वैज्ञानिक आविष्कारोंकी कथा बड़ी ही विचित्र है । बीमारी, आलस्य, भूलचूक और टूटने फूटनेकी घटनाओंने बिना प्रयास ही मनुष्यको बड़े महत्वकी शक्तियां दे डाली हैं । आज हम इन दैवी घटनाओंमेंसे कुछ महत्वपूर्ण घटनाओंका वर्णन करते हैं ।

* * * * *

आजकल संसारमें नक़ली रङ्गोंका अधिक प्रचार है; नक़ली रङ्गोंने असली रङ्गोंके बड़े बड़े ब्यवसायोंको बिलकुल लेडाला है । भारत वर्षके नीलके ब्यवसायहीको देखिये, नक़ली नीलके बन जानेसे न जाने कितने लोगोंका दिवाला निकल गया है । ज़रा नक़ली अर्ग़वानी और नीले रङ्गके आविष्कारोंके इतिहासको भी सुन लीजिये ।

१८२४ ई० में लन्दनकी रायल सोसायटी (Royal Society) के सामने प्रसिद्ध वैज्ञानिक

general साधारण]

फ़ैरेडेने एक भरी हुई बोतल लाकर रखदी। जब वह गरमीके ज़ोरसे तेलमें मिली हुई द्रव्योंका अङ्ग भङ्ग कर रहे थे तो उन्हें उज्जन (hydrogen) और कर्बन (carbon) का एक ऐसा संयुक्त तरल पदार्थ मिला जिसे पहले किसी वैज्ञानिकने न खोज पाया था। इस पदार्थ-का नाम बेंज़ीन (benzene) है। यही बेंज़ीन उसने सोसाइटीके सामने पेश किया था।

अब तो बेंज़ीन तारकोलसे भभके के द्वारा बहुत निकलती है। बेंज़ीनसे रासायनिक प्रयोगों द्वारा एक पदार्थ अनैलीन (anniline) बनता है। यह अनैलीन तारकोलसे भी निकाली जाती है। इंग्लैंडके प्रसिद्ध रासायनिक सर विलियम पर्किन क्यूनाइन एल्कोलायड (quinine alkaloid) नामक एक प्रसिद्ध पदार्थके बनानेमें व्यस्त थे। अनैलीनपर उन्होंने क्रोमियम धातुके तेज़ाब (chromic acid) का प्रयोग किया तो एक कोयलासा काला निराशा जनक पदार्थ बनगया। पर्किनने इस बेढङ्गे पदार्थ-को शुद्ध किया और सुखाया। अन्तमें मद्यसार (spirit of wine) में उस पदार्थको घोलकर बाहर निकाला। मद्यसारके उड़ते ही उनके आखोंके सामने चमत्कृत करनेवाला अर्ग़वानी रङ्ग अपना रूप झलका रहा था।

लगभग तीस वरसके बाद फ़ैरेडेकी बोतलके सामने रायल सोसाइटीमें पर्किन साहेब खड़े किये गये। दूरदेशोंके वैज्ञानिकोंने उनके इस अनुपम आविष्कारपर उन्हें बधाई दी। करतल ध्वनिसे सोसाइटीका दिव्यहाल गूंज उठा। १८५६ ई० से जिधर देखिये उधर अनैलीन अनैलीनकी धुन सुनायी पड़ती थी। स्कूलके फाटकमें घुसते हुए पर्किनको एकबारगी स्वर्ग द्वार मिल गया।

पर्किन साहेबके भाग्यने एक और भी चमत्कार दिखलाया। बहुत दिनोंसे वैज्ञानिक नक़ली रबड़के बनानेमें जुटे थे। रबड़को उबालने पर आइसोप्रीन (isoprene) नामका एक पदार्थ निकलता है। नमकके तेज़ाबके साथ नरम आंचपर गरम करनेसे आइसोप्रीनका कुछ भाग रबड़के समान बन जाता है। वैज्ञानिकोंने बिना रबड़की सहायताके आइसोप्रीन तो बना लिया पर उससे व्यवसायोपयोगी रबड़ बनानेकी लाखों चेष्टाएं करनेपर भी वे कृतकार्य्य न हुए।

सर विलियम पर्किन भी इसी चेष्टामें बहुत कालतक तत्पर रहे, अंतमें बेचारेको हताशसा हो जाना पड़ा। एक शीशेकी नलीमें आइसो-प्रीन रक्खी थी। भूलसे उसमें सोडियम धातु-का एक टुकड़ा पड़गया। पर्किन साहेबने नली-को बंद कर रख दिया और स्वयं अपनी शारीरिक अवस्था सुधारनेकेलिए छुट्टी मनाने पहाड़ोंकी ओर चल दिये। छुट्टी समाप्त होनेपर निराश पर्किन अपनी प्रयोगशालामें पहुंचे। ज्योंही उन्होंने उस नलीको निकाला उनके चेहरेपर ललाई छा गयी। देखते ही देखते मारे आनंदके वे उछल पड़े। नलीमें सुंदर रबड़ रक्खी हुई थी। फिर तो कहना ही क्या था, पर्किन साहेब-की प्रशंसाके पुल बंध गये।

* * * *

१८९५ ई० में भारतसे ५,३५,५०,००० रुपये-का नील इंग्लैंडको गया। १९१० ई० में इंगलैंडसे भारतवर्षको केवल ३८,१०,००० ही रुपये नील बेंचकर मिले। वर्तमान युरोपीय महाभारतके पूर्व संसारमें नीले रङ्गकी खपतके ५ हिस्सोंमेंसे ४ हिस्से नक़ली नीलके बर्ते जाते थे। यों तो प्रयोग-शालामें लोग नील बहुत दिनसे बना चुके थे, पर वह इतना सस्ता न बनता था कि भारत-वर्षके लाखों प्राणियोंकी रोटी छीन सके।

नक़ली नील बनानेमें उज्जन और कर्बनका एक संयुक्त पदार्थ नैप्थलीन, नत्रजन और उज्जनका संयुक्त पदार्थ अमोनिया (जो नौसादर और चूनेके मिलानेसे बड़ा परपरा गैस निक-लता है वह अमोनिया है,) एसेटिक एसिड नाम-

का तेज़ाब (जो सिरकेमें बहुतायतसे होता है) और ओषजनकी ज़रूरत पड़ती है। इनमेंसे पहले दो पदार्थ कोयलेसे गैस बनानेकी क्रियामें बहुतायतसे बने हुए मिलते हैं, तीसरा पदार्थ सिरका—लकड़ीसे न मालूम कितना मिल सकता है और चौथे पदार्थसे तो हवा ही भरी पड़ी है। इस तरहसे नक़ली नीलमें काम आने-वाले पदार्थ तो प्रकृतिमें बहुतायतसे मिलते हैं, पर मनुष्यको इनका मिलाना न आया और जब आया भी तो ऐसे बेढङ्गे रूपमें कि मनुष्य-को प्रकृतिसे लगातार हार ही माननी पड़ी।

नीलके बनानेमें पहले नैप्थलीनको थैलिक ऐसिड (pthalic acid) नामक तेज़ाबके रूपमें लाना पड़ता है। इस कार्य्य सम्पादनकेलिए गन्धकके तेज़ाबसे सहायता ली जाती थी। यह तेज़ाब इतनी सुस्तीसे काम करता था कि मनुष्यकी सब बुद्धि और शक्ति प्रकृतिको हानि पहुचानेमें निष्फल जाती थी। बस यही एक उसमें त्रुटि थी। यदि उसे एक ऐसे पदार्थका पता लग जाता जिसकी सहायतासे नैप्थलीन फुरतीसे थैलिक एसिड बन सके तो वह प्रकृति-के साम्राज्यमें लूट मचा देता।

एक जर्मन रासायनिक इस विषयपर कुछ प्रयोग कर रहा था। धोखेसे उसके थर्मामीटर-का बल्ब (नीचेका गोल हिस्सा जिसमें पारा भरा रहता है) टूट गया। पारा नैप्थलीन और गंधकके तेज़ाबमें गिर पड़ा। खीझकर साहे-बने ज्योंही सिर नीचा किया तो बड़े ज़ोरोंके साथ गंधकका तेज़ाब अपना काम करता हुआ दिखायी पड़ा। बस उसी दिनसे विज्ञानने प्रकृत पर जय पायी और मोहनिशामें सोनेवाला भारत चूल्हे चौकेका ही प्रबन्ध करता करता एक बड़ी भारी सम्पत्ति खो बैठा।

आलस्यके आविष्कार

आलस्यने भी विज्ञानके कई एक आवि-ष्कारोमें सहायता दी है। कनकौआ उड़ाते हुए बेंजमिन फ्रैंकलिनने आकाशकी बिजलीको पा लिया। अमरीकाके राइट भाइयोंने (Wright brothers) ढोलदार पतङ्गोंको उड़ा उड़ाकर आकाशयानकी सृष्टि कर दी। पर इन जी बहलाने वाले आलसियोंके अतिरिक्त कामचोर आलसियोंने भी कभी कभी बड़ी दूरकी सोची है। कलकत्तासे प्रकाशित होनेवाले इंडस्ट्री नामक पत्रसे इस विषयके कुछ नोट पाठकोंके विनोदार्थ लिखे जाते हैं।

आजकल लोहेपर नक़्क़ाशी खोदनेका बड़ा प्रचार है। इस कारीगरीकी बुनियाद एक निखट्टू सिपाहीकी डाली हुई है। उसने अपनी तलवार कई बरसोंतक हाथमें न उठायी। एक दिन देखा तो मारे मोर्चेके उसका रंग बेरङ्ग हो रहा था। मोरचा छुटानेका परिश्रम करता कौन, झट उसने तेज़ाब उड़ेल दिया और अफ़सरोंकी धमकी-से अपने प्राण बचाये। तेज़ाबने लोहेको खा लिया। इसी बातपर उन्नति करते करते यह नया हुनर निकल पड़ा।

जब पहले पहले डाकके टिकट चले थे तो उनमें छेद न होते थे। बेचारे एक थके मांदे आफ़िसके नौकरको गड्डके गड्ड टिकटोंके तख़्तों-पर कैंची चलानी पड़ती थी। एक रोज़ ऊबकर वह अपने मालिकका महमेज़ उठा लाया और टिकटके तख़्तोंपर दौड़ा दिया। छिदे हुए तख़्तोंका तभीसे जन्म हुआ है।

एक काहिल प्वांइटमैन पुराने ज़मानेकी रेलके दूरवाले सिङ्गलोंके बीच आनेजानेसे उकता उठा था। एक दिन उसने सिङ्गल उठाने-वाले दोनों डंडोंको एक तारसे बांध दिया और एक टूटी लोहेकी कुरसी उनके वज़न सम्हालने-केलिए रखदी।

उसने तारको अपने रहनेवाले कठघरेमें लगा लिया और रातको बिना टले हुए आनंदमें वहींसे सिगनल देने लगा। अन्तमें उसकी इस

चालाकीका पता लगही तो गया। बेचारेको बहुत डांटें खानी पड़ीं, पर तरक्की होगयी।

अमरीकामें लोग पीनेके अर्क और शर्बतोंमें नींबूके रसका बहुत उपयोग करते हैं। न्यूयार्क शहरके एक बड़े होटलमें एक बेचारा लड़का सुबहसे लेकर राततक हाथोंसे नींबू निचोड़ा करता था। इस कामसे वह ऊब उठा और अपनी बुद्धि लड़ाता लड़ाता एक रोज़ लकड़ीका एक नींबू-निचोड़ बनाही तो लाया। यद्यपि यह बहुत भद्दा बना था तथापि गरीब लड़केको इसने अच्छी ख़ासी दौलत कमवादी।

आजकल इंग्लैंडके स्ट्रैफोर्डशायरमें मिट्टीके बर्तनोंका बहुत बड़ा रोज़गार होता है। वहांकी मिट्टी बहुतही सुन्दर साफ़ और मसानेदार होती है। बहुत प्राचीनकालसे वहांकी मिट्टीके अनेक बर्तन बनते चले आये हैं। परन्तु यह व्यवसाय एक सस्ते और स्थायी लुकके न मिलनेसे बहुत पिछड़ रहा था।

वर्सलेमके समीप स्टैनली फ़ार्मकी एक काहिल चाकरानीने एक रोज़ सादे बर्तनमें कुछ नमकका पानी चढ़ादिया। उसका मतलब कुछ मांसके टुकड़ोंको उबले हुए पानीमें डुबोकर सुखा रखनेका था जिससे मांस बहुत दिनोंतक न बिगड़ सके। पर वह पानी चढ़ाकर उतारना भूल गयी और आनंदसे नींदका सुख भोगनेलगी।

जब वह सोकर उठी तो उसने देखा कि आग बुझगयी है, पानी उबल उबलकर बर्तनके चारों ओरसे ढलक गया है और एक सुन्दर पपड़ी बर्तनपर सुफ़ेद लुककी तरह जम गयी है। देख-भाल करनेपर यह मालूम हुआ कि यह पपड़ी उखड़ती नहीं है और न उसके भीतरसे पानी टपकता है। उस समयसे इस व्यवसायने बड़ा ज़ोर पकड़ लिया।

मङ्गलग्रह

[ले० श्रीयुत अनादिधन बंद्योपाध्याय]

तीनों गुब्बारोंको उज्जनसे भरनेसे मेरा उड़नखटोला बहुत शीघ्र ऊपर चढ़ने लगा। सन्ध्याके समय मुझे बहुत सर्दी मालूम होने लगी और मैंने कई कम्बल ओढ़ लिये पर तौभी सर्दी नहीं गयी। बरोमीटरसे हिसाब लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि मैं पच्चीस मील ऊपर चढ़ गया था। घड़ीमें समय देखा तो आठ बजे थे पर आश्चर्य्य तो यह है कि मुझे सूर्यभगवान इस समय अस्त होते दिखलायी दिये। मैंने उन्हें नमस्कारकर लोहेका चूल्हा निकाला और उसको स्पिरिट (spirit) से जला उसपर कुछ पूड़ियां बनालीं और साथ अचार था हा उससे उदरपूरण करने लगा। अभी मैं भोजन कर ही रहा था कि मेरा दम घुटने लगा और ग्रासको गलेसे उतारना मुश्किल हो गया। मैंने झट सोडाकी बोतल खोलकर पीली। पर तौभी वही दशा रही। तब मैंने अनुमान किया कि यह बात हवाके पतले होनेके कारण है। मैं इसका उपाय करने लगा।

जबतक गुब्बारा ऊपर चढ़ता है तबतक मैं पाठकोंको उड़नखटोलेका संक्षिप्त हाल बतलाता हूं। मेरा ऊपर चढ़ना और नीचे उतरना गैसको गुब्बारेमें बढ़ाने और घटानेके ऊपर निर्भर था। यदि मैं ऊपर अधिक चढ़ना चाहता तो गुब्बारोंमें अधिक उज्जन भरता था यदि उतरना चाहता था तो गैसको एक नली द्वारा पिटारीके नीचेके पीपेमें पहुँचा देता था या बिलकुल छोड़ देता था। यह हिसाब और तरीका अंग्रेज़ वैज्ञानिक डाक्टर सामुएल फ़ारग्युसन, फ्रांसके विख्यात बेलून चलानेवाले मोनशियर मुनीर और बेलजियमके

astronomy ज्योतिष]

विद्वान कप्तान डाक्टर वान हेकके मतानुसार निश्चित किये गये थे। केवल मैंने थोड़ा बहुत इधर उधर कुछ बदल दिया था।

छोटे छोटे चार गुब्बारे अलग होनेसे एक बड़े गुब्बारेका होना अच्छा नहीं। मैं जब अधिक ऊँचा नहीं उड़ना चाहता था तो एक ही गुब्बारेमें उज्जन भरता था या दो में। कभी कभी गुब्बारोंमें आधा गेस ही भरदेता था। यह पहला ही समय था कि मैंने तीन गुब्बरोंमें गैस भरा था, पर पूरे तौरपर नहीं। देखें चौथा गुब्बारा भी भरना पड़ेगा कि नहीं! मैं तो जानता हूँ कि किस प्रकार मैं माता वसुन्धराकी गोदसे अलग हुआ था। पर पाठकोंको अभी नहीं बताता हूँ आशा है वे इस अपराधको क्षमा करेंगे।

अब मैं उस उपायका वर्णन करता हूं जिससे मैं वायुके पतले होनेके कारण मरनेसे बच सका। जिस प्रकार बेलून इस समय ऊपर उड़ रहा था उससे मैंने अनुमान किया कि दस-मील ऊपर और जानेसे हवा बिल्कुल पतली हो जायगी और मेरा दम घुटने लगेगा। इसकेलिए मैंने पहले हीसे उपाय सोच रक्खा था। मैं कुछ वस्तुओंको अगड़म-बगड़मकी पेटीसे बाहर निकालने लगा। मैंने एक चीड़का बक्स बनाया था, उसमें मैं घुस गया। बक्स चारों ओरसे खुला हुआ था पर उसके ऊपर शीशा जड़ा था-जिससे बाहरका दृश्य मैं अच्छी तरह अवलोकन कर सकता था। यह तो पाठकोंको विदित है कि मनुष्य ओषजन (oxygen) दम लेते समय भीतर खींचता या भरता है और कार्बोनिक एेसिड (carbonic acid) बाहर फेंक देता है। जब मैं बक्समें बन्द हो गया तो उस घिरे हुए वायुमें जितना ओषजन (oxygen) होगा वह तो मैं खींच लूँगा और कार्बोनिक एेसिड (carbonic acid) छोड़ दूँगा। इस प्रकार कुछ समयकेबाद बक्स कार्बोनिक एेसिडसे भर जायगा और मुझे ओषजन नहीं मिलेगा। ऐसी अवस्थामें मेरा जीना भी दुष्कर हो जायगा।

इसका उपाय मैंने यह किया था कि बक्स-के भीतर पोटाश (potassium chlorate) और (caustic potash) कास्टिक पोटाश ले लिया था। इनसे जो लाभ होता है वह सुनिये। पोटाशसे ओषजन निकलता है। १८ पाउन्ड पोटाशसे ७ पाउन्ड ओषजन उत्पन्न होता है। कास्टिक पोटाशसे यह लाभ है कि वह कार्बोनिक एेसिडको सोख लेता है। इस तरह दो मसालोंसे मैं गन्दी हवा कार्बोनिक-एेसिडको भी ठीककर सकता था और फिर ओषजन बनाकर दम ले सकता था। इस प्रकार मैं उस बन्द बक्समें बीस दिनतक जीवित रह सकता था। यही रीति मैंने अब ग्रहण की।

इस समय मैं कोई ३० मील ऊँचेपर था और हवा बहुत पतली थी। मैं बक्सके भीतरसे सब हाल देखने लगा। वहीं रात्रि बितायी। सबेरे होते ही मैंने देखा कि मेरा बेलून २५ मील ऊँचेपर है। अर्थात् रातभरमें ऊपर न चढ़-कर पाँच मील और नीचे उतर आया। तब मैंने चारों गुब्बारोंको खूब अच्छी तरह उज्जनसे भर दिया। बेलून झटपट ऊपर चढ़ने लगा। वायु बहुत मन्द थी पर ठंडकके मारे नाक कटी जाती था। किसी प्रकार बन्दोबस्त कर मैं डब्बे या बक्समें आ बैठा। देखा चालीस मील-पर हूं। नीचे कुछ नहीं दिखायी देता था। दिल धड़कने लगा। धीरे धीरे एक प्रकारकी मधुर ध्वनि मेरे कानमें पहुँचने लगी। मेरा जी चाहता था कि बक्ससे बाहर निकलकर उसे सुनूँ पर मृत्यु भयसे ऐसा न कर सका। जिस समय मैं कोई ४८ मील ऊँचेपर था उस समय यह स्वर बड़ा ही प्रिय लगता था। ऐसा विदित होता था कि पृथिवीके समस्त वाद्ययंत्र एक

साथ बज रहे हैं। मुझे अनुमान हुआ कि पृथिवीके कविगण यहींसे बैठे बैठे यह आनंद-ध्वनि सुना करते हैं और उसी उमंगमें कविता बनाकर मनुष्योंको चकित कर डालते हैं, क्योंकि उस समय मेरे मनमें भी कवियोंसे भाव उत्पन्न होने लगे।

मैंने देखा कि ज्योंहीं मैं वायु-मंडपसे अलग होता हूँ त्योंहीं पृथिवीसे सदाकेलिए अलग हो जाऊँगा। बेलून कोई ५२½ मील ऊपर जाकर ठहरसा गया। वह वायुके बाहर नहीं निकल रहा था। सन्ध्याके कोई ४। बजे मेरा उड़न-खटोला' वायुसे बाहर निकल पड़ा और बड़ी तेज़ीके साथ आकाश (ether) में दौड़ने लगा। इस तेज़ीका अन्दाज़ा लगाना अत्यन्त दुष्कर है। मैं ही जानता हूँ कि मेरा वह खटोला कैसे जा रहा था। पहले पहले जब वह वायुसे निकला तब मेरे सिरमें चक्कर सा आने लगा। शीशेसे देखा तो एक गुब्बारा बिलकुल फट गया था। बेलून अब उड़ता नहीं वरन दौड़ रहा था। मैंने इसी समय एक बार पृथिवीका दृश्य देखा। वह दृश्य बड़ा ही आश्चर्य्यजनक था। पृथिवी बिलकुल गोल तो नहीं पर बहुत कुछ गोल विदित होती थी।

मंगलग्रहमें पहुँचनेका हाल दूसरे परिच्छेद-में लिखा गया है। ईथरकी राहमें केवल यह बात ध्यान देने योग्य है कि रातको नक्षत्रोंका समूह ऐसा प्रतीत होता था जैसे कि बड़े बड़े फ़ानूस नीली चान्दनीसे लटक रहे हों। यहाँ नक्षत्र कुछ पृथिवीसे अधिक बड़े और चमकीले मालूम होते थे।

दूसरा परिच्छेद।

मैं जब ईथर या आकशसे जा रहा था तब एक बड़ी घटनासे मरते मरते बचा। बात यह थी कि एक नक्षत्रका टुकड़ा गिरा। यह कोई छोटा पहाड़ीके बराबर था। आकाशमें भयंकर ज्योति फैल गयी। वह टुकड़ा मैंने दूरबीन द्वारा देखा तो मालूम हुआ मेरी ओर ही आ रहा है। मुझे भय हुआ कि यह दो एक घंटेमें मेरे खटोलेपर गिरकर मेरा सत्यानाश करदेगा। पर सौभाग्यसे वह टुकड़ा मेरे पास आनेके पूर्व ही बहुत कुछ छोटा होगया था। कोई तीन फ़ीटकी दूरीसे सनसनाता वह नीचेकी ओर चला गया। इधर मेरे खटोलेको मंगलग्रहकी आकर्षणशक्ति खींच रही थी। मंगलग्रहकी आकर्षणशक्ति इसलिए काम कर रही थी कि वह पृथिवीसे बहुत निकट है। इस कारण पहले मंगलकी शक्ति काम करेगी और तब दूसरी। यह अनुमान ठीक भी निकला क्योंकि २० दिनके बाद मैं मंगलग्रह हीमें उतरा और चन्द्रलोक या और किसी ग्रहमें नहीं पहुँचा।

ईथरमें सूर्यकी किरणें बड़ीही गर्म और तेज़ थीं क्योंकि पृथिवीपर यह किरणें पचास मील गहरे वायुको भेदकर कहीं भूमिपर पड़तीं थीं। पर यहाँ वह रुकावट नहीं थी! इसी कारण उन-में इतनी गर्मी और तेज़ी थी। मुझे दिनभर रंगीन चश्मा व्यवहार करना पड़ता था और लेमनेड-की न मालूम कितनी बोतलें ख़ाली करनी पड़ती थीं। ज्यों ज्यों मैं ऊपर चढ़ने लगा पृथिवीका दृश्य भी छोटा होने लगा। एक बार मुझे भारतवर्षका भाग और दूसरी बार दक्षिण अमेरिकाका भाग दूरबीनसे साफ़ साफ़ दृष्टि-गोचर हुआ था।

मैं बीस दिनके बाद मंगलग्रहके वायुमंडपमें घुसा। अब मेरा बेलून धीरे धीरे उड़ने लगा। मैंने बरोमिटर देखा तो मालूम हुआ कि मैं तीस मील ऊंचेपर हूँ। फिर कोई २९ मीलतक उतरा। इसके बाद बक्ससे निकलकर देखा हवा बहुत पतली है और दम लेनेमें कष्ट होता है। मैंने दो गुब्बारोंका गैस छोड़ दिया। तीन घंटेमें मैं कोई दस मील उतर गया। अब मैं प्रायः सोलह मील ऊँचेपर था। दूरबीनसे

नीचेकी ओर देखने लगा। कुछ मनुष्य एक नहरके किनारे खेतमें काम करते दृष्टिगोचर हुए। क्रमशः जब मेरा उड़नखटोला पांच मील-की उंचाईपर पहुंचा मैंने सब वैज्ञानिकयंत्र और वस्तुओंको पेटीमें बन्द कर दिया और नीचे मंगलग्रहकी भूमिपर दृष्टि डाल रक्खी। यहाँ-की वायु पृथ्वीकी वायुसे कुछ पतली है और उसमें नमी भी बहुत कम है। इस कारण मेरा उड़नखटोला कुछ तेज़ीसे नीचे जा रहा था। यहाँकी भूमि कुछ कुछ ताम्रवर्णकी है। उस लाल ज़मीनमें नीली नहरका बहना बहुत सुहावना विदित होता था। जब मैं मंगलसे एक हज़ार गज़ ऊँचेपर था, तब मैंने एक गुब्बारा जिसमें उज्जन भरा था खोल दिया। उड़नखटोला नीचे उतरने लगा। मैं रेशमकी छतरी ले खटोले-से बाहर उछल पड़ा। कोई एक मिनटतक छतरी नहीं खुली, पर बादको खुल गयी और मैं धीरे धीरे नीचे उतरने लगा। मैंने देखा कि मैं पानीपर उतरूंगा। इतनेमें एक नाव बहुत तेज़ीसे मेरी ओर चली। जब मैं बहुत नीचे उतर गया और नाव भी मेरे छातेके ठीक नीचे आगयी मैंने हाथ छोड़ दिये और नावपर उतर गया। पर मेरे उतरनेके झोंकेसे नाव डग-मगाने लगी सौभाग्यवश वह डूबनेसे बच गयी। मैंने देखा नाव विद्युतशक्तिसे चलती है। बादको मुझे विदित हुआ कि ऐसी नाव एक घंटेमें चालीस मील जाती है। मेरे उतरनेके पहले ही मेरा उड़नखटोला कोई पांच मीलकी दूरीपर गिर पड़ा था। इसका हाल मुझे किनारेपर आनेसे मालूम हुआ।

हमारे पृथ्वीके गोरखे जैसे होते हैं वैसे ही यहाँके मनुष्य हैं। भेद इतना ही है कि मंगल-ग्रहके रहनेवाले बिल्कुल सिंदूरसे लाल होते हैं। पृथ्वीवालोंको ऐसा मालूम होगा कि मानो लालरंग या गुलाल इन्होंने मुखपर मल लिया है। यह लोग सब के सब हट्टे कट्टे थे। इनका सिर इनके क़दके हिसाबसे बहुत बड़ा था। इस-लिए मुझे पहले पहले ये लोग बहुत भद्देसे जँचे।

वैज्ञानिकीय

आजकल युरोपीय युद्धमें विषाक्त गैसोंका बहुत प्रयोग किया जाता है। जर्मनीके स्टैस्फ़ोर्ट प्रान्तमें पोटाशके नमककी संसारमें बड़ी खान है। शायद वे इन्हीं नमकोंसे निकलनेवाले प्राणघातक गैसोंका प्रयोग करते हैं। सुननेमें आया है कि फ़्रांसीसीलोग एक ऐसा प्रयोग करते हैं जो सिपाहियोंको हँसा हँसाकर लोट पोट कर देता है। इससे उनकी आँखोंमें आंसू आने लगते हैं और बेचारे सिपाही शस्त्र उठानेमें निकम्मे हो जाते हैं। इस गैसको सबसे पहले डेवी (Sir Humphry Davy) ने निकाला था यह गैस अमोनियम नत्रित (ammonium-nitrate) को गरम करनेसे बनता है। अमोनियम नत्रित बड़ी आसानीसे बन सकता है। बहुतसे कल कारख़ानोंमें अमोनिया गैस बहुतायतसे निकलता है, इस गैसको शोरेके तेज़ाबमें घोलनेसे अमोनियम नत्रित बनता है। यह गैस जबतक बहुतायतसे न सूंघा जाय प्राणघातक नहीं है। परन्तु जिन गैसोंका जर्मनीवाले प्रयोग करते हैं, वे बड़े ही कष्टसे प्राण निकालते हैं। रूसके बहादुर सिपाहियोंका मुंह इन गैसोंके सूंघनेके बाद पहले पीला और फिर काला पड़ गया। उनके सिरमें बड़ी ज़ोरसे चक्कर आने लगे, बड़ी बड़ी आँखोंके सामने अंधकार छागया। गलेमें फांसें पड़ने लगीं और अन्तमें दम घुट घुटकर उनका प्राणान्त हुआ। पर ये गैस क्या हैं यह अभी ठीक रूपसे निश्चित नहीं हुआ है शायद क्लोरीन या ब्रोमीन हों। स्टैस्फ़ोर्टके नमकोंपर तेज़ाब डालनेसे ये गैस बहुत बनते हैं। बारूदमें पड़ने-वाले एक उपादान पोटाश नत्रित (Potassium nitrate) बनानेमें भी ये गैस बहुतायतसे निकाले जासकते हैं।

[Miscelianeous स्फुट]

चाहे जो हो कुछ रूसवालोंने इस राक्षसी युद्धको बंदकरनेका बहुत ही अनोखा उपाय ढूंढ निकाला है। रूसमें मिट्टीके तेलके चश्मे हैं। जिस प्रकार जर्मनीमें पोटाशके नमकोंका अक्षय-भंडार है रूसमें पेट्रोलियमका भी वैसा ही अक्षयभंडार भरा पड़ा है। रूसियोंको ज्योंही पता लगता है कि शत्रु गैस उड़ानेवाला है वे बहुतसा मिट्टीकातेल फेंक देते हैं। इससे निकले हुए धुएं शत्रु दलकी ओर चलते हैं और इनके कारण हवाका रुख भी शत्रुओंकी ओर हो जाता है। इसका फल यह होता है कि शत्रुके ज़हरीले गैस उसीकी सेनापर छा जाते हैं। जर्मनोंने इस उपायसे इतनी क्षति उठायी है कि उन्होंने रूसमें गैसका युद्ध क़रीब क़रीब बन्द ही कर दिया है।

* * * * *

थोड़े दिनोंसे जिधर देखिये उधर रेडियम हीकी धूम है। वैज्ञानिकोंने निश्चय किया है कि सूर्य्यमें रेडियम न होता तो आज वह प्राणियोंके जीवनको चलानेमें असमर्थ हो जाता। बहुतसे चश्मोंके पानीमें बड़े बड़े रोग मिटादेनेकी शक्ति है। अनुसंधान द्वारा मालूम हुआ है कि यह भी रेडियम हीकी करतूत है। बिजली गिरनेसे मकानों और महलोंके बचानेकेलिए लोहेके पत्तर या नुकीले डंडोंका व्यवहार किया जाता है। हालमें फ्रांसमें इस बातका पता लगा है कि यदि इन डंडोंकी नोक किसी रेडियमके नमकमें डुबो दी जाय तो उसमें बहुत दूरकी हवामें बिजलीकी धारा बहानेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। हवा विद्युत्वाहक नहीं है, अपने बलभर वह बिजलीको बहने नहीं देती परन्तु बिजलीकी शक्तिका अधिक भार न सह-सकनेकेकारण उसके टुकड़ोंको टूटकर बिजलीके लिए रास्ता देना पड़ता है। इसीसे बिजली गिरनेपर कड़ककी आवाज़ होती है। यदि बिजली हवासे निकल जा सके तो बहुतसे उपद्रव शान्त हो जायँ। रेडियममें यह शक्ति पायी जाती है। अगर रेडियमके नमकसे छुए हुए टुकड़े मकानोंमें लगानेको मिल जायँ तो मील दो मीलतक बिजलीसे बिलकुल भय न रहे।

* * * *

विज्ञानके सामने अब चोरोंकी दाल नहीं गलनेकी है। बहुतसे हत्यारे बकरेके खूनमें कपड़े भिगोकर दूसरोंके यहां डाल देते हैं और उनके सिर हत्या मढ़ देते हैं। पर अब विज्ञानद्वारा मालूम हो गया है कि प्रत्येक प्राणीका रुधिर समान तत्वोंके समान भागोंसे नहीं बना है। जिस यंत्र स्पेक्ट्रोमीटर (Spe-ctrometer) द्वारा वे सूर्य्य और अन्य तारोंके तत्वोंका पता लगा लेते हैं, उसीसे वे यह भी पहचान लेते हैं कि यह रुधिर किस जीवका है। पाश्चात्य संसार में तो हत्या और चोरीका विज्ञान ही अलग है।

* * * *

३९ वर्ष पहले ग्रैहमबेल (Graham Bell) नामक जिस अमेरिकन वैज्ञानिकने टेलीफ़ोन बनाया था, उसने अब कमालकर दिया है। इसे सुनकर लोग आश्चर्य्य मानते हैं कि दिल्ली और शिमलेसे टेलीफ़ोन द्वारा बराबर बात चीत होती है। परन्तु पनामा नहरके खोलनेके उत्सवमें प्रेसीडेंट विलसनने वाशिंगटनसे बैठे ही बैठे टेलीफ़ोन द्वारा ३ हज़ार मीलके लगभगसे बात चीत की। इसके बाद ग्रैहेम-साहेबने तो अब ५००० मीलसे बात चीत करनेकी सुबिधा करदी है। लन्दनसे बम्बई ५५४९ मील है। वह दिन समीप है जब लन्दनमें बैठे बैठे लोग भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तसे बात चीत किया करेंगे।

* * * *

प्रकृतिकी बड़ी ही विचित्र महिमा है। जिन पौधोंकी पत्तियोंको हम निर्जीव समझते हैं, उनमें भी अन्धकार और प्रकाश पहचानने

वाले यंत्र मौजूद हैं। पत्तियोंके ऊपर और नीचे एक बहुत महीन झिल्ली रहती है। ऊपर झिल्लीमेंसे रोशनी आर पार जा सकती है। उसमें बहुतसे छोटे छोटे कोष होते हैं। पत्तीके अन्दर ऐसे दाने होते हैं जिनसे पत्तियां हरी हरी दिखलायी पड़ती हैं। प्रकाशकी किरणें ऊपर वाली झिल्लीके कोषों (epidermal cells) से जाते समय बक्र हो जाती हैं और इन हरे हरे दानों-क्लोरीफिलों (chlorophyll) में इकट्ठी होती हैं। क्लोरोफ़िलोंपर प्रकाशकी किरणें पड़नेसे एक विचित्र प्रोत्साहन पैदा होता है जिसके कारण पत्ती घूमकर सूर्य्यके सामने आ जाती है। क्लोरीफ़िलोंपर यदि रोशनी तेज़ होती है तो वे खिसककर कोषके ऐसे भागमें पहुंच-जाते हैं जहां प्रकाश कम पहुंचे और यदि प्रकाश कम होता है तो वे इस प्रकारसे घूम या खिसक जाते हैं जिससे उनके सबसे अधिक अङ्गपर तथा आवश्यकताके अनुसार प्रकाश पड़े। यदि प्रकृतिकी ऐसी रचना न होती तो पत्तियां कभी भी अपना भोजन न बना सकतीं। बिना हरियाली और पत्तोंके जानवरोंका होना तो असम्भव ही है।

विज्ञानपर सहयोगियोंकी सम्मति।

THE *Leader*, OCTOBER 27, 1915.

We are glad that the Vijnana, the monthly organ of the society, has completed its first volume.

The magazine deals with a wide range of subjects and is replete with interesting and useful matter. We are glad to notice that it has among its contributors some of the most promising graduates in Science who appear to be taking great interest in the magazine. We understand that it has not yet secured an adequate number of subscribers to make it self-supporting, but it has been barely 6 months since it was started, and considering the admirable way in which it was being conducted and the good work it is doing, we have every hope that its struggle for existence will be rewarded with a long career of prosperity and usefulness. It is to be hoped that the Hindi-reading public will soon generously support the Vijnana in its present garb.

गृहलक्ष्मी प्रयाग।

"विज्ञान" जैसे उपयोगी पत्रकी बड़ी ही आवश्यकता थी। हिन्दीमें क्या जहांतक हम जानते हैं भारतवर्षकी और किसी भाषामें भी इस ढङ्गका कोई पत्र अभीतक नहीं निकलता है। इसलिए विद्या प्रेमियोंको उचित है कि इस पत्रके ग्राहक बनें और अपने मित्रोंको भी इसका ग्राहक बनावें जिससे विज्ञान दिन दिन उन्नति करता हुआ सबको विज्ञानवान बना देवे।

अबतक विज्ञानकी पांच संख्याएं निकल चुकी हैं। सब एकसे एक अच्छी हैं। भाषा तथा विज्ञान संबंधी विषयोंके समझानेकी शैली बहुत अच्छी है। जहां जहां विषयोंके समझानेमें चित्रकी आवश्यकता पड़ी वहां वहां चित्र भी प्रचुरतासे दिये गये हैं। यह पत्र होनहार है। इसके सम्पादक भी हिन्दीके पुराने नामी लेखकोंमेंसे हैं। लेखक भी सब सुयोग्य हैं। इसलिए इस पत्रकी विशेष प्रशंसा करना वृथा है। हमारी आन्तरिक इच्छा यही है कि यह पत्र दिन दिन उन्नति करता हुआ भारत-वर्षमें विज्ञानका प्रचार करे।

हिन्दी चित्रमय जगत, पूना।

विज्ञान परिषत्‌के मुखपत्र 'विज्ञान' केलिये पं० श्रीधर पाठक तथा लाला सीतारामजी जैसे सुयोग्य संपादक मिले हैं, अतएव कहना चाहिये कि उक्त सुयोग्य संपादकोंके मिलजानेसे परिषत् शीघ्र ही अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त कर लेगी। विज्ञानमें प्रायः विज्ञान विषयक ही लेख बड़ी सरल भाषामें प्रकाशित होते रहते हैं। प्रस्तुत समालोच्य ४ संख्यामें सभी विषय

महत्व पूर्ण हैं। प्रस्तुत संख्याके अन्यान्य विषयों-के साथ ही मुख्यतः जल मंडल, वायु मंडल तो बहुत ही बढ़िया लेख हैं। * * * वैज्ञानिक नोट अच्छे हैं।

कार्य्य विवरण।

विज्ञान परिषत्का नवां साधारण अधिवेशन शनिवार ३० अक्तूबरको पौने पांच बजे साय-ङ्कालको महामहोपाध्याय डाकूर गङ्गानाथझाके सभापतित्वमें हुआ।

पं० शालग्राम भार्गवके प्रस्ताव तथा अध्या-पक ब्रजराजके अनुमोदन करनेपर निम्नलिखित सज्जन परिषत्के सभ्य और परिसभ्य चुने गये।

१. बाबू रामजी दास भार्गव, बी. ए. प्रयाग
२. श्रीमती रानी फूल कुमारी देवी, धामपुर,
३. भैया कंधई प्रसाद साहेब, ताल्लुक़ेदार शहज़ादपुर, फ़ैज़ाबाद
४. बाबू सुखदेव प्रसाद टंडन, बी. एस-सी इंजीनियर, मिर्ज़ापुर
५. बाबू लालजी श्रीवास्तव, एम. एस-सी, अजमेर
६. बाबू विश्वम्भर प्रसाद माथुर, एम. एस-सी., अजमेर
७. श्रीयुत सेवक राम, बी. ए., राजापुर, देहरादून

परिसभ्य।

१. महाशय रामदीन वैश्य, प्रयाग
२. महाशय सेवक राम, देहरादून
३. श्रीयुत महादेव प्रसाद सुवर्ण व्यापारी, प्रयाग
४ श्रीयुत नरायण दासजी, टीचर, जौनपुर

इसके अनन्तर अध्यापक देवेन्द्रनाथ पाल एम. ए. ने 'भाफका इंजन' पर व्याख्यान फ़िज़ि-केल साइंस थियेटरमें दिया। व्याख्यान बड़ा मनोहर हुआ। श्रोताओंसे साइंस थियेटरखचा-खच भरा था। अंतमें सभापति और व्याख्याता महाशयको धन्यवाद देनेके बाद सभा विसर्जित हुई।

शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी. मंत्री

पिछले मासमें भूलसे बाबू विश्वम्भर प्रसाद, पटना, का नाम परिसभ्योंका सूचीमें देनेसे रह गया था। उक्त बाबूजी गत अधिवेशन-में परिषत्के परिसभ्य चुनलिए गये। मंत्री

प्राप्ति स्वीकार

निम्नलिखित सज्जनोंकी द्रव्यप्राप्तिको हम सहर्ष स्वीकार करते हैं।

१. पं० गोमती प्रसाद अग्निहोत्री, नागपुर (१९१५-१६) १२)
२. ठाकुर अनिरुद्ध सिंह, बड़ाबाज़ार कलकत्ता, (१९१५-१६) १२)
३. पं० सालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी, (१९१५-१६) १२)
४. भैय्या कन्हई प्रसाद, ताल्लुक़ेदार शहज़ादपुर, फ़ैज़ाबाद १२)
५. पं० भगवन्नारायण भार्गव, झांसी, ३)
६. मोलवी मेहदीहुसेन नासिरी, म्योर-कालेज, इलाहाबाद (१९१४-१५) १२)
७. बाबू ध्यानसिंह, प्रयाग " ३)
८. " महेशशरण, " " ३)
९. " नर्वदाप्रसाद, " " ३)
१०. ठाकुर जोगेन्द्रपाल सिंह, डिप्टीकलेकृर, शाहजहांपुर " १२)
११. पं० रामावतार शर्म्मा, एम. ए., पटना " १२)

गोपालस्वरूप भार्गव एम.एस-सी
कोषाध्यक्ष

ताप

विज्ञान विषयक यह पुस्तक ग्रंथमालाकी दूसरी संख्या है। छप गयी है। मूल्य।)

विज्ञापन छपाईके नियम ।

१—कवरपर प्रति पृष्ठ प्रति मास १५)

प्रति पृष्ठ २ कालम	१०)
१ ,, ...	७)
आधा ,, ...	५)
आधे कालमसे कमका	३)

२—राज, समाज व सभ्यताके विरुद्ध कोई विज्ञापन विज्ञानमें न छप सकेगा ।

३—अस्वीकृत विज्ञापन लौटाया न जायगा । जो लोग लौटाना चाहें वह साथमें)॥ का टिकट भी भेज दें ।

४—विज्ञापनकी छपाई सर्वथा पेशगी ली जायगी ।

५—७) रुपयेसे कम दामका विज्ञापन छपानेवालोंको ।) प्रति कापी पत्रका मूल्य अधिक देना पड़ेगा ।

६—विशेष बातें पत्र व्यवहार द्वारा तय करनी चाहिएं ।

निवेदक

के. सी. भल्ला, एफ़. बी. टी. (इंगलैंड) ए. एल. ए. ए. (लण्डन)—प्रकाशक

विज्ञानंब्रह्मे ति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग २ | धन, संवत् १९७२ । दिसम्बर सन् १९१५ । | संख्या ३

मङ्गलाचरण

इस शरीरमें बिजलीके बहु तार* लगाये,
ठौर ठौरपर उन दोनोंके चक्र रचाये,
समाचार औ' शक्ति उभय चटपट पहुँचाये,
कर्म्म-ज्ञान दोनोंके साधक योग सिखाये,
रच केन्द्र सभोंका शीशको, ईश छिपाया देहका,
जय स्रष्टा इस आदर्शपर अखिल विश्वके गेहका ।

कनखल ।
२६-११-१५ — रामदास गौड ।

---

*समस्त शरीरमें दो प्रकारकी nerves नाड़ियां फैली हुई हैं, (१) ज्ञान नाड़ी और (२) कर्म्म नाड़ी (sensory nerves and motor nerves) । जैसे बिजलीके तारोंसे समाचार और शक्ति दोनों पहुँचा सकते हैं, इन नाड़ियोंसे मस्तिष्क भी उसी तरह काम लेता है । पीठपर आगकी चिनगारीके गिरते ही ज्ञान नाड़ी मस्तिष्कको समाचार देती है और वह तुरन्त ही कर्म्म नाड़ियोंसे हाथको उस स्थानपर पहुँचवा देता है । Switch Board अर्थात् बिजलीके सम्मेलक चक्र की नाईं मानव देहमें भी नाड़ियोंके षट्-चक्र हैं जो साधारणतः अपने आप अपने कार्य्य करते हैं । इन्हें अंगरेज़ (plexus) कहते हैं । योगिजन शरीरके इन चक्रोंपर अपना अधिकार कर लेनेकेलिए साधन करते हैं। समस्त नाड़ियोंका मूलाधार मस्तिष्कमें है । उसे ही केन्द्र समझना चाहिए । परन्तु शरीरमें चेतना शक्ति जिस आत्माके कारण है, उसका पता नहीं है ।

(ले०)

विज्ञानकी अद्भुत शक्ति

[ले० अध्यापक शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी.
तथा अध्यापक ब्रजराज, बी. एस-सी; एल-एल. बी.]

शाम के चार बजे थे । रामप्रसाद अपने पढ़नेके कमरेमें बैठे हुए किसी विचारमें डूबे हुए थे । नौकरने कहा, 'जलपान कर लीजिये', रामप्रसादने कुछ ध्यान न दिया । इतनेमें उनके मित्र बाबू गोविन्दप्रसादजी आ पधारे । नमस्कार प्रणामके बाद रामप्रसादने उनको आरामकुर्सीपर सादर बिठलाया । बा० गोविन्दप्रसा-

चित्र नं० १

दने अपने मित्रको आज कुछ अनमनासा पाया, देखा कि कुछ चिन्तितसे हैं पूछा "कहो भाई! आज किस चिन्तामें मग्न हो?"

रामप्रसाद—क्या कहें? आज सवेरे मैं लाला श्यामलालजीके यहां मिलने चला गया। उनकी बैठकमें एक चित्र देखा जिसमें पानीके भीतर एक मनुष्य घड़ियालसे लड़ता हुआ दिखायी देता था। यह फ़ोटो था। मैं अचम्भेमें हुआ, समझा कि किसी मनगढ़न्त चित्रका फ़ोटो लिया गया है। लालाजीसे मैंने पूछा "कहो यह मनगढ़न्त कहांसे उड़ा लाये।" लालाजीने कहा कि यह मनगढ़न्त नहीं है, असली फ़ोटो है। मैं यह उत्तर पाकर और भी अचम्भेमें पड़ गया। मेरी समझमें अभीतक नहीं आया है कि यह फ़ोटो असली कैसे है। लेकिन लालाजी मेरी मसख़री करने लगे। मैं वहांसे चला आया और उस समयसे उसी फ़ोटोपर विचार कर रहा हूं। आँखोंसे पानीके भीतरके पदार्थ दीखते ही नहीं तो भला उनका फ़ोटो कैसे खिंच सकता है। कहो! तुम्हारी क्या राय है? मैं समझता हूं कि लालाजीको कुछ गप्पें सूझी हैं। फ़ोटो बिना प्रकाशके ली नहीं जा सकती और भला पानीके भीतर प्रकाश कहांसे आया?

बा० गोबिन्दप्रसाद—लैम्पसे।

रा० प्र०—भाई तुम तो लालाजीके भी चचा निकले। एक दिल्लगी सबेरे हुई थी, दूसरी सामने आयी। लालाजीसे तुम मिले हुए तो नहीं हो। भला! पानीके भीतर लैम्प कैसा? शायद तुमही पानीके भीतर लैम्प जलाकर बैठोगे। लालाजी तुम्हारा फ़ोटो लेकर अपनी बैठकमें टांग देंगे।

गोविन्द—क्या? तुम सचमुच इस सबको दिल्लगी समझते हो।

रा० प्र०---रसायनज्ञ बतलाते हैं कि बिना ओषजनके (oxygen) कोई पदार्थ नहीं जल सकता। पानीके भीतर डालते ही लैम्प बुझ जायगा। तुम अपनी लैम्प शायद कुछ मन्त्र पढ़कर पानीमें जला लो तो और बात है।

गोविन्द----हां! हां! तुमने कितने प्रकारके लैम्प देखे हैं?

रा० प्र०—क्यों? साधारण लैम्प, गैस लैम्प, और अभी नया ही चला है बिजलीका लैम्प।

गोविन्द—ठीक है! क्या बिजलीका लैम्प पानीमें नहीं जल सकता? यह बिजलीके लैम्पकी ही नई करामात है जो पानीके भीतर-के पदार्थोंका फ़ोटो लेनेमें सहायता देता है।

रा० प्र०—तो क्या हुआ? तुम्हारे इन लैम्पों-से फ़ोटो कभी नहीं लिया जा सकता। ऐसा ही होता तो जिन शहरोंमें बिजलीकी रोशनी होती है फ़ोटोग्राफ़रोंको बड़ा आराम हो जाता, रात दिन फ़ोटो ही खींचा करते।

गोविन्द—वाह! वाह! तुमने यही सड़क-वाले लैम्प देखे होंगे। हां! इनके उजालेमें फ़ोटो नहीं लिया जा सकता।

रा० प्र०--तो शायद यह फ़ोटोवाला लैम्प आपके ही घरमें बनता होगा। अच्छा है आप उसको पेटेन्ट करा लीजिये।

गोविन्द—सुनो तो सही! साधारण सड़क-वाले लैम्पोंमें कांचके भीतर टंग्स्टन धातुके बहुत पतले तार रहते हैं। तुमने तो टंग्स्टनका नाम भी शायद न सुना हो। इन तारोंमें होकर बिजलीकी धाराका प्रवाह होनेसे प्रकाश होने लगता है। अच्छा! और सुनिये! फ़ोटो-वाले लैम्पमें कांचके भीतर टंगस्टनके तार नहीं लगाये जाते वरन् उस धातुकी जगह पारेसे काम लिया जाता है। यह लैम्प विचित्र रूपका होता है। लाइये काग़ज़--मैं चित्र खींच-कर बतलाऊँ।

रा० प्र०--तुम तो मित्र फिर विचित्र बात सुनाने लगे। पारेका तार कैसे खींचा जाता होगा।

गोविन्द पारेके तार बनानेकी कोई आव-श्यकता नहीं। (चित्र खींचकर) यह चित्र देखो। अभी मैं तुमको सब समझाये देता हूँ।

रा० प्रा० (चित्रको देखता हुआ) कहो। मैं सुनता हूं।

गोविन्द--चित्रपर ध्यान दो, देखो! बीचमें लम्बी कांचकी* नली है। इसके दोनों ओर दो लोहेके गोले लगे हैं, एक बड़ा और एक छोटा है। बड़ा गोला पारेसे भरा रहता है और छोटेमें थोड़ासा पारा रहता है। ल, ल लोहेके तार इन गोलोंके सिरेसे लगे रहते हैं। इस नली और गोलोंको वायु वायुपम्प द्वारा खींचकर निकाल दी जाती है और जब इनमें वायु नहीं रह जाती तब यह छेद बंद कर दिया जाता है। अब इसमें पारेकी भाफके सिवाय और कुछ नहीं रह जाता। ल, ल तार बिजलीकी बाटरीसे जुड़े रहते हैं। यही लैम्प हो गया। लैम्प ऐसे टांगा जाता है कि नली टेढ़ी रहती
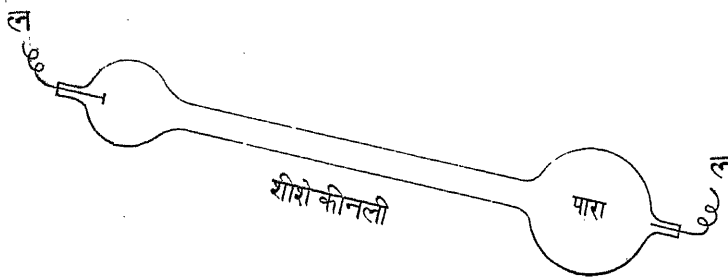
चित्र नं० २

* फ़ोटोके लैम्पकेलिए यह नली चकमक पत्थरकी (quartz) बनायी जाती है।

है और दोनों गोलोंका पारा अलग अलग रहता है। छोटा गोला जब नीचेको खींचा जाता है तो नली सीधी हो जाती है और दोनों गोलोंका पारा नलीमें आकर मेल खा जाता है। पारेके मेल खाते ही लैम्पमें बिजलीकी धारा बहने लगती है। छोटे गोलेको छोड़नेपर वह अपनी जगहपर पहुँच जाता है, नली फिर टेढ़ी हो जाती है, पारेका मेल टूट जाता है, पर बिजलीका धारा प्रवाह नहीं टूटता (विद्युतशास्त्र-की किसी पुस्तकके अवलोकनसे यह समझमें आ जायगा)। इस प्रवाहके कारण नलीमें पारे-की भाफ प्रज्वलित हो उठती है जिससे प्रकाश इतना तीव्र होता है कि आँख चौंधिया जाती है।

यह प्रकाश आंखोंकेलिए ऐसा हानिकारक है कि यदि आधे मिनट भी कोई उसको देखे तो आँखोंके भीतर ऐसा घाव हो जाता है, जो कितनी ही चिकित्सा की जाय अच्छा नहीं हो सकता। यही लैम्प फ़ोटोका लैम्प है।

रा० प्र०--भला जब इस लैम्पके प्रकाशसे आँखें बिगड़ जाती हैं तो फ़ोटो लेनेवाले बेचारे फ़ोटो कैसे लेते होंगे? यह लैम्प तो किसी काम-का न निकला।

गोविन्द--यह लैम्प आँखोंको हानिकारक तो अवश्य है परन्तु इसमेंसे वह किरणें इतनी अधिक निकलती हैं जो फ़ोटोग्राफ़ीमें सहायक होती हैं। आँखोंके बचावकेलिए काले कांचकी ऐनक लगा लेते हैं, इससे आँखोंको हानि पहुंचानेवाली किरणें आँखोंतक नहीं पहुंचतीं वरन् काला कांच इन किरणोंको सोख लेता है।

रा० प्र०--ठीक है! पर लैम्पको पानीमें ठीक उसी चीज़के पास डालना जिसकी फ़ोटो लेना है बड़ा कठिन काम है। भला किनारेपर बैठा हुआ आदमी सैकड़ों गज़ पानीके नीचे पड़ी चीज़तक लैम्प कैसे पहुंचा पाता होगा?

गोविन्द--नहीं! नहीं! ऐसा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। दो आदमी मिलकर फ़ोटो लेते हैं। अब यह चित्र तुम्हारी समझमें आजावेगा।

रा० प्र०--तो यह लैम्प केवल इसी कामके-लिए बनाया जाता होगा।

गोविन्द--नहीं इस लैम्पसे हमलोग पढ़ने लिखनेका काम भी ले सकते हैं। इस लैम्पपर एक ऐसा परदा डाला जाता है जिससे हानि-कारक किरणें रुक जाती हैं।

रा० प्र०--यह परदा कैसा होता है?

गोविन्द--इस लैम्पमेंसे जो प्रकाश निकलता है बड़ा ही शीतल होता है, क्योंकि उसमें तापकी किरणें और प्रकाशमेंकी नारंगी और लाल किरणें नहीं रहती। पर इसमें कासनी और उप-कासनी किरणें अधिक रहती हैं। यही कासनी (बैंजनी)
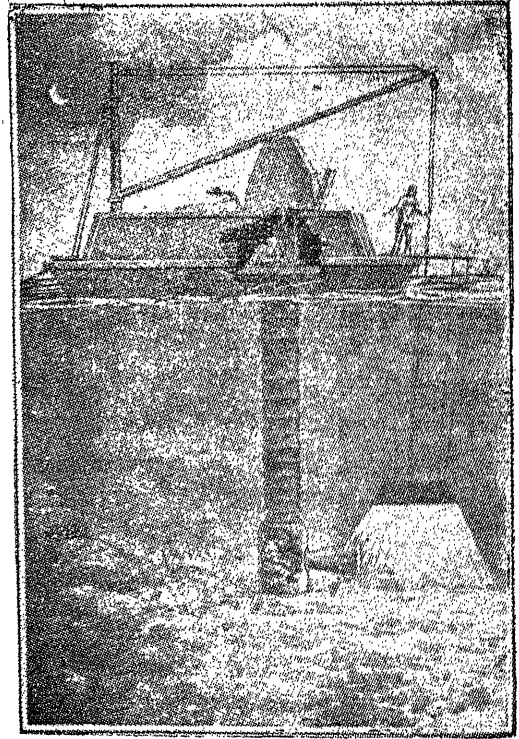
चित्र नं० ३

देखो पानीके भीतर बैठा हुआ आदमी फ़ोटो ले रहा है।

और उप-कासनी किरणें फ़ोटोग्राफ़ीके कामकी हैं। नारंगी और लाल किरणोंके अभाव तथा कासनी और उप-कासनी किरणोंकी अधिकताको दूर करना इसलिए आवश्यक है कि नारंगी और लाल किरणोंके अभावसे चीज़ें ठीक नहीं दीखतीं तथा कासनी और उपकासनी किरणोंकी अधिकता जैसा अभी मैंने बतलाया आँखोंको हानिकारक है। इसलिए इस लैम्पके तीन ओर ऐसा परदा डाला जाता है जिसके ऊपर एक विचित्र पदार्थ 'रोडेमीनकी' तह जमा दी जाती है। इस परदेका गुण यह है कि प्रकाशमेंकी पीली, हरी और उपकासनी किरणोंको रोककर, यह विचित्र परदा उन्हें लाल रंगकी किरणोंमें बदल देता है। पर इसपर भी अधिकांश कासनी और उपकासनी किरणें निकल ही जाती हैं। इसलिए इस लैम्पको एक काँचके बकसमें बन्द करते हैं। कांचमें बनते समय सिंदूरकी कुछ मात्रा डाली जाती है। अब हमारा पारेका लैम्प साधारण टंगस्टन लैम्पकासा सुन्दर काम देता है।

इस पारेके लैम्पमें कासनी तथा उपकासनी किरणोंकी अधिकतासे बड़ा भारी काम लिया जाता है। यह लैम्प दवाईके बड़े कामका है। यदि जलमें स्वास्थ्यको हानि पहुंचानेवाले सूक्ष्म कीटाणु उत्पन्न हो गये हों तो इस लैम्पके प्रकाशको जलपर डालनेसे यह कीटाणु मर जाते हैं। अदर्शनीय उपकासनी किरणोंका ही यह विशेष गुण है जिसके कारण यह कीटाणु मृत्युको प्राप्त होते हैं।

रा० प्र०—ठीक है! तो निःसन्देह यह लैम्प बड़ा विचित्र और बड़े कामका है। मनुष्यने सूर्य्य भगवानके प्रकाशसे भी अधिक लाभदायक और कृत्रिम प्रकाश बनाडाला। क्यों न हो विज्ञानमें अद्भुत शक्ति है।

(चित्र नं० १ और ३ 'साइंटिफ़िक अमेरीकन से)

वायु मण्डल और उसका दबाव।

[गताङ्कसे आगे]

[ले०—श्री केशव चन्द्र सिंह चौधरी, एम. एस सी. और अ० महावीर प्रसाद, बी एस-सी, एल. टी.]

रामचन्द्र—हवामें दबाव क्यों होता है?

पिता--दबनेका साधारण कारण तो तुम जानते ही होगे। यही हवाके दबावका भी कारण है।

रामचन्द्र--दबनेका साधारण कारण भी तो मैं नहीं जानता।

पिता--अच्छा इन वाक्योंका अर्थ तो जानते होगे, जैसे (१) हवा वेगसे बह रही है, काग़ज़ोंको दबा दो नहीं तो उड़ जायँगे; (२) धुनी हुई रुईसे भरी हुई रज़ाई दबा देनी चाहिए जिसमें रुई चारों ओर बराबर बैठ जाय; (३) बोतलमें बुकनी दबा दबाकर रक्खो; इत्यादि। इनमेंसे पहले और दूसरे वाक्योंमें दबानेका काम किसी भारी वस्तुसे लिया जाता है और चूंकि वस्तुओंके भारीपनका कारण पृथ्वीकी आकर्षणशक्ति है इसलिए यहाँ दबानेका काम आकर्षण शक्तिको कारण मानकर किसी वस्तुके द्वारा लिया जाता है। तीसरे वाक्यमें दबानेका काम दबानेवालेकी अँगुलियों और हाथोंको नीचेकी ओर बल लगानेसे लिया जाता है। प्रायः जहाँकहीं तुमने दबानेका प्रयोग देखा होगा वहाँ नीचेकी ही ओर बल लगाकर काम लिया जाता देखा होगा, इसके प्रतिकूल जबकभी ऊपरकी ओर बल लगाकर काम लिया जाता है तो बहुत बल ख़र्च करना पड़ता है।

रामचन्द्र--इससे यह मालूम पड़ता है कि हवामें भी भारीपन है और चूँकि भारीपन पृथ्वीकी आकर्षण शक्तिसे होता है इसलिए हवा भी पृथ्वीसे आकर्षित होती है।

पिता--इसमें सन्देह ही क्या है? जैसे और

सब वस्तुएँ जो पृथ्वीसे आकर्षित होती हैं तोली जा सकती हैं उसी प्रकार हवा भी तोली जा सकती है किंतु इसके तोलनेकेलिए एक विशेष विधिसे काम लिया जाता है। हवाके तोलनेकेलिए ऐसा वर्तन लेना होगा जो हवाके निकाल लेनेपर भी तोला जा सके और हवासे भरा रहनेपर भी। जितनी खोखली वस्तुएँ साधारणतः दीख पड़ती हैं सबमें हवा वर्तमान है। इसलिए पहले किसी तरह उनमेंसे हवा निकालकर तोलना चाहिए और फिर हवा भर कर। जो इन दोनों तोलोंका अन्तर हो वही उस वर्तनकी हवाकी तोल है। फुटबालके ब्लैडर (रबरवाली थली) को पहले काँटे (सुनारोंके तराज़ू) द्वारा तोल लेना चाहिए, फिर उसमें पम्पसे हवाभर देनी चाहिए। जब हवाके भरनेसे ब्लैडर ख़ूब फूल जाय तब उसके मुँह-को डोरेसे ख़ूब कसकर बाँध देना चाहिए जिससे हवा बाहर न निकल सके। ऐसी अव-स्थामें तोलनेसे यह तुरन्त प्रकट हो जायगा कि ब्लैडर भारी हो गया है। इसके भारी होनेका कारण सिवा हवाके और कुछ नहीं हो सकता। दूसरी विधिमें किसी वर्तनकी हवाको भगानेके-लिए उसमें थोड़ासा पानी भरकर उबालते हैं। कुछ देरतक पानीको उबलता हुआ रखने-से भाफ हवाको बिल्कुल भगा देती है। ऐसी अवस्थामें वर्तनके मुँहको ऐसे कागसे कसकर बन्दकर देते हैं कि हवा भीतर नहीं जा सकती है। जब वर्तन ठंडा हो जाता है तो उसको तोल लेते हैं। इसके पीछे मुँहको थोड़ी देर-तक खोलकर फिर काग लगाकर तोल लेते हैं। दूसरी तोल पहली तोलसे कुछ अधिक हो जाती है। कागके निकालनेपर हवा फुस् फुस् शब्द करती हुई घुसती है। इसकेलिए यह विधि सुलभ होगीः—

एक गोल तलीवाले कांचके कुप्पेमें (Round bottomed flask) थोड़ासा पानी भर दो। एक कटोरीमें आधा पानी भरकर अँगीठी-पर रख दो और धीरे धीरे आँच बढ़ाओ। जब पानी कुछ गरम हो जाय तो कुप्पेको कटोरी-पर तैरा दो और कुप्पेको डोरेके द्वारा हाथसे पकड़े रहो। जब आँच खूब लगेगी तो कुप्पेका पानी खौलने लगेगा और उसमेंसे भाफ निक-लने लगेगी। जिस समय भाफ खूब ज़ोरसे निकलने लगे उस समयसे १० मिनटतक ऐसी ही आँच किये रहना चाहिए जिससे कुप्पेकी सब हवा निकल जाय और उसमें केवल पानी और पानीकी भाफ रह जाय। तब रबरके कागसे कुप्पेके मुँहको अच्छी तरह बन्द करके ठंडा कर लेना चाहिए। ठंडा होनेपर काँटेसे कुप्पेको डोरेके द्वारा लटकाकर तोल लो फिर कागको ढीला कर दो और फिर तोल लो। इससे हवा शब्द करती हुई घुस जायगी और जिस पलड़ेपर कुप्पा तोला गया था वह भारी हो जायगा।

ऐसी ही विधिसे पर बहुत शुद्धतापूर्वक हवाको तोला गया है जिससे मालूम हुआ है कि एक घनफुट हवाकी तोल आधी छटाँकके लगभग होती है। हवाका भारीपन गरमी और दबावके कारण घटता बढ़ता रहता है जिसकी पूरी व्याख्या आगे चलकर की जाएगी। इस समय केवल इतना समझ लेना काफ़ी होगा कि हवामें भी भार होता है।

जब यह मालूम होगया कि हवामें भी भार है तो इसके कारण दबावका होना कुछ अस्वा-भाविक नहीं है क्योंकि जो जो वस्तुएँ भारी होती हैं उन सबका दबाव होता है। जैसे और पदार्थ भारके कारण अपने नीचेकी वस्तुओंको दबा सकते हैं वैसे ही हवा भी अपने नीचेकी वस्तुओं-को दबा सकती है। किन्तु हवा अथवा वायवीय पदार्थोंमें विशेषता यह है कि इनका दबाव ऊपर, नीचे, आगे, पीछे सब दिशाओंमें हो सकता है। जैसा गिलासवाले प्रयोगोंसे अनुभव हो चुका है।

इसके साथ साथ यह बतलाना भी अब उचित समझ पड़ता है कि हवाके दबावकी मात्रा क्या है। जबतक यह स्पष्ट नहीं हो जायगा तबतक आगे समझनेमें बहुत कठिनाइयाँ पड़ेंगी। इसकेलिए पहले तुमको गडुएसे शिक्षा लेनी चाहिए। गडुएकी टोंटीका मुंह पृथ्वी-तलसे उतनीही ऊँचाईपर है जितनी ऊँचाईपर गडुएका मुंह है। यदि इनमेंसे कोई अधिक ऊँचा हो तो जानते हो क्या बुराई होगी? जब दोनोंकी ऊँचाई बराबर होती है तो पानी मुंहतक भरनेसे टोंटीके मुंहतक भी पहुँच जाता है। यदि इससे अधिक पानी भरा जाय तो दोनों मुहोंसे बाहर गिरने लगेगा। यदि टोंटीकी ऊँचाई कम हो तो गडुआ पूरा नहीं भरा जा सकता क्योंकि ज्योंही पानीका धरातल गडुएके भीतर उतना ऊँचा हो जायगा जितना टोंटीका मुंह है उसी समय टोंटीके मुंहसे पानी गिरने लग जायगा। और यदि टोंटीके मुंहकी ऊँचाई गडुएके मुंहकी ऊँचाईसे अधिक हो तो गडुएमें पानी पूरा भर जानेपर भी टोंटीके मुँहसे पानी न निकल सकेगा वरन् अधिक भरने पर उस चौड़े मुंहसे ही निकलने लग जायगा और टोंटीके मुंहतक कदापि नहीं चढ़ सकेगा। इससे यह बात सिद्ध होती है न कि यदि किसी वर्तनमें कई नलियाँ (टोंटियाँ) लगी हों तो पानी भरनेसे सब नलियोंमें वह एक ही ऊँचाई (धरातल) पर रहेगा। यदि कोई नली कम ऊँची हो तो जब पानी उतनी ऊँचाईतक सब नलियोंमें चढ़ जायगा तो उस नीची नलीके मुंहसे पानी गिरने लगेगा और दूसरी नलियोंमें पानीका चढ़ना बन्द हो जायगा। इसी नियमानुसार बड़े बड़े शहरोंमें नलोंके द्वारा शुद्ध पानी पहुँचाया जाता है। एक नियत स्थानमें कुछ ऊँचाईपर पानीका एक बड़ा हौज़ बनवाया जाता है जिसमें शुद्ध पानी पम्पके द्वारा चढ़ाया जाता है। इसी हौज़में एक बड़ा चौड़ा नल लगाकर वह नल कई भागोंमें बाँट दिया जाता है और यह प्रत्येक गलीमें लगा दिया जाता है। जिस मकानमें नल लगाना हुआ उसके पासवाली गलीके प्रधान नलमें एक छोटा छेद करके एक नली कसकर लगा देते हैं और इसको घरतक ले जाते हैं और जितनी ऊँचाईपर रखना हुआ उतनी ऊँचाईतक नलीको उठाकर सिरेपर एक टोंटी लगा देते हैं जिसको एक ओर घुमा देनेसे सिरा खुल जाता है और पानी गिरने लगता है और दूसरी ओर घुमा देनेसे सिरा बन्द हो जाता है। लेकिन घरवाली नलीकी ऊँचाई उस हौज़की ऊँचाईसे सदैव कम रक्खी जाती है। इसी बातको थोड़ेमें यों कह सकते हैं:—कोई द्रव पदार्थ यदि ऐसे वर्तनमें रक्खा जाय जिसमें कई टोंटियाँ लगी हों तो सबमें उस द्रव पदार्थका धरातल समान होगा। यदि दो गड्ढे पास पास खोदे जायँ और एकमें पानी भरकर दोनो गड्ढोंको एक छोटी नालीके द्वारा मिला दिया जाय तो पानी उस गड्ढेसे बहकर दूसरेमें भरने लगेगा और अन्तमें दोनों गड्ढोंके पानीका धरातल एक हो जायगा परन्तु यदि पहले गड्ढेमें पानी थोड़ा हो और मिलानेवाली नाली ऊँची हो तो जिस समय पहले गड्ढेमें पानीका धरातल नालीके नीचे हो जायगा उस समय बहना बन्द हो जानेसे दूसरे गड्ढेमें पानीका भरना भी बन्द हो जायगा और धरातल समान न हो सकेगा।

रामचन्द्र—धरातलोंके समान होनेका कारण क्या है?

पिता—इसको समझानेकेलिए एक परीक्षा करनी होगी। देखो यह एक काँचकी नली है जो बीचोबीच झुकायी गयी है जिससे इसका रूप दिये हुए चित्र नं० १ की तरह हो गया है। इस
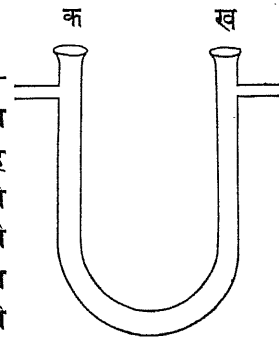
चित्र नं० १

नलीके सिरे 'क' और 'ख' खुले हुए हैं जिनमेंसे किसी एकके द्वारा कोई द्रव पदार्थ भरा जा सकता है। पानीका प्रयोग करना सुलभ होता है इसलिए मैं भी पानीसे ही यह परीक्षा करता हूँ। भरनेसे पानी दोनों भुजाओंमें बराबर चढ़ता है। पानीका छोड़ना बन्द कर देनेसे यहप्रत्यक्ष हो जाता है कि दोनों भुजाओंमें पानीका धरातल एक ही है। जैसे जैसे पानी भरते जायंगे तैसे तैसे पानीका धरातल भी ऊँचा होता जाता है पर दोनों भुजाओंमें यह समान ऊँचाईपर रहेगा। यदि एक भुजाके सिरेपर भीतरकी ओर फूँक लगायी जाय तो उसके पानीका धरातल नीचा हो जायगा और दूसरी भुजावाले पानीका धरातल ऊँचा। परन्तु यदि किसी भुजाकी हवा मुँहसे खींचली जाय तो उसके पानीका धरातल ऊँचा हो जायगा और दूसरी भुजावाले पानीका बहुत बल लगा धरातल नीचा; यहाँतक कि यदि उसकी हवा बहुत बल वगाकर खींच ली जाय तो पानी मुँहमें भी चला आयेगा।

अच्छा, यदि एक भुजाके सिरेपर तुम और एकके सिरेपर मैं मुँह लगाकर भीतरकी ओर फूँक मारूं तो देखें क्या होता है।

रामचन्द्र—आप तो ज़ोरसे फूँक लगा रहे हैं जिससे पानी मेरे मुँहके पासतक चलाआता है।

पिता—इससे तुम्हें कुछ मालूम हुआ?

रामचन्द्र—जिस भुजाके सिरेपर भीतरकी ओर अधिक फूँक लगायी जाती है उसमें पानी-तल बहुत नीचे चला आता है और दूसरी भुजा में पानी-तल ऊंचा हो जाता है।

पिता—अच्छा, यदि दोनों ओर बराबर फूँक लगाया जाय तो क्या होगा?

रामचन्द्र—दोनों भुजाओंमें पानी-तल एकसा रहेगा, ऊँचा नीचा न होगा।

पिता—ठीक है। जब फूकनेका बल दोनोंमें समान लगाया जाता है तब पानी-तल बराबर रहते हैं। परन्तु यह दिखलाया जा चुका है कि साधारणतः दोनों भुजाओंमें पानीका धरातल समान रहता है, इससे यह अनुमान किया जा सकता है न कि धरातलोंको समान रखनेकेलिए दोनोंमें समान बल लगा रहता होगा? किन्तु बल लगानेकेलिए हवाके अतिरिक्त और कोई पदार्थ नहीं हो सकता इसलिए हवाका दबाव इन दोनोंपर एकसा है। इसी कारण गडुए और गडुएकी टोंटीमें भी पानीका धरातल समान रहता है क्योंकि यहाँ भी वही हवा दोनों स्थानोंमें दबाव डाल रही है।

रामचन्द्र—यह तो ठीक है कि वही हवा दोनों स्थानोंमें दबाव डाल रही है लेकिन गडुएका मुंह उसकी टोंटीके मुंहसे बहुत चौड़ा है और चौड़े धरातलपर दबानेवाली हवाका भार उस हवाके भारसे निस्सन्देह बहुत है जो टोंटीके पानी-तलपर दबाव डालर ही है। इसलिए यह कहना ठीक नहीं मालूम होता कि चौड़े और तंग दोनों धरातलोंपर दबाव समान है।

पिता--यह बिल्कुल सत्य है कि चौड़े धरातलपर हवाका परिमाण बहुत है और तंग धरातलपर कम, और चौड़े धरातलपर हवाके दबावका बल भी अधिक है परंतु इसपर दबानेका बल फैला हुआ भी तो है। यह एक साधारण बात है कि थोड़ा बल भी एकत्र होकर अधिक काम कर सकता है और बहुत बल चारों ओर फैलनेसे दुर्बल होकर उतना काम नहीं कर सकता। अग्नि-उत्पादक-काँच (आतशी शीशा) की इतनी महिमा है कि यह यदि सूर्य्यकी किरणोंके सामने थोड़ी देरतक इस प्रकार रक्खा रहे कि उसका धरातल सूर्य्यकी किरणोंसे समकोण बनाता हो तो सब किरणें झुक कर एक स्थानमें एकत्रित हो जाती हैं। इस स्थानको उस काँचकी नाभि (focus) कहते हैं। यहाँ ऐसी असह्य आँच हो जाती है कि शरीरका कोई अङ्ग देरतक नहीं रक्खा जा सकता। यदि काँच बहुत बड़ा हुआ तो नाभिपर दियासलाईका सिरा, रुई अथवा

कागज़ इत्यादि जल्दी आग पकड़नेवाली वस्तुएं रख देनेसे आग भी बनायी जा सकती है। इसीलिए ऐसे काँचको अग्निउत्पादक-काँच कहते हैं। प्रयागके प्रसिद्ध श्रीकृष्ण जोशी महाशय ऐसे ही बहुतसे काँचोंको एक साथ रखकर बहुत दूरतककी फैली हुई सूर्य्यकी किरणोंको एक चूल्हेमें इकट्ठा करते हैं और उसीकी आँचसे रोटी,दाल, पूरी, तरकारी सब प्रकारके भोजन बिना लकड़ी लगाये और धुंवा निकाले तैयार कर लेते हैं। इस यन्त्रका नाम उन्होंने "भानुताप" रक्खा है जिसका संक्षिप्त वर्णन विज्ञानकी दूसरी संख्यामें दिया जाचुका है। दीपकसे प्रकाश चारों ओर फैलता रहता है यदि किसी प्रकार चारों ओर फैली हुई प्रकाशकी किरणोंको एकही दिशामें घुमा दें तो उतनेही व्ययमें प्रकाश अधिक हो जाता है; स्टेशनोंपर और गाड़ियोंकी बहुत चमकती हुई लालटेनोंमें यही रहस्य होता है। लोगोंसे यह बहुधा सुनते हैं कि प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्तमें उठकर पढ़नेसे जितना याद होता है उतना और समय दुगुना परिश्रम करनेसे भी नहीं याद होता। इसका भी कारण मनकी एकाग्रता है, एकान्त स्थानमें काम करनेवाला मन इधर उधरके बहकानेवाले झगड़ोंसे अलग होकर अपना शक्तियोंको इकट्ठा करके एक ओर लगा देता है जिससे कठिनसे कठिन बातें भी झट समझमें आजाती हैं। हाँ, जिनका मन किसी चिन्तामें फँसा हुआ है वह एकान्त स्थान और ब्राह्म मुहूर्त्तमें भी कुछ नहीं कर सकते। कुछ लोग ऐसा भी कहते हैं कि उस समय किसी प्रकारकी थकावट नहीं रहती इसलिए आदमी पढ़नेके विषयको बड़ी दृढ़तासे ग्रहण कर लेता है। परन्तु मैं इसकेलिए भी यही कहूंगा कि इसमें भी मनकी एकाग्रता ही प्रधान है। क्योंकि जब शरीरमें किसी प्रकारकी पीड़ा होती है तब ध्यान उस पीड़ाकी ओर चला जाता है और मन एकाग्र नहीं रहने पाता। सच तो यह है कि संसारके जितने बड़े बड़े कार्य्य हुए हैं वह काम करनेवालोंके मनकी एकाग्रतासे ही हुए हैं।

इसलिए यह स्मरण रखना चाहिए कि दबानेवाले पदार्थके भारपर ही दबावके परिमाणका पता नहीं चल सकता। इसके जाननेकेलिए उस धरातलके परिमाणको भी जानना चाहिए जिसपर दबाव पड़ रहा है। यदि एक एक सेरके दो बाट एक दूसरेपर रखकर किसी मेज़, चौरस बालू-तल इत्यादिपर रख दिये जायँ तो इनका दबाव उस दबावका दुगुना होगा जो इन्हीं बाटोंको एक दूसरेके बगलमें रखनेसे होता है। जब दबाव जाननेकेलिए दबानेवाले पदार्थका भार और उस धरातलका परिमाण जिसपर दबानेवाला पदार्थ फैला हुआ है, दोनोंकी आवश्यकता पड़ती है तो इसकी इकाईका निश्चय करना भी आवश्यक पड़ा। इसलिए दबावका परिमाण वही मान लिया गया जो दबानेवालेके भारको धरातलके परिमाणसे भाग देनेपर निकलता है। जैसे यदि दबानेवाले पदार्थका भार ५ सेर हो और धरातलका परिमाण ५ वर्गइंच तो दबाव ५ सेर ÷ ५ वर्गइंच = १ सेर प्रति वर्गइंच होगा। यदि यही ५ सेरका भार १५ वर्गइंचके धरातलपर फैला दिया जाय तो दबाव केवल $\frac{\text{५ सेर}}{\text{१५ व. इं.}} = \frac{१}{३}$ सेर प्रति वर्गइंच रह जायगा। दबानेवाले पदार्थका भार बार बार कहनेमें सुबिधा नहीं होती इसलिए आगे इसका छोटा नाम दबाव-बल या केवल बल प्रयोग किया जायगा, और दबावबलको धरातलके क्षेत्रफलसे भाग देनेपर जो लब्धि आती है उसको केवल दबाव कहेंगे। गणितज्ञ भिन्नके रूपमें इसको इस प्रकार प्रकट करते हैं—दबाव = $\frac{\text{दबाव बल}}{\text{धरातल}}$ = इकाई क्षेत्रफलका दबाव-बल। चूंकि क्षेत्रफल (धरातल) की इकाई साधारणतः एक वर्गइंच वा एक

वर्ग सेन्टीमीटर होती है इसलिए जो दबाव-बल एक वर्गइंच अथवा एक वर्गसेन्टीमीटरपर काम करता है उसीको दबाव भी कहते हैं। इसलिए जब यह कहा जाय कि हवाका दबाव ७॥ सेर प्रति वर्गइंच है तो इसका अर्थ यह समझना चाहिए कि एक वर्गइंच धरातलपर फैली हुई हवा ७॥ सेरके बलसे दबाव डाल रही है।

रामचन्द्र—यह आपने केवल समझानेकेलिए मान लिया है या यह बात यथार्थ भी है कि एक वर्गइंच धरातलपर हवाका दबाव ७॥ सेरके लगभग है?

पिता—हवाका दबाव सचमुच एक वर्गइंचपर ७॥ सेर है। लेकिन यह ऐसे मालूम नहीं पड़ता। यदि मालूम भी पड़ता तो मनुष्यका चलना फिरना असम्भव हो जाता, क्योंकि मनुष्यके बदनका क्षेत्रफल २००० वर्गइंचके लगभग होता है इसलिए हवाका दबाव २००० × ७॥ सेर अथवा १५००० सेर या ३७५ मनके लगभग हुआ। जब १० सेरका भी बोझा लादनेमें कुछ न कुछ तकलीफ़ होती है तो ३७५ मन बोझेके नीचे कौन जी सकता! परन्तु इसके न मालूम होनेका कारण यह है कि जिस प्रकार बदनके बाहरी भागपर हवा अपना दबाव डालकर दबाना चाहती है उसी प्रकार बदनके भीतरी भागपर नाक मुंहके द्वारा घुसकर उभाड़नेका प्रयत्न करती है। चूंकि यह दोनों प्रयत्न एक दूसरेके प्रतिकूल होते हैं इसलिए इनका प्रभाव बदनपर कुछ भी नहीं पड़ता। परन्तु यदि किसी प्रकार बदनके बाहरी भागपर दबाव डाला जाय और भीतरी भागपर न डालाजाय तो मनुष्यको यह मालूम होगा कि मानो कोई उसको चारों ओरसे सिकोड़ रहा है। इसके प्रतिकूल यदि बाहरी भागपरका दबाव कम कर दिया जाय और भीतरी भागपर दबाव वैसाही बना रहे तो भीतरी दबावके कारण बदन फूलने लग जायगा और फूलकर फट भी जायगा। पहले पहले बैलून (गुब्बारे) के चढ़नेवाले इस बातका अनुभव इतना ऊपर उड़ जानेसे करते थे जब हवाका बाहरी दबाव यकबारगी कम हो जाता था और भीतरी दबाव पहलेसे कुछ ही कम होने पाता था। कभी कभी तो रक्तकी नलियोंके फट जानेसे नाक और मुंहसे लोहू भी निकलने लगता था। इसी कारण चीलें या और पक्षी यकबारगी ऊपर नहीं चढ़ जाते वरन् मँड़राते हुए धीरे धीरे चढ़ते हैं।

इसकी परीक्षा फुटबालके ब्लैडरसे बड़ी आसानीसे की जा सकती है। किन्तु इसकेलिए वायु-निष्कासन-यन्त्र (Air pump हवा निकालनेका पंप) की भी आवश्यकता पड़ती है। मैं उसका वर्णन करदेता हूं, अवसर पानेपर पाठशालामें समझ लेना।
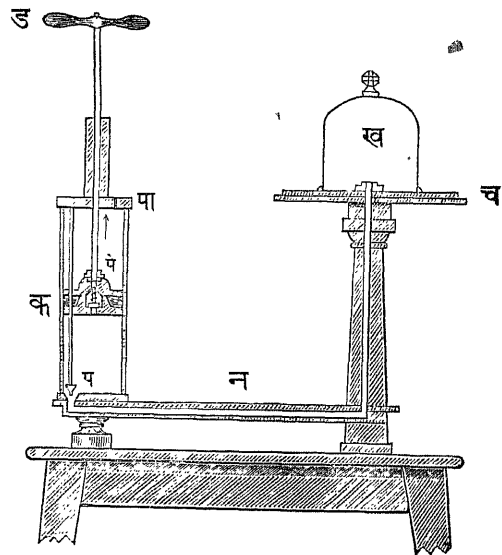
चित्र नं० २

यह चित्र एक साधारण वायु-निष्कासनयन्त्रका है। इसके प्रधान अङ्ग 'क' और 'ख' हैं। 'क' एक नल है जिसमें 'प' और 'पा' परदे ऐसे लगे हुए हैं जो बाहरकी ओर खुल सकते हैं। इसी नलमें 'ड' डाट लगा रहता है जो

नलमें कसा हुआ चढ़ता उतरता है। जो भाग नलमें कसा हुआ खसकता है उसमें कोई तेल लगाया जाता है जिससे इधर उधरसे हवा भीतर न जा सके जैसे पीतलकी पिचकारियों-में देखनेमें आता है। यह नल और डाट ठीक पिचकारीकी तरह होते हैं। इस डाटमें एक परदा 'पे' स्थानपर रहता है और बाहरकी ओर खुलता है। इन सब परदोंके लगानेसे यह लाभ होता है कि 'पा' स्थानसे हवा नलके भीतरसे बाहर निकलने पाती है परन्तु बाहर-की हवा भीतर नहीं जाने पाती। इस नल (पिचकारी) की तलीसे एक पतली नली 'न' एक समतल धातके चद्दर 'च' से जुड़ी रहती है। जिस स्थानपर नलीका दूसरा सिरा चद्दर-से जुड़ा रहता है वहाँ चद्दरमें भी उसीके समान छेद रहता है। इस चद्दरपर घंटीके आकारका एक कांचका बर्तन इस प्रकार रक्खा जा सकता है कि इसका किनारा चद्दरसे मिलकर अपने भीतरके स्थानको वायुकेलिए अगम्य (air tight) कर देता है। इसी स्थानमें यदि फुटबालके ब्लैडरमें कुछ हवा भर-कर और उसके मुंहको अच्छी तरह कसकर रखदें और डाटको नलमें चढ़ायें उतारें तो उस स्थानकी हवा बहुत कुछ निकल जायगी अर्थात् ब्लैडरके बाहरवाली असपासकी हवा कम होकर पतली हो जायगी और उसके बाहरी धरातल-पर दबाव कम हो जायगा। परन्तु ब्लैडरके भीतरकी हवाके परिमाणमें कोई अन्तर नहीं पड़ सकता क्योंकि उसका मुंह बन्द है। बाहरी धरातलपर दबावके कम हो जानेसे भीतरी हवा फैलेगी और ब्लैडर फूल उठेगा। यदि डाट कई बार चढ़ायें उतारें तो 'ख' बर्तन-की हवा बहुत पतली हो जायगी और इसका दबाव भी थैलीपर कमी हो जायगा। ऐसी दशा-में थैली इतनी फूल जायगी कि शायद फट भी जाय।

यदि इस यन्त्रके चद्दरवाले छेदके ऊपर हथेली अथवा अँगुली रख दी जाय और डाट चलाया जाय तो यह मालूम होगा कि अंगुली-के उस भागको जो छेदके ऊपर है कोई खींचे जा रहा है अर्थात् वह दबी जा रही है। यदि कांचका बर्तन ऐसे ही रक्खा रहे और भीतर-की हवा निकाल ली जाय तो उसको चद्दरसे अलग करना भी (उठाना भी) बड़ा कठिन काम हो जाता है।

इतना बतलाकर कि हवामें दबाव होता है अब यह बतलाना रह गया है कि हवाके दबावकी मात्रा कैसे नापी जाती है। यह विषय बड़ा गम्भीर और बहुत ही उपयोगी है इसलिए इसको दूसरे दिन फ़ुरसतमें बतलायेंगे।

× × × × × ×

अन्तिम शनिवारकी छुट्टी तीसरे दिन हुई। रामचन्द्रने प्रातःकालके नित्यकर्मसे निपटकर और कुछ जलपान करके अपने पिताजीसे पूछा "पिताजी आपने उस दिन वादा किया था कि वायु-मंडलके दबावकी मात्रा जिस तरह नापी जाती है वह फ़ुरसतमें बतलाऊंगा। आज बतलाइये"।

पिता—रामचन्द्र, उसके समझानेकेलिए कुछ चित्रोंके खींचनेकी आवश्यकता पड़ेगी इसलिए कुछ काग़ज़ और एक पेन्सिल लाओ। पिताने कहा पाठशालाओंमें समझानेकेलिए कांचकी एक नली एक गज़के लगभग लम्बी लेते हैं। इसका एक सिरा बन्द रहता है। इसमें पारा लबालब भरकर हाथके अंगूठेसे नलीके खुले मुंहको इस प्रकार बन्द कर लेते हैं कि अंगूठेसे दबाए हुए नलीका मुंह उलट देनेसे भी पारा न गिर सके। इस प्रकार नलीमें पारेके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं रहने पाती। ऐसी अवस्थामें अंगूठेसे दबे हुए मुंह-को पारेसे भरे हुए बर्तनमें डुबोकर अंगूठा हटा लेते हैं। इससे कुछ पारा नलीमेंसे नीचे

गिर जाता है। यदि नलीको झुकायें तो पारा चढ़ने लगेगा यहांतक कि अधिक झुकानेपर नली पारेसे बिल्कुल भर जायगी। नलीको सीधी खड़ी करदेनेपर पारा फिर उतना ही उतर आयेगा जितने पहले उतरा था। इन चित्रोंमें नलीका 'क' सिरा बन्द है और नीचेका सिरा खुला हुआ है। इसका खुला हुआ सिरा बार बार ऊपर करनेसे इसमें पारा बिल्कुल भर दिया जाता है। इसके पश्चात खुले हुए हिस्सेको अंगूठेसे दबाकर 'ग' बर्तनमें जिसमें एक इंच अथवा डेढ़ इंच पारा रहना चाहिए उलट देते हैं। सावधानी केवल इस
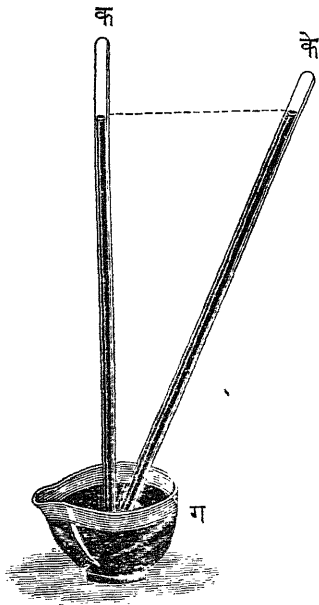
चित्र नं० ३

बातकी करनी चाहिए कि हवाका एक बुलबुला भी नलीमें न घुसने पाये। यदि हवा घुस जाय तो फिर पूरी तरह पारा भरकर और अंगूठेसे दबाकर इसको पारेमें उलटे। कुछ पारा नीचे उतर आयेगा जिससे 'क' के पास थोड़ासा स्थान ख़ाली पड़ जायगा। जब 'क' को 'के' स्थानपर झुकाकर ले जाते हैं तो नलीमें पारा बिलकुल भर जाता है। बर्तनके पारातलसे नलीके पारातलकी ऊँचाई नापनेपर ३० इंचके लगभग ठहरती है। नलीके झुकाने-पर जिस समय पारा बिलकुल भर जाय उस समय नलीके सिरेकी ऊंचाई बर्तनके पारातलसे नापनी चाहिए। इसकेलिए पहले नलीके सिरे-की ऊंचाई उस धरातलसे मेज़ इत्यादिसे नाप लेनी चाहिए जिसपर वह बर्तन रक्खा हो, फिर उसी धरातलसे बर्तनवाले पारातलकी ऊंचाई नाप लो। इन दोनों ऊंचाइयोंका जो अन्तर है वही बर्तनवाले पारातलसे नलीके सिरेकी ऊं-चाई हुई। यदि नापनेमें कोई भूल न हो तो यह ऊंचाई उस समयकी पारातलकी ऊंचाईके समान होगी जिस समय नली खड़ी रक्खी जाती है। इससे एक बात यह सिद्ध होती है कि नलीको सीधा रखनेमें जो स्थान ऊपर ख़ाली पड़ जाता है उसमें वायु नहीं रहती अर्थात् वह स्थान वायु-शून्य है इसलिए इस स्थानको टेरी-सोलीय वायु-शून्य कहते हैं क्योंकि पहले पहले टेरीसोलीने इस विषयको ध्यान देकर खोज किया था और इसकी सत्यता लोगोंपर प्रकट की थी।

यह पहलेहो दिखला दिया गया है कि कई टोंटीवाला बर्तन जब किसी द्रवसे भरा जाता है तो सब टोटियोंमें द्रवतल समान होता है और चूंकि दबाव भी सबमें समान रहता है क्योंकि वही वायुमण्डल सब टोटियोंमें दबाव डाल रहा है इसलिए यह कहा जा सकता है कि द्रवके किसी तलपरके सब स्थानोंमें दबाव समान होता है। मान लो कि 'च' बर्तनमें कोई द्रव पानी, तेल अथवा पारा भरा हुआ है। द्रवका ऊपरी तल 'क का' है, इसके नीचेका दूसरा तल 'ख खा' और और नीचेका 'ग गा' है। 'क का' तलके सब स्थानोंमें (सब बिन्दुओंपर) वही दबाव है जो इस स्थानके वायुमण्डलका दबाव है; 'ख खा' तलपरके सब स्थानोंपर वायुमंडल-

के दबावके साथ साथ 'कख' द्रवकी ऊंचाईका भी दबाव पड़ रहा है; इसी प्रकार 'ग गा' तलके सब स्थानोंपर वायुमण्डलके दबावके अतिरिक्त 'क ग' ऊंचे द्रवका दबाव भी है।

इसी प्रकार 'क' नली (चि० नं० ३) के उस तलपर जो बाहरी पारातलकी सीधमें है वही दबाव होगा जो बाहरी पारातलपर है। परन्तु बाहरी पारातलपर वायुमण्डलके दबावके सिवाय और कोई दबाव नहीं है इसलिए नली-के पाराके उपर्युक्त तलपरका दबाव वायुमंडल-के दबावके समान है। परन्तु नलीके भीतर वायु कुछ भी नहीं है इसलिए उपर्युक्त तलेपर ३० इंचके लगभग ऊंचा पारा और उसके वाष्पका ही दबाव है, इससे यह ज्ञात हुआ कि वायुम-ण्डलका दबाव ३० इंच ऊंचा पाराके दबावके समान है। इसी विधिसे वायुमण्डलका दबाव नापा जाता है। यदि नलीकी भीतरी चौड़ाई १ वर्गइंच हो तो ३० इंच ऊंचा पारा तौलमें ७॥ सेरके लगभग होता है इसीलिए यह कहते हैं कि वायुमण्डलका दबाव प्रतिवर्गइंचपर ७॥ सेरके लगभग होता है।

पारेकी ऊंचाई नलीमें सदैव ३० इंचकी नहीं रहती वरन् घटती बढ़ती रहती है। जब ऊंचाई कम हो जाय तो समझना चाहिए कि वायुम-ण्डलका दबाव कम हो गया है और अधिक हो जानेपर समझना चाहिए कि वायुमण्डलका दबाव अधिक होगया। इसी कारण ऐसे यन्त्रको वायुभार-मापक (Barometer) कहते हैं।

चूंकि उपर्युक्त सरलयन्त्र एक स्थानसे दूसरे स्थानको सुबिधाके साथ नहीं ले जाया जासकता इसलिए एक ऐसा यन्त्र लेते हैं जो खुले सिरेसे लगभग ८, ६ इंचके अन्तरपर झुका हुआ रहता है। और जिसका रूप चि० नं० ४ की भांति होता है। इसकी लम्बी भुजाका सिरा बन्द रहता है। पारा भरनेकी विधि यों है :—पारा भरते समय नलके नीचे कोई चौड़ा बर्तन रखलेते हैं जिससे बाहर गिरता हुआ पारा फैल न जाय। इसके पश्चात खुले मुंहमें एक छोटीसी की पलगा देते हैं। साधारणतः कीप इस प्रकार बैठ जाती है कि पाराके भीतर जानेके साथ साथ हवाके निकलनेका मार्ग बड़ा तंग हो जाता है, जिससे पारा भीतर न जाकर बाहरही गिरने लगता है। इसलिए पारा छोड़ते समय कीप ज़रा उठालेनी चाहिए जिससे भीतरी हवा स्वतन्त्रता पूर्वक निकल सके। ऐसा करनेपर भी छोटी भुजामें पारा भर जायगा और बड़ीमें बहुतसा स्थान ख़ाली पड़ा रहेगा। जिस समय छोटी भुजामें पारा भर जाय उस समय कीपको हटाकर और खुले मुंहको अंगूठेसे अच्छी तरह दबाकर लम्बी भुजाको धीरे धीरे झुकाये जिससे पारा भारी होनेके कारण नीचे चला जायगा और वहांकी हवा ऊपर जाकर छोटी भुजाके पास हो जायगी। फिर नलको सीधा करके कीप रक्खे और पहलेकी तरह पारा भरे। जब छोटी भुजामें पारा भर जाय तो फिर बड़ी भुजाको झुकाकर यह पारा नीचे करदे और वहांकी हवाको छोटी भुजाके पास। इस तरह कई बारके करनेसे बड़ी भुजामें पारा बिल्कुल भर जायगा। यदि इधर उधर कहीं हवाका बुलबुला दिखायी पड़े तो उसको भी नलीको हिलाकर बाहर करदे। सावधानी इस बातकी होनी चाहिए कि पाराके साथ अथवा बड़ी भुजामें हवाका नाम मात्र भी न रहे। टारीसेलीय वायु-शून्य अवश्य रहेगा। यदि थोड़ीसी भी हवा घुस जायगी तो उसके दबावसे पारा कुछ नीचे गिर जायगा और नलके भीतरी पारेकी ऊंचाई वायुमण्डलके दबावको नहीं बतला सकेगी। बस वायुभार-मापक तैयार हो गया। जब कभी वायुमण्डलका

चि० नं० ४

दबाव मालूम करना हो तो किसी धरातलसे बड़ी भुजावाले पारातलकी ऊंचाई नापलो फिर उसी धरातलसे छोटी भुजावाले पारातलकी ऊंचाई नापो। इन दोनोंका जो अन्तर होगा वही उस पारेकी ऊंचाई होगी जिसका दबाव वायुमण्डलके दबावके समान है। बार बार ऊंचाईके नापनेमें बहुत समय लगता है और जल्दीमें शुद्धतापूर्वक कुछ मालूम नहीं हो सकता इसलिए व्यवहारमें सुविधाकेलिए पहलेसे ही नापकर चिन्ह बना देते हैं। ऐसा करनेसे जिस समय वायुमण्डलका दबाव नापना होता है उस समय केवल यह देखनेकी आवश्यकता रह जाती है कि लम्बी भुजामें पारा किस चिन्हपर है।

रामचन्द्र--चिन्ह किस प्रकार लगाते हैं ?

पिता--अब समय बहुत हो गया है। फिर कभी यह भी समझा दिया जायगा।

ग्रहण कैसे लगते हैं ?

[लि० अध्यापक ब्रजराज, बी. एस-सी., एलएल. बी.)

प्रकाशका प्रसार

एक जातीय समान माध्यममें प्रकाशका प्रसार सरल रेखाओंमें होता है। इसको प्रत्यक्ष करनेकेलिए कई प्रयोग (experiments) किये जा सकते हैं। अंधेरे कमरेमें यदि प्रकाश छोटेसे छेदसे आता हो और यदि वायुमें छोटे छोटे धूलके कण उड़ रहे हों तो प्रकाशकी किरणें सरल रेखाओंमें चलती हुई दीखती हैं।

यहांपर हम एक ऐसी परीक्षा लिखते हैं जो अत्यन्त सरल है और पाठक उसे करके देख सकते हैं।

मोटी दफ़्तीके दो चौकोर टुकड़े लीजिये। दोनोंमें एक एक छोटा छेद सूजेसे कर लीजिये। मोमबत्तीका टुकड़ा जला लीजिये।

अब मोमबत्तीके और अपनी चक्षुके बीचमें एक दफ़्ती रखिये, आपकी चक्षुतक प्रकाशकी किरणें पहुंचेंगी। पर यदि दूसरा दफ़्तीका टुकड़ा भी बीचमें रख दिया जाय तो प्रकाश चक्षु तक उसी अवस्थामें पहुंचेगा जब मोमबत्ती और छेदोंको मिलाती हुई रेखा सरल रेखा है। यदि दफ़्तीके टुकड़े तनिक भी हिलाये डुलाये जायँगे तो प्रकाश आंखतक नहीं पहुंचेगा। इस परीक्षासे यह प्रतीत होता है कि प्रकाश सरल रेखाओंमें प्रसरता (फैलता) है।

छेद केमरा
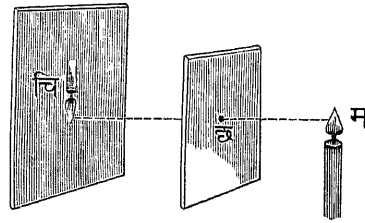
चित्र नं० १

एक परीक्षा और दी जाती है। कहीं कहींपर बच्चे इसका खेल खेला करते हैं। दफ़्तीके एक टुकड़ेमें सुईसे छेद कर लिया जाता है। अंधेरे कमरे में दफ़्तीके एक ओर मोमबत्ती रखकर दूसरी ओर काग़ज़का परदा रखनेसे, काग़ज़पर मोमबत्तीका सुन्दर परन्तु उलटा चित्र अंकित हो जाता है। चित्र नं० १ में छ दफ़्तीमें छेद है और चि मोमबत्तीका उलटा चित्र काग़ज़ या उजले कपड़ेके परदेपर है। यदि लकड़ीका छोटासा बक्स लिया जावे, लकड़ीकी एक दीवार निकालकर वह दफ़्तीकी बनाया जावे, उसमें छोटासा छिद्र किया जावे और उसके सामनेवाली दीवार दूधिया काच, (ground glass) या भिन्ना काग़ज़की बनायी जाय तो एक यंत्र
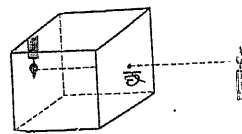
चित्र नं० २

बन गया जिसको हम छेद केमरा (Pinhole camera) कह सकते हैं (चित्र नं० २)। जो मनुष्य, पशु, पत्ती, पेड़ इत्यादिक छेदके सामने आते हैं उनका चित्र पीछेवाली काग़ज़ या दूधिया कांचकी दीवारपर उलटा बन जाता है। अब प्रश्न होता है कि महीन छेद द्वारा बड़ी बड़ी चीज़ोंका चित्र कैसे बन जाता है और यह चित्र उलटा क्यों बनता है ? इन दोनों बातोंका एक उत्तर यही है कि प्रकाश सरल रेखाओंमें प्रसरता
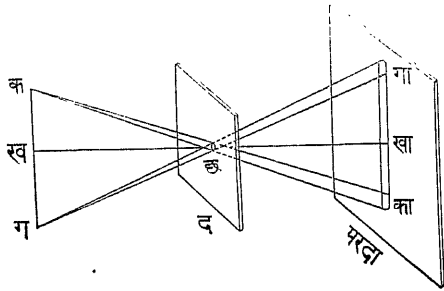
चित्र नं० ३

है। उपर्युक्त मन्तव्यको दर्शानेकेलिए चित्र नं० ३ बनाया गया है क ख ग कोई ज्वलित अथवा प्रकाशमान वस्तु है, छ दफ़्ती द में छोटा छिद्र है का खा गा परदेपर चित्र है। वस्तुके सिरे क पर ध्यान कीजिये, क छोटा प्रकाश-विन्दु है उससे प्रकाशकिरणें प्रसरकर छिद्र छ में होकर परदेपर आकर पड़ती हैं और का पर एकत्र होती हैं जो क का चित्र हो जाता है। ख से किरणें प्रसर कर छ में होती हुई खा पर चित्र बनाती हैं। ग का चित्र गा बनता है। चित्र शुद्ध बन नेकेलिएयह आवश्यक है कि छिद्र छ सूक्ष्म हो। इसी प्रकार क ख ग का प्रत्येक अंश प्रकाश-विन्दु होकर का खा गा के बीच में चित्र बनाता है और हमें परदेपर वस्तुका पूरा चित्र दीख पड़ता है। क छ का, ख छ खा, ग छ गा सरल रेखाएं हैं। इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रकाश सरल रेखाओंमें प्रसरता है।

प्रतिविम्ब, छाया

कौन नहीं जानता कि जहां प्रकाश है वहां प्रतिबिम्ब अथवा छाया है। करोड़ों बेर, अपने जीवनके प्रत्येक दिवस, प्रतिक्षण लोग सूर्य्य चन्द्रमा तथा दीपकके प्रकाशमें अपनी छायाको देखते हैं। परन्तु बहुत कम लोगोंने यह जानने-की चेष्टा की होगी कि छायाका क्या कारण है। प्रकाशका सरल रेखाओंमें प्रसार ही प्रति-बिम्ब अथवा छायाका जन्मदाता है। यदि किसी प्रकाश-विन्दुसे प्रकाश किरणें प्रसरकर किसी अपारदर्शक वस्तुपर पड़ें तो यह प्रकाश किरणें उस वस्तुसे रुक जाती हैं और इस वस्तुकी छाया परदेपर बन जाती है। चित्र नं० ४ में प प्रकाश-विन्दु है ग गोला है, जिसकी छाया पड़ती है। प से प्रकाश-समूह प्रसरकर ग पर पड़ता है और उससे रुक जाता। प्रकाश सरल रेखाओं-

चित्र नं० ४
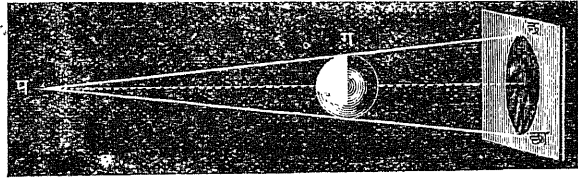
में चलता है यही छाया पड़नेका कारण है। उपर्युक्त चित्रमें प से ग के चारों ओर सरल रेखाएँ खींचकर उनको बढ़ानेसे जो शंकु बनेगा उसमें प्रकाश-किरणें न होनेके कारण और इस छाया शंकुके बाहर प्रकाश होने से ग की छाया पड़ती है। परन्तु प्रकाशका उत्पत्ति-स्थान विन्दु नहीं हो सकता क्योंकि प्रत्येक प्रकाशमान वस्तुमें कुछ न कुछ आकार--लम्बाई और चौड़ाई-अवश्य होगा।

स प्रकाशमान गोला है। अ स ग च एक

चित्र नं० ५

सकता वरन् उपच्छाया में से (चज और टड के बीचके भाग) स का कुछ अंश दीख पड़ता है और यही कारण है कि उस अंशमें केवल उपच्छाया पड़ती है।

चित्र नं० ५ में हमने प्रकाश-के उत्पत्ति-स्थान स को ग से छोटा दर्शाया है परन्तु ऐसा भी हो सकता है कि ख और ग बराबर हों (चित्र नं० ६ अथवा स से ग छोटा हो (चित्र नं० ७) । चित्र नं० ५ में पूर्ण तथा उपच्छाया दोनो पड़ते जावेंगे,
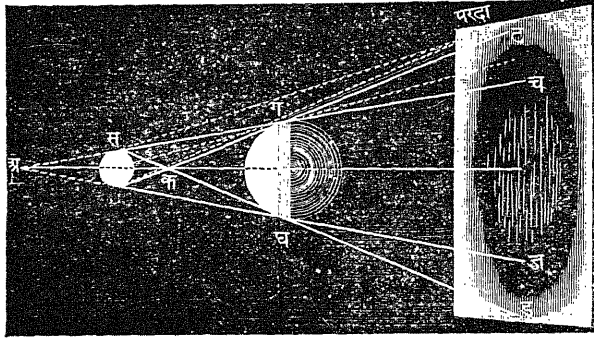
सरल रेखा स और ग को स्पर्श करते हुए खींची जावे और यह रेखा स और ग को स्पर्श करती हुई स के चारों ओर घूमे तो परदेपर च ज एक वृत्त बन जावेगा जिसके भीतर एक भी प्रकाश-किरण न पहुँच सकेगी। वृत्त च ज में पूर्ण अन्धकार रहेगा। अ छाया शंकु का शीर्ष (vertex, चोटी) और वृत्त च ज शंकुकी भूमि (base) होगा। यह शंकु पूर्णछाया शंकु कहलाता और वृत्त च ज छाया (umbra) कही जाती है। स और ग दोनोंको छूनेवाली स्पर्श रेखा स क घ ज भी खींची जा सकती है और इस स्पर्श-रेखाके घूमनेसे जो शंकु बनेगा उसका शीर्ष (vertex, चोटी) क होगा और उसकी भूमि परदेपर ट ड होगी च ज और ट ड वृत्तोंको थोड़ा थोड़ा प्रकाश पहुँचता है और यह भाग उपच्छाया (penumbra) कहलाता है क्योंकि इसमें स के कुछ अंशसे प्रकाश किरणें पहुँचती हैं। वृत्त च ज से स का कुछ अंश भी नहीं दीख

चित्र नं० ६

चित्र नं० ७

परदा चाहे जितनी दूर धरा जावे। परदेके दूर होते जानेसे यह अवश्य होगा कि छाया वृत्त और उपच्छाया बड़े होते जावेंगे।। चि० नं० ६ में ख, ग बराबर हैं, पूर्णछाया च ज भी इनके बराबर रहेगा। परदा चाहे जितनी दूर धरा जावे पूर्ण और उपच्छाया दोनो पड़ते जावेंगे परन्तु उपच्छाया परदा दूर होनेसे बड़ी होती जावेगी। चि० नं० ७ में स, ग से बड़ा है। पूर्णछाया शंकु-का शीर्ष चि० नं० ५ में स की ओर था अब चि० ७ में ग की ओर फिर गया। अब यदि परदा अ ग के बीचमें होगा तो पूर्णछाया और उप-च्छाया दोनो परदेपर पड़ेंगे। जैसे जैसे परदा ग से दूर होता जावेगा पूर्णछाया वृत्त च ज छोटा होता जावेगा यहांतक कि अ पर पहुंचकर विन्दु मात्र रहजावेगा और उससे दूर नाश हो जावेगा। ट ड और च ज के बीचका भाग

परदाके ग से दूर होनेपर बढ़ती जावेगी और परदाके अ से पीछे जानेपर उपच्छाया ही शेष रह जावेगी। अब यह समझना कठिन न होगा कि सूर्य्यके प्रकाशमें बालकी छाया तब ही पड़ेगी जब परदा बालके पास हो। परदेके दूर होनेसे बालकी छाया नाश हो जाती है [देखिये चि० नं० ७]।

हमने छाया और प्रतिबिम्बको इतने विस्तारसे क्यों वर्णन किया? इसका अभिप्राय कई प्रकार-की छाया दर्शानेके अतिरिक्त एक और है। हम अब एक अत्यन्त कुतूहलजनक प्रश्न उठानेवाले हैं और उस प्रश्नके उत्तर देते समय उपर्युक्त विषयसे हमको बड़ी सहायता मिलेगी। यदि पाठकोंको यह कुछ शुष्क और निरामोद भी प्रतीत हुआ हो तो भी हमारी नम्र प्रार्थना है कि आगेके प्रश्न और उसके उत्तरको पढ़नेसे पहले हमारे पाठक 'छाया' विषयको ध्यान-पूर्वक पढ़ लें।

ग्रहण दन्तकथा

सृष्टिके आदिसे ही मनुष्य समय समय-पर सूर्य्य और चन्द्र ग्रहणको देखता आया है। ग्रहण क्या हैं और क्यों होते हैं-इसको जानने-की इच्छा करोड़ों मनुष्योंके हृदयमें उत्पन्न हुई होगी। प्रत्येक देश निवासियोंने इस घटनाको समझनेकेलिए किसी न किसी सिद्धान्तकी कल्पना की है। विस्तार-भयसे हम इस स्थानपर भारतवासियोंके सिद्धान्तका दिग्दर्शन मात्र करेंगे। सूर्य्य अथवा चन्द्रग्रहण जब पड़ता है हिन्दू नदीमें स्नान करना और भंगियोंको अनाज और सोनेका दान देना अपना धर्म समझते हैं। खाद्य पदार्थोंमें यदि कुश न धरा जाय तो सब पदार्थ अपवित्र समझे जाते हैं। नानी और दादीसे जब विस्मित बच्चे पूछते हैं कि यह ग्रहण कैसे पड़ता है तो उनको यह उत्तर मिलता है कि सूर्य्य और चन्द्रमाने दो राक्षस राहु और केतुसे अनाज उधार लिया था उसीको राहु केतु मांगते हैं, उधार न चुकनेपर सूर्य्य और चन्द्रको ग्रस लेते हैं। बेचारे सूर्य्य और चन्द्र उधार लिये हुए अनाजका सूद तक नहीं दे पाते जब संसारके लोग कुछ भंगीको दान करते हैं तब इन बेचारोंका पीछा छूटता है। चाहे बच्चोंको यह समझनेमें कुछ कठिनाई भी हो कि इतने बड़े बड़े देवता अपना उधार कैसे नहीं अदा कर सकते पर बूढ़े हिन्दू इस दन्तकथाको नितान्त सत्य मानते हैं। प्राचीन हिन्दुओंका क्या मन्तव्य था इसे जाननेकी चेष्टा रखनेवाले पाठकों-को ज्योतिष ग्रन्थोंमें खोज करनी चाहिए। अब हम आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त दर्शाते हैं।

सूर्य्य ग्रहण

ग्रहण दो प्रकारके होते हैं, (१) सूर्य्य ग्रहण (२) चन्द्र ग्रहण। प्रकाश किरणें सूर्य्यसे प्रसर-कर पृथ्वीपर आती हैं पर यदि कोई ग्रह पृथ्वी और सूर्य्यके बीचमें आजावे तो वह ग्रह सूर्य्यकी किरणोंको रोक लेगा और पृथ्वीपर उस ग्रहकी छाया पड़ेगी। पृथ्वी सूर्य्यके चारों ओर घूमती है और चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता है।
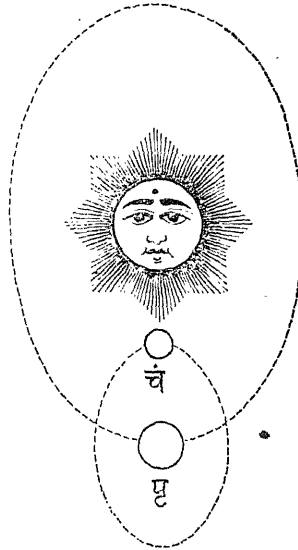
चित्र नं० ७

किसी किसी प्रतिपदाको (पड़िवा) ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाती है कि चन्द्रमा पृथ्वी और सूर्य्यके बीचमें उपस्थित होता है। ऐसी अवस्थामें यदि सूर्य्य, चन्द्रमा और पृथ्वीके केन्द्र एक सरल रेखापर हों तो चन्द्रमाकी पूर्ण अथवा उपच्छाया पृथ्वीपर पड़ती है। यही ग्रहण है। पृथ्वीके उन स्थानोंमें जो पूर्ण छायामें पड़ते हैं सर्व-ग्रास ग्रहण होता है और उन स्थानोंमें जो उपच्छायामें रहते हैं साधारण ग्रहण पड़ता है। भली प्रकार समझने-केलिए देखिये चित्र नं० ७। स सूर्य्य ग चन्द्रमा और परदेके स्थानपर पृथ्वी मानिये पृथ्वीपर जहां उपच्छाया पड़ेगी उन स्थानोंसे सूर्य्य ग्रहण दीख पड़ेगा।

चन्द्र ग्रहण

चन्द्रमासे जो शीतल प्रकाश हमको प्राप्त होता है वह वास्तवमें चन्द्रमासे नहीं आता परन्तु सूर्य्यकी किरणें चन्द्रमापर पड़कर और चन्द्रमासे लौटकर हमारी पृथ्वीपर आती हैं। यही कारण है कि चन्द्र किरण इतनी शीतल होती हैं। इस स्थानपर केवल इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि यदि किसी कारण चन्द्रमापर सूर्य्य किरण न पड़ने पावें तो चन्द्रमा-से भी हमारे पास प्रकाश न आ सकेगा और ऐसी अवस्थामें चन्द्रमाका ग्रहण होगा। किसी किसी पूर्णिमाको ऐसी अवस्था उपस्थित हो जाती है कि सूर्य्य पृथ्वी और चन्द्रमाके केन्द्र एक सरल रेखापर रहते हैं, सूर्य्य और चन्द्रके बीचमें पृथ्वी आ जाती है। और चन्द्रमापर सूर्य्यकी किरणें नहीं पड़ने पातीं। चन्द्रमा पृथ्वी-की पूर्ण अथवा उपच्छायामें आ जाता है जिससे चन्द्रमा या उसके कुछ अंश अन्धकारमें पड़ जाते हैं। चन्द्रमाके वह अंश जो छायामें आ जाते हैं पृथ्वीसे नहीं दीख पड़ते और पृथ्वीके ऐसे स्थानोंमें जहांसे चन्द्रमा या उसका कुछ अंश नहीं दीख पड़ते—चन्द्र ग्रहण पड़ता है। चित्र नं० ७ में स को सूर्य्य, ग को पृथ्वी और परदे-के स्थानपर चन्द्रमा मानिये तो शीघ्र ही चन्द्रग्रहणका बोध हो जायेगा। यदि पूरा चन्द्रमा पूर्णछायामें पड़ जाता है तो सर्वग्रास कहा जाता है।

ग्रहण पड़नेपर पृथ्वीतक प्रकाश न पहुँचने-के कारण खाद्य पदार्थोंमें क्या विकार पड़ जाता है--हमारे विषयके बाहर है। इसलिए हम कुछ राय प्रगट नकरेंगे कि हिन्दुओंके इस सिद्धान्तमें कितनी सत्यता है। हमको विश्वास है कि नानी और दादीसे सूर्य्य और चन्द्रमाके कष्ट-का हाल सुन हमारे बच्चोंके कोमल चित्तोंमें सहानुभूतिका प्रादुर्भाव होता रहेगा जिसके कारण सालमें एक आध बेर भंगियोंको भी कुछ मिल रहेगा और भँगी भी इस बातको अनुभव करेंगे कि वे भी महान हिन्दू जातिके अंग हैं।*

मूंगेके टापू

[ले० श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी]

यद्यपि मूंगेके कीड़े सभी समुद्रोंमें पाये जाते हैं पर जो कीड़े मूंगे-की चट्टानें बनाते हैं अपनी अभिरुचिके बड़े पक्के होते हैं। इनका स्वभाव है कि यह उन्हीं समुद्रोंमें चट्टानें बनाते हैं जो गरम और साफ़ होते हैं और एक भी ठण्डी लहर जिनमें नहीं आती, और न वायु-का ताप ३०° कक्षा (degree Fr.) फ़ारनहाइटसे कम या ६८° के ऊंचे जाता है। यह कीड़े बड़ी बड़ी नदियोंके मुहानेपर नहीं बसते क्योंकि वहां-का पानी मैला व किचड़ीला होता है। यह उत्तरी समुद्रतटसे दूर ही रहते हैं क्योंकि दक्षिण पश्चिमकी बरसाती हवा (monsoon) से लहरें नीची व धीमी हो जाती हैं, साथही यह दक्षिण अमरीकाको भी त्यागे ही रहते हैं क्योंकि वहां

*Physics department भौतिक शास्त्र विभाग]

समुद्रका पानी किचड़ीला रहता है और ध्रुव प्रान्तकी ठण्डी लहरें आती रहती हैं। इनकी वृद्धि रक्तसमुद्र (Red sea), पारसकी खाड़ी, मेक्सिकोकी खाड़ी और पश्चिमी भारतमहासागरमें ही होती है। प्रशान्त महासागर (Pacific Ocean) तो इनका बड़ी ही प्रिय निवास है, इसमें २९० से कम मूंगेके टापू न होंगे। खाड़ीकी धारा इन्हें संपतवलय में (Temperate Zone) भी जीवित रखती है, और मूंगेके टापू और चट्टानें बरमूडस (Bermudas) तक पायी जाती हैं।

किन्तु चट्टान बनानेवाले कीड़ोंको जिन्हें पोलिप कहते हैं ऋतुकी सुविधाके सिवा और भी सुविधाएं दरकार हैं। यह बात अनुसन्धानसे सिद्ध हो चुकी है कि यह तीस पुरुषसे अधिक गहरे पानीमें कदापि नहीं रहते और उथले पानीमें ही इनका गुज़र होता है। यह ऐसी बात है कि जिससे इनके चट्टान निर्म्माणमें बाधा होती है। तथापि इन्होंने इतना काम किया है कि सुनकर अचम्भा होता है। यद्यपि मूंगेके टापू या चट्टानें बड़ी नहीं होतीं, फिर भी इनसे इतना क्षेत्र घिरा है कि जानकर आश्चर्य्य होता है। एक मात्र आष्ट्रेलियाकी चट्टान जिसका नाम मती प्राकार चट्टान (The great barrier reef) है ३३००० वर्ग मीलमें फैली है अर्थात् सारेके सारे स्काटलैंडको ढँक सकती है।

मूंगेकी स्थूल बनावटके आकार प्रकारके विचारसे हम इनटापुओंको तीन भागोंमें विभक्तकर सकते हैं:-(१) झालरवत् जैसे गुलूबन्द आदिमें किनारेपर झालरें लगी रहती हैं; (२) प्राकार वत्, जैसे कोई चोरोंसे बचावकेलिए कोट उठादे या बाड़ लगादे; (३) कुण्डवत् जैसे जब कुण्डके चारों ओर पक्की प्रगाढ़ चुनाई रहती है बीचमें पानीकेलिए स्थान रहता है, ऐसा ही इनकुण्डवत् चट्टानों या टापुओंमें होता है। ये चारों ओरसे घिरे हुए होते हैं, और इनके बीचमें झील होती है जहां समुद्रका पानी आता जाता रहे।

झालरवत् चट्टानें अपेक्षाकृत छोटी होती हैं और टापू या महाद्वीपके बहुत पास किनारे पर झालरकी भांति होती हैं। और इस चट्टानके बीचमें थोड़ासा उथला जल रहता है पर चट्टानकी ओर समुद्रमें जल गहरा रहता है। इस प्रकारकी झालरदार चट्टानें मिस्र, लंका और निकोबारके टापुओंमें मिलती हैं तथा रक्त सागर, अमरीका और फ़्लोरिडा प्रायद्वीपमें भी पायी जाती हैं। प्राकारवत् चट्टानें भी वैसीही जगहोंमें पायी जाती हैं जैसी जगहोंमें झालरदार चट्टानें मिलती हैं। परन्तु प्राकारवत् चट्टानें अधिक स्थूल और धरतीसे दूरपर होती हैं। इनके दोनों ओर (समुद्रकी ओर और धरतीकी ओर) पानी भी झालरदार चट्टानोंकी अपेक्षा अधिक गहरा रहता है। जब प्राकारवत् चट्टानें किसी टापूको चारों ओरसे घेर लेती हैं तो उन्हें परिकोष्ठक प्राकारवत्-चट्टान कहते हैं और उनके बीचके टापूको लगुन टापू कहते हैं। दक्षिण समुद्रके, फ़ीजीके, सुलेमान, समोआ व न्यूकलेडोनिया आदिके टापू ऐसे ही मूंगेकी चट्टानोंमें परिकोष्ठित टापू हैं। इन चट्टानोंके भीतर एक प्राकृतिक पड़ाव है जिनपर जानेका मार्ग केवल प्राकारकी शाखाओंमें ही होकर मिल सकता है। चट्टानें हमेशा नीची ही होती हैं, यहांतक कि शायद ही कोई १० फुटसे अधिक ऊँची होती होंगी। इन चट्टानोंकी चौड़ाई लम्बाईके मुक़ाबलेमें बहुत कम होती है। नई केलेडोनियाके पश्चिमी घाटके परेकी चट्टानकी लम्बाई कुल ४०० मील है और धरतीसे इनकी दूरीका अवसत, ८ से १६ मील है। आष्ट्रेलियाके उत्तरपूर्वके घाटसे परेकी बड़ी प्रकार चट्टानें अनुमान १२५० मील लम्बी हैं और इनकी अवसत चौड़ाई १० से ९० मीलतक है। यह धरतीसे

२० से ७० मीलके अन्तरपर हैं। टापूके उस बग़लमें जिधर समुद्र है पानीकी गहराई १८०० फट है।

झालर और प्राकार चट्टानें तो धरतीसे मिली हुई होती हैं पर अतल चट्टानें धरतीमें बिल्कुल एकान्तमें इधर उधर छोटे छोटे वृत्तोंके समान पड़ी रहती हैं। इनका रूप खंड-बंड और गोल, अर्द्ध चन्द्राकार या घोड़ेकी नालकी तरहका होता है। ये चट्टानें जब बहुत टूटी फूटी भग्न दशामें होती हैं तो टापूओंकी एक शृङ्खलासी दिखलायी देती है। गोल अतलोंके बीचमें छिछले लगुन होते हैं जिनमें साफ़, सुन्दर हरा जल भरा रहता है। कभी कभी इन अतलके बीचके लगुनोंका सम्पर्क समुद्रसे एकदम टूटजाता है, किन्तु ऐसा बहुत ही कम देखनेमें आया है। चट्टानों-में नालियां होती हैं जिनमें होकर लगुनमें पानी जाता रहता है। इस प्रकारके लगुनोंमें सुन्दर पड़ाव होते हैं यद्यपि तूफ़ानोंमें समुद्रकी लहरें चट्टानपर टकराती हैं, परन्तु लगुनका केन्द्र चिकना ही रहता है। किसी किसी अतल लगुनका व्यास सौसौ मील होता है और उसमें इतनी जगह होती है कि यदि चाहें तो सारे ईसाई जगतके नौ बड़े पड़ाव पड़ सकते हैं।

अतल चट्टानोंके बाहरकी ओर प्रायः समुद्र बहुत ही गहरा होता है। अतल चट्टानें २० फुटसे अधिक ऊँचाईको कभी नहीं पहुँचतीं। भारतीय टापू-झूमर या द्वीप-पुञ्जमें मालद्वीप, लकद्वीप, चागोसके टापू भारत महा-सागरके भीतर अतलोंके प्रधान नमूने हैं। अतलके लगुनोंमें जलके भीतरके सब प्रकार-के जन्तु यहांतक कि घड़ियाल भी पाये जाते हैं, बहुतोंमें तो गरम देशकी वनस्पतियां भी होती हैं।

लगुन सहित इन अतल टापुओंके देखनेसे पाठकोंको मूंगेके कीड़ोंकी विचित्र वृद्धि और कारीगरीपर अचम्भा होगा। जिस तरह बयाके समान कई चिड़ियां अपनी स्वाभाविक बुद्धिसेबड़े बड़े सुन्दर नीड़ बनाती हैं, और जैसे जल और भूमि दोनोंपर विचरण करनेवाले ऊदबिलाव सरीखे जीव जलाशयके तटपर ऐसा सुन्दर घर बना लेते हैं कि वे अपनी इच्छानुसार जब चाहें जलके भीतर शिकार खेलने चले जांय या सूखे कमरेमें मौज उड़ावें, ठीक उसी प्रकारसे मूंगे नितान्त जलके भीतर अपनी स्वाभाविक बुद्धिसे ये महासुन्दर टापू निर्म्माण करते हैं।*

चित्रोंका खेल

'आओ खेल खेलें'

[ले० पं० रामस्वरूप भार्गव, बी. ए.]

गुरु—गोविन्द! राम और कृष्ण नित्यप्रति तुम्हारे साथ आया करते थे; आज वे कहाँ रह गये?

गोविन्द—गुरु जी! घरसे तो मेरे साथ चले थे परन्तु रास्तेमें सरकण्डेके एक टुकड़ेसे खेलते रह गये।

[इतने में राम और कृष्ण आ जाते हैं]

गुरु जी—राम, कृष्ण! तुम दोनों क्यों देर करके आये। सच बताओ क्या करते रह गये थे?

राम—गुरु जी! क्षमा कीजिये। आज पाठ-शाला आती समय यह सरकण्डा मिल गया इसीसे खेलते रहे।

गुरु—यह तुमने क्या और कैसे बनाया?

राम—मैंने इसकी एक पंगोलीको-दो गांठों-के बीचके हिस्सेको-छीला और छिलकोंमेंसे एक लम्बा टुकड़ा लेकर उसके दोनों छोर छिली हुई पंगोलीमें कुछ अन्तरसे गाड़ दिये। अब अन-

* Geology भूगर्भ विद्या]

छिले हिस्सेको हाथमें ले दोनों हथेलियोंके बीच रख, घुमाया तो यह सरकण्डा गदासा प्रतीत होता था।

गुरु—अच्छा तुम्हें देरसे आनेकी सज़ा तो मिलेगी परन्तु आज हम तुम्हें ऐसे ही खेल दिखलायेंगे।

अच्छा गोविन्द बताओ 'विन्दु' किसे कहते हैं।

गोविन्द—[अपनी मोटी पेंसिलसे, कापीपर एक विन्दु बना देता है] गुरुजी यह विन्दु है।

गुरु—अच्छा अब अपनी पेंसिलको बारीक करके विन्दु बनाओ। इन दोनों विन्दुओंमें क्या भेद है ?

गोविन्द—पहला मोटा है दूसरा बारीक।

गुरु—इन विन्दुओंका तो कुछ आकार है। किसी ऐसे विन्दुका विचार करो जिसका कुछ आकार नहो, जो केवल स्थानका सूचक हो।

गोविन्द—हां गुरुजी ! यदि दूसरे विन्दुका आकार छोटा करते चले जायँ तो सम्भव है कि बहुत छोटा विन्दु बन जाय परन्तु उसका भी कुछ आकार होगा। ऐसा विन्दु बनाना कठिन है जिसका कुछ आकार न हो।

गुरु—हाँ तुम ऐसा विन्दु बना न सकोगे। केवल विन्दुकी इस परिभाषाको याद रखो जब मौक़ा आयेगा--तुम्हारा ध्यान उस ओर दिखलाया जायगा।

अच्छा अब बताओ कि यदि यह विन्दु चलने लगे तो इसका रास्ता (trace) कैसा होगा ?

राम—एक लकीर सी होगी।

गुरु—ठीक है। यदि विन्दु सीधा चले तो सीधी लकीर या सरल रेखा बन जायगी, परन्तु यदि वह इस प्रकार चलता हो कि उसकी दिशा बराबर बदलती रहे, तो वक्र रेखा पैदा होगी।

अच्छा रेखा खींचनेकी साधारण रीति क्या है ?

कृष्ण—रूलर काग़ज़पर रखते हैं और पेंसिल या क़लम उसके सहारे चलाते हैं।

गुरु—देखो पेंसिल या क़लम काग़ज़को छूते ही उसपर एक विन्दु बना देती है, जब उसे चलाते हो तो बराबर सटे हुए हज़ारों विन्दु बन जाते हैं और रेखा दिखायी देने लगती है। या यों कहो कि क़लमकी नोक रूप विन्दु काग़ज़पर चलता है और उसका मार्गदर्शक चिन्ह रेखा है।

यदि यह क़लम रूलरके सहारे न चलता और सीधा न चलाया जाता तो अनेक प्रकारकी वक्र रेखा बन जातीं।

कृष्ण—किसी बच्चेके हाथमें पेंसिल दे दीजिये और फिर देखिये कि वह कैसे कैसे वक्र खींचता है।

गुरु—इस विन्दुको किसी नियमसे चक्कर दिलानेसे अच्छे अच्छे वक्र बन जाते हैं। साधारण वृत्त कैसे खींचते हैं ?

कृष्ण—परकारसे खींचते हैं।

गुरु—देखो परकारके दोनों हिस्सोंके छोरपर विन्दु होते हैं। इनमेंका एक विन्दु स्थिर रहता है और दूसरा विन्दु पहलेकी परिक्रमा करता है। इससे वृत्त (circle) बन जाता है। यहाँ पर यह स्मरण रहे कि दोनों विन्दुओंका अन्तर सदैव एक सा रहता है।

अच्छा तो अब हम वृत्तकी उत्पत्ति इस प्रकार कह सकते हैं—यदि कोई विन्दु किसी एक स्थित विन्दुकी परिक्रमा इस प्रकार दे कि दोनोंका अन्तर बराबर एक सा ही रहै, तो इस विन्दुका मार्ग वृत्त होगा।

कृष्ण—और भी कोई वक्र बन सकता है।

गुरु—हाँ-कई प्रकारके। प्रायः उनको दो कोटियोंमें रख सकते हैं एक अपरावेष्टित अर्थात् खुले हुए वक्र और दूसरे परावेष्टित अर्थात्

बन्द। परावेष्टित वक्रका उदाहरण वृत्त है दूसरा उदाहरण ऊनकल या दीर्घ वृत्त (ellipse) है।

कृष्ण—इसकी उत्पत्ति कैसे हो सकती है?

गुरु—एक डोरा लो। और उसके दोनों सिरोंसे दो मोज़े बुन्नेकी सुइयाँ बांधो।

इन सुइयोंको काग़ज़पर खड़ा कर दो और पेंसिलको इस प्रकार चलाओ कि डोरा बराबर तना रहे तो पेंसिलका मार्ग एक अण्डेकी शकलका होगा। यह स्पष्ट है कि इस वक्रकी उत्पत्ति इस प्रकार कही जा सकती है:—"दीर्घ वृत्त या ऊनकल वह वक्र है जो एक ऐसे विन्दुके संचालनसे उत्पन्न होता है जिसका दो स्थिर विन्दुओंसे अन्तरोंका योगफल बराबर एकसा ही रहता हो (स्थिर हो)"।
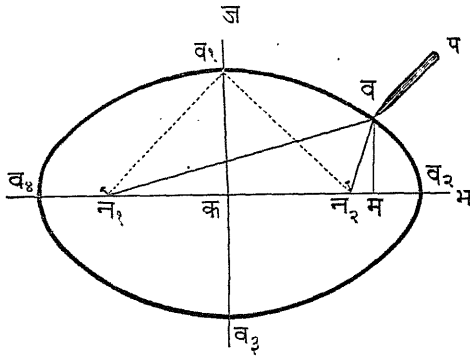
चित्र नं० १

मान लो कि 'न१' 'न२' दो सुइयाँ हैं 'व' पेंन्सिल की नोक है। 'व' के 'न१' 'न२' से अन्तरोंका योगफल = 'वन१' + 'वन२' = डोरेकी लम्बाई = स्थिर

राम—गुरु जी-अब कृपाकरके किसी खुले हुए वक्रका उदाहरण और उसके बनानेकी रीति बतलाइये।

गुरु—इसका उदाहरण अनुवृत्त है। उसके बनानेकेलिए एक रेखा 'अ ल' काग़ज़पर खड़ी खींचो। इस रेखाके दायेंको एक विन्दु 'अ' लो, 'न' से एक रेखा 'अन' बिलकुल सीधी-(जो किसी तरफ़को भी झुकी न हो-'कल' तक खींचो। 'अन' के मध्यमें एक बिन्दु 'क' बनाओ अब एक चपटा मापक दण्ड (जो बाज़ार में दो पैसेको मिलता है) लो और उसके एक सिरेसे एक डोरा कसकर ऐसा बांध दो कि दंड सरक न सके।
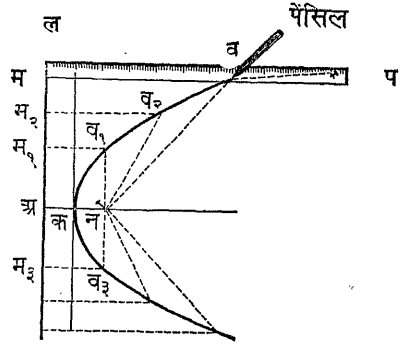
चित्र नं० २

अब इस मापक दण्डको जैसा चित्रमें दिखलाया है रेखापर रक्खो। डोरेको दण्डकी लम्बाईके बराबर नापकर उसका दूसरा छोर एक पिनसे बांधने दो। पिनसे बांधनेके बाद पिन ठीक मापक दण्डके छोरपर आनी चाहिए, यदि आगे पीछे हो तो डोरेके पहले सिरेको दण्ड पर पीछे आगे सरका कर ठीक कर लेना चाहिए।

अब पिनको न पर गाड़ दो। यह स्पष्ट है कि डोरा ढीला होगा। इसे अब पेंन्सिलसे तान दो। एक विन्दु र बन जायगा। दण्डको 'अल'के सहारे चलाओ और डोरेको ताने रहो इस प्रकार पेंसिलकी नोकसे अनुवृत्त खिंच जायगा।

इस वक्र पर कोई विन्दु 'व' लो
इसका अन्तर न से = 'नव'
परन्तु डोरे की लम्बाई = 'नव' + 'वप'
= 'मप'
= 'मव' + 'वप'
∴ 'मव' = 'नव'

यानी 'व' की दूरी 'अल' से और न से बराबर है।

इस अनुवृत्तके प्रत्येक विन्दुका अन्तर 'अल' और न से बराबर है इसलिए इसकी उत्पत्ति यों कही जा सकती है:—

"अनुवृत्त वह वक्र है जो एक ऐसे विन्दुके चलनेसे पैदा होता है, कि उसका अन्तर एक स्थिर रेखा और विन्दुसे बराबर रहता है"

कृष्ण—इन सबमें हमारे खेलका ज़िक्र ही नहीं आया आप तो हमें खेल दिखलाने वाले थे।

गुरु—अच्छा आज तो देर हुई, कल बतलावेंगे *

अणुलीला

[ले० अ० गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी.]

अणु भ्रमण सिद्धान्त

पत्थरको जब हम देखते हैं तो यह विचार उत्पन्न होता है कि इसमें किसी तरहकी चेष्टा या चंचलता नहीं है। प्रायः जब कभी हम किसी सुस्त आदमीको एक ही जगह बैठे रहनेपर बुरा भला कहते हैं तो पत्थरकी अचलताकी उपमा देते हैं। परन्तु आज हम यह बतलाना चाहते हैं कि वास्तविकमें पत्थरके अंदर भी छोटे छोटे टुकड़े बड़े ज़ोरसे चक्कर लगाते रहते हैं। प्रत्येक पदार्थ जो आपको निश्चल दिखलायी देता है, उसके अंदर भी अणु बड़े वेगसे घूमते रहते हैं-इसको अणु भ्रमण वाद (Kinetic Theory) कहते हैं।

अणु क्या है ?

पटास परमानगनेटका एक चावलके बराबर रवा लिया जाय और थोड़ेसे पानीमें घोलकर, पानीसे भरी हुई देग़में मिला दिया जाय, तो देग़का पानी रंगाहुवा नज़र आवेगा। इस पानीकी प्रत्येक बूंदमें रंगका अंश मौजूद है। देग़का पानी लाखों बूंदोंके बराबर है इसलिए यह कहना पड़ेगा कि इस रङ्गके रवेके लाखों टुकड़े हो गये।

पदार्थका गुण है कि उसके भाग विभाग किये जा सकते हैं। परन्तु क्या इस प्रक्रियाका कभी अन्त भी होता है ? क्या किसी भी पदार्थके असंख्य टुकड़े किये जा सकते हैं ?

ऊपरके उदाहरणसे मालूम होता है कि एक रवेके लाखों टुकड़े हुए परन्तु यह ठीक पता न लगा कि कितने टुकड़े हुए या हो सकते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंने पदार्थोंके बहुत छोटे छोटे टुकड़े किये हैं जिनके दो उदाहरण दिये जाते हैं-सोनेके पत्र इतने बारीक बनाये गये कि ३००००० पत्रोंकी मुटाई १ इञ्च थी-वोल्लेसटन (Wollaston) ने प्लेटीनम धातुका ऐसा तार खींचा कि जिसकी मुटाई १/३,०००,००० (एक इञ्चका तीसलाखवां हिस्सा) थी

सुगंधित वस्तुओंकी सुगंध आपतक उन छोटे छोटे अंशों द्वारा पहुंचती है जो उससे उड़कर आपतक आते हैं। यदि इन अंशोंका आपतक आना बन्द कर दिया जाय (अर्थात् सुगंधित चीज़ ऐसी डिब्बीमें बन्द कर दी जाय जिसमें वायुका प्रवेश न हो सके) तो आपको खुशबू भी न आवेगी। लेसली (Leslie) ने सन् १८२३ में यह बतलाया कि कस्तूरीका एक ग्रेन २० वर्ष तक खुशबू देता रहेगा और उन्होंने यह अनुमान लगाया कि इतने समयमें इसके ३२० संख (Quadrillion) टुकड़े हुवे। टेट (Tait) ने लिखा है कि यद्यपि यह नहीं मालूम कि उन्होंने इस शब्दका किस अर्थमें प्रयोग किया, परन्तु-उनका अन्दाज़ा आधुनिक गवेषणाओंसे ठीक सिद्ध होता है। लेसलीके इस अनुमानसे मालूम होता है कि पदार्थ मात्रके टुकड़े किये जानेकी सीमा है। प्रत्येक पदार्थके ऐसे टुकड़े होते हैं जिनके और अधिक छोटे टुकड़े नहीं हो सकते इन टुकड़ोंको 'अणु' कहते हैं।

* Mathematics गणित शास्त्र]

परमाणु क्या है ?

संसारमें पदार्थ दो प्रकारके हैं-संयुक्त और मूलतत्व।

मूलतत्व वह पदार्थ हैं जो दो या अधिक पदार्थोंके मिलानेसे न तो बनाये जा सकते हैं, न जिनमेंसे दो या अधिक पदार्थ निकाले जा सकते हैं।

संयुक्त पदार्थ वह हैं जो दो या अधिक पदार्थों (मूलतत्वों) के मिलानेसे बनाये जा सकते हैं या जिनमेंसे दो या अधिक मूलतत्व निकाले जा सकते हैं।

लोहा, तांबा, जस्ता, सीसा, ओषजन उज्जन इत्यादि ८० के लगभग मूलतत्व हमें मालूम हैं संयुक्त पदार्थ लाखों हैं, जिनमें मामूली पानी, चूना, पत्थर इत्यादि शामिल हैं।

अब किसी संयुक्त पदार्थपर विचार करना चाहिये। पानी पहले मूलतत्व समझा जाता था परन्तु केवेंडिश (Cavendish) ने पानीको ओषजन (oxygen) और उज्जन (hydrogen) से बनाया और कार्लाइल् (Carlisle) ने विद्युतकी धारासे पानीका पृथक्करण किया और उससे यही दोनों गेसें निकालीं, तबसे पानी संयुक्त पदार्थ माना जाता है। पानीकेप्रत्येक अणुमें इन दोनों गेसोंका अंश मौजूद होता है।

इन अंशोंको हम परमाणु कहते हैं, संयुक्त पदार्थके अणुमें कई मूलतत्वोंके परमाणु होते हैं, परन्तु मूलतत्वके अणुमें एक ही प्रकारके परमाणु होते हैं।

अणु कितने बड़े होते हैं ?

अणु और परमाणुओंका होना केवल कल्पित ही नहीं है, वैज्ञानिकोंने इनको गिना है, इनका भार (वज़न) निकाला है और इनका व्यास नापा है। साधारण रीतिसे इनके व्यासका अन्दाज़ा इस तरहपर दिया जा सकता है।

'टेटका मत है कि अगर एक घन-इञ्च पानी किसी तरकीबसे इतना बड़ा दिखलायी देने लगे कि उसकी प्रत्येक भुज पृथ्वीके व्यासके बराबर प्रतीत हो, तो पानीका हर एक अणु लगभग एक घन इञ्चके बराबर मालूम होगा।'

'क्लिफ़र्ड (Clifford) ने लिखा है कि यदि कोई ऐसा अणुवीक्षण यंत्र बन सके जिससे कोई चीज़ अपने असली क़दसे ६४००००००० गुनी बड़ी दिखलायी दें, तो हम उस यंत्रसे पानीके अणु देख सकेंगे।'

'पचास लाख अणु यदि एक पंक्तिमें रख दिये जाँय तो उनकी लम्बाई एक इञ्च होगी।'

अणु घूमते हैं कि ठहरे हुए रहते हैं ?

हम ऊपर कह आये हैं कि अणु बराबर घूमा करते हैं, परन्तु अभी तक हमने इस बातपर विचार नहीं किया कि ऐसा माननेकी क्या आवश्यकता थी, इसके बतलानेकेलिए तीन प्रयोग नीचे दिये जाते हैंः—

(१) सन् १८९६ में रौबर्ट औस्टिन् (Robert Austen) ने बतलाया कि यदि दो टुकड़े सोने और सीसेके पास पास रखे जांय तो थोड़े दिनोंमें सोनेसीसेके और सीसेमें सोनेके अंश (traces) पाये जांयगे।

(२) एक छोटी बोतल लो, उसे नीला थोथेके घोलसे भर दो और उसका मुँह काँचके टुकड़ेसे ढक दो। इसके बाद उसे किसी बर्तनमें उलटा रखकर, बर्तनको पानीसे भर दो। अब बोतलके मुँहसे काँचका टुकड़ा आहिस्तासे हटा दो—कई घण्टे बाद नीला रङ्ग तमाम बर्तनमें फैल जायगा।

(३) दो गेस जार क और ख उज्जन और वायु भरे हुवे लो। ख को रखकर क उसके ऊपर औंधा दो। थोड़ी देरके बाद परीक्षा करने पर ख में थोड़ा उज्जन पाया जायगा।

अब यह सवाल पैदा होता है कि सोनेके अंश सीसेमें और सीसेके सोनेमें कैसे पहुंचे ? यद्यपि नीला थोथेका घोल पानीसे भारी है, तो भी उसका कुछ अंश पानीमें पहुँच गया और
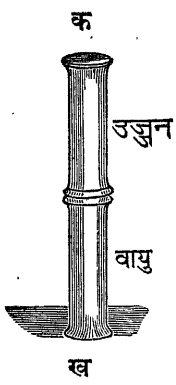
पानी नीला हो गया। भारी वायु हलके उज्जनमें ऊपरकी तरफ़ जा मिली, यद्यपि भारी वस्तुका नीचे रहना और हलकीका ऊपर रहना एक सामान्य नियम है।

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेकेलिए हमको यह मानना पड़ेगा कि इन वस्तुओंके अणु बारबर घूमते रहते हैं। सोनेके अणु घूमते घूमते सीसेके अणुओंमें जा मिले और इसी प्रकार सीसेके अणु सोनेके टुकड़ेमें जा घुसे, परन्तु इन पदार्थोंके ठोस होनेके कारण अणु उन वस्तुओंके बाहर बड़ी कठिनतासे जा सकते हैं। इसी कारणसे सोनेमें सीसा बहुत दिनोंके बाद पाया जाता है।

नीला थोथेके अणु भी घूमते हैं। घूमते घूमते बोतलके बाहर निकल आते हैं और पानीको रङ्ग देते हैं।

पानीके द्रव होनेके कारण अणु सुगमतासे बोतलके बाहर आ जाते हैं और थोड़ेहा घंटोंमें पानीको रङ्ग देते हैं।

उज्जन और वायुके अणु और भी वेगसे घूमते हैं। इस कारण वे थोड़े ही मिनटोंमें आपसमें मिल जाते हैं।

पदार्थ की तीन दशाएं

पदार्थ हमें तीन अवस्थाओंमें मिलते हैं यानी दृढ़ (ठोस) द्रव और वायु (भाफ या गैस)। प्रायः प्रत्येक पदार्थ इन तीनों अवस्थाओंमें रह सकता है। अवस्था केवल तापक्रम और दबाव पर निर्भर है। पानी ठंडा करनेसे बरफ़ होकर जमजाता है और गरम करनेसे भाप बनकर उड़ जाता है। यह हम देख ही चुके हैं कि गैसोंके अणु बड़े वेगसे, द्रवोंके कुछ कम वेगसे, और ठोसोंके बहुतही कम वेगसे घूमते हैं। अब हम इनकी गति पर सविस्तार तीन अवस्थाओंमें विचार करेंगे।

ठोस—इस अवस्थामें अणु घूमते अवश्य हैं परन्तु वे अपने स्थानसे अधिक दूर तक इधर उधर नहीं जा सकते। थोड़ेसे अणु एक केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाते हैं और प्रत्येक वस्तुमें ऐसे अणु समूह बहुतसे होते हैं। कभी कभी ऐसे एक समूहसे कोई अणु बड़े ज़ोरसे घूमता हुआ उसके बाहर निकल जाता है और दूसरे समूहमें जा मिलता है। कभी ऐसा भी होता है कि बड़े वेगसे चक्कर लगाता हुआ कोई अणु वस्तुसे निकलकर दूसरी वस्तुमें प्रवेश कर जाता है।

ठोस वस्तुके अणुओंकी दशा वैसी ही होती है जैसे किसी बड़े जेलख़ानेमें क़ैदियोंकी। जेलमें बहुतसी कोठरियां होती हैं जिनमें क़ैदी बन्द रहते हैं, यह क़ैदी अपनी अपनी कोठरियोंमें ही घूम सकते हैं परन्तु कभी कभी कोई क़ैदी जेलसे निकल भागता भी है।

इन अणुओंके चक्कर लगानेका कारण उनका तापक्रम है। जितना तापक्रम अधिक होगा उतनी ही अधिक तेज़ीसे अणु चक्कर लगायेंगे। यदि तापक्रम बहुत बढ़ा दिया जाता है तो अणु अपने अपने समूहोंसे भाग निकलते हैं और बिना किसी भांतिके रुकावटके उस वस्तुमें घूमते फिरते हैं।

द्रव—इस अवस्थामें ठोसका द्रव हो जाता है। द्रवके अणु चक्कर लगानेके अलावा ढुलक भी सकते हैं। जिस वर्तनमें द्रव रखा हो उसके एक छोरसे दूसरे छोरतक कोई भी अणु पहुंच सकता है परन्तु प्रायः दूसरे अणु या अणुओंसे टक्कर खाकर वापस चला आता है। ऊपर दिये हुए गुणोंसे प्रतीत होगा कि द्रवके अणुओंमें दो प्रकारकी गति होती है।

ढुलकनेकी गति कहांसे और क्योंकर प्राप्त हुई ?

पाठकोंको यह मालूम होगा कि यदि किसी ठोस वस्तु जैसे मोमको गरम करें तो उसका तापक्रम बढ़ता जायगा। इस दशामें जो गरमी मोमतक पहुंचती है वह उसके तापक्रम बढ़ाने (या जैसा कि हम ऊपर बतला चुके हैं अणुओंकी तेज़ी बढ़ाने) में ख़र्च होती है। परन्तु जब मोम पिघलने लगेगा तो तापक्रमका बढ़ना तबतक बन्द रहेगा जबतक कि कुल मोम पिघल न जाय। इस अरसेमें जो गरमी मोममें बराबर पहुंचती रही उसका क्या हुआ ? इसको गलानेवाली गुप्त गर्मी (Latent heat of fusion) कहते हैं। यह गरमी दो प्रकारसे ख़र्च होती है। प्रायः पिघली हुई चीज़का अपनी ठोस अवस्थाकी अपेक्षा विस्तृत आयतन अधिक होता है। पहले आयतनके बढ़नेमें बाहरी पदार्थोंको हटाना पड़ता है साधारणतया वायुको) ऐसा करनेमें उपरोक्त गर्मी कुछ ख़र्च होती है। दूसरे इस गर्मीसे ही नई प्रकारकी गति अणुओंको प्राप्त होती है।

द्रव क्यों उड़ जाते हैं ?

प्रायः सभी जानते हैं कि पानी साधारण रीतिसे उड़ता रहता है यदि ऐसा न होता तो हमारी गीली धोतियां कभी भी न सूखतीं। अब प्रश्न यह है कि पानी क्यों उड़ता है ?

पानीका कोई अणु घूमते घूमते कभी इतने ज़ोरसे उसकी सतह तक आजाता है कि उसको तोड़कर वायुमण्डलमें स्वेच्छाचार विहार करने लगता है। इस प्रकार प्रति सेकण्ड कुछ अणु अपनी सीमाको लाँघ जाते हैं। यदि किसी तरकीबसे पानीका तापक्रम बढ़ा दिया जाय अर्थात् उसके अणुओंके गतिका वेग बढ़ा दिया जाय तो सीमाके उल्लंघन करनेवाले अणुओंकी संख्या भी बढ़ जायगी। इस भांति पानी जलदी उड़ने लगेगा।

पानीके अणुओंको बर्तनके अन्दर रखनेवाली तीन चीज़ें हैं। (१) अणुओंका आपसका आकर्षण (ठोसोंमें यह आकर्षण बहुत ही ज़्यादा होता है) (२) सतहकी रोक। पाठकोंने प्रायः देखा होगा कि जब कभी कोई हलकी चीज़ पानीपर गिरती है तो उसकी सतहपर पहले पहल ऐसी गुलझट पड़ जाती है जैसी किसी तनी हुई चद्दर पर। इसके बाद वह वस्तु कुछ तो डूब जाती है और कुछ पानीके बाहर रहकर तैरने लगती है। (३) वायुका दबाव—तापक्रम बढ़ानेसे सभी अणु वेगसे चलकर एक दूसरेको आकर्षण शक्तिको वैसेही ख़्यालमें नहीं लाते जैसे अभिमानी पुरुष अपने घमंडमें समाजके बन्धनोंको तोड़ डालते हैं। इन अणुओंकेलिए सतहकी रोक भी कुछ विशेष रुकावट नहीं है। केवल वायुके दबावसे ही वे बहुत कालतक दबे पड़े रहते हैं, परन्तु तापक्रम बढ़ते हुए किसी विशेष तापक्रमपर इनका वेग इतना बढ़ जाता है कि इनका दबाव वायुके दबावके बराबर होजाता है, इस अवस्थामें यह बड़ी जल्दी जल्दी बाहर निकल भागने लगते हैं। इस अवस्थाको उबलना कहते हैं। साधारण उड़नेमें अणु केवल सतहसे ही जाते थे, परन्तु उबलनेमें द्रवके समस्त आयतनमेंसे अणु निकलकर भागने लगते हैं। इस तापक्रमको उबाल-अवस्था या उबाल (boiling point) कहते हैं।

ऊपर हम देख चुके हैं कि द्रवसे गेस बननेमें अणुओंमें क्या परिवर्तन हो जाता है। गेसके अणुओंको सिवाय सीधी दौड़ लगानेके कुछ और नहीं सूझता, उनको एक दूसरेका लिहाज़ (आपसमें आकर्षण) बिलकुल नहीं। यही कारण है कि थोड़ी सी गैस भी बड़ेसे बड़े आयतनमें फैल जानेकी चेष्टा करती है और सचमुच ही फैलकर उस समस्त आयतनमें व्याप्त हो जाती है। जब किसी गेसके घड़ेका मुँह खोलते हैं तो गेस वायु मण्डलमें फैल जाती है।

इससे हमें लाभ क्या ?

गेसोंके इस गुणसे हमें बड़ा लाभहै। यदि

यह गुण गेसोंमें न होता तो जिस कमरेमें एक बार धुआं भरजाती उससे धुआं कभी न निकलती। जिस प्रयोगशालामें क्लोरीन (chlorine) वायु एक बार तय्यार करनेमें भरजाती उसमेंसे वह कभी न निकलती और मनुष्यका उसमें जाना दुष्कर हो जाता। बड़ी भारी भारी गेसें जो चीज़ोंके सड़नेसे बनती रहती हैं यदि फैलकर हवामें न मिल जातीं तो जिस स्थानपर कोई वस्तु सड़ जाती उस जगह मनुष्यका रहना मुशकिल हो जाता*। (शेष फिर)

* Chemistry रसायनशास्त्र]

जीवन की उत्पत्ति

(Origin of life.)

[ले. पं० धरणी धर जोशी, बी. एस-सी]

जीवित पदार्थका भौतिक और रासायनिक स्वरूप बड़ा ही पेचीदा होता है। इस पेचीदगीका यह कारण है कि जिन तत्वोंका यह बना हुआ है उनमें आपसमें कितने ही प्रकारसे संयोजित होनेकी शक्ति है। सबसे पेचीदे अणु जिनके द्वारा जीवित पदार्थ बनता है और जिनके द्वारा मुख्य जीवन संबंधिनी क्रियाएं होती हैं वे प्रोटीड (Proteid) हैं। प्रोटीड कर्बन (carbon), उज्जन (hydrogen), ओषजन (oxygen), नत्रजन (nitrogen), गन्धक (sulphur) और स्फुर (phosphorous) इतने तत्वोंके योगसे बनते हैं। इन तत्वोंके निरन्तर मिलनेपर और जब ये मृत होगये हैं जीवित अवस्थामें परिवर्तन करनेपर ही जीवित पदार्थका होना शक्य है। जीवित पदार्थका सर्वदा क्षय होता है और जिन तत्वोंसे यह बना है उनका, मृत और जीवित दोनों अवस्थाओंमें, अनैन्द्रिक (inorganic) रूपमें बराबर परिवर्तन होता रहता है। इस क्षयकी पूर्ति जीवित पदार्थके मृत वस्तुको अपने शरीरोपयोगी जीवित-द्रव्योंमें परिवर्तन करनेसे होती है। इस मृत वस्तुको जीवित अवस्थामें लानेमें वृक्ष अधिक भाग लेतेहैं क्योंकि वृक्षोंमें ही यह शक्ति होती है कि वे अपने शरीरको अनैन्द्रिक (inorganic) वस्तुओंसे बना सकते हैं। इसके विपरीत जानवर उन्हीं वस्तुओंको खा सकते हैं जिनका ऐन्द्रिक (organic) रूपमें परिवर्तन हो गया हो। जानवरोंके भोज्य पदार्थ जिनसे इन्हें कर्बन, उज्जन, ओषजन, नत्रजन, गन्धक और स्फुर मिलता है वे फ़ैट (fat) कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate) और प्रोटीड (proteid) हैं। इनके अतिरिक्त जानवरोंको अमिश्रित (free) ओषजनकी आवश्यकता होती है क्योंकि इनके भोज्य पदार्थोंके कर्बनके जलने (combustion) पर ही इनकी शक्तिका होना निर्भर है। यह ओषजन वायुमंडलसे मिलती है अथवा पानीसे जिसमें यह घुली रहती है। इसके सिवाय पानी और कुछ प्रकारके लवणोंकी आवश्यकता होती है। परन्तु इसके विपरीत हरे वृक्षोंके खाद्य पदार्थ भिन्न प्रकारके होते हैं। इनको ऐन्द्रिक (organic) पदार्थकी आवश्यकता नहीं होती। यह कर्बनको वायुमंडलकी कर्बनद्विओषित्से (carbon dioxide) सूर्यके प्रकाशमें क्लोरोफ़िल* (chlorophyll) के द्वारा, नत्रजनको मिट्टीसे जहां कि यह नत्रितके (nitrates) रूपमें वर्तमान हैं, उज्जन पानीसे औरओषजनको वायुमंडलसे और पानीसे स्फुर और गन्धकको अनेक प्रकारके लवणोंसे जो मिट्टीमें वर्तमान हैं प्राप्त करते हैं। यह हरे वृक्षोंका ही काम है कि वे जीवित पदार्थके मृत तत्वोंको फिर जीवित अवस्थामें लाते हैं। यदि हरे वृक्ष न हों तो पृथ्वी जीवशून्य हो जाय।

* यही वस्तु है जिसके कारण वनस्पतियोंका रंग हरा होता है।

इसलिए जानवरोंका जीवित रहना हरे वृक्षोंपर बिलकुलही निर्भर है। परन्तु यद्यपि वृक्षोंकेलिए जानवरोंका होना आवश्यक नहीं है तथापि उनके पोषणमें जानवरोंसे बहुत सहायता मिलती है। जानवर कर्वनद्विओषित्को सांससे बाहर निकालकर वायुमंडलमें छोड़ते हैं जिससे वृक्षोंको कर्वन मिलता है। जानवरोंकी विष्ठासे और उनके मृत शरीरोंके गलनेसे मिट्टीमें नत्रित (nitrates) स्फुरित (phosphates) और गन्धित (sulphates) लवण बनते हैं जिनसे वृक्ष अपना शरीर बनाते हैं जैसा कि अभी कहा गया है।

इस प्रकार जीवित पदार्थके तत्वोंकी वृक्षोंसे जानवरोंमें और जानवरोंसे वृक्षोंमें अदला बदली हुआ करती है।

इस अदला बदलीमें बैक्टेरिया (bacteria) एक बड़ा हिस्सा लेते हैं। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि बिना बैक्टेरियाके पृथ्वी एकदम जीवशून्य हो जाय। हम यह जान चुके हैं कि कर्वनका जो जीवनकेलिए अत्यावश्यक है मृत अवस्थासे जीवित अवस्थामें हरे वृक्षके द्वारा परिवर्तन होता है जो अपने क्लोरोफ़िलके द्वारा सूर्य्यके प्रकाशमें वायुमंडलके कर्वनद्विओषित्के कर्वनको लेकर अपने शरीरके पोषणकेलिए भोज्य पदार्थ बनाता है। परन्तु नत्रजनको हरा वृक्ष केवल एकही जगहसे यानी मिट्टीमें जो निर्जीव नत्रित (nitrates) वर्तमान हैं उनसे ले सकता है। मिट्टीमें नत्रजनीय ऐन्द्रिक पदार्थ प्राणियोंकी मृत देह और विष्ठाके सड़नेसे बनते हैं। ऐन्द्रिक पदार्थसे नत्रित लवणका बनना एक पेचदार क्रिया है जिसमें कितने ही प्रकारकी बैक्टेरिया सहायता पहुंचाती हैं। जब कोई जीव-चाहे वह पशुवर्गका हो अथवा वनस्पतिवर्गका हो-मरता है तो उसका शरीर मिट्टीमें पड़ता है और सड़ने लगता है। यह कार्य्य सड़ानेवाले बैक्टेरियाका है जो पेचदार प्रोटीडको नत्रजनके सरल मिश्रणोंमें परिणत करते हैं और इनको अमोनिया (ammonia) के मिश्रणोंमें। जब सड़ना पूरा हो जाता है दूसरे बैक्टेरिया उन अमोनियाके मिश्रणोंको खनिज नत्रावित (nitrites) में बदलते हैं। और एक तीसरे प्रकारके बैक्टेरिया उन्हें नत्रित (nitrates) बना देते हैं। इस प्रकार मृतक शरीरका नत्रजन फिर उस स्वरूपमें बदल जाता है जिसमें हरे हरे वृक्ष उसे अपने भोजनके काममें ला सकते हैं। इस क्रियाका एक ख़ास हिस्सा एक ख़ास तरहके बैक्टेरियाका काम है और यदि ये बैक्टेरिया न हों तो हरएक जीवकी मृत्युके साथ नत्रजनका भी नाश हो जाय और अंतमें नत्रजनके न होनेसे पृथ्वी जीवशून्य हो जाय।

मृत शरीरोंसे नत्रजनको लेकर उसे नत्रितमें परिवर्तन करनेके अलावा कुछ बैक्टेरिया ऐसे भी हैं जो वायुमंडलकी नत्रजनको काममें ला सकते हैं। ये बैक्टेरिया कृषिके कार्य्यमें बड़ी सहायता पहुंचाते हैं क्योंकि जिस मिट्टीमें वे होते हैं उसमें नत्रजनके परिमाणको बढ़ा देते हैं।

इसलिए बैक्टेरिया नत्रजनके संबन्धमें हरे वृक्षकेलिए वैसे ही हैं जैसे कि हरा वृक्ष कर्वनके संबन्धमें और दूसरे जानवरोंकेलिए। बिना क्लोरोफ़िल (chlorophyll) जीवनका कर्वन न होनेसे नाश हो जाय और बिना बैक्टेरियाके नत्रजन न होनेसे जीवनका अंत हो जाय।

वृक्षों और जानवरोंके भोजनके परिपाक (assimilation) के बारेमें यह साधारण परन्तु आवश्यक बातें संक्षेपमें कही गयी हैं। क्योंकि जीवनकी उत्पत्तिका प्रश्न यद्यपि अविगहन है तथापि उसका परिपाकके साथ—यानी उस शक्तिके साथ जिससे कि जीवित पदार्थ अपने चारों तरफ़के मृत पदार्थोंसे अपनी देह बनानेकेलिए आवश्यक तत्व चुनता है-निकटस्थ संबन्ध है।

यह नहीं कहा जा सकता कि जीव विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ जीवनकी उत्पत्तिका प्रश्न भी हल होगया है। Radi, Needham इत्यादिके अन्वेषणके पहले और Pasteur की श्रेष्ठ पुस्तक छपनेके पहले यह विश्वास था कि मृत पदार्थ सर्वदा जीवित अवस्थामें परिणत होते रहते हैं। इसलिए उस ज़मानेमें जीवनकी उत्पत्तिके प्रश्नको हल करना सहल विदित होता था। परन्तु अब जब कि जड़ पदार्थसे जीवित पदार्थकी उत्पत्ति या स्वतोजनि (spontaneous generation) का सिद्धान्त नहीं माना जाता और उसके बदलेमें यह सिद्धान्त कि जीवित पदार्थ जीवित पदार्थसे ही पैदा होता है सब जगह माना जाता है तो जीवनकी उत्पत्तिकेलिए हमको उस भूतकालका ज्ञान होना आवश्यक है जिसकी दशा वर्तमान कालकी दशासे बहुत ही भिन्न थी।

यह विश्वास नहीं होता कि जीवनकी उत्पत्ति उसी स्वरूपमें हुई हो जिसमें कि हम आज उसे सबसे सरल जीवोंमें पाते हैं यानी प्रोटोज़ोआ (protozoa) प्रोटोफ़ाइटा (protophyta) और बैक्टेरिया। यह सच है कि ये सरल जीव इस मानेमें आदिकालिक (primitive) हैं कि ये जन्तुओंके विकासमें एक बहुत पुरानी हालत, जब कि जन्तुका शरीर केवल एक (cell) कोष का था, दर्शाते हैं। परन्तु यह हालत जीवनकी उत्पत्तिके बहुत दिन बादकी है। प्रोटोज़ोआ अनेक प्रकारके होते हैं। इनकी बनावट बहुत सरल होती है और इनकी
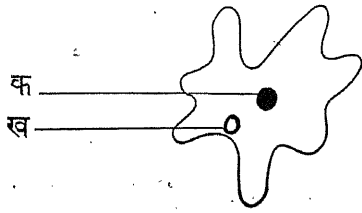
चित्र नं० १
चित्र १. क. कललकेन्द्र; ख. कनट कटाइलवेक्यूल.

देह केवल एक कोषकी बनी हुई है। (चित्र १) अमीबा (amœba) प्रोटोप्लोज़्म (protoplasm) की फेनके समान मात्रा है जिसमें एक कललकेन्द्र (nucleus) होता है। यह सबसे नाची श्रेणीका जन्तु है। यह चलनेकेलिए अथवा भोजन पकड़नेकेलिए देहके किसी भी भागको बढ़ा सकता है। इसके देहके किसी भी भागमें विष्टाद्वार (excretory vacuole) बन जाता है। इसके प्रजनन (reproduction) की यह रीति है कि इसके कललकेन्द्रके पहले दो टुकड़े होते हैं और फिर प्रोटोप्लाज़्मके दो टुकड़े अलग हो जाते हैं जिनमें हरएकमें एक कललविन्दु होता है और ये दोनों टुकड़े फिर बढ़कर पूरे अमीबाके स्वरूपके हो जाते हैं। इस प्रकारका कोष जो केवल कललकेन्द्र और प्रोटोप्लाज़्मका बना होता है जीवित पदार्थकी सबसे निम्न श्रेणी है। जिन जिन जीवोंमें कललकेन्द्रके होनेमें संदेह था अब उनमें भी उसका अस्तित्व साबित हो गया है। यह सच है कि बैक्टेरियामें कललकेन्द्र प्रोटोप्लाज़्मसे झिल्लीके द्वारा भिन्न नहीं है परन्तु उनमें भी प्रोटोप्लाज़्ममें कललकेन्द्रके टुकड़े रंगने से दीख पड़ते हैं।

प्रोटोज़ोआ (Protozoa) की बनावटमें बड़ी भिन्नता पायी जाती है। इसमें सरल अमीबासे लेकर पेचीदा स्वरूपवाले सिलियेट (ciliats) तक होते हैं जिनमें एक ही निर्दिष्ट कोषमें मुँह (mouth) बाहरकी छाल (cuticle) विष्टाद्वार (exeretoryvacuole) और चुभनेवाले तार (stinging threads) होते हैं। कोई कोई प्रोटोज़ोआ बहुत बड़े आकारके होते हैं और उनमें एकको जगह कितने हो कललकेन्द्र होते हैं। बहुतसे प्रोटोज़ोआमें साधारण उद्भेद (fission) के अतिरिक्त प्रजनन और प्रकारसे भी होता है। जिसमें कि मीटेज़ोआ (metazoa), जिनका शरीर एक कोषसे अधिकका है, के प्रजननके समान शुक्रकीट (sperm-

atozoa) और रज (ova) होते हैं। इसलिए यद्यपि यह सच है कि प्रोटोज़ोआ सबसे सरल जन्तु हैं तथापि उनके कार्य्योंमें बड़े जन्तुओं-से सादृश्य है और वे जीवन और मृतके भेद-भावको दूर नहीं करते। उनके भोजन करनेकी रीति भी बड़े जन्तुओंके समान है। प्रोटोज़ोआ केवल ऐन्द्रिक वस्तुओंको ही भोजनके काम-में लाते हैं। अमीबाके भोज्य पदार्थ छोटी छोटी वनस्पतियां जैसे डाइएटमस् (diatoms) इत्यादि बैक्टेरिया और कुछ दूसरे प्रकारके जन्तु। इससे यह विदित होता है कि अमीबाके होनेके पहले इस पृथ्वीमें वनस्पतियां थीं। इसलिए यह समझना कि जीवनकी उत्पत्तिके प्रश्नको मांसाहारी वा शाकाहारी प्रोटोज़ोआ हल कर देंगे भ्रमात्मक है क्योंकि उनका आकार और जीवनप्रणाली इस प्रकारकी हैं कि उनके भोजनकेलिए जीवित पदार्थका होना आवश्यक है। यह समझना भी भूल है कि जीवनकी उत्पत्ति पहले बैक्टेरियाके रूपमें हुई। यह सच है कि प्रोटोज़ोआके बनि-स्बत उनका अनैन्द्रिक पदार्थोंमें निकटतर संबन्ध है क्योंकि वे नत्रजनको न केवल अनैन्द्रिक पदार्थोंसे ले सकते हैं वरन वे उसे वायुमंडल-के अमिश्रित नत्रजन गैससे ले सकते हैं। परंतु बैक्टेरिया कर्वनको अनैन्द्रिक पदार्थोंसे लेने-में असमर्थ हैं क्योंकि उनमें क्लोरोफ़िल नहीं होता। वे इसलिए कर्वनको ऐन्द्रिक मिश्रणोंसे जिन्हें किसी दूसरे जीवने पहलेसे तय्यार किया है लेते हैं। यही कारण है कि बैक्टेरिया सड़ते हुए जानवरों और वनस्पतियोंमें पाये जाते हैं और यह विदित होता है कि उनके इस पृथ्वीमें होनेके पहले और प्रकारके जीवित पदार्थ इसमें मौजूद थे।

अब केवल क्लोरोफ़िलवाले वृक्ष ही ऐसे हैं जिनके विषयमें हम यह सोच सकें कि जीवन-की उत्पत्ति पहले उनके रूपमें हुई है। यदि परिपाक (assimilaton) के प्रश्नपर विचार किया जाय तो यह विदित होता है कि हरे वृक्ष ही इस विषयमें सबसे स्वतन्त्र हैं, क्योंकि यह अपने शरीरकेलिए बिना दूसरे जीवोंकी सहायताके अनैन्द्रिक पदार्थोंसे सामग्री इकट्ठा कर सकते हैं। यह तो मानना ही पड़ेगा कि जीवित पदार्थमें पहलेसे क्लोरोफ़िल था क्योंकि बिना इसके जीवित पदार्थकी बाढ़ असंभव है।

एक कोषवाले जीवोंमें एक प्रकारके जीव होते हैं जिन्हें फ़्लैजेलेट (flagellats) कहते हैं, जोकि एक या दो फ़्लैजेला (flagella) की सहा-यतासे पानीमें चलते हैं। इनमें से कुछ ऐसे हैं जिनमें क्लोरोफ़िल नहीं होता। इसलिए उन्हें जानवरोंमें समझना चाहिए क्योंकि वे ऐन्द्रिक पदार्थोंको भोजनके काममें लाते हैं। अन्य कुछ ऐसे हैं जिनमें क्लोरोफ़िल होता है और वृक्षोंकी तरह वे कर्वनद्विओषित् और अनैन्द्रिक मिश्रणों-पर अपना गुज़ारा कर सकते हैं। इस प्रकारके फ़्लैजेलेट (जिनको हम न जानवर ही कह सकते हैं और न वृक्ष ही) का एक अच्छा उदाहरण (euglena viridis) यूग्लीना विरिडिस् है (चित्र २)। यदि हरी काई जोकि तालाबों और पोखरोंके सतहपर लगी रहती है सूक्ष्मदर्शक यंत्रद्वारा देखी जाय तो प्रायः यह दिखलायी देता है कि उस पानीमें बहुतसे छोटे छोटे हरे जीव हैं जो कि फ़्लैजेलमकी स-हायतासे और बदनके मरोड़न-से पानीमें तैरते हैं। यूग्लीनामें
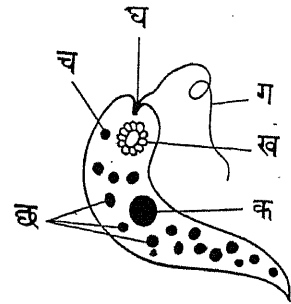
चित्र नं० २

क. कललकेन्द्र; ख. कनट्रेक-टाइल वेक्यूल; ग. फ़्लैजेलम; घ. मुंह; च. आंख; छ. इनमें क्लोरो-फ़िल रहता है।

क्लोरोफ़िल होता है जिसके द्वारा यह कर्वन-द्विओषित्को भोज्य पदार्थोंमें परिणत करता है और माड़ी (starch) की तरहके पदार्थ इसके शरीरमें एकत्रित रहते हैं। हरे वृक्षोंकी तरह यह निर्जीव पदार्थोंपर ही गुज़र कर सकता है। परन्तु इसमें जानवरोंके भी लक्षण हैं। इसके मुँह होता है और ऐन्द्रिक वस्तुओं-को यह भोजनके काममें ला सकता है और आंखकी तरह इसके एक इन्द्रिय होती है। यद्यपि यह माना जा सकता है कि यूग्लीनामें वृक्षोंके लक्षण अधिक हैं परन्तु कुछ फ़्लैजेलेट जो इसके निकट संबन्धी हैं ऐसे हैं कि जिनको जानवरोंकी श्रेणीमें रखनेमें किसीको संकोच न होगा। इसलिए फ़्लैजेलेटोंको हम निश्चय-पूर्वक न जानवरोंमें ही रख सकते हैं और न वृक्षोंमें ही। किसी बातमें वे जानवरोंसे मिलते हैं और किसीमें वृक्षोंसे। उनके लक्षण जानवर और वृक्षोंके बीचके हैं। इस बातका समर्थन इस बातसे होता है कि अधिकांश एक कोष-वाले जानवरों और वृक्षोंमें कभी न कभी एक फ़्लैजेलम होता है और मीटेज़ोआ (metazoa) और मीटेफ़ाइटा (meta-pleyta) के शुक्रकीटा (spermatozoa) में भी फ़्लै-जेलम होता है।

चित्र नं० ३

इसमें चार प्रकारके बक्टेरिया हैं १. स्पाइ-रिलम (spirillum), २. बैसिलस (bacillus). ३. स्ट्रेप्टो-कोकस् (streptococus). ४. वाइब्रो (vibro).

हम यह आधार लेकर चले थे कि जीवनकी उत्प-त्तिका कोई भी सिद्धान्त हो उसमें परिपाक (assimilation) पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए क्योंकि यही सब जीवनसंबन्धिनी क्रिया-ओंका आधार है। यदि हम यह मानें कि जीवन जब पहले उत्पन्न हुआ उसमें वही गुण थे (चाहे कुछ कम परिमाण में हो) जो अब वर्तमान हैं तो हमको यह मानना पड़ेगा कि क्लोरोफ़िल जीवनका अग्रगामी था। यह हम मानते हैं कि क्लोरोफ़िल वर्तमान अवस्थामें जीवित वस्तुके द्वारा पैदा होता है इसलिए क्लोरोफ़िलकी उत्पत्तिका प्रश्न उतना ही जटिल और दुर्गम है जितना कि जीवनकी उत्पत्ति-का। यदि हम यह कहें कि जीवनकी उत्पत्तिके पहले क्लोरोफ़िल नहीं था तो हम ऐसी हालत-का होना मानते हैं जिसके बारेमें हम अपने वर्तमान ज्ञानसे कुछ भी अन्वेषण नहीं कर सकते। यह प्रश्न इतना जटिल है कि हम उन भौतिक शास्त्रज्ञाताओंको दोष नहीं दे सकते जिन्होंने यह सिद्धान्त निकाला कि जीवनकी उत्पत्ति इस पृथ्वीमें नहीं हुई परन्तु यह एक उल्का (meteor) के साथ पृथ्वीमें आया। इससे भी आश्चर्य नहीं होता कि यह सिद्धान्त बदलते बदलते इस मतमें परिणत हो गया कि जीवन और जड़ इनका एकही समय जन्म हुआ और जीव बराबर विसर्जन (cadiation) के द्वारा उस ग्रहमें पहुँचाया जाता है जहाँ उसके रहने-योग्यास्थान हो। हम बैक्टेरियाके ऐसे स्पोरों (spores) के विषयमें जानते हैं जो कि तारा मध्यावकाश (insteller space) के कठोर शीत, उष्णता और ओषजनके अभावको सह सकें। परन्तु इन स्पोरोंपर उपकासनी (ultra-violet) किरणोंका असर होता है और यह शंका उप-स्थित होती है कि ये रास्तेमें इन किरणोंके प्रचण्ड असरको कैसे सह सकते हैं। जीवन-की उत्पत्तिका प्रश्न अन्य उपयोगी और रोचक वैज्ञानिक प्रश्नोंको उत्पन्न करता है परन्तु इसपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करना असंभवसा प्रतीत होता है।

प्राणियोंके जीवनाधार वृक्ष

[ले० अ० नन्दकुमार तिवारी, बी. एस-सी.]

अभी तक पाठकोंको वृक्षोंके बारेमें कुछ साधारण बातें बतलायी गयी हैं। उनका सम्बन्ध इस संसार-के अन्य जीवधारियोंके साथ दिखलाया गया है और उनकी उपयोगिता प्राणिमात्रकेलिए दिखानेकी चेष्टा कीगयी है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वृक्ष संसार-में केवल उन्हीं बातोंकेलिए हैं जिनके सम्बन्धमें हम उनको समझते हैं। यह तो मनुष्योंका एक स्वभाव है कि जिस बातको देख लेते हैं उससे कुछ न कुछ अपना मतलब निकालनेकी चेष्टा करने लगते हैं, उसकी उपयोगिता व अनुप-योगिता अपनेपर घटाने लगते हैं। परमेश्वरने मनुष्यकेलिए यह उपयोगी वस्तु पैदा की, सूर्य्य-को उसको उजियाला देनेकेलिए बनाया, रात आराम करनेकेलिए बनायी, फल खानेकेलिए पैदा किये, इत्यादि अनेक वाक्य उनके मुखसे निकलते हुए सुनायी देते हैं। यह तो एक स्वाभाविक बात हुई। हम नहीं कह सकते कि यदि हम अन्य जीवधारियोंको अपनीसी भाषा-में बोलते हुए सुनते तो उनको ऐसा कहते हुए न पाते कि देखो परमेश्वरने मनुष्य क्या ही अजीब जानवर पैदा किया, उससे सभी काम निकाले जा सकते हैं, मांसाहारी जीवोंकेलिए तो वह पका पकाया भोजन ही है, पशुओं व पक्षियोंका तो मानो टहलुवा है उनकेलिए वह घर बनाता है और उनकी सफ़ाई रखता है और उनको भोजन भी देता है, पेड़ोंकेलिए वह मालीका काम करता है और उनकेलिए वह 'कारबोनिक एसिड गेस' जिसका पेड़ सांस लेकर अपना खाना बनाते हैं पैदा करता है, इत्यादि। इन बातोंके लिखनेका आशय यह है कि हम यह नहीं जानते कि यह संसार केवल मनुष्यों-केलिए ही बनाया गया है—मनुष्य ही यहांका राजा है, यदि यह ऐसा हो भी तो अभीतक इसका कोई ठीक प्रमाण नहीं। हमारी समझमें तो संसारकी सब वस्तुओंका एक दूसरेसे घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह कहना कि कौन वस्तु किसकेलिए बनायी गयी प्रायः असम्भव है। ऐसी अवस्थामें यह कहना कदाचित् अनुचित न होगा कि सभी वस्तुएं सभीकेलिए बनायी गयी हैं और हमारे प्रतिदिनके अनुभवसे भी यही जान पड़ता है। संक्षेपमें, हम नहीं कह सकते कि वास्तवमें वृक्षों-के होनेका क्या मतलब है—यह भी नहीं कह सकते कि इस रंगबिरंगे संसारसे ही क्या लाभ कर्त्ता ने सोच रक्खा है। अन्तमें यही बात कहीं न निकले कि 'हमरे मन कुछ और है कर्त्ताके कुछ और' जो जो बातें हमने सोच रक्खी हैं वह हमारी अविज्ञताके ही कारण हों।

इस कारण ऐसे झगड़ेको छोड़कर अब हम वृक्षोंकी जीवलीलाकी कुछ बातें पाठकोंको सुनाना चाहते हैं। यह बड़ी ही मनोहर कहानियां हैं। यदि यह भलीभांति सुनायी जायँ तो पाठको! आप अपना खाना पीना भूल जायँ। आपको स्मरण होगा कि जब हम नन्हे नन्हे जीव थे हम अपनी माताओं व दादियोंकी कहानियां किस चावसे सुनते थे, हम अपना सर्वस्व भूल जाते थे, उनको सुनते सुनते हमारा जी नहीं भरता था, भूखे ही निद्रामें लीन हो जाते थे और स्वप्नमें भी उन मनोहर बातोंको देखा करते थे। वह समय क्या ही आनन्दमय था, उसको स्मरण करके हम दुःखकी लम्बी लम्बी सांसें लेने लगते हैं और चाहते हैं कि फिर किसी जादूसे वैसे ही छोटे छोटे होकर फिर वही बातें सुनें। प्रिय मित्रो! वह कहानियां और वह समय तो अब कभी न आयेगा इस बातपर दुःख तो अवश्य होता है पर यह बहुत बड़ी बात न होनी चाहिए। यदि आप सचमुच वैसीहा—नहीं उनसे भी बढ़कर-बातें अब भी सुनना चाहते हैं तो आप

सुन सकते हैं। इन मनोहर कहानियोंसे प्रकृतिने अपना भांडार भर रक्खा है और इस भांडारकी कुंजी आपहीके हाथमें दे रक्खी है, चाहिए तो उस परमानन्दका लाभ आप उठाइये। हां एक बात अवश्य करनी होगी। प्रकृति मातासे आप उसी चावसे कहिए जैसाकि बचपनमें आप अपनी दूध पिलानेवाली मातासे कहते थे, उससे लड़िये और झगड़िये फिर क्या! देखिये उसका मुख कभी न रुकेगा। मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आप खाना पीना व अन्य संसारिक सुख तृणवत् समझने लगेंगे, पर आप अपने शारीरिक और मानसिक नेत्रोंको ठीक तरहसे खोलिये तो सही।

लीजिये तो पहली कहानी आप घरपर ही आरामसे लेटे हुए सुनिये। मैं अपनी स्मृतिके अनुसार आपको उसे सुनाऊँगा पर पूरा पूरा आनन्द लेनेकेलिए आपको प्रकृतिकी ही शरण लेनी पड़ेगी। इस घिसे हुए सिक्केको यदि आप नयी दशामें देखना चाहते हैं तो वन उपवनोंमें जाइए और प्रकृतिके ही हाथसे लीजिये। इतनाही नहीं आपको और भी अनेक बातें नयी मिलेंगी जिनको अभीतक और किसीने नहीं पाया। इसीलिए आपको यह कहानी मैंने सुनानेका साहस किया है कि इसको पढ़कर कदाचित आपके चित्तमें खोजकी आग धधक उठे और आप उस परमानन्दका अनुभव करें जो प्रकृति अपने सच्चे भक्तोंपर न्योछावर करती है।

जैसा मैंने ऊपर कहा है इस लेखका आशय आपको वृक्षोंकी जीवलीला सुनानेका है। आपको बतलाया गया है कि वृक्ष जीवधारी हैं और इस जीवनशक्तिके प्रवाहके कारण अन्य जीवोंकी भाँति वह कुछ क्रियाएँ किया करते हैं—जैसे बढ़ना, सांस लेना, भोजन करना, सन्तान पैदा करना इत्यादि—और जितनी क्रियाएँ वह पैदा होनेसे मर जानेतक करते हैं उन सबका नाम जीवलीला है। अब क्रमशः हम उन क्रियाओंका वर्णन अलग रीतिसे करेंगे। इसके साथही साथ वृक्षोंके उन अंगोंका हाल जो इन क्रियाओंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं, पाठकोंको सुनायेंगे।

संतति सृष्टि

इन क्रियाओंमें सबसे पहले हम पेड़ोंकी उस शक्तिका विचार करेंगे जिसके कारण वह अपनेसे और पेड़ पैदा करके अपने वंशको संसारमें जीवित रखते हैं। प्राणियोंके जीव-रहस्यमें यह एक बड़ीही विचित्र अवस्था है। विचार करनेसे जान पड़ेगा कि और जितनी क्रियाएँ समस्त जीवधारी करते हैं वह स्वार्थिक हैं क्योंकि उन सबसे किसी विशेष जीवधारी (individual) को ही लाभ पहुंचता है जैसे भोजन करना, सांस लेना, इत्यादि। पर यह एक ऐसी क्रिया है जो जीवधारियोंको अपनेसे परे होना सिखलाती है—स्वार्थत्याग सिखलाती है। इसके कारण जातिवृद्धि होती है। कहा जा सकता है कि यह भी तो एक भाँतिका स्वार्थ ही है क्योंकि बुढ़ापेमें संतान ही माता पिताका एक मात्र सहारा रह जाती है। कदाचित मनुष्योंके सम्बन्धमें ऐसा हम विचार प्रकट कर सकते हैं, यद्यपि वह पूर्ण रूपसे ठीक नहीं परन्तु अन्य जीवधारियोंके बारेमें हम क्या कहेंगे? क्या पेड़ोंकी सन्तान पेड़ोंकी बुढ़ापेमें सहायता करती है? क्या मनुष्यके अतिरिक्त अन्य जानवर अपने बच्चोंसे भी कोई सहायता पाते हैं? विचार करनेसे इसका उत्तर "नहीं" देना पड़ेगा। मनुष्योंमें माता, पिता और बच्चोंमें ऐसा पारस्परिक सम्बन्ध क्यों है इसको कुछ और ही कारण है जिससे यहाँ हमारा कुछ सम्बन्ध नहीं। सन्तानकी रचनासे केवल एक मात्र आशय जातिवृद्धिका है।

इस बातको समझानेकेलिए तनिक आप फूलोंकी ओर ध्यान दीजिये। आहा! यह रंग-

विरंगे, चमकदार पुष्प क्या ही भले मालूम होते हैं। देखिये, प्रकृति गंधीने उनमें कितने प्रकारकी सुगंधें छिड़क रक्खी हैं, रंग भी क्या ही मनोहर दे रक्खे हैं-कोई गुलाबी, कोई लाल, कोई श्वेत, कोई श्याम, कोई सुनहले और कोई कोई अनेक रंगके-सच पूछिये तो सोना और सुगंध दोनों ही एक साथ यहाँपर हैं। उन सबकी भिन्न भिन्न सुगंधियां व रंग मिलकर एक अद्भुत प्रभाव हमारे मनपर डाल रहे हैं। वह हमको आकर्षित कर लेते हैं। कुछ कालकेलिए हमारी मनोशक्तिका प्रवाह बन्द हो जाता है—उनके पाससे हटनेका साहस नहीं होता, वास्तवमें हम उतने कालतक प्रकृतिमें लीन हो जाते हैं। धन्य है वह जिसने ऐसी सुहावनी मनभावनी वस्तुओंकी संसारमें उत्पत्ति की। इनके बिना प्रकृति नग्नसी ज्ञात होने लगती है और संसारके आधे सुख मिट्टीमें मिल जाते हैं। परमेश्वरने मनुष्योंके सुखकेलिए संसारमें जितनी वस्तुएँ उत्पन्नि की हैं उनमें पुष्प एक श्रेष्ठ आसन ग्रहण करते हैं। इनको ही तो हम अपने इष्ट देवताओंके अर्पण करते हैं, इनके ही गुंथे हुए हारोंसे हम अपने विज्ञजनों और महात्माओंका आदर करते हैं। भला बताइये तो इनसे उच्च और कौन पदार्थ हो सकता है?

पर हे प्रिय पाठको! यह आप न समझ लीजिये कि फूलोंका काम संसारमें केवल मनुष्योंको सुख देने और उनकी अनेक मनमानी आवश्यकताएँ पूरी करनेका है। इससे बड़ी भूल और कोई आप नहीं कर सकते और आपकी दशापर शोक है यदि यह भूल आपने कभी की है। ऐसा कहना केवल अपनी अविज्ञतापर परदा डालना है—नहीं कदाचित यह कहना अधिक उचित होगा कि अपनी अविज्ञताका प्रमाण देना है। यह सत्य है कि पुष्पोंसे संसारकी शोभा बढ़ जाती है और मनुष्य मात्रके सुखके संचारकी वृद्धि हो जाती है। परन्तु इतना तो प्रकृति घातेमें निकाल लेती है। मनुष्योंकी क्रियाओं और प्रकृतिकी क्रियाओंमें इतना ही तो सबसे बड़ा अन्तर है कि मनुष्य अनेक उपायोंसे एक कार्यकी पूर्ति ठीक ठीक करनेकी चेष्टा करता है, परन्तु प्रकृति 'एक पंथ दो काज' के मसले पर कई कामोंको एक ही ढंगसे निकाल लेती है। हर बातमें उसकी यह दूरदर्शिता झलकती है। यही हाल फूलोंका भी है। रंग व सुवास यह तो ऊपरी दिखावटें हैं जो फूलोंको उनके मुख्य काम करनेमें सहायता देते हैं। फूलोंका वह मुख्य काम बीज पैदा करके वनस्पतियोंका वंश इस संसारमें जीवित रखनेका है।

हम जानते हैं कि इस संसारकी सब वस्तुएं नाशवान हैं। जीवधारियोंमें यह बात बहुत स्पष्ट रूपमें दिखायी देती है। हम देखते हैं कि छोटेसे बच्चेकी दशामें पैदा होकर लोग बाल्यावस्था व युवावस्थासे होते हुए बूढ़ेपनको पहुंचते हैं इसके अनन्तर कालके गालमें लोप हो जाते हैं। यह तो साधारण भांतिसे जीव धारियोंकी जन्मलीला हुई। बहुतसे जीव बालकपनमें ही इस असार संसारसे कूच कर देते हैं, अनेक ऐसे हैं जो युवा अवस्थातक ही यहांके अतिथि हैं। मतलब यह कि थोड़ी बहुत अवस्था पाकर सभी जीवधारी इस संसारसे अपना सम्बन्ध तोड़ देते हैं। यदि इस कमीको पूरी करनेका कोई उपाय न हो तो यह बात समझमें आ सकती है कि एक समय इस दुनियाके इतिहासमें ऐसा आ सकता है जब वह जीव शून्य हो जाय, क्योंकि जब सब व्यय ही व्यय है और आयका कोई उपाय नहीं तो सञ्चित संपत्ति कुछ कालमें अवश्य ही लुप्त हो जायगी। परन्तु मनुष्यकी स्मृतिमें यह संसार कभी जीवशून्य नहीं हुआ और उसका कारण यह है कि जितने जीव मरते हैं उतने या उनसे भी अधिक उतने ही कालमें पैदा हो जाते हैं, इसी समान

आय व्ययके कारण जीवगणनामें बहुत अन्तर नहीं पड़ता।

जीवधारियोंमें यह सृष्टि रचनेकी सबसे अद्भुत शक्ति है। हमारा साधारण अनुभव है कि कुछ अवस्था प्राप्त करनेके पश्चात मनुष्योंमें यह शक्ति आ जाती है कि वह अपनेसे और मनुष्य पैदा कर सकें। ठीक यही बात पेड़ोंमें भी पायी जाती है। कुछ कालके अनन्तर वह अपनेमें बीज पैदा करनेकी शक्ति पैदाकर लेते हैं। इस आन्तरिक शक्तिका वृक्षोंमें आ जाना उनमें फूल लगजानेसे मालूम हो जाता है। वास्तवमें फूलोंमें ही बीज पैदा करनेकी शक्ति होती है।

यह बात तो आप लोगोंके साधारण अनुभवकी है कि जब हम किसी पेड़को फूला हुआ देखते हैं तो जान लेते हैं कि अब उसमें फल लगनेका समय आ गया है। आम व जामुनका बौर देखकर हमारे चित्तमें उस समयका स्मरण आ जाता है जब हम काले काले जामुन और पीले पीले आमका मीठा रस चक्खेंगे और इस बातकी याद आते ही मुंहमें पानीभर आता है। गेहूंमें भी अधिक फूल लगनेसे हमको अधिक नाज प्राप्तिका स्वप्न एक यथार्थ बात जान पड़ने लगती है। कपासका फूल फूला और किसानका भी दिल खिल उठा कि इस साल तो अच्छी फ़सल होनेकी सम्भावना है। इसी भांतिके अनेक और उदाहरण पाठकोंकी स्मृतिमें होंगे जिससे यह जाना जा सकता है कि फूलों और बीजोंमें एक बड़ा ही घनिष्ठ सम्बन्ध है—बिना फूलके बीज हो ही नहीं सकता।

यह तो हुई अनुभवकी बात। हम सब लोग बहुत कालसे यह देखते चले आये हैं कि जब कभी किसी पेड़में फूल लगते हैं थोड़े ही कालके अनन्तर उसमें बीज पैदा होते हैं और यह अनुभव वैसा ही है जैसा कि रातके बाद दिन होनेका। मनुष्योंकी स्मृतिमें सर्वदा ऐसी ही बात होती आयी है। ठीक यही ज्ञान फूलोंके बारेमें भी हमारा है। बिना फूल फूले बीज पैदा होना हमारे अनुभवके बाहर है, इसीलिए फूल खिलतेही हम समझ लेते हैं कि बीजोंकी पैदावारका समय निकट है। हममेंसे ऐसे बहुत कम होंगे जो इन दोनों बातोंके घनिष्ठ सम्बन्धका कारण जानते हों-यानी फूलोंके बिना बीज क्यों नहीं बनते? फूलोंसे बीज कैसे बनते हैं? अब हम पाठकोंको इसी बातके समझानेकी चेष्टा करेंगे।

गर्भ और गर्भ विज्ञानकी कुछ बातें

[ले० श्रीयुत बाबूराम अवस्थी, बी. एस-सी.]
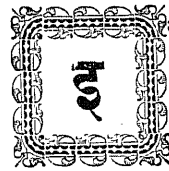
इसके पहले कि मैं गर्भ और गर्भ-विज्ञानके बारेमें कुछ कहूं, यह अच्छा होगा कि मैं चेतन वस्तुओं (जानवरों और पेड़ों) के शरीरकी बनावटका थोड़ासा हाल बतला दूं, क्योंकि ऐसा करनेसे मुख्य विषय सुगमतासे समझमें आ जायेगा।

इस लेखमें "जीव" शब्द बार बार आया है इसलिए मैं इसके अर्थको सबसे पहले बतला देना चाहता हूं। यहां मैंने जीव शब्दको वैज्ञानिक अर्थमें लिया है, दार्शनिक अर्थमें नहीं। विज्ञानकी भाषामें जीवके कहनेसे 'जीवात्मा' का बोध नहीं होता, किन्तु "जीवन प्रणाली", "चेतनता" या "ज़िन्दगी" का और कहीं कहीं पर "जीवित पदार्थ" (जैसे प्राणी या पेड़) का भी। इस लेखमें इसी अर्थको लेना चाहिए।

जानवरों और पेड़ोंके शरीरकी बनावट

आदमी, जानवर, पेड़ और घास फूस-इत्यादि जितनी चीज़ें तुम्हें जीती जागती दिखलायी पड़ती हैं, अर्थात् वह सब चीज़ें जो ईंट-पत्थरकी तरह निर्जीव नहीं हैं, बहुत

ही छोटे छोटे कोषोंसे बनी हैं। यह कोष इतने छोटे होते हैं कि आंखसे नहीं दिखलायी देते। इन्हें देखनेकेलिए अणुवीक्षण (ख़ुर्दबीन) नामी यंत्रकी सहायता लेनी पड़ती है। अणुवीक्षण तोप या दूरदर्शक (दूरबीन) की तरहका कोई बड़ा भारी यंत्र नहीं होता। यह एक छोटा सा यंत्र कोई फुट भर ऊंचा होता है। इसका मुख्य भाग एक नली है जो कोई ८, १० अंगुल लम्बी होती है और खम्भेकी तरह ऊपर नीचे रहती है। इस पोली नलीके दोनों सिरोंपर, अंगूठीके नगकी आकृतिके एक ख़ास तरहके कई शीशे लगे रहते हैं। इन्हीं शीशोंकी मुटाई और सूरत शक्लको ठीक ठीक बनानेसे इन शीशोंमें छोटी चीज़ोंको बड़ी कर देनेका गुण आ जाता है। जिस चीज़को देखना होता है उसे नलीके नीचेवाले सिरेके शीशेके पास रखते हैं और ऊपरके शीशेके पास आंख ले जाकर देखते हैं। अच्छे अणुवीक्षणोंसे बहुत छोटी चीज़ोंका आकार बढ़कर १५०० गुनातक हो जाता है। प्राणियोंके शरीरकी बनावटका हाल जो कुछ मालूम हुआ है सब इसी छोटेसे यंत्रकी सहायतासे हुआ है। सन् १६६६ से पहले अणुवीक्षण नहीं बना था, इसके इससे पहले लोगोंको शरीरकी बनावटका हाल ठीक ठीक नहीं मालूम था।

इसी यंत्रकी सहायतासे यह विदित हुआ है कि हमारा शरीर करोड़ों, अरबों छोटे छोटे कोषोंका ठीक उसी तरह बना हुआ है, जिस तरह एक बड़ा पक्का मकान लाखों ईंटों या पत्थरोंके मिलनेसे बनता है। मकानमें ईंटोंको छोड़ कर गारा, चूना और लोहा-लकड़ी भी होता है, उसी प्रकार हमारे शरीरमें भी कोषों या कोष-समूहोंको मिलानेकेलिए भी कई प्रकारके पदार्थ होते हैं। शरीरको साधनेकेलिए लोहा-लकड़ीकी जगह हड्डियां होती हैं जो जीवित कोषोंके ऊपर और बीचमें चूनेके आ जानेसे बनती हैं। यह सब पदार्थ बहुधा कोषोंसे ही बनते या निकलते हैं।

यद्यपि यह कोष बहुत ही छोटे होते हैं और उनके हाथ, पैर, मुंह आदि अंग नहीं होते, तो भी यह खाते पीते और बढ़ते हैं; पैदा होते और मरते हैं। इससे स्पष्ट है कि यह कोष सजीव होते हैं, बालू या धूलके कणोंकी तरह निर्जीव नहीं। इन कणोंको जीवकण या कोष कहते हैं। पीपल और बरगद सरीखे बड़े बड़े पेड़ों और हाथी, घोड़े, आदमीके समान बड़े बड़े जानवरोंमें यह कण करोड़ों, अरबोंकी संख्यामें होते हैं। काई, खटमल आदि छोटे जीवोंमें हज़ारों या लाखों ही होते हैं। बड़े बड़े जानवरों और पेड़ोंको तो तुम जानते ही हो क्योंकि उन्हें तुम आंखसे देखते हो, परन्तु सैकड़ों प्रकारके पेड़ और जानवर ऐसे भी हैं जिन्हें तुम नहीं जानते क्योंकि बहुत ही छोटे होनेके कारण तुम उन्हें आंखसे नहीं देख सकते। चीज़ोंको सड़ाने गलाने और अपने आप बिगाड़नेका सारा काम इस प्रकारके सूक्ष्म जीव ही करते हैं। वे प्लेग, हैज़ा, जूड़ी (मलेरिया) दाद, खाज इत्यादिक बहुत सी बीमारियोंको भी पैदा करते हैं। इस प्रकारके जीवोंमेंसे कुछ तो कई जीवकणोंके मिलनेसे बनते हैं (यह कण बहुधा आठ दससे अधिक नहीं होते) और कुछ केवल एक कणके ही होते हैं। तो याद रखिये कि सारा चराचर संसार जीवकणोंसे ही बना है। दुनियांमें सैकड़ों प्रकारके (रासायनिक) पदार्थ हैं। कोई वस्तु किसी पदार्थकी बनी होती है कोई किसीकी, जैसे पेड़े शकरके बनते हैं और फुटबाल या पैरगाड़ीका पोला पहिया रबड़का। इसी प्रकार जीवकण भी एक विशेष पदार्थ (द्रव्य) के बने होते हैं जिसे हम जीवाद्यम या "नारा" कह सकते हैं। नारा चाहे वनस्पतिका हो या जानवरका एकसा ही होता है। इस कारण और इसी तरहके और भी कई एक कारणोंसे जीवविज्ञानी वनस्पति

और जानवरको एकसा ही समझते हैं, उनमें कोई बड़ा भेद नहीं मानते।

गर्भ

जीवके शरीरकी बनावटका सूक्ष्म वर्णन कर अब मैं मुख्य विषयकी ओर आता हूं। साधारण बोलचालके हिसाबसे गर्भ केवल आदमी और जानवरोंकी उतनी अवस्थाका नाम है जितनी माताके पेटमें गुज़रती है। परन्तु विज्ञानके हिसाबसे यह शब्द पेड़ों और पक्षियोंकी आदिम अवस्थाकेलिए भी आना चाहिए। अतएव जबसे किसी जानवर या पेड़के बननेका आरम्भ होता है अर्थात् उस समयसे जब वह एक कणके रूपमें, अपनी सारी भविष्यत उन्नतिकी सम्भावनाको साथ लेकर अपने जीवनको आरम्भ करता है, तबसे जबतक वह किसी आवरण, गिलाफ या खोलके भीतर रहता है और स्वच्छन्द होकर, अपने माता पिताके रूपमें संसारमें नहीं आता है, तबतककी सारी अवस्थाको उस जानवर या पेड़का गर्भ कहना चाहिए। जैसे, जबतक जानवरका बच्चा माताके पेटसे नहीं निकलता, पक्षीका बच्चा अंडेको फोड़कर बाहर नहीं होता, और आमकी गुठली या गेहूंसे किल्ला (अंकुर) नहीं फूटता, तबतककी अवस्थाएं गर्भ कहलाती हैं। गर्भका आवरण कहीं माताके गर्भकी झिल्ली है, कहीं अंडेका बाहरी बकला और कहीं फल या बीजका बकला और जाली।

प्रजनन अर्थात् सन्तानोत्पत्ति

तुमने सुना होगा कि चराचर जगत्में ८४ लक्ष योनियां हैं। इन योनियोंमें सन्तानोत्पत्तिके भांति भांतिके ढंग हैं। जिन जीवोंके शरीरकी बनावट बड़ी सुगम है उनमें सन्तान उत्पन्न करनेका ढंगभी बड़ा सुगम होता है और जिनके शरीरकी बनावट पेचीदा होती है उनकी प्रजनन-प्रणाली भी पेचीदा होती है। इसको दिखानेकेलिए तीन प्रकारके ढंगोंको दिखलाना काफ़ी होगा। इनको मैं (१) सुगम (२) सम्मेलन और (३) संयोगके नामोंसे पुकारूंगा।

(१) सुगम उत्पत्ति--इस प्रकारकी उत्पत्ति सबसे छोटे और सबसे सीधी सादी बनावटके जीवोंमें देखी जाती है जिनका शरीर एक कोषसे ही बना होता है। यथार्थमें यह प्रणाली ऐसी सरल है कि उसे "उत्पत्ति" न कहकर "बढ़ना" कहना चाहिए। एक कोषीय जीवोंमेंसे, जो इस प्रकारकी उत्पत्ति करते हैं, हर एक जीव बिना किसी दूसरेकी सहायताके अपने आप सन्तान उत्पन्न करता है। जब कोई जीव (यानी कण) खा-पी कर बड़ा होता है तब अपने आप बीचसे टूट या कट जाता है और दो टुकड़े हो जाता हैं जिनमेंसे कोई भी टुकड़ा मरता नहीं। दोनों स्वतंत्र जीव होजाते हैं, मानो पिताके शरीरके दो टुकड़े हो जानेसे दो पुत्र बन जाते हैं। यह दोनों पुत्र स्वतंत्रतापूर्वक अलग अलग विचरने लगते हैं और खाते, पीते, मौज करते हैं। समय पाकर जब ये बड़े होंगे तब इनके भी दो दो टुकड़े हो जायंगे। इनके बड़े होनेकेलिए बरसें नहीं चाहिये, केवल मिनटें ही चाहिये और कुछको तो कुछ सेकंड ही चाहिये। इसीसे समझ लीजिये कि इनकी बाढ़ कितनी अधिक और कितनी जल्दी होती होगी। इस प्रकारके जीवोंमें नर मादाका कोई भेद नहीं होता। सब एक से होते हैं। हैज़ा उत्पन्न करनेवाला एक जीव यदि आज दूधके एक लोटेमें गिरे तो कलतक एकके एक करोड़ हो जायंगे। इस प्रकारके जीवोंकी स्वाभाविक मृत्यु कभी नहीं होती। यह जीव सचमुच अमर हैं यद्यपि नित्य नहीं। बढ़नेका यह ढंग कभी कभी बड़े जीवोंमें भी पाया जाता है जैसे एक केंचुएके दो टुकड़े कर देनेसे दोनों ज़िंदा रहते हैं।

(२) सम्मेलन---सन्तानोत्पत्तिका यह ढंगभी एक कणवाले जीवोंमें ही (चाहे वे पेड़ हों या जानवर) पाया जाता है,

लेकिन केवल उन्हींमें जिनके कोषकी बनावट ज़रा पेचीदा होती है अर्थात जिनके कोषके भीतर ही कई प्रकारके अंश होते हैं (जैसे एक अंश नाभी या केन्द्र बन जाता है)। यद्यपि इस प्रकारके जीवोंमें भी नर और मादाका कोई भेद विदित नहीं होता तो भी जब दो जीव पास पास आते हैं, एक दूसरेमें लीन हो जाते हैं और मिलकर एक कणमात्र रह जाते हैं। इसे आंखसे दिखायी देनेवाले एक उदाहरणसे समझ सकते हैं। जब मेज़पर पारेकी दो छोटी छोटी बूंदें रखकर उन्हें पास पास लाते हैं तो दोनों आपसमें मिल जाती हैं और दो बूंदोंके स्थानमें एक बड़ी बूंद बन जाती है। दोनों कणोंके मिलकर एक हो जानेके बाद जो कण बनता है उसमें अब बढ़नेकी शक्ति आजाती है और वह बीचसे अपने आप कटकर दो टुकड़े हो जाता है। ये दोनों टुकड़े दो स्वतंत्र जीव बनकर फिरसे नये जीवनका आरम्भ करते हैं।

इस प्रणालीसे वंशवृद्धि नहीं होती (क्योंकि दो जीवोंके स्थानपर फिर भी दो ही जीव बनते हैं) केवल पुराने जीव नये हो जाते हैं। इस प्रकार यह जीव मानों मृत्युको चुनौती देते हैं। ये भी अमर हैं क्योंकि इनमें भी स्वाभाविक मृत्यु नहीं होने पाती।

(३) संयोग—यह उन जीवोंमें पाया जाता है जो कई कणोंके मिलनेसे बनते हैं, जिनकी बनावट पेचीदा होती है और जिनमें नर मादाका भेद भी होता है। ऐसे जीवोंके शरीरका काम बहुतसे कणों या कणसमूहोंमें बटा रहता है। कोई समूह चलनेका काम करता है, कोई खानेका। कोई सोचनेका काम करता है, कोई सृष्टि उत्पन्न करनेका। इन कणोंके कार्यमें आपसमें अदला बदला नहीं हो सकती। जो कण जन्मसे जिस कामकेलिए बनता है वह उसीको कर सकता है, दूसरेको नहीं (जैसे देखनेवाले कण सुननेका काम नहीं कर सकते)। इस कारण अलग अलग काम करनेवाले कणोंके समूह अलग अलग हो जाते हैं। अतः सन्तान उत्पन्न करनेवाले कण भी जन्मसे ही एक अलग समूहमें इकट्ठे हो जाते हैं और केवल अपने ही कामको कर सकते हैं और किसी कामको नहीं। चूंकि संयोगवाले जानवरोंमें नर और मादाका भेद होता है, इसलिए उनमें सन्तान उत्पन्न करनेवाले कण भी दो प्रकारके होते हैं, एक नरके शरीरमें रहनेवाले (बीजकण), दूसरे मादाके शरीरमें रहनेवाले (रजकण)।

जानवरोंकी भाँति पेड़ोंमें भी दो प्रकारके सन्तान उत्पन्न करनेवाले कण (जनककण) होते हैं जो किसी योनिमें एक ही फूलमें रहते हैं, किसीमें एक ही पेड़में तो रहते हैं पर एक फूलमें नहीं [अर्थात् ऐसे पेड़में दो प्रकारके फूल होते हैं कोई बीजकणवाले, कोई रजकणवाले (कोई नर कोई मादा)], और किसीमें एकही योनिके दो पेड़ोंमें रहते हैं, एक पेड़के सब फूल बीजकणवाले होते हैं और दूसरेके रजकणवाले। जिस प्रकार सम्मेलनमें दो कण मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार संयोगवाले जीवोंमें भी दोनों प्रकारके जनककण मिलकर एक हो जाते हैं। और एक नये जीवको उत्पन्न करते हैं जो कि अनुकूल रक्षा, भोजन और शीतोष्णदशा (गर्मी) पाकर बढ़ने लगता है। बढ़ना सबका एक ही प्रकारसे होता है अर्थात् एक कणके दो टुकड़े होने, फिर उन टुकड़ोंके टुकड़े होने और उनके भी इसी भाँति टुकड़े होनेसे, जिससे वही एक आदिकण करोड़ों कण हो जाता है।

पहली बात—तो अब याद रखनेकेलिए गर्भके विषयमें मेरी पहली बात यह हुई कि गर्भ चाहे बड़े जानवरका हो (जैसे हाथी, मनुष्य, ह्वेल) चाहे छोटे का (जैसे केंचुआ, चींटी, घुन), चाहे बड़े पेड़ का हो (जैसे गूलर, बरगद, आम) चाहे छोटे का (जैसे चना, ख़र-

बूज़ा, तुलसी, आलू) पहले सदैव एक कणका होता है। इसी एक कणके बढ़नेसे नाना रंग और रूपके नाना प्रकारके जीव बन जाते हैं। परन्तु मक्खीके जनककणसे बना गर्भ बढ़कर मक्खी ही होगा और बबूलका बबूल। ऐसा क्यों होता है इसका कारण अब जीवविज्ञानियों-को ख़ूब अच्छी तरह विदित हो गया है, पर इस लेखमें इसका वर्णन करना ठीक न होगा, क्योंकि यह विषय बड़ा गम्भीर है, इससे इसकेलिए अधिक स्थान चाहिये।

दूसरी बात—गर्भके सम्बन्धमें मेरी दूसरी बात कुछ ऐसे अंगोंके विषयमें है जो केवल गर्भमें ही पाये जाते हैं और पैदा होनेके पहले ही बिलीन हो जाते हैं। मैं ऐसे केवल दो अंगों-का वर्णन करूँगा (१) पूँछ, (२) जनककण ले जानेवाले नल।

जब तुम माताके पेटमें २० दिनके थे तब तुम केवल $\frac{१}{६}$ इंच लम्बे थे। तुम्हारे एक बड़ासा सिर था और एक छोटीसी पूँछ। पूँछ-का नाम शायद तुमको बुरा लगेगा पर सोचो तो सही जो बात है ही, उसके छिपानेसे क्या फ़ायदा, छिपाने से वह कुछ मिट तो जायेगी ही नहीं। तुम अपने मनमें कहते होगे कि पूँछ नहीं, कोई पूँछसी दूसरी ही चीज़ होगी, देखनेवालेने ठीक ठीक देखा नहीं। नहीं, यह बात नहीं है, वह पूँछ ही होती है और असल पूँछ होती है। जानवरोंमें पूँछ उस हिस्सेका नाम है जो देहसे अलग निकली रहती है और जिसमें रीढ़की हड्डीका बढ़ा हुआ हिस्सा होता है, ठीक इसी तरह जब तुम्हारी रीढ़की हड्डी बन रही थी वह बहुत लम्बी थी उसका एक सिरा देहसे बाहर निकला हुआ था। इस बढ़े हुए हिस्सेके आस पास भी खाल और मांस बन रहे थे। यह पूँछ कोई पन्द्रहवें दिन दिखलायी पड़ने लगती है और चालीसवें, बया-लीसवें दिनतक बनी रहती है। यह चौथे हफ़्तेमें ख़ूब बड़ी हो जाती है। इसके पीछे इसका बढ़ना बंद हो जाता है और रीढ़ और पीठ बढ़ती रहती है जिससे वह इन्हींमें समा जाती है और बढ़ते हुए मांसमें गड़ जाती है। तो भी पूँछकी जो हड्डियाँ या गुरियां बन जाती हैं वह आजन्म बनी रहती हैं, क्योंकि ये चारों पांचों गुरियां रीढ़के अंतिम गुरियेसे चिपट जाती हैं और बहुत ही छोटे होनेके कारण खाल-के नीचे अच्छी तरह छिप जाती हैं। पूँछ पीठमें समा तो जाती है पर उसका निशान एक गड्ढे-के रूपमें बाक़ी रह जाता है। यह गड्ढा जन्मके समय भी देखा जाता है।

यह तो तुम जानते ही होगे कि शरीरमें मांस भूसेकी तरह बेहिसाब नहीं भरा रहता, बल्कि एक बड़े ही क़ायदेसे और सिलसिलेसे, क्रमसे और ढंगसे रहता है। देहका मांस बहुतसे टुकड़ोंमें बंटा होता है। प्रत्येक टुकड़े-को मांसपिण्ड या केवल पिण्ड कहते हैं। प्रत्येक योनिके जानवरमें मांसपिण्डोंकी संख्या एक ही होती है चाहे पूरे जानवरको लीजिये या उसके किसी एक अंगको (मनुष्य-का शरीर और बंदरका शरीर हड्डी हड्डी और पिण्ड पिण्ड एक है)। जिस प्रकार पूँछकी हड्डियोंका अवशेष तुम्हारे शरीरमें अवशिष्ट (बाक़ी) रह गया है उसी प्रकार पूछके मांस-पिण्डोंका अवशेष भी तुम्हारे शरीरमें वर्तमान है और यह अवशिष्ट मांसपिण्ड तुम्हारे शरीरमें ठीक उसी हिसाब और उसी ढंगसे रखे हुए हैं जिस हिसाब और जिस ढंगसे बन्दरों या दूसरे जानवरोंमें रखे होते हैं। इस बातके भी पक्के प्रमाण लिखे रक्खे हैं कि कुछ लड़के पूँछदार भी पैदा हुए हैं, उनकी पूँछ चाहे छोटी डोर ऐसी ही क्यों न रही हो। अब शायद तुम्हारी समझ-में कुछ कुछ आगया होगा कि जानवरोंकी तरह किसी समय तुम्हारे भी पूँछ थी। इसमें हानि

ही क्या? क्या जानवरोंकी तरह तुम भी नहीं खाते पीते हो? क्या जानवरोंकी तरह तुम्हारे भी आँख, कान, नाक, मुँह नहीं हैं? जब सब अँग तुम्हारे जानवरों ही से हैं, तब क्यों अपनी पूँछसे ही शरमाते हो? अपनी जानवरोंकी सी आँखसे क्यों नहीं शरम खाते?

जबतक तुम बहुत छोटे थे (पौने दो महीनेके थे) तबतक तुम न पुरुष थे न स्त्री, बल्कि दोनों ही थे, क्योंकि (१) उस समय तुम्हारे पेटके भीतर स्त्रियोंके रजवाहक दो नल भी बन रहे थे और इनके बाहर बाहर पुरुषोंके बीजवाहक दो नल भी साथ ही साथ बन रहे थे (२) उस समय जो उत्पादक गाँठें तुममें बन रहीं थीं वह न पुरुषकी थीं न स्त्रीकी (जनककणोंको बनानेवाली गाँठें गर्भकी प्रथमावस्थामें, पुरुष और स्त्री दोनोंकी एकसी ही होती हैं, बीजोत्पादक और रजोत्पादकका भेद पीछेसे होता है)।

जिन गर्भोंमें पुरुषोंवाले वाहकनल मुरझा जाते हैं और स्त्रियोंवाले बढ़ते रहते हैं, वे स्त्री हो जाते हैं और उनके स्त्रीवाले नलोंके नीचेके हिस्से पास पास आकर मिलकर एक हो जाते हैं। और इस तरह उनसे गर्भकी थैली बन जाती है। इसीमें गर्भ ४० हफ़्तेतक रहता है। जिनमें ये नल सूख जाते हैं उनमें वीर्य वाहक नल बढ़ते रहते हैं और गर्भ पुरुष हो जाता है।

गर्भविज्ञानकी पहली बात

ऊपर जो कहा गया है उससे विदित हुआ होगा कि जीव किसी ही प्रकारसे क्यों न उत्पन्न हुआ हो, वह सदैव किसी न किसी, पहलेसे उपस्थित जीवसेही उत्पन्न होता है, कभी निर्जीवसे नहीं। पत्थरसे काई नहीं बन सकती और धूलसे घास फूस या मेढ़क और रामकी बुढ़ियां (बीरबहूटी) नहीं बन सकतीं। तुमने बर्सातमें बहुतसे पत्थरोंपर काई उगी हुई देखी होगी। काईके बनानेवाले बहुतसे छोटे छोटे कण हवासे उड़कर पत्थरोंपर आगिरते हैं और अनुकूल जल, वायु और गर्मीको पाकर बढ़ने लगते हैं और काईके पेड़ बनजाते हैं। मेंढक भी बरसातकी पहली भरनमें मिट्टीसे नहीं बन जाते किन्तु ज़मीनसे निकल आते हैं, क्योंकि वर्षा समाप्त होनेपर यह ज़मीनकी सतहके नीचे चले जाते हैं और तबतक महीनों वहीं गड़े रहते हैं जबतक कि दूसरी बरसातकी तरी उनतक नहीं पहुंचती, जब वह ऊपर पानी भरा जान अपनी क़बरसे निकल आते हैं। अब ऐसे प्रमाण मिले हैं जिनसे विदित होता है कि जबतक यह गड़े रहते हैं तबतक कुछ नहीं खाते और न तौलमें ही घटते हैं यानी शायद सांस तक नहीं लेते (मानों पूरी समाधि ले जाते हैं)। नई तरीके पहुंचनेसे उनमें फिर जान आजाती है और वे सांस लेने लगते हैं।

तो, "जीवसे ही जीव पैदा होता है" यह गर्भ-विज्ञानकी पहली बात हुई।

गर्भविज्ञानकी दूसरी बात

जो जीव सुगम (बीचसे टूटना) और सम्मेलन विधिसे बढ़ते हैं उनकी स्वाभाविक मृत्यु तो कभी होती ही नहीं अर्थात् वे अमर हैं यह तो मैं पहले ही बतला चुका हूं। अब मैं यह बतलाना चाहता हूं कि बड़े जीव भी एक प्रकारसे अमर हैं।

यह तो तुम सुन ही चुके हो कि पिताके शरीरके एक कण और माताके शरीरके एक कणके मिलनेसे पुत्र बनजाता है। इस पर विचार करनेसे यह भेद खुलता है कि यद्यपि, साधारण तौरपर, मनुष्यके शरीरका कोई भाग जब सम्पूर्ण शरीरसे अलग हो जाता है तब मरजाता है (जैसे हाथ या पैरकी उंगली कटकर गिर पड़नेसे मर जाती है) तौ भी मनुष्यके शरीरका एक मुख्य कण उसके शरीरसे अलग होकर भी जी सकता है, क्योंकि यह कण[१] ही बढ़कर पुत्र हो जाता है। तुम कहते हो "दाहिनी बाँह भी

मेरी है और बाईं बाँह भी मेरी है, मैं दाहिनी बाँहमें भी हूं और बाईंमें भी और अपने शरीरके एक एक कणमें हूं"। क्या इसी प्रकार तुम यह नहीं कह सकते कि "मैं पुत्रमें भी हूं" क्योंकि पुत्र तुम्हारा ही एक कण है। इसीसे कहते हैं कि "अपने पुत्रके रूपमें मनुष्य स्वयं ही जन्म लेता है"२। इसी बातको हमारे शास्त्रकार इस प्रकार कहते हैं कि "पतिही स्त्रीमें प्रवेशकर पुत्रके रूपमें जन्मलेता है"।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते।
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥
मनु० ६। ८

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्।
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते।
तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।
श्रुतिः

मल्लिनाथकृत रघुवंश की टीका में।
रघुवंश सर्ग १ श्लो० १

इसलिए जिस मनुष्यके दो लड़के हैं वह मानों तीन शरीरों में रह रहा है-एक अपना, दो लड़कोंके; एक पुराना, दो नये- और जिसे लोग "मृत्यु" कहते हैं उससे उसके केवल एक (और वह भी सबसे पुराने) शरीरका नाश हो जाता है और दो शरीर ज्योंके त्यों बने रहते हैं। मृत्युवश वह केवल एक शरीरसे (अर्थात् अपने पहले जन्मके शरीरसे) अपना सम्बन्ध त्याग देता है और पिछले दो जन्मोंके शरीरोंसे सम्बन्ध जारी रखता है, दो शरीरोंमें जीवित रहता है। अतएव वह "मृत्यु" के पीछे भी जीता रहता है अर्थात् मनुष्य अमर है।

ठीक यही हाल सब योनियोंके जानवरों और पेड़ोंका भी है। बीज पेड़का ही एक अंश है और जब यह अंश बढ़कर एक नया पेड़ बन जाता है तो पुराना पेड़ मानों पुनर्जन्म लेता है क्योंकि एक पेड़ दो हो जाता है अर्थात् दो शरीरोंमें रहता है और जब उसके एक (पुराने) शरीरकी मृत्यु हो जाती है (वह सूख जाता है) तब वह दूसरे शरीरमें ज़िन्दा रहता है। इस तरह "मरने" के पीछे पेड़ भी ज़िन्दा रहता है। पेड़ भी अमर है।

सारांश यह निकला कि—

"जीव अमर है क्योंकि 'मरने' के पहले ही वह पुनर्जन्म ले लेता है"

लेकिन याद रखिये इस अर्थमें पुनर्जन्म मरनेके पहले होता है, मरनेके पीछे नहीं- ज़िन्दोंका पुनर्जन्म होता है मुर्दोंका नहीं। बस, गर्भविज्ञानकी यही मेरी दूसरी बात है।

१-"स्त्रीके रजकणसे मिलकर" इन शब्दोंको यहां पर असभ्य व्यवहार समझ कर छोड़ दिया है। ऐसा ही आगे भी समझना।

२-इसलिए यदि किसी मनुष्यके ४ पुत्र हैं तो वह मानों चार बार पुनजन्म ले चुका है।

बनस्पति शास्त्र

(Botany)

[ले० श्री विश्वनाथ गुप्त]

पेड़का वृत्तान्त

पेड़की आदिसे अन्ततककी क्रीड़ाओंको समझानेके हेतु ये लेख पाठकगणकी सेवामें उपस्थित किये जाते हैं। इनको किसी प्रकार अपने ढंगके निराले तथा पूर्ण कहना भूल है क्योंकि बहुतेरी सूक्ष्म बातें छोड़ दी गयी हैं और केवल उन्हीं बातोंका वर्णन किया गया है जिनका कृषकको अथवा इन लेखोंको पूर्णतः समझनेकेलिए बतला देना आवश्यक है। जितने पेड़ पौधे वर्त्तमान समयमें हम अपने चारों ओर जल अथवा थलमें देखते हैं उन सभोंमें कुछ न कुछ समानता अवश्य ही पायी जाती है। वनस्पतियोंको हम स्थूलरीतिसे निम्नलिखित भागोंमें बांट सकते हैं—

द्विदल

(Dicotyledons.)

वे पेड़ जिनके बीजमें दो फांक जुड़वाँ पाये जाते हैं जैसे-चना, मटर, तम्बाकू इत्यादि ।

विदल

(Monocotyledons.)

वे पेड़ जिनके बीजमें दो जुड़वाँ फाँक नहीं पाये जाते जैसे--गेहूं, चांवल, केला इत्यादि ।

द्विदल तथा विदल पेड़ोंके बीजमें जो अन्तर होता है वह तो ऊपरके विभागमें बतला दिया गया है। इनके बीज देखकर यह सहजमें ही पहचाने जा सकते हैं, पर इनके पेड़ोंको पहचाननेकेलिए निम्न लिखित बातोंको स्मरण रखना होगा—
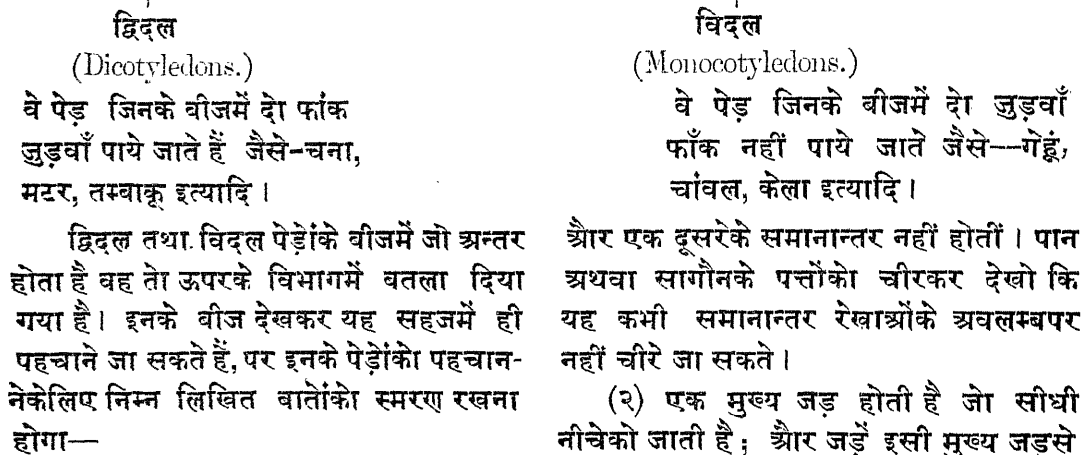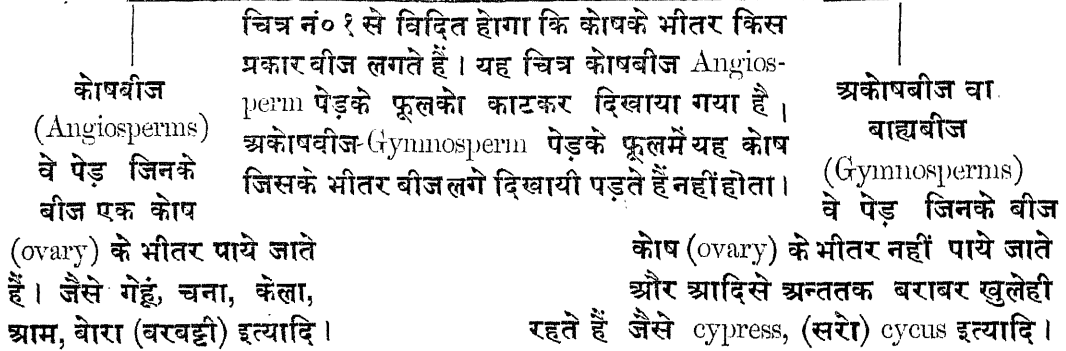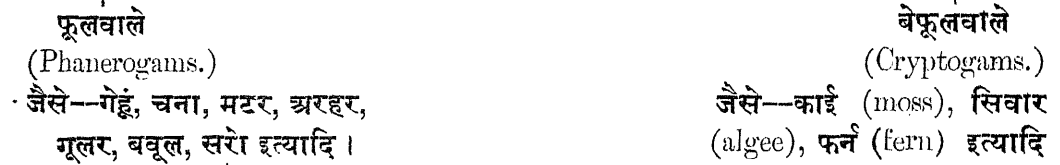
द्विदलोंमें

(१) पत्तियोंको सीधा नहीं चीर सकते क्योंकि इनकी नसें जालके समान फैली होती हैं और एक दूसरेके समानान्तर नहीं होतीं। पान अथवा सागौनके पत्तोंको चीरकर देखो कि यह कभी समानान्तर रेखाओंके अवलम्बपर नहीं चीरे जा सकते।

(२) एक मुख्य जड़ होती है जो सीधी नीचेको जाती है; और जड़ें इसी मुख्य जड़से निकलती हैं। तम्बाकू, मटर, सनई अथवा चनाके किसी नन्हे पौधेको उखाड़कर देखनेसे यह बात देखी जा सकती है।

कोपल
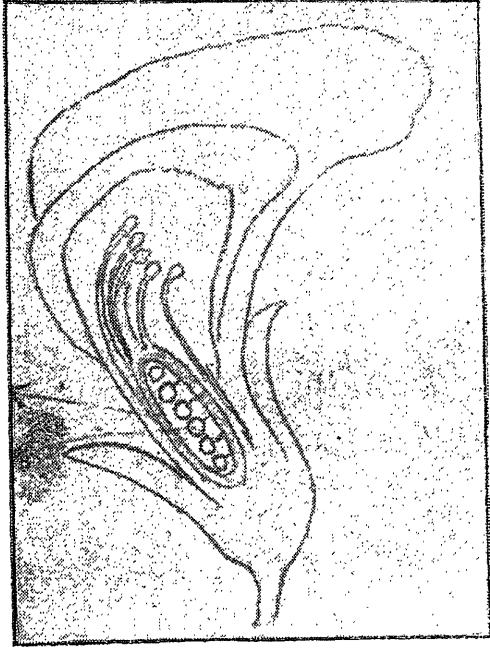
चित्र नं० १
मटरके फूलको काटकर कोषमें बीज लगते हुए दिखाये गये हैं

सनईके बीजके फांक जो भूमिकी ऊपरी सतह पर आकर पत्ती-के समान हो गये हैं

भूमि

प्रारम्भिक जड़

रोआं

चित्र नं० ३ सनईका पौदा

कोपल

मटरके बीजके फांक जो ऊपरी सतह पर नहीं आते हैं

भूमि (soil)

प्रारम्भिक जड़
(pap-root)
रोआं
root hairs
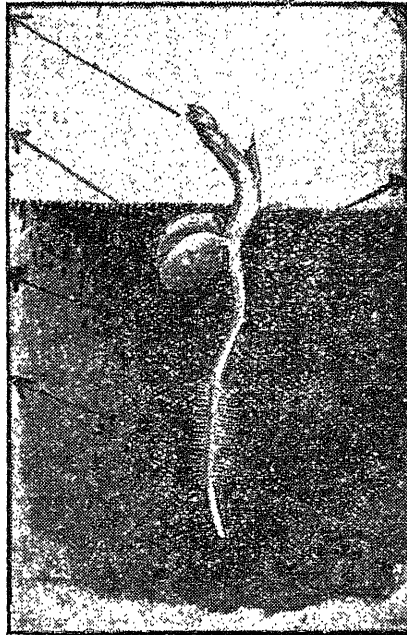
चित्र नं० २ मटरका पौदा

चित्र २ व ३ में मटर और सनई-की जड़ दिखायी गयी है।

विदलोंमें

(१) पत्तियोंको सीधा चीर सकते हैं क्योंकि इनकी नसें जालके समान फैली नहीं होतीं। यह एक दूसरेके समानान्तर होती हैं।

केला, हल्दी तथा गेहूंके पत्तोंको चीरनेसे यह बात स्पष्ट मालूम होगी।

(२) कोई मुख्य जड़ नहीं होती वरन् जड़ोंका समूह गुच्छासा होता है।

गेहूं, मक्का, हल्दी तथा धानके किसी पौधेकी जड़ोंको देखनेसे यह अच्छी तरह समझमें आजायगा।

चित्र नं० ४ में मक्काके पौधेकी जड़ दिखायी गयी है, इस चित्रमें जड़ोंका समूह भली भांति देखा जा सकता है।

चित्र नं० ४ मक्काका पौदा
मक्काका बीज जो जनम गया है और भूमिके भीतर रहता है

यहां पर केवल (Dicotyledons) सिदल बीजी पेड़ोंका ही वर्णन—

अर्थात् (१) बीजका जनमना,

(२) जन्मे हुए बीजकी शरीर रचना,

(३) उसके जीवनकी सारी क्रीड़ाओंका वर्णन और (४) फूल लगने तथा बीज बननेकी रीति और प्रकृतिका बीजके साथ व्योहार—विस्तारपूर्वक लिखा जाता है। विदलबीजी पेड़ोंकी भी क्रीड़ाओंका बहुतकर ऐसा ही हाल होता है, जहां तहां कुछ थोड़ा अन्तर पड़ता है। जो मुख्य भेदकी बातें होंगी यथा सम्भव उनका वर्णन इन्हीं लेखोंमें उचित स्थानोंपर किया जायगा।

(१) बीज का जन्म

सबसे पहली बात जो बीजके जनमनेके विषयमें कही जासकती है उसकी निरोगता तथा पुष्टता है। कीड़ेका खाया हुआ या बुरी तरहसे रक्खा हुआ बीज किसी अर्थका नहीं होता। बीजमें सूखकर तय्यार हो जानेपर भी कुछ थोड़ा पानी रह जाता है। यह बीजके बड़े कामका होता है। यदि बीजको कभी गरम आबहवामें रह जाना पड़े तो वह थोड़ासा पानी इसके काम आता है। उसीके कारण यह बिलकुल सूखकर नष्ट होजानेसे बचता है। बीजको सीली जगहमें न रखना चाहिए, क्योंकि सील पाकर सम्भवतः वह रक्खे रक्खे (१) जन्म आवे, यह तो स्पष्ट ही है कि बिना समय

जनम आनेसे फिर वह उचित समयपर बीज-के कामका नहीं रहता (२) कीड़ा, पतिङ्गों या किसी अन्य रोगसे ग्रसित हो जावे ऐसा होने-से उसकी निरोगता नष्ट होकर जनमनेकी शक्ति मारी जाती है। प्रायः समझदार लोग बीजको बड़े प्रबन्धसे तरह तरहकी बोतलों तथा खौड़ियोंमें रखते हैं जिसमें वह फ़सल आने-तक पुष्ट रह सकें। बीजपरके छिलकेसे भी बीजकी बड़ी रक्षा होती है। सहजमें उसमें सीलका प्रवेश नहीं होने पाता और न उठाने धरनेमें ही कुछ हानि पहुंचती है। पर कुछ बीजोंका तो छिलका इतना कड़ा होता है कि जबतक वह किसी उपायसे नम्र न कर दिया जाय बीज सहजमें जनम नहीं सकता। ऐसी कठिनाईमें बीजके इस छिलकेको किसी अम्ल (acid) में कुछ मिनटोंकेलिए डुबोकर नम्र करते हैं। प्रकृतिमें यह देखा गया है कि जब कोई पखेरू तथा जानवर किसी ऐसे बीजको खाकर बीटमें निकाल देते हैं और इस क्रिया-से बीज जीवगणके पेटकी गरमी तथा अम्ल रसोंके द्वारा नम्र हो जाता है तो वह शीघ्र ही जनम आता है जैसे—बबूल, गूलर, पीपल, बड़ (बरगद) के बीज।

दूसरी बात बीजका प्राकृतिक नियमोंसे उचित स्थानतक पहुंचना है। यह कार्य्य वायु, वर्षाके जल, तथा जानवर पखेरुओंके द्वारा सहजमें ही हो जाता है। पर ध्यान रहे कि इसकी आवश्यकता घर बारकी खेतीमें नहीं पड़ती। यह तो सब उस जगहकी बातें हैं जहाँ सारे कार्य्य प्रकृति देवीके द्वारा सम्पादित होते हैं जैसे जङ्गल अथवा और किसी ऐसे ही निर्जन स्थानमें। खेती बारी या किसी परीक्षाके हेतु तो बीज स्वयंम् अच्छी भूमिमें बोते हैं। गीले स्याहीसोख काग़ज़में रखदेने और काग़ज़को गीला किये रहनेसे भी बीज जनम आते हैं। इससे प्रतीत होता है कि जनम-नेके हेतु बीजको केवल जल और वायु ही चाहिये। जल और वायु पाकर बीज पहले तो फूलकर कुछ बड़ा हो जाता है, तत्पश्चात् उस-मेंसे अंकुर फूटता है (इसे पौधोंकी प्रारम्भिक जड़ कहना चाहिए)। बीजके भीतर एक गुप्त अंश जिसे अङ्गरेज़ीमें इम्ब्रियो (embryo) कहते हैं होता है। हिन्दीमें उसे गर्भ कहना चाहिये। जलके अभावसे यह सुकड़ा रहता है पर वायु-युक्त जलके प्रभावसे यह चैतन्य हो, कार्य्यवाही आरम्भ करता है। इसीकी क्रिया-नुसार बीज, पानी पीकर फूल जानेकेबाद अँकुर देता है। कहीं कहीं कृषक बीजोंको बोनेके पहले कुछ समयकेलिए पानीमें भिगो देते हैं और जब इनमें अंकुर फूट आता है तब खेतमें बोते हैं। अंकुर फूट जानेके पश्चात् बिच्ची (seedling) भूमिमें प्रवेश करती है। अब इसके ऊपर महीन महीन रोंएसे निकल आते हैं। यही पौधेके पालन पोषणकेलिए भूमिमें उपस्थित तथा खाद द्वारा पहुंचाये हुए पदार्थों-के रसको नीचेसे खींचकर पौधोंको देते हैं*। इस अवस्थासे पौधा, भूमिके पदार्थोंके आश्रित हो जाता है। कुछ समय व्यतीत होने-पर और भी जड़ें निकलती हैं जो पौधोंके बड़े होनेपर उसका भार संभालती हैं। जब इस प्रकार बिच्ची भूमिमें प्रवेश करने लगती है बीजके फांक (यदि उनमें पौधेके लालन पालनकी सामग्रीका अच्छा संग्रह न हो) प्रायः भूमिके ऊपरी तलपर (सनई, लौकी, खीरा, की तरह) आजाते हैं, नहीं तो भूमिके भीतरही रहते हैं (जैसे कि मटर, चना इत्यादि-में)। ऊपर आकर यह साधारण पत्तियोंके समान हो जाते हैं और वायुसे कुछ पदार्थों-को खींचकर अपने जीवनके हेतु सामग्री तय्यार करलेते हैं।

कुछ दिनोंके बाद इन दो हरी पत्तियोंके

* इस क्रियाका पूरा ब्योरा आगे लिखा जायगा।

बीचसे एक कोपल निकलती है। इस कोपल-के निकलनेपर पौधेको भूमिमें भली प्रकार स्थापित तथा लग गया हुआ कहना उचित है। अबसे पौधा अपने निज आधारपर हो जाता है और इसमें बराबर नयी कोपलें फूटती जाती हैं। कुछ काल बीतनेपर जैसा जो पौधा होता है वह उसी प्रकार फूल अथवा पत्तोंसे विभूषित होने लगता है। जैसे गुलाबमें फूल और करमकल्ला (पत्ता गोभी या बन्द गोभी) में पत्ते *।

वैज्ञानिकीय

अपने सैार जगतके बाहर नक्षत्र मंडलमें अब तक जिस सबसे बड़े तारेका पता लगा हैउसका नाम कैनोपस (Canopus) है। एलीसन (W. F. A. Ellison) साहेबके आधुनिक हिसाबोंसे [Popular Science Siftings, Nov. 9] पता लगा है कि नक्षत्र मंडलका यह भीमकाय दानव सूर्य्यसे ४६००० गुना अधिक प्रकाशवान है। इसका व्यास सूर्य्यके व्याससे १३४ गुना, इसका धरातल उसके धरातलसे १८००० गुना और इसका घनफल उसके घनफलसे २४२०००० गुना बड़ा है। पृथ्वीसे इस नक्षत्रकी दूरीका अनुमान इसी बातसे किया जा सकता है कि हम तक इसके प्रकाश आनेमें ४८६ वर्ष लगते हैं। प्रकाश फ़ी सेकेंड १८६००० मील फैलता है। मिस्टर एलीसनका कथन है कि इतने अधिक दूरीपर न होकर यदि यह नक्षत्र-दानव अपने सैारजगतके मध्यमें आ विराजते ते शुक्रके ग्रह-मार्गके अन्तर्गत स्थानके $\frac{१७}{२०}$ हिस्सेमें कहीं आपकी समाई होती। इनके नीचेका भाग जब हमारी क्षितिजपर पहुंचता तो ऊपरी भाग हमारे सरपरके सबसे ऊंचे शिरोबिन्दु (zenith) से २० कलाके अंतर्गत ही रह जाता! कहना वृथा है कि ऐसा पड़ोसी पानेसे पृथ्वी जीव-शून्य हो जाती।

नवीनानंद

* Biology department जीव विज्ञान विभाग]

कार्य्य विवरण

सोमवार ता० ६ दिसम्बर सन् १६१५ को सायंकाल ६ बजे परिषद्का वार्षिक अधिवेशन हुआ जिसमें परिषद्के सभ्यों तथा परिसभ्योंके अतिरिक्त अन्य महोदयगण उपस्थित थे। हर्ष की बात है कि हमारे कई सभ्य तथा परिसभ्य बनारस, फैज़ाबाद, मिर्ज़ापुर, रायबरेलीसे वार्षिक अधिवेशनमें सम्मिलित हुए। माननीय मिस्टर आर. बर्न, आई-सी-एस. चीफ़ सेक्रेटरी, गवार्मेंटने सभापतिका आसन ग्रहण किया। प्रधान मंत्री लालासीताराम, बी. ए., यफ़-ए-यू. की ओरसे मंत्री मिस्टर शालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी. ने परिषद्का द्वितीय वार्षिक विवरण पढ़ा। जिसका संक्षेप यह है—

इस वर्षके आरम्भमें परिषद्ने हिन्दी तथा उर्दू भाषाओंमें वैज्ञानिक पत्र निकालनेका निश्चय कर लिया और सभ्योंकी अनुमतिसे मि० करम चन्द भल्लाको विज्ञान मासिक पत्र हिन्दीमें प्रकाश करनेका अधिकार दे दिया। परन्तु उर्दू पत्रकेलिए उपयुक्त प्रकाशक न मिलनेके कारण उर्दूका पत्र न निकल सका। विज्ञान सौर वर्षके प्रथम माससे निकलने लगा। पं० सीताराम और लाला श्रीधर पाठकने बड़ी योग्यतासे सम्पादनका काम किया है। उक्त सम्पादक विज्ञानकी भाषाको देखते रहे और अन्य विज्ञान उपाधि धारियोंने विज्ञान विषय सम्बन्धी जांच लेखोंकी की। हिन्दीमें ऐसे वैज्ञानिक पत्रका सम्पादन तथा उपयुक्त लेखोंका लिखा जाना बिलकुल नई बात है। तो भी परिषत्ने अनेक कठिनाइयोंका सामना करके इस पत्रको ठीक समयमें ८

महीने तक निकाला। जो आशा हिन्दी प्रेमियों-से सहायता मिलनेकी थी परिषत्को नहीं मिली।

परिषत्ने इस वर्ष जो काम किया है थोड़ा नहीं है। परिषत्को आशा है कि भविष्यमें इसे हिन्दी प्रेमियोंसे आर्थिक तथा अन्य प्रकारकी सहायता अवश्य मिलेगी।

इस वर्ष विज्ञान प्रवेशिकाका उर्दू अनुवाद छपवाया और एक नई पुस्तक ताप पं० प्रेम बल्लभ जोशीसे लिखा कर प्रकाशित की।

इस बर्ष परिषत्की ओरसे ८ व्याख्यान हिन्दी भाषामें फ़िज़िकल सांयस थियेटर म्योर कालेजमें हुए जिनकी व्यवस्था सभ्यों तथा परिसभ्योंकी सेवामें भेजी गयी थी। इन व्या-ख्यानोंमें मैजिक लैंटर्न द्वारा चित्र दिखाकर सर्वसाधारणके समझने योग्य भाषामें वैज्ञानिक विषयोंको व्याख्याताओंने समझाया।

परिषत्के सभ्योंकी संख्या १२७ है। अब सभ्योंका कोई स्थान ख़ाली नहीं है परन्तु परिसभ्योंकी संख्या अभी संतोष जनक नहीं है। परिषत्के परिसभ्योंको अनेक सुबिधाएं परिषत्की ओरसे मिलती हैं इस लिए आशा है कि शीघ्र ही इनकी संख्या बढ़ जायगी।

इस वर्ष १६८७।=)॥ की आय हुई, १४१४।≡) का व्यय हुआ।

परिषत्का कार्य्य तभी ठीक ठीक होगा जब परिषत्की ओरसे प्रत्येक नगरमें व्यापारी, कारीगरों और खेतिहारोंकेलिए व्याख्यान दिये जा सकेंगे।

विवरण पढ़े जानेके बाद विज्ञानके अवै-तनिक सम्पादकों, विज्ञान प्रकाशक, म्योर कालेजके प्रिंसिपल रसायन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, वनस्पति और जीवविज्ञानके अध्यापकों-को धन्यबादके प्रस्ताव सर्व सम्मतिसे पासहुए।

निम्नलिखि महाशय कार्यकर्तागण चुने गये

सभापति

माननीय डाकूर सुन्दरलाल रायबहादुर, बी. ए., एल-एल. डी., सी. आई. ई., प्रयाग

उपसभाति

महामहोपाध्याय डाकूर गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट., प्रयाग

माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय, बी. ए., एल-एल. बी.

एस. एच. फ्रीमैन्टल साहब, जे. पी., आई. सी. एस,. सी. आई. इ, मैजिस्ट्रेट और कलेकूर, प्रयाग

श्रीमती एनी बेसन्ट, पी. टी. एस., मद्रास

माननीय राजा रामपालसिंह, सी. आइ-इ., कुर्री सुदौली राज, रायबरेली

राय बहादुर पुरोहित गोपीनाथ, एम. ए., (मेम्बर स्टेट कौंसिल) जयपुर

प्रधान मंत्रिगण

लाला सीताराम, बी. ए., एफ्. ए. यू., प्रयाग

अध्यापक सतीशचन्द्र देव, एम. ए.

मंत्रिगण

अध्यापक गोपालस्वरूप भार्गव, एम. एस-सी., प्रयाग

अध्यापक मौलवी सैय्यद मुहम्मद अली नामी,

कोषाध्यक्ष

अध्यापक ब्रजराज, बी. एस-सी., एल-एल. बी., प्रयाग

अन्तरंगिगण

अध्यापक रामदास गौड़, एम. ए., प्रयाग

" देवेन्द्रनाथ पाल, एम. ए. "

" शालिग्राम भार्गव, एम. एस-सी "

श्रीयुत हीरालाल खन्ना, बी. एस-सी,"

पण्डित नन्दकुमार तिवारी, बी. एस-सी, लखनऊ और कानपुर

अध्यापक पांडेय रामवतार शर्मा, एम. ए, साहित्याचार्य्य, पटना

अध्यापक गोमतीप्रसाद अग्निहोत्री, बी. एस-सी., नागपुर

श्रीयुत राधामोहन गोकुल जी, कलकत्ता

लेखा-परीक्षक

श्रीयुत प्यारेलाल केसरवानी, (हेड असिस्टैन्ट ओरिएंटल लैफ़ आफ़िस) प्रयाग

इसके पश्चात् महामहोपाध्याय डाक्टर गंगानाथ झा एम. ए., डी. लिट., एफ़-ए-यू. ने अत्यन्त मनोहर और विद्वत्ता पूर्ण व्याख्यान "प्राचीन भारतमें गृह निर्माण तथा स्वास्थ्य रक्षा" विषय पर दिया।

माननीय डाक्टर सुन्दर लाल सी. आई-ई. ने सभापतिको तथा पं० गंगानाथ झाको धन्यवाद दिया और अधिवेशन समाप्त हुआ।

गत वर्षका हिसाब

लेखा १ नवम्बर सन् १९१४ से ३१ अक्तूबर सन् १९१५ तक

	जमा		ख़र्च
२६५॥≡)।	रोकड़बाकी	२३८।≡)	छपाई परिषत्के नियमोंकी उर्दूमें तथा वार्षिक विवरण १९१३–१९१४ इत्यादिक
११७१॥।≡)	चंदा परिषत्का १९१४-१९१५	२१-)	काग़ज़,क़लम,दवात इत्यादि
६)	चंदा विज्ञान (ग्राहकोंसे)	८३)॥।	तार व डाक ख़र्च
८५॥।-)॥	बिक्री विज्ञान-प्रवेशिका	५२॥-)	किताबें
६६॥।=)॥	हिंदी पुस्तकोंकी छपाईकेलिए दान	५३१)	चंदा विज्ञान मिस्टर भल्लाको सभ्यों तथा परिसभ्योंकी ओरसे
२६)	परिषद्की ओरसे दूसरे पत्रोंमें लेख देनेकी फ़ीस	१८८।=)॥	दफ़्तर ख़र्च
२)	सूद	३४॥।)	सामान मेज़, कुरसी
१६८७।=)।		५५)	किराया मकान
		८२॥)	मैजिक लैंटर्न स्लाइडकी बनवाई
		६०॥≡)	छपाई "ताप"
		३६॥≡)॥।	फुटकर ख़र्च
		१४१४।≡)	
		२७२॥।≡)।	रोकड़बाकी डाकख़ानेमें
१६८७।=)।		१६८७।=)।	

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात् । विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते ।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तै० उ० । ३ । ५ ।

भाग २ { मकर, संवत् १९७२ । जनवरी सन् १९१६ । } संख्या ४

मंगलाचरण ।

कोहनूर* औ' कोय्ला उभय अभेद बताया,
"मिट्टी ही मणि,लाल, नील, पुखराज" सिखाया†
नीच ऊँच लघु महा एक सा कर दिखलाया‡,
ज्ञानीको समदर्शीपनका पाठ पढ़ाया,
जिसने रजकण औ' सूर्य्यका एकमूल दरसा दिया¶
जय जय विज्ञान-पयोदकी ज्ञानामृत बरसा दिया ।

कनखल । १५-१२-१५ —रामदास गौड़.

*—हमारे राजराजेश्वरका मुकुट-मणि भारतोद्भूत "कोहनूर" नामक हीरा है। रसायन विज्ञानने अनुभवसे सिद्ध किया है कि हीरा भी कोयलाही है, यद्यपि दोनों- के रूप, गुण और मूल्यमें इतना बड़ा अन्तर दीखता है। †—यह भी सिद्ध हो चुका है कि नील, पुखराजादि बहुमूल्य रत्न भी उन्हीं मूल पदार्थोंका बना हुआ है जिनसे मिट्टी बनी हुई है। ‡— यंत्रोंसे जितने अद्भुत चमत्कार नन्हें पदार्थोंमें दीखते हैं उतने ही व्योम-मंडलके उन बड़े बड़े पिंडोंमें भी दीखते हैं जिनके सामने हमारा सूर्य्य अणुकी सी तुलना भी नहीं रखता। जिस प्रकार सूर्य्योंको केन्द्र बनाकर अनेक ग्रहोपग्रह उनके चारों ओर भ्रमण करते हुए विश्वमें अनेक ब्रह्मांड बनाते हैं उसी प्रकार प्रत्येक परमाणुमें एक धन-विद्युत्कणको केन्द्र बनाकर अगणित ऋण-विद्युत्कण अकथनीय वेगसे चारों ओर भ्रमण करते हैं। इस तरह छोटेसे छोटा और बड़ेसे बड़ा ब्रह्मांड एक ही प्रकारकी क्रियामें लगे हुए किसी संचालिनी अनिर्वचनीया शक्तिके वशमें हैं। ¶—विज्ञानका सबसे हालका सिद्धान्त है कि समस्त पदार्थ, समस्त भौतिक विश्व, प्रत्येक परमाणु, केवल एक ही प्रकारकी "मूलप्रकृति" का बना हुआ है, जिसे वैज्ञानिक विद्युत्कण कहते हैं। रजकण और सूर्य्य दोनोंका एक ही मूल यही विद्युत्कण है। (ले०)

प्राचीन समयके घर तथा स्वास्थ्य विधान*

[ले० महा महोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए, डी. लिट.]

चरक, सुश्रुत, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण, कामसूत्र, बृहत्संहिता इन सब पुराने ग्रन्थोंके देखनेसे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन समयमें इस देशमें गांव

*इस विषयपर विज्ञानपरिषत्के उपसभापति महा

नगर इत्यादिके बसानेमें अपने घरोंके बनानेमें तथा अपनी दिनचर्याओंमें यहां के मनुष्य कैसी सावधानी तथा दूरदर्शिता करते थे। यह सत्य है कि बहुत सी बातें अदृष्टफलके ही सहारेपर बतलायी गयी हैं। पर यह स्मरण रखना चहिये कि शास्त्रोंमें जितनी उपकारक बातें कही गयी हैं सबमें ही कुछ न कुछ अदृष्टका अड़ंगा अवश्य लगा दिया गया है। इसका कारण केवल इतना ही था कि यहांके लोग सदा से ही कुछ तर्कप्रिय और अविश्वासी हैं। इससे केवल दृष्टफलको ही बताकर इनको कोई उपकारक उपदेश किया जाय तो ये प्रायः अपनी तर्क लगाकर उसका ऊंटपटांग तात्पर्य लगा लेते हैं। इस बातको जानते हुए हमारे ग्रन्थकार सभी उपदेशोंमें कुछ न कुछ अदृष्टका सहारा ढूंढते हैं यद्यपि बहुत से उपदेश ऐसेही हैं जिनसे दृष्ट ही उपकार होता है। अदृष्ट होता भी होगा तो दृष्ट हीके द्वारा। जैसे घर दृढ़ तथा स्वच्छ रहनेसे चित्त प्रसन्न रहता है फिर ध्यान, योग इत्यादि भी भली भांति चल सकते हैं।

किसी देशमें स्वास्थ्य रक्षाका क्या प्रबन्ध था इसको हम तीन तरहसे जान सकते हैं। (१) गांव तथा नगरके बसानेकी परिपाटीसे (२) मनुष्योंके रहनेके घरोंके बनानेके ढंगसे और (३) उसके निवासियोंकी दिनचर्यासे।

(१) गांव तथा नगरकी बसती—पूर्व समयमें १० गांवके पीछे एक नगर अर्थात् शहरका होना आवश्यक समझा जाता था, जहां उन गांवोंके आदमी हाटबाट और बाज़ारोंमें आवश्यक क्रयविक्रय कर सकते थे। गांवसे नगरमें विशेषता यह थी कि नगर चार दीवारों तथा परिखा (खाई) से घिरा होता था। गांवके अधिकांश निवासी खेती करनेवाले ही होते थे। नगरमें चारों वर्ण और प्रधान तथा व्यापारी लोग बसते थे। इन बसतियोंके बसानेमें यह आवश्यक समझा जाता था कि नगरमें कई सड़कें और कई चौरास्ते हों। नगरके बीचमें सब सड़कों के संगमपर एक खुला मैदान होता था। प्रधान सड़कें ३० फुट चौड़ी और इन प्रधान सड़कोंसे इधर उधर जानेवाली सड़कें १२ फुट चौड़ी और गलियां ६ फुट चौड़ी होती थीं। पर एक नगरसे दूसरे नगरको जानेवाली खुली हुई सड़कें १०० फ़ुट चौड़ी और गांवकी सड़कें ६० फ़ुट चौड़ी होती थीं। शहरोंसे गांवकी सड़कोंके विशद तथा अधिक चौड़ी होनेका कारण प्रायः यह था कि शहरोंमें धनी लोगोंके एकत्र होनेके कारण और सब तरहके व्यापारियोंके वहीं रहनेके कारण चोरोंके उपद्रवका डर अधिक रहता था। इससे उनका अधिक खुला रहना अच्छा नहीं समझा जाता था।

अबभी यह देखा जाता है कि गांवोंमें खलिहान मैदान हीमें होता है और घास भूसा आदि बाहर ही रक्खे जाते हैं। पर शहरोंमें बड़े बड़े धनी महापुरुषोंके घरोंमें भी देखा गया है कि घोड़ोंकी घास भी कोठोंकी छतोंपर रक्खी जाती है। इसमें भी संदेह नहीं कि प्राचीन समयसेही यहां भी नगरवासियोंकी अपेक्षा गांवोंके निवासी ही अधिक स्वस्थ और हट्टे कट्टे होते थे। चतुराई तथा कार्यकुशतलामें तो प्रायः नागरिक लोग ही बढ़े रहते थे, पर शरीर सम्पत्ति जैसी ग्रामीणोंकी होती थी वैसी शहरवालोंकी कभी नहीं होती थी।

इस तरह जैसे जैसे चोरोंका डर बढ़ता गया शहरके लोग सटे सटे मकान बनाने लगे। सूर्यकी किरणोंका प्रकाश तथा शुद्ध वायु घरमें कैसे आवेगी इसपर विचार न करके, घरमें कहीं चोर न घुस आवें इसी विचारको लक्ष्यमें

महोपाध्याय पंडित गङ्गानाथ झा, एम. ए. डी. लिट्. ने परिषत्के द्वितीय वार्षिकोत्सवपर एक महत्त्वपूर्ण व्याख्यान दिया था। उसी व्याख्यानके नोटोंसे संकलन करके इसका एक अंश यहां प्रकाशित किया जाता है।

रखकर लोग मकान बनाने लगे। तभीसे इस देशमें मकानपर मकान चारों ओर एक दूसरेसे सटे हुए बनने लगे। बाहर जानेका द्वार भी बहुत ही तंग होने लगा। गलियां भी सकरी और टेढ़ी मेढ़ी बनने लगीं। काशी अथवा और किसी पुराने शहरको देखनेसे यह बात समझमें आजायगी कि ऐसे मकानोंमें घुसना, घुसकर कोई चीज़ लेना और बाहर भागना कैसा कठिन काम है। पर नगरोंकी यह दुर्दशा प्राचीन समयमें नहीं थी। आगे चलकर दिखाया जायगा कि मकान बनानेके प्रसंगमें जो नियम बतलाये गये हैं उनके अनुसार कोई भी शहर वा गांव गन्दा नहीं हो सकता। उन नियमोंके अनुसार मकान बनानेमें पंचगंगा (काशी) कीसी गलियोंका होना असम्भव था।

गन्दे पानी इत्यादिके बहजानेकी ओर भी ध्यान था। बसती जब होती थी तब ढालू ही ज़मीनपर इस ढालका दक्षिण वा उत्तरकी ओर होना अच्छा समझा जाता था। इसका कारण प्रायः यह था कि इस देशमें अधिकतर हवा पूर्व या पश्चिमसे चलती है। इससे पूर्व या पश्चिमकी ओर मैले पानीका बहकर जमा होना ठीक नहीं समझा जाता था। बसतीके समीप खाई गढ़े और छोटे छोटे तालाबोंका रहना अनुचित समझा जाता था। इनका पानी बहुधा गन्दा होता है।

शहरोंसे दूर ही रहना इष्ट समझा जाता था। शहरसे चार कोसपर शिकारकी जगह होती थी और वहांसे दो कोसपर गांवकी बसती रहती थी।

बड़े बड़े शहरोंमें भी मकान पहले अलग अलग होते थे। और सड़कें लम्बी चौड़ी होती थीं। वे नित्य पानीसे सींची जातीं और सुगन्धित रक्खी जाती थीं। बाज़ार अलग अलग और साफ़ रक्खे जाते थे-गलियां भी टेढ़ी मेढ़ी नहीं होती थीं। ऐसी अनेक बातें रामायण बालकांडमें अयोध्याके वर्णनसे ज्ञात होती हैं। यह नगरी थी-

......सुविभक्त महापथा।
राजमार्गेण महता सुविभक्तेन शोभिता।
मुक्त पुष्पावकीर्णेन जलसिक्तेन नित्यशः।
कपाटतोरणवतीं सुविभिक्तान्तरापणाम्॥

कादम्बरीमें उज्जयिनीको भी परिखा तथा प्राकार मंडलसे परिवृत महाविपणिपथसे पूर्ण बतलाया है।

अग्निपुराण (अध्याय १०६) में नगरोंके बसानेका क्रम भलीभांति वर्णित है। नगरका फैलाव ३२ कोससे अधिक और १६ कोससे कम नहीं होना चाहिए। चारों ओर दीवार और चारों दिशाओंमें फाटक कमसे कम ८ फुट चौड़े होने चाहिए जिनमेंसे हाथी निकल सके। बाज़ार चौड़ा और नगरका आकार धनुषकी तरह होना चाहिए। मनुष्योंकी बसती तीन मंडलमें दिये हुए क्रमानुसार बटी हुई होनी चाहिये।

इन तीन खण्डोंमें विभक्त शहरके चारों ओर सेना रक्खी जाती थी।

नगर हो वा गाँव हो कोई भी बसती बिना देवमन्दिरकी नहीं रहती थी-एक बसती २०० वा २५५ घरोंकी होती थी-इत्यादि अग्निपुराण (अध्याय १०६) में वर्णित है।

यह तो हुए बसतियोंके नियम। घरोंके सम्बन्धमें मत्स्यपुराण तथा बृहत्संहितामें नियम वर्णित हैं।

जिस ज़मीनपर घर बनाना है वह ज़मीन ऊसर न हो, बालू वाली न हो, गीली न हो। मकानके सामने किसी प्रकार वायु और प्रकाशका अवरोध न हो। कहा है—

तरुणा दोष बाहुल्य, शोकः पङ्केन जायते।
अपस्मारो भवेन्नूनं कूपबेधेन सर्वदा।
व्यथा प्रस्रवणेन स्यात्.................

अर्थात् मकानके सामने कोई बड़ा वृक्ष हो तो नानाप्रकारके दोष होते हैं। कीचड़ हो तो वहां
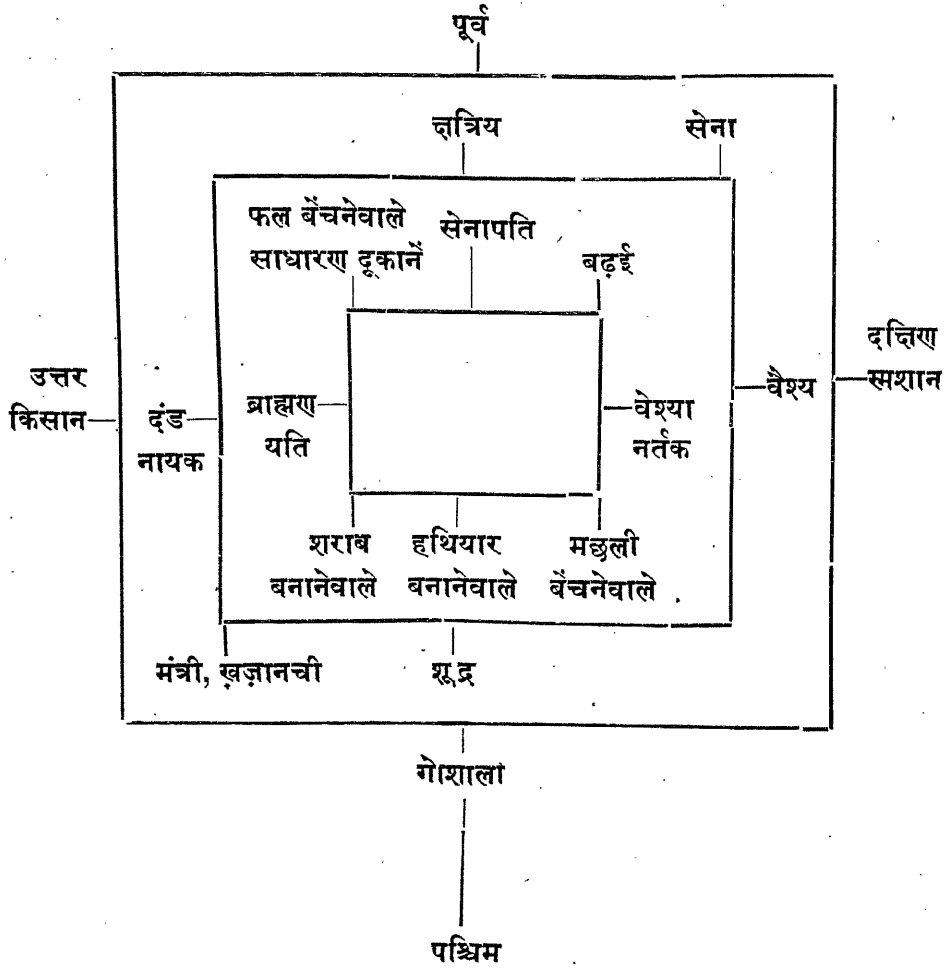
रहनेवालोंको शोक होता है। मकानके सामने कूप हो तो मिरगी रोग होता है। और मोरी हो तो व्यथा होती है। यह नियम अग्निपुराण (अध्याय १०४, श्लोक ३२-३५) मेंभी वर्णित है।

इससे यह स्पष्ट है कि उस समय स्वास्थ्यका विचार कहांतक होता था। हमारे पूर्वज बुद्धिमान थे। वे सब बातोंका विचार करते थे। ऐसा करना आवश्यक है, वे इतना ही कह कर नहीं रह जाते थे। वरंच कहांतक उपदेशका पालन सम्भव होगा, इसका भी ध्यान रखते थे। इसीसे कहा है कि जहां ऐसे अवरोधका हटाना एकदम असम्भव हो वहां कमसे कम इतना ध्यान अवश्य रहे कि मकान और वृक्षादि अवरोधके बीचकी दूरी मकानकी ऊँचाईसे दुगनी हो। इससे भी यह स्पष्ट है कि प्रकाश और वायुके आने हीकी दृष्टिसे यह नियम रक्खा गया था।

किसी मकानके अव्यवहित सामनेही दूसरा मकान बनाना मना था। मकानके चारों ओर नहीं तो कमसे कम मकानके सामने और बाईं ओर कुछ न कुछ (कमसे कम मकानके ऊंचाई-का दुगना) खुला मैदान अवश्य होना चाहिए।

वे लोग ज़मीनके ऊपरकी सफ़ाईसे नहीं सन्तुष्ट होते थे। कहा है कि मकान बनानेके पहले ज़मीनको शोधकर योग्य कर लेना चाहिए। हो-

सके तो जहांतक पानी निकले वहांतक खोदें, नहीं तो कमसे कम दो हाथ तो अवश्य खोद डालें और मिट्टीमेंसे अपवित्र तथा दुर्गन्धवाली चीज़ें निकालकर फेंक दें।

लोग घरके आसपासकी स्वच्छताके प्रसंगमें कैसे सावधान थे, यह इससे भी ज्ञात होता है कि घरोंके पास वृक्षोंके लगानेके प्रसंगमें भी बड़े बड़े नियम बताये गये हैं। इन नियमोंका मूल अदृष्ट नहीं हो सकता। यदि अदृष्ट मूल होता तो पीपलका जो सब वृक्षोंमें पूज्य समझा जाता है-पूरब ओर लगाना अनुचित नहीं समझा जाता।

इन सब बातोंका विचार करनेसे ज्ञात होता है कि किन वृक्षोंके किधर रहनेसे स्वास्थ्यपर क्या परिणाम होता है इसका साक्षात् अनुभव करके ही शास्त्रकारोंने नियम बनाये हैं। पूर्वमें पीपल, दक्षिणमें पाकड़, ईशान-(पूर्व उत्तर) दिशामें-रक्तपुष्प [लाल फूलवाला वृक्ष—कदाचित् पलाशसे तात्पर्य है] और आग्नेय (पूर्वदक्षिण) दिशामें—दूधवाले वृक्ष न होने चाहिए। पूर्वमें वट, दक्षिणमें उदुम्बर (गूलर), पश्चिममें पीपल और उत्तरमें पाकड़ अच्छा समझा गया है (मत्स्यपुराण)। फिर मकानके समीप कांटे वाले, वा दूधवाले वा फलवाले वृक्षोंका होना ठीक नहीं। पर जहां मकान बनता है वहां यदि पहलेहीसे समीपमें ये बर्तमान हों तो इनका काट डालना भी अच्छा नहीं, क्योंकि कहा है कि "विषवृक्षोऽपि संवर्ध्यस्त्यं छेत्तुमसाम्प्रतम्"। ऐसी अवस्थामें यह कहा है कि ऐसे वृक्ष और मकानके बीचमें कोई दूसरा इष्ट वृक्ष लगा दिया जाय जैसे—पुन्नाग, अशोक, बकुल, शमी, चम्पा, दाड़िम (अनार) पिप्पली, द्राक्षा (अंगूर), नारिकेल, बिल्व।

ऊपर कहे हुए नियमोंसे स्पष्ट है कि पुराने समयमें कैसी सावधानी और दूरदर्शिताके साथ यहांके लोग मकान बनाते थे। इन नियमोंका यदि अंशतोऽपि पालन किया जाता तो हिन्दुस्तानी शहरोंकी जो अब दुर्दशा देखनेमें आती है न होती। आलस्यवश अथवा अज्ञानवश इन सब सरल नियमोंको भी लोग भूलते गये। परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दुस्तानी शहर' Indian City—एक महा मलिन अन्धकाराच्छन्न दुर्गन्धावृत निवासस्थानका संकेतिक नाम हो गया।

मकान बनानेके पहले कितनी सावधानता की जाती थी ऊपर वर्णित हो चुकी। अब आगे इस बातका वर्णन होगा कि घरोंके बनानेमें कितना सूक्ष्मविधान शास्त्रोंमें पाया जाता है-और इन सब विधानोंका उद्देश्य स्वास्थ्य रक्षा ही था।

चुम्बक

[ले० एक बी. एस-सी., एल. टी.]

पाठशाला खुलनेपर कुंजविहारी, ब्रजविहारी दोनों भाई अपने घरसे प्रयागमें पढ़नेकेलिए गये और एक किरायेका घर लेकर रहनेका प्रबन्ध किया। कुंजविहारी मेट्रीक्यूलेशन कक्षामें पढ़ता था और ब्रजविहारी छठे दर्जेमें था। सन्ध्याको चारपाई बिछानेके समय यह विचार होने लगा कि चारपाईका पैताना दक्खिनकी ओर न होना चाहिए। परन्तु इस नये मकानमें किसीको यह पता नहीं चलता था कि मकानका उत्तर, दक्खिन, पूरब, पश्चिम कौन है। थोड़ी देरमें ब्रजविहारीने चिल्लाकर कहा "भैया, मैंने भूगोलमें पढ़ा है कि ध्रुवतारेकी ओर देखनेवालेके पीठ पीछे दक्षिण होता है, इसलिए तारोंके निकलनेपर दिशाका ज्ञान भली भाँति हो जायगा।

कुंज०-हाँ, ध्रुवतारेके देखनेसे दिशाओंका पता बहुत जल्दी लग जाता है किन्तु यदि बादलोंके कारण वह दिखायी न पड़े तो क्या करना चाहिए ?

व्रज०—एक रात बिना दिशाके जाने हुए यदि चारपाई बिछाई जाय और भ्रमसे उसका पैर दक्षिणकी ओर रहे तो उससे कोई हर्ज नहीं हो सकता। दूसरे रोज़ सुबह सूर्य्यके निकलनेपर अथवा सन्ध्याको यह मालूम हो जायगा।

कुंज०—एक या दो दिन दक्षिणकी ही ओर पैर करके सोनेसे कोई हानि नहीं, परन्तु यदि तुम किसी मैदान या जंगलमें पड़ जाओ और वहाँ दिशा भ्रम हो जाय और आकाशमें बादलोंके रहनेसे ध्रुवतारा भी न दिखायी पड़े तो क्या करोगे ? कभी कभी ऐसा भ्रम हो जाता है जो मनुष्यको हैरान कर डालता है।

व्रज०—ऐसी दशामें बड़ा धोखा हो जानेका डर रहता है। क्या और कोई विधि नहीं है जिससे तारे और सूर्य्यके बिना भी दिशाका ज्ञान हो सके ?

कुं०—क्यों नहीं है। यदि और कोई विधि न होती तो बड़े बड़े समुद्रोंमें जहाँ सैकड़ों कोस तक चारों ओर पानी ही पानी होता है जहाज़ोंको निश्चित दिशामें चलाना असम्भव हो जाता, और यूरोपसे अमेरिका, अमेरिकासे जापान इत्यादिका आना जाना असम्भव नहीं तो अति कठिन अवश्य हो जाता। प्रत्येक जहाज़पर एक दिक्सूचक यन्त्र वा कुतुबनुमा (Mariners' compass) होता है जो प्रतिक्षण यह बतलाता रहता है कि जहाज़ किस दिशामें जा रहा है।

व्रज०—दिक्सूचक यन्त्रमें क्या होता है और उससे दिशाका ज्ञान कैसे होता है ?

कुं०—दिक्सूचक यन्त्रका मुख्य अङ्ग चुम्बक है। इसलिए उस यन्त्रका वर्णन करनेके पहले चुम्बकके गुणोंका वर्णन करना उचित है। कहते हैं कि विक्रमादित्यके एक सहस्र वर्षसे भी पहले चीनी लोग प्राकृतिक चुम्बकका प्रयोग करना जानते थे और इसीके द्वारा तुरकिस्तान और तिब्बतके ओर-छोर-रहित मैदानोंमें गाड़ी चलाते समय दिशाका ज्ञान करते थे। गाड़ीके ऊपर मनुष्यकी एक मूर्ति लगी रहती थी जिसका एक हाथ सदैव दक्षिण दिशा बताता रहता था। जब कभी गाड़ी घूमती थी तो हाथ भी घूमकर दक्षिणकी ओर हो जाया करता था। बात यह थी कि हाथ खोखला बनाया जाता था और उसके खोखलेमें लम्बा चुम्बक इस प्रकार रक्खा रहता था कि घूमकर उत्तर दक्षिण हो जाया करता था। विक्रमादित्यकी शताब्दीमें भी चीनी लोग चुम्बककी सहायतासे हिन्द महासागरमें बड़ी बड़ी नावोंपर जलयात्रा और समुद्रपार व्यापार करते थे।

व्रज०—क्या चुम्बक बनाया भी जा सकता है ?

कुं०—हाँ, चुम्बक दो प्रकारका होता है प्राकृतिक और कृत्रिम। प्राकृतिक चुम्बक एशियामाइनरके मेगनीसिया स्थानमें युरोपीय लोगोंको पहले पहले प्रकट हुआ था, इसलिए वह लोग इसको मैगनेट कहकर पुकारने लगे। यह लोहा और ओषजनका एक संयुक्त पदार्थ (compound) है इसको यदि लोहेके बुरादे, निब, सुइयां इत्यादिके पास ले जाओ तो वह चिपट जायँगी और हाथसे छुड़ानेपर छूटेंगी। चुम्बककी नोकोंपर चिपटनेकी शक्ति अधिक होती है। यदि यह ऐसे तागेमें जिसमें एँठन न हो बांधकर लटका दिया जाय तो यह लम्बाईकी ओर लगभग उत्तर दक्षिण हो जायगा। इसी गुणके कारण यह दिशाके सूचित करनेमें बड़ा उपयोगी होता है। इसीसे पुराने लोग इसको पथप्रदर्शक पत्थर (loadstone) कहते थे।

लटकानेमें इस बातकी सावधानी चाहिए कि तागेमें एँठन न हो नहीं तो तागा एँठनके बलसे

चुम्बकको इधर उधर घुमावेगा। दूसरी बात यह है कि जिस समय दिशा जाननेकेलिए यह लटकाया जाय उस समय इसके पास लोहेकी कोई वस्तु न होनी चाहिए नहीं तो उससे आकर्षित होनेके कारण यह स्वाभाविक (उत्तर दक्खिनवाले) दिशामें न लगकर उसी ओर झुक जायगा। लटकानेकेलिए साधारण विधि यह है कि एक कड़े काग़ज़को ५ इंचके लगभग लम्बा और एक इंच चौड़ा काट ले और मोड़कर दोनों सिरोंको मिलादे; किनारेपर थोड़ासा मोड़कर चार पर्त करडाले। इसीमें छेद करके एक डोरा बाँध दे; चुम्बकको इसके भीतर सम करके रख दे और तागेको कहीं लटका दे। चुम्बक कुछ देरमें उत्तर दक्षिण हो जायगा जैसा चित्र नं० १ में दिखाया गया है।
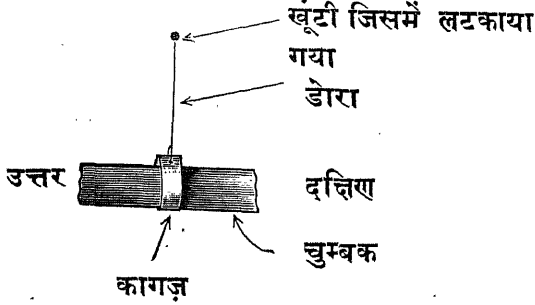
चित्र नं० १

साधारणतः दो प्रकारके कृत्रिम चुम्बक देखे जाते हैं, एक सीधा होता है और दूसरा घोड़ेकी नालकी तरह मुड़ा हुआ। ऐसा चुम्बक पक्के लोहे (फ़ौलाद) का बनता है। बनानेकी बहुतसी विधियां हैं जो उचित स्थानपर बतलायी जायँगी। यह चुम्बकत्वके गुणोंको देखने और समझनेकेलिए काममें आते हैं इनसे दिशाका ज्ञान नहीं किया जाता। दिशाके ज्ञानकेलिए ऐसी चुम्बककी सुइयां बनायी जाती हैं जैसा चित्र नं० २ में दिखलायी गयी हैं। इसके बीचोंबीच एक छेद होता है जिसके द्वारा

चित्र नं० २

सुईको नोकदार खड़ी कीलपर रख देनेसे सुई क्षितिज धरातल (horizontal plane) में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमकर उत्तर दक्षिण दिशामें लग जाती है।

किसी चुम्बकको लोहेके बुरादेमें रख देनेसे यह प्रकट हो जायगा कि लोहेके कण चुम्बकके सिरोंमें खिंचकर चिपट जाते हैं और बीचमें बिल्कुल नहीं लगते। इससे पता चलता है कि चुम्बकीय आकर्षण शक्ति सिरोंपर अधिक होती है। जिस विन्दुपर आकर्षण शक्ति सबसे अधिक होती है उसको <u>चुम्बकीय ध्रुव</u> कहते हैं। किसी कृत्रिम चुम्बकके ध्रुवोंपर आकर्षण शक्ति समान होती है परन्तु ज्यों ज्यों ध्रुवोंसे मध्यकी ओर जायं त्यों त्यों यह शक्ति घटती जाती है और मध्यमें कुछ शक्ति नहीं पायी जाती।

जो सिरा उत्तरको ओर घूमकर ठहर जाता है उसके ध्रुवको चुम्बकका <u>उत्तरीय ध्रुव</u> वा उत्तरकी ओर हो जानेवाला ध्रुव कहते हैं। दक्षिणकी ओर लग जानेवाले ध्रुवको <u>दक्षिणीय ध्रुव</u> कहते हैं। इन दोनों ध्रुवोंको मिलानेवाली रेखाको <u>चुम्बकीय अक्ष</u> (magnetic axis) कहते हैं। इन दोनों ध्रुवके मध्यमें जहां आकर्षण शक्ति कुछ भी नहीं पायी जाती यदि एक रेखा ऐसी खींची जाय जो चुम्बकीय अक्षसे समकोण बनाती हो तो इसको <u>चुम्बकीय मध्य रेखा</u> (चुम्बकीय व्यास) कहेंगे। इस रेखापर चुम्बकीय आकर्षण शक्ति कुछ भी नहीं पायी जायगी।

<u>चुम्बकीय ध्रुवोंका भेद</u>–जिस समय लटका हुआ चुम्बक उत्तर दक्षिण दिशामें हो और
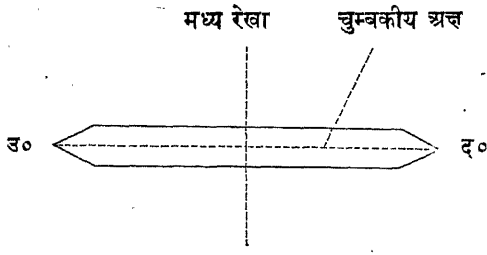
चित्र नं० ३

दूसरे चुम्बकके उत्तरी ध्रुवको लटके हुए चुम्बकके उत्तरी ध्रुवके पास ले आवें तो लटके हुए चुम्बकका उत्तरी ध्रुव दूर हट जायगा। इसके प्रतिकूल यदि दक्षिणी ध्रुव उसी ध्रुवके पास ले जायं तो वह उसके पास चला आवेगा अर्थात् आकर्षित हो जायगा इसी प्रकार लटके हुए चुम्बकके दक्षिणी ध्रुवके पास यदि दूसरे चुम्बकका दक्षिणी ध्रुव ले जायं तो वह दूर हट जायगा परन्तु उत्तरी ध्रुव पास ले जानेसे आकर्षण होता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सजातीय ध्रुवोंमें निराकरण और विषमजातीय ध्रुवोंमें आकर्षण होता है।

यदि कोई और लोहा जिसमें चुम्बकत्व शक्ति न हो लटके हुए चुम्बकके पास लाया जाय तो यह दोनों ध्रुवोंको समान शक्तिसे आकर्षित करता है। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि चुम्बक और लोहेका आकर्षण परस्परका है। अर्थात् किसीको यह न समझना चाहिए कि चुम्बक ही लोहेको खींचता है वरन् लोहा भी चुम्बकको खींचता है। दोनों एक दूसरेको खींचते हैं अथवा खींचनेका प्रयत्न करते हैं किन्तु उनमेंसे जो खिचनेसे चल सकनेके योग्य होता है वही खिचता हुआ दीख पड़ता है।

व्रज०—कृपा करके चुम्बक और लोहेकी पहचान पूरी तरह बतला दीजिए।

कुंज०—(१) चुम्बक छोटे छोटे लोहेके टुकड़े, बुरादे, निब, पिन इत्यादिको खींचकर चिपटा लेता है; साधारण लोहेमें यह बात नहीं पायी जाती।

(२) यदि यह इस प्रकार रक्खा जाय कि क्षितिज धरातलमें घूम सके तो उत्तर दक्षिण दिशामें लग जायगा। हिला देनेसे इधर उधर कुछ देरतक हिलता रहेगा अन्तमें फिर उसी दिशामें हो जायगा; साधारण लोहा किसी विशेष दिशामें नहीं लगता।

(३) एक चुम्बकके ध्रुव दूसरे चुम्बकके सजातीय ध्रुवको हटा देते हैं (अर्थात् उनमें निराकरण होता है,) परन्तु विषमजातीय ध्रुवको खींच लेते हैं; साधारण लोहा किसी चुम्बकके दोनों ध्रुवोंको खींचता है, किसीको हटा नहीं देता।

भोजन विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय, एम. बी., एम. आर. सी एस.]

पथ्याशनका यथार्थ निर्णय

भोजनसंबंधी गूढ़ प्रश्नोंका विचार करनेके पूर्व मैं अपने साधारण पाठकोंके संमुख कुछ पारिभाषिक शब्दोंका विवरण कर देना उचित समझता हूँ। प्रथमतः मैं भोज्य-पदार्थोंके पारिभाषिक नामोंका वर्णन करूंगा।

१—प्रोटीन या प्रोटीड (proteins or proteids)

सजीव कोषोंका प्राथमिक जीवन-मूल जीवाद्यम या प्रोटोप्लाज़्म (protoplasm) है। जीवाद्यमका यथार्थ रूप और स्वभाव निर्धारित करना बड़ा कठिन है। जीवाद्यम सजीव प्रोटीन्स हैं, उनके मरजानेपर उनकी ठीक परीक्षा होना असंभव है। वनस्पति उन पदार्थोंको

लेकर जिनसे प्रोटीन्स बनते हैं स्वयं अपने जीवनाधार सजीव प्रोटीन्स या जीवाद्यमको तय्यार कर लेते हैं। परन्तु जानवरोंमें यह शक्ति नहीं होती। अन्य प्राणियोंके समान मनुष्यको भी बनी बनायी प्रोटीनोंका आश्रय लेना पड़ता है।

जिन रासायनिक तत्वोंके संयोगसे प्रोटीन बनती है उनके योगका साधारण हिसाब नीचे दिया गया है:—

कर्बन (कोयला)	१०० भागों में	५० से लेकर ५५ भागतक
उज्जन	” ”	६.९ ” ७.३ ”
नत्रजन	” ”	१५ ” १८ ”
ओषजन	” ”	२० ” २३.५ ”
गंधक	” ”	.३ ” २ ”

इन तत्वोंके अतिरिक्त, बहुत प्रकारकी प्रोटीनोंमें भिन्न भिन्न परिमाणोंमें धातुओंके क्षारके साथ मिले हुए खनिजाम्ल भी पाये जाते हैं। खटिक (calcium), मैग्नीशियम (magnesium), पोटाशियम (potassium), सोडियम (sodium) और लोह कार्बनिकाम्ल, गन्धनिकाम्ल और स्फुरिके साथ मिले हुए पाये जाते हैं। कुछ लोगोंका यह अनुमान है और यह अनुमान केवल कोरी कल्पना ही नहीं है; वरंच प्रमाणोंके आधारपर है कि सजीव अवस्थामें प्रोटीन रासायनिक नमकोंके* साथ ही मिला हुआ पाया जाता है। तन्तुओंके निर्जीव होनेके कारण अथवा द्रव्य विश्लेषणकी प्रक्रियाओंके कारण यह संयोग टूट जाता है। अतः निर्जीव प्रोटीनोंके विश्लेषणमें इन नमकोंका पता नहीं मिलता।

* क्षार और तेज़ाबसे मिलकर जो पदार्थ बनते अथवा बन सकते हैं उन्हें रसायन शास्त्रमें नमक कहते हैं। इन नमकोंकी संख्या बहुत बड़ी है और इनके स्वभाव, गुण और स्वाद भी भिन्न भिन्न होते हैं। यह बात सदा ध्यानमें रखनी चाहिए।

प्रोटीनों के अनेक भेद होते हैं। कुछ तो भभकासे शुद्ध किये हुए बेमिलावटवाले जलमें घुल जाते हैं, पर गरम करनेपर दूधकी तरह फट जाते हैं और दही सा एक थक्का जम जाता है। इस प्रकारके प्रोटीन प्राकृतिक अवस्थामें मिलनेवाले एल्ब्यूमेन हैं। दूसरे प्रकारके प्रोटीन शुद्ध जलमें न तो घुलते ही हैं और न उबालनेपर फट जाते हैं। इस प्रकारके प्रोटीन अन्य द्रव्योंसे उत्पन्न एल्ब्यूमेन हैं।

इनके अतिरिक्त एल्ब्यूमेसेस और पेप्टोंस ये दो ऐसे शब्द हैं जिनका प्रयोग बहुधा भोजन संबंधमें किया जाता है। पेप्टोंस पानीमें बड़ी जल्दीसे घुल जाते हैं। कुछ एल्ब्यूमेसेस भी शीघ्रताके साथ जलमें मिल जाते हैं। हमारे भोजनके प्रोटीड इन्हीं रूपोंमें आकर शरीर-पोषणके योग्य बनते हैं।

हमारे शरीरके ठोस द्रव्योंका एक बहुत [illegible] भाग प्रोटीडसे बना हुआ है। ये प्रोटीड द्रव्य ओषजनसे निरन्तर मिला करते हैं और उसमें भस्म होकर ये द्रव्य मूत्रके साथ यूरिया या यूरिकएसिडके रूपमें निकल जाते हैं। यूरिया और यूरिकएसिड नत्रजनीय द्रव्य हैं। इस प्रकार शरीरमें नत्रजनीय द्रव्य सदा घटा करते हैं। इस घटीको पूरा करनेकेलिए नत्रजनीय या प्रोटीड भोजन आवश्यकतासे कुछ अधिक किया जाता है और इस प्रकार डांड तौल बराबर रक्खा जाता है। पारिभाषिक शब्दोंमें इसे शारीरिक धर्मीयिसाम्य (Physiological balance) कहते हैं।

व्वाइल (Voil) साहेबने परीक्षाओं द्वारा यह सिद्ध कर दिया है कि भोजनके साथ खाये हुए प्रोटीड शरीरके साधारण रसोंमें मिल जाते हैं। जब देहको अपनी बाढ़ अथवा नष्ट तंतुओंकी बार बार रचनाकेलिए इस नत्रजनीय मांसवर्द्धक द्रव्यकी आवश्यकता पड़ती है तो वह इन्हीं रसोंमेंसे आवश्यकतानुसार प्रोटीड ले

लेता है। नत्रजनीय भोजनकी अधिकता होनेके कारण शरीरके अवयव अपने अङ्गाङ्गी धर्म्ममें स्फूर्ति लाभ करते हैं, और शायद इसी अधिकताके कारण मनुष्य श्रमजनक दुःखको सहन करता है तथा रोगाक्रमणोंको रोकता रहता है।

२—स्फूर्तिजनक मांड और शर्करा जातीय द्रव्य या कार्बोहाइड्रेट (carbohydrate)—ये कर्बन, उज्जन और ओषजनके सम्मिलित द्रव्य हैं। इनके एक अणुमें कर्बन और ओषजनके परमाणु क़रीब क़रीब समान संख्याके होते हैं। दूधमें मिलनेवाली शकर इस जातिका उदाहरण है। इस शकरके एक अणुमें १२ कर्बनके परमाणु, २२ उज्जनके परमाणु और ११ ओषजनके परमाणु तथा एक जलाणु मिले हुए होते हैं। जलके एक अणुमें ओषजनका एक और उज्जनके दो परमाणु सम्मिलित रहते हैं। इन परमाणुओंकी संख्या रसायन शास्त्रके सिद्धान्तोंद्वारा निश्चितकी गयी है। यदि प्रत्येक तत्वकेलिए एक एक विशेष चिन्ह का उपयोग किया जाये, जैसे कर्बनके स्थानमें क, उज्जनके लिए उ और ओषजनकेलिए ओ, तो दूधकी शकरके एक अणुकी रचनाका निम्न लिखित संकेत होगा।

$$क_{१२} उ_{२२} ओ_{११} + उ_{२} ओ \text{ (जलविन्दु)}$$

$$C_{12} H_{22} O_{11}, \quad H_2O$$
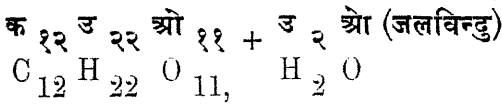
ऊपरके संकेत-सूत्रसे स्पष्ट है कि इस शर्कराके अणुमें ओषजनके मिलनेकेलिए अधिक कर्बन नहीं मिल सकता क्योंकि इस अणुमें ओषजनके ग्यारह परमाणु पहलेसे ही मौजूद हैं। ऊपरके सूत्रसे कार्बोहाइड्रेट जातिकी एक और विचित्रता मालूम होती है वह यह है कि इस जातिमें उज्जन और ओषजनके परमाणु सदा उसी परिमाणमें मिलते हैं जिस परिमाणमें जल बन सके यानी उज्जनके प्रति दो परमाणुओंपर ओषजनका एक परमाणु मिलेगा।

मांड या स्टार्चभी इसी जातिमेंसे है। मांड-आलू, जौ, गेहूं और अन्य भोज्य अनाजोंमें मिलता है।

३–उष्णतोत्पादक द्रव्य–चर्बी या हाइड्रोकार्बन (fats or hydrocarbons) इन द्रव्योंका कर्बन ओषजनसे बिल्कुल मिला हुआ नहीं होता, किन्तु इनका कर्बन ओषजनसे बड़ी ही शीघ्रता और तीव्रतासे मिल सकता है। पदार्थों अथवा तत्वोंकी ओषजनसे सम्मिलित होनेकी रासायनिक प्रक्रियाको धनद (oxidation) प्रक्रिया कहते हैं। साधारणतः पदार्थोंका जलना ओषजनसे सम्मिलित होना ही मात्र है। चर्बीका कर्बन शरीरमें ओषजनसे मिलनेके कारण उष्णता पैदा करता है। इसलिए उष्णतोत्पादक द्रव्योंमें चर्बी* का बहुत आदर है। चर्बी और ओषजनके रासायनिक सम्मेलनमें कर्बन और ओषजनसे मिलकर एक गैस (वायुवत पदार्थ) बनता है। यह गैस हमारे फेफड़ोंसे सांसके द्वारा सदा बाहर निकला करता है। इसे कर्बनद्वि ओषजिद या कार्बन-डाइ-आक्साइड कहते हैं। इसके एक अणुमें कर्बनका एक और ओषजनके दो परमाणु होते हैं। इसका संकेत $क ओ_{२}$ या CO_2 है।

यहांपर यह अनुमान न करलेना चाहिए कि चर्बी या चिकनाहटवाले द्रव्योंका कर्बन ओषजनसे मिलकर सहजही द्वि-ओषजिद बन जाता है। यह सम्मेलन साधारण रासायनिक योग नहीं है। इसके पूर्व कि कर्बन द्वि-ओषजिद बनकर फेफड़ेसे बाहर निकले, इस विस्तृत प्रक्रियाके अंतर्गत अनेक शरीर रचनोपयोगी द्रव्य बनजाते हैं। इन द्रव्योंका बहुत बड़ा भाग प्रोटीन और चर्बियोंके निगूढ़ रूपसे संयुक्त द्रव्य हैं। इन्हें हम निगूढ़ नत्रजनीय चर्बी कह सकते हैं (साधारण चर्बीमें नत्रजन नहीं होता)।

* पाठकोंको स्मरण रखना चाहिए कि इस लेखमें चर्बीसे वसाका आशय नहीं है। सम्पूर्ण चिकनईवाले द्रव्य घी, तेल इत्यादि इसी जातिमें गिने जाते हैं।

इसप्रकारके द्रव्यका एक उदाहरण लेसिथिन है। लेसीथिन (lecithin) रुधिरके रक्तकोषमें मिलता है। वह मस्तिष्कके स्नायुओं और श्वेत रक्तकोषका एक मुख्य अवयव है। मस्तिष्क स्नायुका दूसरा मुख्य अवयव सेरीब्रिन है।

पत्थर

[ले० श्रीयत मधु मंगल मिश्र, बी. ए. एस सी.]

नदियों तथा बरसाती नालोंमें बालू या रेत सभीने देखा होगा। वे लाल, पीले, नीले, आसमानी कई रंगोंके होते हैं और भिन्न भिन्न स्थानोंमें पाये जाते हैं। काशी, प्रयाग आदि स्थानोंमें उसके बहुत छोटे छोटे कण मिलते हैं। जो वायुमें भी उड़ सकते हैं। पर हरिद्वार वा मंडला आदि स्थानोंमें नोक घिसे पत्थरके बड़े बड़े ढोंके पाये जाते हैं। थोड़ी दूर चलकर छोटी छोटी गड़नेवाली कंकड़ी मिलती हैं। उनपर चलना दुःखदायक बोध होता है।

यह करोड़ों मन रंग बिरंगी बालू या रेत प्रतिवर्ष कहांसे आती है और कहां जाती है? कहना नहीं होगा कि यह पहाड़ोंसे आती है और समुद्रमें जाती है अथवा नदीके मुखपर डेलटा बनाके नई भूमि बनाती जाती है। प्रति वर्ष रेतके ढेरके ढेर नदियोंके बहते हुए पानीके साथ जाके समुद्रमें पहुंचनेपर धाराके स्थिर होनेपर वहीं बैठ जाता है। और पर्तपर पर्त जमता हुआ जलके धरातलसे ऊपर उठ आता है।

जलते हुए अंगारेपर आलू भूना जावे तो वह कहीं कहींपर सिकुड़के नीचे बैठ जाता है और कहीं कहींपर फूलकर ऊपर उठ आता है। ऐसेही भीतरी गर्मीके कारण पृथ्वी भी कहीं नीचे धसी जाती है और कहीं ऊपर उठी आती है। इस प्रकारका धसाव और फुलाव सदा होता रहता है। आजकल दक्षिणी बंगालकी भूमि धसी चली जा रही है। इसका प्रमाण यह है कि गंगासागर वा सुन्दरबनकी रेतीली भूमि खोदी जानेपर २५ गज़की गहराईमें रेत ही निकलता है और उस रेतमें बेंतकी पीड़ खड़ी या जड़ समेत पायी जाती है। यह बेंतका पौधा जलाशय वा समुद्रके तटपर सूर्यसे प्रकाशित स्थानपर ही होता है और आजकल भी सुन्दरबनमें पाया जाता है। यदि केवल रेत पाया जाता तो अनुमान हो सकता था कि समुद्रकी गहराईमें रेत आके पट गया है। यदि केवल बेंतकी डाल पड़ी पायी जाती तो संभव था कि वह रेतके साथ बहकर आयी हो! पर जब बेंतका झाड़ २५ गज़की गहराईमें पाया जाता है तो यही अनुमान होता है कि जब वह रेत भी कभी समुद्र तटपर रहा होगा तब उसमें वह बेंत लगा रहा होगा। पर वह रेत जिसके तटपर बंगालकी खाड़ीका जल किसी समय लहराता रहा होगा अब २५ गज़की गहिराईमें पहुँच गया है। बंगालमें प्रति वर्ष गंगा नदी कितने स्थानोंमें अपने दोनों कगारोंके ऊपरसे दोनों पारके मैदानोंमें कोसोंतक अपना जल फैला देती है जो प्रायः एक माससे अधिक भरा रहता है। ऐसी अवस्थामें लोग लकड़ियोंके मचान बांधके रहते हैं। प्रत्येक मचानके नीचे बाज़ार हाटकेलिए एक डोंगी बंधी रहती है। यह फैला हुआ जल बहता नहीं है। स्थिर रहनेके कारण उसकी मिट्टी बैठ जाती है। यों प्रतिवर्ष रेतीली मिट्टी बैठनेसे वह भूमि ऊंची हो जानी चाहिए। पर ऐसा नहीं होता। इससे भी यह अनुमान दृढ़ होता है कि जो इंच आध इंच मिट्टी जमती है उतनी ही धरती धसती जाती है।

जैसा हमारे देशमें हो रहा है वैसा ही

[Geology भूगर्भ विद्या]

धरातलपर अन्यत्र भी हो रहा है। केवल ध्यानसे देखनेकी आवश्यकता है। कहीं भूमि उठती है कहीं धँसती है। सैंकड़ों वर्ष ऐसा होनेसे कहीं तो भूमि पर २½ कोस गहरा समुद्र हो जाता है और कहीं २½ कोस ऊंचा पहाड़ उठ आता है। हिमालय पर्वतमालामें कुछ घोंघे आदि अन्यान्य जलजन्तुओंके शरीर पाये जाते हैं जो समुद्रमें ही होते हैं। कुछ लोगोंकी कल्पना है कि हिमालय किसी समय समुद्रके गर्भमें रहा होगा। यों बंगालकी भूमिके धसनेके समान रेतोंके पर्त जमते जमते बहुत नीचे धस जाते हैं और बोझेके कारण दबकर कड़े हो जाते हैं। तब वह पत्थर बन जाते हैं। पत्थर शब्द संस्कृतके प्रस्तर शब्द-का अपभ्रंश (बिगड़ा हुआ) रूप है। प्रस्तर शब्दका वाचक हिन्दीमें परत वा पर्त शब्द है। इससे जान पड़ा कि जो परतों (तहों) के रूपमें पाया जावे सो पत्थर है।

मिट्टी भी परतमें पायी जाती है पर उसमें उतना कड़ापन न होनेसे उसे पत्थर नहीं कहते हैं। जैसे मिट्टी नरम और कड़ी होती है वैसे ही पत्थर भी कड़ेपनमें न्यूनाधिक होते हैं अर्थात् परतवाले पत्थर कोई कम कड़े और कोई अधिक कड़े होते हैं।

ये पर्तवाले पत्थर फाड़े जायं तो वे पर्तोंही में सरलतासे फटते हैं और उनकी पट्टियां बनायी जाती हैं। उनके कण श्वेत, लाल वा पीले होते हैं। वे कभी चमकीले होते हैं कभी नहीं। उनमें और भी कई प्रकारके पदार्थ पाये जाते हैं। यदि परत उथले पानीमें जमते हैं तो बड़े बड़े कंकड़, गिट्टी और कण पाये जाते हैं और यदि कण बहुत छोटे और बारीक हों तो गहरे पानीमें जमे अनुमान किये जा सकते हैं। क्योंकि भारी कण पानीकी तलहटीमें पहले बैठते पाये जाते हैं और हलके कण देरतक उतराते रहते हैं। वे जलके साथ समुद्रमें दूर-तक जाते हैं और जब देरतक स्थिर जलमें पहुंचते हैं तब धीरे धीरे बैठते हैं। कभी कभी उनके जमते समय बहुतसे भिन्न भिन्न प्रकारके रोड़े, कंकड़, गिट्टी आदि पड़ जाते हैं तो वे सब भी इनके साथ उसी प्रकार जम जाते हैं जैसे बरफ़ी वा हलुआ बनाते समय गरी और पिस्ते-के बड़े बड़े टुकड़े चाशनी या आटेके साथ जम जाते हैं। तब वे बड़े बड़े ढोंकोंके स्वरूपमें हो जाते हैं। ऐसे पत्थरोंको लड्डू पत्थर (Conglomerate) कहते हैं। रेतीले पत्थरोंको

लड्डू पत्थर (Conglomerate)
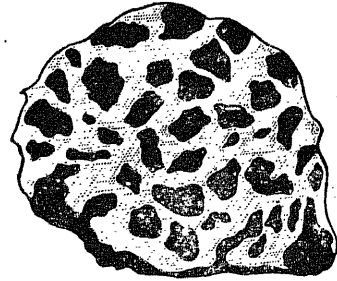
चित्र नं० १

स्तर वा परत (तह) में तथा जलमें जमनेके कारण जलजात वा आम्भस (Aqueous) कहते हैं। और कणोंके जलमें बैठनेके कारण उन्हें तलछटवाले पत्थर (Sedimentary) भी कहते हैं। रेतीले पत्थरोंके बीचमें पशुओंके शरीरकी हड्डी आदि अथवा पत्तों वा पक्षिओं-के पैरके चिह्न भी कभी कभी पाये जाते हैं।

पर्वतोंसे पानीके साथ जो ढोंके बहके आते हैं वे परस्पर टकराते और घिसते हुए छोटेकण या बालू बनके मिट्टी और वन-स्पति आदिकों से घुली हुई पानीकी धारामें बहते हुए समुद्रके मुखपर वा समुद्रमें जाते हैं। और वहाँ जाके स्थिर जल पाने पर तलह-टीमें बैठ जाते हैं। और साल सालभरके परत बनाते हुए जलजात पत्थरके स्तर बनाते हैं।

ये पत्थर दबकर कड़े होजाते हैं और भूमिके उठनेपर और समुद्र के हटनेपर ऊपर आजाते हैं। मध्यभारतका विन्ध्याचल पर्वत बहुधा इसी प्रकारके स्तरोंके पर्वतका अच्छा उदाहरण है। उसके चट्टानोंके परत एक दूसरेके ऊपर पाये जाते हैं। कभी कभी ये परत एक सीधमें नहीं भी पाये जाते। वे नीचेकी मिट्टी नरम होनेसे एक ओर झुकके तिरछे हो जाते हैं और बोझ अधिक पड़नेसे वे टूटकर तिरछे ऊपर वा नीचेको हो जाते हैं। देखो चित्र नं० २ भूडोल आदिमें भूमिके हिलनेसे वे आड़े बेंड़े वा पट्टसे खड़े हो भी जाते हैं।

(Aqueous) चित्र नं० २

यों नदियों, नालोंका रेत बहता हुआ अन्तमें एक दूसरे पर्वतके बनानेमें सहायक होता है। वह पर्वत काल पाके सहस्रों वर्षों पश्चात् भूमिके ऊपर उठ आ सकता है। फिर उसपर वर्षाका जल बहके उसे धीरे धीरे वहा ले जाता है। यों वारी वारी आना जाना लगा रहता है ऐसा अनुमान* विद्वान लोग करते हैं।

अनुमानकी भी हवा समय समयपर बहा और बदला करती है। एक समय था जब लोगोंका अनुमान था कि पृथ्वी चपटी और स्थिर है और लोग उसे मानते भी थे। आजकल पृथ्वी गोल और चलायमान मानी जाती है और सूर्य स्थिर। पर रात दिन जैसे पहले होते थे वैसे अब भी होते हैं। पृथ्वी ऊंची नीची ऊवड़ खावड़ थी और है। इन्हीं लक्षणोंको देखके पहलेके लोगोंका अनुमान आजकलके अनुमानसे भिन्न था। आगे चलके और कोई युक्ति दिखलाके कुछ नया अनुमान निकाला जावे तो असंभव नहीं। आजकलके अनुमान क्या हैं सो आजकल जानना चाहिए और वे ही यहां कहे जायंगे।

अर्वाचीन (आजकलके) पाश्चात्यों (एशियासे पश्चिमके देशोंके निवासियों) का अनुमान है कि प्राचीन कालमें हमारी पृथ्वी प्रबल तापके कारण वायवीय दशामें थी काल पाके वह ठंडी हुई तब उसका ऊपरी भाग तो पपड़ीके समान ठोस और मोटा हो गया पर भीतर वह द्रव स्वरूप ही रहा। पर सचमुचमें भीतर वह द्रव स्वरुप है वा नहीं इसका कोई प्रमाण देना सहज नहीं है। पांच मीलकी गहराईमें इतनी गरमी अनुमान की जा सकती है जहां लोहा भी गल जावे। पर ५ मील गहरे समुद्रोंकी तलीपर पृथ्वी मिट्टीसे वा पर्वतोंसे परिपूर्ण है। ८००० मील व्यासवाली पृथ्वीके गर्भकी बात कौन जाने? कल्पना भिड़ाना भर मनुष्यके हाथमें है। जब गेहूं वा भूसेमें गाड़नेसे आम गरमी पाके पक जाता है तब पृथ्वीके ४००० मीलके भीतर केन्द्रपर द्रवरूप धात और पदार्थ होंगे वा वायुरूप होंगे अथवा शून्य होगा यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

पृथ्वीका बाहरी भूभाग कुछ दृष्टिगोचर है और कुछ खोदा गया है। जलजात पत्थरोंसे भिन्न भांतिके पत्थर पृथ्वीके ऊपर वा कुछ गहराईमें पाये जाते हैं। उनमें पर्त नहीं पाये

* यहांपर नैयायिकोंके अनुमानपर लक्ष्य नहीं है वह तो प्रत्यक्षके तुल्य सत्य समझा जा सकता है। इस अनुमानको अटकल कह सकते हैं।

जाते। उनकी आकृति भी अनियत होती है। वे छोटे ढेले वा ढोंकेके स्वरूपमें पाये जाते हैं और बहुत कड़े होते हैं। मनुष्य प्राचीनकालमें उनसे अग्नि उत्पन्न करते थे। उनका नाम चकमक है। कभी कभी चकमकके भीतर स्फटिकके आकारके छोटे या बड़े बहुतसे टुकड़े पाये जाते हैं; ये टुकड़े विशेष विशेष आकृतिके होते हैं। जैसे मिश्रीके वा सेंधे नमकके डलेमें पाये जाते हैं। जब शक्कर या चीनीको गरम करके चाशनी बनाके ढालते हैं तब वह जमते समय सर्दी पाके विशेष आकृति धारण कर लेती है। उसके परमाणुओंमें विशेष आकृति धारण करनेका विशेष गुण है। ऐसे ही और भी बहुतसे पदार्थ हैं जो द्रव रूपसे शीतल होते समय विशेष आकृति धारण कर लेते हैं। चकमक पत्थरोंके भीतर जो स्फटिक पाये जाते हैं उनके उस आकारके पड़नेका कारण यही जान पड़ता है कि वे पहले वायु वा द्रव रूप उष्ण पृथ्वीके भाग थे। शीतल होते समय उनने वैसे रूप धारण किये। इस उष्णताकी कल्पनाके अनुसार ऐसे पत्थरोंको आग्नेय (अर्थात् अग्निसे उत्पन्न) कहते हैं। ये पत्थर प्रायः ढेले, कंकड़, गोटीके रूपमें अथवा स्फटिकके रूपमें अथवा ऊपर गड़बड़ आकारके और भीतर स्फटिकके आकारके पाये जाते हैं। कभी कभी भीतर इनमें रंगीन परतोंकी रेखाएँ भी पायी जाती हैं। तब उन्हें अंग्रेज़ीमें एगेट (agate) कहते हैं। ये सभी पत्थर इतने कड़े होते हैं कि हम उन्हें चाकूसे खरोंच नहीं सकते। दूसरे पत्थरपर पटकके फोड़ भी नहीं सकते पर हाँ लोहेके हथौड़ेसे फोड़ सकते हैं। इनके स्फटिक भी बहुत कड़े होते हैं और फोड़नेमें ये स्फटिक ऐसे टूट जाते हैं कि समूचे अलग नहीं मिलते। इतने कड़े होनेपर भी सहस्रों वर्षोंमें परस्पर टकराने गिरने और रगड़नेके कारण उनके भी कण वर्षाके पानीके साथ बहते हुए नदियों और समुद्रोंमें जा पहुंचते हैं और वहांपर जलजात पत्थर बन जाते हैं जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है। ऐसा अनुमान है कि पहले जलजात पत्थर बिलकुल न थे। जब द्रवरूपी पृथ्वी ठण्ढी हुई तब ऊपरकी पपड़ोपर आग्नेय पत्थर ही थे। लाखों वर्षोंके जलवायुकेद्वारा परिवर्तन पाकर वे अब परतोंमें मिलते हैं।

आग्नेय पत्थर भी कई रंगके पाये जाते हैं, एगेटकी रंगीन रेखाएँ बहुत सुन्दर लगती हैं। स्फटिकमेंसे प्रकाशके सात वा कुछ कम रंग देख पड़ते हैं।

हम कह आये हैं कि चकमक पत्थरोंके कण नदियोंमें बहते समुद्रकी तलीमें बैठके धसते हुए बहुत गहरेमें चले जाते हैं। वहांपर भीतरी उष्णताके कारण वे बिलकुल द्रव तो नहीं पर पिघलसे जाते हैं। यदि उन्हें अधिक उष्णता मिले तो वे गलके एकरस होकर आग्नेय पत्थर हो जावें और स्तर या पर्त नष्ट हो जावें। पर यथेष्ट उष्णता न मिलनेसे वे स्तरवाले पत्थर कुछ ही पिघलके रह जाते हैं। और उनके कण परस्पर अधिक सट या चिपक जाते हैं पर उनके पर्त नष्ट नहीं होते। गरम हो जानेसे उनमें चमक अधिक आजाती है। यदि उनके कण बुकनी किये जावें तो वे छोटे छोटे स्फटिक होंगे। ऐसे पत्थरोंको जिनमें पर्त भी नष्ट नहीं हुए और उष्णताके कारण जिनके कण परस्पर अधिक कड़ाईसे जकड़ गये हैं उन्हें परिवर्तित पत्थर कहते हैं। तेज़ चाकूकी धारसे खरोंचनेसे वे खुरचे जा सकते हैं। चकमकके समान वे कड़े नहीं होते पर जलजात या स्तरवाले पत्थरोंसे अधिक कड़े होते हैं। परिवर्तित पत्थरका अच्छा उदाहरण संगमरमर है। चूनेकी कंकड़ी दूसरा उदाहरण है। कार्ट्ज़ नामक पत्थर भी इसीका उदाहरण है।

यदि हम रेतीले पत्थरको अणुवीक्षण यन्त्र-

से देखें तो उसमें छोटे छोटे कांचके समान कण परस्पर चिपके हुए दिखायी देंगे। किसीमें ये कण बड़े होंगे और किसीमें छोटे होंगे। यदि हम उसपर नमकका तेज़ाब डालें तो पहले कुछ धुआं सा उठेगा। कणोंको जोड़नेवाला मसाला जो चूना और कारबनसे मिला था उड़ जायगा औ कार्ट्ज़ रह जायगा। उस-पर तेज़ाबका कुछ असर न होगा। रेतीले पत्थरोंमें रंगत देनेवाला पदार्थ आक्सिजन (ओषजन) वायु मिश्रित लोहा है। उसीके कारणसे कोई पत्थर लाल, कोई पीला और कोई हरा दीखता है।

कार्ट्ज़ पत्थरके कण सिलिकन नामक पदार्थ और ओषजन वायुके योगसे बने रहते हैं।
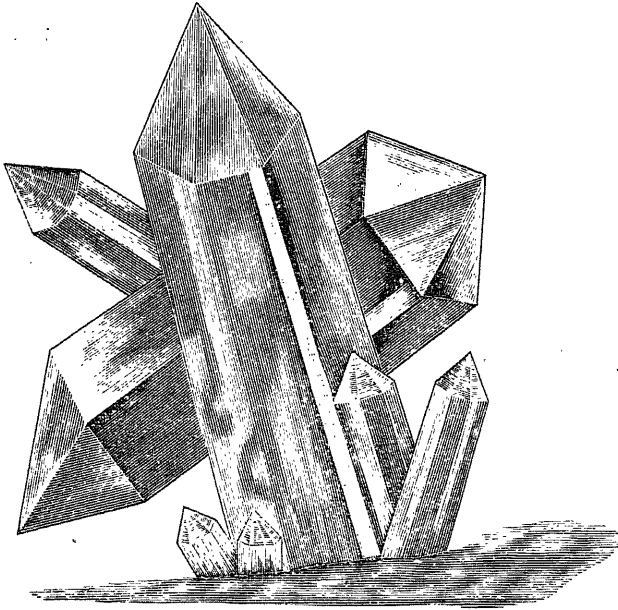
चित्र नं० ३
(Quartz) कार्ट्ज़ का स्फटिक

चूनेकी कंकड़ीमें चूनेका तत्व वा कैल-शियम ओषजन और कार्बन पाया जाता है। जब चूनेकी डलीको भट्टीमें जलाते हैं तब कार्बन निकल जाता है।

संगमरमर भी चूनेके पत्थरके समान होता है पर उसके स्फटिक अधिक चमकीले, स्वच्छ और छोटे दानेदार होते हैं। उसमें चूना और कार्बन होता है। परन्तु गरमीकी मात्रा अधिक पहुंचनेसे उसमें स्फटिक बनजाते हैं।

सेंधा नमक भी जलजात पत्थरका ही भेद है। उसमें सोडा और क्लोरीन पाया जाता है।

पत्थरका कोयला पत्थर नहीं है वह पत्थर-के समान कड़ा भर होता है। उसका मुख्य अंश कार्बन होता है। वह जंगलके जंगल भूमिके भीतर धसने और दब जानेसे लकड़ी काठ पत्ते काई आदिसे बनता है।

* ग्रेनाइटके टुकड़ेको लेकर हथौड़ेसे फोड़-कर देखें तो उसमें तीन प्रकारके पदाथ दीखेंगे, वे ये हैं-कार्ट्ज़, अबरक (वा अभ्रक) और फ़ेल्स्पर। कार्ट्ज़के स्फटिक कणोंका वर्णन ऊपर हो चुका है। अबरक पतले पर्तोंमें पाया जाता है। ग्रेनाइटमें फ़ेल्स्परका परिमाण प्रायः आधा होता है। उसमें अलूमिनम, ओषजन, सिलिकन, और केओलीन (छुही मिट्टी या चीनी मिट्टी) पाये जाते हैं। फ़ेल्स्पर पत्थरोंमें मिट्टीका भाग समझना चाहिए। जब पत्थर घुलता है तो और भाग रेत आदि हो जाते हैं और फ़ेल्स्पर मिट्टी हो जाता है।

ओषजन वायुका परिमाण पृथ्वीपर वहुत अधिक पाया जाता है। प्रायः सभी मिट्टी और पत्थरमें आधा भाग इसीका रहता है। बोझकी दृष्टिसे जलका आठ-नवमांश भाग ओषजन वायु ही है। पृथ्वीका दो-ततीयांश धरातल जलपूर्ण है तो उसमें कितना ओषजन होगा यह अनुमान किया जा सकता है।

*ग्रेनाइट आग्नेय पत्थर है।

चित्र नं० ४

सफ़ेद भाग अबरक है काला भाग फ़ेलस्पर हैं

श्वासकी शुद्ध वायुमें भी ओषजन वायु प्रायः एक पञ्चमांश होता है।

ओषजन वायुके अनन्तर सिलिकानकी पारी आती है। पृथ्वीका चतुर्थांश भाग सिलिकान ही है। चकमक वा आग्नेय पत्थरोंमें सिलिकान प्रायः आधा होता है।

यों पत्थरके तीन भेद (जलजात, आग्नेय और परिवर्तित) के मुख्य उदाहरण निर्देश किये गये हैं। *

ऊपर या नीचे ?

(एक गल्प)

[ले० अध्यापक निहाल करण सेठी, एम. एस-सी.]

जबसे संसारमें सभ्यताने मुँह दिखलाया और मनुष्यके साथ मनुष्यको संबंध रखनेकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी तभी से इस बातका प्रयत्न होता रहा है कि किसी उपायसे मनुष्य एक स्थानसे दूसरे स्थानतक बहुत शीघ्रतासे बिना अधिक परिश्रम और कष्टके जासके। इस कार्यकेलिए पहले तो पशुओं और गाड़ियोंका प्रयोग किया गया—फिर भाफ, बिजली आदिकी सहायता ली गयी और रेल, जहाज़ आदि निर्मित हुए। इनसे भी काम पूरा न होनेपर वायुयानकी रचना की गयी। परन्तु मनुष्यके चंचल मनको इतनेपर भी संतोष नहीं हुआ। अबतक केवल पृथ्वीके तलपर ही गमन करनेके उपाय सोचे गये थे। परन्तु दूरीको घटानेकी बात किसीके मनमें नहीं आयी थी। यह देखकर एक वैज्ञानिकने विचार किया कि दो स्थानोंका अंतर सीधी रेखाके मार्गसे ही सबसे छोटा होता है। इस सिद्धान्तके अनुसार यदि पृथ्वीमें सुरंग खोदकर मार्ग बनाया जाय तो अति उत्तम हो। पृथ्वी गोल है इस कारण सुरंगके रास्तेसे भारतवर्षसे अमरीका पहुंच जाना बहुत ही सरल होगा। क्योंकि एक रस्सेके सहारे मनुष्योंसे भरी हुई गाड़ीको लटकाकर कुएँकी सी सुरंगमें नीचे उतारना भर ही रह जायगा। नीचे उतारनेकेलिए कोई बल लगानेकी आवश्यकता भी न होगी। पृथ्वीकी आकर्षण शक्ति ही सब कार्य कर लेगी, न कोयलेकी आवश्यकता होगी न विद्युत्का काम रहेगा। बिना कौड़ी बिना दाम यात्री इधरसे उधर, उधरसे इधर पहुंच जावेंगे। इससे अच्छा और क्या उपाय हो सकता है? गणितसे हिसाब लगाकर भी देख लिया। केवल लगभग २२ मिनटमें यात्रा पूर्ण हो सकेगी। परंतु सुरंग खोद डालना सचमुच बहुत कठिन कार्य है। तो भी क्या हुआ, इससे संसारको बहुत लाभ होनेकी आशा है। यह विचारकर उसने कार्य आरम्भ कर दिया और कई वर्षोंतक लगातार सर्वोत्कृष्ट यंत्रोंकी सहायतासे उसने सुरंग तैयार कर ही तो डाली। उसे देखनेकेलिए लाखों स्त्री पुरुष भारतवर्ष और अमरीकामें आने लगे। परन्तु अभी किसीका इतना साहस न होता था कि उस राहसे जानेका विचार करे, दूरबीनसे वहाँका दृश्य देख देखकर वे आश्चर्ययुक्त होकर चले जाते थे।

---

* ऊपर के ब्लाक में "३" की जगह "के" पढ़िये।

General साधारण]

प्रकाश और मोहन भी देखने आये, प्रकाशने दूरबीनमेंसे देखा तो आश्चर्यसे चिल्ला उठा "वे लोग तो बिलकुल उलटे मनुष्य हैं-यह देखो उसकी टांगे तो ऊपर हैं और सिर नीचे है।"

मो०—अरे भाई ! यह चलता कैसे होगा ? यदि हम सिरके बल खड़े हों तो सारा लोहू सिरमें भर जावे।

प्र०—और उससे देखा भी तो नहीं जाता होगा। सारे शरीरका बोझ तो सिरपर ठहरा है, सिर घुमायेगा कैसे ?

मो०—परन्तु देखो तो सही-वह तो आनंदसे इधर उधर सिर हिलाता है।

प्र०—और ठीक जैसे हम हिलाते हैं, उसे तो कुछ कष्ट नहीं मालूम पड़ता।

मो०—यह लो वह ऊपरको देखने लगा।

प्र०—क्या ऊपर देखनेकेलिए सिर टांगोंके पास लाना पड़ता है ?

मो०—नहीं भाई, हम तो नीचेकी ओर देखते समय ऐसे झुकते हैं।

प्र०—न जाने कैसा मनुष्य है ! पर यह तो बताओ वह ठहरा किस वस्तुपर है ? उसके नीचे तो कुछ नहीं दिखलायी देता।

मो०-और जब वह चलता है तो ठीक हमारी ही तरह टांगे चलाता है।

प्र०—मैंने पहिले भी अमरीका-निवासियोंको देखा है, वे प्रयागमें आये थे। परन्तु वे तो ठीक हमारे ही ऐसे मनुष्य जान पड़ते थे।

मो०—भाई हमारी समझमें तो कुछ आता नहीं। इसीसे न पूछें ?

प्र०—हाँ हाँ ! चाचाजीने कहा था कि अमरीकाके लोग अंग्रेज़ी जानते हैं, अंग्रेज़ीमें बोलनेसे वह समझ लेगा, लो यह टेलीफ़ोन भी लगा है।

मो०—(टेलीफ़ोन उठाकर) हे महाशय, हे नीचेवाले महाशय, ज़रा ऊपरकी ओर देखिये।

प्र०—लो वह तो और नीचेकी ओर देखने लगा।

मो०—अरे भाई ऊपरको देखो, उधर नहीं।

प्र०—वह तो फिर भी नीचेको ही देखता है, कदाचित् वे लोग ऊपरको नीचे ही न समझते हों। उलटे ही तो हैं।

मो०—नहीं नहीं, जब अंग्रेज़ी जानता है तो ऊपर कहनेसे नीचे कैसे समझेगा ?

प्र०—देखो मैं पुकारता हूँ-(टेलीफ़ोन लेकर) महाशय ज़रा सुरंगमें तो झांकिये।

मो०-हाँ—अबके तो इधरको ही देखा।

इतनेमें टेलीफ़ोनमेंसे आवाज़ आई कौन है ? यदि सुरंगमें नीचे देखनेको कहते हो तो ऊपर ऊपर क्यों चिल्लाते हो ?

प्र०—भाई साहेब, आप इतने नीचे तो खड़े हैं। यदि आपसे ऊपर देखनेको न कहा जाय तो और क्या कहा जाय ?

अमरीका-निवासी—नीचे तो आप हैं। देखो न कितने गहरे कुएमें सिर नीचे और पांव ऊपर करके खड़े हैं, भला यह भी कोई बातचीत करनेका ढंग है।

मो०—देखो उलटा हमीको पागल बनाता है।

प्र०—आप तो महाशय बिलकुल उलटे मनुष्य जान पड़ते हैं, जो बात आप कहते हैं उलटी ही होती है। आप भूलते हैं, नीचे आप ही हैं और हम ठीक जैसे खड़ा होना चाहिए टांगोंके बल खड़े हैं। हमारे सिर ऊपर हैं, हाँ आप वास्तवमें नीचे सिर करके खड़े हैं।

अ०—क्या तुम्हें रतौंधी आती है ? रात है सही परन्तु बिजलीका तो इतना प्रकाश हो रहा है। क्या इसपर भी तुम्हें नहीं दिखलायी देता ?

प्र०—यह भी ख़ूब कहा, इस समय तो महाशय सूर्य सिरपर चमक रहा है। रात कैसी ? परन्तु इसमें आपका क्या अपराध है

अंधेरे कुएमें बैठकर रात दिनका पता क्या लग सकता है?

अ०—(नीचेकी ओर हाथसे संकेत करके) ज़रा ध्यानसे ऊपरकी ओर देखिये तारोंसे भरा आकाश क्या तुम्हें नहीं दिखलायी देता?

मो०—ऊपर कहता है तो नीचे देखना चाहिए। पर भाई यह क्या? सचमुच तारे तो दिखलायी दे रहे हैं।

प्र०—क्या तारे भी नीचे होते हैं? यह तारे नहीं और ही कुछ होंगे।

अ०—कौन कहता है कि नीचे होते हैं। अजी यह तो सिरके ऊपर हैं। क्या तुम इनमें-से किसी तारेको पहचान नहीं सकते? ख़ैर न सही चन्द्रमाको तो पहचानते होगे?

प्र०—अहा, यह क्या तमाशा है। भाई विश्वास नहीं होता परन्तु तनक आप भी तो इधर देखिये।

अ०—(आंखोंके आगे हाथ धरकर) नीचे कुएँमें सूर्य? क्या कोई दूसरा सूर्य है?

प्र०—तो कदाचित् तारे और चांद भी दूसरे होंगे। ख़ैर यह किसीसे पूछेंगे, परन्तु हो तो तुम नीचे ही?

अ०—तुम्हें कैसे समझाऊं? जो नीचा होता है वह स्वभावसे ही अपने आपको सबसे ऊंचा समझता है।

प्र०—यह बात तो तुम ही चरितार्थ कर रहे हो।

अ०—लो तुम्हें और प्रमाण देता हूं। देखो गेंद ऊपरको उछालता हूं। वह थोड़ा ऊपर जाकर गिर पड़ती है और फिर मेरे हाथमें आ जाती है। क्या नीचे फेंककर गेंदको फिर पकड़ सक्ते हो?

मो०—हैं! यह क्या हुआ? गेंद तो आपही आप ऊपरको आने लगी।

प्र०—मालूम होता है कि आपके पास चुम्बक है और गेंद लोहेकी बनी है इससे ही खिंच आती है।

अ०—(झुंझलाकर) पर तुम्हारे पास तो चुम्बक नहीं है लो नीचे ही गिरा देता हूं।

मो०—अद्भुत गेंद है, ऊपर ही चली आ रही है।

प्र०—देखें कहांतक आती है?

मो०—२० मिनटसे अधिक तो हो चुके अभी आ ही रही है-लो यह तो बिलकुल हमारे पास ही आ गयी। लो मैंने पकड़ भी ली!

अ०—(घबराकर) इसे पकड़ना मत बहुत चोट लगेगी।

प्र०—नहीं कुछ चोट नहीं लगी। यह तो बहुत धीरे धीरे आ रही थी।

अ०—झूठ बोलते हो परन्तु मुझे क्या, चोट लगी भी होगी तो तुम्हें लगी होगी। अब तो समझे कि तुम नीचे हो।

प्र०—यह नहीं हो सक्ता--ठहरो ज़रा सोचलें।

मो०—यह तो क्रिकेटकी गेंद है लोहेकी नहीं।

प्र०—ऊपर कैसे चली आयी? ज़रा ऊपर उछालो तो। लो यहांकी गेंदें जैसे गिरती हैं ठीक उसही तरह यह तो नीचे गिर पड़ती है।

मो०—ज़रा सुरंगमें डालकर देखें।

प्र० वह देखो नीचे चली। (अमरीका-निवासीसे) लीजिये आपकी गेंद वापस करते हैं।

अ०—अजी पागल हुए हो? कहां उतनी ऊंची तुम फेंक सक्ते हो?

प्र०—देखिये तो।

मो०—चली तो जा रही है है, शायद उतनी ही देरमें उसके पास पहुंच जायगी।

प्र०—ठीक, लो अब पहुंच गयी (अमरीका-निवासीसे) क्यों महाशय, आपकी हो गेंद है न?

अ०—हां है तो, परन्तु तुमने इतनी ऊंची कैसे फेंक दी?

प्र०-हमने तो कुछ नहीं किया, केवल यहां-से छोड़ दी थी।

मो०-यह तो अद्भुत खेल है, यहाँसे छोड़ी वहां पहुंच गयी, वहां से छोड़ी यहां आ गयी !

प्र०-अच्छा तो इस ही तरह लोग यहां से अमरीका जावेंगे और वहांसे यहां भी आजावें-गे। अब मालूम हुआ। इतने दिन यह तो मालूम था कि यहांसे लटका कर लेगोंको अमरीका पहुंचा देंगे परन्तु हम जो समझते थे कि वहांसे यहां मनुष्योंको यंत्रद्वारा खींचकर ऊपर लाना होगा वह ठीक नहीं। केवल वहांसे छोड़ देनेसे ही काम बन जागगा।

मो०—परन्तु यह भेद समझमें नहीं आया।

अ०—तुमने आज मुझे बड़े चक्करमें डाल दिया है। जो प्रमाण देता हूं ठीक वही तुम भी दे देते हो। मालूम होता है तुम भी सच्चे हो और मैं भी सच्चा हूँ तुम भी ऊपर हो और मैं भी ऊपर हूं।

प्र०—यह कैसे हो सक्ता है? ख़ैर चाचाजी-से कहेंगे वे कदाचित् कुछ बतला सकें। प्रणाम।

यह कहकर प्रकाश और मोहन दोनों चले गये। घर जाकर चाचाजीसे सब वृत्तान्त कहा। वे सुनकर हंसे और कहने लगे।

चा०—बहुत अच्छा किया जो तुमने यह सब देख लिया। अब तुम्हारी समझमें मैं जो बतलाना चाहता था बहुत शीघ्र आ जायगा। प्रत्येक वस्तु पृथ्वीपर गिर पड़ती है, यह सब कोई जानते हैं, परन्तु क्या तुम जानते हो कि वह क्यों गिर पड़ती है ?

प्र०—नहीं चाचाजो, केवल इतना ही जानते हैं कि भारी होनेसे गिर पड़ती है।

चा० इसका कारण यह है कि पृथ्वीमें आ-कर्षण शक्ति है। इस शक्तिके द्वारा पृथ्वी वस्तुको अपनी ओर खींच लेती है। जैसे चुम्बक सुईको अपनी ओर खींच लेता है। अंतर इतना ही है कि चुम्बक केवल लोहेको ही खींच सकता है और पृथ्वी सब वस्तुओंको अपनी ओर खींच लेती है। यहां भी खींचती है और अमरीकामें भी।

मो०—हां, यह तो सब जानते हैं कि वस्तु अमरीकामें भी पृथ्वीपर गिरती है।

चा०—फिर गेंदको तुम्हारी ओर आते देख तुम्हें आश्चर्य क्यों हुआ ?

प्र०—वह तो ऊपरको आ रही थी।

चा०—तुम्हें यह तो ज्ञात है कि पृथ्वी गोल है ?

मो०—हां चाचाजी, नारंगीके समान।

चा०—और तुम यह भी जानते हो कि जिस ओर भारतवर्ष है ठीक उसके दूसरी ओर अमरीका है।

प्र०—तभी तो सुरंग नीचेकी ओर खोदनेसे अमरीकामें जा निकली।

चा०—जब वस्तु वहां पृथ्वीकी ओर गिरेगी तब तुम्हारी ओर आवेगी या नहीं ?

मो०—हां चाचा जी, यह तो स्पष्ट ही है। फिर भाई वह गेंद हमारी ओर क्यों न आती ?

प्र०—पृथ्वीके केन्द्रतक तो उसे आ जाना चाहिये था। उसके बाद फिर वह पृथ्वीकी ओर नहीं आरही थी।

चा०—यह कोई कठिन बात नहीं है। बहुत ऊंचेसे जब कोई वस्तु गिराते हैं और वह नीचे पहुंचती है तब उसमें कितना वेग होता है और वह उसके वेगको रोकनेवाली वस्तुको कैसा धक्का लगाती है। जब साधारण ऊंचाईकी यह दशा है तो जो वस्तु अमरीकासे पृथ्वीके केन्द्रपर ४००० मील ऊंचेसे गिरेगी उसका वेग केन्द्रतक पहुंचकर कितना अधिक होजायगा यह समझ लेना कठिन नहीं। इतने वेगसे चलनेवाली वस्तु क्या वहीं ठहर जायगी ? हाथके बलसे गेंदको ऊपरकी ओरको वेग दे देनेसे वह ऊपर चली जाती है। हाथसे छूटते ही गिर तो नहीं पड़ती, इसही प्रकार वह गेंद केन्द्रपर नहीं ठहर सकती थी। तुम्हारे पास आकर उसका वेग कम हुआ,

इससे ही तुम्हारे पकड़ लेनेपर भी चोट नहीं लगी, यदि न पकड़ते तो फिर वह वापस चली जाती और अमरीका पहुंच जाती।

प्र०—तो क्या घड़ीके लटकनकी भांति सदा चक्कर लगाया करती ?

मो०—यदि कोई मनुष्य ऐसे चक्करमें फँस जावे तो बड़ी मुश्किल हो।

प्र०—यदि वे लोग जो गाड़ियां उस सुरंगमें-से भेजेंगे उनके रोकनेका प्रबंध न रखेंगे तो उन गाड़ियोंकी भी यही दशा होगी।

मो०—तो चाचाजी, इस हिसाबसे तो अमरीकावालोंका नीचा और हमारा नीचा बिलकुल उलटे हुए। जो उनका नीचा है वह हमारा ऊपर है, जो उनका ऊपर है वह हमारा नीचा है।

प्र०-भाई इससे तो कहना चाहिए कि नीचे ऊपर कोई दिशायें हैं ही नहीं।

चा०-वास्तवमें ऐसा ही है जिधर वस्तु गिरती है उधरको ही नीचा कहते हैं, उसके विपरीतको ऊपर, चाहे किधर भी हो।

मो०-तो नीचे ऊपरशब्दोंका प्रयोग ही न करना चाहिए। नीचेके स्थानमें कहना चाहिये "पृथ्वीकी ओर"।

प्र०-यदि ऐसा करते तो आज इतना झगड़ा ही क्यों होता ? वास्तवमें वह भी ऊपर था और हम भी ऊपर, वह भी सच्चा था और हम भी सच्चे थे।

चा०-और क्या।

विद्युद्घंटा अथवा बिजलीका घण्टा

[ले० वी० एस० तम्मा, एम० एस० सी०।]

भूपाल-भाईजी, कल सुबह मैं हेडमास्टर साहिबसे मिलने गया था। जब मैं उनके बंगलेपर पहुंचा लगभग आठ बजे थे। बाहर नौकर न होनेके कारण मुझे यह चिन्ता हुई

Physics भौतिकशास्त्र]

कि अपने आनेकी ख़बर भीतर कैसे पहुंचाऊँ। मैं इसी विचारमें थोड़ी देर इधर उधर टहल रहा था, इतनेमें ही और एक महाशय उनको मिलनेकेलिए वहां आये। बाईसिकलसे उतरते ही वे महाशय सीधे बरांडेमें चले गये और दरवाज़ेके पास एक गोल लकड़ीमें लगे हुए बटनको दबाया थोड़ी ही देरमें नौकर बाहर आया और उनके आनेकी ख़बर देकर उन्हें भीतरले गया। कुछ देर बाद मैं भी मास्टर साहिबसे मिलकर वापिस घर चला आया, पर यह बात मेरे समझमें बिलकुल नहीं आयी कि वह नौकर बिना बुलाये बाहर कैसे आया। भाईजी यह तो बतलाइये कि बटनके दबाने और नौकरके आनेमें कुछ सम्बन्ध तो नहीं था, वा नौकर अचानक ही बाहर निकल पड़ा ?

गोपाल—तुम्हारा अनुमान बिलकुल ठीक था उस बटनके दबानेसे ही नौकर बाहर आया।

भूपाल—यह कैसे ? बटन तो बाहर दीवार में लगा था, नौकर तो भीतर काम करता होगा, बटनके दबानेका ज्ञान नौकरको कैसे हुआ ?

गोपाल—उस बटनके दबानेसे भीतर घण्टी बजने लगी। घण्टीकी आवाज़ सुनते ही नौकर यह जान गया कि बाहर कोई आया है।

भूपाल—घण्टी ! बटनके दबानेसे घण्टी ! घण्टी तो कोई मनुष्य हाथमें लेकर बजावे तो बजती है, बटनके दबानेसे ही घण्टी कैसे बजने लगी ?

गोपाल—घण्टीको हाथमें लेकर ही बजानेकी कोई आवश्यकता नहीं है मानो एक घण्टी घ दीवारसे टंगी है उसीके पास उसका लट्टू ल भी इस प्रकार टंगा है कि घण्टी और लट्टू एक दूसरेसे लगे हैं। लट्टूके दूसरे सिरेपर एक स्प्रिंग स लगा है और स्प्रिंगके दूसरे छोरपर एक बटन ब लगा है अब यह सोचो कि बटन खींचनेसे क्या होगा ?
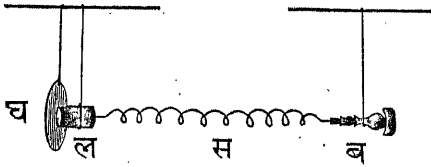
चित्र नं० १

भूपाल—बटनके खींचनेसे स्प्रिंगके साथ लट्टू भी खिंचेगा।

गोपाल—यदि बटन खींचकर छोड़ दें तो क्या होगा?

भूपाल—हां, अब तो मैं समझा बटन छोड़ते ही लट्टू वापिस जाकर घण्टीपर पड़ेगा और घण्टी बजेगी। पर यह तो बतलाइये कि मास्टर साहिबके यहां लगे हुवे बटनके साथ भी क्या ऐसी ही कुछ व्यवस्था थी? नहीं, ऐसा तो नहीं जान पड़ता क्योंकि वहां तो महाशयजीने बटन दबाया था।

गोपाल—वहांकी व्यवस्था इतनी सरल नहीं थी परन्तु इन दोनोमें जो भेद तुमने पाया है वह कोई विशेष भेद नहीं है।

भूपाल—क्या बटनके खींचने और दबानेमें कोई भेद ही नहीं है?

गोपाल—ड एक डण्डी है जो उस अक्ष (axis) के चारो ओर घूम सकती है जो इस पृष्ठसे समकोण बनाता हो। मानलो क उस अक्षपरका एक विन्दु (point) है। मानलो हमारा बटन ब इस डण्डीके एक सिरेपर लगा है और लट्टूमें लगा हुआ तार ल दूसरे छोरपर हो तो यह बतलाओ कि बटनके दबानेसे क्या होगा?

भूपाल - डण्डीके ऊपरका भाग बांई ओर और नीचेका दाहिनी ओर सरकेगा और साथ ही साथ तार भी खिंचेगा।

ब
क
ड
ल
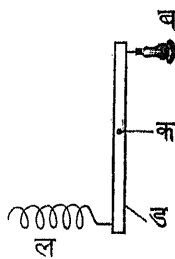
चित्रनं० २

गोपाल—बटन छोड़ते ही घण्टी भी बजेगी।

भूपाल—यह तो ठीक है पर यह बतलाइये कि हेडमास्टर साहिबके यहांकी व्यवस्था कैसी थी?

गोपाल—वहांपर भी एक घण्टी भीतर टंगी है। परन्तु उसका लट्टू उससे लगा हुआ नहीं है। बटनके दबानेसे लट्टू घण्टीकी ओर खिंचता है और घण्टी पर पड़ते ही घण्टी बजती है

भूपाल—यह तो मेरे समझमें बिलकुल नहीं आता कि बटनके दबानेसे घण्टीकी तरफ़ लट्टू कैसे खिंचता है।

गोपाल—तुमने कभी लोह चुम्बकका नाम सुना है?

भूपाल—हां चुम्बक तो मैं अच्छी तरह जानता हूं। चुम्बक तो उस लोहेको कहते हैं जिसमें लोहेको अपनी ओर खींचनेकी शक्ति होती है। एक गुण उसमें और भी यह होता है कि यदि वह किसी डोरेसे लटकाया जावे तो उत्तर दक्षिण दिशाओंको दिखाता है।

गोपाल—क्या तुमने लोहेको अपनी ओर खींचनेकी शक्ति और किसी वस्तुमें भी देखी है?

भूपाल—नहीं, सिवाय चुम्बकके और कोई वस्तु मुझे ज्ञात नहीं है।

गोपाल—यह गुण अन्य वस्तुओंमें भी देखा गया है। उदाहरणार्थ जिस किसी वस्तुमें बिजलीका प्रवाह होता है उस वस्तुमें यह शक्ति दिखायी देती है। यदि किसी तांबेके तारको लेकर उसे किसी गोल डण्डीपर लपेटें और उसमें बिजलीका प्रवाह करावें तो लिपटा हुआ तारका रील चुम्बककी नाईं लोहेको खींचता है। विशेष यह है कि यदि इस रीलमें लोहे (नरम) की सींके भर दी जावें तो यह आकर्षण शक्ति बहुत बढ़ जाती है। इसी गुणके कारण इस तरह लिपटा हुआ तारका रील विद्युत्-चुम्बक कहलाता है।

भूपाल—भाईजी आपने बिजली और उसके प्रवाहके विषय बहुत कुछ कहा पर मैं यह बिलकुल नहीं समझा कि आप बिजली किसे कहते हैं। बिजली तो तब चमका करती है जब वर्षा-ऋतुमें काली काली घटा छाकर पानी बरसता है। मैंने तो यह सुना है कि जब कड़ड़ड़ आवाज़ होकर जहां कहीं बिजली गिरती है वहां आसपासकी सब वस्तुएं जलकर भस्म हो जाती हैं। ऐसे प्रखर बिजलीका प्रवाह तांबेके तारमें किसत रह उत्पन्न किया जा सकता है।

गोपाल-यह तो सच है कि जब वायुमण्डलकी बिजली पड़ती है तब बड़े बड़े अनर्थ होते हैं परन्तु वैज्ञानिकोंने यह बात सिद्ध की है कि जिस प्रकारकी बिजली वायुमण्डलमें उपस्थित है उसी प्रकारकी बिजली साधारण वस्तुओंमें भी बड़ी सुगमतासे उत्पन्न की जा सकती है। परीक्षासे यह मालूम हुआ है कि बिजली दो प्रकारकी होती हैं। उन्हें व्यवहारमें + और— चिन्होंसे व्यक्त करते हैं। जब किसी दो वस्तुओंका आपसमें घर्षण होता है तब उन दोनोंमेंसे एक में + और दूसरेमें-बिजली उत्पन्न होती है, और यदि ऐसी भिन्न भिन्न प्रकारके बिजलीसे युक्त वस्तुएं किसी तांबेके तारसे जोड़ दी जावें तो उस तारमें बिजलीका प्रवाह होने लगता है।

भूपाल—परन्तु यह कैसे जान पड़ती है कि किसी तारमें बिजलीका प्रवाह हो रहा है?

गोपाल—भिन्न भिन्न प्रकारकी बिजलीसे युक्त वस्तुओंको जोड़ने वाले तारमें बिजलीका प्रवाह इतनी थोड़ी देर होता है कि उसका जानना कुछ कठिन है क्योंकि तारसे जुड़ते ही + और-बिजलीका मेल होकर तुरन्त साधारण विद्युत्शून्य (स्थिर) अवस्था प्राप्त हो जाती है। परन्तु जितनी देरमें वह स्थिर अवस्था प्राप्त होती है उतने ही अवकाशमें यदि किसी अन्य घटनासे उतने ही + और—बिजली फिर उन वस्तुओं में पैदा हो जावे तो यह सम्भव है कि तांबेके जोड़नेवाले तारमें कुछ कालतक प्रवाह लगातार होता रहे। ऐसी दशामें विद्युत्के प्रवाहका जानना कुछ कठिन नहीं है।

भूपाल—क्या इस प्रकारकी घटनाएं भी उपलब्ध हैं?

गोपाल—अवश्य उपलब्ध हैं। शुद्ध जस्तेके टुकड़ेको पानी मिला हुआ गंधकका तेज़ाब नहीं खाता (गलाता) परन्तु यदि किसी कांचके प्यालेमें पानी मिला हुवा गंधकका तेज़ाब लेकर उसमें एक जस्तेका और एक तांबेका टुकड़ा इस तरह डुबावें कि वे एक दूसरेसे अलग हों और फिर इन दोनों टुकड़ों को एक तांबेके तारसे बाहर ही बाहर जोड़ें तो इस तारमें बिजलीका प्रवाह होने लगता है, और साथही साथ जस्तेमें तेज़ाब घुलने लगता है। इस प्यालेको विद्युत् प्रवाहोत्पादक पात्र कहते हैं। जिस किसी तारके दोनों छोर इन तांबे और जस्तेके टुकड़ोंसे जोड़े जाते हैं उसी तारमें प्रवाह होने लगता है।

भूपाल—पर भाई साहब आपने बिजलीके प्रवाहकी पहिचान तो बतलायी ही नहीं।

चित्र नं० ३

गोपाल—जिस तारमें बिजलीका प्रवाह हो उसके समीप यदि दिशासूची चुम्बककी सुई (Compass needle) लायी जावे तो सुई उत्तर दक्षिण नहीं दिखाती और अपने स्थानसे घूम जाती है, और इसी विशिष्ट गुणके कारण मैंने तुम्हें बतलाया था कि जब किसी वस्तुमें बिजलीका प्रवाह होता हो तो उसमें चुम्बकके गुण आजाते हैं।

भूपाल—दिशासूची सुईके घूमनेसे हम कैसे जानें कि बिजलीका प्रवाह होनेवाले तारमें चुम्बकके गुण उत्पन्न हो गये हैं?

गोपाल—यह तो बहुत सरल है। तुम जानते ही होगे कि दिशासूची सुईके पास दूसरे चुम्बकके लानेसे सुई घूमती है।

भूपाल—यह तो मैं जानता हूं।

गोपाल—अब देखो, जैसे कि चुम्बकके समीप दिशासूची सुई घूमती है उसी प्रकार बिजलीका प्रवाह होनेवाले तारके समीप भी घूमती है क्या इससे हम यह अनुमान नहीं कर सकते कि चुम्बक और बिजलीका प्रवाह होनेवाले तारमें कुछ विशिष्ट गुण एकसे हैं ?

भूपाल—ऐसा तो जान पड़ता है पर हम तो अपनी घण्टीके विषयसे बहुत दूर चले आये हैं।

गोपाल—नहीं नहीं अभी जिन बातोंकी चर्चा हुई है वे सब बातें घण्टीसे निकट सम्बन्ध रखती हैं।

भूपाल—कृपाकर यह सम्बन्ध मुझे ठीक ठीक समझाइये।

गोपाल—यह तो तुम्हें याद ही होगा कि विद्युत् चुम्बक किसे कहते हैं।

भूपाल—हां, लोहेकी सींकोपर लिपटे हुए तांबेके तारके रीलको कहते हैं।

गोपाल—हेडमास्टर साहिबके यहां बटनके दबानेसे जो घण्टी बजी थी उसमें भी एक विद्युत्चुम्बक होता है। वह एक लकड़ीके टुकड़ेपर लगा रहता है। आकृति (४) उसी घण्टीका चित्र है। व व विद्युत्-चुम्बक है। इस चुम्बकके समीप ही एक लोहेकी पट्टी प लगी है जो कि पेंचोंसे एक स्प्रिंग स के द्वारा लकड़ीमें लगे हुए दूसरे लोहेके टुकड़े ट से बंधी है। इसी पट्टीके दूसरे सरेपर लट्टू ल लगा है। इसी विद्युत्चुम्बकके नीचे लकड़ीमें साइकिलकी घंटीकी सदृश एक घंटी घ लगी है। स्प्रिंगके दूसरे छोरके पास एक पेंच ब इस तरह लगा है कि स्प्रिंगके छोर और पेंचके सिरेमेंका अन्तर कम ज़्यादा किया जा सकता है। क और ख घण्टीके दो छोर हैं।

चित्रनं० ४

वव–विद्युत चुम्बक, प–लोहे की पट्टी, स–स्प्रिंग, ब–पेंच, घ–घण्टी, ल–लट्टू, क ख–तार के छोर, ट–लोहे का दूसरा टुकड़ा।

विद्युत्चुम्बकपर लिपटे हुए तारका एक सिरा क से जुड़ा है। पेंच ब एक तारके द्वारा ख से जुड़ा है। स्प्रिग से पेंच ब का छोर प्रायः मिला दिया जाता है। [या इतने फ़ासलेपर रखा जाता है कि पेंच और स्प्रिगमें विद्युत् प्रवाह होता रहे।] यदि अब बटन दबाया जाय तो बिजलीका प्रवाह तारमेंसे स्प्रिग और स्प्रिगसे पेंच ब और वहाँ से ख को जोड़नेवाले तारमें होने लगेगा। प्रवाहके होते ही लोहेकी पट्टीको चुम्बक खींचता है। पट्टीके खिंचते ही लट्टू घण्टीपर पड़ घण्टी बजती है। आकृति (५) भी उसी घण्टीका चित्र है।

भूपाल-इस घण्टीके चित्रको तो मैंने समझा पर इस चित्रमें बटनका तो नाम ही नहीं और

चित्र नं० ५

आप कहते हैं कि बटनके दबानेसे बिजलीका प्रवाह होने लगेगा।

गोपाल-यह चित्र तो उस घण्टीका ही है जो कि हेडमास्टर साहिबके यहाँ भीतर लगी थी। बटन तो बाहर लगा था। बटनमें दो पीतलके टुकड़े एक दूसरेसे अलग होते हैं। घण्टीका एक छोर क् तारके द्वारा विद्युत् प्रवाहोत्पादक पात्रके एक छोरसे बंधा होता है। इस पात्रका दूसरा छोर बटनके एक टुकड़ेसे बंधा होता है। घण्टीका दूसरा छोर ख् बटनके दूसरे टुकड़ेमें बंधा रहता है। आकृति (६) देखनेसे यह
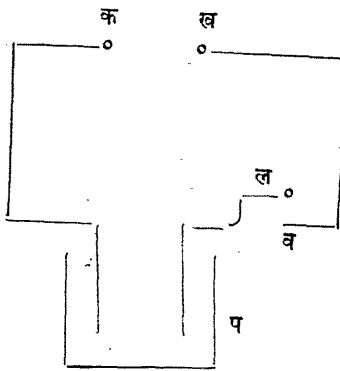
चित्रनं० ६

तुम्हें मालूम होगा कि बटनके दबाने से प्रवाह घण्टीके चित्रमें कैसे शुरू होगा।

बटनका सिरा ब जबतक नहीं दबता क् और ख् से विद्युत्प्रवाहोत्पादक पात्रके दोनों छोरोंका स्पर्श नहीं होता, इसीसे घण्टीमें विजलीका प्रवाह नहीं होता। उसके दबाते ही ल् का व् के साथ स्पर्श होकर प्रवाह विद्युत्-चुम्बकमें होने लगता है।

यह ठीक है जैसे ही प्रवाह शुरू होता है पट्टी चुम्बककी ओर खिंचती है और पट्टीमें लगा हुवा स्प्रिंग पेंच ब् से दूर होकर प्रवाहको रोक देता है।

भूपाल-इस तरह तो घण्टी एक ही बार बजेगी।

गोपाल-नहीं, प्रवाहके रुकतेही चुम्बक पट्टीको अपनी ओर खींचनेमें असमर्थ होता है और स्प्रिंगके बलसे पट्टी फिर वापिस जाती है और स्प्रिंगका स्पर्श पेंच ब् से होकर प्रवाह फिर शुरू होता है। इस तरह प्रवाहके साथ लट्टू घण्टीकी ओर और प्रवाहके रुकते ही घण्टीसे परेको जाता है और घण्टी लगातार बजती है, [जबतक कि बटन दबा रहेगा]

भूपाल—यदि बटन दबाकर छोड़ दें तो ल_ व_ से अलग होकर घण्टी बजना बन्द हो जावेगा।

गोपाल—ज़रूर बन्द हो जावेगा। परन्तु ऐसी व्यवस्था भी की जा सकती है कि जिससे बटन दबाकर छोड़नेसे भी घण्टी बजती रहेगी।

भूपाल—यह व्यवस्था तो अत्यन्त मनोहर है, इससे तो बिना पुकारे ही किसीको बुला सकते हैं।

गोपाल—सिर्फ़ बुलाना ही क्या वरन् ऐसी भी व्यवस्थाएं उपलब्ध हैं जिनसे हम लोग मीलों दूरपरसे भी आपसमें बातचीत कर सकते हैं।

भूपाल—इन व्यवस्थाओंके जाननेकी तो मुझे बड़ी उत्कट इच्छा है।

गोपाल—आज तो इस बिजलीके घण्टापर मनन करो कल तुम्हें इन व्यवस्थाओंको समझावेंगे।

अणु और परमाणु

अणु और परमाणुओं का सम्बन्ध क्या है?

[ले० अ० गोपालस्वरूप भार्गव, एम्. एस-सी.]

परमाणुओं* के, किसी निश्चित संख्यामें, मिलनेसे अणुओंकी रचना होती है। पदार्थोंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म अर्थात् छोटेसे छोटा भाग जिसमें उस पदार्थके गुण विद्यमान हों अणु कहलाता है। यदि इससे अधिक छोटे हिस्से किये जायँ तो वह परमाणु कहलायेंगे परन्तु उनमें प्रायः पदार्थके गुण नहीं मिलेंगे। उदाहरणतः पानी लीजिये। इसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भागको (अणुको) अधिक छोटे हिस्सोंमें विभाजित कीजिये, तो प्रत्येक अणुसे दो उज्जनके परमाणु और एक अम्लजनका परमाणु प्राप्त होगा। इन परमाणुओंमें पानीके गुण कहां हो सकते हैं।

अब किसी मूलतत्वका अणु ले लीजिये, जैसे उज्जनका। प्रायः मूल तत्वोंके भी परमाणु मिलकर अणु बनालेते हैं, वे स्वतन्त्र नहीं रह सकते। प्रयोगोंद्वारा सिद्ध हुआ है कि उज्जनकेपरमाणुओंमें उसके अणुओंसे भिन्न गुण होते हैं। इस विचारसे हम अणु और परमाणुओंकी परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं:—

'किसी पदार्थका अणु, उसका वह छोटेसे छोटा भाग है, जो प्रकृतिमें उस पदार्थके गुण लिए स्थित रह सकता है।'

'किसी पदार्थका परमाणु, उसका वह छोटेसे छोटा हिस्सा है जिसके और अधिक छोटे हिस्से नहीं हो सकते और जो रसायनिक प्रक्रियाओंमें शामिल होता है।'

यहांपर यह कह देना उचित है कि संयुक्त पदार्थोंके परमाणु नहीं होते, जिन परमाणुओंसे उनके अणु बनते हैं वह भिन्न भिन्न प्रकारके मूल-तत्वोंके होते हैं। संयुक्त पदार्थोंके अणुओंमें कई प्रकारके, परन्तु मूल-तत्वोंके अणुओंमें एक ही प्रकारके परमाणु होते हैं।

अणु भार और परमाणु भार

प्रत्येक पदार्थके परमाणु या अणुका भार निश्चित है। एक ही प्रकारके परमाणुओं या अणुओंका भार बराबर होता है, परन्तु भिन्न भिन्न प्रकारके परमाणुओं और अणुओंके भार भिन्न भिन्न होते हैं। उज्जनके सब अणुओंका भार बराबर है। उसके सर्व परमाणुओंका भी भार बराबर है। इसी प्रकार पानीके सब अणुओंका एक ही भार है।

अब प्रश्न यह है कि अणु भार और परमाणुभारमें कुछ सम्बन्ध भी है या नहीं। कई परमा-

*सामान्यतः हमारे यहां परमाणुका लक्षण स्थूल रीतिसे यों प्रसिद्ध है।

जालान्तरगते भानौ सूक्ष्मं यद्दृश्यते रजः।
तस्य षष्ठितमो भागः परमाणुः स उच्यते॥

श्री० पा०

णुओंके संग्रहको अणु कहते हैं, इसलिए यह स्पष्ट है कि किसी भी अणुका भार, उसके अंगी परमाणुओंके भारोंका योगफल होगा।

क्या अणु या परमाणु तोले जा सकते हैं ?

ऊपरके परिच्छेदमें हमने अणुभार और परमाणुभारका कथन किया, परन्तु क्या वास्तवमें अणु या परमाणु तोले जा सकते हैं ?

यह पाठकोंको ज्ञात होगा कि अणु औरपरमाणु बहुत ही सूक्ष्म होते हैं फिर भी इनका भार मालूम कर लेना कैसे सम्भव है ? इस विषयपर फिर कभी विचार किया जायगा। यहांपर इतनाही मान लेना चाहिये कि इनका आपेक्षिक भार निकाला जा सकता है। निरपेक्षिक भार निकालना बहुत ही कठिन है। हाईड्रोजिन अर्थात् उज्जन संसारके पदार्थोंमें सबसे हलकी वायु है। इसके ही परमाणुके भारको रसायनिक इकाई मानते हैं और इसीकी अपेक्षा औरोंके अणुभार निकालते हैं। अम्लजनका परमाणुभार १६ है, इसका अर्थ यह है कि अम्लजनका परमाणु उज्जनके परमाणुसे १६ गुना भारी है अब यदि हमें यह मालूम हो कि किसी पदार्थके अणुमें किस किस मूल-तत्वके कितने कितने परमाणु हैं तो उस पदार्थका अणुभार निकाल सकते हैं। उदाहरण नीचे दिये जाते हैं : -

(१) अम्लजनके प्रत्येक अणुमें उसके दो परमाणु होते हैं, परन्तु अम्लजनका परमाणुभार १६ है, इसलिए उसका अणु भार ३२ है।

(२) पानीके प्रत्येक अणुमें दो परमाणु उज्जनके और एक अम्लजनका होता है इसलिए पानीका अणुभार=२ × उज्जनका परमाणुभार + अम्लजनका परमाणुभार=२+१६ = १८।

यहांपर हमने यह मान लिया है कि हम यह मालूम कर सकते हैं कि किसी विशेष अणुमें किस किस भांतिके कितने कितने परमाणु हैं। इसके मालूम करनेकी रीतियां भी किसी समय बतलायी जायंगी।

अणु और परमाणु संकेत

ऊपर जहां कहीं हमको किसी पदार्थके परमाणु या अणुका ज़िक्र करना पड़ा है वहांपर हमें उनकी सूचना देनेकेलिए कई शब्दोंका प्रयोग करना पड़ा है जैसे उज्जनका अणु उज्जनका परमाणु। परन्तु इतने शब्दोंका बार बार प्रयोग करना, बोलने, लिखनेमें समय नष्ट करना है; इसलिए इनके सूचक संकेतोंका आश्रय लेना उचित है। मूल-तत्वोंके नामके पहिले अक्षर उनके स्मारक समझे जाते हैं जैसे हाईड्रोजिन (उज्जन) के परमाणुका कथन करना हो तो H या उ लिखेंगे, उसके अणुकेलिए H_2 या उ$_2$ लिखेंगे।

उ के नीचे दाईं ओर २ संख्या लिखनेसे यह अभिप्राय है कि हाईड्रोजनके दो परमाणु मिलकर एक अणु बनाते है। इसी प्रकार सो$_2$ क ओ$_3$ ($Na_2 CO_3$) लिखनेसे यह मालूम होता है कि सोडाके प्रत्येक अणुमें दो सोडियमके, एक कार्वनका और तीन ओषजनके परमाणु रहते हैं। यदि कई अणु लेने हों तो अणु-संकेत की बांई ओर संख्या लिखते हैं, जैसा $2 Na_2 CO_3$ से सोडाके दो अणुओंका बोध होता है। अब यह बात याद रखनी चाहिये कि H केवल हाईड्रोजिन परमाणुका ही सूचक नहीं माना जाता, किन्तु उसके परमाणु-भारका भी दर्शक है। इसी प्रकार Na, Cl, इत्यादिसे सोडियम, क्लोरीन, आदिके परमाणुओंका ही ज्ञान नहीं होता, वरन उनके परमाणु-भारोंका भी बोध होता है। अब यह देखना चाहिये कि $Na_2 CO_3$ से भारका बोध क्या होता है। Na सोडियम के परमाणु भार २३ का दर्शकहै, इसलिये Na_2 दो परमाणुओंका भार दिखलाता है अर्थात ४६, इसी प्रकार Na_2=४६, C =१२, O_3 =48। सोडाके एक अणुका भार उसके अवयवी

परमाणुओंके भारका योगफल होगा यानी उसका अणु भार ४६+१२+४८=१०६ है।

एक अणुमें कितने परमाणु होते हैं?

संयुक्त पदार्थोंके अणुओंमें परमाणुओंकी संख्या निश्चित नहीं, न उसका कोई नियमही है। इनके अणुओंमें परमाणुओंकी संख्या सहस्रोंतक पहुंच जाती है। परन्तु मूलतत्वोंके अणुओंमें बारहसे अधिक परमाणुओंके होनेका प्रमाण अभीतक नहीं मिला है। प्रायः धातोंके अणुमें केवल एक एक ही परमाणु रहता है, यानी उनके अणु और परमाणु एक ही होते हैं, उनमें कुछ भेद नहीं होता। वायवीय मूलतत्वोंके अणुओंमें प्रायः दो दो परमाणु पाये जाते हैं। दोसे अधिक बहुत कम मूलतत्वोंके अणुओंमें पाये जाते हैं। केवल फोसफोरसके अणुमें चार, गंधकके अणुमें ६, और कोयलेके अणुमें १२ पाये जाते हैं।

मूलतत्वोंसे संयुक्त पदार्थ कैसे बनते हैं?

कई मूलतत्वोंके परमाणुओंके, नियमानुसार मिलनेसे नये नये अणु बनते हैं। यही नये नये संयुक्त पदार्थोंके बननेका कारण है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि कोई दिया हुआ मूलतत्व, किसी विशेष मूलतत्वसेही रसायनिक संयोग कर सकता है अन्य मूलतत्वों से नहीं। इसका कारण पारस्परिक "रसायनिक" प्रीति कही जाती है। दो दिये हुए मूलतत्वोंकी पारस्परिक प्रीति निश्चित और स्थिर रहती हैं। यदि कभी वह बढ़ती या घटती भी है तो नियमित रीतिसे। अब प्रश्न यह उठता कि रसायनिक प्रीतिको नाप भी सकते हैं या नहीं। विज्ञानमें केवल किसी वस्तुको नाम दे देना ही काफ़ी नहीं होता। जबतक उस वस्तुकी तोल और नाप न की जा सके तबकक यह मानना चाहिये कि उस वस्तुका ज्ञान हमें हुआ ही नहीं। रासायनिक प्रीतिके नापनेकी विधि इस प्रकार कही जा सकती है :—

हाईड्रोजिनका एक परमाणु, क्लोरीनके एक परमाणुसे मिला करता है। परन्तु उसके तीन परमाणु नत्रजनके एक परमाणुसे मिलकर अमोनिया पदार्थका एक अणु बनाते हैं। अब यदि हम क्लोरीन और नत्रजनकी रासायनिक प्रीतियोंकी तुलना करना चाहें तो किस भांति कर सकते हैं। यह स्पष्ट ही होगा कि यदि हाइड्रोजिनके एक परमाणुसे मिलनेकी शक्तिको प्रीतिकी इकाई मानलें तो क्लोरीनकी रासायनिक प्रीति १ हुई और नत्रजनकी तीन। किसी पदार्थका एक परमाणु, हाईड्रोजिनके परमाणुओंकी जिस संख्यासे संयोग कर सकता है वह संख्या उस पदार्थकी परमाणुकग्रहण-शक्ति कही जाती है। इस ही शक्तिसे दो पदार्थोंकी रासायनिक प्रीतिका अनुमान किया जा सकता है।

परमाणुक ग्रहण-शक्तिमें परिवर्तन

यह न समझलेना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थकी एक ही परमाणुक ग्रहण-शक्ति होती है। इस शक्तिमें परिवर्तन भी होता है, परन्तु नियमानुसार। उदाहरण लीजिये कि हाईड्रोजिनके दो परमाणु ओषजनके एक परमाणुसे मिलकर पानीका एक अणु-बना लेते हैं। परन्तु हाईड्रोजिनके दो परमाणु ओषजनके दो परमाणुओंसे भी मिलकर एक दूसरे ही संयुक्त पदार्थका एक अणु बनालेते हैं। इस पदार्थका नाम हाईड्रोजिन परोक्साईड है। इन दो संयुक्तोंमें ओषजनकी परमाणुक ग्रहण शक्ति भिन्न भिन्न है। पहलेमें दो है परन्तु दूसरेमें एक।

संयोग भार

ओषजनकी संयोगशक्ति पानीमें दो है अर्थात् ओषजनके एक परमाणुके साथ उज्जनके दो परमाणु मिलते हैं। परन्तु हाईड्रोजिनका अणु-भार एक है, और ओषजनका सोलह। इसलिए यह कह सकते हैं कि उज्जनके दो भागोंके साथ ओषजनके १६ भाग मिलते हैं

या यह कि ओषजनके ८ भाग उज्जनके १ भागके साथ मिलते हैं। ८ ओषजनका संयोग-भार (पानीमें) हुआ। हाईड्रोजिन परोक्साईडमें ओषजनका संयोगभार सोलह है।

ऊपरके उदाहरणसे 'संयोगभार' का अर्थ अच्छी प्रकार स्पष्ट होगया होगा, उसकी परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं।

'हाईड्रोजिनके एक भागके साथ, किसी पदार्थकी जितनी मात्रा मिल सकतीहो, वह मात्रा उस पदार्थका संयोगभार कहलायेगी'।

यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि पदार्थोंके कई संयोग-भार हो सकते हैं।

संयोगभार और (परमाणुक) संयोग-शक्तिका पारस्परिक सम्बन्ध

मानलो कि किसी पदार्थका अणु-भार भ है और उसके एक परमाणुके साथ उज्जनके न परमाणु मिलते हैं

इस लिए उज्जनके एक परमाणुके साथ अर्थात् भ भारके साथ उज्जनके न परमाणु अर्थात् न भार मिलता है। इसलिए उज्जनके एक भागके साथ इस पदार्थका $\frac{भ}{न}$ भार मिलेगा परन्तु जैसा ऊपर कह आये हैं यह भार इस पदार्थका संयोग भार हुवा।

$$\therefore \text{संयोगभार} = \frac{भ}{न}$$

परन्तु इस पदार्थकी (परमाणुक) ग्रहण शक्ति = न

$$\therefore \text{संयोगभार} = \frac{\text{अणुभार}}{\text{ग्रहणशक्ति}}$$

$$\text{अणुभार} = \text{ग्रहणशक्ति} \times \text{संयोगभार}$$

नोट—इस लेख में हाईड्रोजिनके लिए उज्जन और ओक्सिजिनके लिए ओषजन या अम्लजन शब्दोंका प्रयोग हुआ है।

क्या संसार सचमुच मायामय है?

[ले० श्रीयुत गंगाप्रसाद वाजपेयी, बी. एस-सी.]

छोटेपनमें तिलकधारी पंडित या कौशम्बी बाबासे जब मेरी भेंट होती तो वे यही सुनाया करते थे "बचुआ यह संसार जिसे तुम देख रहे हो मिथ्या है। न कोई किसीकी मां है और न कोई किसीका बाप या बेटा। गाड़ी घोड़े महल मकान जिन्हें तुम अपना समझ रहे हो वास्तवमें कुछ नहीं है। यह सब भगवानकी माया है। यदि कुछ सत्य है तो वही है, यदि कोई चैतन्यशक्ति है तो वही है और यदि कोई वास्तविक आनंद है तो वही है। बस भैया संसारमें सच्चिदानंद ही सच्चिदानंद है, जिधर देखो नारायणकी मूर्ति ही दिखलायी पड़ती है"।

मैं इन बातोंको सुनकर बाबाजीकी मुंहकी ओर ताकने लगता था। मुझे उनकी ये बातें प्यारी तो बड़ी मालूम होती थीं पर जब कभी मा बापको मिथ्या बनाने लगते थे तो मुझे बड़ी ज़ोरसे रोना आ जाता था। बाबाजीको भी माया घेर लेती थी और वे बड़े चावसे मेरे आंसू पोंछ दिया करते थे और कभी कभी हाथमें पेड़ा देकर मुझे ढारस देने लगते थे।

बाबाजीकी सङ्गतके कारण मेरे हृदयमें सदा यह प्रश्न उठा करता था कि "संसार क्या सचमुच माया है?" आज मैं बढ़कर बांसके बराबर लम्बा हो गया हूं, तीन बेटे बेटियां नित्य सांझको मेरी जांघपर बैठ बाबा बाबा चिल्लाती हैं। मैं भी बड़े आनंदसे उन्हें गोदीमें लेकर ऊपर उछालने लगता हूं, पर कभी कभी इसी स्वर्गीय गार्हस्थ्य जीवनमें एकाएक मेरे हृदयसे यही प्रश्न उठ पड़ता है "क्या संसार सचमुच मिथ्या है?"

Chemistry रसायन शास्त्र

इस प्रश्नसे मुझे जो कुछ दुःख होता है पाठक शायद उसका अनुमान न कर सकें। इस मिथ्या संसारमें इस मिथ्या शरीरकी रचना किसने की? मिथ्या ढोंग बनानेवालेने मुझे क्यों पैदा किया? क्या मेरी जीवनलीला बस थोड़े ही दिनमें समाप्त हो जायेगी? मुझे ऐसे नाट्यकारकी नाट्य रचना पसंद नहीं आती, मैं कठपुतलियोंकी तरह बेबस किसी शक्तिसे नचाया जाना कभी पसंद नहीं करता, फिर यह सब ढोंग क्या और क्यों है? चार दिनके जीवनमें किसके लिए चिल्लाना और क्यों चिल्लाना? ऐसे न मालूम कितने प्रश्न इस मिथ्यावादके साथ उठने लगते हैं और मेरे प्रसन्न मुखपर दुःखकी छाया डाल जाते हैं।

थोड़े दिनोंसे मुझे एक दूसरी ही धारणा हो चली है। मेरा निश्चय हो गया है कि जिस शक्तिने यह ढोंग रचा है वह मुझमें विराजमान है। अज्ञानके अंधकारमें छिपा हुआ मुझमें एक ऐसा अक्षय ज्ञानभांडार भरा हुआ है जो महत्तम शक्ति-शाली है। आठों सिद्धि नवों निधि इसी महामंत्रके वशमें हैं। मैं बेबस नहीं हूं परन्तु कायरोंकी भांति बेबस बन रहा हूं। कृष्णने मुझे कर्मयोगका अनन्य भक्त बना रक्खा है। बिना लड़े झगड़े, मरे कटे यह अक्षय ज्ञान भांडार किसीके हाथ आनेवाला नहीं है। जो शक्ति समस्त संसारपर राज्य करती है वह मुझमें विद्यमान है। मेरी ही शक्ति अखिल ब्रह्मांडमें व्याप्त है। वह अनादि और अनन्त है उसका नाश होना असम्भव है।

यदि अब मुझे कौशाम्बी बाबा फिर मिलें तो मैं उनका चोला उतारकर फेंकदूं और उनसे कहूं बाबाजी जिसको ढूंढनेकेलिए आप संसार छोड़कर गुफामें बैठे रहते हैं वह तो साक्षात् आपही हैं; ज़रा अपने रूपको देखिये और चलिये संसारमें अपना बिकट तांडव नृत्य दिखलाइये। अपने धर्मसे पतित होनेके कारण कहीं आप संसारसे पतित न हो जायं?।

इन विचारोंने बाबाजीसे तो मुझे छुट्टी दिला दी पर अब महायोगेश्वर वैज्ञानिकोंने—जिनपर मेरी दिन दिन श्रद्धा बढ़ती जाती है—मेरे नाकों दम कर रक्खा है। मैं जब कभी उनके निकट जाता हूं देखता हूं कि पुरानी समस्याका अभी अन्त नहीं हुआ। वे गर्दन टेढ़ी किये यही सोचा करते हैं कि "क्या संसार सचमुच मिथ्या है"?। मुझे भी उनके पास बैठकर यही सोचना पड़ता है। पर अब ऐसे विचार करनेमें मुझे दुःख नहीं होता। इसके विपरीत मुझे तो उसमें एक महा अपूर्व आनंदका अनुभव होने लगा है। मेरा निश्चय है कि सइ समस्याके हल हो जानेपर मैं एक दीन कायर बनकर कसा गुफामें नहीं पड़ रहूंगा वरंच उन्नत शिर पृथ्वीके ऊपर एक विशाल शक्तिका स्वामी होकर विचरण करूंगा।

मेरी इच्छा है कि भारतवासियोंको बेतरह रुलानेवाले इस दुःखद प्रश्नका मैं हास्यमय रूप अपने पाठकोंको भेंट करूं। यदि इस लेखके पढ़नेके बाद वे फिर अंधी गुफाकी ओर सरकना प्रारम्भ कर दें तो इससे अधिक दुःखकी बात मेरे लिए और कोई नहीं हो सकती।

विज्ञानके विषम मार्गपर आरूढ़ अटल वैज्ञानिकोंने बहुतसी दूरी तय कर ली है। ये दृढ़ इच्छावाले योगेश्वर बड़ी बड़ी बाधाओंको तृणवत समझते हुए जिस आश्चर्य्यमय वेगसे एक शताब्दीके भीतर प्रकृति माताके रहस्योद्घाटनकी ओर बढ़े हैं उसकी समता संसारके इतिहासमें कहीं नहीं पायी जाती। परन्तु बीस वर्षसे रासायनिकोंके मार्गमें एक बड़ा कठिन प्रश्न आ पड़ा है, जिस कारणसे इनके प्रत्यक्ष वेगमें बहुत कुछ कमी आ गयी है। चलते चलते इन्होंने एक

ऐसी विचित्र घटना देखी है जिसने इन्हें चक्कर-में डाल दिया है। द्रव्योंके बनाने और बिगाड़नेवाले महाप्रलयकारी विद्युत्कण इनके दृष्टिगोचर हुए हैं जो एक अमूल्य और दुष्प्राप्य द्रव्य रेडियम नामकी धातुसे बने हुए मौलिक पदार्थोंकी मृत्युशय्यापर पाये गये हैं। इन्हींके जीवन मरणने जगन्मिथ्यावादको एक बार फिर जिला दिया है।

जर्मनी और कार्नवालकी पहाड़ियोंमें यूरेनियम धातुके कुछ संयुक्त खनिज (mineral) मिलते हैं। बीबी क्यूरीने बड़े प्रयत्नसे और घोर परिश्रमसे इस खनिजके २४३ मनके ढेरसे केवल एक तोलाके लगभग एक नयी धातुके संयुक्त पदार्थ १९०३ ई० में निकाले। ये पदार्थ रेडियम नामक तत्वके हैं और बहुधा लोग इन्हें रेडियम कहकर ही पुकारा करते हैं।

रेडियमके इन संयुक्त पदार्थोंकी बड़ी बड़ी अद्भुत लीलाएं देखनेमें आयी हैं। एक नलीमें कुछ रेडियम रक्खा था, क्यूरीने इस नलीको अपनी कपड़ेसे ढकी बांहपर कोई एक घंटा भर-तक रहने दिया। परिणाम यह हुआ कि हाथमें आग सी लग गयी, वह स्थान जहांपर नली रक्खी हुई थी फूल आया बड़े बड़े दाने पड़ गये और कोई तीन महीनेके औषधोपचारके बाद वह कहीं अच्छा हो सका। एक और विद्वान रैमज़ेने अनुसंधान द्वारा देखा तो उन्हें ज्ञात हुआ कि रेडियमके परमाणु टूटकर दूसरे तत्वोंके परमाणुमें बदल जाते हैं। रेडियमसे इस प्रकार-की निकलनेवाली किरणोंका अल्फ़ारेज़ ("अ" किरणें) नाम पड़ा।

कुछ विशेष अनुसंधान करनेपर मालूम हुआ कि रेडियमसे एक दूसरे प्रकारकी किरणें भी निकलती हैं। इन किरणोंका रोकना बड़ा कठिन है। जबतक कोई बहुत मोटी टट्टी इन किरणोंके सामने न रक्खी जावे तबतक वे अपने सामने-के पदार्थोंको बड़ी शीघ्रतासे पारकर जाती हैं। कड़ी रुकावटें बीचमें रखनेपर ये किरणें इन रुकावटोंमेंसे भी वैसेही निकलने लगती हैं जैसे रेडियमसे निकलती थीं। रेडियमके सामने रक्खे हुए शीशेके छड़में कुछ दिनों बाद रेडियमके समान गुण आ जाते हैं। इन किरणोंका नाम वैज्ञानिकोंने "ब" किरणें रक्खा।

यदि अंधेरे कमरेमें कहीं एक्स रेज़ बनती हों और हम रेडियमको हरे या बैंजनी रङ्गके प्रकाश देनेवाले परदेसे देखें, तो रेडियम उस समय बहुत प्रकाशमान हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि रेडियममें कुछ ऐसी किरणें हैं जो एक्सरेज़को सोख लेती हैं। इसके अतिरिक्त जिन रोगोंमें एक्सरेज़ फ़ायदा करता है, रेडियम भी उन्हें समूल नष्ट कर देता है। अतः रेडियम-में एक्सरेज़के समान एक और प्रकारको किरणें निकलती हैं। वैज्ञानिकोंने इनका नाम "ग" किरण रक्खा।

इन तीन प्रकारकी किरणोंमें "ब" किरणें ही बड़ी आश्चर्यजनक हैं। अनुसंधान द्वारा यह सिद्ध हो गया कि ये किरणें सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युत्कणों या एलक्ट्रनों से बनी हुई हैं। यदि किसी पदार्थके एक परमाणुको कल्पनासे कुतबमीनारके बराबर बड़ा मान लिया जाय तो उसमें सौ सवासौके लगभग विद्युत्कण होंगे और इन कणोंका रूप इस बढ़ी हुई दशामें भी एक विन्दुसे अधिक बड़ा न होगा। इससे स्पष्ट है कि एक विद्युत्कण कितना सूक्ष्म होगा। ये विद्युत्कण बड़ेसे बड़े वेगवान नक्षत्रोंसे तीन सौ गुना अधिक वेगसे चलते हैं। सबसे तीव्र जानेवाला नक्षत्र एक सेकेंडमें केवल १०० मील-की गतिसे जाता है।

यदि एक छटांक रेडियम संसारमें मिल जाय तो एक बड़ा भारी जहाज़, उसकी गरमी-से एटलांटिक महासागर बड़ी आसानीसे पार कर सकता है। इन अनुसंधानोंने वैज्ञानिकोंमें बड़ी उथलपथल मचा दी। रेडियममें यह

शक्ति कहांसे आयी, यही प्रश्न उनके सामने उठखड़ा हुआ। पहले तो अनुमान हुआ कि सूर्य देवने ही यह शक्ति रेडियमको प्रदान की है, पर यह अनुमान बहुत दिन तक ठहर न सका। रुदर्फ़ोर्डने यह सिद्ध कर दिखाया कि यह शक्ति-भांडार परमाणुओंके भीतर ही है। परमाणुओंके भीतरके ये सूक्ष्मातिसूक्ष्म विद्युत्कण बड़े वेगसे परमाणुको छोड़कर बाहर भागने लगते हैं। जिस अपूर्व शक्तिका हम बाहर परिचय पाते हैं वह इन्हीं भागते हुए विद्युत्कणोंकी शक्ति है।

यह सब कथा तो इन वैज्ञानिकोंने बतलायी ही थी, पर थोड़े दिनोंसे कुछ ऐसे दार्शनिक वैज्ञानिकोंके दर्शन हुए हैं जिन्होंने इस विषयको बढ़ाते बढ़ाते बड़ा गहन और गम्भीर बना दिया है। एक ऐसी वैज्ञानिक मंडलीके चरण तलमें बैठे बैठे मुझे भी कुछ विषम समस्याएं सुननेको मिली हैं। उन्हें मैं भोले भाले चित्तसे अपने पाठकोंके सामने निवेदन करता हूँ।

एक वैज्ञानिकने प्रश्न किया "क्या और किसी मौलिकतत्वोंके योगोंसे (compounds of elements) ये चमत्कार देखनेको नहीं मिलते?" बस यह प्रश्न उठाना था कि विषय अनुसंधान होने लगे। चेलोंने गुरुजीको आकर अपनी कथा सुनायी। उन्होंने कहा "महाराज यूरेनियम, थोरियम इत्यादि धातुओंमें भी यही चमत्कार देखनेको मिलते हैं, पर बहुत कम," गुरुजीने चेलोंके कथनको जो जांचा तो सत्य पाया। इस अनुसंधानके होते ही एक दूसरे वैज्ञानिकने प्रश्न उठाया "इसका क्या कारण है कि ये चमत्कार अन्य मौलिकोंमें (elements) भी पाये जाते हैं? क्या यह सब एक समान ही आचरण करते हैं?" इस प्रश्नपर बहुत दिनोंतक वादविवाद चला। अन्तको निश्चित हुआ कि हाँ प्रत्येक तत्वके परमाणु रेडियमके परमाणुओंके समान ही बने हैं। उन सबमें विद्युत्कण विराजमान हैं, पर रेडियमके परमाणु अल्पायु हैं, वे बहुत दिनतक रह नहीं सकते। यूरेनियम, थोरियम आदि तत्वोंके परमाणुओंकी रचना रेडियमके परमाणुरचनाकी अपेक्षा सरल है। इनके परमाणु अधिक कालतक ठहर सकते हैं।

इस निश्चयने एक और प्रश्न उठाया, वह यह था "क्या विद्युत्कणोंके बाहर भागनेसे और मौलिक वज़नसे (atomic weight) कुछ सम्बन्ध है, यदि है तो क्या है?" पहले भागका तो उत्तर स्पष्ट हांमें मिला। दूसरे भागका उत्तर वैज्ञानिकोंने यह ठहराया कि भारी धातुओंके परमाणु स्थायी नहीं होते। सबसे अधिक भारी धातु रेडियम है, अतः इसके परमाणु बहुत जल्दी टूट फूट जाते हैं और इनमेंसे निकले हुए विद्युत्कण अपना चमत्कार दिखलाते हैं। ये विद्युत्कण बीचके बहुतसे अस्थायी रूपोंमें होते हुए एक ऐसी योनिमें प्रकट होते हैं, जहाँ वे बहुत दिनोंतक रह सकें जैसे सीसा लोहा इत्यादि। इस अवस्थामें बहुत दिनों तक रहनेके बाद उनका टूटना फिर आरम्भ होता है और उनसे और भी हलके पदार्थ बन जाते हैं।

फ्रांसके दार्शनिकोंने इसपर प्रश्न उठाया कि उज्जन (Hydrogen) तो सबसे हलका है क्या सब तत्वोंके परमाणु अन्तमें उज्जन बन जाते हैं? थोड़े दिनोंतक उन लोगोंका विचार ऐसा ही रहा। परन्तु अन्तमें फ्रांसके वर्तमान प्रेसीडेंट पोङ्कारेके चचेरे भाईने कुछ और अनुसंधान किये। उनके सम्मुख प्रश्न यह था कि इन विद्युत्कणोंमें कोई पदार्थ है या नहीं?। वैज्ञानिक जिस किसी वस्तुकी तोल हो सके उसे ही पदार्थ कहते थे। पोङ्कारे साहेबके अनुसंधानोंसे पता लगा कि इन विद्युत्कणोंमें वज़न है। अतः उन्होंने वैज्ञानिकोंकी पुरानी रीतिके अनुसार यही उत्तर दिया कि विद्युत्कण पदार्थके महा सूक्ष्म परमाणुओंके अंश हैं और इनमें ऋण

विद्युत भरी हुई है। कुछ थोड़े और अनुसंधानों-के बाद पोङ्कारे साहेब ने यह दरसाया कि ये विद्युत्कण केवल बिजलीकी शक्तिके ही कण हैं और पदार्थोंका वज़न इसी शक्तिका एक विशेष गुण है। संसारमें जिसे हम पदार्थ जानते हैं वह केवल शक्तिकाही प्रकाश है।

पोङ्कारेके इस विचारने बड़ी खलबल मचा-दी। वैज्ञानिकोंने कुछ कालके उपरान्त इस मतको स्वीकार किया।

परन्तु यह कथा यहींपर समाप्त नहीं होती। फ्रांसकी रमणीक बसुन्धराने एक ऐसे वैज्ञानिक वीरको उपजाया है जिसके विचारोंने संसारको आश्चर्य्यशिखर पर पहुँचा दिया है। यह महात्मा बड़े गहरे दार्शनिक हैं। इनका नाम है डाक्टर लीबान।

डाक्टर साहबका नाम लेते ही मेरे हृदयमें पुराना प्रश्न उठ पड़ता है "क्या संसार मिथ्या है?" डाक्टर ली-बानने इस प्रश्नपर विचार किया है। डाक्टर साहबने प्रश्न किया "ये विद्युत्कण अपनी सब लीलाएं दिखलाकर कहां जाते हैं? इनका क्या होता है? अनंत आकाश (ether) में विचरण करते हुए क्या यह सम्पूर्ण सृष्टि पैदा करते हैं?"

परीक्षाओं द्वारा डाक्टर साहबने देखा है कि जब ये विद्युत्कण बाहर निकलते हैं तो इनके कारण बड़ी बड़ी लहरें पैदा होती हैं। प्रकाश, ताप इत्यादि सब इन्हीं लहरोंके प्रभाव हैं। इसपर डाक्टर साहबने अनुमान किया है कि ये कण अनन्त आकाशमें लहरें पैदा करते हुए अन्तर्द्धान हो जाते हैं। समुद्रकी लहरें जिस तरह बड़े वेगसे चलकर बड़े बड़े पदार्थोंको थपेड़ा देती हुई और संसारमें बहुत काम करती हुई नष्ट हो जाती हैं ठीक वैसेही ये विद्युत्कण लोप हो जाते हैं। सम्पूर्ण ब्रह्मांड जो इन विद्युत्कणोंसे बना है अंतमें ऐसी दशामें विलीन हो जाता है जिसे हम कुछ नहीं कह सकते। तो फिर क्या यह संसार "कुछ नहींसे" बना है? क्या यह सब माया है? विज्ञान तो इसका ऐसाही उत्तर देता है। यद्यपि डाक्टर ली-बानका यह अनुमान सर्वस्वीकृत नहीं हुआ है, परन्तु इस अनुमान के विपक्षमें भी कोई अकाट्य बात अभीतक नहीं निकली है। मैं समझता हूं कि डाक्टर साहबका यह अनुमान शीघ्र ही अटल समझा जाने लगेगा।

फिर "संसारकी कब उत्पत्ति हुई" इस प्रश्नका उत्तर देना असम्भव हो जायगा। हम-लोग तो संसारकी उत्पत्ति तबसे मानेंगे जबसे दृष्टिमें आने योग्य किसी पदार्थका भी पता लगता है। परन्तु कौन कह सकता है कि इसके पहले संसार था ही नहीं? जो कुछ अब संसार-में है वह सब पहले भी मौजूद था, उसका रूप दूसरा भले ही रहा हो। अतः यह संसार अना-दि और अनन्त है। वह एक अक्षय्या शक्तिकी रचना है। उसका दृष्टिमान स्वरूप केवल उस शक्तिके गुण या मायाका प्रभाव है।

बस इसी जगह विज्ञानका अंत होता है और दर्शन-शास्त्रोंका प्रारम्भ। यह शक्ति कैसी और क्या है इसका अनुमान करना केवल कल्पनाका खेल है। परन्तु यह कल्पना कपोल-कल्पना न होगी, विज्ञानकी रेतीसे इसे रेतकर सुन्दर और स्पष्ट बनाना पड़ेगा। बिना विज्ञान दर्शन पङ्गु है और बिना दर्शनके विज्ञान नेत्र हीन है। सच तो यह है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण जगत अज्ञात लहरोंमें ही समा जाता है उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्ञान एक ऐसे अज्ञान या विज्ञानमें लय होता है जिसमें द्वैत भावका नाम ही नहीं है।

जिस दिन मनुष्य इस जगन्मिथ्यावादको विज्ञानसे सिद्ध कर लेगा उस दिन उसकी वास्तविकताका अनुपम विकास होगा। पदार्थके माया जालमेंसे शक्तिके विस्तृत सम्राज्यमें पैर रखते ही मनुष्य महा शक्तिशाली बन जायेगा। उस दिनसे उसके विकासमें एक नया ही युग आरम्भ होगा। एवमस्तु।

जलकी गोलाकार दशा

[ले० ठाकुर प्रसाद शर्म्मा]

भौतिक शास्त्रके अनुसार पदार्थोंकी तीन अवस्थाएं हैं, ठोस, द्रव तथा गैस। बहुतसी वस्तुएं जिन्हें हम इस समय किसी एक दशामें देखते हैं, अधिक ताप अथवा अधिक शीतके कारण अपनी अवस्थाएं परिवर्तन कर सकती हैं। वायु साधारण तापक्रमपर एक गैस है परन्तु—२००° श दर्जेका शीत पहुंचानेसे वह द्रव दशामें लायी जा सकती है और-२३५° श दर्जेका शीत पहुंचनेपर वह ठोस बन जाती है। इसी प्रकार साधारण धातुएँ जो इस समय ठोस दीख पड़ती हैं बहुत अधिक तापके प्रयोगसे द्रव तथा अन्तमें वायवीय दशामें भी लायी जा सकती हैं। जलकी तीनों अवस्थाओं-बर्फ़, पानी और भाप-से हम सब परिचित हैं। इस समय हम जलकी एक विशेष प्रकारकी अवस्थाका वर्णन करेंगे।

जल साधारण रूपसे एक द्रव पदार्थ है। ०° श तापक्रमपर वह जमकर बर्फ़ बन जाता है और १००°श पर वह वाष्पके रूपमें परिवर्तित हो जाता है।

आपने देखा होगा कि जब कड़ाही अथवा तवा बहुत अधिक गर्म होता है तो उस समय यदि आप उसपर पानीकी बूंदें डालें तो कुछ समयतक वे छन छन करती हुई नाचती रहती हैं और अन्तमें भाप बनकर उड़जाती हैं। यदि तवेका तापक्रम १००° श से अधिक ऊंचा हो (जिसपर पानी सर्वथा वाष्पमें परिणत हो जाता है) तब भी छोटी छोटी बूंद कुछ समयतक बिना वाष्प बने हुए द्रव अवस्थामें ठहर जाती हैं और इसी तापक्रमपर यह तमाशा भलीभांति देखनेमें आता है।

इस नाचनेका कारण क्या है? पानी १०० दर्जेसे कहीं अधिक ताप लगनेपर भी तुरन्त वाष्प क्यों नहीं बन जाता? कारण यह है कि ज्योंही जल गरम तवेपर गिरता है, उसके नीचेका भाग जो तवेको छूता है, उसी समय वाष्पमें परिणत हो जाता है परन्तु पूरा भाग भाप नहीं बनसकता, क्योंकि जलमें तापको अपने एक कणसे दूसरे कणतक पहुंचानेकी शक्ति थोड़ी है। पानी अपने एक भागसे दूसरे भागको ताप शीघ्र नहीं दे सकता। आप इस बातकी परीक्षा कर सकते हैं।

काँचकी एक नली लेकर उसमें पानी भर दीजिये और उसमें एक बर्फ़के टुकड़ेको या तो उसपर कोई भारी चीज़ रखकर डाल दीजिये या उसे तारसे बाँधकर नलीके नीचे ठहरा दीजिये। अब उस नलीको तिरछा पकड़कर उसके ऊपरी छोरको धीरे धीरे गर्म कीजिये। उस ओरका जल उष्ण होने लगेगा और शनैः शनैः तापक्रम बढ़ता जायगा पर उस ओर पानीके अधिक गर्म होनेपर भी बर्फ़का टुकड़ा पिघलेगा नहीं। इससे सिद्ध होता है कि जल अपने एक भागसे नीचेवाले भागको ताप शीघ्रतासे नहीं पहुंचा सकता।
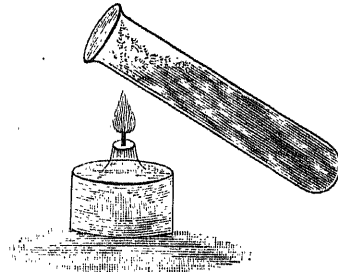
चित्र नं० १

इस कारणसे कुछ समयतक पर्याप्त ताप पानीतक नहीं पहुंचसकता और पानी द्रव अवस्थामें बना रहता है और गोलाकार होकर चारों ओर नाचने लगता है।*

*यदि थोड़ा जल तवेपर पड़ता है तो उसकी बूंद गोलाकार होती है पर यदि जलकी मात्रा अधिक हुई तो

उस समय पानीकी बूंद तप्त धातुको नहीं छूती क्योंकि उसके निचले भाग और तवेके बीचमें भाप रहती है। वह भाप शनैः शनैः बाहर निकलती रहती है और नई भाप बनकर ऊपरको उठती है। इसी लिए बूंदें नाचती फिरती हैं और उनका आकार घटता जाता है।

जलके द्रवरूपसे वाष्परूपमें उसी तापक्रमपर परिणत होनेके समय तापकी एक बहुत बड़ी मात्रा व्यय होती है। तवेपर पड़े हुए बूंद के नीचेवाले हिस्सेसे वाष्प बराबर बनती और निकलती रहती है। तापकी बहुत बड़ी मात्रा तो इसी क्रियामें व्यय हो जाती है, रही सही ताप वाष्पकण एक दूसरेतक पहुंचा नहीं पाते और यदि जलकणतक कुछ ताप पहुंचा भी तो उसका ऊपरी भागतक पहुंचना कठिन हो जाता है।

इस दशाको जलकी गोलाकार दशा (Spheroidal state) कहते हैं।
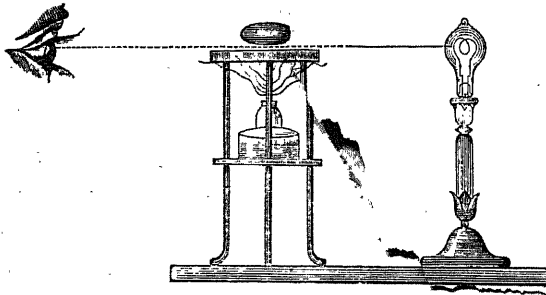
चित्र नं० २

जलके अतिरिक्त और द्रव पदार्थ भी इस गोलाकार दशाका खेल दिखलाते हैं। यदि तप्त धातु या तवेका तापक्रम इन द्रव पदार्थोंके उस तापक्रमसे जिसपर ये द्रव दशासे वाष्प दशामें परिणत हो जाते हैं अत्यधिक हुआ तो द्रव पदार्थोंके बूंद तप्त धातुपर पड़ते ही गरम तवेपर जलकी भांति व्यवहार करने लगते हैं।

पर अन्य द्रव पदार्थोंकी अपेक्षा जलकी इस दशाका बहुत बड़ा उपयोग लोग ऐन्द्रजालिक तमाशोंमें करते हैं। बहुतसे ऐन्द्रजालिक पैर धोकर गरम टीनकी चद्दर या अङ्गारोंपर चलते हैं। पुराने समयमें अपराधियोंके हाथ धुलाकर उनके हाथ खौलते हुए तेलमें डलवा दिये जाते थे। यदि उनके हाथ न जलते थे तो वे निर्दोष समझे जाते थे। ऐसी अवस्थामें थोड़ीही सावधानीसे अपराधी निरपराध प्रमाणित हो सकते थे। ये सब खेल तवेकी दशाके समान ही है।

ऐसे ही यदि सीसेको इतना ताप पहुंचाया जाय कि वह द्रव होकर उबलने लगे तो उस समय आप निर्भयतासे अपना भीगा हुआ हाथ उसमें डाल सकते हैं। आपका हाथ नहीं जलेगा; क्योंकि खौलती हुई धातुमें हाथके पहुंचते ही जल गोलाकार दशामें हो जायगा और आपके हाथ और धातुके बीचमें भाप आ जानेके कारण उसको कुछ हानि नहीं पहुंचेगी।

इस विषयमें स्वर्गीय सम्राट् सप्तम ऐडवर्ड के सम्बन्धमें एक कहानी कही जाती है।

अपनी कुमारावस्थामें सम्राट् एक विज्ञानवेत्ता डाक्टर प्लेफ़ेअर (Dr. H.c. Playfair) के साथ अपने महलमें घूम रहे थे। वहां एक स्थान पर सीसेसे भरी हुई एक कड़ाही गरम हो रही थी और सीसा उबल रहा था। दोनों कड़ाहीके समीप जाकर खौलते हुए सीसेको देखने

बूंदके नीचेका सिरा चपटा होजाता है। इन बूंदोंका आकार समतलपर पड़े हुए पारेकी छोटी बड़ी बूंदोंसे बहुत कुछ मिलता है।

[तवेके स्थानमें यदि हम लोहेकी मोटी चद्दर लें और उसे १००° श कक्षासे बहुत ऊपरके तापक्रमतक गरमकर जल छोड़ें तो ध्यानपूर्वक देखनेसे जलविन्दु और लोहेकी चद्दरके बीच शून्य स्थान दिखलायी पड़ेगा यही वाष्प है।]

लगे। उस समय सम्राटके हाथ भीगे हुए थे। डाक्टर प्लेफ़ेअरने उनके मुंहकी ओर देखकर मुसकुराते हुए कहा "क्या आप इस कड़ाहीमें-से अपने हाथसे मेरेलिए थोड़ा सा सीसा निकाल सकते हैं?" सम्राट्ने इस बातको हँसी समझा परन्तु फिर भी उन्होंने कहा कि "क्या आप सचमुच मुझसे ऐसा करनेको कहते हैं?" डाक्टरने उत्तर दिया "हां"।

इसपर उन्होंने कुछ भय न करके उसी समय अपना हाथ खौलते हुए सीसेमें डाल दिया और कड़ाहीमेंसे कुछ सीसा निकाल दिया। उनके शरीरको कुछ भी हानि नहीं पहुंची।

उनके साथके आदमी यह देखकर दंग रह गये। डाक्टर साहब हँसने लगे।

इस बातपरसे स्वर्गीय सम्राट्की वीरता और अपने गुरुके विश्वासका अच्छा परिचय मिलता है।

मनुष्यों और कीड़ोंका युद्ध

[ले० अध्यापक महाबीर प्रसाद, बी एस्-सी.,एल. टी.]

नवम्बर सन् १९१५ के माडर्न-रिव्यूमें एक लेख उपरोक्त विषयपर एक विलायती मासिकपत्रसे उद्धृत है जिसका अनुवाद विज्ञानके पाठकोंकेलिए रोचक और उपयोगी होगा। इसमें बहुतसे शब्द कीट-विज्ञानके प्रयोग किये गये हैं जिनके पर्य्याय भाषामें नहीं मालूम हैं। साधारण अङ्गरेज़ी कोषोंमें भी इनका कुछ पता नहीं चलता है। बहुतसे शब्द भाषामें उन लोगों-को मालूम होंगे जिनका उन कीटोंसे कुछ सम्बन्ध कृषि, पशुपालन और वन-रक्षाके कार्य्योंमें पड़ता होगा; परन्तु उन शब्दोंसे यथोचित लाभ उठानेकेलिए और उनको हिन्दी संसारमें प्रचार करनेकेलिए ऐसे उद्योगी विद्वानोंकी आवश्य-कता है जो अंग्रेज़ी शब्दोंसे पूर्णतः परिचित हों और जो कृषकों; गो-रक्षकों, अन्यान्य पशु-रक्षकों और वन-रक्षकोंके साथ भी थोड़ी देरतक रहकर प्रत्यक्ष कीटोंको देखकर और नाम पूछकर अंग्रे-ज़ी पर्य्याय-शब्दोंको लिखते जायें। यह काम बड़े उद्योग और आत्म-समर्पणका है जिसकेलिए जो विद्वान अंग्रेज़ी शब्दोंका पूर्णज्ञान रखते हैं उन-को इतना अवकाश भी नहीं मिलेगा। परन्तु यदि इसमें कुछ समय और नाते न सही तो केवल इस विचारसे कि हिन्दुस्तानके कीटों, पतङ्गों और पक्षियोंका ज्ञान हिन्दुस्तानियोंको कितना आ-वश्यक है, लगावें तो परिश्रम निष्फल न होगा। विशेषकर ऐसे समय जब वस्तु-पाठ (object lesson) भाषामें ही दिया जाता है बच्चोंको हिन्दुस्तानी नाम जाननेकी बड़ी आवश्यकता है।

मेरे कुछ मित्र केवल इसी कारण अपने कीट और कीटाणु-विषयक ज्ञानको भाषामें प्रचलित नहीं कर सकते कि वह भाषामें अंग्रेज़ी शब्दोंके पर्य्याय वाचक नहीं जानते। मेरी समझमें यदि थोड़े थोड़ेसे कीटोंकी शरीरिक बनावट और उनके गुणों और दोषोंका वर्णन चित्र सहित 'विज्ञान' में प्रकाशित हुआ करे और विज्ञानके कुछ पाठक स्थानीय कीटोंसे उनकी समानता करके भाषामें प्रचलित शब्द ढूढ़ें तो यह काम बड़ी सरलता पूर्वक हो जायगा। मेरे मित्रोंको भाषाके शब्दों-के ढूंढ़नेकी कोई आवश्यकता न रहेगी वह केवल अंग्रेज़ी वैज्ञानिक शब्द देवें। हाँ जहाँतक वह भाषाके शब्द अपने पासवाले नौकरों, कृषकों इत्यादिसे मालूम कर सकें वह अवश्य प्रयोग करें। कीट-विज्ञान ऐसा आवश्यक और उपयो-गी प्रतीत होता है कि इसमें मूंड़ मारना व्यर्थ कदापि नहीं होगा। यदि भाषाके पर्य्यायवाची शब्द न भी मिलें तो कमसे कम पहले उन कीटों पतङ्गोंके अंग्रेज़ी ही नाम पूर्ण व्याख्या और चि-त्रोंके साथ दिये जाने चाहिए जिनका सम्बन्ध कृषि प्रयोगालयों वा कालेजोंके द्वारा कृषि वा पशुपालनमें बहुत घनिष्ट समझा गया है। अब हम उपरोक्त लेखका अनुवाद देते हैं:—

Bacteriology कीट विज्ञान]

रेंगनेवाले कीड़ों (worm classes) में कुछ वर्ग (species) के कीड़े ऐसे हैं जो मानव-जातिकी उन्नति और सुखके विरोधी हैं क्योंकि जब वे मनुष्योंपर स्वयम् नहीं आक्रमण करते, तब उनके पाले हुए पशुओं और बोयी हुई वनस्पतियोंके ही पीछे पड़ जाते हैं। इसी तरह बहुतसे नरम-शरीरवाले जीव (molluscs)१ विशेषकर खोपरीवाले (snail class) और न-खोपरीवाले (slug-class) शत्रुवत् वर्ताव करते हैं। किलनी-वर्गके (tick) जीव यद्यपि बड़े भयानक शत्रु होते हैं तथापि उनके सम्बन्धी मकड़ी-वर्गवाले मनुष्योंकेलिए बहुत बड़े मित्रका काम देते हैं क्योंकि वे सृष्टिमें भयानक जन्तुओंको बहुत बढ़ने नहीं देते और साम्यावस्थामें ले आते हैं। वृश्चिकवर्गवाले जीव बहुत ही भयानक और दुखप्रद मालूम होते हैं परन्तु इनसे जोकुछ वास्तविक हानि पहुँचती है वह नहीं के समान है। यही विषैले कनखजूरोंकेलिए भी कहा जा सकता है। किलनी वर्गके जन्तु बहुत ही भयंकर और घातक होते हैं। ये ओछी जातिके मकड़ी-वर्गके जन्तु हैं जो पशुओं और वनस्पतियोंका रक्त और रस चूस चूस कर पलते हैं।

अधिकतर कीड़े मकौड़े (Insects and Ticks) मानव-जातिके प्रति इस प्रकार आक्रमण करते हैं :—(१) या तो वे उन वस्तुओंको खा जाते हैं जो मनुष्योंके प्राणाधार हैं या (२) उन वस्तुओंमें अपना विष घुसेड़ देते हैं या (३) मनुष्योंके शरीरपर ही आक्रमण कर बैठते हैं या (४) अधिकतर ऐसे ऐसे कीटाणुओंको गन्दी जगहोंसे ला लाकर फैलाते हैं जिनसे केवल मनुष्योंमें ही घातक रोग नहीं फैलते वरन् पशुओं-पक्षियों और वनस्पतियों-में भी जो मनुष्य-जीवनमें नाना प्रकारसे उपयोगी होते हैं रोग उत्पन्न कर देते हैं। बात तो यह है कि मनुष्यों और कीड़ों मकोड़ोंमें अभीतक एक दूसरेसे बढ़जानेका उद्योग हो रहा है।

यह सम्भव है कि इन कीड़ों मकोड़ोंसे मानव-जातिको जो दुःख पहुंच रहा है वह मानव-जातिके उन कर्म्मोंका परिणाम है जिनसे पक्षियों और बहुतसे कीड़ोंका नाश हुआ है।

मानव-जातिने स्वयम्–विशेषकर और पहले पहल, उन्नत मानव-जातिने–बे समझे बूझे उन मनोहर और उपयोगी चिड़ियोंका सर्व्वनाश किया और मूर्खतासे उन भोले भाले और उपयोगी कीड़ोंको सृष्टिसे निकाल डाला जो अहितकर कीड़ों मकोड़ोंको चट कर जानेकेलिए रहते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि अब कीटाणुओंसे उत्पन्न रोग दिनपर दिन भयंकर रूप धारण किये हुए बढ़ते जा रहे हैं और पशु और वनस्पतिके रूपमें जो भोजन मिलता था वह भी कम होता जा रहा है। इनका कारण उन कीड़ों मकोड़ों और कीटाणुओंकी क्रियाएं हैं जिनको वे अपनी अतड़ियों, गलफड़ों, रोएंदार पैरों वा खुरखुरी पीठोंमेंलिए रहते हैं और अवसर पाकर मनुष्य, पशु, पक्षीकी त्वचा, पेट वा नसोंमें और वनस्पतियोंकी डंठलोंमें घुसेड़ देते हैं।

उत्तरार्द्ध पाषाणकाल (Neolithic age) और पूर्वार्द्ध धातुकाल (Early metal age) के बढ़ते हुए ज्ञानसे लोगोंको मक्खी, टिड्डी, खटमल, किलनी और मच्छड़ोंमें भयंकर अवगुणका पता मिलने लगा और अदृश्य–घातक कीटाणुओंके अस्तित्वका भी नैसर्गिक विचार होने लगा। ऐसे कीटाणुओंके अस्तित्वका नैसर्गिक विश्वास और उनसे उत्पन्न रोगोंके प्रसारके ही कारण आर्य्यजातिने उन कठिन और वर्णभेदके नियमोंको बनाया जिनसे वे भारतवर्षकी असली जंगली जातियोंसे अलग रहें। यह आर्य्य जहां तक हो सकता था जंगली काली त्वचावाले

१—molluscs उस जन्तु-अवान्तर-सर्ग (animal sub-kingdom) को कहते हैं जिनके नरम शरीरोंकी रक्षाकेलिए प्रायः कड़ा खोल चारों ओर रहता है जैसे घोंघे, सुतुही, इत्यादि।

मनुष्योंसे जिनपर वह राज्य करनेकेलिए आये थे दूर ही रहते थे क्योंकि वह समझते थे कि इनके स्पर्शसे रोग फैलेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दीके पिछले २० वर्षोंमें कई वैज्ञानिक इटली, भारतवर्ष, फ्रान्स, ब्रिटेन, जर्मनी और अमरीकाके संयुक्त देशमें उन खोजोंमें लगे हुए थे जिनको पाश्चर (Pasteur) ने उसी शताब्दीके मध्यमें आरम्भ किया था। इन वैज्ञानिकोंने यह सिद्ध कर दिया है कि मनुष्य, पशु और वनस्पतियोंके बहुतसे रोग केवल कीड़े, पतङ्गे और किलनियोंसे होते हैं; और यह भी खोज निकाला है कि इन रोगोंसे मुक्त होनेकेलिए इन रोगोंके कीटाणुओंको लानेवाले जन्तुओंसे बचना चाहिए और उनको कम करना चाहिए। हालमें एक पुस्तक "कीड़े और मनुष्य" (Insects and Man) सी. ए. ईलैंड रचित प्रकाशित हुई है जिसमें इन कीटोत्पन्न रोगोंके निदान और लक्षणका (ब्यौरेवार और शुद्ध वर्णन) दिया हुआ है। यह भी दिया हुआ है कि कीड़ों मकोड़ोंसे प्रायः असीम हानि पहुंचती है और मानव-जातिको इनसे युद्ध करनेकेलिए सदैव कटि-बद्ध रहना परम आवश्यक है। यह युद्ध मनुष्य और मनुष्यके बीचमें नहीं है वरन् मनुष्य और कीड़ों मकोड़ोंके बीचमें और इस युद्धको पूर्णकरके यह निर्णय करना है कि दो प्रकारके जीवधारियोंमें कौन इस पृथ्वीका राज्याधिकारी होगा, सर्वोत्तम रीढ़वाला वा ओछा बेरीढ़वाला।

लेखकके मतमें इस वर्त्तमान युद्धसे वह सब बातें भी पूरी तरह समझमें आयी हैं जिनसे पता चलता है कि कीड़े मकोड़े मनुष्योंके अहितकेलिए कितना भयंकर काम कर रहे हैं क्योंकि, राज्यके टूटे फूटे झोपड़ोंके रहनेवाले और महलोंमें सुखसे जीवन व्यतीत करनेवाले मध्यम और उत्तम श्रेणियोंके मनुष्योंका युद्धके कारण जो समागम हुआ है उससे विचारमें यह परिवर्तन होने लगा है कि झोपड़ोंमें रूखी सूखी रोटी खानेवालों और मैले कुचैले कपड़ोंके पहननेवालोंके भयंकर अवस्थाओंको सुधारनेकी ओर ध्यान न देना राष्ट्रीय अपराध है। सभ्य वस्त्रधारी और सभ्यरीतिमें पोषित क्लार्कको जिसने शायद कभी कृषकों अथवा मिलोंके कुलियोंके जीवन-प्रणालीपर विचार भी न किया होगा उस समय मालूम पड़ा है जब उसको ११ और मनुष्योंके साथ जिन्होंने उत्साहके साथ अपने देशकी रक्षा करनेकेलिए अपने प्राणोंको हथेलीपर रखकर हल वा मिलोंके कामोंको छोड़ दिया है, एक ही डेरेमें कष्टपूर्वक रहना पड़ा है कि देहातके चित्रमें देनेयोग्य झोपड़ों और शहरोंकी गन्दी गलियां जिनकी ओर कृषकों और शहरके स्वच्छ रहनेवाले पुरुषोंका कुछ भी ध्यान नहीं गया खटमलों, चीलरों और पिस्सुओंसे भरी पड़ी हैं और ऐसी परिस्थितिमें (जहां प्रायः पानीका बहुत ही बुरा प्रबन्ध हुआ करता है और जहाँ शारीरिक स्वच्छताके भी ठीक रखनेका कोई प्रबन्ध नहीं हो सकता) जीवन निर्वाह करनेसे अच्छे शरीरवाले पुरुष और स्त्रियां भी अपने बदन और कपड़ोंलत्तों द्वारा चीलर, खटमल और पिस्सुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानको पहुँचाते हैं। इस आविष्कारके बाद ही वह रोग आक्रमण कर लेते हैं जो कीड़ों मकोड़ोंके कारण निद्रा-रहित रात बितानेसे भी दुखप्रद हैं। शायद कीटोत्पन्न रोगोंसे मौतें भी होजाती हैं। वर्तमान युद्धके कारण जो जो दोष पैदा होंगे उनमें कीड़ों मकोड़ोंसे उत्पन्न दोष अधिक प्रत्यक्ष दीख पड़ेंगे।

कमसे कम दो-तिहाई मानव-रोग केवल उन कीटाणुओंके नाश कर देनेसे रोके जा सकते हैं जिनसे रोग फैलते हैं। यह पूरी तरह नहीं मालूम हुआ है कि बन्दरघाव वा नासूर इत्यादिके होने और कीड़ेमकोड़ोंके द्वारा कीटाणुओंके प्रवेश करनेमें कौन कौनसे पूर्वरूप एक दूसरेके

बाद होते हैं परन्तु जहाँतक पता चला है उससे यही मालूम होता है कि इस रोगके कीटाणु एक प्रकारके छोटे कीड़े (Demodex folliculorum), पिस्सू, खटमल वा चीलरके द्वारा फैलते हैं।

इन कीड़ोंमेंसे कुछ, मनुष्यकी रगोंके द्वारा रोगके कीटाणुओंको पहुँचाते हैं। पहले यह स्वयम् उन कीटाणुओंको अपने शरीरके भीतर किसी रोगी मनुष्य, पशु, पक्षी वा रेंगनेवाले जानवरोंके रक्तको चूसकर लेलेते हैं वा खाद, सड़ी हुई वनस्पति, बिगड़ा हुआ पानी इत्यादि किसी निर्जीव वस्तुको छूकर ग्रहण कर लेते हैं।

यह कीटाणुयुत-जन्तु मनुष्यके शरीरमें उस समय रोगके कीड़ोंको चुभोकर घुसेड़ सकते हैं जिस समय उन कीटाणुओंके एकसे अनेक हो जानेका अवसर होता है। ऐसी दशामें रोग खूब बढ़ता है। अथवा मक्खी और झींगुरकी तरह यह जन्तु रोगके कीटाणुयुत-वस्तुओं जैसे लीद वा सड़ी हुई मछली इत्यादिपर रेंगकर अपने पैरों और टांगोंमें इन कीटाणुओंको लेते हुए भोजनकी वस्तुओंपर रेंगने, उगल देने वा दूधमें गिर पड़नेसे इनको रोगयुक्त कर देते हैं। ऐसी वस्तुओंके खानेसे खानेवालेके पेट वा अंतड़ियोंमें जाकर रोग बढ़ने लगता है।

यदि हम इन दुखदायी कीड़ों जैसे किलनी पिस्सू, खटमल, चीलर, मक्खी, मच्छड़, झींगुर और गुबड़ीला (cockchafer) को समूल नाश करदें वा इनकी संख्याको एक अन्दाज़से कम करदें तो प्लेग, कांमला, फ़सली ज्वर, ब्लैक वाटर ज्वर (black water fever), पारीवाला ज्वर डेंगे (dengue), बेरीबेरी (beriberi), स्कारलेट ज्वर (scarlet fever), शायद बनरघाव, और निस्सन्देह सोनेकी बीमारी जो आजकल अफ़्रीकाके बहुत ही उपजाऊ भूमिको सत्यानाश कर रही है यदि समूल नष्ट न हो जायँ तो बहुत कम अवश्य हो जायँगे। इससे पशुओं, भेड़ों, बकरिओं, सूअरों, घोड़ों, ऊंटों और पालतू चिड़ियोंकी बीमारियां भी बहुत कम हो जायँगी। हानिकर गुबड़ैलों, खटमलों, पपरीदार कीड़ों, (scale insects) पतङ्गों (midges) और एफ़ाइड (aphid) को कम कर देनेसे दुनियाके वनस्पतियोंसे उत्पन्न भोजनकी वस्तुएँ १०० गुनी अधिक मात्रामें होने लगेंगी।

कीड़ों और मनुष्योंके इस युद्धमें हमारी ओरसे शत्रुओंका नाश करनेकेलिए कुछ पक्षी बहुत ही उपयोगी पाये गये हैं। इनके पश्चात छिपकिलियों और स्वच्छ जलकी मछलियोंका नम्बर आता है। इसके अतिरिक्त शत्रु-दलोंमें भी बहुतसे ऐसे हैं जो मित्रका काम करते हैं। क्योंकि कुछ शत्रु-कीड़े ऐसे हैं जो दूसरे शत्रुकीटोंको प्रथमावस्था वा प्रौढ़ावस्थामें चट कर जाते हैं। इनमेंसे एक बहुत ही प्रसिद्ध सुन्दर जातिका गुबड़ैला बीर-बहूटी (?) (lady bird) नामका है।

गुबरीला वर्गवाले (Beetle order) जन्तुओंमें काक्सीनेलिडी (Coccinellidae) के अतिरिक्त एक और कुटुम्ब है जो मनुष्योंके हितकेलिए बहुत कुछ काम करता है। यह कुटुम्ब कैराबिड (Carabidoe or ground beetles) का है जिसमें प्रायः सभी मांसभक्षक हैं और दूसरे कीड़ों पतङ्गोंको उनके प्रथमावस्थामें हो चट कर जाते हैं। इनकी अनोखी प्रवृत्ति मादा कीड़ोंके खाजानेमें अधिक है जिससे यह सहस्रों उत्पन्न होनेवाले कीड़ोंकी माताको ही समूल नाशकर देते हैं। बहुतसे कैराबिड (Carabid) विषुवत् देशोंके दुष्ट दीमकोंको खा जाते हैं। कैलोसोमा (Calosoma) जातिके कीड़े जो देखनेमें सुन्दर भी होते हैं तितिलीके रूपवाले छोटे छोटे पतिङ्गोंको (Gypsy moth) चुन चुनकर खा जाते हैं। यह पतिङ्गे पूर्वीय संयुक्त राज्यों (Eastern

United States) के अच्छे अच्छे पेड़ों और सेवके बगीचोंको मौका पानेपर सफाचट कर डालते हैं।

हिमेनोपटेरस (hymenopterous order) वर्गवाले, चीटोंसे होनेवाले उपद्रवोंको कुछ शान्त करते हैं। यह चींटे विषुवत् देशोंमें बहुत उत्पात करते हैं। उपद्रवोंके शान्त करनेमें विशेषकर कई प्रकारके बर्रे, शहद देनेवाली मक्खियां, भूमि खोदकर रहनेवाले और भोजन ढूंढ़नेवाले बर्रे (fossoriol wasp) और राज बर्रे (mason wasp) हैं जो उपद्रवी गुबरीलों (beetle grubs) केटरपिलर, मक्खीके अंडे, टिड्डियों, चीटियों, झींगुरों, सिकेड (cicadas) और खटमलोंको खाकर नाश कर देते हैं।

इसलिए यह परमावश्यक है कि सब देशोंके और सब श्रेणियोंके बच्चोंको प्राथमिक शिक्षाके साथ साथ यह शिक्षा भी देनी चाहिए कि कौन कौन से पतिङ्गे और किलनी इत्यादिकोंसे बचना चाहिए वा मार डालना चाहिए और कौन कौन से जन्तु बचाना चाहिए वा न मारना चाहिए क्योंकि वह बड़े कामके होते हैं वे हमारे शत्रुओंके शत्रु हैं। इस देशके लड़के मुमाखियोंके मार डालने वा उनका अंग भंग कर देनेमें बड़े तेज़ होते हैं। वे यह नहीं जानते कि इन्हीके द्वारा बहुतसे पौधोंमें फल लगनेका बीज छोड़ा जाता है और यदि यह न हों तो हम लोगोंको कई प्रकारके फल शफ़ालू, सिनेरेरी इत्यादि नसीब न हों। अविचारी स्त्रियों और पुरुषोंको दंड देकर वा जुर्माना करके यह सिखलाना चाहिए कि परोंपर मुग्ध होकर ऐसे पक्षियोंको जो कीड़े खा खा कर जीवन निर्वाह करते हैं मार डालनेमें बड़ी ही दुष्टता और मूर्खता है। अफ्रीकामें गिनी फ़ाउल (guinea fowl) बड़े ही कामका पक्षी समझा जाना चाहिए क्योंकि यह उन थोड़ेसे पक्षियोंमेंसे एक पक्षी है जो मिट्टीके भीतर ढूंढ़ ढंढ़कर गड़े हुए वा छिपे हुए सेटसी मक्खियों (*Tsetse flies) के अंडोंको खा जाते हैं।

वायु मण्डलके कुछ रहस्य ?

[ले० पं० रघुवर प्रसाद द्विवेदी, बी. ए.]

गुरुजी—क्यों रमेश! अब तो तुमने वायुमंडलके दो प्रधान अंश, आक्सिजन और नाइट्रोजन तथा अन्य दो अंश, कारबनिक-एसिडगेस और जल-वाष्पके विषयमें कुछ थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लिया होगा, अब क्या इस विषयमें और कुछ जाननेकी इच्छा है ?

शिष्य—गुरुजी! अवश्य है। एक तो यह विषय आप ही बड़ा मनोरंजक है दूसरे इसका ज्ञान अत्यन्त लाभ-कारी है। बस, "सोनेमें सुगन्ध" की जनोक्ति चरितार्थ होती है। हां गुरुजी, यह तो आपने बताया ही नहीं कि यह वायुमंडल कितनी दूरीतक विस्तीर्ण है। क्या सारे आकाशमें इसी प्रकारकी वायुका अस्तित्व है जैसी हमारी पृथिवीके समीप है ?

गुरुजी—रामनाथ! अभी जल-वाष्पके विषयमें मुझे बहुत कुछ बतलाना है जिसे श्रवण कर तुम्हारा कौतूहल विज्ञान-शास्त्रके अध्ययन करनेकेलिए निस्सन्देह बढ़ता ही जायगा, पर तुमने यह प्रश्न भी अच्छा किया, अब इसीसे निपट लेना अच्छा है।

सुनो। वैसे तो भूमितलसे ४५ वा ५० मीलतक वायुका अस्तित्व सिद्ध होता है पर वहां वह इतनी पतली होती है कि जीवधारियोंके श्वासलेनेके योग्य नहीं रहती। यदि कोई मनुष्य व्योमयान तथा गुब्बारेपर चढ़कर ४ वा ५ मील ऊंचा जाना चाहे तो नहीं जासकता। वहांकी वायु इतनी पतली है कि वह उसे

* इन मक्खियोंके दो डैने होते हैं और इनके काटनेसे घोड़े, कुत्ते और चौपाये मर जाते हैं। मनुष्यों और बनैले पशुओं पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता।

Physical Geography भौतिक भूगोल]

श्वासद्वारा खींच ही नहीं सक्ता और दम घुटने से प्राण खो बैठता है।

शिष्य—गुरुजी, वायुका पतला और गाढ़ा होना मेरी समझमें नहीं आता। इसका अर्थ मुझे समझानेकी कृपा कीजिये।

गुरुजी—देखो रमेश! बाज़ारमें जब तुम कपड़ा लेने जाते हो तो देखते हो कि कपड़ेके थानके थान एकके ऊपर एक गँजे रक्खे रहते हैं। यदि बजाज सबसे नीचेका थान निकालना चाहता है तो क्या उसी आसानीसे निकाल सकता है जैसा ऊपरके थानोंको निकाल सकता है?

शिष्य—महाराजजी, थान जितना ही नीचेका होगा उतनी ही अधिक कठिनाईसे निकलेगा।

गुरुजी—यह क्यों?

शिष्य—नीचेके थानोंपर ऊपरके थानोंका दबाव भी तो बहुत रहता है।

गुरुजी—ठीक है, इसी तरह वायुका भी हाल समझो; धरातलके समीपकी वायुपर उसके ऊपर कई मीलतककी वायुका दबाव रहनेसे वह अधिक घनिष्ट रहती है। इसी प्रकार समुद्रमें जलका हाल है। बहुत गहराईके पानीपर ऊपरके पानीका दबाव रहनेसे उसमें अधिक बल आ जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि बोतलमें काग लगाकर यदि उसे थोड़ी गहराईमें रक्खें तो काग जैसाका तैसा रह जाता है पर यदि वही बोतल कई मीलकी गहराईमें पहुँच जाय तो पानीके दबावसे काग बोतलमें घुस जाता है। यह दबावका विषय दूसरा है अतएव उसके सम्बन्धमें मैं यहां अधिक कुछ नहीं कहना चाहता, किसी दिन इसका चमत्कार भी बतलाऊंगा, पर अब तो तुमको मालूम हो गया कि धरातलके समीपकी वायुपर ऊपरकी वायुका दबाव रहनेसे वह अधिक घनिष्ट हुआ करती है और हम जैसे जैसे ऊपर जाते हैं वैसे वैसे उसकी घनिष्ठता घटती जाती और इस हिसाब से ४५ वा ५० मील ऊपर वह बहुत ही कम हो जाती है। ३ मीलकी उचाईपर एक तो मनुष्यकी वही दशा होती है जो दमाके रोगीकी अथवा कफ़ अधिक बढ़नेसे आसन्नमृत्यु की हुआ करती है अर्थात् वह कितने ही बलसे सांस खीचता है, पर खिचती ही नहीं; दूसरे उसके शरीर भरसे रुधिर निकलने लगता है।

शिष्य—गुरुजी, भला रुधिर क्यों बहने लगता है?

गुरुजी—रामनाथ, इस विषयको अभी मत छेड़ो। इसे मैं फिर कभी बतलाऊंगा जब द्रव और वायुरूपी पदार्थोंके दबावका विषय उठेगा, अभी इतना ही स्मरण रक्खो कि बहुत ऊपर जानेसे वायु इतनी पतली रहती है कि मनुष्य अथवा और किसी जीवधारीका जीवित रहना असंभव है। इन दो कारणोंके अतिरिक्त जीवधारियोंके जीवित न रह सकनेका कारण एक तीसरा भी है। तुम जानते ही हो कि जैसे जैसे ऊपर जाओ वैसे वैसे अधिक शीत व्यापती है जिससे ग्रीष्म ऋतुमें जब मैदानोंपर असह्य गर्मी होती है तो लोग ऊंचे पहाड़ोंपर चले जाते हैं जहां बैसाख और ज्येष्ठके महीनोंमें भी लोग घरोंके भीतर रज़ाई ओढ़कर सोते हैं।

शिष्य—हे देव, आप ठीक कहते हैं, तभी तो बड़े बाबू साहिबके साथ मार्चके महीनेसे ही पहाड़ीपर जाया करते हैं और साथ ऊनी कपड़े ले जाते हैं। मैंने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने यही कहा कि पहाड़ोंपर शीतल वायु चलती रहती है और तनिक भी पानी गिरनेसे बड़ी ठंढ लगने लगती है। मैंने बाबूजीसे इसका कारण पूछा तो कहने लगे कि अपने गुरूजीसे पूछना, वे बतावेंगे। अब आप कृपया बतलाइये कि ऊंऊचे पहाड़ोंपर हवा इतनी शीतल क्यों रहती है?

गुरुजी—रामनाथ, इतना तो तुम जानते

हो या समझ सकते हो कि हवाको गरम करने-वाली सूर्य्यकी किरणें ही होती हैं, आगसे तो हवा गरम की नहीं जाती।

शिष्य—हां गुरुजी, इतनी आग कहाँ जलती है जो उड़ती हुई हवाको महीनों गरम रक्खे। इसके सिवा दोपहरको हवा जितनी गरम रहती है उतनी रातको नहीं रहती, अवश्य ही उसका गरम होना सूर्य्यकी किरणोंपर निर्भर है। पर गुरुजी, ऊंची पहाड़ियोंकी हवा तो और भी अधिक गरम होनी चाहिए क्योंकि वह सूर्य्यसे अधिक समीप होती है। यह बात मेरी समझमें नहीं आती।

गुरु—देखो रमेश, सूर्य्यकी किरणें वायु मंडलमेंसे होकर तो अवश्य आती हैं पर वायुमें यह शक्ति नहीं है कि वह उन किरणों-की अधिक गर्मी ग्रहण कर सके। बात तो यह है कि ये किरणें जब भूमिपर पड़ती हैं तो भूमि तप जाती और उससे स्पर्श होनेसे वायु भी उष्णता धारण करती है। यही कारण है कि भूमिके समीपकी वायु अधिक गर्म हो जाती है पर बहुत ऊपरकी नहीं होती। वायुमें एक दूसरी विशेषता यह भी है कि वह जितनी ऊपर जाती उतनी ही अधिक शीतल होती जाती और इसी कारण वर्षा, हिमपात आदि बातें हुआ करती हैं, पर इस प्रसंगको यहां छेड़ना उचित नहीं—इतना भर अभी स्मरण रक्खो कि संतप्त भूमिसे स्पर्श करनेवाली वायुकी गति जब किसी पर्व्वतके बीचमें पड़ जानेसे अवरुद्ध हो जाती है तो वह ऊपर-की ओर चढ़ने लगती और धीरे धीरे शीतल होती जाती है-यही शीतल वायु पहाड़ीपर चलती रहती है जिससे वैशाख-ज्येष्ठमें भी वहां गरमी नहीं पड़ती। दूसरे इस वायुकी घनिष्ठता भी कम हो जाती है जिससे उसमेंका जल-वाष्प फैल जानेसे भी गर्मी कम रहती है।

रमेश—गुरुजी, इतना तो मेरी समझमें आ गया। अब मुझे एक दूसरी बात याद आयी है। मैंने एक अंगरेज़ी ग्रन्थमें पढ़ा था कि किसी ऊँचे पहाड़पर कुछ लोग सैरके-लिये गये थे। वहां उन लोगोंने भोजन पकानेका बहुत प्रयत्न किया पर लिखा है कि बहुत ईंधन जलाने और घंटों प्रयत्न करनेपर भी कोई चीज़ नहीं पकी, आलू बिलकुल नहीं उबल सके। पहले तो इस घटनाका कारण न समझनेसे लोगोंको भ्रम हुआ कि कदाचित् किसी जादूगरने जादू कर दिया होगा अथवा किसीकी नज़र हो गयी होगी, पर पीछेसे इसका वैज्ञानिक कारण मालूम हो गया और उसका सम्बन्ध वायुसे ही बतलाया गया है। मैं कुछ नहीं समझ सका इससे मुझे यह भी स्मरण नहीं होता कि वायुसे इस घट-नाका क्या सम्बन्ध बतलाया गया है। यदि आप मुझे इस रहस्यके जाननेका अधिकारी समझें तो कृपाकर बतलावें।

गुरु—रमेश, तुम्हारा कथन ठीक है, इस घटनाका सम्बन्ध वायुसे अवश्य है पर यह उसके दबावका विषय है जिसके बारेमें मैं तुम्हें यथावसर बतलाऊँगा; आज केवल इतना जानलो कि पानी जितना अधिक गरम होगा उतने ही शीघ्र उसमें डाले हुए आलू आदि पदार्थ चुर सकेंगे। जिस जलसे भाफ अधिक निकलती जायगी उसमें उष्णता भी उतनी ही कम रह सकेगी। देखो, पानी जब गर्म किया जाता है तो धीरे धीरे वह कम होता जाता और अन्तमें बिलकुल नहीं रहता। कुएँ, तालाब आदि जलाशय सूर्यकी गर्मीसे सूख जाया करते हैं। अब सूखना क्या है सो तो तुम जानते ही होगे। इनका पानी भाफ होकर उड़ जाता है और पानी तथा गर्मीके संयोग-से ही भाफ उत्पन्न होती है अर्थात पानीकी गर्मी और पानी दोनों मिलकर भाफ बनते हैं जिससे स्पष्ट है कि भाफ जितनी अधिक निकले-

गी उतनी ही अधिक उष्णताका भी ह्रास होगा। समुद्रतलके समीपकी भूमिपर जो वायु रहती है वह अधिक घनिष्ट होती है अतएव उसका दबाव भी खौलते हुए पानीकी सतह-पर अधिक रहनेसे भाफ़ भी कम बना करती है अर्थात् आगसे पानीमें पहुंचनेवाली उष्णता उसमें अधिक रहती है जिससे भोजन शीघ्र पक जाता है पर ऊँचे पहाड़ोंपर जहां वायु पतली होती है उसका दबाव भी कम पड़ता है जिससे भाफ अधिक बनकर उष्णता भी अधिक निकल जाया करती है।

रमेश—गुरुजी, मैं देखता हूं कि माजी भोजन पकातीवार उबलते हुए पानीपर परैया रख देती हैं। इससे तो वायुका दबाव परैयापर रह जाता होगा और भाफ़ अधिक बन कर गर्मी-का ह्रास होता होगा, फिर क्यों परैया रक्खी जाती और दाल, चांवल तरकारी, आदि पदार्थ अच्छी तरह चुर जाया करते हैं?

गुरु अरे भाई, देखता नहीं कि परैया रखदेनेसे बटुवेकी भाफ़ भी तो बाहर नहीं निकलने पाती। वह परैया और पानीकी सतहके बीचमें रहकर अपना दबाव डालती है जिससे अधिक भाफ़ नहीं बनने पाती। भाफ़ भी तो हवाके सदृश एक प्रकारका गैस है और उसमें भी तो दबाव डालनेकी शक्ति है। यदि वे भले आदमी जो पहाड़पर भोजन बनाते थे और आलू न चुरनेसे जादू टोनाकी कल्पना करते थे बर्तनपर ढक्कन रख देते तो भाफ़के दबावसे उनके भी आलू अवश्य चुर जाते।

रमेश—हे देव, मेरा संशय दूर हो गया; पर मेरे पहले प्रश्नका उत्तर तो अब भी नहीं मिला। आपने कहा है कि ४५ वा ५० मील-की दूरीपर वायु इतनी पतली हो जाती है कि मालूम नहीं होती और यह भी बतलाया कि तीन मीलकी दूरीपर भी वह इतनी पतली पड़ जाती है कि मनुष्यकेलिये सांस लेना कठिन होजाता है। अब यह बतलाइये कि यह नांप कैसे की जाती है?

गुरु—देखो रमेश, मैं अभी बतला चुका हूं कि समुद्र तलके समीपकी वायु सबसे अधिक घनिष्ट रहती है, बस वहींसे नांप की जाती है। यदि प्रत्येक स्थानसे उंचाईकी नांप की जाय तो वह कदापि ठीक नहीं हो सकती। यदि तुम ज़मीनपर खड़े रहो और तुम्हारा भाई इस मेज़पर खड़ा होजाय तो तुम्हारी उंचाई निचाई कैसे नांपी जासकती है? जब तुम दोनों सम धरातलपर खड़े होगे तभी नांपनेवाला बतला सकेगा कि कौन किससे कितना ऊंचा है। अब समुद्रतल सबसे नीची होनेके कारण पहाड़ आदिकी उंचाई उसीसे नांपी जाती है। जब कहते हैं कि मौंट एवरेस्ट २६ सहस्र फुट ऊंचा है तो यह उंचाई हिमालयकी तरहटीसे नहीं वरन् समुद्रतलसे नांपी गयी है।

रमेश—ठीक है महाराजजी, अब समझा।

गुरु—मैंने तुमसे कहा है कि वायुमंडल-की उंचाई समुद्र-तलसे २०० मीलतक मानी गयी है।

रमेश—जी हां, यह तो मेरे नोटोंमें भी लिखा है, पर शंका यह है कि जब भूमिसे तीन चार मील ऊपर जाना इतना असंभव है तो २०० मील ऊपर देखने कौन गया होगा?

गुरु—अजी, जानेकी आवश्यकता नहीं है। तुमने उल्का-पात होते देखा ही होगा।

रमेश—जी हां, गर्मीकी ऋतुमें जब आंगनमें सोते हैं तो न जाने कितने तारे गिरते दिखायी देते हैं। आगे तो मैं इनसे बहुत डरता था और मारे डरके चादर ओढ़े रहता था जिसमें ये न दिखायी पड़ें।

गुरु—ठीक है, तुम्हारी दादीने यह कहकर कि ये मरनेवाले लोगोंके जीव हैं तुमको डरा दिया होगा। हमारे यहां भी मूर्ख स्त्रियां बच्चों-

को भीरु बनानेमें बड़ी कुशल होती हैं। यह उनकी मूर्खताका फल है।

रमेश—गुरु जी, तो ये टूटनेवाले तारे फिर क्या हैं ?

गुरु—अजी, ये मिट्टी-धातु निर्म्मित पिंड हैं और आकाशमें रहते हैं। जब पृथिवी परिक्रमा करते करते उनके समीप पहुंचती है तो उसकी आकर्षण शक्तिसे वे उसकी ओर बड़े वेगसे दौड़ते हैं और कभी कभी उसपर आकर गिरते भी हैं जैसे उस वर्ष बिलासपुर ज़िलेमें एक पिंड गिरा था जो अब नागपुरके कौतुकालयमें है।

रमेश—गुरुजी, क्या वह प्रकाशवान है ?

गुरु—नहीं भाई मृत्तिकापिंडमें प्रकाश कहां से आया।

रमेश—महाराजजी, टूटनेवाले तारे तो प्रकाशवान् होते हैं।

गुरु—ठीक है, पर थोड़े कालतक आकाशमें रहते हुए वे प्रकाशवान् नहीं होते और न भूमितलपर गिरनेपर। थोड़े समयकेलिये गिरते हुए वे प्रकाशवान् हो जाया करते हैं। इसीसे तो विद्वानोंने अनुमान किया है कि वायुमंडलकी परिधि २०० मील दूरीतक है क्योंकि ये पिंड जब भूमिसे २०० मीलकी दूरीपर आते तो प्रकाशवान् होजाते हैं और विद्वानोंका मत है कि वायुके साथ घर्षण होनेसे वे उद्दीप्त हो जाते और टूटफूट भी जाते हैं। इससे यह सिद्धान्त निकला कि वायुमंडलकी दूरी २०० मीलतक ही हो सकती है।

रमेश—धन्य है महाराज, विज्ञानमें भी अनुमानका प्रवेश है।

गुरु—रमेश, विज्ञानमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो प्रधान हैं, पर प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध होनेवाली घटनाओंको देख अनुमान प्रमाणसे भी बहुत काम निकलता है। सब प्रकारके ज्ञानलाभकेलिये ये प्रमाण उत्तम साधन हैं।

देखो रमेश, सृष्टि रचनाके नियमोंको देखकर भला कौन अभागा होगा जो जगन्नियन्ताकी अलौकिक चतुराईकी मुक्तकंठ हो प्रशंसा न करे। देखो तो, जीवधारियोंकी रक्षाकेलिये उसने कैसे कैसे विचार बांधे हैं! यदि वायुमें ये सब गुण न होते और वह नियमानुसार न बनी होती तो क्या संभव था कि पृथिवीपर नाना भांतिके पशु, पक्षी, लता, वृक्ष और मनुष्य जीवित रह सकते? इन टूटनेवाले ताराओंको ही देखो! स्वीडिन, नार्वे आदि देशोंमें इन पिंडोंके समूहके समूह देखनेमें आते हैं और उनसे निकलनेवाला लोहा उल्का-लौह (meteoric iron) कहलाता है। वहां ये पिंड बहुत बड़े बड़े होते हैं पर आकाशमें तो वे और भी बड़े रहे होंगे। यदि उतने बड़े पिंड किसी गांव वा नगरमें गिरते तो उसके विनाशमें कोई सन्देह न रहता। पर, नहीं, उस जगन्नियन्ताने इसका भी प्रबन्ध कर रक्खा है। २०० मीलतक वायुमंडलका विस्तार रहनेसे बड़ेसे बड़े पिंड भी धरातलतक पहुंचते पहुंचते बहुत छोटे हो जाते और जो पहलेसे ही छोटे होते हैं वे तो वायुके संघर्षणसे छार छार हो रेतके समान भूमिपर गिरते हैं। वास्तवमें सृष्टि-रचनाके नियमोंको देखकर उस जगन्नियन्ताकी महिमाका कुछ थोड़ा पता लगता है।

आर्किमिडीज़

यूरोपीय महाद्वीपके दक्षिण भागमें चरणके समान लटकता हुआ इटेलीका प्रसिद्ध देश है। इसके दक्षिणमें सिसली नामक टापू पुराने समयमें बड़ा प्रख्यात था। यह टापू सुन्दर भवन, उपवन और मन्दिरोंसे सुसज्जित नगरोंसे पूरित था। इन नगरोंमें सबसे बड़ा नगर सैरैक्यूज़ था। इस नगरकी जन-संख्या

Physics भौतिक शास्त्र]

अब २५००० के लगभग है परन्तु तब इससे कई गुनी थी।

ईसामसीहके ३०० वर्ष पूर्व इस नगरमें वहांके राजाके बन्धुवर्गमें एक बालक उत्पन्न हुआ। बड़े घरमें जन्म लेनेपर भी उस बालककी रुचि पठन पाठनमें थी, और वह उसके बड़े होनेपर भी बनी रही। यदि वह चाहता तो अपना समय नाटकआदि देखनेमें बिताता परन्तु उसको सबसे अधिक आनन्द सृष्टिके चमत्कारोंके देखने और मनन करनेमें आता था। उसका दृढ़ विश्वास था कि सृष्टिमें सम्पूर्ण कार्य किसी नियमसे होते हैं और इस नियमकी खोजमें वह लगा रहता था। कभी बन्दरगाहमें, कभी जहाजोंपर, कभी नदीके किनारे वह अपने विचारमें मस्त बैठा रहता। कहते हैं कि जब वह किसी बातकी खोजमें लगजाता तो बिना उसके मालूम किये नहीं रहता। कभी चलते चलते सड़कमें बालूपर चित्र इत्यादि बनाकर सोचने लगता, कभी भोजन करते समय थालीमें ही चित्र बनाने लगता, कभी स्नानकर तैल मलनेके बाद गीले बदनमें ही चित्र बना बना सोचता रहता।

यह है हमारा चरित्र-नायक श्रीयुत आर्किमिडीज़। बेकन साहब ने एक बार लिखा है—"To try things often and never to give over, doth wonders." (किसी बातको बार बार करते रहने और हार न माननेसे मनुष्य अद्भुत चमत्कार कर सकता है)। यही सिद्धांत आर्किमिडीज़का भी था। आर्किमिडीज़ बड़ा परिश्रमी और बुद्धिमान मनुष्य था इसने कई बातोंका नियमित विचार किया परन्तु उसका नाम विज्ञान-विश्वमें चिरायु करनेवाला आर्किमिडीज़का सिद्धान्त है। वह किस प्रकार निकाला गया यह वृत्तांत हम अपने पाठकोंको सुनाते हैं। सैरेक्यूज़के राजाने सुनारको कुछ सोना देकर एक सुन्दर ताज बनवाया था। नियत समयपर सुनार ताज ले राजाके निकट उपस्थित हुआ, राजा ताजकी बनावटसे बहुत प्रसन्न हुआ और उसे तोलनेके उपरान्त सुनारको पारितोषिक दे बिदा किया। कुछ दिनों उपरान्त किसीने आकर राजासे कहा कि सुनार ने ताजमें चांदी मिलाकर महाराजको ठग लिया है। राजा बड़ा न्यायी था और बिना सच्ची बात जाने सुनारको दंड नहीं देना चाहता था। इस कारण राजाने आर्किमिडीज़को बुलाकर उससे यह निश्चय करनेको कहा कि ताजमें चांदी मिली है कि नहीं? और मिली है तो कितनी?

कुछ दिनों तक आर्किमिडीज़ इस प्रश्नके हल करनेकी चिन्तामें लगे रहे। इन्होंने इस ताजको तोलकर यह निश्चय कर लिया कि इसका वज़न ठीक उतना ही है जितना कि सोनेका था। देखनेमें भी यह शुद्ध सोनेका मालूम होता था, इस कारण इसमें यदि चांदी मिली हुई थी तो बहुत कम थी, और इस मिली हुई चांदीका अनुमान करना कोई सरल कार्य न था।

आर्किमिडीज़के उपायका वर्णन पढ़कर साधारण लोग इसकी सरलतापर आश्चर्य करेंगे, और इसको एक सीधी सादी बात जानकर आर्किमिडीज़को उस उच्च स्थानके योग्य न समझेंगे जो वैज्ञानिकोंने उनको दिया है। परन्तु यदि वह ऐसा समझें तो उनकी भूल है। किसीके किये हुए कार्यको दोहराना सरल बात है, इसमें मनुष्यकी कोई प्रशंसा नहीं है। प्रशंसनीय वही है जो किसी नवीन विचारको प्रगट करे अथवा किसी नये कार्यको कर दिखानेमें समर्थ होवे। आर्किमिडीज़का प्रयोग बड़ा ही सरल है, परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि इस महानुभावका प्रयोग लोगोंकी दृष्टिमें बिलकुल ही साधारण जँचे। प्रयोग साधारण ही सही किन्तु आर्किमिडीज़ इसका कर्त्ता है और इसके अतिरिक्त ऐसे प्रश्नको ऐसे साधारण क्रिया से हलकर देना विरले ही जनोंका काम है। यहांपर हमें एक कहानी याद आती है:—जब को-

लम्बस अमेरिकाको ढूंढ़कर पोर्तुगालको लौटा तो वहांके राजाने उसे बड़ा पारितोषिक देना चाहा, परन्तु राज-सभाके सभासदोंने राजाको पारितोषिक देनेसे यह कहकर रोक दिया कि कोलम्बसके कार्यमें कोई आश्चर्ययुक्त घटना दृष्टि नहीं आती, इस कार्यको तो कोई भी कर सकता था। उसी दिन संध्याको राजभवनमें बड़ाभारी भोज हुआ जिसमें कोलम्बस तथा सभाके समस्त सभासद उपस्थित थे। जब सब नियत स्थानोंपर बैठ भोजन करने लगे तो कोलम्बसने एक अंडा हाथमें ले सब लोगोंसे उसे मेज़पर सीधा खड़ा करनेको कहा। सभी प्रयत्न करके हार मान गये और अंतमें राजाने कोलम्बसको ऐसा करनेको कहा। कोलम्बसने जेबसे छुरी निकाल और अंडेका एक सिरा चपटा बना उसे मेज़पर खड़ा कर दिया। अब तो सब लोग चिल्लाने लगे कि ऐसा तो वे सब भी कर लेते। कोलम्बसने कहा-"तो किया क्यों नहीं"।

आर्किमिडीज़ने ताजको तोलकर निश्चय कर लिया कि इसका वज़न ठीक उतना ही है जितना कि सोना सुनारको दिया गया था। देखनेमें भी ताज बिलकुल सोनेका मालूम होता था। बहुत विचारके उपरान्त आर्किमिडीज़ने बराबर बराबर क़दके सोने और चांदीके डेले बनाये और इनको तोलकर देखा कि सोनेका डेला चांदीके डेलेसे करीब २ दुगुना भारी है। अब आर्किमिडीज़ने विचारा कि यदि इस ताजको गलाकर इसका डेला बनावें और ठीक उसी कदका शुद्ध सोनेका डेला बनावें तो इन दोनोंका तोल अवश्य ही बराबर होगा और यदि ताजवाले सोनेका डेला तोलमें असली सोनेके डेलेसे कम हुआ तो अवश्य ताजवाले सोनेमें कुछ कपट है। कुछ देरकेलिये तो आर्किमिडीज़ने ताजको गलाना ठान ही लिया परन्तु अन्तमें ऐसी सुन्दर बनावटके ताजको गलाना उचित न समझकर वह इसकी जांचका कोई और उपाय सोचने लगा।

आर्किमिडीज़ जिस किसी भी प्रश्नको सोचने बैठ जाता उसे बिना हल किये कभी न छोड़ता था। कई दिनों सोचनेके उपरान्त आर्किमिडीज़के मनमें एक विचार उत्पन्न हुआ। उस समयके यूनानी बहुधा एक बड़े भारी प्यालेके आकारके वर्तनमें नहाया करते थे। यह प्याला एक बड़े थालके बीचमें रक्खा जाता था ताकि पानी छलककर इस थालके अन्दर आगिरे और कमरेको गीला न करे। इस प्रकारके भरे हुये प्यालेमें आर्किमिडीज़ जा बैठा और अपने सारे शरीरको पानीमें डुबोया और जब वह प्यालेसे बाहर निकला तो प्याला आधा खाली हो गया। 'अवश्य यह पानी उतनी ही जगहको घेरेगा जितना कि उसके शरीरका आयतन है'। आर्किमिडीज़ने सोचा जब मैं बिना अपने शरीरको गलाये हुये भी इसका आयतन जान सकता हूं तो क्या कारण है कि ताजका आयतन बिना उसे गलाये मुझे मालूम न हो। इस विचारसे वह इतना प्रसन्न हुआ कि नंगा ही मकानसे बाहर निकला "मुझे मालूम हो गया" "मुझे मालूम हो गया" चिल्लाता हुआ भागा।

अब तो आर्किमिडीज़ने एक प्यालेको पानीसे पूरा भरा और ताजको तागेसे बांध इस पानीमें डाला। जितनी जगह ताजने घेरी उतना पानी प्यालेसे बाहर निकल गया इस पानीको मापकर आर्किमिडीज़ने यह मालूमकर लिया कि ताजका आयतन कितना है। और इसने ताजके बराबर सोना और चांदीको भी अलग २ तोला और उनके अलग २ डेले बनाये। अब आर्किमिडीज़के पास बराबर बराबर तोलवाली तीन वस्तुयें हो गयीं। पहला तो ताज, दूसरा सोनेका डेला और तीसरा चांदीका डेला था। इसने इन तीनोंको पानीमें बारी बारी से डुबोकर देखा कि

चांदीका डेला सोनेके डेलेसे दुगुनी जगह घेरता है। अंतमें इसने ताजको फिर पानीमें डुबोया और यह मालूम किया कि ताजका आयतन सोनेके डेलेसे ज़ियादा और चांदीकेसे कम था। इससे यह निश्चय हो गया कि ताजमें कुछ न कुछ चांदी मिली हुई है। अब आर्किमिडीज़ने ताजके बराबर सोने और चांदीके मिले हुए डेले बनाये जिनमें कि सोने और चांदीकी मात्राएँ भिन्न भिन्न थीं। अंतको आर्किमिडीज़ एक ऐसा मिश्रित डेला बना सका जोकि आयतनमें और वज़नमें ठीक ताजके बराबर था। इसको देख वह बादशाहके पास गया और उसको यह बतला दिया कि इतनी चांदी सोनेमें मिली हुई है। बादशाह इससे बड़ा प्रसन्न हुआ और सुनारको बुलवा कर उससे इस बातका निश्चय करवाया और उसे उचित दंड दिया। अब तो आर्किमिडीज़ अपने प्रयोगको कई प्रकारसे करने लगा। एक बार उसने किसी वस्तुको तोला और इस वस्तुको तागेसे पानीमें लटकाकर तोला इससे मालूम हुआ कि इस प्रकार वस्तुकी तोल घट जाती है और यह घटत उस पानीके वज़नके बराबर है जो उस वस्तुसे हट गया है। आर्किमिडीज़ ने इस नियमको इस प्रकार रक्खा। हर एक वस्तु पानीके भीतर कम तुलती है और इस तोलकी घटत उतने ही पानी की तोलके बराबर होती है जितना पानी कि वह वस्तु हटा देती है*। इस नियमका नाम आर्किमिडीज़का नियम है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि यह नियम कितना उपयोगी है, इस नियमसे प्रत्येक वस्तुका आयतन मालूम हो सकता है। और इस नियमके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी जांच कर लेना सम्भव है क्योंकि बराबर तोलवाली भिन्न भिन्न वस्तुओंका विस्तार एक ही नहीं होता है। जैसे एक सेर लोहेका एक छोटा सा डेला होता है पर एक ही सेर रूईका ढेर लग जाता है। इस प्रयोगके हो जानेके पचास वर्ष उपरान्त रूमी लोगोंने सैरैक्यूज़पर चढ़ाईकी और आर्किमिडीज़को सैरैक्यूज़ नगरके बचावका भार सौंपा गया। उसने बड़े बड़े पत्थरोंको दुश्मनोंके जहाज़ोंपर फैंकनेकेलिये यंत्र बनाया जिस कारण रूमी लोगोंके बहुतसे जहाज़ डूब गये। रूमी सेनापतिने आर्किमिडीज़की बड़ी प्रशंसा की और अंतमें जब इसने सैरैक्यूज़पर अधिकार जमाया तो अपने सिपाहियोंसे आर्किमिडीज़को छोड़ देनेको कहा। जिस समय सिपाही भीतर पहुंचे आर्किमिडीज़ एक गणितके प्रश्नको हल करनेमें लगा हुआ था। और इसके चारों ओर बालूपर चित्र बने हुये थे। जब सिपाहियोंने इसका नाम पूछा तो इसने उत्तर दिया "अभी ठहर जाओ हम अपना प्रश्न हल करलें तब तुम्हें उत्तर देंगे और हमारे चित्रोंको पैरसे न कुचलो"। इसपर सिपाहीको क्रोध आया और उसने आर्किमिडीज़को वहींपर मार डाला। मार्किलिज़ यह हाल सुनकर बहुत खेदित हुआ और बिचारे आर्किमिडीज़के बन्धु बान्धवोंको धन देकर बिदा किया।

* इसी नियमकी सहायतासे हमारे देशके स्वर्णकार चपड़ी या लाख भरी हुई सोनेकी चीज़को जलमें तोलकर असली सोनेका वज़न मालूम कर लेते हैं।

वैज्ञानकीय

दिल्लीके पुलिस कप्तानने एक्सरेज़ का एक बड़ा ही सुन्दर उपयोग कराया है। २२ जूलाईके आर्य्य गज़टमें छपा है कि इन्स्पेक्टर मार्स एक छतपर खड़े हुए थे। उनके साथके एक सिपाहीने इंस्पेक्टर साहेबको नीचे सीढ़ियोंपर एक गिरहकटको एक बनियेकी चोरी करते हुए दिखलाया। इंस्पेक्टर साहेबने गिरहकटको पकड़ लिया। बनियेसे पूछनेपर मालूम हुआ कि उसके ३ रूपये दो आने जेबसे

निकल गये हैं। पर चोरकी तलाशी लेनेपर उसके पास केवल १ रू० दो आने निकले। इंस्पेक्टर साहेब बड़े चक्करमें पड़ गये। पर वे अपनी आंखोंपर भी यदि विश्वास न करते तो करते किसपर। ज़बरदस्ती गिरहकट को कप्तान साहेबने पकड़ लिया। कप्तान साहेबको यकबारगी सूझ गयी। उन्होंने कहा हो न हो इस चोरने दो रूपिये निगल लिये हैं। चोर ऐसा किया ही करते हैं। उसका इम्तहान एक्स-रेज़से करवाया गया तो सचमुच दो रूपिये उसके पेटमें दिखलायी पड़े। जुलाब दिलाकर रूपिये उसके पेटसे निकलवा लिये गये।

* * * *

मेडिकल समरीमें डाक्टर विलसनने लिखा है कि नारंगीका रस गुरदेको ठीक रीतिसे काम करनेका उत्तेजना देनेमें अक्सीर है। ऐसा करनेमें यह गुरदेको कुछ भी हानि नहीं पहुंचाता। मधुमेह और वमन विकार को छोड़-कर वह सब प्रकारके ज्वरमें दिया जा सकता है। अन्तर ज्वरमें उसे मोटे कपड़ेमें दो मर्तबा छानकर देना चाहिए। प्रतिदिन एक या अधिक मीठी और बड़ी नारंगी खाना अच्छा है। आदमीको इस बातकी प्रतीक्षा न करनी चाहिए कि जब वह बीमार पड़े तभी नारङ्गी खाना प्रारंभ करे। नारंगी पित्त विकार जन्य सरदर्द और आंत तथा अम्लके अजीर्णोंको दूर करती है। बुढ़ापेमें वह भोजन पचानेमें सहायता देती और अग्नि-मांद्यको दूर करती है। अंतमें डाक्टर विलसन कहते हैं कि हमारे आदिम माता पिता, आदम और हौआ, एडेनकी बाग़में फल और मींगियोंपर-जिनमें अख़रोटकी मींगी भी शामिल थी-बसर करते थे। यदि वे इसी भोजनपर संतुष्ट रहते तो शायद आज भी एडेन-की बाग़में वे सैर करते हुए दिखलायी पड़ते और हम लोगोंके नाम संसारमें बहुत कालतक बसेरा करनेका पट्टा छोड़ जाते।

सम्पादकीय

बड़े हर्षका बात है कि परिषत्‌के सभ्य श्रीयुत जगद्बिहारी सेठ, बी. एस-सी. ने प्रयाग विश्वविद्यालयकी ओरसे विलायतमें शिक्षा लाभ करनेकेलिए स्टेट स्कालरशिप पाया। हम सेठजीको उनके विद्याव्यसन, अनवरत परिश्रम और श्रेष्ठ बुद्धिमत्ताके कारण इस दुर्लभ और गौरवास्पद छात्रवृत्ति पानेपर बधाई देते हैं। सेठजी हिन्दी प्रेमी और विज्ञान-शिक्षाके अनन्य पक्षपाती हैं। विलायतमें भी आप और किसी विषयको न लेकर विज्ञान-शिक्षाका ही लाभ करेंगे। हमें आशा है कि सेठजी अपना अध्य-यन समाप्तकर अपनी असाधारण बुद्धिको प्रकाश करेंगे और कुशलपूर्व्वक स्वदेश लौटकर अपनी मातृभूमि और मातृभाषाकी हित-चिंतनामें तत्पर हो जायेंगे।

* * * *

विज्ञप्ति

श्रीयुत कुञ्जविहारी सेठके (शेशंस व सबोर्डिनेट जज्ज, सीतापुर) पुत्र श्रीयुत जगद्बिहारी सेठ, बी. एस-सी. को प्रयाग विश्वविद्यालयकी ओरसे विलायतमें अध्ययन करनेकेलिए स्कालरशिप मिला था। वह सकुशल ३० दिसम्बरको लण्डन पहुंच गये। इस अवसरपर जज्जसाहबने परिषत्‌को २५) रु० दान किया। हम जज्जसाहबको अनेक धन्यवाद देते हैं।

गोपालस्वरूप भार्गव
मंत्री।

* * * *

प्राप्ति स्वीकार

निम्नलिखित सज्जनोंकी द्रव्यप्राप्तिको हम सहर्ष स्वीकार करते हैं:—

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग २ { कुम्भ, संवत् १९७२। फ़रवरी सन् १९१६। } संख्या ५

मंगलाचरण

लोहा तांबा रंग सीसके अंग परेखे,
पल्लव पुष्प पखड़ियां तक पेड़ोंके देखे,
जल थल नभमंडलका सारा जीवन जांचा,
सचराचरमें मिला कोई निर्जीव न सांचा,
दिखलायी व्यापकता विमल विश्वावसु जगदीशकी,*
विज्ञान धन्य सुस्पष्टकी जिसने सत्ता ईशकी।

—रामदासगौड़ एम्. ए.

* भारतके देदीप्यमान रत्न बिज्ञानाचार्य्य जगदीशचन्द्र वसुने गत सत्रह वर्षके अनवरत परिश्रमसे सैकड़ों परीक्षाओंद्वारा विज्ञान संसारमें यह सिद्ध कर दिखाया है कि लोहा रांगा आदि धातुओंपर भी भंग आदि मादक और संखिया आदि विषका वैसेही प्रभाव पड़ता है जैसे माने हुए सजीव पदार्थोंपर। उनके प्रयोगोंसे सिद्ध होता है कि समस्त चराचरमें कोई ऐसी समान सत्ता है जिसे जीवन कह सकते हैं। अध्यापक जगदीश चन्द्र वसु इस सिद्धान्तके आचार्य्य हैं, इसीलिए उनका नाम भी इस छप्पयमें आगया है। ले०

प्राचीन समयके घर तथा स्वास्थ्य विधान

[ले० महामहोपाध्याय डा० गङ्गानाथ झा, एम. ए., डी. लिट.]

घर आठ प्रकारके होते थे। (१) मन्दिर—पत्थरका बना, (२) वास्तु-पक्की ईंटका बना, (३) सुमन्त—कच्ची ईंटका, (४) सुधार—मिट्टीका, (५) मानस्य—लकड़ीका, (६) नन्दन—बांसका, (७) विजय-कपड़ेका, (८) कालिम—घासका।

घर मज़बूत होना चाहिये। हवाका झोंका न आने पावे, पर एक भाग ऐसा हो जहां अच्छी हवा चारों ओरसे आवे। कमरे संकीर्ण न हों, घरवाले अच्छी तरह चल फिर सकें ऐसा होना आवश्यक है। किसी दूसरे ऊंचे मकानके नीचे बहुत समीपमें घर नहीं बनाना चाहिये। प्रकाश तथा वायु घरमें अच्छी तरह आवे। जहाँ बहुत धुआँ वा अधिक धूप आती हो वहाँ घर नहीं

[स्वास्थ्य रक्षा Sanitation]

बनाना। अधिक तीव्र धूपका भी घरमें आना ठीक नहीं। किसी प्रकार दुर्गन्ध वा उत्कट कटु शब्द जहाँ आता हो वहां घर नहीं बनाना। घरकी कुरसी इतनी ऊंची हो जिससे उसमें जानेकेलिए सीढ़ियोंकी आवश्यकता हो। रसोईका घर, स्नानका घर तथा पाख़ाना रहनेके घरसे अलग और पृथक् पृथक् होवें, इत्यादि उपदेश चरक-संहिता सूत्रस्थान अध्याय १५ में लिखा है।

चरकसंहिता निदानस्थान अध्याय २ में भी ये उपदेश पाये जाते हैं। जहाँ दुर्गन्ध हो-ज़मीन सूखी न हो—जहाँ सर्प, क्षुद्र कीड़े, चूहे, मच्छड़ हों-जहाँ जँगली घास अधिक हो--जो भूमि ऊसर हो, जहाँ धूआं अधिक आता हो—जहाँ आसपासके मनुष्य दुःशील तथा दुर्व्यवसायी हों—जहाँ भूकम्प होता हो--जहाँ सूर्यका प्रकाश अच्छी तरह न आता हो—ऐसी जगहमें रहनेका घर कभी नहीं बनाना चाहिये।

पाखाना अलग होना चाहिये—ऐसा चरक-में कहा है। पर यह घर रोगियोंकेलिए है। सामान्यतः मनुष्योंकेलिए मैदानमें ही जाना उचित बतलाया गया है। शास्त्रोंमें कहा है कि घरसे बाहर निकलकर जहाँतक ज़ोरसे चलाया हुआ तीर पहुंचे कमसे कम उतनी दूर जाना आवश्यक है। फिर वहाँ जाकर क्या और किस तरह करना चाहिये सो उल्लेख करना प्रायः आजकलके विचारसे अश्लील समझा जायगा। पर इतना लिखदेनेमें कुछ हानि नहीं कि आदिमें घास बिछादेना फिर अन्तमें घास डालकर मिट्टी डाल देना, मूत्रत्याग करनेपर भी ढेरसा पानी गिराना इत्यादि ऐसे नियम बनाये गये जिससे किसी प्रकारको दुर्गन्ध फैलनेकी सम्भावना न रहे।

एक गृहस्थीमें पाँच घर होने चाहियें। इन-के बीचमें आँगन। घर कितने बड़े हों सो गृहस्थ की जाति अथवा वृत्तिपर निर्भर था। राजा, मन्त्री, सेनापति, ब्राह्मण, शिल्पी—इनके घरोंके भिन्न भिन्न परिमाण बताये गये हैं। इस निबन्धमें ब्राह्मणके घरके परिमाण आदि निरू-पित किये जाएँगे।

पाँच घरोंमें सबसे बड़ा घर ३२ हाथ, दूसरा २८, तीसरा २४, चौथा २०, पांचवां १६ हाथ चौड़ा होना चाहिये। चौड़ाईमें उसके दशम अँश जोड़ देनेसे जो संख्या मिले उतनी ही घर-की लम्बाइकी होगी, अर्थात् उन पांचों घरोंकी लम्बाई यों होगी। (१) $३२ + \frac{३२}{१०}$ हाथ, (२) $२८ + \frac{२८}{१०}$, (३) $२४ + \frac{२४}{१०}$, (४) $२० + \frac{२०}{१०}$, (५) $१६ + \frac{१६}{१०}$

पर गोशाला, धान्यगृह तथा अग्निशालाके परिमाणमें कोई नियम नहीं रक्खा है। यह उचित ही है क्योंकि सब आदमियोंको एक सीं गोशाला, धान्यशाला, अग्निशालाकी आवश्यकता नहीं हो सकती। जिसकी गायें अधिक होंगी अन्न अधिक होगा, वा जो यज्ञानुष्ठान अधिक करेगा उसकेलिए बड़े घरोंकी आवश्यकता होगी।

आँगनकी ओर सब घरोंमें बरामदा चाहिये। बरामदेकी चौड़ाईका यह नियम है :—
$\frac{(\text{लम्बाई} + \text{चौड़ाई}) \times २}{१४}$ अर्थात् ब्राह्मणके प्रथम घरके बरामदे की चौड़ाई यह होगी —
$\frac{(३२ + ३२ + \frac{३२}{१०}) \times २}{१४} =$, अर्थात् लगभग १० हाथ। पर मत्स्यपुराणके अनुसार बरामदेकी चौड़ाई घरकी चौड़ाईकी आधी होनी चाहिये। अर्थात् उक्त घरका बरामदा १६ हाथ चौड़ा होगा।

बृहत्संहिताके अनुसार बाहरी ओर चबूतरे होने चाहियें—पर मत्स्यपुराण यहां भी बरामदा होना उचित बताता है।

घरके सौन्दर्यकी ओर भी ध्यान दिया जाता था। मत्स्यपुराणमें लिखा है कि जब कभी घर-के बढ़ानेकी आवश्यकता हो तो उसे एक ही तरफ़ नहीं चारों तरफ़ बढ़ाना चाहिये।

मकानकी कुरसी चौड़ाईके षोडशांशसे कम नहीं और द्वादशांशसे अधिक नहीं होनी चाहिये। उक्त घरकी कुरसी २ हाथ वा २$\frac{१}{२}$ हाथ होगी, ऐसा मत्स्यपुराणमें कहा है, परंतु विश्वकर्माके अनुसार सब घरोंकी कुरसी २$\frac{१}{२}$ हाथ होनी चाहिये।

बृहत्संहिताके अनुसार दीवारकी मुटाई घरकी चौड़ाईका षोडशांश होना चाहिये। उक्त घरकी दीवार २ हाथ मोटी होगी। घरकी चौड़ाईके हिसाबसे दीवारकी मुटाई होना उचित है क्योंकि जितना चौड़ा घर होगा उतनी ही लम्बी और मोटी धरन लगेगी और धरनके बोझ सम्हालनेके योग्य दीवार भी मोटी होनी चाहिये।

बृहत्संहिताके टीकाकार भट्टोत्पलने कहा है कि ये सब नियम ईंटके मकानोंके हैं। फूसके मकानमें ये सब नियम नहीं लगते। फूसके घरोंमें तो ज्योतिषी लोग मास दिनका भी विचार नहीं आवश्यक समझते। कहते हैं-

"तृणदारुगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते॥

मकानकी उँचाई चौड़ाईसे अधिक नहीं होनी चाहिये। परन्तु अग्निपुराण (अध्याय १०४, श्लोक २७) के अनुसार मकानकी उँचाई चौड़ाई की दुगनी होनी चाहिये।

घरके दरवाज़ोंके परिमाणके भी नियम बतलाये गये हैं। बृहत्संहिताके अनुसार दरवाज़ेकी चौड़ाइ यों है—

$$\frac{\text{घरकी चौड़ाइ}}{५} + १८ + \frac{\text{घरकी चौड़ाइ}}{८}$$

अर्थात् पूर्वोक्त घरमें—

$$\frac{३२}{५} + १८ + \frac{३२}{८} = २८ \text{ वा } २९ \text{ अंगुल}$$

अर्थात् लगभग २$\frac{१}{२}$ फ़ट

मत्स्यपुराणमें दरवाज़े की चौड़ाई ७ फ़ट बताई है। पर इसको राजाके प्रासादका समझना चाहिये। बृहत्संहितामें राजभवनके दरवाज़ेकी उँचाई १५$\frac{१}{२}$ फ़ट बताई है और मत्स्यपुराणमें कहा है कि उँचाईकी आधी चौड़ाई होनी चाहिये। पर बृहत्संहिताके मतसे दरवाज़ेकी उँचाई चौड़ाईकी तिगुनी होनी चाहिये। इससे पूर्वोक्त घरका दरवाज़ा जिसकी चौड़ाई लगभग २$\frac{१}{२}$ है लगभग ७ फ़ुट ऊंचा होगा।

एक घरमें चारों ओर दरवाज़े होना उचित है। पर एक दरवाज़ेके ठीक सामने दूसरा दरवाज़े अनिष्ट समझा जाता था। मत्स्यपुराणमें कहा है कि दरवाज़ेके ठीक सामने दूसरे दरवाज़ेको यमराजका मुख समझना। आजकलभी देहातोंमें कारीगर कभी ठीक ठीक सामने दो दरवाज़े नहीं बनाते। मालिकके आग्रह करनेपर भी वे कुछ न कुछ एक आध अंगुलका भी हेर फेर अवश्य कर देते हैं।

खम्भे या पाए बनाने के भी नियम बृहत्संहिता में पाये जाते हैं। कुरसी के ऊपर पाए की उचाई १० हाथ, १८ अंगुल होगी। जड़में पाएके व्यास का परिमाण $\frac{\text{उँचाई} + ९}{८०} = २९$ अंगुल है फिर ऊपरकी ओर क्रमशः कम होता जायगा, सबसे ऊपर जाकर व्यास २५ अंगुल होगा। व्यासकी तिगुनी पाएकी गोलाइ होगी।

पाएके आकारके प्रसंग ये नियम हैं:—

समस्त पायेको ९ भागोंमें बांटना।

प्रथम नवमांश—पिढ़िआ होगी, उसके ऊपरका
द्वितीय नवमांश—घटके आकारका होगा
तृतीय नवमांश—कमल के आकारका होगा।
चतुर्थ नवमांश—का नाम उत्तरोष्ठ बतलाया है, अर्थात् चारों ओर नीचेकी तरफ़ मुडा हुआ रहेगा। इसके ऊपर पाया होगा। यह चतुर्भुज (रुचक) अथवा अष्टभुज (वज्र) अथवा षोडश-

भुज (द्विवज्र) अथवा द्वात्रिंशद्भुज (प्रलीनक), अथवा गोलाकार (वृत्त) होगा।

इन पायोंके ऊपर लम्बक्रमसे धरन रक्खे जायंगे-जिनकी मोटाई पाएके बराबर होगी।

इससे यह स्पष्ट होता है कि इस देशमें पहले मेहराव-खिलानकी चाल न थी। अब भी जितने प्राचीन मन्दिर वर्तमान हैं उनमें मेहरावके स्थानमें ऐसा देखा जाता है—
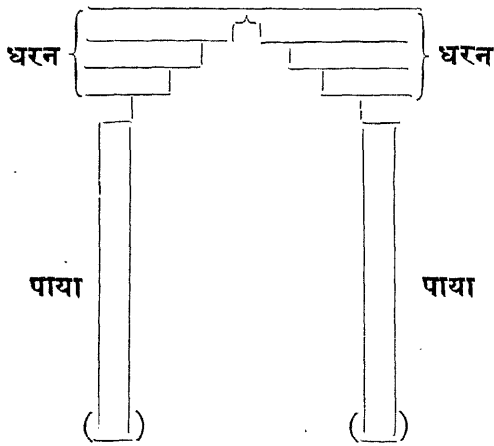
घरके बनानेमें पक्के पुराने सामानोका मिलानात था पक्कीमें कच्ची ईंटोंका भी मिलाना अनुचित समझा जाता था। पर यदि उपाय न हो और ऐसे मिलानेकी नितान्त आवश्यकता हो तो ज़मीनके नीचे नीवमें कच्ची ईंट डाली जांय-फिर उनके ऊपर पक्की ईंट। ज़मीनके कुछ दूर ऊपरतक पक्के ईंट डालकर फिर पक्की या कच्ची ज़ो हो सकें लगाना चाहिये।

मकान में कौन कौन लकड़ी लगानी चाहिये इसके प्रसंग वृहत्संहिता में लिखा है कि कांटेदार वृक्ष वा जिन वृक्षोंसे दूध निकलता है, वा कदम्बका, या भेलाकी लकड़ी मकानमें कभी नहीं लगाना। कटहल और चन्दनको बहुत प्रशस्त माना है।

लकड़ियोंके नियमोंका मूल क्या था सो विचारणीय है। मकानकी दृढ़ताकी दृष्टिसे ये नियम बनाये गये ऐसा नहीं ज्ञात होता है। क्योंकि कांटेदार वृक्ष जैसे बबूल इत्यादि-मज़बूत होते हैं। पर इनका लगाना मना किया है। ऐसा अनुमान होता है कि ये नियम स्वास्थ्य विचार मूलकी हैं।

किस कामका घर किस दिशामें हो इसके प्रसंगमें वहत्संहति और अग्निपुराणमें नियम ऐसे हैं—

पूर्व दिशामें	श्रीगृह
पूर्व दक्षिण कोणमें	रसोईका घर
दक्षिण दिशामें	शयन गृह
दक्षिण पश्चिम कोणमें	आयुधागार (अग्निपुराण) बरतन रखनेका घर (बृहत्संहिता)
पश्चिम दिशामें	भोजन गृह
उत्तरपश्चिम कोणमें	धान्यसञ्चय
उत्तर दिशा में	द्रव्यसंस्थान (ख़ज़ाना)
पूर्व उत्तर कोणमें	देवगृह

घरोंके चारों तरफ़ कुछ खुला हाता सा रहता था, ऐसा अनुमान होता है। इस हातेके दो दरवाज़े होते थे। मुख्य पूर्व दिशामें और एक दक्षिण दिशामें जिसके द्वारा सब प्रकारके मैली चीज़ें वाहर निकाली जाती थीं और इसी दरवाज़ेके पास लकड़ी इकट्ठी की जाती थी, चोरी जाती थी और भी कूड़ा करकट-वाले काम यहीं होते थे, सामने की ओर कभी नहीं।

जलाशयसे अधिक दूर घर नहीं बनाना। घरके पास वृक्ष तथा फूलके वृक्ष हों-अर्थात् जिधर जलाशय है उसी तरफ़ फुलवाड़ी हो। सब कामकेलिये अलग अलग जगह हो। सोनेकेलिए दो कमरे हों-उनमें पलंग हो-जिसपर साफ़ चादर बिछी हो-ये चादर प्रतिदिन अथवा तीसरे दिन अवश्य धोई जाएं। पलंग पर दो तकिये हों-एक सिरकी तरफ़ दूसरा पैरके तरफ़

जानेकी संभावना है। मोती यथार्थमें मर भी जाते हैं। उनकी चमक दमक नष्ट होनेसे तथा उनपर बाल या धब्बा पड़ जानेपर उन्हें मरा हुआ मोती कहा करते हैं। हमारे देशमें, सुना जाता है, कि अब भी ऐसे ऐसे रसायनिक विद्यमान हैं जो मरे हुये मोतीको सजीव कर सकते हैं। पर इनकी यह क्रियाएँ बड़ी गुप्त होती हैं, और उनका पता लगना प्रायः असंभव ही जान पड़ता है। सर डी. बृउस्टर (Sir D. Brewster) ने सबसे पहले यह बात दिखलायी थी कि सीपी-में इन्द्रधनुषके रङ्गोंके विद्यमान होने का यथार्थ कारण प्रकाशका एक विलक्षण गुण है। सीपीके अति सूक्ष्म संकुचित भागोंपर पड़नेवाली प्रकाश किरणोंके समाघातपर इस प्रकारकी अद्भुत घटना निर्भर है।

हमारे बहुतसे पाठक यह न समझे होंगे कि प्रकाशकी किरणोंका समाघात (Interferance) प्रकाशका कौन सा विलक्षण गुण है। इस छोटे-से लेखमें हम उन्हें यह प्रसंग भली भांति न समझा सकेंगे, इसलिए हम इस घटनाको अन्य भांति समझानेकी चेष्टा करेंगे। बहुतसे पाठकोंने यह अवश्य ही देखा होगा कि जिस समय पानीपर तेलकी बूंद गिर पड़ती है तो पानीकी तहपर तरह तरहके रंग दिखलायी पड़ते हैं, जिनमेंसे नीला और पीला ही विशेष चटकीले होनेके कारण देखनेमें आ सकते हैं। इन रंगोंके दिखलायी पड़नेका कारण भी यही समाघात है।

यदि हम किसी सीपके टुकड़ेको तेज़ाबमें डालदें तो हम देखेंगे कि थोड़े ही देरमें चूनेके पत्थरका अंश (Carbonate of lime) सब घुल जायगा और प्यालेमें एक बहुत कोमल, पतली, झिल्ली रह जावेगी। यदि सावधानीसे हम प्यालेमेंसे तेज़ाब गिरादें, तो हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य होगा कि इस झिल्लीमें भी उसी प्रकार इन्द्रधनुषके दर्शन हो रहे हैं। इस झिल्लीको दबाने वा बढ़ानेसे इसका यह विलक्षण गुण जाता रहता है।

यह बात हम पहले ही लिख चुके हैं कि अन्य भयंकर कीटोंके आक्रमणसे अपनेको बचानेकेलिए यह मांसाशी कीट इस मल रूपी पदार्थको परित्यागकर अपने ही हाथों अपनी क़ब्र बना लेता है। ऐसा करनेसे यह उस समय तो बच ही जाता है पर अन्तमें यह चतुर-शिरोमणि-जीव मनुष्यके चंगलमें आ फंसता है। प्रायः यह कीट अन्य कारणोंसे भी इस प्रकारकी समाधि बना लेता है, पर यह मोती बहुत छोटे घटिया और खोखले होते हैं। यथार्थ मोती और सीप एक ही पदार्थ हैं, क्योंकि यह एकसे ही तत्त्वोंसे बने हुए हैं। दोनों ही द्विकोष-कीटोंकी ऊपरी खाल या झिल्लीसे बने हुए हैं। भेद केवल इनके आकारका है। जिस मोतीकी झिल्लीका रंग सफ़ेद होता है वह सफ़ेद मोती कहलाता है।

प्रायः बहुतसे द्विकोष-कीटोंके कुछ भागों-पर कुछ लाल रंगके से मोती पाये गये हैं। इन्हें गुलाबी मोती कहते हैं। उत्तम मोतीकी जौहरियोंकी भाषामें यह पहचान है कि उस-का कोमल, निर्मल, आभापूर्ण शरीर गोलाकार हो और उसकी सफ़ेद झलक अति उज्ज्वल और स्वच्छ हो। इस प्रकारके उत्तम मोती बहुत कम मिलते हैं। रूस देशमें मौस्को (Moscow) नगर-के अजायबघरमें एक बहुत सुंदर 'ला पैली-ग्रीना' नामका मोती मौजूद है। यह बिल्कुल गोलाकार है।

पिछले ५० वर्षसे यूरोपीय विद्वान इस खोजमें लगे हुए हैं कि मोती किस प्रकार बनते हैं, और उनमेंसे बहुतोंने अपने अपने अनुभव द्वारा जो जो कारण बतलाये हैं, वे कहांतक सत्य हैं, इस विषयको निर्णय करना कुछ असंभव सा जान पड़ता है। यह बात तो सभी मानते हैं कि प्रायः सभी प्रकारके मोती एक छोटेसे परान्न-

मोती बननेकी चार अवस्थायें
अ—कीटकी बाहरी भिल्ली–ब–सीपकी बाहरी भिल्ली
स—भिन्न पदार्थ–प–कंचुकी
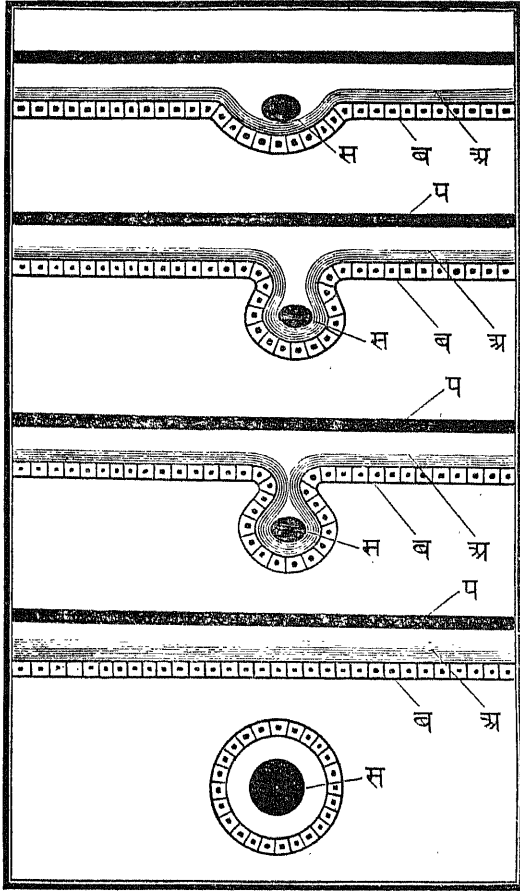
भोजी कीट Parasite के मृतक शरीरसे बने होते हैं जो एक मांसाशीकीट (Mollusc) के तन्तुओं (Tissues) में पायाजाता है और जिसके चारों ओर चूनेके पत्थरका (Carbonate of lime) घेरा होता है। (Herdman) हार्डमैन और हारनेल (Hornell) का, जिन्होंने सीलोन द्वीपके मोतियोंकी भली भांति देख रेख की है, यह कहना है कि यह मोती एक कीटके आधार-पर बने हुए हैं। यह कीट गोलाकार होता है और जब द्विकोष-कीटके पेंडूमें पहुंचकर मर जाता है तो इसके मृतक शरीरपर चूनेके पत्थर की समाधि बन जाती है। फ्रेंच विद्वान (Dubois) ड्यूबोईके कथनानुसार मोती जो बहुत प्राचीन कालसे बहुमूल्य रत्न कहा जाता है, यथार्थमें एक कीड़ेका समाधि-स्थान है।

यूरोपमें पहले पहले यह विचार बहुत कुछ जड़ पकड़ गया था कि इन द्विकोषकीटोंमें रेत आदिके भी छोटे छोटे दाने गिर जानेसे इन-पर चूनेका खोल चढ़ जाता है और यह मोती बन जाते हैं। चीनी विद्वान बहुत प्राचीन कालसे इस मतके अनुसार व्यवहार करते आये हैं, और उन्होंने इसमें सफलता प्राप्त की है। बुद्ध भगवानकी अति सूक्ष्म मूर्तियों-को वे इन जीवित कीटोंके पेंडूमें रख देते हैं और थोड़े दिनों के बाद इनपर मोतीकी सी भिल्ली चढ़ जाती है।

बहुत से वैज्ञानिकोंका मत है कि अति उत्तम मोती एक प्रकारकी लंबी पट्टीके आकारवाले कीटोंसे बनते हैं। इन कीटोंको सेस्टोईड (Cestoid worms) कहते हैं ट्रिमेटोड (Trematode) नामक कीट भी मोती पैदा करते हैं।

पैरिसके एक माला बनानेवालेने जिसका नाम जैकिन (Jacquin) था सबसे पहले कृत्रिम रीतिसे झूंठे मोती बनाये थे। हालमें फ्रांस, जर्मनी और इटाली देशोंमें ही यह अधिक बनाये जाते हैं। कांचके खोखले गोलोंमें Essence d' Orient डालकर मोमसे खाली जगहको भर देते हैं, और मोतीकी सी जिला देनेकेलिए, बड़ी सावधानीसे इनपर हाईड्रो फ्लोरिक अम्ल (Hydrofluoric Acid) का प्रयोग करते हैं।

गुप्तवंशका इतिहास

[ले० नरेन्द्रदेव, एम. ए., एल-एल. बी.]

गुप्तवंशके प्रभावका इतिहास अंधकारसे आच्छन्न है। चन्द्रगुप्त (प्रथम) से पूर्व इस वंशका इतिहास बहुत थोड़ा मालूम है। कतिपय शिलालेखोंमें वंशवृत्त दिया हुआ है। उनसे विदित होता है कि इस वंशके मूल पुरुष महाराजगुप्त हुए हैं।

समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्तिमें वंशक्रमका उल्लेख है*। महाराज गुप्त आदिपुरुष हैं। इनके उत्तराधिकारी महाराज घटोत्कच हुए जैसा कि फुटनोटके वंशक्रमसे विदित होगा। गुप्त तथा घटोत्कच "महाराज" की उपाधिसे विभूषित थे परन्तु इनके वंशधरकी उपाधि "महाराजाधिराज" थी। उपाधिभेदसे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि 'गुप्त' तथा 'घटोत्कच' उतने प्रतापी तथा ऐश्वर्यवान नहीं थे जितना कि उनके उत्तराधिकारी समुद्रगुप्त इत्यादि थे। गुप्त तथा घटोत्कच साधारण राजा प्रतीत होते हैं। इनका राज्य विस्तृत नहीं था वरंच अल्प परिमाणका था और ये किसी महाराजाधिराजके अधीन थे। अनुमानसे हम यह कह सकते हैं कि गुप्तका राज्य पाटलिपुत्रके सन्निकट रहा होगा। विद्वानोंमें इस बातपर मतभेद रहा है कि वास्तविक नाम "गुप्त" है वा "श्रीगुप्त"। लासेन साहेब ने (Lassen, Indische Altertumskunde, ii. पृ० ६४३ में) अपना मत प्रगट किया था कि यथार्थमें नाम केवल 'गुप्त' है परन्तु इस मतको सब विद्वानोंने उस समय स्वीकार नहीं किया था, परन्तु जब डाकूर फ्लीटने लासेन साहेबके विचारकी पुष्टिमें कुछ सुदृढ़ प्रमाण प्रस्तुत किये तब अधिकांश विद्वानोंको यह मत ग्राह्य हुआ। फ्लीट साहेबने अपना यह विचार समुद्रगुप्तकी प्रयाग-प्रशस्तिके संबन्धमें प्रगट किया है।

विंसेंट स्मिथ (Vincent Smith) का मत है कि पूरा नाम 'गुप्त' नहीं 'श्रीगुप्त' है। उनका कथन है कि केवल 'गुप्त' किसी व्यक्ति विशेषका नाम नहीं हो सकता क्योंकि 'गुप्त' शब्द 'गुप्' धातुमें 'क्त' प्रत्यय लगानेसे बना है और इसका अर्थ 'रक्षित' है। इससे पूर्णभाव नहीं निकलता। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि किसके द्वारा रक्षित। अतः उनका यह कहना है कि पूरा नाम 'श्रीगुप्त' (श्रियागुप्तः = लक्ष्मी द्वारा रक्षित) होना चाहिये। इसके उत्तरमें डाक्टर फ्लीट प्रसिद्ध बौद्ध भिक्खु 'उपगुप्त' का नाम उद्धृत करते हैं और पूछते हैं कि यह किस प्रकार व्यक्ति विशेषका नाम होसका। आप इसके अतिरिक्त यह भी कहते हैं कि यदि पूरा नाम 'श्रीगुप्त' होता तो महाराजके सम्मानार्थ एक 'श्री' और अवश्य होता। इसकी पुष्टिमें आप कई उदाहरण भी देते हैं।

जान ऐलन (John Allan) महाशयने हालमें "Catalogue of the coins of the Gupta dynasties" नामक एक पुस्तक लिखी है। जान ऐलन डा० फ्लीट के इस विचारसे सहमत हैं और आपने इसके समर्थनमें कुछ अन्य प्रमाण भी दिये हैं। आपने यह अनुसन्धान करके बताया है कि बौद्ध भिक्खु 'उपगुप्त' के पिताका नाम दिव्यावदानमें 'गुप्त' दिया है। इससे स्पष्ट है कि किसी व्यक्ति विशेषका 'गुप्त' नाम होना एक असंभव बात नहीं है। हमको महाराज गुप्तके राज्य करनेका समय निश्चित रूप-

* Corpus Inscriptionum Indicarum (गुप्त लेख) डाक्टर फ्लीट द्वारा संपादित। समुद्रगुप्तकी प्रयाग-प्रशस्ति, पंक्ति २८–२९ में वंशक्रम यों दिया है, महाराज श्रीगुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्तपुत्रस्य......महाराज श्री समुद्रगुप्तस्य।

[प्राचीन इतिहास Ancient History]

से ज्ञात नहीं है। विंसेंट स्मिथ आनुमानिक रीतिसे सन् २७५–३०० ईस्वी ठहराते हैं।

महाराज गुप्त के पुत्र घटोत्कच हुए। विंसेंट स्मिथके अनुसार घटोत्कचका समय सन् ३००-३२० ई० है। इनके संबन्धमें कुछ विशेष ज्ञात नहीं है। महाराज घटोत्कचके पुत्र चन्द्रगुप्त हुए। प्राचीन प्रथाके अनुसार चन्द्रगुप्तके पौत्रका भी नाम यही था। इसकारण दोनोंमें विशेषता रखनेकेलिए हम एकको चन्द्रगुप्त प्रथम और दूसरेको चन्द्रगुप्त द्वितीय कहेंगे। चन्द्रगुप्त प्रथम की उपाधि 'महाराजाधिराज' थी। इससे विदित होता है कि इन्होंने राज्यकी वृद्धि की। इनके कालसे गुप्तवंशकी अवस्था उन्नत होना आरंभ होती है। समुद्रगुप्त की प्रयाग-प्रशस्ति* में इनकी पत्नीका नाम महादेवी कुमार देवी दिया हुआ है और यह लिच्छविवंशकी थीं। इसीकारण समुद्रगुप्त अपनेको सगर्व "लिच्छविदौहित्र" कहते हैं। कुछ सिक्कोंपर एक ओर चन्द्रगुप्त और कुमारदेवी ऐसा लेख है और दूसरी ओर 'लिच्छवय' ऐसा लेख पाया जाता है। इन सब बातोंसे यह झलकता है कि गुप्त तथा लिच्छवि वंशका संबन्ध गुप्तवंशीय राजाओंकेलिए एक विशेष गर्वका विषय था। लिच्छवि जाति एक प्राचीन प्रभावशाली जाति थी। प्राचीन राजनैतिक संसारमें इसका उच्चपद था। अतः ऐसी जातिसे संबन्ध स्थापन करना गर्वकी बात होना ही चाहिये। यह भी हो सकता है कि इस संबन्धके कारण गुप्तवंशकी राज्यवृद्धि भी हुई।

इस स्थानपर लिच्छवि जातिके संबन्धमें कुछ कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता।

प्रथमतः इस शब्दके कई रूपान्तर पाये जाते हैं। मनुसंहिता (१) में 'लिच्छिवि' रूप पाया जाता है और अन्य संस्कृत-ग्रन्थोंमें 'निच्छिवि' भी देखा गया है। महायानीय बौद्धोंका 'स्वर्णप्रभासूत्र' नामक एक ग्रन्थ है। उसमें 'लित्सवि' ऐसा रूप पाया जाता है और तिब्बतप्रदेशके ग्रंथोंमें 'लित्सब्यि' ऐसा उल्लेख है। इसमें सन्देह नहीं कि ये सब एकही शब्दके रूपान्तर हैं। मनु लिच्छवियोंकी गणना व्रात्यक्षत्रियोंमें करते हैं। व्रात्यक्षत्रियोंसे तात्पर्य उन क्षत्रियोंसे है जिन्होंने संस्कारोंका करना छोड़ दिया था परन्तु उनकी सामाजिक स्थिति उन्नत होनेके कारण वे क्षत्रिय ही पुकारे जाते थे।

सानंग सेतसन (Sanang Setsen) अपने पूर्वीयमंगोलके इतिहासमें शाक्यजातिके तीन विभाग बताते हैं:–(१) शाक्यवृहत् (२) शाक्य लिच्छवि (३) शाक्यकिरात। अतः इनके मतके अनुसार लिच्छवि शाक्यजातिमें ही परिगणित होती है। लेगजेंडर-कोमा-डि-कोरस (Alexander Csoma Koras) के अनुसार "शाक्य" और "सीदियन" (Scythian) एकही शब्दके दो भिन्न रूप हैं। यदि हम इनका मत स्वीकार करें तो लिच्छवि सीदियन जातिकी एक शाखा हो जावेगी।

सेम्युअलबील (Samuel Beal) (२) के अनुसार लिच्छवि 'यूच्छी' ('yuch-chi') जाति की शाखा है। डाक्टर सतीश चन्द्र विद्याभूषण (३) का मत है कि लिच्छवि जाति भारतमें 'निसिबिस' स्थानसे आयी। टाल्मीके (Ptolemy) अनुसार 'निसिबिस' एशियाका एक प्रसिद्ध नगर था। 'निच्छिवि' तथा 'निखि' इन शब्दोंके रूपमें बहुत समता है। इस कारण डा० सतीशचन्द्रका मत है कि यह जाति 'निसिबस' से आयी Ptolemy के अनुसार

* समुद्रगुप्तकी प्रयाग प्रशस्ति–पंक्ति २८-२९.
लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य. (स)

(१) झल्लो मल्लश्च राजन्याद्व्रात्याल्लिच्छिविरेवच। अध्याय १०। श्लो० २२
'निच्छिवि' ऐसा भी पाठ है।

(2) Buddhist Records, Vol. II, पृ० ६७

(3) J. A.S. B.सन् १९०२ ई०

एशियाका उत्तरीय भाग Nisaioi (निसाइओ-इ) वा निसिकि लोगोंके हाथमें था। डाक्टर महाशय इसके अतिरिक्ति यह भी मान लेते हैं कि इसी जातिका उल्लेख ऐरिअन (Aoarin) ने Nysaioi (निसेइओइ) के नामसे किया है। ऐरिअनका कथन है कि लिच्छवि उनके वंशज हैं जो डायोनीसास (Dionysos)के साथ भारत-में आये थे।

मिगैस्थनीज़ ने (Megasthenes) चार शताब्दी ईसाके पूर्व Nesei (नेसेइ) नामक एक जाति भारतमें पायी थी । कदाचित् यही लिच्छवि जाति हो।

पाली ग्रंथोंके पढ़नेसे ज्ञात होता है कि प्राचीन कालमें राजनैतिक विषयोंमें यह जाति अपना प्रभाव पूर्णतया रखती थी। 'महापरि-निब्बान सुत्त' (=महापरिनिर्वाणसूत्र) से विदित होता है कि इस जातिका निवासस्थान वैशाली (१) था। राज्यप्रणाली प्रजातंत्र थी। महावंशके अनुसार इन्होंने शैशुनागवंशकी स्थापना की। ये बौद्धमतानुयायी थे। सातवीं शताब्दीमें जब बौद्धधर्मका ह्रास हुआ तब कदाचित् इस जातिने वैदिक धर्म स्वीकार कर लिया हो।

चन्द्रगुप्त प्र० के समयका कुछ विशेष वृत्त विदित नहीं है। उनके राज्यकी सीमा निश्चित रूप से निर्धारित नहीं की जा सकती परन्तु समुद्रगुप्तकी प्रयाग प्रशस्तिसे विदित होता है कि उनके पिता प्रयागसे लेकर पाटलिपुत्र तक राज्य करते थे। विष्णुपुराणका निम्नलिखित श्लोक कदाचित् चन्द्रगुप्त प्रथमको लक्ष्यकर लिखा गया हो:—

अनुगंगाप्रयागं च साकेतं मगधांस्तथा।
एतान्जनपदान् सर्वान् भोक्ष्यन्ते गुप्तवंशजाः॥

(क्रमशः)।

(१) आधुनिक नाम बसाढ़ है, यह स्थान मुज़फ़्फ़रपुरके निकट है।

रसायन

[ले० रामदास गौड़, एम. ए.]

ॐ अग्निमीडे पुरोहितम्। यज्ञस्य देवं ऋत्विजं।
होतारं रत्न धातमम्। (ऋग्वेदः)
"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन पृथिव्यां सर्वं मानवाः"। मनुः।

संसारमें सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद हैं। वेदोंमें ऋग्वेद पाश्चात्योंके मतसे भी सबसे प्राचीन है। ऋग्वेदके पहले मंत्रका पहला शब्द "अग्नि" है। यही अग्नि रसायनशास्त्रका देवताहै। अग्नि जिस प्रकार पहले अद्भुत दृश्य था आज भी अद्भुत ही है। यज्ञकेलिए लकड़ी रगड़ी जाती थी जिससे आग भभक उठती थी, लकड़ी जल जाती थी और राख रह जाती थी। यह सबसे प्राचीन, सबसे साधारण और साथ ही साथ प्राथमिक रासायनिक प्रक्रिया थी। इस प्रकार रसायनशास्त्रका ज्ञानमूल ऋग्वेदका पहला मंत्र ही समझा जाना चाहिए।

वेदोंके पीछे यवनानियोंकी उस कथाका नम्बर आता है जिसमें "प्रमथिउस" नामक दानवके द्वारा स्वर्गलोकसे अग्निहरण वर्णित है। इसमें भी "प्रमथिउस" शब्द इस बातकी सूचना दे रहा है कि लकड़ियोंको मथकर गुप्त वा "दारुगत" अग्नि प्रकट कर दिया गया था जिसे पौराणिक रूप दे दिया गया है।

मानव जातिको भी यदि कोई विशेषता है तो उसका मूलकारण अग्नि ही है। अग्निके ही प्रयोगसे मनुष्य संसारका स्वामी हो गया है। यदि ऐसे अमूल्य और बलशाली पदार्थको पूज्य समझ उसकी आराधना की जाने लगे तो आश्चर्य्य ही क्या है? अग्निहोत्र और यज्ञ इसीलिए संसारकी सभ्य असभ्य सभी जातियों-में किसी न किसी रूपमें हैं और पारसी तो इसके अनन्य उपासक हैं।

रसायन Chemistry]

लकड़ीके सिवा अन्य वस्तुओंको भी जला जलाकर परीक्षा की जाने लगी। आयुर्वेद वस्तुतः रसायनशास्त्रका खोजोंकेलिए आदि कारण हो गया। ऐसे पदार्थोंकी खोज होने लगी जिनसे जरा मरण दोनोंसे मुक्त हो मनुष्य सदैव जीवनका सुख भोगता रहे। अश्विनीकुमारोंने बूढ़े च्यवनको ओषधियोंके द्वारा जवान कर दिया। जिन ओषधियोंसे अथवा जिस उपचारसे शरीरकी व्यवस्थामें ऐसा परिवर्त्तन हो जाय कि बुढ़ापा न आवे, मनुष्यकी आयु बढ़ जाय, उन ओषधियों और उपचारोंका नाम "रसायन" रक्खा गया। चरक और सुश्रुतके कालमें काष्ठौषधियोंका व्यवहार था। पारा, गंधक, आदि खनिज वस्तुओंकी प्रक्रियाओंका अभ्युदय उनके पीछे हुआ। खनिज पदार्थोंको ओषधियोंके साथ आँच देकर जो कुछ राख मिलती थी उसका नाम "रस" हुआ। यह भी एक तरहका परिवर्तन था। इसीलिए "रस" कहना अ नुचित नहीं था। जिस प्रक्रियामें फूँकना, जलाना, एकीकरण, पृथक्करण आदि हो उस प्रक्रियाका नाम भी "रसायन" पड़ा। प्राचीन कालके रासायनिकोंका विश्वास था कि इन्हीं क्रियाओंसे किसी न किसी विशेष दशामें सोना बन जाना भी संभव है। जिन लोगोंसे वास्तविक क्रियाका सम्बन्ध न था परन्तु खनिजोंकी खोजमें रहा करते थे उनका विश्वास था कि ऐसा स्पर्शमणि या पारसपत्थर भी होगा जिसके छू जानेसे ही लोहा आदि धातु तुरन्त सोना हो जाएँगे। यह कल्पना भारतवर्षके भीतर ही सीमित न थी। समस्त संसारमें फैली हुई थी। लोहा आदि धातुओंसे सोना बना लेनेको यवनानी आदि भाषाओंमें "कीमिया" कहते थे। कीमिया का अर्थ भी "परिवर्त्तन" है। इसी "कीमिया" शब्दसे आजकलके रसायन-विज्ञानका नाम अँग्रेज़ीमें "केमिस्ट्री" (Chemistry) पड़ा।

ऐतिहासिकोंकी दृष्टिमें वेदकी सभ्यता जिस कालकी समझी जाती है उस कालमें धातुओंको कच्चे खनिजसे निकालना और उससे हथियार और बर्तन आदि बनाना भारतीयोंको मालूम था। जिस समय संसारमें आजकलके सभ्य युरोपीय पत्तों और खालसे तन ढकते थे भारतवर्षमें विश्वकर्म्माके प्रचंड भट्टोंमें लोहेके बड़े बड़े शहतीर और लाट गढ़े जाते थे। इस्पातकी तलवार ऐसी अनुपम तय्यार होती थी कि संसारभर यहांसे ही "शमशीरे हिन्द" ले जाया करता था। धातुओंका मिश्रण करके पीतल काँसा आदि तैय्यार करके बर्त्तन बनते थे। काँचकी कारीगरी भारतवर्षकी प्रसिद्ध थी। काँचके बर्तन ढालना ऐसी साधारण बात थी कि सर्वसाधारण उसकी क्रियासे परिचित थे। शाकटायनने उच्चारणकी क्रिया समझाते हुए मुखके भीतरके अवयवोंकी तुलना काँच ढालनेके सांचोंसे की है, जिससे स्पष्ट है कि शाकटायनके समयमें छोटे छोटे बालक भी काँचकी भट्टी और ढलाईसे परिचित थे। इस प्रकार भारतवर्षमें रासायनिक खोज भी होती थी, और खोजके साथ ही शिल्पमें बड़ी प्रवीणतासे उसका प्रयोग भी होता था।

रासायनिक खोज धीरे धीरे भारतवर्षके सिवा और और देशोंमें भी होने लगी। जो लोग देशान्तरोंसे आकर भारतमें शिक्षा पाकर जाते थे अपने देशोंमें भी प्रचार करते और विज्ञानकी खोजमें लगे रहते थे। इस प्रकारके विज्ञानव्यसनी भारतके पीछे मिस्रमें हुवे। मिस्रमें अस्कन्दरिया नगरमें विक्रमादित्यके सैकड़ों वर्ष पहले रासायनिक विद्वानोंका संघट्ट हुआ। उस समय अनेक रसायनिक पदार्थ बने जिनमें सबसे अधिक महत्वकी वस्तु गंधकाम्ल या गंधकका तेज़ाब है। कसीसको आँच देकर उससे निकली हुई भापको पानीमें घुलाकर यह अम्ल बनाया गया था। अनेक कालतक इसी रीतिसे बनता रहा। अब इसकी रीतियां बदल

गयी हैं परन्तु गन्धकाम्लका महत्व इतना बढ़ा हुआ है कि शिल्पी पाश्चात्य उसी देशको सभ्यतामें सबसे बढ़ा चढ़ा समझता है जिसमें सबसे अधिक परिमाणमें गन्धकाम्ल ख़र्च होता हो।

धीरे धीरे भारतवर्षमें रसायनकी खोज घट गयी। जिस देशमें विचारकी इतनी स्वतंत्रता थी कि ईश्वरवादी और अनीश्वरवादी दोनों दार्शनिक गिने जाते थे। दोनोंको उचित सम्मान मिलता था। ईश्वरके अस्तित्वपर संदेह करना तार्किककेलिए साधारण बात थी, घोर पापकर्म न था। उसी देशमेंसे धीरे धीरे बौद्धों, चार्वाकों, बार्हस्पत्योंका लोप हो गया और आप्त-वाक्य-प्रमाणने ऐसा धर दबाया कि किसी प्राचीन विद्वान वा ऋषिके वाक्यपर सन्देह करना महापातकोंमें समझा जाने लगा। विश्वासकी ज़ंजीरमें बंधकर स्वतंत्र-विचार लाचार हो गया और बुद्धि कुंठित होकर आप्त वाक्योंको भी उलटा ही समझने लगी। भूमि, जल, वायु, तेज, आकाश नामके पांचों भूत वा तत्त्व जो प्रकृतिकी पाँच दशाएँ थीं, भूलसे मौलिक पदार्थ समझे जाने लगे और इन्हें ही मूल मानकर संसारके और सब पदार्थ इनके यौगिक समझे जाने लगे। इस मौलिक भूलने, और वाक्यप्रमाणने भारतवर्षमें रासायनिक खोजकी दीपशिखाको लगभग डेढ़ हज़ार वर्षकेलिए बुझा दिया।

पाश्चात्य देशोंमें मिस्रके पीछे इस विद्याके सीखनेवाले अरबके विद्वान हुए। यवनानी और अरबी विद्वानोंमें यह बड़ा भेद था कि यवनानी विद्वान सब बातें तर्कसे ही सिद्ध करते थे। अरबवाले परीक्षा और प्रयोगोंकी ओर भी प्रवृत्त हुवे। परंतु उनका अभ्युदय थोड़े ही कालकेलिए हुआ। युरोप तक बढ़कर उनका वेग रुक गया और उनके शिष्य युरोपीय अपने गुरुओंसे भी बढ़ चले। विक्रमादित्यकी सत्रहवीं शताब्दीके आरम्भमें पारासेलसस नामका बड़ा भारी रासायनिक हुआ जिसने यह स्थिर किया कि रासायनिक खोज "अमृत" वा "पारस" के लिए करना समय और शक्तिका दुरुपयोग है। मनुष्यकी चिकित्सामें इन खोजोंसे लाभ उठाना चाहिये। पारासेलससके समय तक रासायनिकोंको पादरी लोग जादूगर और मायावी कहते थे और रासायनिकोंको अनेकानेक यातनाएँ भोगनी पड़ती थीं। रॉजर बेकन नामके अंग्रेज़ रासायनिक पादरीने अपने जीवनके अन्तिम दस बर्ष जेलमें काटे थे। रासायनिकोंके घर जला दिये जाते थे। उन्हें स्वयं अपने प्राणोंकी रक्षाकेलिए अनेक उपाय करने पड़ते थे। पारासेलससके समयसे युरोपीय रासायनिक ओषधियोंकी खोजमें लग गये और धीरे धीरे कृमिनाशक और चेतनाशून्य कर देनेवाली ओषधियां निकाली गयीं जिनसे शल्य चिकित्साको बड़ी सहायता मिलने लगी। धीरे धीरे अमृत और पारसकी खोज वास्तविक पदार्थ-ज्ञानकी खोजमें परिणत हो गयी। पारासेलससके सौ वर्ष पीछे रासायनिकोंने इतना अनुभव प्राप्त कर लिया था कि उन्हें यह प्रत्यक्ष हो गया कि भौतिक जगत्‌के पदार्थोंमें बहुतेरे ऐसे हैं जिनमें परस्पर संयुक्त हो जाने की प्रवृत्ति है, और बहुतेरे ऐसे भी हैं जिनमें यह प्रवृत्ति तनिक भी नहीं है। गंधक और धातुओंमें परस्पर मिल जानेकी ऐसी प्रवृत्ति दीख पड़ी कि दोनोंका अलग होना असंभव प्रतीत हुआ। साथ ही गंधकाम्ल और लवणाम्लमें परस्पर कोई प्रवृत्ति नहीं दिखायी पड़ी। इन बातोंकी व्याख्या उन्होंने यों की कि पदार्थोंके परमाणुमें किसी किसीसे मिलनेकेलिए उत्कट इच्छा वा "युयुक्षा" है, जो किसी किसीके सम्बन्धमें नहीं होती। परंतु यह व्याख्या वास्तवमें कोई व्याख्या न हुई। इस समय भी इसकी वास्तविक व्याख्याकेलिए विज्ञानाचार्य्य सर जे. जे. टामसन आज पन्द्रह वर्षोंसे यत्नशील हैं।

ऊपरके अनुभवके साथ साथ रासायनिकोंको यह भी स्पष्ट हो गया कि युयुत्तासे जो रासायनिक संयोग होता है वह पदार्थकी प्रकृतिमें परिवर्तन है। जलसे भाफ वा बरफ़ बन जाना केवल दशामें परिवर्तन है, पदार्थकी प्रकृतिमें परिवर्तन नहीं है। लोहेमें चुम्बकत्वका आना वा नष्ट हो जाना दशामें परिवर्तन है, परंतु लोहेका गंधकके साथ आंचमें मिल जाना पदार्थकी प्रकृतिमें परिवर्तन है। लोहेका प्रत्येक अणु चुम्बक बन जाने वा चुम्बकत्वहीन हो जानेपर भी लोहा ही बना रहता है। जलका प्रत्येक अणु बरफ़ वा भाप होनेपर भी जल ही रहता है। परंतु गंधकके साथ जलकर लोहेका रूप गुण बदलकर जो कोयला सा रह जाता है, उसके अणु न तो गंधकके रह जाते हैं और न लोहेके। उसके अणु लौह-गंधित नामके एक पदार्थ विशेषके अणु होते हैं जिसमें लोहा और गंधक दोनोंमें एकके भी गुण नहीं पाये जाते।

इतनी परख हो जानेपर भी यह कल्पना मनसे दूर नहीं हुई थी कि भूमि, जल, अग्नि, वायु मौलिक हैं। यवनानी दार्शनिक अरस्तू आदि भारतके चार्वाकादिकी तरह चार तत्व मानते थे। पाश्चात्य रासायनिक उनके ही अनुयायी थे और इसी भूलमें पड़े हुए थे। इस भूलका निराकरण अभी हालमें ही हुआ है। जिसको सवा सौ बरससे कम ही हुआ होगा। इसी निराकरणके साथ साथ आधुनिक रसायन-शास्त्रका अभ्युदय हुआ जिसका वर्णन अगले अंकमें किया जायगा।

(शेष आगे)

[नोट— इस लेखमें युयुत्ता Valency के लिए, मौलिक Element के लिए और यौगिक Compounds के लिए लिखे गये हैं। पाठक कृपया यह सूचना देंगे कि यह शब्द कैसे जंचते हैं]

वैज्ञानिकोंका सच्चा आदर्श प्रेम

[ले० शालग्राम वर्म्मा]

प्रायः सभी मनुष्य आदर्श-प्रेमी हुआ करते हैं। यदि अत्युक्ति न मानी जाय तो हम अवश्य ही कह सकते हैं कि यदि यह गुण उनमें विद्यमान न हो तो वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं हैं। आदर्श-प्रेम मनुष्यमें स्वाभाविक है। मनुष्य-जीवनकेलिए यह उतना ही परमावश्यक है जितना कि जल और वायु। अनिवार्य भी यह उतना ही है जितनी कि मृत्यु! मनुष्यमात्रका किसी न किसी हित-चिन्तनामें लगा रहना ही इस गुणके सजीव होनेका प्रमाण है इस शक्तिकी सहायता बिना कोई भी शुभ या अशुभ कार्य सम्पादन न होना ही इसके परम साहाय्यका द्योतक है। जिन मनुष्योंको हम असभ्य और नीच कहकर अपनी सभ्यता और श्रेष्ठताका दम भरते हैं, वे भी इस दैवी देन से वंचित नहीं हैं। उनके स्वभावमें भी इसके चिन्ह अंकित पाये जाते हैं। हां! हम यह बात मान लेनेको तैय्यार हैं कि सभी लोगोंको इस आदर्श-प्रेमका अनुभव नहीं होता है, तथा इस गुणके अंकुर उनके हृदयमें मौजूद रहते हुए भी उन्हें इनकी स्थितिका परिचय नहीं मिल पाता है। पर इसे यदि हम उनकी अज्ञानता न कहें तो और क्या कह सकते हैं?

जबतक मनुष्यके हृदयमें अपनी वर्तमान अवस्थासे असन्तुष्टताके भाव मौजूद है, वह आदर्श-प्रेमी ही है। अपनी कार्य-पटुता द्वारा पूर्ण रीतिसे न दिखला सकनेपर भी, अवश्य ही उसके हृदय मंदिरमें एक अपूर्व सुन्दरताकी मूर्ति विराजमान रहती है, यह बात उसके इन भावोंसे भली भांति विदित हो जाती है। उसकी चाल ढाल, और विचारोंसे लोगोंको पता लग

वनस्पति शास्त्र Botany]

जाता है कि यह मनुष्य दक्षता प्राप्त करनेका अभिलाषी है। मनुष्योंकी इस उत्कट इच्छाका ज्वलंत उदाहरण उनकी कला कौशल है। संसार-में कलाओंकी स्थिति ही मानुषिक हृदयके आदर्श-प्रेमकी विज्ञप्ति कही जा सकती है। सभ्यताके इतिहाससे इस बातका पता लगता है कि सदैव ही मनुष्य अपने जीवनका महत्व, सुन्दरता और समानताका विचार उतनी ही पूर्ण रीतिसे करना चाहता है जितना कि उसके हृदयमें उस-का आविर्भाव हुआ है। यह तो हुई कला-कौशल (Art) की आत्मिक और आदर्श-सूचक महत्ता। परन्तु इस महत्ताके साथ इसकी ऐहलौकिक परमोन्नति भी सम्मिलित है। हमारे विचारमें तो यहीं आकर कला-कौशल (Arts) और विज्ञान (Science) का समागम होता है।

परन्तु जहां मनुष्योंमें इस आदर्श-प्रेमके कारण प्रोत्साहन शक्तिकी लीलाका अद्भुत रहस्य विदित होता है, वहां ही उच्चादर्श-सेवी मनुष्योंके साथ अपेक्षतया संकुचित भाववाली जनताके दुर्व्यवहार तथा अमानुषिक कृत्यका भी दिग्दर्शन हो जाता है। एक ही आदर्श-प्रेमसे भिन्न भिन्न अवस्थामें क्या क्या परिणाम हो सकते हैं, इस बातसे मनुष्योंके हृदयकी वास्तविक उदारता तथा अनुदारताका पता लग जाता है।

जब इस आदर्श-प्रेम-पथपर होता हुआ मनुष्य महापुरुषोंके दरजेको पहुंचता है तो उसके बराबरवालोंमें अवश्य ही ईर्षा उत्पन्न हो जाती है और वे उसकी उज्ज्वल कीर्तिपर कालिमा लगाना ही अपना परम सौभाग्य और कर्तव्य समझते हैं। परन्तु सच्चा, आदर्श-प्रेमी महा पुरुष बड़े गंभीर और स्थिर स्वभावसे इस नई हलचलका सामना करके, स्वर्णकी भांति इस परीक्षा-कुण्डसे अधिक कान्तिपूर्ण और पवित्र ही निकलता है। मनुष्य समाज अब दिनों दिन उन्नति कर रहा है। इस उन्नति युगमें जहां हमारे आदर्श और आदर्श-प्रेमकी उन्नति हुई है वहां महापुरुषके प्रति भी ईर्षा करनेवाली जनताके विचार, और कार्यशैली भी परिवर्तित हो गयी हैं। इतिहाससे हमें ज्ञात होता है कि थोड़े ही काल पूर्वतक बहुतसे महापुरुषोंको इसी ईर्षाके कारण अनेकों दुःख सहने पड़े हैं और अकसर उनकी जान-तकके लाले पड़ गये हैं। पर आधुनिक सभ्य-ताके राज्यमें तलवार और सूलीका काम केवल ज़बान और क़लमसे लिया जाता है। मामूली तरहपर देखनेसे तो यह परिवर्तन और भी अधिक दुखदायी मालूम पड़ता है परन्तु वास्त-विक दृष्टिसे यह उत्तम जाना जाता है। क्योंकि आजकलकी यातना भोग लेनेके पश्चात उस महापुरुषको यह अवसर भी अवश्य ही प्राप्त होता है जब वह अपनी यथार्थ महत्ताके लिए लोकप्रिय और श्रद्धेय हो सकता है।

वैज्ञानिक क्षेत्रमें हमारे इस कथनके बहुत से उदाहरण देख पड़ते हैं, और हम भी आज अपने विज्ञ पाठकोंके मनोरंजनार्थ ऐसे दो वैज्ञानिकोंके जीवन और अन्वेषण की घटनाओंका उल्लेख करेंगे, जिनसे हमारे उपर्युक्त कथनकी सार्थ-कता प्रमाणित हो जायगी।

अमेरिका देशके प्रसिद्ध वैज्ञानिक लूथर बरबंक (Luther Burbank) और अपने ही पुनीत देशके सुपुत्र डाक्टर जगदीश चन्द्र बोस-के परमोत्कृष्ट और सभ्य सँसारको चकाचौंध-में डाल देनेवाले प्रसिद्ध अन्वेषण ही इस लेख के आलोच्य विषय हैं।

आज दिन लूथर बरबैंकको सभी संसार एक अद्वितीय विद्वान माननेमें, तथा उनकी प्रशंसा और गुणानुवाद गानेमें अपना परम गौरव समझता है। उनपर श्रद्धा रखनेवाले कहते हैं कि वनस्पति संसारमें परम नूतन और कौतूहलोत्पादक वृक्षोंकी नई सृष्टि करनेका उन्हें ही सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इन महाशयके विरोधी भी अब ऐसा कहनेसे नहीं हिचकचाते

हैं कि प्रकृति देवीके साम्राज्यके अनंत भाण्डार-मेंसे लूथर बरबैंक महाशयको ही अनमोल और विचित्र रत्न खोज निकालनेमें सफलता प्राप्त हुई है और प्रकृतिने अपने आन्तरिक और रहस्यपूर्ण प्रासादमें पदार्पण करनेका गौरव पहले इन्हीं महाशयको प्रदान किया है।

यह महाशय अमेरिकाकी यूनाइटेड स्टेट्स-के एक साधारण कुटुम्बमें जन्मे थे। बचपनसे ही इन्हें खेल कूद और पुस्तकोंकी अपेक्षा फूलों-से अधिक अनुराग था। पढ़ने लिखनेमें अधिक जी न लगाकर यह प्रायः अपने घरके बगीचे अथवा अपने पिताके आलूके खेतमें विचरा करते थे। जब इनकी १३, १४ बरसकी अवस्था हुई तो इनकी इस टेवकी शिकायत भी इनके माता पितासे की गयी, परन्तु इन्हें इसका कुछ भी ध्यान न रहा और यह अपनी धुनमें ही लगे रहे।

बरबंक महाशयने जब अपने नये नये विचारों और आविष्कारोंकी चर्चा करना प्रारंभ की, तो लोगोंने उनकी हँसी उड़ाना और उनकी बातोंको पागलों और शेखचिल्लियों की गप्पें कहकर झूठा बतलाना शुरू कर दिया। बहुत से पढ़े लिखे लोगोंने बड़ी संजीदगीसे सिर हिला हिलाकर कहना प्रारंभ कर दिया कि लूथर बिचारा कृषि विद्याका कैसे ज्ञाता बन सकता है, उसे इस रहस्यका क्या पता है। वह तो केवल किताबी पंडित बन बैठा है प्राकृतिक निरीक्षण और अनुभवका लेशमात्र भी उसमें नहीं है। अपने हितैषियों और मित्रोंके ऐसे विचार जानकर भला किस मनुष्यकी हिम्मत पड़ सकती है कि वह इस लोकमतके विरुद्ध अपने नवीन विचारोंके प्रगट करनेका साहस कर सके। परन्तु नहीं, महान आत्माओंका यही एक गुण सर्वोपर होता है कि वे इन भोले भाले मनुष्योंके विरोधका कुछ भी भय न करके बड़े साहसके साथ स्वनिर्दिष्ट स्थानपर पहुंचनेकी सदैव ही चेष्टा करते रहते हैं और अपने उच्चादर्श-पथसे कभी च्युत नहीं होते। ठीक इसी तरह लूथर बरबैंक महाशयने भी किया, और अन्तमें उनके जी-तोड़ परिश्रमका फल भी बड़ा अच्छा मिला।

बरबंक महाशयने बड़ी छोटी अवस्थामें ही अपने पिताके आलूके खेतपर ही अपनी विलक्षण बुद्धिका प्रयोग किया और थोड़े ही दिनोंमें अपनी असाधारण योग्यताका परिचय दे दिया। उन्होंने आलूके वृक्षोंमें काट छांट, तथा क़लम और पैवंद लगाकर एक नये आलूकी सृष्टि कर दी, जिसका नाम "बरबैंकी आलू" (Burbank potato) रक्खा गया। फलोंके विषयमें तो इन्हें अब इतनी जानकारी बढ़ गयी कि थोड़े ही दिनोंमें इन्हें विश्वामित्रकी तरह नई सृष्टि (फलोंकी) रचनेका विचार दृढ़ हो गया।

इस विचारके दृढ़ होते ही बरबैंक महाशयने बेरोंके ऊपर प्रयोग आरंभ करदिया। इन्होंने अच्छे, स्वादिष्ट बेरोंके एक पेड़को चुन लिया और उसमें एप्रीकोट (खूबानी) नामक फलका पैवंद लगा दिया। इस नये प्रयोगमें इन्हें पहली ही बार सफलता प्राप्त नहीं हो गयी, वरन् कई दफ़े इन पैवंददार पेड़ोंको विशेष रीतिसे तैय्यार की हुई भूमिमें तथा नई नई खाद देकर पुष्ट किया गया। अन्तमें सारे संसारको चकित करनेवाला एक बड़ा अद्भुत परिणाम निकला। नये वृक्षपर जो फल लगा वह तो बड़ा विलक्षण था। प्रकृतिने इस समयतक कभी भी ऐसा कौतूहलोत्पादक चमत्कार नहीं दिखलाया था। यह तो संसारमें एक बिल्कुल ही नई वस्तु निर्माण हो गयी। गहरे ऊदे रंगका, बड़ा मुलायम और लाल गूदेदार, एक प्रकारका खटमिट्ठा फल इस नये वृक्षमें लगा, जिसके खानेमें बेर और एप्रीकोट (खूबानी) दोनोंका ही स्वाद मौजूद था। इस फलको देखकर तथा खाकर लोगोंके अचंभे-

की हद न रही और बहुतसे तो बरबंक महाशय-को दूसरा ब्रह्मा बतलाने लगे। इस फलका अचार और मुरब्बा भी पड़ सकता है जो बड़ा स्वादिष्ट होता है। पहले पहल यह फल बड़ी भारी क़ीमतमें बिके थे, और लोगोंने इन्हें दूर दूर ले जाकर बेचनेसे ख़ूब लाभ उठाया। इस फलका नाम "प्लमकोट" (Plumcot) है।
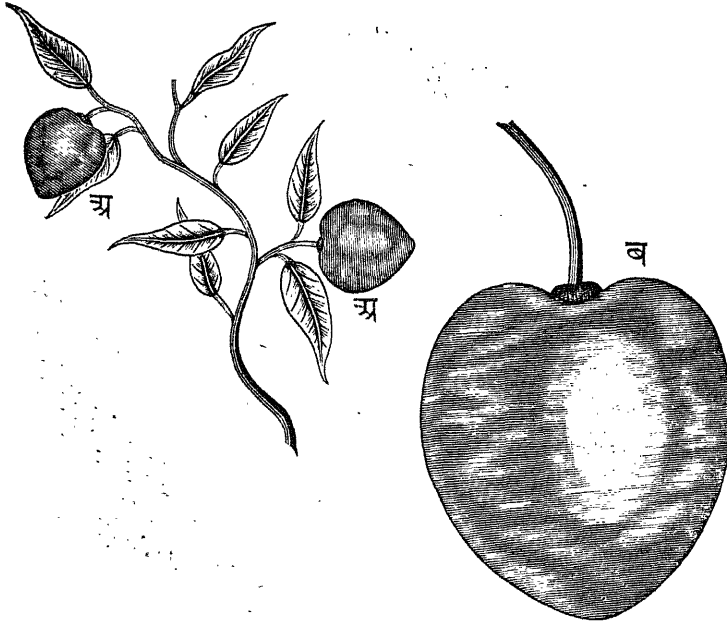
चित्र नं० १
अ साधारण फल, ब बढ़ाया हुआ तथा परिवर्तित कृत्रिम फल।

इसके पश्चात इन्होंने "प्राइमस" नाम (Primusberry) की एक नयी झरबेरीका आविष्कार किया। इसे इन्होंने कैलीफ़ोर्निया (California) देशकी ड्यूबैरी और कथबर्ट देशकी "रसभरी" (Raspberry) के संयोगसे उत्पन्न किया है। इन दोनोंका *संयोग (Pollinate) करनेके पश्चात जो बीज मिले उनमेंसे श्रेष्ठ बीजोंको लेकर फिर पौधे उगाये गये। इन वृक्षों-में भी सर्व्वोत्कृष्ट वृक्षोंके बीजोंको पुनः वृक्ष उगानेके काममें लाया गया। इसी प्रकार कई वर्षके परिश्रमके बाद यह नई झरबेरी उत्पन्न हो गयी। इन फलोंकी सृष्टिमें बरबैंक महाशय-ने केवल नये ही फल उत्पन्न नहीं किये, वरन् इन फलोंके इनके पूर्वजोंसे स्वाद, रंग, और क़दमें भी बहुत कुछ उन्नत कर दिखाया।

इन महाशयको इस व्यापारमें इतनी सफलता प्राप्त हुई और वे नयेसे नये और विलक्षण फल उत्पन्न करनेमें इतने सिद्ध हस्त हो गये कि उन्होंने संसारमें एक नई उथल पुथल पैदाकर दी। इन्होंने एक सफ़ेद "ब्लैक-बैरी" (blackberry) ऐसी उत्पन्न कर दी है कि जिसमें स्वादके साथ साथ मनोहरता भी मौजूद है। हिमालय पहाड़परसे ब्लैकबेरीके बीज लेकर इन्होंने एक नये वृक्षकी उत्पत्ति कर डाली, जिसकी उंचाई प्रायः ३ गज़ की होती है परन्तु इसका फैलाव १५० वर्ग फ़ीट है। प्रतिमास नये सिरेसे उगनेवाली रेवंदचीनी (Rhubarb), "क्लाइमेक्स" (Climax) और 'Barttelt' बेर, गोल और मीठा आलू बुख़ारा तथा छोटे छोटे बीजदार बेर यह सब नये और विलक्षण फल इन्हीं महाशयकी रचना हैं। इन्होंने बहुत से मुलायम और नाज़ुक फलोंके पेड़ोंको इतना मज़बूत बना दिया है कि बर्फ़ गिरनेपर भी उनकी कलियां नहीं झड़ती हैं और निडर फलती फूलती रहती हैं।

अब हम फलोंको छोड़कर फूलोंकी ओर दृष्टि डालते हैं तो यहां भी बरबैंक महाशयकी

*जब पु० केसरके रेत पात्रसे पराग निकलकर स्त्री० रजपात्रमें गिरता है तब संयोग होता है। बीज इस केसरके संयोगके अनंतर ही पैदा होता है।

रचनाएं एकसे एक विलक्षण और सर्वांग सुन्दर ही दिखलायी पड़ती हैं। इन महाशयको फूलोंसे भी बड़ा भारी प्रेम है, और प्रायः फूलोंकी अद्भुत सुन्दरता देखकर यह ऐसे मुग्ध हो जाते हैं कि अनजान आदमी इन्हें बिना पागल या मतवाला कहे नहीं रह सकता। अपनी रुचिके अनुसार इन्होंने बहुत से फूलोंको भी बड़ा ही सुन्दर और मनोहर बना दिया है। इन्हें बचपनसे गुलबहार (daisy) का फूल बहुत प्रिय लगता था परन्तु इसके सफ़ेद या पीले रंगकी छोटी छोटी पंखड़ियोंसे इनका चित्त अधिक प्रसन्न नहीं होता था। थोड़े दिनोंके पश्चात इन्हें विचार हुआ कि यदि किसी प्रकार इस पुष्पको खूब बड़ा और दूध जैसा सफ़ेद बनाया जा सके तो अवश्य ही यह बड़ा कौतूहलोत्पादक बन सकता है। इस ध्यानके आते ही उन्होंने अपने विचारोंको कार्यरूपमें परिणत करना प्रारंभ कर दिया और कई वर्षके परिश्रमके पश्चात एक परमोत्कृष्ट सर्वांग सुंदर "गुलबहार" की रचना कर डाली जिसका नाम 'शास्ता डेज़ी" (Shasta Daisy) रक्खा गया है।

इस पुष्पकी उत्पत्तिकी कथा भी विलक्षण ही है। बरबंक महाशयने पहले पहल खेतोंमें जाकर बहुत अच्छे अच्छे पौधोंको चुनकर एक नये स्थान पर जिसे विशेष रूपसे तैय्यार किया गया था, लगा दिया। इन पौधोंके सबसे अच्छे फूलोंके बीज लेकर उन्होंने दूसरे पौधे उगाये। परन्तु कई बार ऐसा करनेपर भी उन्हें बहुत कम सफलता प्राप्त होती दिखलायी दी। इसलिए उन्होंने विचार किया कि अगर दो भिन्न भिन्न प्रकारके फूलोंका संयोग किया जाय तो संभव है कि उनके बीजसे पैदा हुए पौधेमें दोनों पौधोंके गुणोंके साथ साथ कुछ विशेष गुण भी मौजूद हो जाँय, तथा वह उनसे बलवान भी साबित हो। परन्तु इस विचारको कार्यरूपमें परिणत करनेकेलिए वे बहुत दिनोंतक उपयुक्त फूलोंकी तलाशमें ही लगे रहे। परन्तु बहुत कुछ परिश्रम करनेपर भी उन्हें इस कार्यमें सफलता देवीकी मृदु मुस्कानभरी दिव्य मूर्तिके दर्शन प्राप्त न हो सके। तो भी उन्होंने धैर्यको न छोड़ा
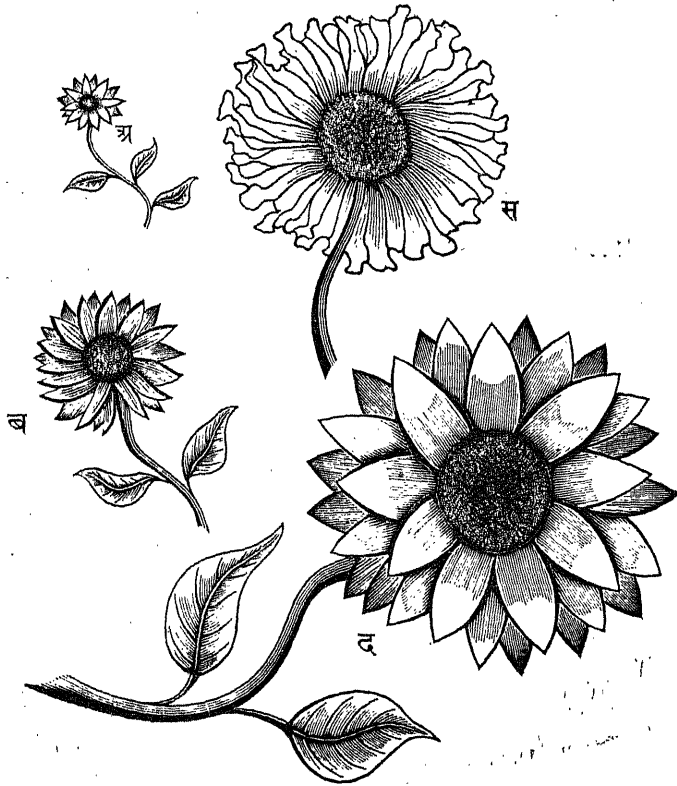
चित्र नं २. (शास्ता डेज़ी)
अ–गुलबहार का फूल, ब–४ वर्षके पश्चात अ की अवस्था, स–इसके बादकी अवस्था–द "शास्ता" गुलबहार

और अपनी खोज जारी रक्खी। अन्तमें उन्हें ही विजय प्राप्त हुई और उन्हें जापान देशमें एक ऐसा "गुल बहार" प्राप्त हुआ, जिसमें बड़ी चमकीली सफ़ेद पंखड़ियाँ मौजूद थीं। इसी समय उन्हें इँग्लेण्ड देशमें भी एक ऐसे "गुल बहार" का पता लगा, जो जापानी पुष्पसे अधिक बड़ा था, परन्तु उतना मुलायम न था। बस इन्होंने तुरन्त अमेरिकन "डेज़ी" के साथ अंग्रेज़ी "डेज़ी" का कृत्रिम संयोग कर दिया, और इससे उत्पन्न पौधोंमेंसे सर्वोत्तम पौधे छांटकर उनके बीजसे नये वृक्ष उगाये। दूसरी फ़सलमें इन्होंने इस वृक्षका संयोग जापानी "डेज़ी" से कर दिया और फिर श्रेष्ठ वृक्षोंको चुन चुनकर नये पौधोंको उगाना प्रारंभ कर दिया। कई वर्षके लगातार परिश्रमके बाद उन्होंने "शास्ता डेज़ी" की रचनाका सौभाग्य प्राप्त कर ही लिया। ५ वर्षके परिश्रमसे "ब" पुष्पकी उत्पत्ति हुई। "स" इसके बादका रहा, पर पूरे ८ वर्षके बाद "द" फूलके दर्शन प्राप्त हुए और अब वह एक निश्चित और यथार्थ वस्तु हो गई। इस फूलका रंग बर्फ़ सा सफ़ेद है। इसका व्यास ३ से लेकर ६ इंच तक होता है। इसके बीचकी बोंड़ीका रंग स्वर्ण ऐसा पीला है और इसकी पंखड़ियां बड़ी सुन्दर और नाज़ुक होती हैं।

इन महाशयको फूलोंसे अगाध प्रेम होनेके कारण सदा ही यह फ़िकर रहा करती है कि किसी भांति किसी पुष्पको जिसे लोग सुन्दर न समझते हों यथार्थ और पूर्ण रीतिसे चित्ताकर्षक बना दिया जाय। इसीलिए इन्होंने अनेक फूलोंके रंग, क़द और उनकी गंधमें फेर फार करके भद्दे रंगवालोंको चटकीले रंगका, छोटोंको अधिक बड़ा, तथा गंधहीनको बड़ी मस्त और भीनी खुशबूसे परिपूरित कर दिखलाया है। कैलोफ़ोरनियाके एक प्रकारके पोस्त या ख़शख़ाश (poppy) में धारी देखकर यह इतने मोहित हुए कि इन्होंने कई वर्षके परिश्रमके पश्चात उसे बैंजनी ही कर दिखलाया। अभी हालमें ही उन्होंने "शरली" (shirley poppy) नामक ख़शखाशके वृक्षमें नीले पुष्प लगानेका प्रयत्न किया है। Iceland आईसलेण्ड देशकी पीले रंगकी ख़शख़ाशसे इन्होंने सफ़ेद, पीले और नारंगा पुष्प बना लिये हैं और इनका व्यास ३½ इंचतक बढ़ा दिया है। अफ़ीमकी ख़शख़ाश और पूर्वी ख़शख़ाशके संयोगसे एक लाल रंगका ख़शख़ाश पैदा कर दिया है जिसमें नित्य नये फूल आया करते हैं। इस पौधेका घिराव कोई २½ फ़ीट होगा। एक कमी इसमें यह है कि इसमें बीज नहीं लगते हैं इसलिए इसकी क़लम लगायी जाती है। बहुत से फूलोंके व्यासमें इन्होंने इतनी वृद्धि कर दी है कि वे ३ इंचकी जगह अब पूरे एक फ़ीटका व्यास रखते हैं। किसी किसी फूलमें इन्होंने ऐसी गंध पैदा कर दी है कि सूँघनेसे बड़ा ही आनंद प्राप्त होता है।

यदि हम उपयोगिताके विचारसे इन महाशयके आविष्कारोंपर ध्यान दें तो हमारे विचारमें इनका परमोपयोगी आविष्कार बिना कांटेकी नागफनी उत्पन्न करनेका है। यह नागफनी इन्होंने बड़े परिश्रम और खोजसे उत्पन्न कर पायी है, और इसका सबसे बड़ा गुण यह है कि मवेशी इसे बड़े चावसे खाते हैं और यह उनकेलिए बड़ी पुष्टिकारक है। इतना ही नहीं वरन् बरबंक महाशयने इसकी उपयोगिता बढ़ानेमें अपने कौशलकी हद्द कर दी है क्योंकि उन्होंने इसे मनुष्योंके भी खाने योग्य बना दिया है। इसे नये आविष्कार ने अमेरिका देश की कृषिकोन्नतिमें जो सुविधायें पैदा करदी हैं, उनका आर्थिक लाभ मार्मिक विद्वानोंसे अविदित नहीं है। वैज्ञानिक आविष्कारोंकी सहायतासे जो उत्तरोत्तर उन्नति अमेरिका ने आज दिन कर

दिखलायी है, उसके वर्णनमें एक अच्छी पुस्तक लिखी जा सकती है। लूथर बरबंकके नामको ऐसी पुस्तकमें अवश्य ही बड़ा ऊंचा स्थान प्रदान किया जायगा, और उनकी कीर्तिको चिरस्थायी बनानेकेलिए उनके देश बन्धु बड़ी-से बड़ी और परमप्रिय वस्तुको भी तिलांजली दे देना अपना परम कर्तव्य समझेंगे।

यह तो हुए बरबंक महाशयके थोड़े से फल फूल विषयक आविष्कार, परन्तु अभी तो उनके वे चमत्कृत आविष्कार शेष रह गये हैं जिनके द्वारा उन्होंने संसारभरकी व्यापारिक परस्थितिमें खल बल डाल दी है। जहां हम भारतवासियों-के चित्तको चकित और मुग्ध करनेकेलिए (Edison) एडीसन सरीखे वैज्ञानिक मौजूद हैं, प्रकृति देवीको अपनी भक्ति, साहस और वीरतासे प्रसन्न करके जहां बरबंक सरीखे उद्यानविद् (horticulturist) का जन्म हुआ है, वह देश भला क्यों उन्नतिशील धनसम्पन्न और सभ्यताके मुकुटका अमूल्य रत्न न गिना जाय। जिन देशोंकी संतान आज अपना सर्वस्व न्यौछा-वर कर देना भी अपने देशकी सेवामें तुच्छ गिनती हैं, भला वहां क्यों न लक्ष्मी देवीकी अखंड प्रतिभा प्रदीप्त हो।

बरबंक महाशयका सा स्वार्थ-त्याग भी बहुत कम देखनेको मिलेगा। आप बड़ी मामूली हैसियतसे अपने पुराने मकानमें सैंटारोसा (Santa Rosa) नामक नगरमें रहते हैं। इतना बड़ा काम करनेपर भी आपने अपने देश-बन्धुओंसे धन-प्राप्ति करना अनुचित जानकर बड़ी साधारण अवस्थामें ही अपना जीवन निर्वाह करना उचित समझा है। आपके यथो-चित व्ययकेलिए कुछ मित्रोंकी सहायतासे धन मिल जाता है। यही लोग इनके प्रयोगों, पुस्तकों यंत्रों तथा अन्य सामग्रियोंकेलिए प्रबंध करते रहते हैं। बरबंक महाशय तो केवल अपने कार्य-में ही सदा निमग्न रहते हैं, खाने, पीने, और पहननेकेलिए उन्हें धनोपार्जनका कष्ट नहीं करना पड़ता है। धन्य है लूथर बरबंकका स्वार्थ-त्याग और परम धन्य है उनके देशवासियोंका भ्रातृ-प्रेम। परम सराहनीय है बरबंक महाशय-का आदर्श-प्रेम और उतना ही प्रशंसनीय है उनके बान्धवोंका उनकी योग्यताकेलिए जातीय सम्मान और गौरव।

बरबंक महाशयने वालनट (Walnut) नामक दो प्रकारके वृक्षोंके संयोगसे १८३७ ई० में एक नये प्रकारकी लकड़ी पैदा करनेका उद्योग करना प्रारंभ कर दिया। और १० वर्षके परिश्रमके बाद उन्होंने Paradox "पैरैडोक्स" नामक एक ऐसा अद्भुत वृक्ष पैदाकर दिखलाया है जो बड़ी शीघ्रतासे उगनेके अतिरिक्त बड़ा ही सायेदार और मज़बूत होता है। इसकी लकड़ीका रंग आबनूसका सा काला होता है और यह बड़ी पायेदार होती है। इस पर पौलिश करनेसे यह शीशे सी दमकने लगती है। सायेदार होनेके कारण अमेरिकामें अब सड़कोंके दोनों ओर यह वृक्ष उगाया जाता है। इसकी पत्तियां प्रायः एक गज़ लंबी होती हैं और उनमें सेब की सी सुगन्ध आती है। इस नए वृक्षकी उत्पत्तिसे अमेरिकाकी लकड़ीकी तिजारतको बड़ा भारी लाभ हुआ है।

पाठकवृन्द! इस ब्यौरेसे यह न समझलें कि बरबंकको अपने नये नये आविष्कारोंमें हमेशा सफलता ही प्राप्त हुई है। नहीं ऐसा नहीं है। बहुत से आविष्कारोंसे इन्हें कुछ भी फल नहीं मिला, परन्तु किसी भी विफलताके डरसे इन्होंने अपने साहसमें कोई कमी नहीं की, वरन् असफलता होनेपर और भी अधिक परिश्रम, योग्यता और धीरताका परिचय दिया है। इस बातका यथार्थ ज्ञान एक छोटी सी कहानीसे भली भांति प्राप्त हो सकता है।

कहते हैं कि जब बरबंक महाशय पिटूनिया और तम्बाकूके संयोगसे एक अपूर्व तम्बाकूका

आविष्कार करनेवाले थे उस समय उनके बहुत परिश्रम करनेपर भी उन्हें अपने काममें सफलता प्राप्त न हुई। पर तो भी उन्होंने साहसको हाथसे न जाने दिया। नित्यप्रति बड़े शांत भावसे वे इस नये आविष्कारकेलिए उद्योग करते रहे। अन्तमें इन दोनोंके संयोगसे उत्पन्न हुए वृक्षमें इतने पत्ते लगे कि उसकी जड़ उसे न संभाल सकी और इन्हें उसे दूसरे वृक्षपर चढ़ाना पड़ा।

बरबक महाशयने जब अपने आविष्कारोंका परिचय जन साधारणको देना प्रारंभ किया तो अमेरिकाके बड़े बड़े उद्यानविदोंने (horticulturists) उन्हें झूठा, गप्पी तथा उनके आविष्कारोंको मिथ्या और कल्पित बताना प्रारंभ कर दिया। परन्तु फिर भी प्रायः ३ या ४ लाख मनुष्योंने बरबंक महाशयके फलोंके बीज ख़रीदकर अपने अपने बगीचोंमें उगाना प्रारंभ कर दिया। थोड़े ही दिनोंके बाद कुछ स्वार्थी उद्यानविद्याविशारदोंने ईर्षाके कारण पत्रोंमें यह घोषणा कर दी कि उनके बीजोंका कुछ भी फल न हुआ। बरबंकने उन बीजोंमें जो चमत्कार बतलाया था, वह एक भी सत्य नहीं निकला। समाचार पत्रोंमें इस सूचनाके छपते ही लोगोंने बड़ी घृणासे अपने बगीचोंके उगते हुए नये पौधोंको उखाड़कर फेंक दिया और बरबंकपर चारों ओरसे विश्वास-घातकता तथा कायरताके अभियोगोंकी बौछार होने लगी। परन्तु न्यूयार्क नगरके सरकारी बाग़के सुपरिन्टेंडेंटने उन पौधोंको बड़ी होशियारीसे उगाना जारी रक्खा और नित्य प्रति उनकी भली भांति देख भाल करनी शुरू कर दी। फल यह हुआ कि उचित समय पर इनमें बरबंक महोदयके कथनानुसार फल फूल लगने प्रारंभ हो गये। जब यह हाल अमेरिकन लोगों को विदित हुआ तो उन लोगोंने बड़े समारोहके साथ लूथर बरबंकका आदर सम्मानकर उनके कौतूहलोत्पादक आविष्कारोंकेलिए उन्हें बधाई दी।

अपने आदर्श-प्रेम, साहस, उद्योग और धीरताके ही कारण बरबंक महाशयने अपने शत्रुओंपर भी विजय पाली और उन्होंने समस्त संसारको अपने आविष्कोरोंसे चकितकर दिखलाया।

धन्य हैं वे महापुरुष जो निःस्वार्थ भावसे हर प्रकारका अत्याचार सहते हुए भी अपने उच्चादर्श-पथसे नहीं डिगमिगाते हैं।

तापका इतिहास

[ले०-सुखदेव प्रसाद खंडेलवाल, बी. एस् सी.]

शीत, उष्ण अथवा सर्द, गर्म भाषाके बड़े प्राचीन शब्द हैं। जीवमात्रको उत्पन्न होते ही सर्दी गर्म्मीका ज्ञान अपने आप होने लगता है। किसी वस्तुका उष्ण वा शीतल होनेका ज्ञान हमें उस पदार्थके छूनेपर स्पर्शेन्द्रिय द्वारा होता है।

इस सृष्टिमें सबसे अधिक प्रयोजनीय और लाभदायक वस्तु गर्मी है। यदि देखा और विचारा जाय तो यह जान पड़ेगा कि मनुष्य जीवनकी आदिसे लेकर अन्ततककी सब घटनाओंमें इसकी आवश्यकता होती है। जितने अण्डज जीव हैं वे सब इसी तापके प्रभावसे बढ़ते हैं और प्रकृतिकी इस बड़ी भारी शक्तिके कारण ही देह धारण करते हैं। सूर्य्य देवताकी कृपासे ही हम लोगोंके खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। मृत्युके पीछे भी-हिन्दुओंमें विशेषतः-हम लोग अग्निके ही समर्पण कर दिये जाते हैं। यदि सूर्य्य एक दिनको भी अस्ताचलकी गोदमें चला जावे तो इस पृथ्वीकी तो कौन कहे, सभी ग्रहोंका नाश हो जावे और अन्धकारको छोड़कर कुछ भी शेष न रहे। इसकी सहायतासे मनुष्य भी बड़े बड़े कार्य्य सुगमता पूर्वक

कर सकता है। परन्तु यह सब होते हुए भी इसके दुरुपयोगसे बड़े बड़े भयङ्कर परिणाम देखनेमें आते हैं। तात्पर्य्य यह कि गर्मी प्रकृतिका एक बड़ा बलवान, उपयोगी, परोपकारी और कभी कभी भयावह कारक है।

जो वस्तुएं हमारे दैनिक व्यवहारमें आती हैं और जो सुगमता पूर्वक प्राप्त हो जाती हैं, उनका मूल्य प्रायः हम कम करते हैं; और ऐसे पदार्थोंके लाभ दायक होनेपर भी उनका मनुष्य बहुत कम विचार किया करते हैं। इसी कारण तापके इतना आवश्यक होनेपर भी उसकी ओर हम लोगोंका ध्यान बहुत कम पाया जाता है। मनुष्योंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि इस संसारमें वह जो कुछ पाता है उसको पहले कार्य्यमें लानेका उद्योग करता है। तर्क व कल्पना किसी भी वस्तुकेलिए क्यों न हो, सदैव उसके व्यवहारमें आनेके पश्चात हुआ करती हैं। इसी प्रकार तापका व्यवहार तो बहुत प्राचीन समय से जान पड़ता है परन्तु उसके तात्विक ज्ञानका कुछ पता नहीं लगता है।

यह सब कुछ होनेपर भी इसमें संदेह नहीं है कि चाहे हमारे पूर्वजोंको ऐसा ज्ञान रहा हो या नहीं, पर वे इसके द्वारा अपना कार्य्य साधन करते थे और इसका ठीक ठीक व्यवहार भली भांति जानते थे। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण स्वरूप हमारे भारतवर्षके प्राचीन मंदिर, मिश्र देशके ऊँचे ऊँचे पिरेमिड और यूनान और रूम की कोठियां अब भी विद्यमान हैं। इनसे यह बात प्रतीत होती है कि उस समयमें भी बड़े बड़े यन्त्रादिक अवश्य रहे होंगे।

परन्तु इतना ज्ञान होनेपर भी इस विचारके कारण कि दूसरा कोई हमारी विद्याको न जान जावे, वह उन्नति जो कि हमारे पूर्वजोंने प्राप्त की थी अवनतिमें परिणत हो गई और जितना कुछ विज्ञान विकास उन लोगोंको हो गया था वह सब अन्धकारके सागरमें डूब गया।

इस समयका जो कुछ हमारा ज्ञान वा उन्नति है वह सब पिछले ५० व ६० वर्षके ही कड़े परिश्रम और प्रयत्नका फल है। अति पूर्व कालीन समयकी न तो कोई पुस्तकें ही मिलती हैं, और न किसी इतिहासका ही पता लगता है कि जिससे हमको यह जान पड़े कि उस समयके मनुष्योंने इस विषयमें कितनी उन्नति की थी। केवल पुराने मंदिर इत्यादि जो अभीतक देखे या पाये गये हैं उन्हींसे जो कुछ हम सोच समझ लेवें वही उस समयका ज्ञान हो सकता है।

इसके पश्चात प्राचीन (अर्थात् कोई हज़ार वर्षके लगभगके) समयोंमें इसकी ओरसे लोगोंका ध्यान हट गया। रसायन शास्त्रके प्रति सर्वसाधारणके विचार आकर्षित होगये, और विज्ञानकी इस शाखामें मनुष्यकी निरंतर लालसाओंके बढ़नेसे प्रायः यह बात रह गयी कि पारस किसी प्रकारसे बना लिया जावे। इस प्रकार कार्य्य होनेसे जो कुछ विज्ञानका विकास हो चुका था वह सब शान्त हो गया।

परन्तु इतना सब कुछ होनेपर भी मनुष्यके अनुसंधान करनेकी इच्छा प्रबल हो उठी, जिसका फल यह हुआ कि विज्ञानशास्त्रके बीचका जीवन बड़ा ही विचित्र और परिवर्तन-शील रहा। इस समयमें इसमें बहुत सी उलट फेर देखनेमें आई। विज्ञानका ऐसा जीवन कोई १०० वर्ष हुए तब तक रहा था।

इस कालके प्रारम्भिक भागमें कुछ मनुष्योंने तो केवल दूसरोंको धोखा देना ही अपना अभीष्ट कर रखा था और कुछ उस गड़बड़को ही ठीक समझनेके कारण अन्धेरेमें पड़े हुए थे। इस प्रकार उस समय जो कुछ ज्ञानोपार्जन हुआ भी वह सब झूठ और धोखेसे घिरकर एक नयी वस्तु बन गई और उन ढकोसलोंको दूर करनेकेलिए बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ीं और समयकी भी बहुत आवश्यकता हो गई।

उदाहरण स्वरूप इस बीचके समयमें यदि कोई अनूठी वस्तु दिखायी देजाती थी तो उसको अद्भुत नामसे पुकारने लगते थे और उससे डरने भी लगते थे। भारतवर्षमें अब भी भूत प्रेतादिककी कहानियां चली जाती हैं और जन साधारण उनपर विश्वास करते हैं। दूसरे देशोंमें भी इस प्रकारके विचार थे जैसा कि अलिफ़लैला इत्यादिसे पता लगता है और उस समय सर्वसाधारणको विश्वास था कि मनुष्य ऐसे जीवोंको अपने वशमें करके उनसे अपना कार्य साधन करा सकता है। ऐसा ज्ञात होता है कि यह आश्चर्य्य-जनक जीव और कोई न थे केवल यही प्रकृतिके (गण) चर (ताप, विद्युत् इत्यादि) थे जो कि अब भी हमारे बहुतसे कार्य्यों-को सिद्ध करते हैं। जिस प्रकार ताप, विद्युत् इत्यादि, उनके अनुचित व्यवहारसे, जानके ग्राहक हो जाते हैं उसी प्रकार जिन्न, प्रेतादिक भी सूक्ष्म सी गड़बड़ हो जानेपर मनुष्यके प्राण ले लिया करते थे।

इन सब विघ्न-बाधाओंको पार करते हुए क्रमशः विज्ञान उन्नति करता चला गया और ईसाकी तेरहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें दो विज्ञान-वेत्ता रोजर बेकन और एलबर्टने विज्ञानकी इस शाखा (ताप) में बहुत कुछ सफलता प्राप्त की, परन्तु उस समय उनकी बातोंपर किसीने भी ध्यान नहीं दिया।

इसके पश्चात चारसौ वर्षतक कोई विशेष यत्न विज्ञानके कार्य्य-क्षेत्रमें नहीं हुआ। इस समयमें कई अनुभवी पुरुषोंने इसके सिद्ध करने-का प्रयत्न किया कि विज्ञानकी उन्नति केवल मन मानी गढ़न्तोंसे नहीं हो सकती है। इसकी वृद्धिका एक मात्र उपाय यह है कि हम संसा-रिक वस्तुओंको देखें और उनका परीक्षा द्वारा पूर्ण रीतिसे ज्ञान प्राप्त करें। कल्पनाएं करनेका कार्य्य सदा पीछे होना चाहिये।

ईसाकी सत्रहवीं शताब्दीके मध्य भागमें गणित और विज्ञानकी बहुत कुछ उन्नति हुई। उस समय इटली, इँगलैंड और फ्रान्स देशमें वैज्ञानिक सभाएं खुलीं। सन् १६५१ में सबसे पहले इटलीमें एक सभा बनी, उसके पश्चात सन् १६६० में इँगलैंडमें रोयल सोसाइटी (Royal Society) स्थापित होगयी और छः ही वर्ष पीछे फ्रान्समें भी एक वैज्ञानिक सभाने कार्य्य करना आरम्भ कर दिया।

इन सभाओं में बड़े बड़े विज्ञान वेत्ता सम्मि-लित हुए और वे सहानुभूति द्वारा नवीन अनुसंधानोंकेलिए एक दूसरेका उत्साह बढ़ाते रहे। विचार और सम्मतियों द्वारा मनुष्योंकी रुचि इस ओर बढ़ने लगी और व्यापार और वाणिज्यकी उन्नति और उसके द्वारा धन-प्राप्ति-के विश्वासके कारण जन साधारणका ध्यान इस ओर आकर्षित होगया और दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति विज्ञानशास्त्रमें होने लगी।

इस प्रकार विज्ञानकी शाखा तापकी भी उन्नति होने लगी और ईसाकी अट्ठारहवीं शताब्दीमें इसकी नींव ब्लेक, विल्कि, क्राफोर्ड, इरविन और लेवोज़ायर प्रभृति विज्ञानवेत्ताओं-ने रखी। तत्पश्चात रुमफोर्ड, पिकटे, हर्षेल, लेसली, डाल्टन, डेवी, गेल्यूज़ाक इत्यादि और भी कई बड़े बड़े विद्वानोंने विज्ञानकी इस शाखा-में बहुत सी नयी नयी बातोंका विकास किया। इसके अनन्तर इस पिछली शताब्दीमें तीन बहुत बड़े विज्ञान वेत्ता (रेंकिन, जौल और टामसन) तापको उसके उन्नत शिखरतक पहुंचानेमें कृतकार्य्य हुए।

इस प्रकारका विज्ञानका पुरातन इतिहास केवल आश्चर्य्यजनक ही नहीं वरन् शिक्षाप्रद भी है। इससे हम यह सीखते हैं कि किसी विज्ञान-की उन्नति तभी होसकती है जब कि हम किसी कल्पना विशेषपर निर्भर न रहें। प्राचीन काल-के मनुष्य, कुछ थोड़ी सी बातोंपर निर्भर रहने-के कारण, उन्नति नहीं कर सके। दूसरे, बड़े

पुरूषोंके विचाराधीन होकर उनकी बातोंपर अन्ध विश्वास करना और उसमें भूल देखते हुए भी उनके विरुद्ध कुछ न कहना बड़ा दोष है। वृद्धि तभी हो सकती है जब कि प्रत्येक कार्य्यका दोषानुसंधान किया जावे और उस-पर पूर्ण रीतिसे विचार किया जावे। विज्ञान-शास्त्रकी उन्नति विशेष करके पारीक्षिक (Experimental) ज्ञानपर निर्भर है। किसी बात-की सत्यता किसी निर्देशपर निर्भर होकर नहीं जानी जा सकती है।

परन्तु इस बातका गर्व करना कि जो कुछ विज्ञान-शास्त्रमें उन्नति की है वह सब हम (उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दीवालों) ने ही की है, हमारा मिथ्याभिमान है। सृष्टिका यह नियम है कि किसी वस्तुके अल्प ज्ञान होनेके समय मनुष्यमात्र अन्धेरेमें टटोलते फिरते हैं, और कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते। परन्तु टटोलते टटोलते जैसे ही कोई मनुष्य अनायास पथको पा लेता है, वैसे ही वह उसमें बड़ी शीघ्रतासे अग्रसर होता है और फिर पिछले मनुष्योंकी भूलोंसे ज्ञान प्राप्त करता हुआ अल्प समयमें ही उन्नति कर लेता है।

यह सब कुछ होते हुए भी कल्पना करने-का कार्य्य कम नहीं हो गया है। विज्ञान-शास्त्रमें जैसे जैसे उन्नति होती है, उसी प्रकार कल्पनाएं भी बढ़ती जाती हैं। परन्तु उसके साथ ही यह अवश्य है कि यदि कभी किसी कल्पनामें कोई भूल जान पड़ती है तो उसका शीघ्र ही सुधार कर लिया जाता है।

विज्ञानकी इस उन्नत अवस्थामें भी बहुत से ऐसे मनुष्य हैं जो कि कृत्रिम सुवर्णके बननेपर विश्वास करते हैं, पृथ्वीको चपटा मानते हैं व भूत प्रेतादिकोंका होना स्वीकार करते हैं; और इस प्रकारकी बहुत सी विघ्न-बाधाएं अब भी विज्ञानके पथमें पड़ी हुई हैं। हमारा कार्य्य अब यह है कि इन कंटकोंको दूर करते हुए विज्ञान-शास्त्रको उसके उन्नत शिखर तक पहुंचानेका उद्योग करें।

पदार्थकी शाश्वति

[ले० डी. बि. देवधर, एम्. एस्-सी.]

आजकल विद्युत् शास्त्रमें बहुत तेज़ी-से उन्नति हो रही है; अनेक प्रयोगोंसे ऐसा सिद्ध होता है कि वस्तु (Matter) मात्रका मूल कारण विद्युत् है। विद्युत्‌के एक विशिष्ट स्थितिमें रहजानेसे पदार्थको सुवर्णत्व प्राप्त होता है; दूसरी स्थितिमें रौप्यत्व प्राप्त होता है। इसी प्रकार जितने पदार्थोंके रूप दीखते हैं वह सब विद्युत् रचनासे भिन्न भिन्न मालूम होते हैं। जो वस्तु देखो वह विद्युत्‌के सिवाय कुछ नहीं है यह एक महत् आश्चर्य है! पदार्थोंमेंसे विद्यु-त्किरणोंके निकलनेका (Radioactivity) भी सिद्धान्त सर्वसाधारण हो गया है। वस्तुओंमेंसे चमत्कारपूर्ण विद्युत्किरण निकलकर कुछ विचित्र रीतिसे ऐसा बतलाते है कि वैज्ञानिकोंका प्रचीन सुमान्य सिद्धान्त (Conservation of matter.) जो कहता है कि "वस्तु अविनाशी है" केवल लगभग ठीक है; उसमें सम्पूर्ण सत्यता नहीं है।

ऐसा माना जाता है कि जिन पदार्थोंको हम देखते, सूंघते और स्पर्श करते हैं वे सब छोटे छोटे परमाणुओंसे बने हैं। ये परमाणु एक दूसरेसे चिपके हुए नहीं हैं परन्तु उनके बीचमें एक तरहका जोड़ लगा हुआ है। वह जोड़ साधारण वस्तुओंका नहीं है, किन्तु एक विचित्र वस्तुका, जिसको आकाश (ether) कहते हैं, है। पदार्थ विज्ञान (Physics) व रसायन (Chemistry) शास्त्रोंमें ऐसा माना गया है कि सब पदार्थोंके घटक परमाणु (Atoms) अभेद्य हैं। प्राचीन कालमें संसारभरके वैज्ञानिक ऐसा समझते थे कि जितने पदार्थ देखने व

छूनेसे जाने जासकते हैं पांच तत्वोंसे (Elements) बनते हैं। वे लोग इन तत्वोंको 'पंचमहाभूत' के नामसे पुकारते थे और प्राणीके मरनेपर उसे "पंचत्वं गतः" ऐसा कहते थे। परंतु आधुनिक वैज्ञानिक खोजोंसे ऐसा मालूम हुआ है कि उन दिनोंके पंच तत्व वास्तविक तत्व नहीं किंतु अन्य छोटे छोटे तत्वोंसे बने हुए हैं। अब तो इन तत्वोंकी संख्या पांचसे अस्सीके क़रीब हो गयी, ये अस्सी प्रकारके परमाणु समस्त संसारके घटक माने गये और इन परमाणुओंके छोटे छोटे भाग करना अशक्य है ऐसा विश्वास दिनोंदिन बढ़ता गया।

साधारण लोग समझते हैं कि जब कोई वस्तु जलने लगती है तो वह धीरे धीरे कम होती जाती और अंतमें बिल्कुल ही नष्ट हो जाती है। परन्तु प्रयोगोंसे यह मालूम हुआ है कि इस प्रकारसे पदार्थोंका नाश होना वास्तविक नहीं केवल दिखाऊ है। जब हम मोमबत्ती जलाते हैं तो कुछ देर तक रोशनी व गर्मी निकालनेके बाद वह मोमबत्ती ख़तम हो जाती है। इस बत्तीका क्या हुआ ? जिन पदार्थोंसे वह मोमबत्ती बनी थी वे पदार्थ तो दिखाई नहीं देते किंतु यह बात कि वे पदार्थ नाश नहीं हुए हैं, दूसरे प्रकारसे सिद्ध की जा सकती है। एक बोतलमें छोटी सी मोमबत्ती रखकर उसे जला दो और बोतलका मुँह बंदकर दो, थोड़े देरमें वह छोटीसी मोमबत्ती जल जायगी। अब यदि बोतलकी डाट निकालकर उसमें चूनेका साफ़ पानी डाल दिया जाय तो वह दूधके समान सफ़ेद हो जायगा। सादी हवासे इस पानीका रंग नहीं बदलता, इससे यह सिद्ध है कि कोई अदृश्य वायवीय पदार्थ (gas) मोमबत्तीके जलनेसे उत्पन्न हो गया जिसके गुण सादी हवासे भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त मोमबत्तीके जलनेसे पानी भी उत्पन्न हुआ है। यह बात भी प्रयोग द्वारा मालूम हो सकती है। शुरूमें मोमबत्तीके साथ यदि थोड़ा सा तुला हुआ कोस्टिक सोडा (caustic soda) बोतलमें रख दिया जाय तो मोमबत्तीके जलनेके बाद उस कोस्टिक सोडेका वज़न बढ़ जायगा। इसका कारण यह है कि मोमबत्तीसे निकले हुए पदार्थोंका हवामें रहनेवाले ओषजन (oxygen) से संबंध होकर एक नया पदार्थ बन गया और वह पदार्थ कॉस्टिक सोडेसे मिल गया। इसी प्रकारके बहुतसे बारीक निरीक्षणोंसे व अत्युत्तम तराजुओंसे ऐसा दिखाया जा सकता है कि रासायनिक क्रियाओंमें (chemical actions) वस्तुओंका नाश नहीं होता, केवल उनकी अवस्था ही बदलती रहती है। ऐसी परीक्षाओंसे आधुनिक रसायन शास्त्रमें यह सिद्धान्त सर्व मान्य हो गया कि "वस्तु अविनाशी है"। रम्फ़ोर्ड, डेव्ही, जूल, हेल्म्होल्ट्ज़ इत्यादि वैज्ञानिकोंने प्रयोग करके यह निश्चय किया कि जिस प्रकार वस्तु अविनाशी है उसी तरह कर्तृत्व शक्ति (energy) की भी शाश्वति सत्य है। एक प्रकारकी शक्तिका केवल दूसरे प्रकारकी शक्ति में रूपांतर हो जानेसे बिल्कुल नये दृश्य दीखने लगते हैं। वाष्पयंत्र (steam engine) क्या होता है ? उसमें तापशक्तिसे गति उत्पन्न होती है। अर्थात् यांत्रिकशक्ति (mechanical energy) तैय्यार होती है। इसी तरह बिजलीके बाटरीमें रासायनिक शक्तिसे विद्युत्प्रवाह (electric current) उत्पन्न होता है। ताप, विद्युत् इत्यादिकोंके नापनेकी इकाई भिन्न भिन्न होनेसे हम प्रयोग करके निश्चित कर सकते हैं कि दो प्रकारके शक्तिमें क्या निश्चित संबंध है। उदाहरणार्थ एक तापकी इकाई उत्पन्न करनेके लिए निश्चित यांत्रिक शक्ति ख़र्च करनी पड़ती है। जिस प्रकार इस यांत्रिक शक्ति का व्यय जाना जा सकता है वैसे ही अन्य शक्तियोंके पृथक् पृथक् संबंध निकलते हैं। शक्तिके केवल रूप बदलते जाते हैं;

उसका भांडार (store) उतनाका उतना ही बना रहता है। शक्तिके दो साधारण विभाग होते हैं। (१) चलनसंभूत शक्ति (kinetic energy) व (२) स्थानसंभूत शक्ति (potential energy)। यदि पहले प्रकारकी शक्ति बढ़ने लगे तो दूसरी घटने लगती है किंतु दोनोंका जोड़ सदा स्थिर रहता है। प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता मेक्स्वेल साहबका यह मत था कि हम चाहे जिस विज्ञानको लें शक्तिके अविनाशत्वका सिद्धांत उसमें अवश्य लगा हुआ मिलेगा। सूक्ष्म दृष्टिसे इस सिद्धांतपर विचार करनेसें बहुत प्रकारके चमत्कारोंका रहस्य बड़ी सुगमतासे खुल जाता है और नये नये चमत्कारोंका आविष्कार करना सुलभ हो जाता है। इन्हीं कारणोंसे वैज्ञानिकोंने माना है कि संसारमें केवल दो बातें अविनाशी हैं। (१) वस्तु (२) शक्ति। संसारके यावत् चमत्कार इन्हीं दोनोंपर निर्भर हैं। परंतु यह एक दूसरेसे अलग नहीं किये जा सकते। इनका जोड़ा एक ही साथ रहता है। जब वस्तुओंमें बिलकुल शक्ति न रहेगी तो वे पहिचानी भी नहीं जा सकेंगीं। जहाँ वस्तु है वहाँ शक्ति है व जहाँ शक्ति है वहाँ वस्तु है। उनकी नियत मात्रा कम अधिक नहीं हो सकती। वस्तुको उत्पन्न करना और उसका नाश करना मनुष्यकी शक्तिके बाहर है। तथापि हम आज पाठकोंको यह बतलाना चाहते हैं कि वास्तवमें कुछ न कुछ नाश अवश्य हुआ करता है।

यह कहनेका कि परमाणु (atom) अभेद्य है इतना ही अर्थ है कि हमको उस परमाणुके विभाग करनेकी शक्ति नहीं मिली। किन्तु आज कलके नये नये शोधोंसे हमें केथोड किरण (Cathode rays) और रांट्जेन् साहबके (X rays) एक्स् किरण का पता लगा है। आजकल चिकित्सा शास्त्रमें एक्स किरणोंका उपयोग कितना होने लगा है यह पाठकगण जानते ही हैं। वर्तमान समयमें होलेंड्के प्रसिद्ध वैज्ञानिक ज़ीमन्ने (Dr. Zeeman) प्रकाश किरण (Light rays) व लोहचुंबकत्व (Magnetism) का निकट संबंध सिद्ध किया है। सूक्ष्म प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया है कि प्रकाश, विद्युत् व लोहचुंबकत्वके विशिष्ट संबंधके कारण ही पैदा होता है।

'अ" यह एक काँचकी नली है जिसमें "ब" व "क" जगहमें प्लेटीनम (Platinum) धातुके तार कांचको गरम करके घुसाये हैं। नलीका खुला मुंह "प" एक वायुनिष्कासनयंत्रसे (Exhaust pump) लगाया जाय तो कुछ देरतक यंत्र चलानेसे "अ" मेंकी हवा निकल जायगी। इसके अनंतर "प" स्थानके कांचको आंच देकर पिघलानेसे उसका मुंह बंद हो जायगा। अब एक विद्युत् यंत्र (Electric machine) लेकर उसके धन व ऋण भाग (Positive and negative poles) "ब" व "क" से तांबेके तारसे जोड़ दो,
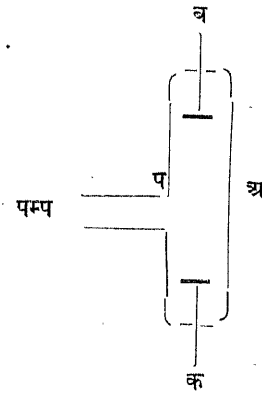
चित्र नं० १

यंत्र चलानेसे नलीमें "क" से ऋणविद्युत्कण (negatively charged corpuscles) बड़े वेगसे "ब" को जाने लगेंगे, जैसे किसी बंदूकमेंसे छर्रे निकल रहे हों। इस बातका प्रमाण यों दिया जा सकता है–यदि हम पहलेके समान ही एक ऐसी नली लें जिसमें क और ब के बीचमें एक महीन परदा हो। अब अंधेरेमें विद्युत् यंत्रसे बिजली
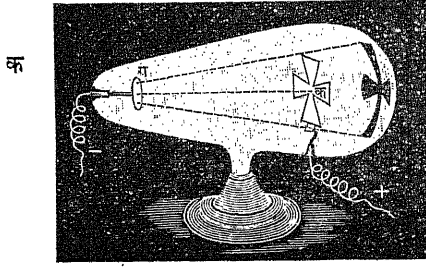
चित्र नं० २

नलीमें लेजायें तो "ब" की ओर उस परदेका छाया पड़ेगा। इससे मालूम होता है कि बिजली-के प्रकाशमान कण "क" से जाते हैं और ये कण ऋण विद्युत् वाहक हैं। यदि हम यंत्रका ऋण भाग "व" से जोड़दें तो छाया "क" की ओर पड़ेगी। यहां पर यह शंका की जासकती है कि छाया तो केवल प्रकाशके सहारे ही पड़ सकती है; यहांपर भी नलीमें प्रकाश है ही, उसीसे छाया पड़ती होगी। इस शंकानिवारणकेलिए निम्न लिखित प्रयोग किया जा सकता है:—

व क एक कांचकी नली है जिसमें, कांचकी दो पतली सींकें लगा दी गयी हैं। इन पटलियोंपर एक अत्यंत ही हलके पहियेकी धुर लुढकती है। पहियेमें केवल भोडरके (अवरक) पत्र लगा दिये गये हैं। यह पहिया बड़ा हलका है, इसी कारण धक्का लगनेसे चलने लगता है। अब इस नलिका-के दोनों सिरे 'व' व 'क' किसी विद्युत्यंत्रके धन व ऋण छोरोंसे तार द्वारा जोड़ दें, तो पहिया क से ढुलकता हुआ व की ओर जायगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि कोई वस्तु क से निकलती है और पहियेको धक्का लगाती है यदि अब यह सम्बन्ध उलटे कर दिये जायं अर्थात् क से विद्युत्यंत्रके धन भागको जोड़ दें तो पहिया व से क की ओर लौटैगा—अब कण व से निकल रहे हैं। इन दो प्रयोगोंसे यह सिद्ध हुआ कि जो छोर विद्युत् यंत्रके ऋण भागसे जुड़ा होगा उसी-से कण निकलते हैं।
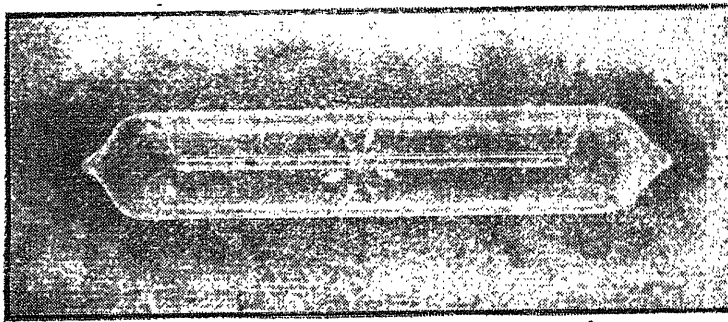
प्रयोगोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि ये विद्युत्कण परमाणुओंसे (atoms) भी छोटे हैं। पाठकोंको मालूम ही है कि किसी बड़े मेलेमें बहुत लोगोंके इकट्ठा हो जानेसे आदमीको आगे बढ़नेको बहुत कम जगह मिलती है। परन्तु छोटे छोटे जानवरोंको उस समूहमें बिलकुल अड़चन नहीं पड़ेगी। जब मनुष्योंके इधर उधर फिरनेकी सरलता या कठिनताका विचार करना हो तो मनुष्योंका ही समूह लेना पड़ेगा इसी तरह उज्जन वायुके परमाणुओंका विचार कीजिये। उज्जनके परमाणु, सर्वप्रकारके परमाणुओंसे अधिक छोटे हैं। कांचकी नलीमें यदि उज्जन भर दिया जाय और वायुनिष्कासनयंत्र (Exhaust pump) से धीरे धीरे उसकी मात्रा कम करने लगें तो कुछ समयमें उज्जनके परमा-णुओंकी संख्या बहुत ही कम हो जायगी, और उनको इधर उधर फिर-नेकेलिए अधिक सुगम-ता हो जायगी। परन्तु गणितसे ऐसा मालूम हुआ है कि इतनी सु-गमता करनेपर भी परमाणुको केवल एक इंचके बराबर जगह मिलती है। साधारण स्थितिमें

चित्र नं० ३

कितनी जगह मिलती होगी इसका अनुमान सहजमें हो सकता है। कमरेके एक कोनेमें पैदा हुए थोड़े से धुएंको (Smoke) दूसरे कोनेतक पहुंचनेमें बहुत देर लगती है इसका कारण भी परमाणुओंकी भीड़ ही है। विद्युत्कणों की स्थिति इन परमाणुओंसे बहुत भिन्न है। वे एक बाजू-से दूसरे बाजूको बड़ी शीघ्रतासे जासकते हैं। यदि नली लम्बी भी हुई तो भी वे उतनी लंबाई को थोड़े ही समयमें तय करडालते हैं। इससे यह सिद्ध है कि वे बड़ी सरलतासे आ जा सकते हैं। दो दो चार चार फ़ुटका अन्तर उनके सामने बहुत ही कम है। इस विचारसे अपनेको यह मानना पड़ेगा कि विद्युत्कण सबसे छोटे हैं वे उज्जनके परमाणुओंसे भी कहीं छोटे हैं। टॉम्सन साहबने सूक्ष्म प्रयोगोंसे हिसाब लगाया है कि केथोड किरण उत्पन्न करनेवाले विद्युत्-कणका (Cathode particles) भार उज्जनके परमाणुके भारका $\frac{१}{१७००}$ अंश है। जिस नलीसे कि अभी हमने प्रयोग किया है, यदि उसमें उज्जनकी जगह कोई और वायु (ओषजन-आदि) या किसी पदार्थकी वाष्प भरदें तो भी, इसमें विद्युत्प्रवाह करनेपर, हमें वैसे ही विद्युत्-कण मिलेंगे जैसेकि नलीके उज्जनसे भरेहुए होनेपर मिले थे। इनकी तोल, इनका वेग, इनकी विद्युत्की मात्रा, प्रयोगों द्वारा, सभी चीज़ें बराबर पायी जाती हैं।

इससे यह सिद्ध होता है कि सब तत्वोंके यह नये विद्युत्अणु या इलेक्ट्रोन, एक से ही हैं। भिन्न भिन्न तत्त्वोंमें इनकी संख्या या रचना अथवा दोनों भिन्न होती हैं। इसी भिन्नताके कारण प्रत्येक तत्वके परमाणु दूसरे तत्वके परमाणु से भिन्न होते हैं।

ऊपर दिये हुए प्रयोगोंमें विद्युत्कण, पदार्थों-कीं किसी विशेष दशामें, निकलते हैं। परन्तु यह कोई सर्वव्यापक नियम नहीं है। ऐसे भी पदार्थ मालूम है जिनमेंसे विद्युत्कण साधारण अवस्था-में भी, रात दिन लगातार निकलते रहते हैं।

विद्युत्कणोंके उत्पत्तिका कारण दोनों अव-स्थाओं में एकही है। केथोड किरणोंमें बिजली ही पदार्थके परमाणुओंके टूटनेका कारण है, परन्तु दूसरे जातिके पदार्थोंके [जिनमेंसे विद्यु-त्कण बराबर निकलते रहते है] परमाणु स्वयं ही टूटते रहते हैं।

सन् १८९६ में बेकेरल साहबने यह पता लगाया कि यूरेनियम (uranium) धातुके लवणोंसे (salts) एक प्रकारकी अद्भुत, अदृश्य किरणें निकलती हैं जो फोटोग्राफ़ीके मसालेदार कांच-पर क्रिया करती हैं और हवा को विद्युत्वाहक बना देती हैं। "क्यूरी" ने यह बतलाया कि "पिचब्लेंडी" नामक खनिज पदार्थमें जिसमें से यूरेनियम लवण निकलते हैं—यूरेनियमके अतिरिक्त और भी दो तीन तत्वोंके संयुक्त पदार्थ होते हैं जिनकी तेज़ी यूरेनियमसे भी अधिक है। इन तत्वोंके नाम रेडियम्, पोलो-नियम् व अक्टीनियम् हैं। इन सबोंमें रेडियम्-की तेज़ी बहुत ज़्यादा है। इस रेडियम्से सदा तीन प्रकारकी किरणें निकला करती हैं। इनको 'अल्फ़ा किरण" "बीटा किरण" व "गामा किरण" ये नाम दिये गये हैं। अनुभवसे ऐसा जाना गया है कि "गाँमा किरण" एक्स किरणों-के समान है, परन्तु "अल्फ़ा किरण" धन विद्यु-त्युक्त वस्तुओंके साधारण परमाणु हैं। रेडियम्-की किरण देनेकी शक्ति किसी प्रयत्नसे भी कभी अधिक नहीं हो सकती। यदि किसी अपारदर्शक डिब्बीमें थोड़ासा रेडियम् रखकर उस डिब्बी को अंधेरेमें हीरेके पास लेजायें तो वह हीरा बड़ा ही उत्तम प्रकाश देने लगता है, परन्तु खोटा हीरा इस तरह प्रकाश नहीं देता। इस युक्तिसे खोटे और खरे हीरेकी परीक्षा उत्तम प्रकारसे हो सकती है। यूरेनियम्में इतनी तेज़ी नहीं है, परन्तु यदि फ़ोटोग्राफीका मसालेदार कांच

यूरेनियम्के समीप बहुत दिन पर्यंत रखा रहे, तो उसमें तेज़ी जमा हो जाती है। विद्युत्किरणोंसे हवा विद्युत्वाहक हो जाती है। इस बातकी जांच करनेसे इसका पता लग जाता है कि कोई वस्तु विद्युत् किरण देती है या नहीं। इस प्रकारके प्रयोगोंसे पता लगा है कि बहुतसी वस्तुओंमें थोड़ी बहुत विद्युत्किरण देनेकी शक्ति वर्तमान है जैसे नदी या कूएँ का पानी, बालू चिकनी मट्टी इत्यादि। "ले बाँन" व इतर बहुत वैज्ञानिक तो सर्व जड पदार्थोंसे यह विद्युत्किरण निकलते हैं ऐसा अनुमान करने लगे हैं। परन्तु आश्चर्य-कारक व विशिष्ट बात यह है कि विद्युत्किरणोंसे निकलनेवाली वस्तुका (Emanation) साधारण स्वभाव अपने जनक मूलपदार्थ से भिन्न होता है। रुदरफ़ोर्ड साहब कहते हैं कि इस तरह बाहर निकलनेवाले वस्तुओंके परमाणुका भार अपने मूलपदार्थके परमाणुके भारसे बहुत कम होता है। रेडियम्के परमाणुका भार २२५ है। यह परमाणु रेडियम्से टूटकर धीरे धीरे, सीसा बनता है जिसके परमाणु का भार २०६ है। इसी प्रकार श्रेणी श्रेणी से उससे हीलीयम् (Helium) बाहर निकलता है जिसके परमाणुका भार केवल ४ है। इस प्रकारकी क्रियाओंके निरीक्षणसे यह कहना पड़ता है कि एक तत्वसे दूसरा तत्व, दूसरेसे तीसरा और इसी क्रमसे अन्य तत्व बनते चले जाते हैं। पुराने कीमियागरोंकी एक पदार्थसे दूसरा पदार्थ बनानेकी कल्पना अब प्रत्यक्ष अनुभवमें आरही है।

इस विवेचनसे यह निर्णय होता है कि पुराने मतानुसार परमाणु अभेद्य नहीं है; किन्तु उससे धीरे धीरे नये परमाणु निकलते जाते हैं, और इनके निकलनेके साथ नये प्रकारकी चमत्कारपूर्ण शक्ति दिखायी देती है। कोई कोई सज्जन ऐसा भी प्रतिपादन करते हैं कि वस्तुका रूपांतर एक प्रकारकी शक्तिमें होता है। जिसको हम लोग पदार्थ कहते हैं वह केवल एक स्थिर शक्ति ही है-ताप प्रकाश इत्यादि अस्थिर शक्ति हैं जो एक परमाणुसे दूसरे परमाणुके निकलनेके समय उत्पन्न होती हैं। इन सब विवेचनाओंसे अनुमान यह हुआ कि पदार्थ केवल अशाश्वत है। वह स्वयं कम होता जाता है। इससे यह प्रश्न निकलता है कि जो वस्तु हम आज देखते हैं वह थोड़े ही दिनोंके पहले उत्पन्न हुई होगी। यदि वह बहुत दिनसे बनी होती तो आज तक अवश्य नष्ट हो जाती। वस्तु उत्पन्न कैसे हुई कब हुई, परमाणु कैसे उत्पन्न हुए इत्यादि प्रश्नोंका उत्तर देना बहुत कठिन है। जिधर देखो उधर अपनेको सांबंधिक विचार करना पड़ता है और मनुष्य प्राणियोंका ज्ञान भी सीमाबद्ध होनेसे, मूल उत्पत्ति कैसी हुई इस बातका विचार करना एक प्रकारसे वृथा ही है। परंतु हम यह निश्चयसे कह सकते हैं कि रसायन शास्त्रका साधारण परमाणु खरा परमाणु नहीं है; क्योंकि इस परमाणुमें दूसरे अनेक विद्युत् अणु (Electrons) समाये हुए हैं। जैसे और जगत् के सर्व ग्रह (Planets) अपने सूर्यके आसपास घूमते हैं वैसे ही विद्युत्अणुकी यह माला (System) एक केंद्रके आसपास घूमती रहती है। परन्तु अपनी ग्रहमाला एक बड़े भारी मालाका केवल एक विभाग है उसी तरह यह भी संभव है कि विद्युत् अणु (Electron) अपनेसे भी छोटे छोटे अणुओंसे बना हो। यदि यह माना जाय कि विद्युदणु अभेद्य है तो विश्वमें जितने दृश्य दिखायी देते हैं उन सबका सम्यक स्पष्टीकरण इसी मूलतत्वसे होजाना चाहिये। परन्तु अभी बहुत सी ऐसी अनजान बातें पड़ी हैं जो इस तत्वसे नहीं स्पष्ट हो सकतीं। सर्व वैज्ञानिकोंका अन्तिम हेतु यह है कि संसारकी इस दिखाऊ भिन्नतामें एकताका पता लगाये। वे एक ऐसा मूलतत्व ढूंढना चाहते हैं जो स्वयं सर्व व्यापी हो और जिसका घटक दूसरा कोई भी

न हो। ऐसे मूलतत्वका सहजमें मिलना अत्यन्त कठिन है। इतना ही नहीं बल्कि मनुष्यके सीमाबद्ध ज्ञान और सांबंधिक विचारके कारणसे हम यह कहनेको बाध्य होते हैं कि उस तत्वका मिलना असंभव है। अन्तमें हम इतना ही ध्वनित करते हैं कि ब्रह्म-ईश्वर क्या वस्तु है यह जाननेकेलिए हमारे पुरातन विद्वान् ऋषिगण जो प्रयत्न करते थे और जो प्रयत्न वेदों और उपनिषदोंमें स्पष्ट दिखलाई देता है ठीक वह प्रयत्न आधुनिक वैज्ञानिक कर रहे हैं। दोनों प्रयत्नोंमें केवल रीतिमात्रकी भिन्नता है। आधुनिक रीतिमें सांबंधिक विचारके अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग न होनेसे इष्टहेतु सिद्ध होनेकी संभावना बहुत ही कम है। प्रयोग (Experiments) और शोध (Research) चलते रहेंगे; नयी नयी बातें निकलती रहेंगी; उनसे बहुत प्रकारके ऐहिक लाभ दीखेंगे, परन्तु अन्तिम हेतु साध्य नहीं होगा। ऋषिगणोंकी विचार करनेकी रीति अधिक उदात्त दीखती है। वस्तुओंकी शाश्वति नहीं है ऐसा वे पहलेसे ही कह रहे हैं; यह बात पाश्चात्य वैज्ञानिकोंको आज मालूम होती है। भारतवर्षके संस्कृत ग्रंथोंका मनन करनेका काम जर्मन् पंडित बहुत परिश्रमसे चलाते हैं। वे बनारस शहरसे बहुत संस्कृत ग्रंथ बड़ी बड़ी क़ीमत दे देकर अपने देश लेगये। इसका कारण केवल यही है कि उनका पूर्ण विश्वास हो गया है कि उन ग्रंथोंमें गूढ़, गंभीर व अद्भुत ज्ञान भांडार भरा हुआ है। यह निर्विवाद है कि अपने पंडितोंका प्रवेश उन ग्रंथोंमें सहजमें हो सकेगा। सूक्ष्म अध्ययन करनेपर वे जर्मन व इतर पाश्चात्य पंडितोंसे अधिक लाभ उठा सकेंगे। परंतु दुर्दैव है कि इस प्रकारका अध्ययन करनेकेलिए कुछ भी उत्तेजना नहीं दिखलायी पड़ती। हमारा यह मत है कि पाश्चात्य वैज्ञानिकोंके लिखेहुए ग्रंथ पढ़नेवाले हिंदुस्थानके सज्जनोंका व संस्कृत पंडितोंका एक प्रकारका संमेलन होनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। एक आध विशिष्ट प्रश्न लेकर यह देखना चाहिये कि उसका उत्तर व स्पष्टीकरण पाश्चात्य ग्रंथ क्या देते हैं; और उसी प्रश्न-स्पष्टीकरण संस्कृत सम्बंधी ग्रंथोंमें क्या है इस प्रकारसे तुलनात्मक दृष्टिसे शोध होना चाहिये; पश्चिम और पूर्व इनका इस तरह संबंध होनेसे बहुत सी नयी नयी बातें निकलेंगीं। संस्कृत भाषाको मृत भाषा कहना भूल है। संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेमें मुख्य हेतु यह होना चाहिये कि बड़े बड़े ग्रंथोंका परिशीलन करनेपर उसमेंके गूढ़ार्थका संबंध बाहर आजाय। इस प्रकारके शोध करनेकेलिए क्षेत्र तो विपुल है परंतु शोध करनेकी इच्छा होनी चाहिये। इस प्रश्नपर विचार करके संस्कृत पण्डित व विज्ञान सीखे हुए सज्जन सम्मेलन होनेकी व्यवस्थाका कार्य अपने हाथोंमें शीघ्र लेंगे एसी इच्छा प्रदर्शित करके व अपने पुरातन विद्वान ऋषिवर्योंको पूज्यभावसे नमस्कार करके हम यह लेख पूर्ण करते हैं।

भोजन विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय, एम. बी, एम. आर. सी. एस.]

पथ्याशनका यथार्थ निर्णय

(गताङ्क से आगे)

छले अङ्कके लेखसे यह बात स्पष्ट हो गयी होगी कि प्रोटीन मनुष्यके शरीर-रचनाका मूल उपादान है पर फ़ैट या चर्बी इस रचनामें अवयवोंकी विशेषता और निपुणताकेलिए अनिवार्य्य है। जब बच्चेके भोजनमें प्रोटीन आवश्यक मात्रामें प्रस्तुत रहती है पर चरबीकी कमी होती है तो अनेक बुरे परिणाम उन तंतुओंमें देखने-

को मिलते हैं जो विशेष क्रियाओंके सम्पादनमें काम आते हैं। ऐसी अवस्थामें बच्चोंके दाँत देरमें निकलते हैं और निकलनेपर भी असाधारण रूप और गुणके होते हैं। बच्चोंकी मानसिक शक्तियां कमज़ोर हो जाती हैं और उनके चेहरेपरकी प्रसन्नता और चैतन्यतामें अँतर आ जाता है। उनके बोलनेकी शक्तिका विकास भी देरसे होता है। निरीक्षण और पर्य्यवेक्षण शक्तियां भी अविकसित रह जाती है। कल्पनाका ह्रास होने लगता है। इन पिछले लक्षणोंसे पता चलता है कि बच्चेके समस्त स्नायु यंत्रमें मस्तिष्कसे लेकर नीचेतक दोष आ गया है।

भोजनमें चर्वीकी कमी होनेसे शरीरकी गर्मीका यथेष्ट तापमान रखना दुष्कर हो जाता है। स्वभावतः देहके सिरे इस जीवधारिणी गर्मीके ह्रासका सबसे पहले शिकार बनते हैं। अतएव बच्चोंके पैरोंका शरीरकी अपेक्षा अधिक ठंढा रहना उनके भोजनमें चर्बीवाले द्रव्योंकी कमी होनेका एक मुख्य लक्षण है।

कार्बोहाइड्रेट्स शक्ति और स्फूर्ति पैदा करनेका मुख्य भांडार हैं। जब कठिन परिश्रम करना पड़ता है तब इनके द्वारा शरीरमें बराबर शक्ति संचार होता रहता है। किंतु चर्बीमें गर्मी पैदा करनेकी शक्ति अधिक है। चर्बीको हम मस्तिष्कका भोजन कह सकते हैं। यह बात बच्चोंके बारेमें जो ऊपर कहा गया है उससे स्पष्ट है।

भोजनमें कुछ कालतक प्रोटीनकी* कमी रहनेके कारण जो दोष बढ़ते हुए बच्चोंमें आजाते हैं वे परिमाणमें अधिक होते हैं और बड़ा विस्तार पकड़ लेते हैं। सबसे पहले रुधिरमें विकार उत्पन्न होता है। वह पतला होता जाता और पीला पड़ता जाता है। रुधिरके इस विकारके कारण समस्त शरीरमें विकार आजाता है। अनेक लक्षण ऐसे उत्पन्न होजाते हैं जिनसे स्पष्ट बोध होने लगता है कि शरीरकी दशा दिनपर दिन गिरती जाती है।

मनुष्यके देहभरमें ६४ हिस्से पानी, १६ प्रोटीन, १४ चर्बी, १ हिस्सा कार्बोहाइड्रेट तथा ५ हिस्से नमक होता है। इस प्रकार शरीरका सबसे कम अंश कार्बोहाइड्रेटसे बना है। पर साधारणतः भोजनमें अन्य मुख्य उपादानोंकी अपेक्षा कार्बोहाइड्रेट ही सबसे अधिक खाया जाता है। इस विचित्र व्यवहारकी व्याख्या इसी स्थानपर की जायेगी।

मनुष्यका शरीर सदा एक ही सा नहीं रहता। उसमें बराबर परिवर्तन होते रहते हैं यहांतक कि जब हम भोजनद्वारा शरीर पालन करते हैं दूसरी नाशकारक क्रियाएं बराबर जारी रहती हैं। कोष-जिन्हें हम शरीर व्यवच्छेद शास्त्र (anatomy) का परमाणु कह सकते हैं—और तन्तु एक ओर तो कुछ क्रियाओंद्वारा जिन्हें अनाबोलिज़्म (anabolism) कहते हैं बनते जाते हैं और दूसरी ओर कटाबोलिज़्म (catabolism) नामक नाशकारी क्रियाओंद्वारा नष्ट होते जाते हैं। शरीर-रचना-शास्त्रमें (physiology) इन दोनों क्रियाओंको मेटाबोलिज़्म (metabolism) कहते हैं। जब शरीरके भीतर जानेवाली नत्रजनकी मात्रा शरीरसे बाहर निकलनेवाली नत्रजनकी मात्राके बराबर होती है, तो शरीर नत्रजनीय अथवा प्रोटीड साम्यकी अवस्थामें कहलाता है। जहांतक हम केवल तंतुओंके प्रोटीडका विचार करते हैं यह साम्य शरीर-रचना-संबंधी साम्यके नामसे पुकारी जा सकती है (वास्तवमें शरीर-रचना-संबंधी साम्यमें प्रत्येक तत्वका लाभ और नाश समान होना चाहिए)। इस प्रकारके शरीर-रचना-संबंधी साम्यके भोजन द्वारा आय और शरीरसे बाहर निकालकर व्यय करनेका लेखा मूलतत्वोंकी मात्रामें इस प्रकार दिया जा सकता है:—

आय			व्यय			
भोजन	नत्रजन	कर्बन	मल	नत्रजन	कर्बन	जल
प्रोटीन १३७ ग्रेन..	१९ ५ ग्रेन	३१५.५ ग्रेन	मूत्र	१७.४ ग्रे.	१२.७	१२७६
चर्बी ११७ " ...			मल	२.१ ग्रे.	१४.५	८३
कार्बोहाइड्रेट ३५२ " ...			बाहर निकाली हुई हवा	....	२४८.८	८२८
जल २०१६ " ...						
				१९.५	२७५.८	२१९०

इस लेखेमें भोजनका आय उन सबसे सरल और मूल ऐंद्रिक पदार्थोंमें दिखाया गया है जो जानवरों और वनस्पतियोंमें बने बनाये प्रस्तुत रहते हैं और जो स्वयं मिलकर गूढ़ तथा दुर्बोध इंद्रिय-रचना किया करते हैं। इन्हें अंग्रेज़ीमें प्रोक्सीमेट प्रिंसिपिल्स (proximate principles) कहते हैं। हम इन्हें संसक्त-मूल उपादान कहकर पुकारेंगे। उपर्युक्त लेखेको देखने से मालूम होता है कि एक साधारण आदमी प्राक्सीमेट प्रिंसिपिल्समें दी हुई भोजनकी साधारण मात्रापर बिना कठिन परिश्रम किए हुए नत्रजनीय साम्य तो स्थापित करलेता है पर वह जितना जल पीता है उससे १७४ ग्राम अधिक निकाल देता है और जितना कार्बन लेता है उससे ३९.७ ग्राम कम व्यय करता है। यह अधिक जल भोजनसे प्राप्त उज्जनके ओषजनसे मिलने की धनद प्रक्रिया द्वारा बन जाता है और बचाया हुआ कर्बन ५२ ग्राम चर्बीके रूपमें शरीरमें संचित रहता है।

यदि यही मनुष्य अधिक परिश्रम करे तो वह नत्रजनीय साम्य तो स्थापित कर सकता है पर उसके कर्बन और उज्जनका व्यय बढ़ जायगा। अधिक परिश्रम करनेमें जो उसे अधिक शक्ति लगाना पड़ेगी उसे पानेकेलिए वह अपने तंतुओंसे ही कर उगाहना प्रारंभ कर देगा।

आय और व्ययकी यथार्थ खोज लेखेके द्वारा नहीं हो सकती। इससे हमें यह मालूम हो जाता है कि हमारे भोजनका अंतमें क्या परिणाम हुआ। परन्तु किसी विशेष परिणाम-तक पहुंचनेके पहले बीचमें कौन कौन सी क्रियाएं हुईं इसका पता हमें लेखेसे बिलकुल नहीं चलता। अब हमें पूर्व वर्णित तीनों संसक्त मूल उपादानोंमें क्या क्या परिवर्तन होते हैं और कौन कौन से अङ्गाङ्गी धर्म्मोंमें सहायता देते हैं इस बातपर विचार करना चाहिये।

१—सबसे प्रथम हम प्रोटीन या प्रोटीड का विचार करते हैं। मनुष्यके साधारण आरोग्य अवस्थामें भोजन द्वारा शरीरमें पहुंचायी हुई चीज़ अपने घटकोंमें (constituents) विभक्त हो जाती है। उसके यह सरल भाग या घटक नत्र-जनीय द्रव्य तो होते हैं पर वे प्रोटीड नहीं होते। इन घटकोंका पारिभाषिक जाति नाम अमीडो एसिड्स या अमीडो अम्ल है। शरीर प्रोटीडोंको इन्हीं अम्लके रूपमें लेता है। इस प्रकार भोजनकी प्रोटीड अपने सरल भागोंमें छिन्न भिन्न होकर शरीरके तंतुओं की प्रोटीडमें परिवर्त्तित हो जाती है। यह परिवर्तन शरीर धारियों की

रचना विशेष पर निर्भर है। प्रत्येक जीव धारीका शरीर अपने ही शरीरके उपयुक्त तंतुओंको बनाता है। अपनी रचनामें चाहे कैसा ही भिन्न क्यों न हो इन भोजन तंतुओंका रासायनिक स्वरूप प्रत्येक शरीरधारीमें एकसा ही रहता है। भोजनकी भिन्नताके कारण उसके निजत्वमें भिन्नता नहीं आती। इस प्रकारसे बने हुए तंतु जीवनके भीषण संघर्षमें निरंतर लोप होते रहते हैं।

जिस प्रकारसे एक मनुष्य जो अपना निजका घर दूसरे मकानकी ईंटोंसे तैय्यार करनेकेलिए पहले तो मकानको तोड़ फोड़ डालता है, फिर उसकी अच्छी साजी ईंटोंको निकालकर एक नये ही ढङ्गसे लगाता है। इसी प्रकार शरीरके तंतु कोष भोजनकी प्रोटीनको अङ्ग भङ्गकर डालता है, फिर उससे उपलब्ध सामग्री एक दूसरे ही प्रकारकी रचना करके एक नया ही प्रोटीन अपने तंतुकेलिए तैय्यार कर लेता है। यहां पर पाठकोंको यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि "भोजनमें मिलनेवाली प्रोटीनोंके यह प्रासाद प्रस्तर सबके सब इस प्रकारसे ख़र्च नहीं कर डाले जाते"। प्रोटीन जीवनका बिलकुल प्रारंभिक क्रियात्मक पदार्थ तो है, बिना उसके जीवनका कोई कार्य्य संपादन नहीं हो सकता, पर वह जितना ही आवश्यक है प्रकृति उसे उतनी ही कृपणताके साथ व्यय करती है। प्रोटीडोंके इस प्रकार बचाये जानेके कारण दूसरे संसक्त मूलउपादान कार्बोहाइड्रेट और चर्बी उसकी कमीको पूरा करनेकेलिए विशेष प्रकारसे काममें लाए जाते हैं। इसका वर्णन आगे होगा।

वास्तवमें भोजनकी प्रोटीन दो प्रकारसे काममें आती हैंः—

(१) जावधारियोंके तंतुओंका प्रोटीन कैटेबोलिक प्रक्रियाओं द्वारा नाश होता रहता है। भोजनके प्रोटीनका थोड़ा अंश तंतु प्रोटीनकी पुनर्रचनामें व्यय होता है। इस तरह बने हुए तंतु अपनी बार फिर नष्ट हो जाते हैं और अमोनिया और यूरियाके रूपमें बाहर निकल जाते हैं। इस क्रियामें प्रोटीनका नियत व्यय होता है, वह भोजनके परिमाणपर निर्भर नहीं रहता।

(२) भोजन प्रोटीनका बहुत बड़ा अंश इस प्रकारसे व्यय नहीं होता। वह तो शरीर पालनके किसी काममें नहीं आता। बड़े शीघ्र यूरियामें परिवर्तित होकर वह गुरदों द्वारा पेशाबमें निकाल दिया जाता है। इस तरह व्यय होनेवाली प्रोटीनका परिमाण खाये हुए प्रोटीनके परिमाण पर निर्भर है।

इन दोनों प्रकारके मेटाबोलिज़्म (भोजन परिवर्तनी प्रक्रियाएं) में पहलेको हम अंतरङ्गी मेटाबोलिज़्म (endogenous metabolism) और दूसरीको बहिरङ्गीय मेटाबोलिज़्म (exogenous metabolism) कह सकते हैं।

इस तरह हमें यह मालूम हो गया कि प्रोटीनकी रचनामें बिना नत्रजनवाले या कार्बोहाइड्रेटके अणु भी शामिल हैं और प्रोटीन केवल मांस ही नहीं पैदा करती वरंच शक्ति भांडारका भी काम देती है। उसका नत्रजनरहित भाग गर्मी और शक्ति पैदा करनेके काममें आता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या किसी प्रकारसे यह संभव है कि हम प्रोटीनका वह भाग, जो मांस बनानेके काममें नहीं आता है और केवल बहिरङ्गीय भोजन-परिवर्त्तिनी प्रक्रियाओंसे मलमूत्र द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है अपने भोजनसे निकालदें? यदि किसी प्रकार ऐसा हो सके तो शारीरिक मितव्ययता तो हुई ही होगी, भोजनके घरेलू ख़र्चोंमें भी बहुत बड़ी बचत हो जायगी क्योंकि हमारे भोजनका सबसे अधिक मूल्यवान अंश प्रोटीन ही है। भूखे जानवरोंपर इस बातके बहुत से प्रयोग किये गये हैं। उनसे यह परिणाम निकला

है कि एक नियत सीमाके अनंतर हम प्रोटीनके भोजनको कम नहीं कर सकते। अपनी अंतरङ्गीय भोजन परिवर्त्तिनी प्रक्रिया (endogenous metabolism) में जितनी प्रोटीनकी आवश्यकता पड़ती है हम उससे अधिक खानेकेलिए बाध्य है।

किन्तु कार्बोहाइड्रेट और चर्बीकी मात्रामें बढ़ा देनेसे हम भोजनके प्रोटीडोंका व्यय अवश्य कम कर सकते हैं। इसी कारण इन दोनों को अंग्रेज़ीमें "प्रोटीड स्पेरर" (प्रोटीडकी मात्रा कम करानेवाले) कहते हैं।

नत्रजनीय भोज्य पदार्थोंके फुज़ले सुगमताके साथ शरीरके बाहर नहीं निकाले जासकते क्योंकि नत्रजनीय मेटाबोलिज़्मके अंतिम द्रव्य यूरिया, यूरिकएसिड इत्यादिक होते हैं। ये द्रव्य ज़हरीले और मलविसर्जनी इन्द्रियोंको उत्तेजना और ताप देनेवाले होते हैं। यदि यह शरीरके भीतर अधिक मात्रामें जमा हो जांय तो बड़े भयानक परिणाम देखनेमें आते हैं। इसके विपरीत कार्बोहाइड्रेटोंकी भोजन परिवर्तनी प्रक्रियाओंके अनंतर कार्बनडाइआक्साइड और जलके समान निरुपद्रव और अनुपकारी पदार्थ बनते हैं जो श्वास, प्रस्वेद और मूत्रादि-द्वारा अनेक विधियोंसे शरीरके बाहर निकल सकते हैं।

मामूली परिश्रमसे नष्ट हुए तंतुओंके मलमें १६. ६ भाग कर्बन और १ भाग नत्रजन होती है। प्रोटीनमें ३. ५ भाग कर्बन और १ भाग नत्रजनका होता है। अतः यदि हम उपयुक्त नाशको पूरा करनेकेलिए प्रोटीनका भोजन करें तो प्रति एक ग्राम नाशकेलिए पांच ग्राम प्रोटीन खाना होगा। ५ ग्राम प्रोटीनमें हमने $\frac{५}{४.५}$ या १. १११ ग्राम नत्रजन खाया, किन्तु एक ग्राम नाशमें केवल $\frac{१}{१७.६}$ या . ०००५६ ग्राम नत्रजनका नाश हुआ था। अतः हमें इस नाशके पूरा करनेमें उल्टे १ ग्रामसे अधिक नत्रजन निकालना पड़ा। जैसा ऊपर कहा जा चुका है यह नत्रजन यूरिया या यूरिकऐसिडके रूपमें निकलता है। यूरियाका संकेत सूत्र है (न उ$_२$)$_२$ क ओ; $(NH_2)_2CO$ अर्थात् यूरियाके एक अणुमें नत्रजनके २, उज्जनके ४, कर्बनका १ और ओषजनका १ परमाणु मिला रहता है

नत्रजनके परमाणुका भार रसायनिकोंने १४ निश्चित किया है।

उज्जन	,,	,,	१	,,
कर्बन	,,	,,	१२	,,
ओषजन	,,	,,	१६	,,

इस प्रकार यूरियाके एक अणुका भार २८+४+१२+१६ = ६० हुआ। इससे स्पष्ट है कि ६० ग्राम यूरियामें २८ ग्राम नत्रजन है या २८ ग्राम नत्रजन ६० ग्राम यूरिया बनकर निकलेगा। अतः १ ग्राम नत्रजन $\frac{६०}{२८} = \frac{१५}{७}$ =२.१४२८ ग्राम यूरिया बनकर निकलेगा। कहां तो हम गये थे कमीको पूरा करने और कहां २ ग्रामसे अधिक यूरिया ऐसा ज़हरीला पदार्थ हमारे सिर आन पड़ा। अतः प्रोटीनको छोड़कर कार्बोहाइड्रेटसे ही हमें इस कमीको पूरा करना चाहिए। यही कारण है कि कार्बोहाइड्रेटका शरीर रचनामें बहुत थोड़ा भाग होनेपर भी हम उसका बहुत अधिक प्रयोग करते हैं।

२—दूसरा संसक्त उपादान जिसका विचार हमें करना है कार्बोहाइड्रेट है। सबसे पहले कार्बोहाइड्रेट, ग्लूकोस (Glucose) नामक शर्करामें, जो बड़ी आसानीसे घुल जाती है, बदल जाता है। ग्लूकोस रक्तमें बिना और किसी परिवर्तनके खपजाती है और उसके साथ प्रवाहित होने लगती है। तंतुओंमें आकर वह ओषजनसे मिल जाती है और प्रकृतिमें उसका कुछ हिस्सा फिरसे जीवधारियोंके मांड़ या ग्लाइ-

कोजनके रूपमें आकर इकट्ठा हो जाता है। शरीर यंत्रकी भिन्न भिन्न आवश्यकताओंके अनुसार तंतु इसी संचित मांड़का आश्रय लिया करते हैं।

३—तीसरा विचारणीय संसक्त उपादान फ़ैट या चर्बी है। जिस प्रकार भोजनके कार्बोहाइड्रेटोंसे ही शरीरके कार्बोहाइड्रेट बनते हैं उसी प्रकार भोजनकी चर्बी शरीरकी चर्बी बन जाती है। परन्तु शरीरकी चर्बी भोजनकी चर्बीके अतिरिक्त और पदार्थोंके, विशेषकर कार्बोहाइड्रेटोंके अणुओंसे, भिन्न क्रम स्थापना और रचनासे भी बन जाती है। इन दोनोंके संघटन (Composition) का भेद पहले दिया जा चुका है।

चर्बी ग्लिसरीन और कुछ विशेष तेज़ाबोंसे जिन्हें चर्बीके तेज़ाब कहते हैं मिल कर बनी है। शरीरमें खप जानेके समय चर्बीके यह दोनों भाग कुछ समयकेलिए अलग अलग हो जाते हैं पर थोड़े ही देर वाद इनका रासायनिक संयोग फिर हो जाता है और वह चर्बी जिसकी तुरंत आवश्यकता नहीं पड़ती तंतुओंमें शरीरकी चर्बी बनकर इकट्ठी हो जाती है। इस शरीरकी चर्बीका संघठन भोजनकी चर्बीके समान ही है। चर्बीकी इन विश्लेषण और संश्लेषण प्रक्रियाओंके समय अनेक दुर्बोध नत्रजनीय-चर्बी (वे चर्बी जिनमें नत्रजन भी आकर मिल जाता है) बनती हैं जो ज्ञान तंतुओं और विशेषकर मस्तिष्कके भेजेके मुख्य उपादान हैं।

इस प्रकार फिर भी सिद्ध होता है कि चर्बी मस्तिष्कका भोजन है और वह शरीरकी रचना में अङ्गोंकी विशेषताके विकासकी मुख्य कारण है।

इन विचारोंसे स्पष्ट है कि शरीर-पोषणकेलिए यह तीनों संसक्त उपादान-प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट और फ़ैट—नितांत और समान भावसे आवश्यक हैं। यदि इनमेंसे केवल एक ही पदार्थ बराबर खाया जाय तो शरीरकी स्फूर्ति और चंचलता बहुत दिनोंतक नहीं रह सकती।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक लीबिगने सबसे पहले भोज्य पदार्थके दो विभाग किये थे (१) मांस बनानेवाले भोज्य (२) गर्मी पैदा करनेवाले भोज्य अथवा (१) वे भोज्य जो तंतुओंकी क्षयको पूरा करते हैं और उनके नष्ट भागोंको नया कर देते हैं (२) वे भोज्य जो जीवाद्यम या जीवसार (protoplasm) में उनके ही आत्मरूप होकर नहीं खप जाते वरंच जो शक्ति भांडारका काम देते हैं। दूसरा काम कार्बोहाइड्रेट और चर्बी द्वारा संपादित होता है; पहला काम प्रोटीन द्वारा। लोगोंका यह मत कि कार्बोहाइड्रेट और फ़ैट शरीर पोषक नहीं है बिलकुल मिथ्या और हानिकारक है। प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट शरीरकेलिए एक समान ही आवश्यक हैं उनकी पोषण-शक्तियां अवश्य ही भिन्न हैं।

हम लोगोंको विदित हो गया है कि प्रोटीन केवल मांसवर्द्धक ही नहीं है वह उष्णतोत्पादक और स्फूर्तिदायक भी है। हम लोगोंने यह भी जान लिया है कि चर्बी अङ्गाङ्गी धर्म्मकेलिए कितनी आवश्यक है और वह स्नायु यंत्रका कितना अपरिहार्य्य घटक है। इनके अतिरिक्त वह गरमी और शक्ति भी पहुंचाता है। अंतमें हमें यह भी मालूम हो गया है कि शरीरकी चर्बी अधिकतर भोजनके कार्बोहाइड्रेटों से मिलती है। इन सब बातोंके साथ ही साथ कार्बोहाइड्रेट और फैट किस प्रकारसे प्रोटीन बनाने में सहायता देते हैं इस बातका भी उल्लेख हो चुका है। इससे स्पष्ट है कि इन उपादानों का पथ्याशनमें प्रयोग करना कितना आवश्यक है।

यदि मनुष्यके शरीर-पोषणके बारेमें दिये हुए मेरे इस संक्षिप्त वर्णनसे पाठक घबरा या चकरा न गये होंगे तो मुझे आशा है कि वे अब इस प्रश्नको कि हमें कौनसी वस्तुएं खानी

चाहियें और कितनी खानी चाहियें अच्छी तरह से समझ सकेंगे। आगामी लेखोंमें मैं पाठकोंका ध्यान इसी मुख्य प्रश्नकी ओर आकर्षित करूंगा।

मंगलग्रह

(गल्प)

तीसरा परिच्छेद।

[ले० अनादिधन बंद्योपाध्याय]

तटपर पहुँचते ही सैकड़ों मनुष्य मुझे घेरकर खड़े होगये! उनकी नीली आँखें मेरी ओर घूर घूरकर देख रहीं थी। उनके भारी सर बदनसे सटे हुए थे, गलेका तो नाम और निशानतक नहीं था, सिरके बाल बिलकुल सफ़ेद थे। मुझे पहले ऐसा मालूम हुआ कि मंगलमें सब बुड्ढे ही रहते हैं। पर बादको मालूम हुआ कि यहाँ जवान आदमियोंके बाल तो सफ़ेद और बुड्ढोंके कुछ कुछ भूरे होते हैं।

मैं इनसे बातचीत करनेकी चेष्टा करने लगा। पर वहाँ भला मेरी भाषा कौन समझता। फिर मैं संकेत और इशारोंसे काम लेने लगा। उनको मैंने बतला दिया कि मैं पृथिवी लोकसे आ रहा हूँ। वे लोग बहुत खुश हुए और मेरे पास धीरे धीरे बढ़ने लगे। कोई मेरा बदन छूनेकी चेष्टा करता था। कोई हाथ, कोई पैर, और कोई तो कपड़े छूकर ही संतुष्ट होगया। मैं सोच ही रहा था कि भला मेरे गुब्बारेका क्या हाल हुआ होगा कि इतनेमें सामनेसे एक हवागाड़ी आकर खड़ी होगयी। इस गाड़ीपर मेरा गुब्बारा तो टूटी फूटी हालतमें था। पर सबसे संतोषकी बात यह थी कि यंत्रका बक्स कुशलपूर्वक गाड़ीपर रक्खा हुआ था। इस गाड़ीके बाद दूसरी हवागाड़ी आयी। इसमेंसे दो मनुष्य उतरे। यह लोग कुछ अधिक सभ्य से विदित होते थे। मुझे बादको मालूम हुआ कि ये दोनों मंगलग्रहके विख्यात वैज्ञानिक हैं। एक का नाम था जिंगीदेह। मैं इसीके यहाँ दो साल रहा। यह जिंगीदेह बहुत दिनोंसे पृथिवीका अध्ययन कर रहे थे। इनके बातोंसे पता चला कि १८६७ ई० में इन्होंने पृथिवीमें एक बड़ा भारी गोला तोपके द्वारा भेजा था। इस गोलेमें मंगलग्रहकी बहुत सी चीज़ें भेजी गयी थीं। जिनमेंसे एक मनुष्यका मृत देह भी था। मुझे भी याद पड़ता है कि उसी सालमें अध्यापक जरमिया मेकडोनेल Professor Jeremiah McDonald को न्यूयार्कमें सफ़ेद पिघली हुई धातु मिली जो उनके सामने चकाचौंध करनेवाली ज्योतिके साथ धरतीपर गिरी।

जिंगीदेह मुझे देखकर हँसा और अपने दोनों हाथोंको मेरे दोनों कंधोंपर रक्खा और मेरे भी हाथोंको खींचकर अपने कंधेपर रक्खा। बादको मालूम हुआ कि इनके यहाँ अभिवादन करनेका यही ढंग है। भीड़ बहुत कुछ कम हो गयी और लोग दूर हट गये। मैंने जिंगीदेहको संकेतसे बतलाया कि मैं पृथिवीसे आया हूँ। वह बहुत जल्द समझ गया और मुझे भी समझाया कि वह मेरे आनेको दूरबीनसे देख रहा था और उसीने मेरेलिए हर नहरपर नाव लगवा रक्खे थे। मालूम हुआ वह १५० मील हवागाड़ीमें कोई २॥ घंटेमें आया। उसने मुझे अपने साथ आनेको संकेत किया। मैं उसके पीछे हो लिया। वह गाड़ीपर बैठ गया मैं भी सवार हो गया। मैंने अपने असबाबको साथ लानेकेलिए कहा। ये सब बातें ऐसी दशामें हुईं जैसे कोई दो सौ तीन सौ गूंगे एक साथ छोड़ दिये जांय और सबके सब हाथ हिलाते, मुँह बनाते और आंय आंय करते हों। मैं जीभ रहते गूंगा बना। क्या करें कभी कभी ऐसा भी होना पड़ता है।

एक मज़ेदार बात पाठकगण और सुनलें। इस ग्रहमें चलना हमारे यहाँके दौड़के बराबर

है। यहाँ सब दौड़ते हैं। मैं भी दौड़ दौड़कर ऐसे चलता था जैसे हमारे पृथिवीके कुत्ते दौड़ दौड़ कर घूमा करते हैं। इसका कारण यह है कि मंगलग्रहमें आकर्षणशक्ति पृथिवीसे बहुत ही कम है। इसलिए मैं पृथिवीसे कोई तिरासी-गुना अधिक बलवान हो गया। मैं मंगलग्रहके मनुष्योंमें दानवोंके नाईं था।

जिस गाड़ीपर मैं सवार हुआ वह बिजली-से चलती थी। वह बहुत कुछ हमारे पृथिवीके 'मोटर-कार' के नाईं है पर भेद यह है कि मंगल-के गाड़ियोंमें पहिये नहीं होते। उनके नीचे नाव सा बना रहता है और उसपर पांच छः आदमियोंके बैठनेकी जगह रहती है। मैंने सुना है कि ऐसी कोई कोई गाड़ियाँ घंटेमें १३० मीलतक जाती हैं। यह ज़मीनपर नहीं चलती पर धरतीसे चार इंच ऊँचेपर रहती हैं। इसीलिए मैं इसे हवागाड़ी कहता हूँ। मैं इसी हवागाड़ी-में सवार हुआ और गाड़ी चली। पीछेसे एक और गाड़ीपर मेरा सामान लदा चला आ-रहा था। कितने ही नहर और शहर पार करते हुए अंतको जिंगीदेहके भवनपर हम लोग पहुँचे। मैं कहाँतक लिखूं यहाँकी बहुत सी चीज़ें तो पृथिवीसे बहुत कुछ मिलती जुलती हैं परन्तु कोई कोई तो बिलकुल ही नहीं मिलतीं। इस कारण जो लिखने योग्य बात होगी उसे तो मैं लिख दूंगा और छोटी मोटी बातोंका उल्लेख नहीं करूँगा। यहाँके मकान हमारे पृथिवीके नाईं ही थे पर बस्ती अधिकतर यहाँ नहरके पास ही बसी हैं। इसका कारण यह है कि यहाँकी भूमि बहुत पथरीली हो गयी है। जो भूमि नहरके किनारे है वह नर्म होती है और वहीं लोगबाग रहते और खेती करते हैं। पर नहरोंकी यहां इतनी बहुतायत है कि सौ मीलके भीतर कुछ नहीं तो पंद्रह सोलह नहरें निकाली गयी हैं। जिंगीदेहके परिवारका परिचय देनेके पहले मैं नहरोंका कुछ हाल लिख देना अच्छा समझता हूं।

मंगलग्रह यदि शरीर माना जावे तो नहरें उसकी नसें कही जासकती हैं। इन्हीं नहरोंके-द्वारा मंगलग्रहके लोग आजतक जीवित हैं। यदि नहरोंका इतना प्रचार न होता तो मंगल-ग्रहके निवासी कबके मर खप गये होते। यह नहरें हमारे यहाँके नहरोंकी नाईं नहीं हैं। हमारे पृथिवीकी बड़ी बड़ी नदियोंके नाईं हैं। लम्बाईमें यह नहरें डेढ़सौसे ले चार हज़ार मीलतककी हैं और चौड़ाई कमसे कम एक मील और अधिकसे अधिक दस मीलतक है। इन नहरोंमें पानी उत्तर और दक्षिण ध्रुवोंमेंसे आता है। वहाँसे पहले बर्फ़ पिघलता है और वह बहता बहता सबसे बड़ी झीलमें जमा होता है। वहाँसे फिर भूमिके भिन्न भिन्न स्थानोंके झीलोंमें पानी जमा किया जाता है। वहाँसे नहरें काटी जाती हैं और फिर नहरोंकी कितनी ही शाखाएँ देश भरमें छाजाती हैं। जलके हिसाबसे यहाँ भूमि बहुत है। नदियाँ थोड़ीसी इनी गिनी हैं। सबसे बड़ी नदी एक है जिसे तौंडो कहते हैं वह गोदावरीके नाईं है। समुद्र कहकर इस लोकमें कोई वस्तु नहीं है। झील, नहर और तड़ाग बस यही समुद्र और यही सागर, जो कहिये सब यही हैं।

अब हमारी गाड़ी जिंगीदेहके मकानके सामने खड़ी हुई। जिंगीका मकान हिन्दुस्तानी और जापानी ढंगका बना हुआ है। मैं ठीक दुपहरको वहाँ पहुँचा। फाटकपर पहुँचते ही जिंगीने बटन दबाया-कुछ समयमें ही फाटक खुलगया। भीतर फल-फूलके वृक्ष उगे हुए थे। बीचसे पैदल चलनेका रास्ता बना हुआ था। सामनेसे दो स्त्रियाँ आती दिखलायी दीं। इनका पहनाव हमारे पृथिवीमें वर्मा देशके नाईं कहा जासकता है। पर ये अपना सिर बहुत समय-पर एक ओढ़नीसे ढक लेती हैं। बाल गूंधनेमें भी यहाँकी स्त्रियाँ बहुत निपुण हैं। जब उक्त दोनों स्त्रियाँ समीप पहुँची तो देखा एक कोई

१५। १६ वर्षकी किशोरी और दूसरी ३५। ३६ वर्षकी प्रौढ़ा थी। मैं समझ गया कुछ न हो ये जिंगीदेहकी पुत्री और पत्नी हैं। इनसे भी मैं उसी प्रकार मिला जिस प्रकार जिंगीसे कंधोंपर हाथ रखकर मिला था। इनके यहाँ पर्देका रिवाज नहीं है। मैं प्रायः कुल पृथिवी और मंगलग्रह घूम चुका हूँ पर सिवाय भारतवर्ष, और कुछ पृथिवीके मुसलमान देशोंके कहीं भी स्त्रियोंको पर्देमें रखनेकी प्रणाली नहीं है।

इसके बाद मैं जिंगीदेहके साथ एक कमरेमें घुसा। एक कुर्सीपर मैं बैठगया। एक पलंगपर जिंगीदेह और उनके परिवारी बैठ गये। और एक दूसरे पलंगपर मा बेटी बैठ गयीं। जिंगीदेहने पास रक्खे हुए मेज़पर कुछ दबाया तो बहुत मधुर बाजेकी ध्वनि आने लगी। पन्द्रह मिनटतक मैं चुपचाप बैठा रहा। अब अधिक क्या करता। किससे बातें करता सब ही मंगली थे। इसके बाद बाजा बन्द हुआ और मैंने संकेतसे कहा कि मुझे भूँख लगी है। ज़िंगीने फिर बटन दबाया। पाँच मिनटके बाद एक नौकर भोजन लाया। कमरेमें एक तख़्त बिछा हुआ था। वह इतना बड़ा था कि उसपर आठ दस आदमी या मंगली मज़ेसे बैठ सकते थे। बोतल जैसे कई एक पात्र धातुके बने हुए रक्खे गये। फिर सब ग्लासमें उड़ेल उँड़ेलकर भिन्न भिन्न प्रकारके शर्बत पीने लगे। कोई खट्टा, कोई मीठा और कोई तीता था। पाँच मिनटमें भोजन समाप्त होगया। हमारे प्रिय पाठक इस ग्रासाच्छादन क्रियाका हाल सुनकर आशचर्य्य करेंगे-पर वास्तवमें मंगलमें ऐसा ही भोजन होता है। वहाँके लोग समयका मूल्य जानते हैं और एक मिनट भी ख़राब नहीं होने देते। इसी कारण भोजन खानेकी क्रिया बिलकुल उठादी है और सब भोजन पीते हैं। या यों कहिये कि खानेके पदार्थोंका ये लोग रस निकाल लेते हैं और उसीको पीते हैं। निकृष्ट और फ़ुज़ूल चीज़ोंसे पेट नहीं भरते हैं।

जिंगीदेहके स्त्रीका नाम मिंगीमानू और पुत्रीका नाम चेरीमानू है। रात होते ही जिंगीदेह मुझे पृथिवी दिखाने बाहर ले गया। वहाँ जाकर मैंने आकाशकी ओर देखा तो पता चला कि ऊपर नक्षत्र ही नक्षत्र चमक रहे हैं। मैं पृथिवीको न पहिचान सका। तब जिंगीने एक ताम्रवर्ण तारेकी ओर संकेत करके बतलाया कि वह मेरा ग्रह पृथिवी है। मैंने फिर उस तारेको दूरबीनसे अच्छी तरह देखा। तब मैंने क्षणप्रभा तैयार की और उसको पृथिवीकी ओर छोड़ा। पंद्रह मिनटमें ज्योति पृथिवीपर पहुँची। फिर उस रोशनीके द्वारा इशारोंसे बातचीत करने लगा। यह बंदोबस्त मैं पृथिवीमें करके चला था। तीन जगहोंपर इसका बंदोबस्त था। पहिला स्थान इलाहाबाद, दूसरा लन्डन, और तीसरा न्यूयार्क। क्षणप्रभा (Flash light) की इस लिए आवश्यकता हुई कि पृथिवी और मंगलग्रहके बीचमें हवा नहीं है और आकाश ही है इस कारण ज्योति उस आकाशमें होकर पहुँच सकती है और कोई वस्तु नहीं। इसका प्रमाण सूर्यकी किरणें हैं। इन्हीं फ्लाशलाइटके किरणोंको हिला डुलाकर मैं पृथिवीवालोंसे बहुत कुछ बातचीत कर सकता था। मेरे इस युक्तिको देखकर जिंगीदेह इत्यादि बहुत चकित हो पड़े। मैं फिर कमरेमें चला गया।

क्या पृथिवीका भ्रमणपथ गोल है ?

केपलरका सिद्धान्त

[ले० महाबीरप्रसाद श्रीवास्तव, बी. एस-सी., एल. टी.]

यह बात प्रत्येक स्त्री पुरुषको विदित है कि ज्यों ज्यों कोई पदार्थ अथवा मनुष्य दूर होता जाता है त्यों त्यों वह छोटा दीखने लगता है और उसके अङ्ग साफ़ साफ़ नहीं दीखते, यहाँ

तक कि कुछ दूर जाकर वह बिलकुल पहचाना नहीं जा सकता। यदि एक ही पदार्थ कभी बड़ा दीख पड़े और कभी छोटा तो क्या यह बात नहीं सिद्ध होती कि जब वह बड़ा दीख पड़ता है तो पास है और जब छोटा दीख पड़ता है तो दूर? इस बातका ध्यान रखकर अब यदि प्रथम प्रश्नपर कि क्या पृथ्वीका भ्रमणपथ गोल है, विचार किया जाय तो यह बात निकलेगी कि यदि भू-भ्रमण पथ गोल है तो उसकी दूरी सूर्य्य-से सर्व्वदा एकसी रहेगी और यदि सूर्य्यकी दूरी पृथिवीसे सर्वदा समान रहती है तो उसका आकार सर्व्वदा एकसा दिखायी पड़ना चाहिये परन्तु यदि असमान है तो आकार भी घटा बढ़ा दिखायी पड़ेगा। इसपर लोग यह कह बैठेंगे कि सूर्य्यके आकारमें तो कभी कोई कमी बेशी नहीं मालूम होती इसलिए वह पृथ्वीसे सदैव समान दूरीपर है। कुछ लोग शायद यह भी कह बैठेंगे कि प्रतिदिन सूर्य्योदय और सूर्य्यास्तके समय सूर्य्य बहुत बड़ा हो जाता है तो क्या सन्ध्याकालमें वह बहुत पास आजाता है। दूसरी शङ्काके समाधानकेलिए इस स्थानपर केवल इतना ही कहना बहुत होगा कि सूर्य्य वास्तवमें सन्ध्याकालमें पास नहीं आजाता वरन् प्रकाशके वक्र होनेसे ऐसा दीख पड़ता है जैसे सीधी लकड़ी आधी पानीके भीतर और आधी बाहर रखनेसे टेढ़ी मालूम होती है अथवा जैसे लोटेका कुछ अंश पानीमें डुबोनेसे उसके रूपमें परिवर्तन होता हुआ मालूम होता है। इसीलिए रूप-परिवर्तनके भ्रमसे बचनेकेलिए सूर्य्यके आकारके नापनेकी परीक्षा दोपहरके समय की जाती है।

पहला तर्क करनेवालोंसे यदि यह पूछा जाय कि यदि एक ही मनुष्य ४ और ४$\frac{१}{२}$ मीलकी दूरीपर देखा जाय तो उसके आकार अथवा लम्बाईमें क्या अन्तर दीखेगा तो वह ठीक ठीक उत्तर न देसकेंगे क्योंकि आकारमें इतना कम अन्तर होता है कि केवल आँखसे पता नहीं चल सकता यद्यपि दूरीकी भिन्नताके कारण आकारमें अवश्य भिन्नता रहती है। जहाँ कहीं आँख सूक्ष्म अन्तरोंका पता नहीं लगा सकती वहाँ कुछ यन्त्रोंकी सहायता लेनी पड़ती है। ऐसे यन्त्र दो प्रकारके होते हैं एक वह जो बहुत दूरवाले पदार्थके अङ्गों प्रत्यङ्गोंको ऐसा स्पष्ट कर देते हैं मानो वह पास आगया है और दूसरे वह जो पासके ही सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थों और कीटाणुओं-को इतना बड़ा करके दिखा देते हैं कि उनके अङ्ग अलग अलग और साफ़ साफ़ दीख पड़ते हैं जैसे किसी बड़ी चीज़के। प्रथम प्रकारके यन्त्रको दूरवीक्षण (दूरबीन telescope) और दूसरे प्रकारके यन्त्रको क्षुद्रवीक्षण (खुर्दबीन microscope) कहते हैं। ज्योतिषमें दूर दूरके तारे, नक्षत्र और ग्रहोंके देखनेकी आवश्यकता पड़ती है इसलिए इसमें दूरवीक्षणकी अधिक आवश्यकता पड़ती है। इसकी कारीगरी और सिद्धान्तकी बात प्रकाश-विज्ञानके कुछ नियमोंके बिना जाने नहीं समझमें आसकती है इसलिए यहां केवल ऊपर लिखे गुणोंका स्मरण करलेना बस होगा। उचित स्थानपर यह भी समझा दिये जाँयगे।

दूरवीक्षण यन्त्रसे यह देखा गया है कि सूर्य्य-का आकार घटता बढ़ता रहता है। सालभरमें एक बार वह बहुत बड़ा दिखायी पड़ता है और एक बार बहुत छोटा और इनके बीचके आकार दो बार समान दिखायी पड़ते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिवर्ष सूर्य्य एकबार पृथ्वी-के बहुत पास आजाता है और एकबार बहुत दूर और दो बार सूर्य्यकी दूरी पृथ्वीसे समान हो जाती है। यदि एक वर्ष तक यह देखा जाय कि सूर्य्यका आकार दिन दिन कितना होता रहता है और उसीके उत्क्रम अनुपातसे (Inverse proportion) उसकी दूरी मान ली जाय अर्थात् आकार जैसे जैसे बड़ा होता जाय वैसे

वैसे दूरी बतलानेवाली रेखाको छोटी खींचें तो उन रेखाओंके सिरोंको जो दूरी बतलाते हैं मिला देनेसे यह मालूम हो सकता है कि पृथ्वीका वार्षिक भ्रमणपथ (क्योंकि १ वर्षमें पृथ्वी सूर्य्यकी परिक्रमा कर लेती है) कैसा होता है। किसी समय यह भी सिद्ध किया जायगा कि पृथ्वी सूर्यकी परिक्रमा करती है, सूर्य्य पृथ्वीकी नहीं करता जैसा कुछ लोगोंका अनुमान है। यह मानकर कि पृथ्वी सूर्य्यकी परिक्रमा करती है चित्रसे इसका भ्रमणपथ इस प्रकार दिखलाया जा सकता है :—
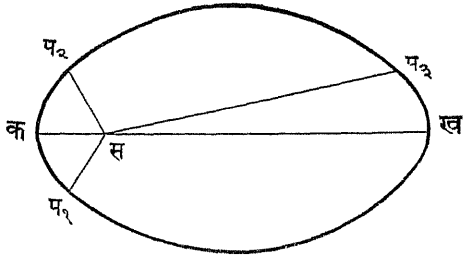
चित्र नं० १

इस चित्रमें 'स' सूर्य्यका स्थान सूचित करता है, प२, प३, 'क' 'ख', इत्यादि पृथ्वीके स्थान भिन्न भिन्न समयोंमें (परन्तु एक छमाहीके अन्तर्गत) सूचित करते हैं। 'क' उस समयका स्थान माना गया है जब सूर्य्य सबसे बड़ा दीख पड़ता है इसीलिए उस समयकी सूर्यकी दूरी सक रेखासे सूचित की गयी है जो और रेखाओं जैसे 'स ख', स प३, ...इत्यादिसे छोटी है। जैसे जैसे सूर्य्यका आकार छोटा दिखायी पड़ता है वैसे वैसे उसकी दूरी बढ़ती जाती है इसीलिए स प२, स प३, रेखायें क्रमसे बढ़ती हुई लिखी गयी हैं। जब सूर्य्य सबसे छोटा दीख पड़ता है तो उसकी दूरी सबसे अधिक हो जाती है जो 'स ख' रेखासे प्रगट की गयी है। 'क ख' स्थानतक जानेमें ६ महीने लग जाते हैं। चूंकि १ वर्षमें पृथ्वी सूर्य्यका पूरा चक्कर लगा आती है अर्थात् ३६० अंशतक घूमती है इसलिए ६ मासमें वह आधा चक्कर लगा लेगी अर्थात् १८० अंशतक घूम चुकेगी। इसलिए यह 'कस' रेखाको बढ़ानेसे उसी पर कहीं पायी जायगी। अर्थात् पृथ्वी सूर्य्यकी परिक्रमा करते हुए दूर होती जायगी और ६ मासमें सूर्य्यके ठीक दूसरी ओर पहुँच जायगी। इसलिए इसका पथ अर्ध दीर्घवृत्त (ellipse) में होगा। ६ महीनेके बाद सूर्य्यका आकार फिर बढ़ता जायगा और वर्ष भरमें फिर वही आकार हो जायगा। इसलिए इस छः माहीका भ्रमण पथ भी उसी रूपका होगा। ऐसे वृत्तको दीर्घ वृत्त कहते हैं। सभी ग्रह सूर्य्यकी परिक्रमा करते हुए ऐसा ही मार्ग बनाते हैं। इसलिए ऐसे वृत्तके कुछ गुणोंका ज्ञान लेना ज्योतिषके सिद्धान्तोंके समझनेकेलिए बड़ा उपयोगी होगा।

किसी समतल भूमि अथवा कागज़पर दो खूंटी अथवा आलपीन जैसे 'न१', 'न२', गाड़ दो और न१, न२, दूरीके दूनेसे अधिक लम्बे डोरेके दोनों सिरोंको जोड़कर गांठ दे दो। इस फंदेको दोनों आलपीनोंके चारों ओर रखदो और पेंसिलकी नोकको कागज़पर 'व' स्थानपर लगाकर फन्देको आहिस्तेसे ऐसा खींचो कि फंदा 'न१, न२', आलपीनोंके बीच बिलकुल सीधा हो
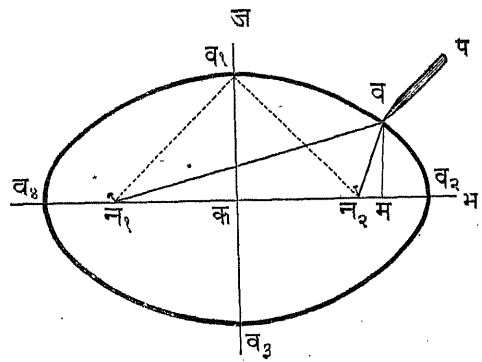
चित्र नं० २

जाय और 'वन$_१$', 'वन$_२$' भी सीधा हो जाय। ऐसी दशामें पेन्सिलसे फन्देको खींचे हुए जिसमें यह कहीं ढीला न होने पावे पेन्सिलको खसकाओ तो वैसा ही घेरा (वृत्त) खिंच जायगा जैसा पृथ्वीके भ्रमण पथका है।

यह बात प्रकट है कि फन्देका वह अंश जो आलपीनोंसे कसा जाकर सीधा हो गया है सदैव एकही लम्बाईका रहता है और बची हुई लम्बाई सदैव पेन्सिलकी नोकसे 'न$_१$' 'न$_२$' विन्दुओंकी दूरीके योगके समान है। 'न$_१$' 'न$_२$' विन्दुओंको दीर्घवृत्तकी नाभि (Focus) कहते हैं, इसलिए यह स्मरण रखना चाहिए कि दीर्घवृत्तके किसी विन्दुसे नाभियोंकी दूरीका योग समान रहता है। नाभियोंको मिलानेवाली रेखा दोनों ओर बढ़ानेसे 'व$_२$' 'व$_३$' विन्दुओंपर दीर्घवृत्तसे मिल जायगी। चूंकि दीर्घवृत्तके किसी विन्दुसे नाभियोंकी दूरीका योगफल समान रहता है।

$व_४ न_२ + व_४ न_१ = वन_१ + वन_२ = व_२ न_२ + व_२ न_१$ अर्थात् $व_४ न_२ + व_४ न_१ = व_२ न_२ + व_२ न^१$

वा $(व_४ न_१ + न_१ न_१) + व_४ न_१ = व_२ न_२ + (व_२ न_२ + न_१ न_२)$

चूंकि इस समीकरणमें $न_१ न_१$ दोनों पक्षोंमे आगया है इसलिए दोनोंके निकाल डालनेसे समीकरणमें कोई अन्तर नहीं हो सकता और तब यह प्रकट हो जाता है कि $२ न_२ व_२ = २ न_२ व_२$ वा $न_१ व_४ = व_१ व_२$

$व_४ व_२$ रेखाको इस क्षेत्रका दीर्घअक्ष (Major-axis) कहते हैं और इस रेखाके मध्य विन्दु 'क' को दीर्घवृत्तका केन्द्र कहते हैं। यदि इस विन्दुपर एक रेखा दीर्घअक्षसे समकोण बनाती हुई दोनों ओर वृत्ततक खींची जाय जैसे $व_१ व_३$ तो इसको लघुअक्ष कहते हैं। इन अक्षोंपरसे यदि कोई दीर्घवृत्त काट दिया जाय तो दो भाग हर प्रकार आपसमें बराबर होंगे और दोनों मोड़ देनेपर एक दूसरेको ढक लेंगे। ऐसे क्षेत्रको जो किसी रेखाके दोनों ओर एकही गुण रखते हों और जिसके दोनों भागोंका क्षेत्रफल भी समान होता है समसङ्गतावयव (symmetrical) कहते हैं।

इसीके साथ साथ पृथ्वीकी गतिके सम्बन्धमें कुछ थोड़ा सा कह देना अनुचित न होगा। किसी पञ्चत्राङ्ग (पत्रा अथवा कैलेन्डर) के देखनेसे यह प्रकट होता है कि सूर्य्यकी गति भी घटती बढ़ती रहती है अथवा यों कहो कि पृथ्वीका परिक्रमण वेग कभी कम हो जाता है और कभी अधिक। पंचाङ्ग बनानेवाले इस सिद्धान्तको मानते हैं कि पृथ्वी अचला है और सूर्य्य पृथ्वीका चक्कर लगाया करता है इसलिए पञ्चाङ्गों में सूर्य्य ही की गति पायी जायगी। ऐसा समझनेसे गणितमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। किसी लेखमें यह भी सिद्ध किया जायगा कि सूर्य्यको चक्कर लगाते हुए समझना उसी प्रकारका भ्रम है जैसे तीव्र गतिवाली नाव वा गाड़ीपर बैठे हुए मनुष्योंको नाव या गाड़ी चलती हुई नहीं मालूम होती वरन् इधर उधरके पेड़ और भूमि वेगसे पीछेकी ओर दौड़ते हुए मालूम होते हैं। काशीका सम्वत् १९७१ का एक पञ्चाङ्ग पंडित गणेशदत्त आपाजीका बनाया हुआ लेखकके सामने है और उसीके अनुसार नीचेकी सारिणी लिखी जाती है:—

तिथि	वेग
चैत्र शु० २	५९ कला १६ विकला
" " ८	५९ " २ वि०
वैशाख कृ० १	५८ " ४८ "
वैशाख शु० २	५८ " १८ "
ज्येष्ठ कृष्ण २	५७ " ५० "
ज्येष्ठ कृ० १५	५७ " २३ "

ज्ये० शु० १५	५७	कला	४	विकला
आषाढ़ कृ० १४	५६	”	५३	”
आ० शु० ६	५६	”	५१	”
आ० शु० १४	५६	”	५१	”
श्रावण कृ० ६	५६	”	५४	”
श्रा० शु० ५	५७	”	५	”
भाद्रपद कृ० ४	५७	”	२५	”
” शु० ३	५७	”	५२	”
आश्विन कृ० ३	५८	”	१८	”
” शु० २	५८	”	४६	”
कार्तिक कृ० १	५९	”	१४	”
कार्तिक शु० ८	५९	”	५८	”
” ” १५	६०	”	१२	”
अगहन कृ० १४	६०	”	३८	”
पौष कृ० ५	६१	”	११	”
पौष शु० ११	६१	”	२५	”
माघ कृ० ३	६१	”	२५	”
” ” ११	६१	”	२२	”
पौष कृ० १	६१	”	३	”
चै० कृ० ७	५९	”	५८	”

अँग्रेज़ी हिसाबसे एक ही तिथिकी गति और आकार—

जनवरी १	६१ क० ८ वि०...
जुलाई ३	५७ क० १२ वि०...
मार्च २९	६० क० ६ वि०...
अक्टोबर ५	” ”
सबसे बड़ा व्यास	३२ क० ३५.२ वि०
सबसे छोटा व्यास	३१ क० ३०.६ वि०
औसत व्यास	३२ क० ४ वि०
”	३२ क० ४ वि०

पहली सारिणीसे यह स्पष्ट है कि सालभरमें एक बार आषाढ़ शुक्ल पक्षमें पृथिवीकी गति सबसे कम अर्थात् ५६ क० ५१ वि० हो जाती है। इसके पश्चात दिन दिन गति बढ़ती जाती है और ठीक ६ मासके पश्चात पौष शुक्ल पक्षमें ६१ कला २५ वि० हो जाती है फिर घटने लगती है और ६ मासमें सबसे कम हो जाती है। दूसरी छोटी सारिणीसे यह प्रकट होता है कि जिस दिन जनवरी १ को पृथिवीकी गति ६१ क० ८ वि० अर्थात् उच्चतर होती है उसी दिन सूर्य्यका व्यास ३२ क० ३५.२ वि० अर्थात् सबसे बड़ा होता है। इसलिए इस दिन पृथ्वी सूर्य्यके बहुत पास आ जाती है। चित्र न० १ में इस दिन पृथिवी की स्थिति 'क' विन्दुपर मानी गयी है। ६ मासके पश्चात ३ री जुलाई को गति ५७ क० १२ वि० सबसे कम है और इस दिन सूर्य्यका व्यास भी ३१ क० ३०.६ वि० सबसे छोटा है। इस दिनकी पृथिवीकी स्थिति चित्र न० १ में 'ख' स्थानपर दिखलायी गयी है और इसी दिन पृथ्वी सूर्य्यसे बहुत दूर हो जाती है।

पहली सारिणीसे यह स्पष्ट है कि सालभर-में एक बार आषाढ़ शुक्ल पक्षमें पृथिवीकी गति सबसे कम अर्थात् ५६ क० ५१ वि० हो जाती है। इसके पश्चात दिन दिन गति बढ़ती जाती है और ठीक ६ मासके पश्चात पौष शुक्ल पक्षमें ६१ कला २५ वि० हो जाती है, फिर घटने लगती है और ६ मासमें सबसे कम हो जाती है। दूसरी छोटी सारिणीसे यह प्रकट होता है कि जिस दिन जनवरी १ को पृथिवीकी गति ६१ क० ८ वि० अर्थात उच्चतर होती है उसी दिन सूर्य्यका व्यास ३२ क० ३५. २४ वि० अर्थात सबसे बड़ा होता है इसलिए इस दिन पृथिवी सूर्य्यके बहुत पास आजाती है। चित्र नं० १ में इस दिन पृथिवीकी स्थिति 'क' विन्दुपर मानी गयी है। ६ मासके पश्चात ३री जुलाईको गति ५७ क० १२ वि० सबसे कम है और इस दिन सूर्य्यका व्यास भी ३१ क० ३०.६ वि० सबसे छोटा है। इस दिनकी पृथिवीकी स्थिति चित्र नं० १ में 'ख' स्थानपर दिखलायी गयी है और इसी दिन पृथिवी सूर्य्य-से बहुत दूर हो जाती है।

इसमें यह भ्रम हो सकता है कि जब सूर्य्य

जनवरीमें बहुत पास हो जाता है तो गरमी बहुत पड़नी चाहिये और जब जुलाईमें बहुत दूर हो जाता है तो गरमी कम पड़नी चाहिये परन्तु वास्तवमें जनवरी कड़ाकेकी सरदी पड़नेका समय है और जुलाई कड़ाकेकी धूपका। ज़रासा विचार करके देखनेसे यह भ्रम दूर हो सकता है। यह सभी जानते हैं कि जब सूर्य्यकी किरणें सीधी पड़ती हैं तो गरमी अधिक हो जाती है और जब तिरछी पड़ती हैं तो कम। मध्यान्ह कालमें सूर्य्यकी किरणें सीधी आती हैं इस-लिए इस समय गरमी भी विशेष होती है परन्तु सूर्य्योदय अथवा सूर्य्यास्तके समय जब किरणें बहुत तिरछी आती हैं उतनी गरमी नहीं होती। जब कोई दवा या अन्य पदार्थ थालीमें रखकर मध्यान्हके ३,४ घंटा पूर्व वा पश्चात सूर्यकी किरणोंसे सुखाना पड़ता है तो थालीको तिरछी करके इस प्रकार रखते हैं कि उसका तल सूर्य्यके सामने हो जाय। ऐसा करनेसे अधिक गरमीके कारण पदार्थ जल्दी सूख जाता है। यही बात जनवरी और जुलाई-के महीनोंमें होती है। जनवरीमें पृथ्वी इस प्रकार घूम जाती है कि सूर्य्यकी किरणें बहुत तिरछी आती हैं, परन्तु जुलाईमें वह बहुत सीधी हो जाती हैं।

दी हुई सारिणीके अङ्कों द्वारा ही केपलर नामक एक पाश्चात्य ज्योतिर्विद्ने गणितकी सहायतासे यह सिद्धान्त निकाला है कि "भू-भ्रमण-पथमें सूर्य्य और पृथिवीको मिलाती हुई रेखा समान समयमें समान क्षेत्रफलपर घूम जाती है"। यह एक चित्रसे भली भांति समझ-में आजायगा। [देखो चित्र नं० १]

कल्पना करो कि जितने समयमें पृथिवी 'ख' से $प_३$ तक जाती है उतने ही समयमें तीव्र गति होनेके कारण वह 'प२' से 'क' तक जा-सकती है; अर्थात जितने समयमें मन्द गतिके कारण पृथिवी 'खसप ३' कोण बनाती है उतने ही समयमें तीव्र गति के कारण वह '$प_२$सक' कोण बनाती है। इस प्रकार हिसाब लगाक यह देखा गया है कि 'खसप$_३$' और '$प_२$सक' क्षेत्रोंका क्षेत्रफल जो समान समयमें पृथिवीके घूमनेसे बन जाता है बराबर होता है।

प्रशान्त महासागरके टापुओंकी कथा।

[ले० राधामोहन गोकुल जी]

टापू प्रायः दो प्रकारके हुआ करते हैं, एक तो महाद्वीपीय दूसरे समुद्रीय। इन्हींके दूसरे नाम भौम्य और सामुद्र भी हैं। भौम्य टापू उन्हें कहते हैं जो पहले महा-द्वीपोंके साथ मिल रहे हों और सामुद्र टापू वे टापू हैं जो समुद्रके बीचमेंसे स्वतः प्रादु-र्भूत हो जाते हैं। सामुद्र टापू सदा एकाकी, पृथक्, जलावेष्ठित (चारों ओर पानीसे घिरे) और आत्मस्थ होते हैं। इंगलैंड, सार्डिनिया और कार्सिका प्रभृति भौम्य टापू हैं, क्योंकि यह पुरकालमें योरोपके महाद्वीपसे लगे हुए थे। इसी प्रकार अफ्रीकाका भौम्य टापू मेडेगास्कर है, क्योंकि यह टापू भी अफ्रीका महाद्वीपसे किसी समय जुटा हुआ था। लंका एशियाका, टस्मानिया अष्ट्रेलियाका इसी कारणसे भौम्य टापू है। किन्तु इसके विपरीत मालद्वीप व लकद्वीप प्रभृति भारतके सामुद्र टापू हैं, इसी प्रकार सेंटहेलिना, जहां वीरश्रेष्ठ नेपो-लियन बोनापार्टी ५ वर्ष तक बन्दी रहा, और सेंटपाल इत्यादि भी सामुद्र द्वीप हैं, क्योंकि इनका प्रादुर्भाव या इनका जन्म गहरे समुद्रके वक्षस्थलसे स्वतः हुआ है और कभी किसी महाद्वीपसे इनका सम्बन्ध नहीं था। केलेडो-निया और न्यूज़ीलैंड भौम्य टापू होते हुए भी

एक यह विशेषता रखते हैं कि जिन महाद्वीपोंके संयोगसे हम इन्हें भौम्य कहते हैं वह महाद्वीप समुद्रके पेटमें अन्तर्हित हो गये हैं।

चाहे भौम्य टापू अपने प्रधान वृहत् भूखण्ड-से कितनी ही दूर क्यों न हो जाय पर वह भौम्य ही कहायेगा। बहुधा बड़े बड़े भौम्य टापुओंसे कई छोटे छोटे टापू पैदा हो जाते हैं। जैसे इंगलैंडके आइल-आव-मैन, आ० वाइट इत्यादि इत्यादि। ज्ञात भौम्य टापुओंमें सबसे बड़ी 'नयीगिनी' है। इसका क्षेत्रफल ३०६००० वर्गमील है, बोर्नियो का २८६००० औ मेडेगास्कर-का २३०००० वर्गमीलका क्षेत्रफल है।

बाज़ बाज़ टापुओंको तट-टापू भी कह सकते हैं। यह न तो अपने प्रधान महाद्वीपसे विच्छिन्न ही हुए होते हैं और न गहरे समुद्रमें-से ही निकल पड़ते हैं। इनकी उत्पत्ति उस कीचड़के ढेरोंसे होती है जिसे बड़ी बड़ी नदियां बहाकर लाती हैं और समुद्र तटपर लगा देती हैं अथवा किनारेपर टक्कर मारनेवाली लहरोंकी क्रिया इनके बननेका कारण होती है।

सामुद्र टापुओंके, उनकी प्रकृति बनावट-के विचारसे, दो भेद होते हैं,—(१) आग्नेय जो समुद्रके तलीके भीतरकी अग्निकी क्रियासे बन जाते हैं; (२) प्रवालीय जो मूंगेके कीड़े समुद्रके भीतर डूबे हुए पहाड़ोंकी चोटियोंपर अथवा जलके भीतरकी आलियोंपर बनाते हैं।

प्रवालीय टापू केवल गरम समुद्रोंमें पाये जाते हैं। यह टापू पश्चिमी प्रशान्त महासागरमें बहुत हैं। पश्चिमीय भारत-महासागर और मेक्सिकोकी खाड़ीमें भी प्रवालीय टापू अधिक पाये जाते हैं। आग्नेय टापू बहुत दूर दूर फैले मिलते हैं किन्तु ये सदा उन्हीं भूमि-विभागोंमें मिलते हैं जहाँपर भूगर्भस्थ अग्निका अधिकार बाहुल्य होता है। इस प्रकारके टापू बहुधा पुञ्जके पुञ्ज होते हैं जैसे एलूटियन, क्यूरिल्स और फिलिप्पाईनके टापू परन्तु ये एकाकी भी बहुत मिलते हैं। इस प्रकारके कुछ टापुओंमें ज्वाला-मुखी पर्वत भी होते हैं, जैसे मेराएंस, गेलाये-गस नामके टापू जिनमें कई कई क्रियाशील ज्वालामुखी पहाड़ और दो हज़ारसे अधिक निष्क्रम शंकु पड़े हैं। फ़ीजीके टापू, फेडंली टापू समूह, नये हेब्रिड्सके टापू, सेंडविच व सुण्डाके टापू और सैकड़ों इसी प्रकारके अन्य टापू हैं जिनके प्रादुर्भावका मूल कारण सामुद्र-तल गर्भस्थ अग्नि है।

सामुद्र टापू कभी भी महाद्वीपोंके साथ सम्बन्ध नहीं रखते थे इसलिए उनका वान-स्पत्य और जान्तव समुदाय निस्सन्देह कहीं दूसरी जगहसे लाये गये होंगे। ऐसे स्थानोंमें चिड़िया स्वतः भी आकर पहुँच सकती हैं और वहाँ ऐसे जन्तुओंकी भी गम्य हो सकती है जो बहती लकड़ियों व लट्ठोंके सहारे बह जायं। इसी कारण इन टापुओंका जान्तव और वान-स्पत्य समुदाय बहुत ही परिमित होता है।

स्वकीय महत्वके कम होते हुए भी प्रवा-लीय टापू बड़े अनुरागके पदार्थ हैं। इस अनु-राग विशेषका कारण उनकी उत्पत्तिका ढंग और उनका नील दक्षिण समुद्रोंमें प्रजटित होना है। इन दो बातोंपर विचार करनेसे मनुष्यकी कल्पना शक्तिको दौड़नेका विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है और उसके अन्तरात्माको प्रसन्नता भी होती है। अतः हम प्रवालीय टापु-ओंकी जन्म कहानीका ही यहाँ संक्षेपसे वर्णन करना चाहते हैं।

हम पहले एक लेखमें पहाड़ोंका बनना बिगड़ना बतला चुके हैं जिससे पाठकोंको मालूम हुआ होगा कि किस तरहपर कंकड़ पत्थर, चूना, मिट्टी व खड़ी वग़ैरह समुद्रोंमें बह बहकर इकट्ठी होती हैं और चट्टानें बन जाती हैं। अनेक स्थानोंमें मछलियोंकी हड्डी व अन्य अनेक जन्तुओंके कचकड़ोंके ढेरकी भी चट्टानें बन जाती हैं। लेकिन इन चूनेवाली

जातिके द्रव्योंसे जो चट्टानें बनती हैं मूँगेके कीड़े बढ़े हुए हैं यह भी समुद्रके भीतर पहाड़, चट्टान टापू व भीतें बनानेके कारण होते हैं। मूगेंके कीट जिन्हें अंगरेज़ीमें कोरलपोलिप कहते हैं एक प्रकारके समुद्रीय वानस्पत्य प्राणी जीव सामुद्र एनोमेनी (anemones) के मौसेरे भाई ही हैं। इनके शरीर एक प्रकारकी थैली-की तरह होते हैं जिनकी बनावट उस बोतल या शीशीकी भांति होती है जिसे उलटी करनेपर भी स्याही या और जो तरल चीज उसमें होती है नहीं गिरती। इनके मुँहके चारों ओर पतली पतली भुजाओंका वृत्त (घेरा) होता है। किसी किसीके बाँहोंके घेरे एकसे अधिक भी होते हैं। इन बाँहोंके घेरेके द्वारा यह कीड़े समुद्रके जलमेंसे एक प्रकारका चून-लवण खटिक कर्बनित (carbonate of lime) निकाल या खींच लेते हैं और इसीसे एक प्रकार-का प्यालेकी भाँति अस्थिपञ्जर बनाते हैं। इन कीटोंके मरकर सड़गल जानेके पीछे भी यह प्याला ज्योंका त्यों बना रहता है और इसी चूने-के ढाँचेका नाम मूँगा, विद्रुम या प्रवाल है।

मूँगा कई प्रकारका होता है। प्राचीन आर्य्य ग्रन्थोंमें जान्तव व वानस्पत्य के दो भेद दिये हैं। इनके अतिरिक्त मूँगेके अनेक भेद हैं, जैसे अस्तरीय (astrew), पौरित (porites), मद्रिपोरा (madrepora), और मिलपोरा (millepora), कई स्थलपर देखा गया है कि मूंगेके कीटमें कलिकाके समान बच्चे लगते हैं, फिर इन कलिकाओंमें कली आती है, इस तरहपर मिले हुए विद्रुम कीटोंकी शाखा बन जाती हैं, इनसे अन्तमें जो अस्थि-पञ्जर होता है वही शाखा प्रवाल है, जिसे सब लोग जानते हैं।

बहुधा इस प्रकारकी कलियां निकलती तो हैं पर एक दूसरेसे जुटी रहती हैं और इनसे जो अस्थि-पंजर उत्पन्न होता है वह अपने आसमावृत रूपके कारण मस्तिष्क-प्रवाल (brain coral) कहाता है। विद्रुम कीटके विच्छिन्न शाखा अस्थि पंजरसे ही चट्टानें और मूंगेके टापू बनते हैं। पाठक यह न समझें कि मूंगोंका टापू केवल विद्रुम अस्थि-पंजरका ढेर ही होता है।

कम पानीके ऊपर यह कीड़े मरजाते हैं, ३० पुरस जलके नीचे भी यह मरजाते हैं। इनदोनों मृत्यु कटिबंधोंके भीतर समावृत कोट-यानु-कोटि नन्हे नन्हे जीवित जन्तु प्रवास करते हैं। मानों समुद्रके भीतर कोई अन्तर जलीय वाटिका हो जिसमें चलते फिरते अनेकों जीव विहार कर रहे हों।

इस प्रकारकी अनन्त विचित्र सृष्टि देखकर परमात्माकी सर्वशक्तिमत्ताका सुगमतासे स्वतः हमारे हृदयमें बोध उत्पन्न होता है। जिस विचित्र कारीगरने अपनी कारीगरीसे समस्त संसारके चतुर कारीगरोंको स्तम्भित कर रक्खा है, उसीकी कृपाकटाक्षसे उसीकी कारी-गरीकी सावधानतापूर्वक देख रेखसे हम मनुष्य भी अपनी समुन्नति करते हैं, की है और आगे भी कर सकते हैं। इसलिए हमें परमात्माकी चातुर्य्यवेष्ठित इस जगतको सावधानी, श्रद्धा और भक्तिसे आंख खोलकर देखना चाहिये।

भारतीय विज्ञान सम्मिलन

[ले० परिषत्का एक सभ्य]

बंगालकी एशियाटिक सोसाइटी एशिया विषयक खोजोंकेलिए सर विलियम जोन्स आदि पाश्चात्य विद्वानोंके प्रयत्नसे ईसवी १८ वीं शताब्दीमें स्थापित हुई थी। उस कालसे यह सभा विविध विषयोंपर अपने पत्रमें अनेक लेख निकालती रही है। कलकत्तेमें इसके सम्बन्धमें एक अच्छा पुस्तकालय भी है। इसी सभाके प्रयत्नसे और इसीके सम्बन्धमें सन् १९१४ की

जनवरीमें पहला भारतीय विज्ञान-सम्मिलन बंगालके लाटकी संरक्षकतामें हुआ था। विज्ञान-सम्मिलनके पहले अधिवेशनमें सर आशुतोष-मुखोपाध्याय सभापति हुए थे और भारतीय वैज्ञानिकोंमें डाकटर प्रफुल्ल चन्द्रराय, पंचानन नियोगी, सी. वी. रमन, इत्यादि भी उपस्थित थे। इसमें वैज्ञानिक विषयोंपर मौलिक आविष्कारोंके विषयमें लेख पढ़े गये थे।

इसी प्रकार दूसरा विज्ञान सम्मिलन गतवर्ष जनवरीमें मद्रासमें हुआ था। सभापति सार्जंट-जेनरल बनरमैन थे। संरक्षक थे मद्रासके लाट महोदय। इसमें भी वैसी ही कारवाई हुई थी।

तीसरा विज्ञान-सम्मिलन संयुक्तप्रान्तके लाट महोदयकी संरक्षतामें इस साल १३-१५ जनवरीको लखनऊके मेडिकल कालिजमें बैठा था। सर सिडनी बरार्ड सभापति थे। पहले दिन श्रीमान् लाट महोदयने विज्ञानके महत्वका प्रतिपादन करते हुए सम्मिलनका हर्ष पूर्वक स्वागत किया। सभापतिने सम्मेलनकी कार्य्य-वाही अपने व्याख्यानसे प्रारंभ की। विज्ञान सम्मिलन के सभापति के प्राथमिक व्याख्यानमें वर्ष भरकी वैज्ञानिक उन्नति पर आलोचना होती तो अधिक युक्तियुक्त होता। परन्तु व्याख्यानका विषय था "उत्तरीय भारतके मैदान और हिमालयसे उनका संबन्ध।" व्याख्यान महत्त्व-का था। आपने यह दिखलाया कि अबतक आपकी अध्यक्षतामें हिमालयसे विन्ध्यतकके मैदानमें १५०० फ़ीटतक गहरी खुदाईमें भी बालू और नरम मिट्टीके सिवाय दृढ़ चट्टान नहीं मिला है। आपकी यह धारणा है कि इतिहास कालके पूर्व हिमालय और विन्ध्यके बीच दोनों ओरसे ढलुआं एक विस्तीर्ण खड्ड था जो नदियोंके द्वारा लायी हुई मिट्टीसे भर गया है और मैदान हो गया है। धरती जब अपने पूर्व अग्निमय रूपसे ठंढी होकर सिकुड़ने लगी थी उस समय उसपरके ऊंचे चिप्पड़ोंके भीतर और तहाँके बीच, तथा दो चिप्पड़ोंके अन्तराल-में खोखले स्थान रह गये। संभवतः यह खोखलापन अब भी स्थान स्थानपर मौजूद है।

इस व्याख्यानके पीछे सम्मिलनके कई विभाग बनकर अलग अलग सभाएं हुईं। विभाग इस प्रकार थे।

(१) व्यवहारिक तथा कृषि रसायन
(२) जीवविज्ञान
(३) रसायन
(४) वनस्पति
(५) भौतिक तथा ऋतुविज्ञान
(६) भूगर्भ तथा मानव जातिविज्ञान

रसायन और भौतिक विज्ञानके विभागोंमें प्रत्येकमें कुल मिलाकर १०० के लगभग श्रोता थे। और विभागोंमें उपस्थिति अत्यन्त कम थी। यहांतक कि अन्तिम विभागमें एक सभापति और एक व्याख्याताको छोड़ शायद और कोई न था। वैज्ञानिक व्याख्यान जन साधारणकेलिए तो होते नहीं और विद्वानोंकी संख्या कम हुआ ही चाहे। इसलिए इस न्यूनताको भी अस-फलता न समझना चाहिए। जितने लेख पढ़े गये, दो एकको छोड़ सभी महत्वके थे। इन लेखोंके सिवाय तीन व्याख्यान भी हुए। पहले दिन शामको आगरेके डा० हांकिनने "पक्षियोंके विकास" पर व्याख्यान दिया। दूसरे दिन शाम-को विज्ञानाचार्य्य जगदीशचन्द्र वसुने "अदृश्य ज्योति" पर अपना मौलिक व्याख्यान दिया। तीसरे दिन शामको अध्यापक पंचानन नियोगी-ने "प्राचीन भारतमें लोहेके शिल्प" पर व्याख्यान दिया था। इस प्रकार तीन दिन विज्ञान-चर्चा करके यह विद्वन्मंडली विसर्जित हुई। इस विद्वन्मंडलीको पूर्व प्रथानुसार संरक्षक महोदयने उद्यान-भोज भी दिया था। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस सम्मिलनमें भारतीय विद्वानोंकी संख्या कम रहती है और संभवतः उनका उचित आदर नहीं होता। विज्ञानाचार्य्य

जगदीशचन्द्र वसु अबतक सम्मिलित नहीं हुए हैं, यद्यपि वे लखनऊमें विद्यमान थे।

अगला सम्मिलन बंगलोर या लाहोरमें होगा और अगले सभापति सर अलफ्रेडबोर होंगे। इन दोनोंमें बंगलोरमें ही होनेकी अधिक संभावना है। लाहोर अभी शायद सम्मिलनोंके लिए उपयुक्त स्थान नहीं है।

वैज्ञानिकीय

अध्यापक एस. ओ. मास्टने अमेरिकाके एक जीव-विज्ञान-शालामें मछलियोंके बारेमें कुछ विचित्र निरीक्षण किये हैं। मछलियां अपने आस पासकी वस्तुओंके रंग, रूप और आकार प्रकारके अनुसार बदलती रहती हैं। नदियोंके दहाने और समुद्रमें एक प्रकारकी साधारण चपटी मछली बहुतायतसे मिलती है। इसे अंग्रेज़ीमें फ़्लाउन्डर (flounder) कहते हैं।

जब यह मछलियां शीशेके बर्तनोंमें सुफ़ेद तलीपर रक्खी गयीं तो इनका रंग क़रीब क़रीब सुफ़ेद हो गया, काली तलीपर रखनेसे लगभग पूरा पूरा काला। इसी प्रकारसे लाल रंगको छोड़कर यह मछलियां बहुतसे अन्य रङ्गोंके अनुरूप बन गयीं। अपने घेराके आकार प्रकारका इतना अच्छा अनुकरण इन्होंने नहीं किया। हां, तलीके अच्छे और भद्दे नमूनोंके समान मछलियोंकी खाल अच्छी या भद्दी अवश्य बन गयी। जो फ़्लाउंडर सुफ़ेद बर्तनसे काले बर्तनको कई बार पहुंचायी गयी थी वह दो ही मिनटके भीतर सुफ़ेदसे काली हो गयी, पर सुफ़ेद बर्तनमें दो हफ़्ते रहनेके बाद पूरे तौरसे काले होनेकेलिए उसे काले बर्तनमें पांच दिन तक रखना पड़ा। कालेसे सफ़ेद होनेकेलिए प्रत्येक अवस्था में एक घंटा या इस स अधिक लगता रहा। अन्य रङ्गोंका परिवर्त्तन तो इससे भी धीरे होता था। हरे या नीले रङ्गकी अपेक्षा पीला रङ्ग अधिक फुर्तीसे चढ़ता था।

इन परिवर्तनोंका कारण मछलीके खालके काले और पीले कोष-क्रोमोटोफ़ोसेस-तथा अपारदर्शी सुफ़ेद कोष-इरीडोकाइट्स-हैं। जब कोई परिवर्तन होता है तब पीले और लाल कोष अपना अपना स्थान बदल देते हैं और सुफ़ेद कोष आकर भिन्न भिन्न मात्राओंमें इन कोषोंको ढकलेते हैं। आंखें कोषोंके इस प्रकार ढक लिये जाने और स्थान बदलनेके परिवर्तन नियन्त्रित करती हैं। जब मछलियोंका एक सिरा काले तहपर और दूसरा सफ़ेद तहपर रक्खा गया तो जो रङ्ग उनकी आंखोंके सामने पड़ा मछलियां उसी रङ्गकी हो गयीं। जब उनकी एक आंखके सामने काला और दूसरीके सामने सुफ़ेद रङ्ग पड़ा तो मछलियोंका रंग बदलकर बिल्कुल भूरा हो गया!

From Popular Science Sifting, 9th November

* * * *

पटनेमें धरतीकी वैद्युत शक्तिके पात (potential fall) नापनेमें अध्यापक जक्सनको वायुकी नमीसे (Electrometer) विद्युन्मानको ठीक रखनेमें बड़ी कठिनाई पड़ी थी। नमीके मार्गसे बिजली यंत्रसे भाग खड़ी होती है, और वायुमंडलमें विद्युत्धारापात (fall) दिखानेको यंत्र बाहर रखना आवश्यक है। इस प्रयत्नमें जकसनको सोडियम, फ़सफरस पेंटक्सैड भिन्न परिमाणोंमें, केल्सियम क्लोरैड आदि अनेक जलशोषक पदार्थोंकी परीक्षा करनी पड़ी जिसके द्वारा यंत्र नमीसे बचा रहे। अनेक शोषकोंमें गंधकका तेज़ाब या तीव्र गंधकाम्ल (strong sulphuric acid) सबसे उत्तम शोषक ठहरा, परन्तु इसके प्रयोगमें भी ऊपरकी धरातलको हिलाडुलाकर बार बार बदलते रहनेकी आ-

वश्यकता होती है, क्योंकि जल सोख सोखकर इसके ऊपरी धरातलकी शोषण क्रिया घट जाती है।

* * * *

एक कांचकी नलिकामें किसा विशेष गैसके अत्यन्त कम अंशको लेकर उसे दोनों ओरसे बन्द करके दोनों पर धातुमय ऋण और धन ध्रुव बना देते हैं। ध्रुवोंसे वैद्युत-सम्बन्ध कर देनेपर विशेष गैसोंमें विशेष ज्योति झलकती है। जेसलरने इसे पहले बनाया था अतः यह जेसलरकी नलिका कहलाती हैं। कलकत्तेके अध्यापक मल्लिकने पंपके द्वारा भिन्न भिन्न दबावोंपर गैसोंके भिन्न भिन्न परिमाण इसी नलिकामें डालकर तथा इसके भीतर चुम्बकका भी प्रवेश कराकर, सब दशाओंमें प्रत्येक प्रभाव की परीक्षा की है और कर रहे हैं और यह देख रहे हैं कि प्रत्येक अवस्थामें किस किस (Spectroscopic) रूप और रंगमें उसकी ज्योति निकलती है। (इस परीक्षासे आकाश के तारा-ओंमें कौन गैस कितने दबावपर है और किस चुम्बकीय दशामें है यह जाननेमें सहायता मिल सकती है।)

* * * *

डा० वाट्सनने मैसूरके कुछ खनिजमें रेडियमकीनाई विशेष ज्योतिक्रिया (radio-activity) पायी और उसपर कुछ प्रयोग किये। उन्होंने क्रुक्सस्यूबमें (cathode) ऋणध्रुवपर विविध धातुओंके द्वारा विद्युत्के धारापात (potential fall) को निकाल निकालकर एक महत्वकी सूची तैय्यार की है जो अन्य प्रयोग-कारियोंकेलिए उपयोगी हो सकती है।

* * * *

डा० ज़ियाउद्दीनने सम्मिलनमें एक प्राचीन कोणमापक यंत्र दिखाया जो उन्होंने मिस्रमें खरीदा था। आपका धारणा है कि अरबवाले प्राचीनकालमें बड़े ज्योतिर्विद हो चुके हैं, वह व्यवहारिक त्रिकोणमितिके ज्ञाता थे, जिसके प्रमाणमें ६६८ ई० के अलबेरूनीके क़ानून मसऊदीका अपना अनुवाद उपस्थित करके यह कहा कि इसमेंकी ज्यौतिषकी गणनाओंको देख-कर और वर्त्तमानकालमें फिरसे गणना करके दोनोंका मिलान करनेसे सहस्र वर्षमें पड़े हुए अन्तरोंका पता लग सकता है और उससे महत्त्वके परिणाम निकल सकते हैं।

* * * *

बिहालेमें तार, धनुही, परदा और बिहाले-की लकड़ी और उसके भीतरकी वायुमें बजते समय जितना जितना स्फुरण जिस जिस अंगके कारण होता है उन सब स्फुरणोंके एकत्री करणसे ही स्वर उत्पन्न होता है। इस माधुर्य्य और संगीतानन्दमें तार, धनुहीं, परदा लकड़ी और उसके भीतरकी वायुका कितना कितना स्फुरण सम्मिलित होता है, इसका नियम और गणित निकालनेमें कलकत्तेके मद्रासी अध्यापक रमण-जी लगे हुए हैं। इस सम्बन्धमें आपने सम्मिलन-में लालटेनसे चित्र भी दिखाये थे, परन्तु इतनी उतावली की कि उपस्थित विद्वानोंको उसपर विशेष आलोचनात्मक दृष्टि डालनेका अवसर न मिला।

* * * *

पलंगके बहुतसे कपड़े ; हम सुबह थके हुए क्यों उठते हैं ?

इस शीर्षकका एक नोट Popular Science Sifting November, 9) में निकला है। उसका तात्पर्य्य यह है कि जाड़ेसे बचनेके-लिए न जाने कितने ओढ़ने और बिछौनेका योग साहेब लोग किया करते हैं। पर इस-से पलंग कुछ बहुत अधिक नहीं गरमाता। इस बातकी जांच हम थर्मामीटर द्वारा कर सकते हैं। यदि पलंगपर ऊनी वस्त्रोंके ढेर लगानेकी अपेक्षा हम एक पतली रेशमकी

चद्दर बिछाकर पलंगमें घुस जांय तो पलंग बहुत शीघ्र गरमा जाता है बिछौना गरम रखनेका रहस्य बदन की गरमीको बाहर न निकलने देना है। जिन सोनेवाली थैलियोंमें रहकर पता लगानेवालोंने उत्तरी ध्रुवके शीतको चुनौती दी थी, उनकी गरमी उनके मोटाईपर निर्भर नहीं है। इन थैलियोंका भेद यही है कि शरीरसे ख़ूब चुभी हुई रहनेके कारण बदनकी गरमी निकलकर इनसे बाहर नहीं जाती।

जाड़ोंमें विशेषतः बच्चोंको बहुत दुख दिया जाता है। कहीं उन्हें सर्दी न लग जाय इस भयसे उनकी चारपाई बिस्तरोंसे लाद दी जाती है। यह हाल योरुप निवासियों और उनका अंध अनुकरण करनेवाले साहिबोंका होता है। हमारे देशमें रूईके वस्त्रोंका अधिक प्रचार है। यह बहुत हलके होते हैं। इन्हें पहनने औरओढ़नेसे शरीरको इतना अधिक बोझा नहीं लादना पड़ता।

पर सब परिधानोंमें रेशम सबसे उत्तम हैं। रेशमका पायजामा और कुरता पहनकर सफ़ेद चद्दरपर सोना और एक हलका कम्बल ओढ़लेना सर्दीकेलिए बहुत काफ़ी है। मोटे और भारी कपड़ोंको पहन और ओढ़कर सोनेकी आदतके कारण ही मनुष्य प्रातःकाल थके हुए और सुस्त उठा करते हैं। ऐसा करना ५ सेर वज़नी ओवरकोट पहननेके बराबर है।

यह समझना कि लेटे रहनेके कारण शरीरको यह बोझा उठाना नहीं पड़ता भूल है। जागतेमें तो बोझा कंधोंको जो इस बातके आदी हैं उठाना पड़ता है पर सोतेमें तो वह शरीरके हर एक हिस्सेको दबाये रहता है।

शरीर एक भट्टी है जिसके ईंधनका एक हिस्सा वायु है। सोनेवाले कमरेकी खिड़िकियाँ भट्टीमें ईंधन पहुंचानेकेलिए खुली रहनी चाहियें, पर शरीररूपी इंजनपर भारी बोझा लदवानेसे काम न चलेगा।

* * * *

Dr G.C. Simpson डा०सिम्प्सन इन दिनों इस बातकी खोज कर रहे हैं कि पृथिवी जो ऋण विद्युत्से परिपूर्ण है वायुकी वहन क्रियाके द्वारा उसकी विद्युत्में ह्रास क्यों नहीं होता। आपने इस वर्ष विज्ञान सम्मिलनमें यह प्रकट किया है कि संभवतः यह ऋण विद्युत् विद्युत्कणोंके रूपमें सूर्य्यसे आती रहती है, कुछ उल्कापातसे आती है और कुछ भूगर्भस्थित रेडियमादि ज्योतिर्मय धातुओंसे प्राप्त होती रहती है। लखनऊके विज्ञान सम्मिलनमें दूसरे दिन इसी विषयमें अध्यापक जकसनने पटनेमें पूरे सालभर परीक्षा करके जो सूची बनायी थी उसका विवरण भी सुनाया था।

* * * *

कसौलीके पास्टयुर इंस्टिटयूटके डैरेक्टर Major Mc Kendrick मेजर मेकेंड्रिकने गणितके द्वारा यह सिद्ध किया है कि यदि किसी संक्रामक रोगसे मृत मनुष्यों की संख्या, उनकी परिस्थिति और रोगके फैलनेकी ऋतु मालूम हो तो उस प्रान्तकी जन-संख्या भी गणितके द्वारा मालूम हो सकती है। इसका उलटा भी निकल सकता है, अर्थात् रोग, ऋतु परिस्थिति और जनसंख्या मालूम होनेपर किस सप्ताहमें कितने मनुष्य किस प्रान्तमें मरेंगे यह संख्या भी निकाली जा सकती है।

* * * *

Harwood हारवुडने सम्मिलनमें १९१४-१९१५ के ऋतु और वायुधारासंबन्धी अपने बनाये नक़शे दिखाये। भारतवर्ष और एशियाके वायुमंडलके तीन विभाग किये। एक धरतीसे संलग्न, दूसरा २ मील और तीसरा पांच मील ऊपरका वायुमंडल। इनकी धाराओंका विविध दिशाओंमें परिवर्त्तन दिखलाया और गतवर्षोंके समान ऋतुओंके परिवर्त्तनोंसे उनको तुलना करके कुछ नियम सिद्धान्तरूपसे निकालनेका प्रयत्न किया है।

विज्ञानंब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तै० उ०। ३।५।

भाग २ { मीन, संवत् १९७२। मार्च सन् १९१६। } संख्या ६

मंगलाचरण

हीरा तांबा सीस खनिज बिरचे[1] जिसके बल,
निरमाये[2] नव बीज लता तरु तने फूल फल,
ऊंची अच्छी जाति जन्तुओंकी जनमायी[3]
आगामी-आदर्श-मनुज-रचना[4] सिखलायी,
बरबंक, रामजी, मयसुअन, जिसकी विमल
विभूति[5] है,
जय जिसकी विश्वामित्र[6]-सम-अनुपम-पुरुष-
प्रसूति है।

श्री काशी।
१२-२-१६।

—रामदास गौड़

१—फ्रांसमें (Moissan) मयसुअनके वैद्युत भट्टांके प्रचंड तापमें लोहेके गर्भसे कोयलेके रूपान्तरद्वारा कृत्रिम हीरेका जन्म हुआ। प्रकृतिमें भी हीरेकी जन्मकथा ऐसी ही है। इंगलैंडके (Ramsay) रामजीने रेडियमके रूपान्तर-से तांबा और सीसेकी उत्पत्ति करायी। प्राकृतिक उत्पत्ति भी ऐसी ही है।

२—अमेरिकाके (Burbank) बरबंकने अनेक नये पेड़ फल फूल बनाये हैं, जो अबतक प्रकृतिमें न थे।

३—जन्तुओंकी नयी और उत्तम जातियोंका भी इसी प्रकार निर्म्माण हो रहा है।

४—मनुष्योंकी आदर्श जातिकी उत्पत्तिकी रीतियोंपर नवीन विज्ञान (Eugenics) सुप्रसूति विज्ञानका अनुशीलन हो रहा है।

५—यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेववा
तत्तदेवावगच्छत्त्वं मम तेजोंऽश संभवम्। (गीता)

६—प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्रकी यह कथा सभी जानते हैं कि उन्होंने नारियल, अरहर, मसूर आदि अनेक वनस्प-तियोंकी सृष्टि की और एक नये संसारकी सृष्टि करनेको तय्यार थे। (लेखक)

अपनी चर्चा

मान्य वाचकवृन्द! राष्ट्रभाषा हिन्दीके साहित्यक्षेत्रमें विज्ञान विषयक एक मात्र पत्र निकालनेका साहस विज्ञानपरिषद्ने गत वर्ष हिन्दीप्रेमियोंके ही भरोसे किया था। वैज्ञानिक विषयोंपर लेख मिलना जैसा कठिन कार्य्य था, उन लेखोंके पढ़नेवाले मिलना उससे कम कठिन नहीं था। इस उद्योगमें दोनों पक्षोंने हमारी यथेष्ट सहायता की। यद्यपि विज्ञानके पढ़नेवालों-

की संख्या अभी सन्तोषदायक नहीं है, तथापि अपने साहित्यकी दशा देखकर हमको शिकायत करनेका कोई अवसर नहीं है। अतः हम हार्दिक प्रेमसे विज्ञानकी इस सफलताकेलिए लेखकोंको तथा पाठकोंको भी बधाई देते हैं और एकके परिश्रम और दूसरेकी गुणग्राहकताकेलिए उभय पक्षको भूरि भूरि धन्यवाद देते हैं। साथ ही आशा करते हैं कि विज्ञानपर उभय पक्षकी ऐसी ही कृपा बनी रहेगी।

विज्ञ वाचकवृन्द ! आपने क्रमशः विज्ञानकी बारह संख्याएं देखीं। हम यह नहीं कह सकते कि विज्ञानके कार्य्यकर्त्ताओंने पाठकोंको यथेष्ट लाभ पहुंचानेमें तथा इस पत्रको आदर्श रूपसे निकालनेमें पूरी सफलता पायी है। जिस क्षेत्रमें विज्ञान अपने ढंगका अकेला पत्र है उसमें इसकी सफलताकी तुलना किससे की जाय? विज्ञान शिक्षामें अपना सिर ऊंचा रखनेवाले देश सुबोध-विज्ञान विषयक पत्र कितने अधिक व्ययसे निकालते हैं-यह बात छिपी नहीं है। हम उतना व्यय करनेमें तभी समर्थ होंगे जब हमारे अनुग्राहक ग्राहक इसका प्रचार बढ़ाएंगे और अपनी वास्तविक गुण-ग्राहकता दरसाएंगे।

हमारा आदर्श आदिसे यही है कि हम विज्ञानके कठिनसे कठिन और दुरूहसे दुरूह विषयको सर्वसाधारणमें सुलभ करनेकेलिए सुबोध और सरल भाषामें उपस्थित करें। इस कार्य्यकी कठिनाईका सबसे अधिक अनुमान लेखक कर सकते हैं। हमारे लेखक इस कार्य्यमें जितने सफल हुए हैं, पाठक स्वयं विचार कर सकते हैं। भविष्यत्में भी हमारा यही प्रयत्न होगा कि वैज्ञानिक विषय और भी अधिक रोचक और सुबोध शैलीसे लिखे जायं।

* * *

जिस संकटमें इन दिनों सब समाचार तथा सामयिक पत्र पड़े हुए हैं, उसी संकटमें आपका विज्ञान भी है। कागज़ मंहगा ही नहीं हो गया वरन् अच्छा कागज़का मिलना ही असंभव हो रहा है। विज्ञान एक ऐसी परिषत्का मुखपत्र है जिसको आजतक किसी धनकुवेरका आश्रय नहीं मिला है। पाठक सहज ही उसकी घोर कठिनाइयोंका अनुमान कर सकते हैं। ऐसी दशामें हमारा प्रयत्न यह होगा कि विज्ञानका वार्षिक चन्दा तथा पृष्ठ-संख्या ज्यों की त्यों रहें। परन्तु यदि हम घटिया कागज़ देनेपर लाचार हो जायं तो हमारे सहृदय तथा विज्ञ ग्राहकगण हमें क्षमा करें। इस संकटके समय अनेक पत्र पत्रिकाओंके बन्द हो जानेका डर है। ऐसी दशामें हमको आशा है कि विज्ञानके कलेवरमें परिवर्तन देखकर पाठकगण असन्तुष्ट न होंगे।

"सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः"

स्वास्थ्य रक्षा

[ले० महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा, एम्. ए., डी, लिट.]

रहन सहन तथा खाने पीनेके नियम।

कामसूत्रके अनुसार इतना आवश्यक है-नित्य स्नान; प्रति दूसरे दिन उत्सादन अर्थात् सुगन्धित तेल लगाकर अङ्गोंका मर्दन; प्रति तीसरे दिन फेनक अर्थात् साबुन वा और किसी फेनिल पदार्थसे शरीर साफ़ करना; प्रति सप्ताह सिरके बालोंको कैंचीसे काटना और डाढ़ीको छुरेसे मुड़वाना, नख काटना (ऐसा ही भाव प्रकाशमें ४. ५२ में भी लिखा है)। जहांका केश क्लेश देता हो वहांके केशको प्रति दसवें दिन उखाड़ना। पसीनाको बराबर कपड़ेसे पोंछते रहना। दिनका तीन अष्टमांश कार्यमें लगाना। चतुर्थ और अष्टम अष्टमांशमें भोजन करना। किसी

किसीके मतसे द्वितीय भोजन रातमें होना चाहिये ; दिनमें केवल गर्मीमें सोना ; सन्ध्या समय गीत वाद्यसे मन बहलाना।

इसके अतिरिक्त भावप्रकाशमें प्रतिदिन बाल झाड़ना भी आवश्यक लिखा है। व्यायाम अवश्य करना, विशेषकरके जाड़े और बसन्तमें ; पर बलार्धसे अधिक व्यायाम नहीं करना; कहते हैं

बलस्यार्धेन कर्तव्यो व्यायामो हन्त्यतोऽन्यथा।

इस बातपर सुश्रुतमें भी ज़ोर डाला है। 'बलार्ध कैसे जानना सो सुश्रुत (अध्याय २४)' में कहा है :—

हृदयस्थो यदावायुर्वक्त्रं शीघ्रम्प्रपद्यते।
मुखं च शोषं लभते तद्बलार्धस्य लक्षणम् ॥

अर्थात् हृदयसे वायु मुखमें शीघ्र शीघ्र आनेलगे–अर्थात् दम फूलनेलगे, मुख सूख चले, तो समझना कि बलार्धकी सीमा पहुँच गई। इसके अनन्तर व्यायाम बन्द कर देना।

भोजनके अनन्तर शीघ्र व्यायाम मना है। श्वासी, कासी, क्षयी, रक्तपित्तीकेलिये भी व्यायाम मना है—(भावप्रकाश ४।५६)। मैला कपड़ा कभी नहीं पहनना—(भावप्रकाश ४। ६२)। भूख प्यासको कभी नहीं रोकना। पर भोजन सबेरे शाम दे। ही बार करना। प्रातःकालका भोजन ६ और १२ के बीचमें करना। कहते हैं–

याममध्ये न भोक्तव्यं यामयुग्मन्न लंघयेत्।

एक पहरके पहले भोजन नहीं करना और दे। पहरके बाद भी नहीं करना।

अब देखिये रहनसहनके विषय हमारे प्राचीन आचार्य चरक सुश्रुत कैसे कैसे नियम बांध गये हैं।

'स्वस्थ'-तन्दुरुस्त-आदमीका लक्षण यों है। 'स्वस्थ आदमी वह है जिसके भूख-प्यास उचित क्रमसे लगें, जिसके शरीरके धातु तथा मल-मूत्रादि क्रिया ठीक रीतिसे चली जाय। जिसकी इन्द्रियां तथा आत्मा प्रसन्न हों'।

(सुश्रुत अध्याय १५)

नित्य कर्तव्यमें सुबह शाम दो बार दातौं तथा जिह्वाका साफ़ करना, सिरमें तेल लगाना, कानमें तेल डालना, शरीरमें तेल मलना, स्नानकर साफ़ कपड़े पहनना, चन्दन लगाना, सुगन्धित फूलमाला धारण करना, बालोंका काटना तथा झाड़ना, जूता पहनना, छाता लगाना, छड़ी रखना रातको आंखों में अंजन लगाना, इत्यादि चरक संहिता सूत्रस्थान अध्याय ५ में लिखा है। इनके अतिरिक्त धूमपान भी दिनमें दो बार आवश्यक लिखा है सो भी बत्ती द्वारा। (कादम्बरीमें बाणभट्टने भी राजाको 'परिपीत धूमवर्तिः' लिखा है)। पर इस धूमवर्तीको 'सिगरेट' नहीं समझना चाहिये। इस वर्तीके बनानेकी परिपाटी चरक-संहितामें लिखी है। इसमें ३२ चीज़ें मिलाइ जाती हैं–तम्बाकू या किसी मादक द्रव्यका नाम नहीं है। बत्तीसों प्रायः सुगन्धित द्रव्य हैं। इनको मिलाकर अंगूठेके बराबर बत्ती बनाना। फिर सूख जानेपर एक ओरमें आग लगाकर दूसरी ओरसे मुखमें डालकर धूमपान करना। परन्तु जब मनुष्य दुर्बल हो वा थका हो तब धूमपान नहीं करना।

जाड़ेके दिनोंमें गरम और सूखा पदार्थ खाना हितकर है।

वसन्त समयमें दस्त तथा वमन कराना आवश्यक है। गुरु वा घृतमय भोजन वसन्तमें अपथ्य है। व्यायाम आवश्यक है।

ग्रीष्म ऋतुमें हलका भोजन–गेहूंके स्थानमें चावल खाना। व्यायाम नहीं करना।

वर्षा ऋतुमें भोजनके साथ मधु (शहद) मिलाकर खाना हितकर है। जिस दिन पानी अधिक बरसता हो उस दिन खटाई नमक चिकनाई अवश्य खाना।

शरद ऋतुमें–चावल तथा हलका मांस पथ्य है। इस ऋतुमें दस्त की दवा नहीं लेना। धूप और चांदनीमें रक्खा हुआ पानी पीना और चांदनीमें घूमना उपकारक होता है।

मूत्र, पुरीष, अधोवात, वमन, छींक, डकार, जम्हाइ, भूख, प्यास, आंसू, निद्रा, परिश्रमसे उत्पन्न श्वास-इनके वेग को कभी न रोकना। अनुचित साहस, मनोवेग, वचनवेग, काम क्रोध लोभ भय इत्यादिके वेगोंको अवश्य रोकना।

रोगों के रोकने के उपाय—

त्यागः प्रज्ञापराधानाम्, इन्द्रियोपशमः स्मृतिः।
देशकालात्मविज्ञानम्, सद्वृत्तस्यानुवर्तनम्॥
(चरक-अध्याय ७)

अर्थात्—बुद्धिको दृढ़ रखकर शास्त्र सिद्धान्तित मार्गसे विचलित न होना, इन्द्रियोंको शान्त रखना, पूर्व अनुभवोंका स्मरण रखना, देश काल अपने शरीरकी अवस्थाका पूरा ज्ञान तथा विचार-सत् आचारका प्रतिपालन।

स्नानके पहले भोजन नहीं करना। भोजनके पहले कपड़ा अवश्य बदलना, मुख अवश्य धोना, भोजनके पात्र धोए हुए साफ़ होने चाहिए। स्थान भी स्वच्छ धोया हुआ हो। भीड़में नहीं खाना। बासी अन्न नहीं खाना (चरक अध्याय ८)।

भोजन गरम नरम सार्द्र परिमित होना चाहिये। दो भोजनके बीचमें अधिक अन्तर होना चाहिये। भोजनमें जल्दी नहीं करना। अधिक भोजन करके अधिक जल पीनेसे नाना प्रकारके रोग होते हैं (चरक संहिता-निदान-अध्याय १)

पानी स्वच्छ शुद्ध हलका पीना चाहिये। तेज़ बहती हुई नदीका पानी हलका होता है। बँधा हुआ पानी भारी होता है। समुद्रका जल कभी नहीं पीना। जिस पानीमें सड़ी गली पत्तियां या कीड़े मकोड़े हों सो पानी नुक़सान करता है। (चरक संहिता अध्याय २७)। दुर्गन्धवाला पानी-जिस जलाशयमें थोड़ा ही पानी बचगया है वैसे जलाशयका पानी-कभी नहीं पीना (चरक निदानस्थान अध्याय २)।

पानी पीनेके प्रसंग नियम सुश्रुत संहिता (अध्याय ४५) में बहुत स्पष्ट वर्णित हैं। पीनेकेलिये सबसे अधिक हितकर बरसातका जल है। पर ज़मीनपर न गिरने पावे। ऊपर ही ऊपरसे बरतनमें एकट्ठा कर लेना चाहिये। इस जल का स्वाद अनिर्वचनीय होता है, थकावट सुस्ती गरमीको दूर करता है। परन्तु बरसातके जलमें भी दो भेद हैं-एकका नाम है 'गांग' दूसरेका 'सामुद्र'। गांग जल उपकारक है, सामुद्र जल हानिकारक। ये दोनों नाम निरे सांकेतिक हैं—'गंगानदीका जल' वा 'समुद्रका जल' से तात्पर्य नहीं है। किसी समयमें बरसता हुआ जल 'गांग' है वा 'सामुद्र' इसकी जांच यह बतायी गयी है कि एक छोटेसे चांदीके बरतनमें चावल भरकर बाहर बरसातमें रख दो-दो घड़ी बाद देखो यदि जलका रंग बदल जाय उसमें किसी प्रकारका गन्ध आ जाय तो समझना कि सामुद्र जल बरस रहा है। यदि जलका रंग नहीं बदले और किसी प्रकारका गन्ध भी न आवे तो समझना कि गांग जल बरस रहा है। वर्षा ऋतुमें बरसातका जल पथ्य है, शरद ऋतुमें सभी पानी अच्छा है, हेमन्तमें झील वा तड़ागका, बसन्त और ग्रीष्ममें कूप और झरनेका। परन्तु जिस पानीमें मरा हुआ जानवर कीड़े इत्यादि मलिन चीज़ वा सड़ी पत्तियां पड़ी हों, जिसमें लोग स्नान करें, जिसपर सूर्य चन्द्रमाके किरण न पड़ें, जो कमलके पत्तोंसे एक दम ढका हुआ वा उत्कट ठंढा हो, ऐसा पानी पीनेसे हानि होती है।

जब ऐसे पानीके अतिरिक्त शुद्ध पानी नहीं मिले तब या तो पानीको अच्छी तरह उबाल लेना अथवा देर तक धूपमें रखना अथवा लोहेका गोला गरमकर उसमें डालना—तब उसे पीनेके काममें लाना। पानी यदि मैला हुआ तो इन चीज़ोंके डाल देनेसे मैल नीचे बैठ जाता है—निर्मली, गोमेद रत्न, कमलकी जड़, सेंवार, मोती, मणि।

पानीको यदि ठंढा करना हो तो उसे हवामें रखना वा पानीसे भरे बरतनको बालूपर रखना। कूप तथा झीलके पानीको प्रातःकाल ही निकालना। परन्तु हो सके तो बहती नदियोंका ही पानी पीना। अन्न पचने में नदीके जलसे बड़ा उपकार होता है।

सुश्रुतसंहिता (अध्याय २०) में हवाके प्रसंगमें भी विचार पाया जाता है।

पूर्व दिशासे आई हुई हवा मीठी नमकीन, भारी होती है। शरीरमें जलन पैदा करती है, पित्तको बढ़ाती है, घावके सूखनेमें बाधा डालती है, कफप्रकृति मनुष्योंको हानिकारक होती है। पर वातप्रकृतिकको हितकर है।

दक्षिण दिशाको हवा मीठी है, ठंढी है, स्वादमें कषाय, हलकी, पथ्य, आंखमें उपकारक, प्रोत्साहक है।

पश्चिम दिशाकी हवा सूखी और कड़ी है, शरीरको रूखा करती है, बलहानि करती है, कफ और चरबीको सुखाती है, बड़ी हानिकारक है।

उत्तर दिशाकी हवा नरम मीठी कषाय ठंढी, उपकारक, प्रोत्साहक क्षयी पुरुषोंको बहुत उपकार पहुंचाती है।

सुश्रुत संहिताके अन्तमें स्वास्थ्यकेलिये मनुष्योंके संक्षिप्त कर्तव्य यों वर्णित हैं।

स्नान, साफ़ कपड़ा पहनना, छाता छड़ी लेकर चलना, धीरे धीरे स्वच्छ जगहमें घूमना, राजा देवता ब्राह्मण तथा अपने बड़ोंकी निन्दा कभी न करना, नीच मनुष्योंके संगका त्याग, पेड़ों या पहाड़ोंपर न चढ़ना, बदमाश घोड़े या हाथियों पर न चढ़ना, अज्ञात नदी वा झीलमें प्रवेश नहीं करना, जिस जगह सांसर्गिक बीमारी फैलती हो वहां कभी न जाना, मलमूत्रका वेग न रोकना, शहर वा गांवके भीतर मन्दिरोंमें वा जलाशयोंमें मलत्याग न करना, जनसंघमें यदि डकार छींक वा जंम्हाई आवे तो मुँह ढांककर करना, सामनेकी हवा और धूपको बचाना, सूर्य या नक्षत्रोंकी ओर न ताकना, सोनेके समय और अंगोंसे मस्तकको ऊंचा रखना, नियत समयपर ही भोजन करना, पदभ्रष्ट मनुष्योंके घर कभी न खाना, जिस भोज्य पदार्थमें बाल या मक्खी पड़ी हो ऐसा पदार्थ कभी न खाना, बिना हाथ पैर धोए भोजन न करना, मलमूत्रका वेग रहते भोजन न करना, रातको दही नहीं खाना, बिना घृत और चीनी मिलाये दही नहीं खाना। [पर और ग्रंथों में लिखा है कि बिना नमक पानी मिलाए दही खानेसे एक मासमें पचता है—'विना लवणतोयाभ्यान्दधि मासेन जीर्यति']।

इन सब नियमोंके देखनेसे स्पष्ट ज्ञान होता है कि हमारे पूर्वज कैसे अनुभवी थे और अनुभवोंसे कैसा काम लेते थे। इनमेंसे प्रायः कोइ भी नियम ऐसा नहीं है जिसका पालन कठिन हो। यदि ध्यान देकर हम इन नियमों का पालन करेंगे तो अवश्य स्वस्थ और सुखी रहेंगे इसमें सन्देह नहीं।

बाटरी

[लेखक शालग्राम भार्गव, एम. एस-सी और ब्रजराज, बी. एस-सी. एल-एल बी.]

देखिये! तार कौन नहीं भेजता। देहातके आदमीतक अब ख़बरें हज़ारों मील मिनटोंमें भेज देते हैं। देहली, कलकत्ता और कानपूर जैसे नगरोंमें रहनेवाले ट्रामपर चढ़े फिरते हैं। इन नगरोंमें बिना तेलके दीपक रातमें उजेला करते हैं। गरमियोंमें बिना पंखा-कुलीकी सहायताके पंखे चलते हुए देखकर बहुतोंको अचम्भा हुआ होगा। आटा पीसनेकी चक्कियां ऐसी चल गयी हैं जिनकेलिए न आदमी चाहिये न बैल न आग

न धुंआं, बटन दबाइये मनों बोझवाली चक्की एकदम चलपड़ती है और बातकी बातमें हज़ारों मन आटा पीस डालती है। कहिये ! यह कौन अद्भुत शक्ति है जो हम लोगोंकी सेवा इस प्रकार बिना बोले चाले, बिना खाये पिये, किया करती है।

यही नहीं, इसी शक्तिसे हमारे मनोरञ्जनके अनेक दूसरे काम होते रहते हैं। साधारण धातुकी वस्तुओंपर मुलम्मा हो जानेसे वस्तुएं कैसी सुन्दर हो जाती हैं ? यह मुलम्मा भी इसी शक्ति द्वारा होता है। यह तो हमारे देशकी बात हुई। पाताल देश तथा योरुपके देशोंमें यही शक्ति घरोंमें झाड़ू लगाती, खाना पकाती, पानी गरम करती और चेरीके समान आठों पहर हाथ बाँधे खड़ी रहती है। जो काम चाहिये इससे ले लीजिये। रातको जब मालिक घोर नींदमें निमग्न हो जाता है तो यह दासी घरका पहरा देती है।

यह कौन शक्ति है ? क्या कोई देवी मनुष्यपर कृपा करके हमारी सेवाकेलिए, नहीं हमारे आरामकेलिए, अपना घर छोड़ इस मृत्यु लोकमें आ बसी है। जो हो ! है यह देवी अवश्य, इसमें शक्ति अद्भुत है। भला किसे इस देवीका हाल जानने और इससे मित्रता करनेकी लालसा न होगी। अपने भक्तोंपर यह बड़ी दयालु है।

यह वही शक्ति है जिसकी चमक मनुष्यने नभमण्डलमें देखी जिसकी कड़क मनुष्यने इस पृथ्वीपर सुनी। इसकी सुन्दरताने कवियोंके मनको रिझाया और इसके भयंकर रूपने डरपोकोंको डराया। मनुष्यने न समझा कि यह क्या है पर वैज्ञानिकोंको इसके दर्शन हुए और आवाहनसे इसका अवतरण हुआ।

यह शक्ति बिजली है। इसके काम मनुष्य देखकर चकित रह जाया करता था।

दो हज़ार बरस हुए लोग देखते थे कि बहुतसे ऐसे पदार्थ हैं जिनमें रगड़नेसे एक प्रकारकी शक्ति ऐसी उत्पन्न हो जाती है जिससे यह पदार्थ छोटे छोटे घास फूसके टुकड़े खींचने लगते हैं। बहुत दिनोंतक यह एक प्रकारका तमाशा ही रहा। कुछ लोगोंने इस शक्तिको अधिक परिमाणमें उत्पन्न करने तथा एकत्र करनेका प्रयत्न किया। इसमें सफलता भी हुई और कई यंत्र बन गये जिनके द्वारा यह शक्ति उत्पन्न की जाने लगी। मनुष्यके देहमें छू जानेसे यह शक्ति एक प्रकारका धक्का मारती थी। जितनी अधिक शक्ति एकत्र होती थी उतना ही ज़ोरका धक्का लगा करता था। जिस बरतनमें यह शक्ति एकत्र रहती थी उसके पास हाथ लेजानेसे छोटी छोटी चिनगारियां निकलती थीं और ऊपर कहे हुए धक्के लगते थे। यदि बहुत सी शक्ति एकत्र रहती तो चिनगारियां भी बड़ी बड़ी निकलती थीं। नभमण्डलकी विद्युत्की चिनगारियोंकी सी ही यह चिनगारियां होती थीं अन्तर केवल इतना ही था कि वह बड़ी और यह बहुत छोटी होती थीं; पर रूप दोनोंका एक ही था। लोगोंने सोचा कि शायद आकाशकी विद्युत् और हमारी शक्ति दोनों एक ही हैं। इसका प्रमाण कैसे दिया जावे। वैज्ञानिकोंमें मतभेद था; कैसे निश्चय हो कि वस्तुतः क्या बात है।

फ्रैंक्लिन एक वैज्ञानिक हो गया है जिसने बदलीके दिन पतङ्ग उड़ाई। उसने आकाशकी बिजलीको नीचे उतार लिया। उसने प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि हमारी रगड़से बनायी हुई शक्ति भी बिजली ही है।

गैलवेनी नामक विद्वान्को यह जाननेकी इच्छा हुई कि मरे हुए शरीरपर विद्युत्का क्या प्रभाव होता है। जीते हुए पशुओं तथा मनुष्योंको विद्युत्से धक्के लगते हैं; क्या मरे हुए शरीरपर भी बिजलीका धक्का लगेगा ? क्या मुर्दा शरीर बिजलीकी शक्तिसे फड़क उठेगा ? उसने एक मरे मेंढककी खाल उतार डाली और जांघकी हड्डीके नीचे तारका एक सिरा छुआया और

इसी तारसे जुड़े हुए दूसरी धातुके तारका दूसरा सिरा रीढ़की हड्डीके नीचे रख दिया। उसने एक विचित्र दृश्य देखा-मेंढककी टांग फड़क उठी। अब उसने कई धातुके तारोंसे इसी प्रकार प्रयोग किये; उसने देखा कि यदि एक तांबे और एक जस्तेके दो तार जोड़ लिये जावें और फिर तारको लेकर यही प्रयोग किया जावे तो फड़कन बड़े ज़ोरकी होती है।
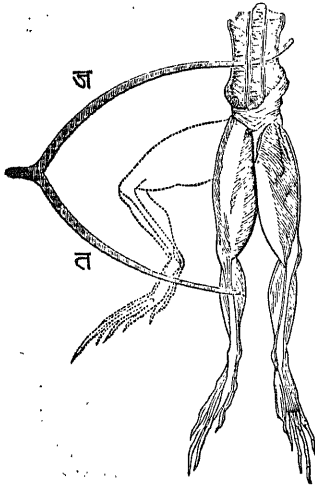
चित्र १

गैलवेनीने मेंढककी उस फुदकनको देखकर समझा कि मेढकके मृतक शरीरमें बिजली रहती है। पर कई वैज्ञानिकोंकी समझमें यह नहीं आया कि मेढकमें ही यह विशेषता क्यों हो? वोल्टा नामक वैज्ञानिकने गैलवेनीके उपर्युक्त प्रयोगसे ही एक बात और सोची। गैलवेनीने अपने एक प्रयोगमें जस्ता और तांबेका एक जुड़ा हुआ तार लगाया था-उस समयफड़कन बहुत ज़ोरकी हुई थी। वोल्टाने कहा कि बिजलीके उत्पन्न होनेका कारण यह भी हो सकता है कि दो भिन्न धातु जोड़े जायँ। यह बात इसे बड़े अनोखे ढंगसे सूझी। एक दिन वह हाथमें एक ताँबेका और एक जस्तेका टुकड़ा लिये हुए उछाल रहा था, उछालते उछालते उसने एक टुकड़ेको जीभके ऊपर रख लिया और दूसरेको जीभके नीचे। फिर उसने उन दोनोंको स्पर्श कराया तो उसे धक्का लगा। उसी मन्तव्यको सिद्ध करनेकेलिए वोल्टाने एक यंत्र रचा जिसको आजकल अंग्रेज़ लोग 'वोल्टाज़ पाइल' कहते हैं। यह यंत्र उसने इस प्रकार बनाया था। तांबेकी एक चकत्ती सबसे नीचे रखकर उसके ऊपर गंधकके तेज़ाबमें भीगा हुआ एक कपड़ेका टुकड़ा रक्खा उसपर जस्तेकी चकत्ती रक्खी, इसपर तांबेकी दूसरी चकत्ती बिठलायी; इसपर तेज़ाबका भीगा कपड़ा उसपर फिर जस्तेकी चकत्ती इत्यादि। इसी तरह उसने ३०-४० उपरोक्त क्रमानुसार तांबे और जस्तेकी चकत्तियां बिठला दीं। वोल्टाज़ पाइल बन गया। सबसे नीचेवाली तांबे और सबसे ऊपरवाली जस्तेकी चकत्तीको एक साथ छूनेसे वही धक्का लगता था जो यंत्र द्वारा एकत्र की हुई बिजलीसे लगा करता था।

इस छोटेसे प्रयोगसे ही हमारे आजकलके विद्युत्के अद्भुत युगका प्रादुर्भाव समझिये। 'वोल्टाज़ पाइल' तो एक प्रकारका तमाशा ही रहा पर इस नियमके अनुसार बिजलीको उत्पन्न करने और उससे कुछ छोटे मोटे काम लेनेकेलिए लोगोंने जिस बाटरीको बनाया और उसमें धीरे धीरे जो उन्नति हुई वह हम इस लेखमें दिखलावेंगे।

वोल्टाका पाइल – चित्र नं० २
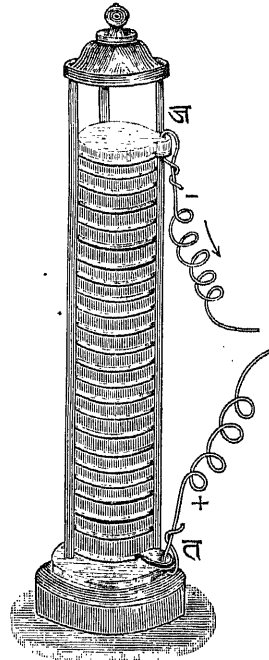
पहले पहल जो बाटरी बनायी गयी उसका चित्र यहां दिया जाता है। एक चीनी या कांचके बरतनमें गंधकका तेज़ाब मिला हुआ पानी [१० भाग पानीमें १ भाग तेज़ाब] रख लीजिये इसमें एक तांबे और एक ख़ालिस

*जस्तेकी तख़्ती डुबो दीजिये। इन तख़्तियोंको तारसे जोड़ते ही एक गैस के बुलबुले तांबेके आसपाससे निकलने लगते हैं। जबतक दोनों तख़्तियां तारसे जोड़ी नहीं जातीं अथवा किसी और प्रकार मेल नहीं खातीं गैसके बुलबुले नहीं निकलते। चित्र नं० ३ में त तांबेकी और ज जस्तेकी तख़्ती है। साधारण बाटरी बन गयी, अब इससे काम लिया जा सकता है।

चित्र ३

इस बाटरीसे काम लेनेसे यह देखनेमें आया है कि थोड़ी ही देरमें यह बाटरी काम देना बंद कर देती है। कारण इसका यह प्रतीत होता है कि गैसके बुलबुले तांबेकी तख़्तीपर जम जाते हैं अथवा यों कहिये कि ताँबेकी तख़्तीपर गैसका ख़ोल चढ़ जाता है और यह तख़्ती बेकाम हो जाती है। समय समयपर तांबेकी तख़्तीको निकालकर यदि उसको रगड़ दिया जावे जिससे गैसका यह ख़ोल हट जावे तो फिर यह तख़्ती काम देती है। पर बार बार ऐसा कहां तक किया जा सकता है। इसलिए ऐसी तरकीब लोगोंने सोची जिससे यह गैस तख़्तीपर जमने ही न पावे। एक तरकीब यह है—बाटरी निम्न लिखित ढंगसे बनायी जाती है। कांचकी जगह तांबेका बरतन लिया जाता है और इस बरतनमें नीले
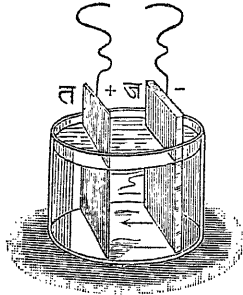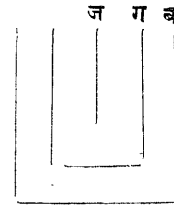
चित्र न० ४

थोथेका (नीला थोथा या तूतिया पन्सारियोंकी दूकानपर बहुत मिलता है) घोल रक्खा जाता है। चित्र नं०४ में ब तांबेका बरतन है। इस बरतनमें नीलेथोथेका घोल भरा है और इस घोलमें नीले थोथेके डले भी डाल दिये जाते हैं। इसके भीतर ग मिट्टीका गिलास है। यह गिलास बिलकुल ऐसी मिट्टीका इसी ढंगसे बनाया जाता है जैसे सुराही। इस गिलासमें यदि पानी भर जावे तो यह भी वैसे ही रसता है जैसे सुराही। इस गिलासमें हलका गंधकका तेज़ाब रहता है। [९ भाग पानी एक भाग गंधकका तेज़ाब]। इस तेज़ावमें पारा चढ़ी हुई जस्तेकी छड़ ज पड़ी रहती है। बैटरी बन गयी। काम लेनेकेलिए एक तार ज से और एक ब से जोड़ लिया जाता है।

यह बाटरी पहलेवालीसे अधिक देरतक काम करती रहती है, पर इसमें भी एक कमी है-गिलासके बाहरका नीला थोथा रस रसकर जब गिलासके भीतर पहुंच जाता है तो बिजलीका प्रवाह धीमा पड़ जाता है, इस बाटरीकी सब चीज़ें निकालकर फिरसे तेज़ाब डालना पड़ता है। यह बाटरी कई प्रकारसे बनायी जा सकती है। गंधकके तेज़ाबकी जगह नमकका घोल डाला जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि नीले थोथेका घोल नमकके घोलसे घनत्वमें अधिक हो तो काँचके

* पाठक यदि साधारण जस्तेका प्रयोग करेंगे तो यह मालूम होगा कि वह गंधकके तेज़ाबमें डालते ही गलने लगता है और उसके आस पाससे उज्जन गेसके बुलबुले निकलने लगते हैं। परन्तु यदि थोड़ासा पारा और गंधकका तेज़ाब इस जस्तेपर रगड़ दिया जाय, तो पारा जस्तेपर चढ़ जायगा और इस पारे चढ़े हुए जस्तेके गुण शुद्ध जस्तेके जैसे होंगे अर्थात् यदि इसे तेज़ाबमें डालें तो न गलेगा।

बरतनमें तांबेका टुकडा डालकर नीले थोथेका घोल भरा जाय और ऊपरसे धीरे धीरे नमकका घोल इस प्रकार डाला जाय कि नमकका घोल ऊपर रहे। इसमें अब मिट्टीके गिलासकी आवश्यकता नहीं रहती। नमकके घोलमें जस्तेकी छड़ डाल दी जाय ते बाटरी बन गयी पर उस जस्तेका कोई भाग नीले थोथेके घोलमें न डूबना चाहिये। कभी कभी नीलेथोथे और नमकके पानीके बीचमें लकड़ीके बुरादेकी तह डाली जाती है। उपरोक्त बाटरियां मुलम्मा करनेवालोंके पास देखनेमें बहुधा आयी होंगी, क्योंकि यह मुलम्मेकेलिए अच्छा काम देती हैं।

हम दो लेखकोंको प्रायः एक दूसरेसे प्रति दिन काम पड़ता है और हम जब एक दूसरेसे मिलना चाहते हैं तो द्वारपर मिनटों पुकारना पड़ता है या किवाड़ खटकाने पड़ते हैं पर यदि हम लोग भी अपने अपने घरोंपर विद्युत् घंटी लगालें जैसे कुछ मित्रोंने लगायी है तो यह कठिनाई दूर हो जाय। विज्ञानके पाठक विद्युत् घण्टेका विस्तीर्ण वर्णन पढ़ चुके होंगे। हम इस लेखके शेष भागमें उस बाटरीका वर्णन करेंगे जो विद्युत् घंटेके साथ अच्छा काम देती है। बाटरीका चित्र यहां दिया जाता है (चित्र नं० ५)। इसमें ब कांचका बरतन है जिसमें नौसादरका घोल डाला जाता है। घोल बनाते समय पानीमें इतना नौसादर डाला जाता है जितना अधिकसे अधिक घुल सके। घोलमें ज जस्तेकी छड़ बरतनके एक कोनेमें रक्खी है। ग मिट्टीका गिलास (जैसा ऊपर एक स्थानपर बतलाया गया है) जिसमें क कर्बनकी छड़ और मैंगनीज़ (manganese dioxide = काला मांगल, मग्न) भरकर उस गिलासका मुंह बिलकुल बंद कर दिया जाता है केवल एक छेद हवा आनेजानेकेलिए छोड़ दिया जाता है। पहलेकी नाईं एक तार कर्बनकी छड़से और एक जस्तेकी छड़से जोड़ दिया जाता है। बाज़ारमें यह बाटरी बनी बनायी बिकती है। इसको लेकलांशी सेल कहते हैं। इसको पहले लेकलांशी ने बनाया था।
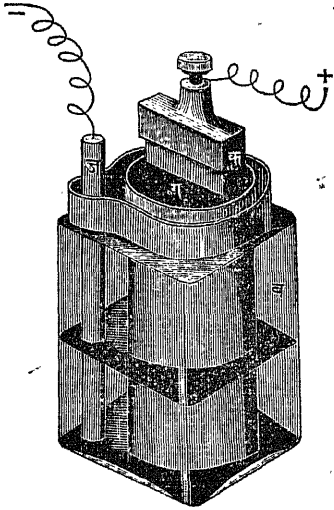
चित्र नं० ५

बाज़ारमें यह सेल अनेक रूपोंमें बिकती है। जेबी लम्प या लम्पदार बटन जो बिकते हैं उनमें भी जलानेको इसी बाटरीका एक रूप रहता है। इस रूपका वर्णन भी हम संक्षेपतः यहां देते हैं। जस्तेका एक चोंगला (बिना पेंदेका गिलास) बना लिया जाता है। इसको लकड़ी के बकसमें रखकर चोंगले और बकसके बीचमें लकड़ीका बुरादा भर देते हैं। पेरिस प्लास्टर, नौसादर और आटा मिलाकर पानीमें लेई सी बना लेते हैं और जस्तेके चोंगलेमें भर देते हैं। मैंगनीज़, (manganese dioxide = काला मांगल) ग्रेफाइट और नौसादरकी लेईको कर्बनकी छड़के चारों ओर रखकर ऊपरसे कपड़ा लपेट देते हैं और डोरेसे बांध देते हैं। इस लपेटी हुई कर्बनकी छड़को जस्तेके चोंगलेके भीतर लेईमें डाल देते हैं। एक तार कर्बनसे और दूसरा जस्तेसे जोड़ा जाता है। चित्रमें ब लकड़ीका बकस है, बु लकड़ीका बुरादा है, ज जस्ताका चोंगला है, ल लेई है, क कपड़ेमें

लेईसे लिपटी हुइ कर्बनकी छड़ है। चोंगले-का मुंह प पेरिस प्लास्टरकी तहसे बंद कर दिया जाता है। बकसके ऊपर ढ ढकना लगा दिया है जिसमेंसे कर्बनकी छड़के ऊपरका पेंच और चोंगलेसे लगी हुई जस्तेकी छड़ बाहर निकली रहती हैं, इनमें तार जोड़े जातेहैं। बाटरीके भीतर हवा आने जानेकेलिए न नली लगी रहती है। इस बाटरीमें पानी नहीं रहता इस-लिए जेबमें रखकर इधर उधर फिर सकते हैं।

इस लेखको समाप्त करनेसे पहले हम एक प्रकारकी विचित्र और सुन्दर तथा सरल बाटरी बनानेकी विधि लिखते हैं। उसको पाठक बिना बहुत कठिनाई के बना सकते हैं। यह बाटरी सब बाटरियोंसे अच्छा काम देगी। जबतक इसमेंकी चीज़ें समाप्त न हो जायँगी यह बाटरी बराबर काम देती रहेगी। बाटरी वैसी ही होती है जैसी चित्र नं० ९में दिखायी गयी है। कांच या चीनीके बरतनमें कास्टिक पोटाश-का गहरा घोल (तोलके हिसाबसे १ भाग कास्टिक पोटाश और ३ भाग पानी) रखकर उसमें एक तख़्ती जस्तेकी और एक क्यूपरिक आक्साइड (cupric oxide = ताम्रिक अम्ल-जिद) की डाल दी जाती है। दोनों तख़्तियोंसे तार जोड़नेपर बाटरी काम देने लगती है। बाज़ारमें कास्टिकके नामसे कास्टिक सोडा भी (caustic soda = दाहक सोडा) विकता है, यह न लेना चाहिये। क्यूप्रिक आक्साइडकी* तख़्ती याद न मिल सके तो एक मिट्टीके गिलासमें (जैसा ऊपर एक स्थानपर लिखा गया है) क्यूप-रिक आक्साइड भरकर कास्टिक पोटाशमें रख देना चाहिये। एक तार इस गिलासके भीतर आक्साइडमें और दूसरा जस्तेमें जोड़ा जाता है।

बाटरीमें जोड़नेकेलिए जो तार हम ऊपर लिख आये हैं वह तांबेका होता है जिस-पर सूत या रेशमका तागा लिपटा रहता है। बाज़ारमें यह तार मिल सकता है।

हमने इस लेखमें केवल ऐसी बाटरियों-का वर्णन किया है जो साधारणतः लोग घरोंमें बनाते हैं और घरोंमें रखते हैं और जो बाज़ारमें मिलती हैं। बड़े बड़े कामोंमें जो बाटरियां आती हैं इनसे भिन्न हैं। नगरोंमें प्रकाश इत्यादिकेलिए और ही प्रकार की बाटरियां होती हैं। इनका वर्णन विज्ञानके किसी अगले अंकमें अथवा विज्ञान परिषद् द्वारा प्रकाशित किसी ग्रंथमें पाठकोंके देखनेमें आवेगा।

* ताम्रिक अम्लजिद्, तांबे और अम्लजनके मेलसे बनता है। इसका अंग्रेज़ी नाम भी यहां इसलिए दिया गया है जिसमें पाठकोंको मोल लेनेमें सुगमता हो। "कास्टिक" अस्पतालवाले silver nitrate को भी कहते हैं।

भोजन विचार

[ले० डाक्टर एस. पी. राय, एम्. बी, एम. आर. सी. एस.]

(भोजन की परिभाषा)

प्रत्येक द्रव्य जो हमारे शरीरके भीतर जाती है और जो प्रकट या गौण रूपसे शरीर-मन्दिरकी बाढ़ या मरम्मतमें, या स्फूर्ति और शक्तिकी उत्पत्तिमें, या किसी प्रकारकी अङ्गनैपुण्य अथवा इन्द्रियगुण वृद्धि, या ऐन्द्रिक चंचलतामें काम आती है भोजनके नामसे पुकारी जाती है। इस परिभाषामें केवल साधारण खाद्य और पेय ही नहीं शामिल हैं किन्तु वायु और जल भी इसके अन्तर्गत आ-जाता है। चूंकि वायु और उसके घटकोंको हम फेफड़ेद्वारा बिना इच्छाके ही खींचा करते हैं, इसलिए साधारण नियमानुसार उसकी गणना भोजनमें नहीं होती। भोजनसे केवल उन वस्तुओंका अभिप्राय लिया जाता

है जो मुखके द्वारा पाचन यंत्रमें पहुंचाये जाते हैं।

भोजनके भिन्न भिन्न पदार्थोंको संसस्थ-मूल उपादान कहनेमें सुबिधा होती है। यद्यपि ये भोज्य पदार्थ कर्बन, उज्जन, ओषजन और नत्रजनके गूढ़ और कठिन संयोगोंसे बने हैं तथापि शरीर यंत्रके महा निगूढ़, सामान्य ज्ञानातीत और दुर्ज्ञेय संयुक्त पदार्थोंकी रचना-के सामने यह बिल्कुल प्रारम्भिक पदार्थ मालूम देते हैं। अतः शरीरके प्रारम्भिक और सरल उपादान होनेके कारण यह संसस्थ मूल उपादान (Proximate Principles) कहलाते हैं।

इन प्रारम्भिक या संसस्थ उपादानोंके दो भेद होते हैं—

१. आंगा-रिक (organic)	नत्रजनीय पदार्थ; जैसे प्रोटीड, अल्ब्यूमिन्नोसेस इ०	
	अनत्र-जनीयपदार्थ	फैट या हाइड्राकार्बन, सांड, शर्करा, कार्बो-हाइड्रेट और फल शाकादिमें निकलने-वाले

२. अनांगारिक (Inorganic)—नमक और जल।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं यह सब उपादान पशुयोनि या शाकयोनिसे लिये जा सकते हैं।

मनुष्यके भोजन पदार्थोंके लिए उपरोक्त विभागोंमें एक विभाग भोज्य पदार्थोंके सह-कारियोंका (food accessories) और जोड़ देना चाहिए। इस विभागमें, चाय, काफ़ी, शराब, मिरच, मसाला इत्यादि आ जाते हैं।

भोजनके भिन्न भिन्न उपादान हिलने डोलने-का कितना चालक बल (mechanical power) उत्पन्न करेंगे इसका हिसाब उनके उष्णतोत्पादक शक्तिसे लगाया जा सकता है। वे उपादान जो धनद प्रक्रियाके अनन्तर (ओषजनसे मिलनेके बाद) सबसे अधिक ताप उत्पन्न करते हैं, अतः कल्पनामें, सबसे अधिक चालक बल उत्पन्न करने की योग्यता भी रखते हैं।

शक्तिका कभी ह्रास नहीं होता। एक पत्थर पहाड़की चोटीपरसे गिरकर पृथिवीको गरम कर देता है। यह गरमी कहां से आयी? ताप शक्तिका दूसरा रूप है। अतः गरमी पैदा करने-में शक्तिका रूपान्तर हुआ। यह शक्ति गिरते हुए पत्थरसे मिली है। पर शक्तिका नाश तो कभी नहीं होता अतः पत्थर जब पहाड़की चोटीपर रक्खा था उसमें यह शक्ति अवश्य रही होगी। गिरनेपर वह केवल प्रकट हो गयी है। इस प्रकट शक्तिको हम गति संभूत शक्ति (kinetic energy) कहते हैं, और किसी एक स्थानपर रक्खे हुए पदार्थकी अप्रकट शक्तिको स्थानापन्न शक्ति (potential energy) कहते हैं। रासायनिक संयोग होनेकेपूर्व पदार्थके परमाणुओंमें अधिकांश स्थानापन्न शक्ति रहती है, संयोगके अनंतर यही शक्ति गति संभूत-शक्तिके रूपमें आकर ताप शक्ति, प्रकाश शक्ति इत्यादिमें परिवर्तित हो जाती है। जिन भोज्य पदार्थोंके ओषजनसे मिलने-के अनन्तर अधिक ताप उत्पन्न होता है उनमें स्थानापन्न शक्ति भी अवश्य ही अधिक रहती है।

किसी पदार्थके एक ग्रामको १ सेन्टीमीटर ऊंचा उठानेमें जितनी शक्तिका व्यय होता है वह १ ग्राम सेन्टीमीटर शक्ति कहलाती है। १००० ग्राम या एक किलोग्रामको १०० सेन्टी-मिटर या १ मीटर उठानेमें जितनी शक्तिका व्यय होता है वह १ किलोग्राम-मीटर शक्ति कही जायगी। फ्रांसमें तौलकी इकाई एक ग्राम और लम्बाई या फ़ासलेकी इकाई १ सेंटीमीटर है। अतः साधारण रीतिसे वहांकी शक्तिकी इकाई

भी १ ग्राम सेंटीमीटर (erg) है। १ किलोग्राम-मीटर १०००×१०० ग्राम सेंटीमीटरके बराबर है। ब्रिटेनमें तौलकी इकाई पौंड और गणनामें फ़ासलेकी इकाई .फ़ुट मानी जाती है। इसलिए वहांकी शक्तिकी इकाई १ .फ़ुट-पाउंड है । १ टनमें २२४० पाउंड होते हैं। इस तरह १ टन-.फ़ुट शक्ति २२४० फ़ुट-पाउंड शक्तिके बराबर है।

१ पाउंड जलका तापक्रम एक डिग्री शतांश बढ़ानेमें (४° श० से ५° श० तक ले जानेमें कहना अधिक उत्तम होगा) जितने तापका व्यय होता है वह ब्रिटेनके तापकी इकाई है। इसी प्रकार १ ग्राम जलके तापक्रमको ४ डिग्री शतांशसे ५ डिग्री शतांशतक पहुंचानेमें जितना ताप लगेगा वह .फ्रांसकी इकाई "कलारी" कहलाती है। भौतिक-शास्त्र-वेत्ताओंने यह बात प्रयोगोंद्वारा सिद्ध कर दी है कि १४०० .फ़ुट-पाउंड शक्ति ब्रिटेनके तापकी इकाईके बराबर है । तथा ४.२७×१०००० ग्राम सेंटीमीटर शक्ति एक कलारी तापके बराबर है।

४.२६×१०००० ग्राम सें० शक्ति $\frac{४\cdot२७\times १००००}{१०००\times १००}$

या .४२७ किलोग्राम-मीटर शक्तिके बराबर है। १ पाउंड जलका तापक्रम एक डिग्री सेंटीग्रेड या शतांश बढ़ानेकेलिए १४०० .फ़ुट पाउंड शक्तिकी आवश्यकता पड़ती है । यदि जल का तापक्रम १ डिग्री फ़ारनहाइट बढ़ाया जाय तो १४०० $\times \frac{५}{९}$ या ७७७.५ .फ़ुट पाउंड शक्तिकी आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि १° शतांश $\frac{५°}{९}$ फ़ारनहाइटके बराबर है। एक टन-.फ़ुट शक्ति $\frac{२२४०}{७७७.५}$ या २.८८ पाउंड-डिग्री फ़ारनहाइट-ताप (तापकी इकाई फ़ारनहाइट तापक्रम और पाउंड-की तौलमें) पैदा करेगी।

जब भोजनके पदार्थ ओषजनसे मिलकर जलने लगते हैं तो पदार्थ जितने ही भस्म होते जाते हैं उनकी ओषजनसे मिलनेकी शक्ति कम होती जाती है। अंतमें जब वे ओषजनसे बिलकुल नहीं मिल सकते तब वह रासायनिक परिभाषामें पूरी तरहसे भस्म हो गये समझे जाते हैं। पदार्थोंके इस तरह जलनेपर गरमी निकलती है। रासायनिकोंने भोजनके पदार्थोंको जलाकर (शरीरके बाहर जलाकर) उनसे निकली हुई तापकी मात्रा प्रयोग और गणित-द्वारा मालूम कर ली है। इसीसे उन्होंने प्रत्येक पदार्थकी शक्तिका भी हिसाब लगा लिया है।

इस प्रकारसे अनुमान करनेपर पता लगा है कि केवल भोजनके प्रत्येक संसक्त उपादानों-की स्थानापन्न शक्ति ही एक दूसरेसे भिन्न नहीं है वरंच प्रत्येक उपादानके सजातीय भिन्न भिन्न पदार्थोंमें स्थानापन्न शक्तिका भिन्न भिन्न परिमाण है।

आगे दियेहुए चक्रसे इस बातका पता लग जायगा।

नीचेके अंक रसायनशालामें प्रत्येक भोजन पदार्थको पूरी तरहसे जलाकर निकाले गये हैं। शरीरके भीतर केवल कार्बोहाइड्रेट और फ़ैट-का ही दहन सम्यक् प्रकारसे होता है। प्रोटीड-का परिवर्तन यूरिया तक ही होकर रह जाता है, इस रूपमें आते ही वह मूत्रद्वारा शरीरके बाहर निकल जाता है। अतः इस बातको जाननेकेलिए कि प्रोटीड शरीरके भीतर कितनी गरमी उतपन्न करेगा हमें यह जानना आवश्यक है, कि उसका कितना भाग यूरियाके रूपमें निकल गया, और यदि यूरियाका दहन पूरी तरहसे हो जाता तो कितनी गर्मी पैदा होती। प्रयोगशालामें जो संख्या हमें मिली है वह प्रोटीडकी सम्यक् दहन करनेसे प्राप्त हुई है। अतः यदि हम उस संख्यामेंसे उतने यूरियाके जलनेसे पैदा होनेवाली गरमीकी संख्या निकाल दें, जितनी प्रोटीडकी दी हुई मात्रासे बनी है;

पदार्थ	एक आउंससे मिलती है		एक ग्रामसे मिलती है	
	पाउंड डिग्री फा० गर्मी	टन .फुट शक्ति	कलारी (गर्मी)	किलो ग्रा० मीटर शक्ति
मद्यसार (alcohol) (द्रव नापनेका आउंस)	७८१	२७१	६९८०	२९६६
जईका आटा	४१७	१४४	३७०३	१५७४
रोटी (गेहूं की)	४९०	१६९	४३५१	१८४९
आलू	४७५	१६४	४२३४	१७९९
चांवल	५४०	१८६	४८०६	२०४२
दूध (ताज़ा)	६४४	२२२	५७३३	२४३६
गोश्त (lean ?)	५७२	१९७	५०८३	२१७०
मछली	५५३	१९६	४९१५	२० ९
मक्खन	८१५	२८१	७२६४	३०७७
मटर	५५१	१९०	४८८९	२०७३

तो हमें खाए हुए प्रोटीडसे शरीरके भीतर पैदा होनेवाली गर्मीका पता लग जायगा। प्रयोगोंसे यह पता लगा है कि जितने प्रोटीडका प्रयोग होता है उसका एक तिहाई अंश यूरिया बन जाता है और एक औंस यूरियासे ८५.४ .फुट-टन शक्ति पैदा होती है। अतः एक आउंस सुखाये हुए गोश्तसे (प्रोटीडसे) जिससे सब चरबी निकाल ली गयी है $१९७ - \frac{१}{३} \times ८५.४$ या १९७–२८.४६ अर्थात् १६८.५ .फुट टन स्थानापन्न शक्ति मिल सकती है।

उपर्युक्त विचारोंसे यह बात स्पष्ट है कि शरीरके बाहर भोजनको जलानेसे जो स्थानापन्न शक्ति मिल सकती है और शरीरके भीतर वास्तवमें उस शक्तिका कितना अंश काममें आता है इसकी ठीक ठीक तुलना करना असाध्य है। इसलिए हमें भोज्य पदार्थोंकी पोषक शक्तिका तुलनात्मक विचार करते समय बहुत सावधान रहना चाहिए। ऊपरके समान दिये हुए चक्रोंसे ही हम इसका ठीक निर्णय नहीं कर सकते। हमें इन पदार्थोंकी भिन्न भिन्न सुपाच्यता, उनपर रांधने और पकाये जानेका प्रभाव तथा उनकी खायी गयी मात्राका विचार इस संबंधमें करना नितांत आवश्यक है।

शरीरसे और शरीरके भीतर कितनी गरमी पैदा होती है इसका ठीक ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। एक जवान आदमी एक दिनमें जितना मामूली परिश्रम करता है उससे पंचगुनी गरमीका व्यय होता है।

शरीरके भीतर भोजनके ओषजनसे मिलनेपर जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उस शक्तिका केवल सातवां भाग शरीरके बाहरी काम करनेमें व्यय हो सकता है, बाक़ी शक्ति शरीरके भीतर होनेवाले कार्य्योंमें व्यय हो जाती है। शरीरके अवयवोंके अङ्गाङ्गी धर्म्म पालन करनेके अनंतर एक दिनमें ३०० फुट-टन काम करना बहुत काफ़ी समझा जाता है। इतना काम करनेकेलिए १५०० फुट टन शक्तिकी आवश्यकता होती है। शरीरके भीतर होनेवाले कामकेलिए एक दिनमें लगभग २८०० .फुट टन शक्ति ख़र्च होती है। अतः एक दिनमें अपने

शरीर को पालने और साधारण काम करनेके-लिए हमें ४३०० फुट-टन शक्ति चाहिये।

मनुष्यके भिन्न भिन्न कामोंका निम्न लिखित अनुमान किया गया है:—

हलका परिश्रम	१५०	से	लेकर	२००	फुट-टन	प्रति	दिवस
साधारण परिश्रम	३००	से	"	३५०	"	"	"
कठिन परिश्रम	४५०	"	"	५००	"	"	"
असह्य व्यवसायिक परिश्रम	५००	"	"	६००	"	"	"

अबतक हमने प्रत्येक भोज्य पदार्थकी भिन्न प्रकृति और भिन्न परिपालक शक्तिपर विचार किया है। अब संक्षेपमें इन प्रश्नों पर विचार करना उचित है कि क्या केवल एक ही भोज्य पदार्थ जीवन शक्तिको (Vitality) स्थिर रख सकता है? अनुभव और प्रयोगोंसे हमें क्या पता लगा है? किन किन भोज्य पदार्थोंकी कितनी कितनी मात्रा खाना मनुष्यकेलिए सबसे अधिक हितकर है?

इस बातके अनेक प्रमाण मौजूद हैं कि एक ही प्रकारका भोजन बहुत काल तक यथोचित जीवनरक्षा नहीं कर सकता। हमें सब प्रकारके मिले हुए भोजन खाने चाहिएँ। किन्तु जो जातियां बहुत कालसे फलाहार ही करती चली आयी हैं उनके शरीरका स्वभाव ही इस प्रकारके भोजनसे पलनेका पड़ गया है। अतः उनको मिश्र भोजन (शाक और मांस दोनों) करनेका उपदेश बहुत काल से चली आयी हुई प्रथाको उलट नहीं सकता। इस विषयके ऐतिहासिक विचारोंका वर्णन पहले हो चुका है। अतः उनका दुहराना आवश्यक नहीं।

बहुतसे प्रयोगोंद्वारा यह सिद्ध हुआ कि प्रतिदिन मनुष्य ३०७ ग्रेन नत्रजन और ४७०० ग्रेन कर्बन शरीरके बाहर निकाल देता है। यदि यह अपना स्वास्थ्य ठीक रखना चाहता है तो नत्रजन और कर्बनका यह ह्रास इन तत्वोंको उसी प्रमाणमें भोजन द्वारा शरीरमें पहुँचाकर पूरा करना चाहिए।

अब यदि यह मनुष्य केवल कार्बोहाइड्रेट-पर बसर करता है तो उसकी क्या दशा होगी इसके उदाहरणकेलिए रोटी ले लीजिये। एक आउंस रोटीमें ११६ ग्रेन कर्बन और ५.५ ग्रेन नत्रजनके होते हैं। उसे ३०७ ग्रेन नत्रजनकी कमी पूरी करनेकेलिए ३.१ पाउंड रोटी खानी होगी पर ४७०० ग्रेन कर्बनकी कमी वह २.५ पाउंड ही रोटी खाकर पूरी कर लेगा। अब मान लो कि वह मांस खाकर (प्रोटीड) ही जीना चाहता है। एक आउंस मांसमें ६० ग्रेन कर्बन और १०.३ ग्रेन नत्रजनके होते हैं। ४७०० ग्रेन कर्बन की कमी पूरा करनेकेलिए उसे ४.७ पाउंड मांस खाना होगा पर ३०७ ग्रेन नत्रजन-की कमी वह केवल १.३ पाउंड खाकर पूरी कर सकता है! इस तरह कार्बनकी नियत मात्रा पानेकेलिए उसे शरीरको जितने नत्रजनकी आवश्यता है उससे चौगुनी खानी पड़ेगी।

भोजन विचारके मुख्य नियम इस प्रकार कहे जा सकते हैं:—

(१) एक ही प्रकारकी पोषक द्रव्य चाहें वह नत्रजनीय हो चाहे अनत्रजनीय जीवन की रक्षा बहुत थोड़े कालतक कर सकती है।

(२) जीवनकी रक्षा एक प्रकारके नत्रजनीय और एक प्रकारके अ-नत्रजनीय पदार्थ-को खाकर—जैसे मांस रोटी, या रोटी दाल, बहुत दिनतक हो सकती है, पर उसे स्थिर रखनेकेलिए कुछ विशेष नमकोंकी (रासायनिक परिभाषा के नमक) आवश्यकता पड़ेगी। प्रोटीड और फ़ैट—जैसे दाल और घी; तथा प्रोटीड और स्टार्च—जैसे दाल और भात, जीवरक्षा कर सकते हैं।

(३) सबसे उत्तम भोजनकेलिए नत्रजनीय

द्रव्योंके अतिरिक्त फ़ैट और कार्बोहाइड्रेट होने चाहिएँ जिनमें बहुत करके स्टार्च और शर्करा-का भी मिला रहना आवश्यक है । इसके अतिरिक्त कई प्रकारके नत्रजनीय पदार्थोंका होना अच्छा है ।

इन विचारोंसे मालूम होता है कि भारत-वर्षमें हिन्दुओंका साधारण भोजन, जिसमें कई प्रकारकी दाल, चांवल, गेहूंके आटेकी रोटी, घी और कुछ दूध और शकर तथा तरकारी भाजी मिली रहती है, भिन्न भिन्न भोज्य पदार्थोंका बहुत ही उपयुक्त संमिश्रण है जो साधारण अवस्थामें एक साधारण मनुष्यके स्वास्थ्य और स्फूर्ति को भली भांति स्थिर रख सकता है ।

अनुभवसे हमें मालूम है कि हमारे भोजन-की आवश्यकताएं देश काल और अन्य प्राकृतिक तथा शारीरिक अवस्थाओंके बदलनेसे बदलती रहती हैं । इसके अतिरिक्त हमारे शरीर का व्यय भी एक समान नहीं रहता । हमें अपने भोजन सामग्रीको इस प्रकारसे खाना चाहिए जिससे हमारा शारीरिक व्यय थोड़े ही भोजनसे पर बहुत अच्छी तरहसे पूरा हो जाय । मनुष्य शरीरकी मशीनसे तुलना की गयी है । पर वह मशीनसे इस बातमें भिन्न है कि मनुष्य-शरीर चाहे वह कुछ काम करे या न करे बराबर भोजन लेता रहता है, मशीन काम करनेपर ही खाती है ।

इस कल्पनापर कि साधारण मनुष्य स्वस्थ रहनेकेलिए प्रतिदिन ३०७ ग्रेन नत्रजन और ४००० ग्रेन कार्बन चाहता है कुछ विशेष प्रकारके भोजन बनाये गये हैं । नीचेके चक्रमें एक आउंस सुखाएहुए भोजनोंमें कर्बन और नत्रजनकी मात्राएं दी गयी हैं:—

एक आउंस सुखाया हुआ भोजन		नत्रजन	कर्बन	उज्जन	गंधक
प्रोटीड		७० ग्रेन	२१२ ग्रेन	८ ग्रेन	६ ग्रेन
फ़ैट		—	३३६	४८	—
कार्बोहाइड्रेट	मांड	—	१६४	—	—
	गन्नेकी शकर	—	१८५	—	—

आगे दियेहुए चक्रमें एक १५० पाउंडके बालिग़ आदमीका आदर्श भोजन सुखाये हुए भोज्य पदार्थोंकी मात्रामें शारीरिक श्रमके हिसाबसे दिया गया है (देखो पृष्ठ २५६) ।

उस चक्रमें दियेहुए परिमाणोंका मान काल्पनिक है । इसलिए वे क़रीब क़रीब ठीक हैं । यह बात संदेहजनक है कि कठिन परिश्रम करने-में प्रोटीडकी मात्रा इतनी अधिक बढ़ जाय । इसके विपरीत उसी अवस्थामें संभवतः चक्र-में दी हुई मात्रासे अधिक कर्बनकी मात्राकी आवश्यकता पड़ती है ।

ऊपरके लेखोंमें प्रत्येक उपादान पानीसे रहित माना गया है । वास्तवमें ये पदार्थ बिल्कुल सूखी हुई दशामें नहीं मिलते । ठोस भोज्य पदार्थ लगभग अपनी ही तौलके बराबर पानीसे मिले हुए होते हैं । साधारण ठोस भोजनके ४० आउंस जलरहित ठोस भोजनके २० आउंसके बराबर हैं । मनुष्य प्रतिदिन अपनी तौलका $\frac{१}{१००}$ भाग ठोस भोजन करता है और $\frac{३}{१००}$ भाग जल ग्रहण करता है अर्थात् उसके शरीरका प्रत्येक पाउंड २४ घंटेमें ·१५ आउंस खुश्क भोजन पाता है और ·५ आउंस जलका । वास्तविक जीवनमें भोजन संबंधी व्यक्तिगत भिन्नता देखनेको मिलती है । इसका कारण यही है कि कोई दो आदमी एक दूसरेके समान नहीं होते । भोजन व पानके परिमाणपर अपना प्रभाव

डालनेवाले कारण, लिङ्गभेद, आयु, श्रम भेद और जलवायु हैं।

हिंदुओंमें जनसाधारणकी यह धारणा है कि स्त्रियां पुरुषकी अपेक्षा दुगना भोजन करती हैं पर वास्तवमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी अपेक्षा १० फ़ीसदी (१०० भागोंमें १० भाग) कम भोजनकी आवश्यकता रहती है। आयुभेदके कारण युवावस्थाके पूर्व नत्रजनीय द्रव्य और फ़ैटका अधिक उपयोग तंतुओंकी बाढ़केलिये अनिवार्य्य है। वृद्धावस्थामें इन द्रव्योंकी आवश्यकता केवल इसीलिये कम नहीं हो जाती कि उस उमरमें परिश्रम कम हो जाता है किन्तु उस अवस्थामें तंतुओंके परिवर्तनमें शारीरिक मेटेबोलिज़्म भी बहुत कम होता है।

भोजनपर जल वायुका प्रभाव स्पष्ट नहींहै। शीत प्रधान देशोंमें गरम देशोंकी अपेक्षा चर्बीका अधिक व्यवहार होता है, पर यह बात ठीक नहीं मालूम है कि इस अधिक व्यवहारका कारण शरीरके ताप और शक्तिकी अधिक आवश्यकता है या उनका अधिक परिश्रम।

मुझे भय है कि भारतवर्षके सुसम्पन्न पुरुष, विशेषकर हिन्दू चिकनई या फ़ैटका आवश्यकतासे अधिक प्रयोग करते हैं। उनके भोजनमें कार्बोहाइड्रेटकी मात्रा वैसेही अधिक होती है ऐसी अवस्थामें चिकनईकी मात्रा थोड़ी ही अधिक होनेपर भी शरीरके लिएबहुत हो जाती है।

श्रम भेद	प्रोटीड	कार्बोहाइड्रेट	फ़ैट	नमक	यह भोजन बराबर है		
					नत्रजन	कार्बन	स्थानापन्न शक्ति
आराम	२.५० आउंस	१२ आउंस	१ आउंस	,५ आउंस	१७५ ग्रेन	३१५० ग्रेन	२३७० फ़ुट टन
साधारण परिश्रम	४'५ आ०	१४'२६ आ०	२'९ आ०	१'०६ आ०	३२० ग्रे०	४७०० ग्रे०	४००० ,,
कठिन परिश्रम	६. आ०	१६ आ०	३'५ आ०	१'५ आ०	४२० ग्रे०	५४८८ ग्रे०	४४४१ ,,

मङ्गलग्रह

[ले० अनादिधन बंद्योपाध्याय]

चौथा परिच्छेद।

मैं अब मंगलग्रहमें छः महीनेसे अधिक रह चुका हूँ। मुझे मंगली भाषा, इतिहास और विज्ञानसे वहुत कुछ परिचय हो गया है। इनके पुराने शास्त्रोंमें भोजन खानेकी प्रथाका कथन है। कहीं कहीं यह भी पता चला है कि पृथिवीके लोग भी इधर पहुँचे थे। मंगलग्रहके कुल देश एक साम्राज्यमें हैं; अर्थात् मंगलग्रहमें एक सर्कार है और सब एक राजाको मानते हैं, जो छः सालके बाद हटा दिया जाता है और दूसरा उसके स्थानपर काम करता है। यहाँ फ़ौजका नाम भी नहीं है। हाँ पुलिस प्रथाका तो प्रचार है। यहाँके सब लोग शिक्षित हैं।

मैं एक दिन बैठा हुआ पृथिवीकी बाबत सोच रहा था कि इतनेमें चेरीमानू वहां पहुँच गयी। इससे मेरा बहुत परिचय होगया था। घंटों मैं इसे पृथिवीका हाल बताया करता था। इसने मेरे साथ एक बड़ा उपकार किया कि मंगली भाषा इसीने मुझे सिखलायी। यह युवती बहुधा समाचार पत्र, पत्रिका इत्यादि लाकर मुझे सुनाया करती थी। मेरा भोजन भी यह ला दिया करती थी। इस तरह इससे मेरी मित्रता थोड़े ही दिनोंमें होगयी।

एक दिन मैं बैठा अपनी 'डायरी' लिख रहा था और चेरीमानू मेरे सामने बैठी थी। वह यकबारगी बोल उठी –"पृथिवीके पुरुष बहुत निष्ठुर और कठोर हृदयवाले होते हैं !"

मैंने चौंककर पूछा–"तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

चेरीमानू–"तुम्हे देखकर"। यह कहकर उसने सिर नीचा करलिया।

मैंने मुसकराकर उत्तर दिया–"चेरीमानू ! यदि मुझसे कोई निष्ठुरताका भाव प्रगट हुआ हो तो मुझे क्षमा करना। मैंने वह बिना जाने किया होगा।"

चेरीमानू ज़रा हंसकर बोली–"देखो मैं तुम्हारा कितना कार्य्य करती हूँ। यहाँकी भाषा मैंने ही तुमको सिखलायी और मैं ही तुम्हारी टहल करती हूँ, पर तुम मुझे उस भावसे नहीं देखते जिस भावसे मैं तुम्हे देखती हूँ।"

मेरा दिल कांप उठा मैंने डरते डरते पूछा–" वह कौनसा भाव है ?"

चेरीमानू ने नीची निगाह कर कहा–" प्रेमकी दृष्टिसे।"

मैं ऐसे प्रेमसे बहुत डरता हूँ। मेरे सामने ऐसा 'लव' और पागल कुत्ता दोनों बराबर हैं। आज उसी प्रेमी कुत्तेने मुझे आख़िर काट ही न लिया ! मैंने कहा–"चेरीमानू ! ठीक है तुम मुझे इस बातपर तो निश्चय दोषी ठहरा सकती हो, क्योंकि ऐसे प्रेमके स्कूलमें मैंने कभी नहीं पढ़ा। दूसरे तुम्हें मालूम नहीं कि मैं विवाह कर चुका हूँ।"

यह सुनते ही चेरीमानूने मेरी ओर एक कटाक्ष दृष्टि डाली और दूसरे मिनट भूमिपर गिरकर बेहोश हो पड़ी। मैंने उसे झटसे उठाकर पलंगपर लिटा दिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ मानो एक कम्बल उठाकर पलंगपर रख दिया। चेरीमानूका हलका होना आकर्षण शक्तिके कारण था। पानी उसके मुंहपर छोड़ा और पंखा इत्यादि करके उसको सचेत किया। इतनेमें जिंगीदेहका अरदली मुझे फ़ुटबाल खेलनेकेलिए बुलाने आया। मैं फ़ुटबाल खेलने मैदानपर गया।

सीटी बजी और खेल आरम्भ हुआ। मैंने पहला किक जो लगाया तो गेंद तीन मील दूर जाकर गिरी। गेंद उठाने आदमी दौड़े-दूसरी गेंद मैदानपर छोड़ी गयी; मैंने अबकी बार बहुत धीरेसे लात मारी पर फिर भी गेंद मील भर दूर जाकर गिरी। इसका कारण यह है कि मंगलग्रह परिमाण और घनतामें पृथिवीसे बहुत कम है, इससे आकर्षण शक्तिमें भी भेद हो गया है। पृथिवीवालोंको खेलनेकेलिए यहाँ कमसे कम ५$\frac{1}{2}$ मील लम्बा मैदान चाहिये। अन्तमें मुझे खेल बन्द करना पड़ा क्योंकि मेरा किक गेंदको कमसे कम एक मीलपर लेजाकर डालता था। मेरेलिए मंगलग्रहमें ८ फ़ुट ४ इंचकी दीवालको कूद जाना इतना ही आसान था जितना कि पृथिवीमें २ फ़ुट ऊँची मेंड़को लांघ जाना। मंगलग्रहके पत्थरका बोझ पृथिवीके जलके बराबर है। संक्षेपमें मैं यहाँ दानव था, और मुझे देखने हज़ारों मंगली जमा होते थे।

मैं फिर घरपर लौट आया। भोजन 'पीने' का बंदोबस्त हुआ। चेरीमानू नियमानुसार मेरे वास्ते बन्दोबस्त करने लगी। मुझे आश्चर्य हुआ कि चेरीमानू उक्त घटनापर भी मुझसे

रूठी नहीं थी। पर हाँ, वह उस दिनसे मेरे पास बहुत कम आती जाती थी और मुझसे बहुत कम बोला करती थी। मेरा भी मन बहुत ख़राब रहता था। मैं अब फिर अपने पृथिवीको लौट आनेका विचार करने लगा। मेरे इस विचारको जानकर मंगलग्रहके राजाने मुझे अपने यहाँ बुलाया। इस सन्मानपर मंगलीगण बहुत संतुष्ट हुए और समाचार पत्रोंमें मेरी तसवीरें और मुझपर लेख छपने लगे। जिंगीदेहने तो मेरे ऊपर एक पुस्तक ही रच डाली है-जिसका प्रचार मंगलमें बहुत है। राजाके यहाँ एक सभा बैठी। इस सभामें राजाने जो कहा उसका मर्म यह है:-

मैं जयसिंहके जानेपर बहुत दुखित हूं। पर ईश्वर करे यह सकुशल अपनी पृथिवी पर पहुंच जाय। जो कुछ हो जयसिंहका नाम पृथिवी और मंगलग्रहके इतिहासमें सदैव याद रहेगा। हम लोगोंसे जो त्रुटियां हो गयी हैं, आशा है वे सब आप क्षमा करेंगे। इत्यादि

मैंने जो कहा उसको भी संक्षेपमें लिखे देता हूं—

मेरा यहाँ जैसा कुछ आदर सत्कार हुआ, उसकी प्रशंसा मैं नहीं कर सकता। पृथिवी पर भी मुझे इतना सन्मान नहीं मिलेगा। मुझे दो चार बातें इस ग्रहकी नयी मालूम हुई हैं जोकि पृथिवीवाले नहीं जानते हैं। पहली बात तो यह है कि यहाँ फ़ौज नहीं है। मुझे यह देखकर आनन्द हुआ कि यहाँ लड़ाई नहीं होती। हमारी पृथिवीमें भी वह दिन शीघ्र आनेवाला है। दूसरे यह कि यहां चोरी नहीं होती। सत्य तो यह है कि यहाँ सत्ययुग है। एक बात मैं आप लोगोंको बतलाये देता हूं कि जो सूचना आप पृथिवीमें विद्युतद्वारा भेजते हैं वह अब हमलोग समझने लगे हैं और उसे हमलोग बिजली या चुम्बकके धक्के (magnetic shock) कहते हैं। अब मैं जाकर यह सुसमाचार पृथिवीमें फैलाऊँगा। इत्यादि

इसके बाद सभाका विसर्जन हुआ और मैं दो चार शहर घूमता फिर जिंगीदेहके यहाँ लौट आया। अड्डे पर लौटकर मैं बेलून बनानेकी तैय्यारी करने लगा। जिस गुब्बारेसे आया था उसीको ठीकठाक किया। इस बेलूनके निर्माण करनेमें चेरीमानूने मेरी बहुत सहायता की। कुल मंगलग्रहमें मेरे जानेका समाचार फैल गया।

उपसंहार।

जिसप्रकार एक दिन मैं पृथिवीसे चला था ठीक आज भी उसी तरह मंगलग्रहसे जानेकी तैय्यारी करने लगा। पर जब बेलून उड़नेको एक घंटा रहगया तो मैंने चेरीमानूको ढूंढा पर उसका पता न चला। मैं जान गया कि वह मुझसे रूठ गयी। मैं चुपचाप बेलूनकी पिटारी में अपना सामान रख बैठ गया। नियत समय-पर बेलून उठा। लोग हाथ और रुमाल हिलाने लगे। जब मेरा बेलून कोई ६० फ़ुट ऊंचा उड़ गया तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि बेलून दाहिनी ओर मानो बोझसे झुका हुआ है। सर निकालकर जो देखा उसे देख प्राण सूख गये! क्या देखता हूं कि चेरीमानू पिटारीसे बन्धी है। मुझे देखते ही उसने आँखें नीचे करलीं और भयसे मुख कुम्हला गया। मैंने जल्दीसे उसका बंधन खोल डाला और उसे पिटारीके भीतर खींच लिया। उसने मुझसे प्रार्थना की कि मैं उसे फिर नीचे न उतार दूं। मैंने उसे ढारस दिया और उसे अपने साथ पृथिवीमें लेजानेका वचन दिया। बेलूनकी यात्रा वैसी ही थी जसी कि पृथिवीसे जाती बेर।

कुछ दिनों बाद मैं सकुशल पृथिवीके वायु-मंडलमें पहुंच गया। मैंने इसकी सूचना चेरी-मानूको भी दी। वह बहुत संतुष्ट हुई। मुझे जो आनन्द केवल वायु-मंडलमें आनेसे हुआ उसे कैसे लिखूं। मैं किसी देशमें अभी नहीं पहुंचा था केवल पृथिवीके हवामें घुसा था। उस समय मुझे मालूम हुआ कि हाँ देश-भक्तिके

ऊपर भी एक और भक्ति है जिसे हम पृथिवी-भक्ति कह सकते हैं। वह दिन भी दूर नहीं जब पृथिवीमें पृथिवी-प्रेमके सिवा विश्वमंडलसे प्रेम रखना सिखलाया जायगा।

मैं यह सब विचार ही रहा था कि एक आंधीका झोंका आया। मैं इस समय भूमिसे ४० मीलपर था। हम दोनों बक्ससे बाहर निकलकर बैठे थे। दो सवारी होनेके कारण पिटारी बोझसे डगमगाने लगी। मैंने भारी भारी चीज़ें सब निकाल बाहर फेंक दीं। फिर भी पिटारी उलट जानेका भय रहा। अन्तमें सब चीज़ें फेंकदी तो भी कुछ लाभ नहीं हुआ। चेरीमानू मेरी ओर देखकर कहने लगी—"प्यारे! अब क्या करोगे? तुम्हें किसी तरह जीता-जागता पृथिवीपर उतरना चाहिए, जब यहां-तक उतर आये हो तो अब किसी प्रकारकी बाधा बीचमें नहीं पड़नी चाहिये। अच्छा नमस्कार" - बस यह कहकर चेरीमानू पिटारीसे कूद पड़ी। मैं हैं! हैं! कहता ही रह गया और वह वायुकी गोदमें छिप गयी। मेरा सिर इस घटनासे भन्ना गया। और बेहोश पिटारीपर गिर पड़ा। जब आंखें खुली तो अपनेको न्यूयार्कके असपतालमें पाया। लोगोंसे बादको पता चला कि मैं समुद्रके किनारेपर बेलूनके साथ गिरा था और वहींसे मुझे असपतालमें लाये। मैं दो महीने असपतालमें रहा उसके बाद भिन्न भिन्न देशोंमें घूमता अन्तमें भारतमाताके चरणोंपर आकर गिर पड़ा। इसके बाद जो कुछ हुआ वह सारा संसार जानता है। पर हाँ एक बात आपको कदाचित् न मालूम हो कि मेरी धर्मपत्नी मेरे मंगलग्रह जानेके कुछ दिनों बाद ही दूसरे लोकको सिधार गयी थी।

मैंने पृथिवीमें चेरीमानूकी बहुत खोज की पर आजतक पता नहीं चला।

वायुमण्डल और उसका दबाव

श्री केशव चद्र सिंह चौधरी, एम. एस.-सी. और
महावीर प्रसाद, बी. एस-सी, एल.टी,

(गताङ्क से आगे)

रामचन्द्र—अब वायुभारमापक-नली-पर चिह्न लगानेकी रीति बतलाइये।

पिता—(१) जब नलका मध्यच्छेद (cross section) सब जगह समान हो, किसी समय दोनों भुजोंके पारातलोंका अन्तर जानकर लम्बे भुजके पारातलके सामने चिह्न बनाकर वही अन्तर लिख दो। इस चिह्नके ऊपर आध इंचकी दूरीपर दूसरा चिन्ह बनाओ और वहां वह अंक लिखो जो पहले चिह्नके अंकसे एक अधिक हो अर्थात् यदि पहले चिह्न-पर २९ इंच लिखा गया हो तो इससे आध इंच ऊपर ३० इंच और फिर आध इंच ऊपर ३१ इंच लिखना चाहिए। इसी तरह २९ इंचवाले चिह्नके आध इंच नीचे २८ इंच और फिर आध इंच नीचे २७ इंच लिखना होगा। आधे आधे इंचकी दूरीपर एक एक इंच समझकर चिन्ह बनानेका कारण यह है कि जिस समय पारा लम्बे भुजमें आध इंच चढ़ेगा उसी समय छोटे भुजमें आधइंच उतरेगा और यों दोनों पारातलोंका अन्तर एक इंच हो जायगा इत्यादि।

(२) यदि छोटे भुजका मध्यच्छेद लम्बे भुजके मध्यच्छेद का चौगुना हो, तो लम्बे भुजमें एक इंचके चिह्नकी दूरी यथार्थमें $\frac{४}{५}$ इंचकी दूरीपर होगी क्योंकि छोटे भुजमें जो पारा $\frac{१}{४}$ इंच नीचे उतरेगा वह बड़े भुजमें एक इंच चढ़ जायगा और दोनों पारातलोंका अन्तर $१\frac{१}{४}$ इंच हो जायगा। इसलिए यदि पहले चिह्नपर २९ लिखा हुआ है तो

दूसरा चिह्न जो ठीक एक इंच ऊपर है पढ़ा जाना चाहिए २६+१$\frac{१}{४}$ इंच, पर इस तरह पढ़नेमें सुबिधा नहीं होती इसलिए चिह्न एक एक इंचकी दूरीपर नहीं बनाते वरन् $\frac{४}{५}$ इंचकी ही दूरीपर बनाते हैं और पढ़ते हैं पूरा इंच, क्योंकि जिस समय लम्बे भुजमें $\frac{४}{५}$ इंच पारा चढ़ेगा, उस समय छोटे भुजमें $\frac{१}{५}$ उतरेगा और अन्तर १ इंच हो जायगा।

जो वायुभारमापक मैदानोंमें प्रयोग करनेकेलिए होते हैं, उनमें २७ इंचके नीचे और ३२ इंचके ऊपर पारा कभी नहीं चढ़ता। इसलिए ऐसे वायुभारमापकोंमें २७ इंचसे ३२ इंचतक चिह्न बनाये जाते हैं इनसे ऊपर नीचे नहीं; क्योंकि मैदानोंमें वायु मण्डलका दबाव २७ इंचसे कम और ३२ इंचसे अधिक कभी नहीं होता।

किसी कांचकी नलोका छिद्र सब स्थानोंमें बराबर मध्यच्छेदका नहीं होता इसलिए ऊपर लिखी विधिसे वायुमण्डलका दबाव नापनेमें कुछ अशुद्धि रह जाती है। इस अवगुणके मिटानेकेलिए दोनों भुजोंमें चिन्ह बनाकर अंक लिख देते हैं। छोटे भुजमें अंक नीचेकी ओर पढ़े जाते हैं और लम्बे भुजमें ऊपरकी ओर। दोनोंका प्रारम्भ विन्दु (शून्य) एक ही समतलसे (level) आरम्भ होता है और दोनों भुजोंके जिन चिह्नोंपर पारातल होते हैं वहांके अंकोंको जोड़ देनेसे जो अंक आता है वही वायुमंडलके दबावको सूचित करता है।

रामचन्द्र—वायुभारमापकसे वायु मंडलका दबाव जानकर क्या लाभ होता है?

पिता—इस यन्त्रको लगातार देखनेसे यह पता चल जायगा कि पारातल सदैव एक ही चिह्न पर नहीं रहता वरन् चढ़ता उतरता रहता है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वायुमण्डलका दबाव सदैव एकसा नहीं रहता। दबावके घटने बढ़नेके कारण बहुत हैं जिनमेंसे कुछ यह हैं—

(१) जब किसी स्थानके वायुमण्डलकी हवा बहुत पतली हो जाती है तब इसका दबाव कम हो जाता है, क्योंकि पतली होनेके कारण सभी चीज़ोंका दबाव कम हो जाता है। इससे वायुभारमापकका पारा नीचे उतर आता है। यह अवस्था गरमीके दिनोंमें साधारणतः होती है क्योंकि गरमीके कारण हवा फैलकर पतली हो जाती है। यदि यन्त्रका पारा यकबारगी नीचे उतर आवे या उतरने लगे तो समझना चाहिए कि यन्त्रके आस पासके वायुमण्डलका दबाव बहुत ही कम हो गया है। ऐसी दशामें दूरकी हवा झोंकेके साथ आकर दबावकी कमीको पूर्ण करेगी। यही झोंका आंधी, तूफ़ान इत्यादिके नामसे पुकारा जाता है। नाविकोंको आंधी, तूफ़ानकी सूचना पाना बड़ा ही आवश्यक होता है क्योंकि उथले जलमें नावोंको बड़ा धक्का लगता है और कभी कभी वह टूट फूट भी जाती हैं। इनसे बचानेकेलिए मल्लाह उनको गहरे जलमें कर देते हैं जहां पानीका धक्का बहुत कम लगता है। इसलिए प्रत्येक जहाज़वालेके पास एक वायुभारमापक यन्त्र अवश्य रहता है जो आंधी आनेके दो चार घंटे पहलेसे ही उनको चैतन्य कर देता है।

(२) हवामें पानीकी भाप जितनी ही अधिक होगी हवाका दबाव उतना ही कम, होगा इसलिए वायुमण्डलमें पानीकी भापकी अधिकतासे भी वायुभारमापकका पारा नीचे उतर आता है। इसी कारण पाराके उतर आनेसे यह भी अनुमान किया जाता है कि वायु-मण्डलमें भाप बहुत है और वह जमकर पानी बरसावेगा। गरमीके दिनोंमें पाराको गिरानेवाले यह दोनों

कारण विद्यमान रहते हैं अर्थात् हवा स्वयम् फैलकर पतली रहती है, और पृथिवीतलका पानी गरमीसे सूख सूखकर वाष्पमें परिणत हो जाता है और वायुमण्डलमें फैला रहता है, इसलिए इस ऋतुमें पारा अन्य ऋतुओंसे साधारणतः उतरा रहता है, और आंधीके झोंके भी अधिकतर देखे जाते हैं। कभी कभी आंधीके साथ जो पानी बरस जाता है वह भी इसी कारण से। जाड़ेके दिनोंमें जब हवा ठंढी होनेके कारण घन रहती है तब दबाव अधिक होता है जिससे वायुभारमापकका पारा चढ़ा रहता है।

(३) यह बतलाया जा चुका है कि यन्त्रके खुले मुंहवाले पारातलपर जो वायुमण्डल दबाव डाल रहा है उसकी ऊंचाई कोई ५० मील और कोई २०० मीलतक कहते हैं। इतने ऊंचे वायुमण्डलका दबाव ३० इंच ऊँचे पाराके दबावके समान होता है। यदि किसी कारण इस वायु मण्डलकी ऊंचाई अधिक वा कम हो जाय तो भी पारा चढ़ जायगा वा उतर जायगा। यह देखनेमें आया है कि वायुभार-मापक जब गहरी खानोंमें लाया जाता है, तब पारा बहुत चढ़ जाता है और जब ऊंचे पहाड़ों पर लाया जाता है तब पारा बहुत उतर आता है। ऊंचाईके घटने बढ़नेके कारण पारेके उतरने चढ़नेसे मोटी रीतिसे पहाड़ोंकी ऊंचाई वा खानोंकी गहराई भी मालूम की जा सकती है।

रामचन्द्र—इन सब बातोंकी जांच कैसे की गयी?

पिता—इसका अनुमान इस सारिणीसे किया जा सकता है। यह सारिणी एच्. एफ्. ब्लानफोर्ड लिखित "इन्डियन मिटियरोलोजी वेड मेकम" से ज्यों की त्यों ली गयी है केवल भेद इतना ही रक्खा गया है कि यहां स्थानों-के नाम उसी तरह एक दूसरेके पीछे क्रमसे हैं जैसे जैसे वह समुद्रतलसे ऊपर होते जाते हैं। औसत ताप और समुद्रतलसे ७००० फ़ीट ऊंचे वायुमण्डलका दबाव जो वायुभारमापक यन्त्रसे जाना गया है इसमें दिया है। (दे० पृ० २६२) है। सारिणीके अङ्क इंचोंमें हैं।

रामचन्द्र—इस सारिणीसे तो बहुतसी बातोंका पता चलता है। वायुभारमापक वायुमण्डलके दबावको ही नहीं सूचित करता वरन् ऋतुओंका परिवर्तन सूचित करनेमें भी बहुत कुछ सहायता पहुंचाता है। इसको वायुभारमापकके स्थानमें ऋतु-सूचक लोग क्यों नहीं कहते?

पिता ऋतु-सूचक नाम रखनेमें कोई हानि नहीं। यह ऋतुका परिवर्तन जाननेकेलिए भी प्रयोग किया जाता है। परन्तु वायुमण्डलका दबाव जाननेसे ही ऋतुके परिवर्तनका पता चलता है इसलिए अधिक व्यापी नाम वायुभारमापक ही रक्खा जाना उचित समझा गया।

रामचन्द्र—पिताजी अब समझमें आया कि १ घनफुट हवाकी तोल आधी छटांकके लगभग कह देनेसे ठीक ठीक परिमाणका निर्णय नहीं हो सकता क्योंकि यदि ताप इतना अधिक हो कि एक घनफुट हवा फैल फैलकर २ घनफुट हो जाय तो प्रति घनफुट हवाकी तोल चौथाई ही छटांक हो जायगी। इसके प्रतिकूल यदि ताप न बढ़े पर केवल दबाव बढ़ जाय तो १ घनफुट हवाकी तोल आधी छटांकसे भी अधिक हो सकती है। यदि ताप और दबाव दोनोंमें परिवर्तन हो तो यह पता लगाना बड़ा ही कठिन हो जाय कि अमुक आयतनकी हवाका भार अमुक होगा।

पिता—इस विषयमें भी बड़े बड़े विद्वानोंने खोज की है और अपने निःस्वार्थ परिश्रमसे आगे आनेवालोंके मार्गको बड़ा ही सुगम कर दिया है। जिस प्रकार उन्होंने इसपर खोज किया है और अन्तमें जो नियम स्थापित किये हैं वह एक स्वतन्त्र विषय ही बन गया है जिसकी

मास	दारजिलिंग श्रार ग्वालपारा		मैदान					पहाड़				
	श्रौसत ताप फ़ारनहैट श्रंशोंमें	उपरोक्त स्थानोंके बीचके वायुका दवाव	कलकत्ता जो समुद्र तलसे १८ फ़ीट ऊपर है। वायु का दबाव ११ वर्षकी श्रौसत	कोलम्बो समुद्रतल से ४२ फीट ऊपर। वायु का दवाव ६-७ वर्षकी श्रौसत	ग्वालपारा ३८६ फ़ीट वायु का दबाव ७ वर्ष की श्रौसत	रुड़की ८८६ फ़ीट ऊपर। वायु का दबाव ६ वर्ष की श्रौसत	नागपुर १०२५फ़ीट ऊपर। वायु का दबाव ७ वर्ष की श्रौसत	पचमढ़ी ३५०४ फ़ीट। वायु का दवाव २ वर्ष की श्रौसत	नेवारा इलिया ६१५०फ़ीट वायु का दवाव ५-६ वर्षकी श्रौसत	दारजि-लिंग ६६७२ फ़ीट,७-६ वर्ष की श्रौसत दवाव	शिमला ७०७१ फ़ीट, ३ वर्ष का श्रौसत दवाव	लेह ११५३८ फ़ी०, २-३ वर्ष का श्रौसत दवाव
जनवरी	५२.७	६.६६७	३०.०११	२६.८६२	२६.६१४	२६.११३	२८ ६४१	२६.५१७	२४ ०८०	२३.३८३	२३.२२५	१६.५६८
फरवरी	५६.५	६.६३८	२६.६४८	२६.८६५	२६.५४८	२६.०५३	२८ ६०१	२६.५२७	२४.०८६	२३.३७०	२३.१६३	१६.५६८
मार्च	६२.३	६.५५३	.८५६	.८५३	.४६४	२८.६६८	.८१२	.४८२	.०६७	.३६५	.१६७	.६०६
अपरैल	६७.२	६.४४६	.७५७	.८१२	.३८७	.८५८	.७१२	.३६१	.०७७	.३६४	.२०७	७.०२
मई	६६.६	६.४१३	.६६५	.८०२	.३०४	.७४३	.६२६	.३२७	.०६७	.३३६	.१४६	.६७४
जून	७१.८	६.३८	.५५०	.८०१	.२१२	.६१८	.५३८	.२३७	.०४६	२७४	.०६१	.६३१
जुलाई	७३.१	६.३६५	.५४५	.८२३	.०६६	.६३६	.५४२	.१८४	.०४३	.२७०	.०६६	.६०६
अगस्त	७२.६	६.३८६	.६००	.८२८	.२५७	.६६७	.६०६	.२७१	.०४५	.३११	.१०१	.६२७
सितम्बर	७१.७	६.४१७	.६०६	८४८	.३४१	.७६८	.६५१	.३१६	.०५६	.३६६	.१६४	.६८६
अक्टूबर	६८.३	६.४७०	.०३१	८४६	.४५१	.६६०	:८०१	.४७६	.०५६	.४२८	.२२७	.७१५
नवम्बर	६१.३	६.५८२	.६८०	.८५५	.५६६	२६.१०६	.६४६	.५५६	०६१	.४७२	.२६३	.७६७
दिसम्बर	५५.३	६.६५४	३०.०३०	८६८	.६३५	.१४६	.६७६	.५७६	.००३	.४४४	.२५४	७११

व्याख्या इस विषयके समाप्त करनेके पश्चात की जायगी। हां, यह बतलाना यहाँ आवश्यक है कि भिन्न भिन्न पुस्तकोंमें वायव्य पदार्थोंकी तोलके परिमाण एक ही क्यों पाये जाते हैं जब यह प्रत्यक्ष दीखता है कि भिन्न अवस्थाओंमें यह परिमाण घटते बढ़ते रहते हैं।

सर्व्व-सम्मतिसे यह स्थिर कर लिया गया है कि वायव्य पदार्थोंकी वही तोल साधारणतः प्रयोग की जाय और पुस्तकोंमें लिखी जाय जो उस समय पायी जाती है जिस समय वायुमंडलका दबाव ३० इंच और ताप ०°श. शून्य अंश शतांश हो। इसी लिए यह ताप और दबाव सर्व्वसम्मत ताप और दबाव (Standard temperature and pressure) के नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रसिद्ध होनेसे यह साधारण हो गये हैं इसलिए इनको साधारण ताप और दबाव (normal temperature and pressure) भी कहते हैं। जब कभी वायव्य पदार्थोंकी तोलका परिमाण दिया हुआ हो तो यही समझना चाहिए कि यह तोल साधारण ताप और दबावकी है। यदि किसी विशेष ताप और दबावपर तोल ली जायगी तो ताप और दबावके विशेष अंक भी दिये रहेंगे।

अद्भुत यंत्रालय अथवा कार्यालय

[ले० चिरञ्जीलाल माथुर, बी. ए., एल, टी]

ईश्वरकी लीला बड़ी अद्भुत है। मनुष्य यथाशक्ति उसके जाननेका प्रयत्न करता है परंतु वास्तवमें नवतनु महाशय (Newton) के शब्द ही सच्चे प्रतीत होते हैं "वैज्ञानिक बातें प्रति दिवस नयी नयी निकलती जाती हैं और अभी अद्भुत लीलाका अथाह समुद्र तो पड़ा ही है फिर भी साधारण मनुष्यों को तो मानना ही पड़ेगा कि वैज्ञानिकों ने बड़े बड़े चमत्कार दिखलाये हैं।"

जब तनिक मनन करते हैं तो जान पड़ता है कि जो वस्तु हमारे बहुत निकट है उनका भी पूर्ण वृत्तांत हमको नहीं मालूम है। स्वयम् मनुष्यका शरीर एक ऐसा अद्भुत यंत्र है कि जिसके समझनेमें बड़े बड़े बुद्धिमानोंकी बुद्धि चकराती है कितने आश्चर्यकी बात है कि जन्मसे पहले केवल माताके रुधिरसे और तत्पश्चात दुग्धसे बालकके शरीरके समस्त भाग बन जाते हैं-रुधिर, त्वचा, हड्डी इत्यादि एक ही वस्तुके प्रयोगसे बन जाती है-विज्ञानवालोंने निर्णय किया है कि जो साधारण मांस दीख पड़ता है उसकी भी अजीब बनावट है।

मनुष्यका शरीर बहुतसे छोटे छोटे कोषोंका बना हुआ है-यह अणुवीक्षणसे ही दिखायी देनेवाले (microscopic) कोष एक उज्ज्वल गाढ़े रसीले दानेदार वस्तुके बने होते हैं इस वस्तुको जीवनमूल (protoplasm) कहना चाहिए। यह जीवनमूल कई प्रकारके द्रव्योंसे विलक्षण बनावटका होता है। कोषके बीचमें यह जीवनमूल कुछ अधिक गाढ़ा होकर एक विंदु जैसा बन जाता है। इस विंदुको (न्यूक्लिअस) केंद्र (nucleus) कहते हैं। न्यूकलिअसके चारो ओर एक जीवनमूलकी दीवारसी बन जाती है, इस दीवारके अंदर जीवनमूल रसको रूपमें भरा होता है। कोषों (सेल) की संख्या करना असंभव है। यह कोष एक दूसरेसे जुड़े हुए होते हैं। जोड़नेवाली वस्तु (connective tissue) भी इन कोषोंसे ही बन जाती है। शरीरके समस्त भागोंमें कोष एक प्रकारके नहीं होते, कुछ अन्तर होता है। परंतु दो बातें समस्त कोषोंमें अवश्य होती हैं प्रथम तो वह स्वयम् अपना पोषण करते रहते हैं यदि कोई नाश करनेवाला शत्रु आ घुसे तो बात दूसरी है। नहीं तो वह अपनी स्थिति वर्त्तमान रखते हैं। दूसरा गुण यह कि वह अपने

जैसे और कोष भी उत्पन्न करते रहते हैं, पहला कार्य्य तो इस प्रकार होता है कि यह कोष रुधिरसे कुछ द्रव्य पीते हैं, दूसरा कार्य्य होनेमें कोषके दो भाग स्वयम् हो जाते हैं और नवीन कोष बन जाता है, इस प्रकार शरीरकी वृद्धिके निमित्त कोषोंकी संख्या बढ़ती रहती है जब कोषोंमेंसे यह गुण कम हो जाता है तो शरीर क्षीण होने लगता है, बाल्यावस्थामें यह शक्ति प्रचंड होती है क्योंकि बालकोंको शरीरके बढ़नेके वास्ते अधिक कोषोंकी आवश्यकता होती है, चलने फिरने कार्य्य करनेमें जो कोष काम आजाते हैं उनके पूरा करनेके वास्ते तो समस्त जीवित मनुष्योंमें कोष बनते हैं परंतु बालकोंको दो प्रकारकी आवश्यकता होती है, यदि किसी बालकके दुर्भाग्यसे इस शक्तिके रोकनेकी सूरत होजावे तो वह बालक ठीक ठीक नहीं बढ़ेगा किंतु उसका शरीर छोटा और दुर्बल रह जावेगा, इसीलिए कहा जाता है कि छोटे बालकोंपर पढ़ने लिखनेका अधिक बोझ नहीं डालना चाहिए।

ऊपर लिखा गया है कि कोष एक दूसरेसे बन्धक तन्तु (connective tissue) से जुड़े हुए हैं। यह तन्तु कोषोंके परिवर्तनसे बनता है और केवल कोषोंको ही नहीं किंतु हड्डी (bones) और इंद्रियों को भी अपने स्थानपर स्थिर रखता है। इस तन्तु रूप प्रत्येक अवस्थामें पृथक् पृथक् हो जाता है-(organs) अंगोंपर इसकी एक तह (layer) सी जमी हुई मिलती है इस रूपमें इसको परियोस्टयम (periosteum) कहते हैं-दूसरे रूपमें लिगामेंट (ligament) बंधन कहलाती है-इस अवस्थामें इसकी बनावट पतले धागोंकी सी हो जाती है जो बन्धक तन्तुके परिवर्तनसे ही बन जाते हैं। इस रूपमें बन्धक तन्तु (connective tissue) शरीरकी हड्डियों या दूसरे भागोंको एक दूसरेसे बांधे रहता है-तीसरा रूप इस तन्तुका ऐसा होता है जिसमें तैलके दानेसे दिखलाई देते हैं-यह रूप त्वचाके नीचे प्रायः मिलता है।

कोषोंके परिवर्तनसे ही एक दूसरी चीज़ बन जाती है जिसको झिल्ली (epitheleum) कहा जाता है। यह कोषोंकी एक तह (layer) होती है। शरीरके किसी भागको ढके हुवे मिलती है-झिल्ली बड़ी उपयोगी होती है-इसके तीन प्रधान कार्य्य हैं (१) झिल्लीके नीचे जो मुलायम तन्तु (tissue) होता है उसकी अच्छी रीतिसे रक्षा करती है (२) किसी किसी स्थानपर झिल्लीमेंसे समय समयपर कोई रसीली वस्तु निकलती रहती है। यह रसीली वस्तु कहीं तो तैलका काम देती है। जैसे रेलके पहियोंपर सदैव तैल पड़ता रहता है नहीं तो रगड़की गरमीसे तुरंत आग लगजावे इसी प्रकार शरीरके पहियों इन्द्रियों में भी झिल्लीसे बने हुए रस द्वारा तैल लगता रहता है। कहीं कहीं तो यह रस अति उत्तम कार्य्य करता है जैसे उदर की झिल्लीसे निकले हुए रस भोजनके पचानेमें सहायता देते हैं। (३) तीसरा कार्य्य झिल्लीका यह है कि जो व्यर्थ वस्तु हो उसको अंदरसे खेंचकर बाहर निकाल फेंकती है, जैसे गुर्दे की झिल्ली यह कार्य्य करती है।

शरीरकी बनानेवाली समस्त वस्तु कोषोंके परिवर्तनसे ही बन जाती है। तो यह कहना चाहिए कि मनुष्यकी अथवा प्रत्येक जीवमात्रकी बनावटका आरंभ कोष है। हड्डी (bone) भी इसी परिवर्तनसे बन जाती है, अन्तर केवल इतना है कि हड्डीमें फोस्फोरस और चूनेसे मिले हुए द्रव्योंके (phosphates and carbonates of lime) और मिल जानेसे वह कड़ी हो जाती है।

पाठकोंको स्मरण होगा कि कोषोंका एक गुण यह है कि वह अपने को जीवित रखनेकेलिये रुधिरमेंसे कुछ भाग चूसते रहते हैं। अब प्रश्न यह है कि समस्त शरीर कोषोंका बना है,

तो रुधिर समस्त शरीरमें किस प्रकार पहुंचता है और रुधिर स्वयम् क्या वस्तु है ?

यह तो सब जानते हैं कि रुधिर एक लाल रंगका गाढ़ा द्रव है। यदि रुधिर अणुवीक्षण यंत्रसे देखा जावे तो मालूम होता है कि पानी जैसे द्रवमें कुछ दाने से तैरते हैं। इस पानी जैसे अंशको रासायनिक रीतिसे जांचनेसे अथवा प्रयोग करनेसे मालूम हुवा है कि इसमें कुछ लवण और कुछ गेसें (gases) घुली हुई होती हैं। गोल दानेसे जो दिखलाई पड़ते हैं उनको रुधिरके कोष समझना चाहिए। इन दानोंको रक्ताणु (corpuscles) कहते हैं। यह दो प्रकारके होते हैं एक लाल दूसरे श्वेत, लाल की संख्या अधिकतर होती है। इन दोनों प्रकारके रक्ताणुओंका पृथक पृथक कार्य्य है। श्वेत तो इस काम के हैं कि यदि कोई शत्रु आजावे तो उसको नाश करें, हानिकारी अणु रुधिरमें घुस आवें तो उनका नाश करना श्वेत रक्ताणुओंका कर्तव्य है। लाल रक्ताणु बड़े उपयोगी हैं, कहना चाहिए कि शरीर उन्हींकी बदौलत खड़ा रहता है, कारण यह कि शरीरके पालनकेलिए ओषजन (Oxygen)की आवश्यकता होती है। इन लाल दानोंमें यह गुण है कि उज्जनको अपने साथ चिमटा लेते है और अपने चक्करमें समस्त शरीरमें पहुंचा देते हैं। इन दानोंमें एक द्रव्य ऐसा होता है जिसके कारण इनमें यह गुण उत्पन्न हो जाता है। इस द्रव्यको (hoemoglobin) हीमोग्लोबिन कहते हैं। स्वस्थ शरीरमें इन दानोंकी संख्या अधिक होनी चाहिए। इनकी कमीसे शरीरकी रंगत पीली पड़ जाती है। जब यह दशा है तो अवश्य ऐसा उपाय करना चाहिए कि इनकी संख्या बढ़े। रुधिरके संबंधमें इतना जाननेके पश्चात यह भी स्पष्ट होना आवश्यक है कि समस्त शरीरमें रुधिर किस प्रकार चक्कर लगाता है।

दिल वा हृत्पिंड (heart) ही रुधिरका मुख्यस्थान है। रुधिर यहांसे ही रवाना होता है और यहां ही वापस आजाता है। रुधिरका शरीरमें भ्रमण करनेका वृत्तांत भली भांति समझनेकेलिए पाठकको चाहिए कि किसी बड़े नगरके पानीके कार्यालयका (water works) ध्यान करे। जिस प्रकार पानी बड़े टंकोंसे रवाना होकर बड़े नलोंमें आता है और फिर छोटे नलोंमें और चलते चलते नगरके प्रत्येक घरमें और घरके कमरोंमें पहुंचता है इसी प्रकार रुधिर दिलसे रवानाहोकर छोटी बड़ी नलोंमें होकर शरीरके समस्त भागोंमें एड़ीसे चोटी तक पहुंच जाता है। पाठक जानते होंगे कि वाटर वर्क्सके (water works) टंकोंपर बड़ा भारी एंजिन लगा होता है और पानीको इस ज़ोरसे ढकेलता है कि ऊंचाईपर चढ़ा देता है। इसी प्रकार हृदयमें भी स्वतः ऐसा होता है कि रुधिरकी धारा बड़े वेगसे चलती है और ऊपर मस्तकको भी चढ़ जाती है यदि किसी मनुष्यकी कोई रुधिरकी बड़ी नली कट जावे तो बड़े वेगसे रुधिर निकलता है। ऐसा हो जानेपर यह भय होता है कि हृदयका समस्त रुधिर न निकल जावे, इस वास्ते यह आवश्यक है कि ईश्वर न करे किसी की रुधिरकी बड़ी नली-धमनी (artery)-कट जाय तो सबसे पहले रुधिरकी धाराको रोकनेका उपाय करना चाहिए। हृदय मनुष्यकी छातीमें बाईं ओर होता है और स्वयम् पम्प (pump) की तरह बड़ी शीघ्रतासे चलता रहता है। हृदयकी चालका पता किसी धमनी (artery) के ऊपर उंगली रखनेसे लगता है। कलाईपर उंगलियां रखकर जो धमनी देखी जाती है उससे हृदयकी चालही मालूम होती है। रुधिरमें गरम सरदी इत्यादिका असर हो जानेसे हृदयकी चालपर भी प्रभाव पड़ता है। इसी कारण तजरुबेकार वैद्य नाड़ी देखकर रोग बतलाते हैं। हृदयके दो बड़े भाग हैं एकमें शुद्ध रुधिर होता है दूसरेमें अशुद्ध। रुधिर अच्छा लाल रंग-

का होता है और अशुद्ध कुछ नीला होता है। शिराओंकाजाल जो समस्त शरीरमें फैला हुआ है, उसके भी दो विभाग हैं। एकका संबंध हृदयके दाहने अशुद्ध रुधिर रखनेवाले भागसे, दूसरे का संबंध बायें शुद्ध रुधिरके भागसे है। अशुद्ध रुधिरका वृत्तान्त जाननेकेलिए किसी बड़े नगरकी सफ़ाईकी नालीका ध्यान कीजिए।

शुद्ध रुधिर अपने भ्रमणमें काममें आये हुए तन्तु (tissue) की कारबन डाइक्साइड (carbon dioxide) को ग्रहण करके अशुद्ध हो जाता है। यह अशुद्ध रुधिर शरीर के सफ़ाईकी नाली में होकर हृदयके दाहने अशुद्ध विभागमें वापस पहुँच जाता है। यह शिराओं-का जाल भी उसी तरह फैला हुआ है जैसा शुद्ध रुधिरवाला। केवल रास्तेका अन्तर है। शुद्ध रुधिर हृदयसे चलकर शरीरमें जाता है, अशुद्ध शरीरसे चलकर हृदयमें आता है। यहाँ आकर वह पड़ा नहीं रहने पाता उसके शुद्ध होनेका भी प्रबंध भली भाँति बना हुआ है। हृदयके पीछे छातीमें ही दो स्पंज (sponge) जैसे धौकनीका सा काम करनेवाले फेफड़े (lungs) हैं। इनका कार्य्य अशुद्ध रुधिरको शुद्ध करनेका है। फेफड़े भी शरीरमें बड़ी अमूल्य वस्तु हैं इनमें गड़बड़ होजानेसे मनुष्य-को अन्तमें जीव ही देना पड़ता है। क्षयी रोग तपेदिक़ या थाइसिस (Pthisis) इन्हींके बिगड़ जानेसे होती है। आजकल नगरोंके गंदे रहनेके कारण और मनुष्योंके आलस्यवश शुद्ध वायुके लिए घरसे न निकलनेके कारण प्रायः युवकोंके फेफड़े बिगड़ जाते हैं और अलमोड़ा नैनीताल रहनेपर भी भारतके अनेक होनहार बालक मृत्युका ग्रास बन जाते हैं। यदि वायुसेवन नियमानुसार करते रहें और घरों गलियोंको स्वच्छ रखनेका प्रयत्न हो तो यह रोग न हो।

अब सुनिए फेफड़े किस प्रकार अपना कार्य्य करते हैं। नीचेकी ओर यह तो फेफड़े एक एक नली द्वारा हृदयके अशुद्ध भागसे मिले होते हैं। ऊपरकी ओर इन दोनोंमेंसे एक एक नलियां चलकर गरदनमें एक होकर हमारे मुंहमें आ जाती हैं। हम जो सांस लेते हैं वह इस नल द्वारा फेफड़ोंमें पहुँच जाता है। गलेमें थोड़ासा प्रबंध इस बातका अवश्य है, कि अंदर जाने वाली हवामेंसे विपरीत अंश रोक लिया जावे-परंतु यदि समस्त वायु अशुद्ध हो तो वह क्या कर सकते हैं। वायु—जिसमें अधिकांश ओषजन होती है और इसीकी अधिक आवश्यकता भी है—फेफड़ोंमें पहुँचती है। उधरसे अशुद्ध रुधिर फेफड़ोंमें आता है। ओषजनसे मिलकर रुधिर शुद्ध हो जाता है परन्तु वायु अशुद्ध हो जाती है। शुद्ध रुधिर तो दूसरी नलीमें होकर हृदयके बाँए और शुद्ध विभागमें पहुंच जाता है और अपने भ्रमणमें पड़जाता है और अशुद्ध वायु—जिसमें अधि-कांश कारबन डाइक्साइड होता है-हमारे सांस-के द्वारा बाहर निकल जाता है। इस प्रकार फेफड़े ईश्वरके अथाह वायुके समुद्रमेंसे कुछ अंश लेकर रुधिरका संशोधन करते हैं और अशुद्ध वायुको बाहर भी निकाल देते हैं। यदि बाहरसे वायु ऐसी ही मिले कि जिसमें गैस उचित मिक़दारमें नहों या और हानिकारक वस्तुकें हों तो इन विचारे फेफड़ों का क्या दोष। मनुष्य अपनी करनीसे ईश्वरकी दी हुई वस्तुओंको खराब कर देता है। इसमें संदेह नहीं कि ईश्वरने इस मनुष्यके शरीरको ऐसा अद्भुत बनाया है कि मनुष्य उस-को पूर्ण रीतिसे समझ भी नहीं सकता। प्रकृतिके नियमोंका पालन न करके यह उस अमूल्य यंत्र (शरीर) को खराब कर डालता है और रोग-ग्रस्त हो जाता है।

पदार्थ किस प्रकार बना है ?

[ले० जगद्विहारी सेठ, बी. एस्-सी.]

यदि आपसे हम प्रश्न करें कि यह बोतल किस चीज़की बनी है, तो आप शायद अपने मनमें हमें ऐसी सहल सी बातको पूछनेकेलिए पागल समझते हुए, तुरंत ही जवाब देवेंगे कि यह बोतल शीशेकी बनी है। परन्तु जिज्ञासु व्यक्तिके मनको केवल इतना ही जानकर तृप्ति नहीं होती कि अमुक वस्तु शीशेकी बनी है, और अमुक मिट्टी नामक एक पदार्थकी बनी है। हमें तो यह जाननेकी इच्छा होती है कि स्वयं ये पदार्थ किस चीज़के बने हैं।

रसायन शास्त्रकी कोई एक प्रारम्भिक पुस्तक ही पढ़ने से हमें इस बातका ज्ञान होने लगता है कि संसारकी अधिकतम वस्तुएँ अन्यान्य वस्तुओंको मिलाकर बनी या बनायी गयी हैं। यह पढ़कर हमें कुतूहल होगा कि शीशेको बालू, सोडा और चूनेको एक साथ गलाकर बनाते हैं; और कदाचित् यह तो हममेंसे बहुतेरे जानते होंगे कि काग़ज़ फटे पुराने चिथड़ोंसे बनाया जाता है। हमें शीघ्र ही इस बातका बोध होने लगेगा कि मनुष्य केवल अन्यान्य वस्तुओंको मिलाकर एक नयी वस्तु बना सकता है अथवा किसी अनेक वस्तुओंके मेलसे बनी हुई वस्तुमेंसे एक दो चीज़ निकाल सकता है; और यह कि संसारमें पदार्थका केवल एक नियत परिमाण मात्र है, जो अनादि और अनन्त है। जितनी वस्तुएं हम आज देखते हैं किसी न किसी रूपमें वे सृष्टिके आदिमें भी विद्यमान थीं। अन्ततः, सृष्टिमें कोई चीज़ भी नवीन नहीं है।

संसारमें जितनेभर भी सम्मेलित द्रव्य हैं वे केवल किन्हीं एकाकी किम्वा मूल पदार्थोंके भिन्न भिन्न संयोग मात्र हैं। संसारमें हमें ढूंढनेसे शायद दो तीन या अधिक लाख सम्मिलित द्रव्य मिलेंगे, परन्तु यह सब केवल थोड़ेसे मौलिकों किंवा मुख्य द्रव्योंमेंके दो तीन या अधिक भागोंसे मिलकर बने हैं।

आज दिन हम प्रायः अस्सी मूल पदार्थोंसे परिचित हैं, और साधारण पुरुष इनमेंसे केवल थोड़ोंके ही नाम तथा गुणसे परिचित हैं। यदि कोई मौलिकोंकी पूरी नामावलीको देखे तो शायद उसमेंके आधे भी तत्त्व वह न पहिचान पायेगा। कुछ मौलिकोंको तो हम भली भाँति जानते हैं; ख़ासकर निम्न लिखित धातुएं, जोकि अपने अपने मूल्यके हिसाबसे आगे पीछे लिखी गयी हैं:—प्लैटिनम, सुवर्ण, रजत, निकल, पारद, अलूमिनियम, रांगा, तांबा, जस्ता, सीसा, लोहा। तदुपरान्त निम्नलिखित गैसोंसे भी प्रायः लोग परिचित होंगे:—ओषजन, उज्जन, नत्रजन, और कुलहरिन (Chlorine)। धातुओं और गैसोंको छोड़कर, हम कर्बनके नामपर पहुंचते हैं। इस मौलिकको सृष्टिमें ऊंचा दरजा मिला है, संसारके बहुतसे पदार्थोंमें इसका बहुत बड़ा भाग है, स्वयं हमारे शरीरमें इसका अंश विद्यमान है—हमारा शरीर मुख्यतः कर्बन, उज्जन, ओषजन और नत्रजनका बना हुआ है।

हां, तो संसारके मौलिकोंकी नामावलीपर ग़ौर करतेहुए ऊपर लिखेहुए पदार्थोंके अतिरिक्त हम कदाचित् और नाम भी पावें जिनसे हम अपनेको थोड़ा बहुत परिचित समझते हों; उदाहरणतः, फास्फोरस, गंधक, पोटाशियम, सोडियम, संखिया, सुरमा, ब्रोमीन, कैलशियम, कोबाल्ट, आयोडीन, मैग्नेशियम, सेलेनियम, शिलाकण और यूरेनियम। इनमें भी कई एक शायद उन्हीं लोगोंको परिचितसे जान पड़ेंगे जिन्होंने रसायनशास्त्रका किञ्चिन्मात्र अवलोकन किया है। इन नामोंके साथ ही साथ हमें एक और भी मौलिकका ज़िक्र कर देना चाहिये। कुछ ही साल हुए प्रकृतिके छिपे

ख़ज़ानेसे यह ढूंढ निकाला गया है। मेरा मतलब रेडियमसे है। इसके ज्ञात होने से विज्ञान-शास्त्रको बहुत ही बड़ा लाभ पहुंचा है।

अबतक मैंने केवल ३१ मौलिकोंका ही नाम लिया है। मुझे शक है कि संसारके शेष मौलिकोंको साधारण पाठक न पहचान सकेंगे। कुछ के नाम सुनिये—

यट्रियम, ज़ीनन, वनाडियम, प्रेज़ियोडिमियम, क्रप्टन, गडोलिनियम*—क्या ही अजीब नाम हैं, उच्चारण करना ही आफ़त है।

बहुतसे मौलिक बड़ी कठिनाइयोंको पार करके केवल रासायनिक प्रयोगशालामें ही निकाले जाते हैं। कुछ ही अपने असली रूपमें या किसी सम्मेलनमें सम्मिलितहुए हर रोज़के काममें आते हैं, और कुछ तो केवल रासायनिक कुतूहलके लिए ही निकाले जाते हैं। हमें इस बातका ख़याल रखना चाहिए कि किसी वस्तुका मूल्य दो बातोंपर निर्भर रहता है। या तो वह संसारमें बहुतही थोड़े परिमाणमें पायी जाती हो, अथवा प्रकृतिने उसको इस प्रकारसे संमिश्रित वस्तुओं अथवा सम्मेलनोंमें छिपाकर रक्खा हो कि उसको इनमेंसे निकालनेमें बहुत ही कठिनाइयों और ख़र्चेका सामना करना पड़े। उदाहरणतः, आपको चूनेका एक पीपा थोड़े से आनोंमें मिल जायगा। अब हमें मालूम है कि चूनेमें आधेसे भी अधिक भाग, कैलशियम नामक मौलिकका है। समझिये कि आप बेंचनेवालेसे यह कहें कि भाई हमें सब चूना तो न चाहिये सिर्फ़ उसमेंका कोई आधा ही हिस्सा कैलशियम मात्र ही चाहिये, हमें तुम इसमेंसे कैलशियमभर निकाल दो। बाक़ीकी हमें कुछ ज़रूरत नहीं। चूनेका प्रायः तीन चौथाई भाग कैलशियमका होता है, पर आप सिर्फ़ आधा ही हिस्सा मांगते हैं। अब यदि विक्रेता आपका हुक्म बजा लावे, और आप जितना कैलशियम मांगते थे, उतना प्रस्तुत करके आपके सामने उसका "बिल" पेश करे तो आपको बड़ा ही अचम्भा होगा। आपने केवल पीपेके आधे ही हिस्सेको मोल लेनेकी इच्छा प्रकट की थी। शायद आप आधी चीज़केलिए पूरे पीपेके दाम देनेको भी तैय्यार हो जाते, यद्यपि आप मन ही मन यही सोचते रहे होंगे कि आधे पीपेभर चीज़ लेंगे, आधा ही दाम देना पड़ेगा। अब अगर हम यह मान लें कि आपको सचमुच ही कैलशियमका भाव नहीं मालूम है, तो आप विक्रेताका हिसाब देखकर ज़रूर यही समझेंगे कि हो न हो उसने कोई भूल की है—क्योंकि असलमें आपके पास थोड़ेसे रुपयोंके बिल आनेके बजाय कमसे कम ५० पौंड यानी ७५० रुपयोंका बिल आवेगा। ऊपरसे देखनेसे तो यह बड़ी ही ताज्जुबकी बात जान पड़ती होगी कि मामूली सी चीज़का एक हिस्सा प्रकृतिमें इतनी इफ़रातसे हो और फिर भी इतना महंगा हो। कैलशियमके इस भारी मूल्यका कारण यही है कि उसको उसके सम्मेलनोंमेंसे अलग करनेमें बहुत बड़ा ख़र्च होता है। कुछ साल हुए कैलशियम धातुका मूल्य इससे कहीं अधिक था, क्योंकि तब जिस विधिसे वह निकाला जाता था उसमें बहुत ही ज़्यादा ख़र्चा बैठता था।

मौलिकोंकी नामावली पर ग़ौर करनेसे शायद लोग यह समझें कि अगर इन सब मौलिकोंके गुणोंसे परिचय हो तो इनसे बने हुए सम्मेलनोंके गुण भी हम बतला सकेंगे। परन्तु बात इससे बिलकुल भिन्न है। जब दो या अधिक मौलिकोंके मिलनसे एक सम्मेलन तैय्यार होता है, तब ये मौलिक अपने अपने निजीगुण बिलकुल खो बैठते हैं। वास्तवमें यह समझना बिलकुल स्वाभाविक है कि यदि दो गैसोंको मिला दें तो उनका सम्मिश्रण बन जायगा। यह

*Yttrium, Xenon, Vanadium, Praseodymium, Krypton, Gadolinium.

सच है कि हम दो गैसोंका इस प्रकारका मिश्रण बड़ी ही सुगमतासे बना सकते हैं, परन्तु यह मिश्रण वैसा ही है जैसा बालू और शकरका–दोनों ही के निजी गुण इस मिश्रणमें मौजूद रहते हैं, और उपयुक्त तरकीबोंसे हम दोनोंको अलग अलग कर सकते हैं। परंतु इस मिश्रण और रासायनिक सम्मेलनमें ज़मीन आस्मानका फ़र्क़ है।

रसायन-शास्त्रके अध्ययनमें प्रायः पहला प्रयोग जो हम देखेंगे उससे हमें वह परिणाम मालूम होगा कि सामान्य जल केवल दो गैसों–ओषजन और उज्जन का रासायनिक सम्मेलन मात्र है। शायद इस बातपर हमें शीघ्र विश्वास न हो—कमसे कम हम कुछ और ही समझते रहे होंगे। क्या यह केवल सिद्धांत ही सिद्धांत है, केवल मनः सृष्टि मात्र है, कि पानी दो गैसोंके सम्मेलनके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, अथवा हम इसकी पुष्टिमें प्रमाण भी दे सकते हैं? यह बात बड़ी ही सुगमतासे जानी जा सकती है। यदि हम पानीसे भरे बरतनमें विद्युत् धाराको प्रवाहित करें तो पानी धीरे धीरे लुप्त होता जाता दिखलायी पड़ेगा। यदि हम पानीमेंसे निकलता दिखलायीदेती हुई गैसोंको एकत्रित करनेका प्रबन्ध करें तो हम देखेंगे कि ओषजन और उज्जनके अतिरिक्त पानीसे और कुछ भी नहीं निकाला जा सकता।

आपको अब मालूम हुआ होगा कि ये दोनों मौलिक जब एक दूसरेसे सम्मिलित होजाते हैं तब किस प्रकार उनके निजी गुणोंका लोप हो जाता है। हमें यह बात मालूम है कि उज्जन बड़ा ही ज्वलनशील पदार्थ है, परन्तु कोई भी आदमी जिसके होश हवास दुरुस्त होंगे पानीमें आग लगानेकी कोशिश न करेगा। ओषजनके साथ भी हमने कई एक चित्ताकर्षक प्रयोग किये हैं। यदि किसी बोतलमें ओषजन भरी हो और उसमें थोड़ा थोड़ा सुलगता हुआ अंगारा छोड़ दिया जाय, तो वह भकसे जल उठता है और उसमेंसे अग्नि शिखा निकलने लगती है। केवल अंगारा ही नहीं, प्रायः सभी पदार्थ ओषजनमें जलाये जा सकते हैं। घड़ीकी कमानी जो लोहेकी बनी होती है, कीलोंके छोटे छोटे टुकड़े, तथा अन्यान्य देखनेमें मुश्किलसे जलनेवाले पदार्थ ओषजनमें बड़ी आसानीसे जलाये जा सकते हैं। इन सब प्रयोगोंको देखकर हमारे मनमें यही भावना हो सकती है कि ओषजन जलानेमें बहुत ही सहायता देता है। परन्तु यह बिलकुल स्पष्ट है कि जब ओषजन उज्जनका हाथ पकड़कर उससे मिलकर जल बनाता है तब वह अपने इस मुख्यतम गुणको एकदम तिलाञ्जलि दे देता है। भोलेसे भोला आदमी यह कभी स्वप्नमें भी न सोचता होगा कि सुलगती हुई बत्तीसे पानीके अन्दर लौ निकलने लगेगी। ऐसी असम्भवनीय बातें केवल जादूगरोंके खेलोंमें ही देखनेमें आ सकती हैं।

परन्तु वास्तवमें होता क्या है जब कि ओषजन और उज्जनका परस्पर सम्बन्ध हो जाता है। हम अपनी आँखोंसे तो देख नहीं सकते कि क्या होता है, हाँ, अपने मनकी आँखोंसे अवश्य क्या क्या होता है इसकी अच्छी तसवीर देख सकते हैं। इस चित्रमें हम देखते हैं कि सब पदार्थ बड़े ही नन्हे नन्हे टुकड़ोंके बने हुए हैं। ये कणिकाएं इतनी छोटी हैं कि अच्छेसे अच्छे अणुवीक्षण यन्त्रकी सीमासे भी कहीं दूर हैं। इन कणोंका व्यास एक इंचका क़रीब पांच करोड़वां हिस्सा होगा। परन्तु केवल इतना कहदेनेसे कि इन कणोंका परिमाण इतना कम है हमारे मनपर उनकी छुटाईका ज़्यादा असर न होगा। एक दूसरी ही तरकीबसे इन मूल कणिकाओंकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म लघुताका अन्दाज़ा लगाया जा सकता है।

अणुवीक्षण यन्त्रद्वारा किसी सूक्ष्म वस्तुको देखतेहुए, ख़ाली आंखोंसे बिना यन्त्रकी सहायताके, यदि हम इस वस्तुके असली आकारको भी देखें, तो हमें बड़ाही कौतूहल होगा। हम देखेंगे कि जो वस्तु धूलका एक चिह्नमात्र ज्ञात होती है, उसीका स्वरूप एक सुन्दर घोंघेका सा है तदुपरान्त एक बढ़िया अति सामर्थ्यशाली (powerful) अणुवीक्षक द्वारा एक जीवसूची (microbe) को देखिये। यह जीवसूची बिलकुल दृष्टि अगोचर है, इतना छोटा है कि छोटे चिह्नकी भांति भी वह नंगी आंखोंसे नहीं दिखलायी देता मामूली तौरसे उसकी स्थितिका ज्ञान आपको बिलकुल नहीं हो सकता। सूक्ष्मदर्शक आपको दिखलाता है कि इतनी छोटी सी चीज़में कितना भाण्डार भरा पड़ा है। रक्ताणुओंके मध्यमें स्थित छोटे २ चिह्नसे जो दिखलायी देते हैं वे बैक्टीरिया (bacteria) हैं। ये सब ख़ाली आँखोंसे बिलकुल नहीं दिखलायी देते। ये वस्तुएं वास्तवमें बहुत ही छोटी हैं, परन्तु जिन उपर्युक्त कणिकाओंद्वारा पदार्थ संगठित है, उन कणिकाओंकेलिए ये सूक्ष्म जीवसूची भी बड़े बड़े दानव हैं। इन जीवसूचियोंमें ही एक एकमें करोड़ों अरबों इस प्रकारके कण होंगे। अधिक आगे जानेकी ज़रूरत नहीं; इसमें सन्देह नहीं कि प्रकृतिकी इन सूक्ष्म ईंटोंकी लघुताका पूरा पूरा ज्ञान करना हम लोगोंकेलिए असम्भव है। केवल इतना ही जानना अभी हमारेलिए काफ़ी है कि सब पदार्थ अत्यन्त सूक्ष्म कणोंसे बने हुए हैं। इन्हीं कणोंको हम (atom) परमाणुके नामसे पुकारते हैं।

जितने मौलिक हैं उतने ही प्रकारके परमाणु भी हैं। यथा, लौहका परमाणु, सुवर्णका परमाणु, उज्जनका परमाणु, ओषजनका परमाणु, कर्बनका परमाणु, इत्यादि प्रायः अस्सी प्रकारके परमाणुओंका ज्ञान है। यहांपर एक और बात बतला देना उचित है कि जिन उक्त प्रकारकी कणिकाओंसे जल-निर्मित है वे परमाणु नहीं कहलातीं। क्योंकि जलकी सबसे छोटी कणिका जो जल रूपमें रह सकती है वह उज्जनके दो और ओषजनके एक परमाणुके संयोगसे बना है। परमाणुओंके इस छोटेसे संयोगको हम जलका अणु कहकर पुकारते हैं। यह बिलकुल स्पष्ट है कि जलका अणु ही पानीका सबसे छोटा भाग हो सकता है। इस जलाणुसे छोटी कणिकाका पानीके ही रूपमें होना असम्भव है; क्योंकि यदि उसको भी विभक्त कर दें तो वह पानी नहीं रहती, किन्तु उज्जन और ओषजन वाष्पोंमें परिणत हो जाता है।

परमाणुओंका समुदाय मात्र अणु है। इस समुदायमें एक ही प्रकारके कई परमाणु भी हो सकते हैं, एवं अन्य अन्य प्रकारके कई परमाणुओंके संयोगसे भी एक अणु बन सकता है। हम कह सकते हैं कि उज्जनका अणु होता है, परन्तु यह अणु केवल दो या अधिक उज्जनके परमाणुओंका संयोग मात्र है। किन्हीं किन्हीं संयुक्त द्रव्योंके अणु भिन्न भिन्न प्रकारके अनेकों परमाणुओंके समुदाय होते हैं। उदाहरणतः, फिटकरी नामक सम्मेलनके एक अणुमें सौ के लगभग परमाणुओंका समुदाय रहता है; इसी प्रकार किन्हीं अन्य सम्मेलनोंके एक एक अणुमें अनेक अनेक सहस्रतक परमाणु होते हैं।

यह स्मरण रखनेकी बात है कि अब हम इस तस्वीरका ध्यान करने लगे हैं कि मूल परमाणु छोटे छोटे समुदायोंमें एकत्रित होकर अणुओंका निर्माण करते हैं, परमाणु एक दूसरेको पकड़ सा लेते हैं, और भिन्न भिन्न परमाणुओंकी यह पकड़नेकी शक्ति भी भिन्न भिन्न होती है। उदाहरणार्थ, जब हम ओषजन और उज्जनका परस्पर संयोग कराते हैं तब प्रत्येक

ओषजनका परमाणु दो उज्जनके परमाणुओंको अपनी तरफ़ खींच लेता है। अतएव जब हम पानीमें विद्युद्वारा प्रवाहितकर उसको उसकी जन्मदाता वाष्पोंमें खंडीकृत कर देते हैं तब हमें जितना घनफल ओषजनका मिलता है उससे दूना उज्जनका। मामूली नमकमें बड़ी हा सादी सहयोगिता है-सोडियम और कुलहरिन (Chlorine) नामक मूलतत्त्वोंका एक एक परमाणु मिल कर लवणका एक अणु बनाता है। इस प्रकार, सुवर्णका एक अकेला अणु कुलहरिनके तीन अणुओंको पकड़कर सुवर्णहरिद (Gold chloride) का एक अणु बनावेगा जो कि फ़ोटोग्राफ़ी अर्थात् तस्वीर खींचनेकी कलामें काममें आता है। अन्य भांतिके परमाणुओंमें चार परमाणुओंको पकड़ लेनेकी शक्ति होती है, एवं कुछ ऐसे भी हैं जिनकी भूख इससे भी अधिक है। किन्हीं पदार्थोंके, जैसे नत्रजन और कर्बनके परमाणुओंमें कई ग्राहक शक्तियां होती हैं। किसी समय नत्रजनका परमाणु एक, किन्हीं दशाओंमें तीन और कभी कभी पांच अन्य परमाणुओंको पकड़ सकता है। ख़ैर, सम्प्रति हमें केवल इतना ही बतलाना है कि भिन्न भिन्न मूल परमाणु नाना प्रकारसे परस्पर संयुक्त होते हैं और इस भांति सब सम्मिलित पदार्थोंके अणुओंका निर्माण होता है।

सजीव निर्जीव और वनस्पति

[अ० मधुमङ्गल मिश्र, बी० ए०, एस० सी]

हम लोगोंको प्रकाश और गरमी सूर्यकी किरणोंसे मिलती है। अग्निद्वारा जो गरमी हम लोगोंको मिलती है वह भी एक प्रकारसे सूर्य से ही प्राप्त होती है।

मट्टी, पत्थर या शरीरपर जब सूर्यकी किरणें पड़ती हैं तब उनसे पदार्थोंमें गरमी आ जाती है। पीछेसे वह गरमी उन पदार्थोंमेंसे निकल वायुमें मिल उसे गरम कर देती है। कहना नहीं होगा कि मनुष्यका शरीर सूर्यकी किरणोंसे अधिक काल तक गर्मी नहीं लेता; घर, वृक्ष वा कपड़ोंकी आड़ होनेकेकारण थोड़ी ही गरमी शरीरमें प्रवेश कर पाती है और जो गरमी आती है वह सञ्चित न होकर वायुमें मिलकर बहुधा निकल जाती है। मट्टी, पत्थर और वनस्पति अपना स्थान नहीं छोड़ सकते हैं। इसलिए वे सूर्यके तापको लगातार सहते रहते हैं, और धीरे धीरे अधिकाधिक गरम होते जाते हैं, सूर्यास्त होनेपर मट्टी, पत्थर तो गरमी वायुमें दे देते हैं पर वनस्पति ऐसा नहीं करते। वे सूर्यकी किरणोंको ग्रहण करते रहते हैं। जड़के द्वारा खींचे हुए रसके तथा सूर्यके किरणोंके मिश्रणसे कुछ ऐसा विकार उत्पन्न होता है कि वे मिलकर वनस्पति शरीरको पोषण करने लगते हैं। वनस्पतियोंकी इस वृद्धिमें कार्बन संचित होता रहता है जब लकड़ी जलायी जाती है तब पूर्व संचित और परिवर्तित सूर्यकी गरमी ही आगके रूपमें मनुष्यको उष्णता देती है। यों देख पड़ता है कि जो आग लकड़ी वा पत्थरके कोयलेसे* मिलती है वह किसी दूसरे समयमें सूर्यके किरणोंके द्वारा ही प्राप्त हुई थी और संयोग क्रिया द्वारा रूप बदलके लकड़ी हो गयी थी।

हम देखते हैं कि रेलकी इञ्जनमें पत्थरका कोयला डालकर गरमी उत्पन्न की जाती है वह गरमी पानीको खौलाके भाप बनानेका और भापकी उष्णताद्वारा इंजनके पहिये घुमानेका काम करती है अथवा इसे हम यों कह सकते हैं कि उष्णता कार्य रूपमें परिणत होती है अर्थात् उष्णताका रूप भेद कार्य वा कार्य-

---

* पत्थर का कोयला जङ्गलोंके भूमिके भीतर धँसने और दब जानेसे काल पाकर बनता है। यों वह लकड़ीका ही रूपान्तर है।

कारक शक्ति है। इसका उलटा उदाहरण भी दिया जा सकता है। यदि हम एक पत्थरको लेकर पहाड़पर चढ़ें तो हम एक कार्य करेंगे अब यदि उस पत्थरको ऊपर जाकर हम गिरा देवें तो साधारण प्रकारसे जान पड़ेगा कि कार्य करनेमें जिस शक्तिका व्यय हुआ था वह नष्ट हो गयी। पर वास्तवमें ऐसा नहीं होता है। वह पत्थर ऊंचेसे जब नीचे गिरता है तब नीचेकी भूमिको गरम कर देता है। यहां देख पड़ता है कि कार्य उष्णताके रूपमें पलट गया। यों विश्वमें सदा उष्णता और कार्यका परिवर्तन होता रहता है। हम भोजनमें संचित उष्णतासे अपने हाथ पैर हिलाते वा मानसिक काम करते हैं और हाथोंको रगड़नेका काम करके गरमी उत्पन्न कर लेते हैं। सूर्यका ताप वायुको गरम करता है और उसके परमाणुओंका अंतर बढ़ाकर उसे पतली कर देता है। पतली वायु हलकी हो ऊपर उठनेका कार्य करती है। यों सूर्यका ताप वायुको ऊपर ले जानेका कार्य करता है। इन उदाहरणोंसे जान पड़ता है कि उष्णता ताप वा गरमी, का रूप भेद कार्य, क्रिया वा काम है। (ये तीनों शब्द पर्यायवाची हैं)।

इच्छापूर्वक काम होना जीवनका लक्षण है ऐसा कुछ पाश्चात्य विद्वानोंका कथन है। रेलका इंजन गाड़ियां खींचनेका काम करता है पर इच्छापूर्वक न होनेसे इंजन सजीव नहीं कहा जाता। नदीका जल गांवोंको वहा ले जाता है, पर वह इच्छापूर्वक न होनेसे सजीव नहीं कहा जा सकता। गीतको सुनकर, प्रसन्न हो हम लोग ताल देने और शिर हिलाने लगते हैं, यह कार्य इच्छापूर्वक होता है इसलिए हम सजीव हैं। जलपर उतराता हुआ मेंडक अपनी टांगें फेंकता है। यह कार्य इच्छापूर्वक होता है इस लिए मेंडक सजीव है। सजीव होनेका एक लक्षण कुछ न कुछ काम करते रहना है। हम चाहे बैठे ही क्यों न रहें, पर श्वास लेनेका, फेफड़ेके उठने बैठनेका, रक्तप्रवाह का कार्य होता ही रहता है। नाड़ी चलनेका कार्य इच्छापूर्वक नहीं होता क्योंकि सोतेमें भी नाड़ी चलती ही रहती है। जो कुछ हो इस विवादसे यहां कुछ प्रयोजन नहीं है। वक्तव्य केवल इतना ही है कि जबलों श्वास क्रिया और रक्त-संचलनका कार्य शरीरमें होता रहता है तबलों मनुष्य सजीव समझा जाता है, इनके बन्द होते ही निर्जीव कहाता है।

श्वास लेने और रक्त-संचलनका कार्य होनेमें कुछ बल या शक्ति लगती है। शारीरिक परिश्रम करते समय अधिक बल लगता है। जो कुछ हो मनुष्य चाहे अधिक काम करे चाहे स्वल्प, उसे जबलों जीता है कुछ बल वा शक्तिका व्यय करना ही पड़ता है।

पत्थरके कोयलेमें कारबन और हाइड्रोजन (उज्जन) रासायनिक संयोगसे परस्पर मिले रहते हैं। यदि कोयला जलाया जावे तो वायुके आक्सीजिन (अम्लजन) के संयोगसे अर्थात् कारबन और अम्लजन मिलकर कारबोनिक एसिड उत्पन्न होता है, और हाइड्रोजन तथा आक्सीजन मिलकर जल उत्पन्न होता है। और कारबन तथा हाइड्रोजनके संयोगके टूटनेपर कुछ गतिशील शक्ति, ताप वा प्रकाशके रूपमें प्रकट होती है। यह ताप इतना अधिक हो उठता है कि कोयला बलता कहा जाता है। यह उष्णताके रूपमें जो शक्ति निकलती है उसका कई प्रकारसे प्रयोग किया जा सकता है। यह शक्ति कोयलेमें अप्रकाश रूपसे विद्यमान थी।

मरे जीवके शरीरमें भी कारबन, हाइड्रोजन तथा अन्यान्य तत्त्व उपस्थित रहते हैं। यदि मृत शरीर जलाया जावे तो आक्सीजनके संयोगसे कार्बोनिक एसिड और जल उत्पन्न होते हैं। और कुछ थोड़ा सा पदार्थ जो जल नहीं सकता शेष रह जाता है; जैसे कोयलेकी राख बच रहती है। शवके जलानेपर जो गरमी

उत्पन्न होती है वह कई प्रकारके रासायनिक संयोगसे मिले तत्त्वोंके विलगानेके कारण उत्पन्न होती है। शव और कोयलेसे गरमी तबलों प्रकट नहीं होती जबलों आक्सीजनका रासायनिक संयोग नहीं होता। साधारणतः स्पर्शसे वे ठंढे बोध होते हैं।

जीते जीवका शरीर भी उन्हीं तत्त्वोंके मिश्रणसे बना रहता है जो मृत शरीरमें होते हैं। अन्तर केवल इतना ही होता है कि सजीव शरीर वाह्य पदार्थोंसे कुछ अधिक गरम रहता है और निर्जीव शरीर ठण्ढा रहता है। सजीव शरीरके गरम रहनेका कारण यह है कि श्वासके द्वारा लीगयी वायुके आक्सीजनके योगसे कार्बोनिक एसिड और जलकी भाप लगातार बनती रहती हैं और रासायनिक विलगावकी गरमी धीरे धीरे उत्पन्न होती रहती है। इस कार्यके धीरे धीरे होते रहनेके कारण थोड़ी ही गरमी उत्पन्न होती है और वाह्य पदार्थोंसे थोड़ा ही अधिक गरम शरीर पाया जाता है। परन्तु निर्जीव शरीरके जलानेमें ही बहुत सी गरमी उत्पन्न हो जाती है क्योंकि अधिक आक्सीजनके उपयोगसे अप्रकाश रूपसे विद्यमान रासायनिक संयोगजन्य सम्पूर्ण गरमी प्रकट हो आती है वही मृत शरीर यदि जलाया न जावे और धीरे धीरे वायुके लगनेसे वह सड़े और सूखे तब भी कार्बोनिक एसिड, जल (भाप वा द्रव रूपमें) तथा उष्णता धीरे धीरे प्रकट होगी। उष्णताकी मात्रा अधिक समयमें थोड़ा थोड़ा करके उतनी ही ठहरेगी जितनी कि आगमें शरीरके जला देनेसे स्वल्प कालमें ही निकल पड़ती है।

कोयला जब जलता है तब उसका ऊपरी भाग भर वायुके आक्सीजनसे मिलकर जलता है। उसके भीतरके अंशोंसे आक्सीजनका मेल नहीं हो पाता। बाहरी और भीतरी अंश सभी समकालमें आक्सीजनका योग पाकर जल नहीं सकते। इसके विपरीत सजीव प्राणीके सभी अवयव चाहे भीतरी हों चाहे बाहरी, निरन्तर वायुके आक्सीजनको पाते रहते हैं। श्वास द्वारा ली हुई वायुका आक्सीजन रक्तमें मिलकर शरीरके भीतरकी शिराओं नसों और अंतड़ियों आदिमें पहुंचता है, और भीतरके तत्त्वोंसे मिलकर कार्बोनिक एसिड, जल वा भाप तथा गरमी उत्पन्न करता है। सजीवताके लक्षणकी दोनों क्रियाएँ अर्थात् श्वासोच्छ्वास और रक्तप्रवाह इस बातके प्रमाण हैं कि आक्सीजन शरीरके भीतरी सभी नाड़ियों और केन्द्रोंमें पहुंच रहा है, और उसके योगसे गरमी उत्पन्न होती रहती है। यह गरमी कार्यरूपमें बदल जाती है। इसी गरमीके कारण सजीव प्राणी हाथ पैर हिला सकता है अथवा सोचनेका कार्य कर सकता है।

जलतेहुए कोयलेसे निकली गरमी भी कार्यरूपमें बदल दी जा सकती है, जैसे रेलके इंजनके कोयलेसे निकली उष्णता कुल गाड़ीको चला सकती है। कोयलेसे उत्पन्न गरमीका यदि उपयोग न किया जावे तो वह वायुमण्डलका कुछ भाग गरमकरके नष्ट हो जाती है। पर सजीवके शरीरसे उत्पन्न गरमी और नहीं तो श्वासोच्छ्वासके और रक्त-प्रवाहके कार्य करती ही रहती है। जब सजीव प्राणीको भारी काम करना पड़ता है तब उसे अधिक बल अथवा उसके रूपभेद अधिक गरमीकी आवश्यकता पड़ती है, और वह लम्बी लम्बी सांस खींचकर अधिक आक्सीजन भीतर ले जाता है। इस तरह विशेष कार्बोनिक एसिड तथा जल और गरमी तीनों उत्पन्न होता हैं। जलता कोयला ऊपर ही ऊपर आक्सीजनके मेलसे जितनी गरमी उत्पन्न कर सकता है उससे अधिक नहीं उत्पन्न कर सकता। पर, यदि अधिक हवा या आक्सीजिन उस पर होकर निकलने लगे, जैसे पंखा झलने से या फूक देनेसे, तो अधिक गरमी पैदा होने लगेगी।

शरीरके पदार्थोंका यों बिलगाव सदा होता

रहता है। कार्बोनिक एसिड और पानी या भाप-का बनना और बिलगाव होने में अप्रकाशरूप गरमीका प्रकट होना आदि तीनों कार्य सजीव प्राणीके शरीरमें सदा होते रहते हैं। यों सदा व्यय होता रहता है तो उसकी पूर्ति भी कहींसे क्रमशः होती रहनी चाहिए नहीं तो इस कार्य-का कहींपर शीघ्र ही विराम होना चाहिए। इसकी पूर्ति भोजनसे होती है। सजीव प्राणी-का खाया हुआ भोजन पचके रस बनकर रक्त द्वारा शरीरके सभी भागोंमें पहुंचा करता है। और रासायनिक संयोगसे वे पदार्थ बनजाते हैं जिनके आक्सीजनके मेलसे अप्रकाशरूप गरमी व्यक्त होती है। सजीवोंकी यह चैतन्य शक्ति उनकी निर्जीव पदार्थोंसे भिन्नता बतलाती है, अर्थात् बाहरी पदार्थ भोजनआदिको ग्रहण कर पचाके, रासायनिक क्रियाद्वारा, शरीरके अवयवोंका बनाना और फिर वायुके आक्सी जनके योगसे कार्बोनिक एसिड, भाप और गरमी निकालना जिसके द्वारा वह कार्य करता है, ये दोनों कार्य सजीव प्राणीके समकालमें ही होते रहते हैं अर्थात् एक ओर संचय और दूसरी ओर क्षय ये दोनों कार्य साथ ही साथ होते रहते हैं। निर्जीव पदार्थोंमें संचय और क्षय भिन्न भिन्न कालमें होते हैं। मृत शरीरके अवयवोंका संचय जीवित दशामें हुआ रहता है, वह अग्नि के मेलसे शीघ्र ही वा काल पाकर धीरे धीरे भिन्न कालमें नष्ट होता है। कोयलेने वृक्षके शरीरकी दशामें सूर्यसे जो गरमी और कारबन-का संचय किया था वह कालान्तरमें अग्निके संयोगसे आक्सीजनसे मिलकर धीरे धीरे उत्पन्न होता है।

वनस्पति भी सजीव हैं। उनमें इच्छापूर्वक गति पायी जाती है। प्रकाशकेलिए उनकी डाल प्रकृत दिशाको छोड़ दूसरी ओर जाती हुई पायी जाती हैं। उनमें और अन्यान्य सजीव प्राणियोंमें इन बातोंमें समानता है:—

(१) उनमें सदा नये तत्वोंका शरीर बनता रहता है और इस भांति बल या शक्ति अथवा गरमीका संचय होता रहता है।

(२) उनमें आक्सीजन पत्तों वा फेफड़ोंके द्वारा सदा खिंचता रहता है और आक्सी जिनके मेलसे शरीरके जीवित अवयवोंमें परिवर्तन होता रहता है अर्थात् कार्बोनिक एसिड बनता और गरमी निकलती रहती है।

(३) उनमें अपने तुल्य नये प्राणी वा वनस्पति उत्पन्न होते हैं।

जीवधारियोंके समान वनस्पतियोंको भी आक्सीजनकी आवश्यकता होती है। परन्तु उनके शरीरके भीतर आक्सीजिनकी आवश्यकता न्यून ही होती है अर्थात् जितने शीघ्र नये तत्वोंके मेलसे उनका नया शरीर बनता है उतने शीघ्र आक्सीजिनके योगसे कार्बोनिक एसिड और गरमीका उत्पन्न होना नहीं होता अर्थात् व्यय कम होता है। इस प्रकार वृक्षकी काया सदा बढ़ती रहती है और जब वह मरता वा नष्ट होता है तब बहुत सा सञ्चित शरीर छोड़ जाता है जिसमेंसे गरमी तथा कार्बोनिक एसिड पीछे-से निकल सकते हैं। और जिन तत्वोंके मेलसे शरीर बना रहता है उनका बिलगाव आक्सी-जन वा अग्निके संयोगसे हो जाता है। युवा प्राणीके शरीरकी नयी बनावट और व्यय दोनों प्रायः समान ही होते हैं। बालकोंका शरीर तो बढ़ता है पर आगे चलकर यह बढ़ना बन्द हो जाता है पर वनस्पतियों में तो यह बाढ़ यावज्जीवन होती रहती है। यह सजीव प्राणियों और वनस्पतियोंमें पहला अन्तर है।

उनमें यह एक अन्तर और है कि वनस्पति अपने शरीरके बनानेवाले पदार्थोंका संग्रह निर्जीव पदार्थ मट्टी औ जलसे कर लेता है परन्तु अन्यान्य प्राणी अपना जीवन-निर्वाह वा शरीर पोषण निर्जीव पदार्थोंसे नहीं कर सकते। वनस्पति जलके योगसे मट्टीमें उपस्थित द्रव्यों-

को चूसकर अपना जीवित शरीर बना लेते हैं पर और सजीव प्राणी मट्टी वा कीचड़ खाकर जीवन-निर्वाह नहीं कर सकते। सभी हरे वनस्पति वायुके कार्बोनिक एसिडमेंसे कार्बन निकाल लेते वा प्राप्त करते हैं: पर और जीवधारियोंको वह वनस्पतियोंसे अथवा दूसरे जीवधारीके मांससे प्राप्त होता है। जीवधारीका भोजन दूसरे जीवधारीका शरीर है। कहा भी है कि 'जीवो जीवस्य भोजनं' अर्थात् एक जीव दूसरे जीवको खाता है अथवा यों कहें कि सबल प्राणी निर्बल प्राणीको मारकर खाता है। बड़ी मछली छोटीको निगल जाती है। मांसाहारी जीव शाक भोजी मृगादिको खाते हैं। मनुष्य मांस और साग दोनोंको खानेवाला है। मांस प्राप्त करनेमें दुर्बल जीव छटपटाता और कराहता है उसे देख कुछ दयालु जनोंने मांस भक्षणका निषेध किया है। वनस्पतियोंके काटने वा मारनेके समय पीड़ा लक्षित नहीं होती, इसलिए उसका खाना सर्वसम्मत है। जो कुछ हो वनस्पतिभिन्न जीवधारी अपने शरीरकी रचना दूसरे प्राणीके मरे शरीरका भोजन करके प्राप्त कर सकते हैं अन्यथा नहीं। जीवधारियोंमें निर्जीव पदार्थ नमक थोड़ी मात्रामें और जल अधिक परिमाणमें ग्रहण किया जाता है। इन दो को छोड़ और जो निर्जीव पदार्थ ग्रहण होते हैं उनकी मात्रा नहींके बराबर है। निर्जीव पदार्थोंसे शरीर बना सकना वनस्पतियोंका एक ऐसा गुण है जो उन्हें अन्य प्राणियोंसे बिलगाता है।

एक और अन्तर वनस्पतियों तथा सजीव प्राणियोंमें यह है कि वनस्पति एक स्थानसे दूसरे स्थानपर नहीं जा सकते पर अन्यान्य जीवधारी स्थान परिवर्तन कर सकते हैं। स्थान परिवर्तनशील जीवधारी अपना भोजन चल फिरके प्राप्त कर ले सकते हैं इसलिए प्रकृति वा प्रकृतिके स्वामी, विधाता सामर्थ्यशाली ईश्वरने उन्हें मिट्टी वा पत्थरसे भोजन उपार्जन करनेकी शक्ति नहीं दी; पर निश्चल तथा निश्चेतन प्रायः वनस्पतियोंको मट्टी वा पत्थरमेंसे जलका सहायतासे पोषण-सामग्री चूस निकालनेकी शक्ति दी है। अथवा अन्यान्य जीवधारियोंकेलिए भोजन या पोषक पदार्थ प्रस्तुत करनेका कार्य सौंपा है। इस प्रकृतिके अधिष्ठाता रचनाकुशल ईश्वरकी अलौकिक कुशलताकी बलिहारी है।

दुग्ध व्यवसाय

[ले०, विश्वनाथ गुप्त बी० एस्० सी०]

भारतवर्षके बड़े बड़े नगरोंको शुद्ध दूध जुटानेके लिये दूधके कार्य्यालयोंका स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक है। कोई कोई बड़े नगर तो जागृत अवस्थाको प्राप्त होकर कार्य्यक्षेत्रमें अवतीर्ण हो गये हैं। यहां तक कि बम्बई और कलकत्तेमें पूछ पांछ हो रही है कि किन उपायोंद्वारा नगरभरकेलिये शुद्ध दूध जुटानेका नियमित प्रबन्ध हो सकता है। ये कार्य्यालय नियत कियेहुए अफ़सरोंकी देख रेखमें रहेंगे। भारतीय ग्वालोंका इस विषयमें उन्नति करना कठिन है। इस बातमें कोई सन्देह नहीं कि विना शिक्षाके उनकी उन्नतिमें अधिक समय लगेगा। अशिक्षित होनेके कारण उनकी समझमें यह बात नहीं आसकती कि वर्तमान रीतियोंसे वे अपने ग्राहकों तथा उनकी सन्तानोंका स्वास्थ्य किस प्रकार नष्ट कर रहे हैं। अभी उनके ध्यानमें यह बात नहीं जमी है कि मिलावटकी वर्तमान रीतियोंके त्याग करनेपर भी खरे व्यवहारसे दूधके व्यवसायमें उत्तम लाभ हो सकता है।

यहांपर यह कहना अत्युक्ति न होगा कि दूधके कार्य्यालयोंकी स्थापना और ग्वालोंकी

उचित शिक्षाकी ओर ध्यान दिये बिना भारतवर्ष के करोड़ों मनुष्योंकेलिये शुद्ध दूधका उपस्थित करना यदि असम्भव नहीं तो कठिन होगा। सच पूछिये तो कोई भी व्यक्ति इसे उचित समयमें पूर्णताके शिखरतक पहुँचानेमें समर्थ न होगा। उचित अवलम्बनों और उपयुक्त कार्य्यकर्ताओंकी कमीके कारण कार्य्यके अपूर्ण रहजानेमें कोई सन्देह नहीं। इसीलिए ग्वालोंकी शिक्षाकी ओर ध्यान दिलाया गया है जिससे कि उनमें वर्तमान वैज्ञानिक रीतियोंपर कार्य्य करने वाले दुग्धव्यवसायी उत्पन्न हो सकें। इस अड़चनके मिटानेकेलिए ऐसे सज्जनोंकी आवश्यकता है कि इस कार्य्यमें दक्ष हों और ग्वालोंके निकट जाकर शिक्षा देनेमें सहमत हों। कृषि-परीक्षा-उत्तीर्ण छात्रगण ही इस कार्य्यका भार ग्रहण करनेके उपयुक्त पात्र होंगे। सम्भव है कि प्रारम्भमें ये भ्रमणकारी उपदेशक अपने कार्य्यमें सफल मनोरथ न हों क्योंकि ग्वाले उनकी बातोंपर प्रत्यक्ष साधन देखे विना विश्वास न लाएँगे। इनके दिखानेका उचित प्रबन्ध बड़े बड़े नगरोंके निकट कुछ अच्छे व्यापारियों द्वारा स्थापित नमूनेके दुग्ध कार्यालयोंमें किया जा सकता है। शुद्ध दूध जुटानेके दुग्ध कार्य्यालय यदि शिक्षाकी ओर विशेष ध्यान न देकर वाणिज्यक रीतियोंपर स्थापित किये जायँगे तो अवश्य उचित लाभ होनेकी आशा है। इन नमूनेके दुग्ध कार्य्यालयों से एक और भी उपयोगी कार्य्य सिद्ध हो सकता है। वह यह कि जब किसी सुरक्षित और सुसम्पादित कार्यालयसे सर्व साधारणको शुद्ध दूध मिलनेका पूरा निश्चय कराया जायगा तो उनके विचार जो शुद्ध दूधके विरुद्ध बन गये हैं वदल जायंगे। वर्तमान समयमें नगरोंमें बहुधा मनुष्य जान वूझकर कम दाममें ख़राब दूध लेते हैं क्योंकि उन्हें पूरा विश्वास हो गया है कि इस गिरी दशामें ग्वालोंसे शुद्ध दूध पानेकी आशा करना नितान्त व्यर्थ है। इसलिये वे कम दाममें सस्ता ही दूध लेना पसन्द करते हैं क्योंकि वे जानते हैं कि यदि हम दाम बढ़ादें तौ भी मिश्रित ही दूध मिलेगा और दूधके गुणमें अन्तर न होगा। इससे ग्वाले और ग्राहक दोनोंको इस बातके समझानेकी आवश्यकता है कि उचित दामपर शुद्ध दूध मिलनेका निश्चय कराया जा सकता है। यदि कोई पूछे कि यह कैसे हो सकता है तो इस प्रश्नका उत्तर यह है कि दुग्ध कार्यालय किसी नगरके निकट स्थापित किये जायँ और इनकी जांच सरकार और सर्वसाधारण समय समयपर किया करें जिससे ये आदर्शका भी काम दें और जनसमुदायके विश्वसनीय भी हों।

एक नगरके ग्राहकोंको यथोचित दूध जुटानेकेलिये पचास या सौ गायोंसे या मूल धनके अनुसार कार्य्य प्रारम्भ करना होगा।

यहांपर और कुछ कहनेके पहले यह कह देना उचित है कि शुद्ध दूधको सस्ते दाम में बेचना उसे सस्ते दाममें प्राप्त करनेपर ही निर्भर करता है क्योंकि कोई भी व्यक्ति किसी वस्तुको सस्ते दाममें नहीं बेच सकता जबतक कि वह कम दाममें न प्राप्त हो। सर्व साधारणको भी यह मानना पड़ेगा कि शुद्ध दूधकी प्राप्तिकेलिए बुरे दूषित दूधके दामकी अपेक्षा किसी अंशमें अधिक ही व्यय करना पड़ेगा। किन्तु यह दुःसाध्य नहीं है। दूधवालेको भी यह बात समझ लेनी होगी कि शुद्ध दूध सस्ते दाममें उपस्थित करनेकेलिए उसे उसकी प्राप्तिकी लागतको कम करना होगा। यह दो रीतियोंसे किया जा सकता है। प्रथम और अधिक सुगम यह है कि दूध देनेवाले प्राणियोंके रहने और खानेका व्यय जहांतक हो सके कम कर दिया जाय। इसकी सिद्धिकेलिये दुग्ध कार्य्यालयको नगरके किसी बाहरी भाग या निकटस्थ किसी ग्राममें स्थापित करना

होगा। क्योंकि नगरके बीच दुग्ध कार्य्यालयके चलानेमें अति अधिक व्यय पड़ेगा। इसका कारण यह है कि नगरमें किराया बहुत अधिक लगता है, चारा मंहगा मिलता है और चरनेकी सुगमता तथा व्यायामके अभावसे पशुओंका स्वास्थ्य उत्तम नहीं रहता अर्थात् अधिक व्यय होनेपर भी दूध कम ही प्राप्त होता है। और भी कारण हैं जिनसे दुग्ध कार्य्यालयको नगरमें रखना उचित नहीं किन्तु वे विषय मितव्यय सम्बन्धी न होकर अधिकतर स्वास्थ्य सम्बन्धी हैं।

दूसरी रीति अधिक कठिन है और उसके साध्य करनेमें अधिक समय लगेगा और इसका साधन तभी सम्भव है जब कि अधिक दूध देनेवाले प्राणियोंके संयोग (breeding) से अधिक दूध देनेवाली सन्तान उत्पन्न की जाय।

यदि किसीकी समझमें यह दोनों बातें आजायेंगी तो उसे ज्ञात हो जायगा कि शुद्ध दूध जुटानेकी समस्याकी व्याख्या व्यवसायिक मितव्ययताके सम्बन्धमें इन्हींपर निर्भर है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि स्वास्थ्य सम्बन्धी और भी बातें हैं कि जिनकी ओर ध्यान देना पड़ेगा परन्तु हम मितव्यय सम्बन्धी बातोंका ही प्रथम वर्णन करेंगे।

मैडेम मार्यटीसेरीकी शिशु शिक्षा प्रणाली।

[ले० मधुमङ्गल मिश्र, बी. ए. एस-सी.]

मनुस्मृति देखनेसे जान पड़ता है कि प्राचीन कालमें जनेऊ हो जाने पश्चात् विद्यार्थी गुरुके यहां जाकर वहीं बसके शिक्षा लाभ करते थे। भोजनकेलिए वे भिक्षा मांग लाते थे अथवा कन्द मूल फल बनोंसे खोद लाकर अपना निर्वाह करते थे। शिक्षा शब्दसे विशेषकर पढ़ना लिखना समझा जाता था। और काम सीखनेकेलिए शिक्षा शब्द पीछे लगा दिया जाता था जैसे व्यायाम शिक्षा। आजकल भी शिक्षा शब्दसे पढ़ना लिखना ही मुख्य समझा जाता है। पढ़ने लिखनेसे जीवनयात्रामें सहायता मिलती है। पढ़ने लिखनेसे जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता। कुछ कालसे शालाओंमें शारीरिक शिक्षाकी आवश्यकता भी समझी जाने लगी है और ध्यान दिया जाने लगा है, पर यह कार्य एक वा दो पाठकोंपर छोड़ दिया जाता है। समय, स्थान और खेलके महँगे सामान यथेष्ट नहीं जुट सकते। बिचारे पाठक अधिकारीकी आज्ञानुसार कुछ थोड़ा सा कर देते हैं।

आजकल पाश्चात्य देशियोंने शिक्षा शब्दका अर्थ बहुत बढ़ा रक्खा है। वे केवल बुद्धि विकाश करना भर शिक्षाका उद्देश्य नहीं मानते, शारीरिक व्यायाम आदि से भी संतुष्ट नहीं होते। नैतिक तथा आचार व्यवहारकी शिक्षा भी बस नहीं समझते, वे जनमते ही बालककी बढ़ती, चालढाल, आचरणआदिको उचित ढर्रेपर ले चलना शिक्षाके भीतर गिनते हैं और बचपनसे ही अथवा ३ वा ४ वर्षका होते ही उसकी शिक्षाका भार पाठकके हाथ दे दिया चाहते हैं। यों पाठकका कार्य तो बहुत बढ़ जाता है; और माता पिताको छुट्टी मिल जाती है। वे जन्मदाता भर रह जाते हैं अथवा कुछ काल लों व्ययकेलिए रुपयोंके देनदार रह जाते हैं। और सब कार्य पाठकके भागमें आता है। क्या यह ठीक है?

शालामें पाठक बहुत से विद्यार्थियोंको एक साथ पढ़ाता है। एक साथ पढ़नेमें कुछ स्पर्धा से लाभ होता है पर मुख्य कारण इकट्ठा पढ़ानेका यही हैं कि जितने विद्यार्थी होते हैं उतने पाठक मिल नहीं सकते अथवा मिल सकना संभव हो तो उनको वेतन देनेमें व्यय बहुत बैठे।

पर इसमें संशय नहीं है कि यदि प्रत्येक विद्यार्थी-को अलग अलग पाठक मिले तो उनकी ओर यथोचित ध्यान देकर पाठक उन्हें शीघ्र बुद्धिमान् और योग्य बना सकता है, क्योंकि वह उनकी आवश्यकता जान सकता है। और दुर्बल वा प्रवीण विद्यार्थियों को साथ साथ धीरे वा शीघ्र घसीटता नहीं। इस अवस्थामें तो जान पड़ता है कि बालककी शिक्षा (आचरण व्यवहार आदि) माता पिताके अधीन रहे और बड़े होनेपर विशेष प्रकारकी शिक्षा (मानसिक वा बुद्धि विकाश सम्बन्धी) पानेकेलिए वह अन्यत्र तब भेजा जावे जब कि माता पिताको उतनी योग्यता वा छुट्टी न होवे। ऐसा करनेसे प्रत्येक बालकको प्रायः अलग अलग पाठक मिल सकता है वा घरमें ६ वा ८ बालक हों तो भिन्न भिन्न अवस्थाके अधिकसे अधिक ८ बालक माता पितासे शिक्षा पावेंगे। यदि माता पिता मूर्ख हों तब तो शालामें भेजना उचित है पर आजकल तो धनवान् लोग आलस्यवश श्रम-की अपेक्षा रुपया खर्च करना सहज समझ शिक्षाका भार पूरा २ दूसरोंपर छोड़ निश्चिन्त हो बैठते हैं।

पश्चिमके देशोंमें बाल्यावस्थामें बालकोंकी शिक्षाका भार शालाओंमें स्त्रियोंके हाथमें सौंपा जाता है। अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलियामें भी प्रायः ऐसा ही होता है। जो जिस कार्यमें रहता है उसका मन उन्हीं विषयोंमें लीन रहता है, यों शिक्षा सम्बन्धी वा बाल शिक्षा सम्बन्धी नई खोज या आविष्कार स्त्रियाँ करें तो आश्चर्य ही क्या है? इधर इटली देशकी मैडेम माण्टीसेरी नामक एक यूरोपीय महिलाने अपने मननशीलताको कार्य रूपमें परिणतकर-के अपने सिद्धान्तोंका पोषण करते हुए पाश्चात्य शिक्षक मंडलीको चकित कर दिया है। हम इस लेखमें उस इटालियन रमणीके शिक्षण शैलीका उल्लेख करते हैं।

प्राणीमात्र सब स्वतन्त्र हैं। पुरुषोंने स्त्रियोंको दुर्बल माना पर स्त्रियोंने विद्या और अधिकार पाके अपनी योग्यता प्रमाणित कर दी। स्त्रियों-को अशिक्षित रखनेसे इस देशकी सन्तानकी शिक्षा कैसी हीनताको प्राप्त हो रही है! वे ही शिक्षित स्त्रियां पाश्चात्य देशोंमें किस कुशलतासे यही कार्य कर रही हैं?

जैसे स्त्रियां मनुष्यके समान कार्य स्वतन्त्रता-से कर सकी हैं वैसे ही बालकगणको स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। मनपर किसी दूसरेका अधिकार नहीं जम सकता। घोड़ेको पानी पिलानेकेलिए साईस उसे तालाबपर ले जा सकता है पर बिना घोड़ेकी इच्छाके वह घोड़े-को पानी पिला नहीं सकता। इसी प्रकार बालक जो कुछ सीखेगा अपनी इच्छासे सीखे-गा। पाठकके कहने व दबानेसे न सीखेगा। पाठक बालकको पढ़नेको कह सकता है, दबा सकता है, डाँट और पीट सकता है, पर चाहे जैसे हो बालक पढ़ेगा तभी जब उसका मन लगेगा। मन, कहने से, डर से वा जैसे लगे, पर लगना चाहिए। दबाने से, डाँटने से, स्वत-न्त्रतामें बाधा देनेसे उतना लाभ नहीं हो सकता जो स्वतन्त्रता देनेसे होता दीखता है। इस कारण मैडेम माण्टीसेरीका कहना है कि पाठकका काम बालकोंको पढ़ाना नहीं है। मुख्य पाठक तो बालक आप ही है। उन्हें पढ़ानेवाले-की कोई आवश्यकता नहीं है। जन्मके अनन्तर तीन चार वर्षकी अवस्थालों बालक कितनी बातें सीखता है। वह बोली और संकेत कुछ भी नहीं समझता। उस दशामें बिना पाठक-की सहायताके वह अपने ही ध्यान और अव-लोकनसे भाषा सीखता है। चलना फिरना, हंसना, हाथ जोड़ना आदि सीखता है तब फिर और आगे शिक्षाकेलिए उसे पाठककी आवश्य-कता ही क्या है? जब कुछ न था तब तो उसने इतना सीखा अब आगे उसे लंगड़ा लूला अपा-

हिज मानकर सहायता देना पाठकवर्गका अभिमानमूलक कार्य है।

बालकोंकी स्वतन्त्रतामें शिक्षकोंको सर्वथा हस्ताक्षेप न करना चाहिए। इस सिद्धान्तके अनुसार चलाई गई इटलीकी शालाओं (Casa De Bambini) अर्थात् बालकोंके भवनों में बालक मनमाना काम जो उनकी शक्तिके भीतर होता है करते रहते हैं। वहाँ कोई समय-विभाग-चक्र (Time Table) नहीं होता। कोई बालक आंखमें पट्टी बांध टटोल टटोलकर कपड़ोंके नाम बताता है। कोई सूईमें डोरा डालता है। कोई छेदोंमें बटन डालता है। और कोई बन्द बाँधता है। कोई रंगीन लच्छोंको क्रम से रखता है और कोई गद्देपर लेटकर अपनी टांग पटकता है। कई प्रकारके मनोरञ्जक कामोंके सामान बालकोंकी अवस्था और योग्यताके अनुकूल उपस्थित रहते हैं। जिसे जो भाता है सो करता है।

छोटे लड़के बैठे नहीं रहते, वे रसोईघरमें जाकर गूंधे आटेको लेकर चिड़िया बनाते हैं। छड़ीको रस्सीसे बांधकर घोड़ा मानकर कुरसीमें बाँध, कटोरेमें भरकर पानी उसे पिलाते हैं। गगरीमें हाथ डालके चावल दाल निकालते और पचीसों प्रकारके काम करते हैं। सचमुचमें वे वस्तुओंके स्वभाव और गुणकी परख करते रहते हैं जैसे गगरी गहिरी है, गीला आटा लचीला होता है, घोड़ा बांधा जाता है, और पानी पीता है इत्यादि। इन बातोंसे जाना जाता है कि वह ज्ञान प्राप्त करनेमें आटे आदिका अपव्यय भी कर बैठता है। मैडम माएटीसेरीने बालकोंकी काम करते रहनेकी स्वाभाविक प्रवृत्तिको देखकर, हानिको रोकनेवाले मनोरंजक कार्य तथा उनकी अवस्था, शक्ति, योग्यता और विचारके अनुकूल सामान ढूंढ़ निकाले हैं जिनमें लगे रहनेसे बालक विचारशील (समझदार) और कार्यकुशल हो सकते हैं। ये सामान बालकोंके मन बहलानेकेलिए नहीं, वरन उन्हें काममें लगानेकेलिए खोजे गये हैं। पर उनमें बालकोंका मन भी लगता है। भिन्न भिन्न बालकोंकी भिन्न भिन्न प्रकृति होती है। इसलिए कई प्रकारके कार्यमें लगानेवाले अनेक सामान प्रस्तुत किये हैं। एक ही काममें मन देर लों बालक नहीं लगा सकते इसलिए भी कई भांतिके सामानोंकी आवश्यकता प्रतीत हुई।

मैडेम माएटीसेरीने यह खोज निकाला है कि बचपनमें स्पर्श शक्ति, देखनेकी शक्तिसे अधिक प्रबल होती है। यदि स्पर्श शक्तिका अभ्यास बढ़ाया जावे तो वह बड़ी लाभदायक प्रतीत हो। पर हम लोग आंख और कानकी शक्तिके भरोसे स्पर्श तथा घ्राण शक्तिका निरादर करते हैं। देखनेकी शक्तिमें परिपक्वता छः वर्ष लों नहीं आती। वे तीन चार वर्षके ही बालकोंको अपनी शालामें भरती कर लेती हैं। बड़े होनेपर माता पिताके साथ कुटेव पड़जानेसे सुधारनेमें समय नष्ट होता है इसलिए वे शीघ्र ही उन्हें ले लिया चाहती हैं। धनवानोंके आलसी तथा नौकर चाकरसे काम करानेवाले बालक अच्छे विद्यार्थी कुछ काल लों नहीं हो सकते। उनकी शालामें वा बोर्डिङ्गहाउसमें अथवा बालकोंके भवनमें (वे शाला नहीं कहातीं) बालक ही सब काम करते हैं। घरका झाड़ना सामानकी स्वच्छता, चाय बनाना, परोसना, पीना, वर्तन, कपड़े धोना आदि सभी कार्य बालक ही करते हैं। मेज़के नीचे गिरे काग़ज़को उठाके कूड़ेकी टोकरीमें रख देनेवाले बालककी बहुधा प्रशंसा की जाती है कि वह अपनी माताका बड़ा सहायक है जिससे कि वह प्रसन्न होकर और काम करे। पर स्वच्छता की दृष्टिसे यह काम उनके बाल भवनमें छोटे छोटे बालक नित्य करते हैं। कूड़ा करकट, गर्दा उन्हें प्रिय नहीं होता, मिथ्या प्रशंसा द्वारा काम करवानेकी अपेक्षा स्वच्छताके आदर और अभ्यासकी दृष्टिसे काग़ज़को उठा फेंकना कैसा श्लाघनीय कार्य

है। इसी भावनाके कारण वे कूड़ा करकट फैलाते भी नहीं क्योंकि वह देखनेमें अच्छा नहीं लगता और पीछेसे उन्हीं को उठाना पड़ता है।

स्पर्श शक्तिके अनुभवका एक खेल हमारे देशमें भी भिन्न भिन्न स्थानोंमें भिन्न भिन्न भाँति से खेला जाता है। काशीकी ओर वह गणेश थेपड़ी कहाता है। उसमें एक लड़केकी आंख मूंद ली जाती है और दूसरे बालक धीरे धीरे उसके शिर वा खोपड़ीपर चपत लगाते हैं और वह चपत लगानेवालेका नाम बूझता है। यदि ठीक नाम न बता सका तो उसे फिर चपत खानी पड़ती है और यदि हाथके स्पर्श वा चपत लगानेके धक्के तथा शब्दसे वह ताड़ जाता है कि किसने चपत लगाई है तो चपत लगानेवालेको आंख मूंदके दूसरोंसे चपत खाने बैठना पड़ता है। जिन लोगोंने इस खेलपर ध्यान किया होगा और खेला होगा उन्हें जान पड़ा होगा कि चपतके बैठनेके ढङ्ग वा स्पर्शकी ही सहायतासे मारनेवालेका नाम बतानेसे शीघ्र छुटकारा मिल सकता है। इस खेलमें छोटे बालक ही भाग लेते हैं। बड़े लोग चपत ही नहीं लगाते। सो जो कुछ हो यह विनोद स्पर्श-शक्ति तथा श्रवणशक्तिका बोध बढ़ाता है। खोपड़ीकी अपेक्षा उँगलियोंकी नोकपर स्पर्श शक्ति अधिक प्रबल होती है इसलिए बालभवनमें स्पर्श शक्तिका अभ्यास पहले कराया जाता है। कई प्रकारके न्यूनाधिक खुरदरे रेतीले काग़ज़ बालकोंको आंखपर पट्टी बांधके उँगलियोंसे स्पर्श करके, खुरदरेपनकी मात्रा बतानेको, दिये जाते हैं (काग़ज़पर रेतवा कांचकी बुकनी चपकाकर रेतीला काग़ज़ (sand paper) बनाया जाता है)। ये काग़ज़के टुकड़े दफ़्तियों वा काठकी पटियोंपर बैठाए रहते हैं। बालक लोग खुरदरे तलपर उँगली फेर कर खुरदरेपनकी मात्रा बतलाते हैं। इसके पश्चात् भिन्न भिन्न प्रकारकी लकड़ियोंके ऊबड़ खाबड़ वा चिकने टुकड़े दिये जाते हैं जिन्हें टटोलकर लड़के बतलाते हैं कि वह किस वृक्षकी लकड़ी है। प्रारम्भमें नाम बतानेको पाठिकाकी आवश्यकता रहती है। फिर जब कुछ लड़कोंको नाम विदित हो जाता है तब वे आपसमें ठीकठाक कर लेते हैं। केवल स्पर्श शक्तिको अभ्यास मिले इस दृष्टिसे आंखपर पट्टी बांध देते हैं। आंख कभी कभी धोखा भी दे सकती है। एक बालक बूझता है और उसके पास दूसरा कोई बालक 'ठीक बूझा जाता है वा नहीं' बतलानेको खड़ा रहता है अथवा कई बालक मिलकर पारी पारी से बूझते और हँसते रहते हैं। जिनका मन लगे यह खेल खेलें, जिनका मन न लगे दूसरा खेल खेलें। पाठककी कोई आवश्यकता नहीं होती। बालभवनकी पाठिका तो २५ शिक्षार्थी बालकोंकी कक्षामें उन्हें भिन्न भिन्न खेल खेलतेहुए देखती एक कोनेमें खड़ी रहती है। जो कहीं आवश्यकता हुई तो जाकर उचित सहायताभर दे देती है। कुछ बतला नहीं देती। सिद्धान्तोंका मनन करनेपर उचित सहायताका आशय जाना जा सकता है। खुरदरी लकड़ियोंके नाम बूझनेका अभ्यास हो चुकने पर चिकनी लकड़ी और कागजों तथा कपड़ों को छू और टटोलकर नाम बतानेका अभ्यास दिया जाता है। ये अभ्यास आगे चलके कैसे उपयोगी होंगे कल्पनाकर सकते हैं, हमारे देशमें कितने लोग होंगे जो देख वा छूकर ऊनी सूती कपड़ोंमें अन्तर बता सकते हों, अथवा सर्ज, कश्मीरा, आलपाका तथा मेरिनोमें अन्तर जानते हों। वैसे ही अन्न लेते समय दानोंको पहिचानते हों। हमारे विचारसे तो दूकानदारके भावके महंगे वा सस्तेपनसे पदार्थ अच्छे वा कम अच्छे बहुधा समझे जाते हैं। पर माता पिता बचपनमें ऐसी शिक्षा न दे सकें इसका आलस्य छोड़ और कोई कारण प्रतीत नहीं हो सकेगा।

सभी बालकोंको स्पर्शका ही खेल प्रिय न

बोध होगा इसलिए कुनकुने गरम व उष्ण जलमें उंगली डालके गरमीकी मात्रा पहिचाननेका अभ्यास कराया जाता है। उसी प्रकार ठण्ढे जलका तापक्रम बतलाया जाती है। शीशीमें रक्खेहुए गरम वा ठण्ढे जलका तापक्रम बतलाया जाता है।

हथेलीसे ही बोझका ज्ञान होता है इसलिए, कपड़े, कागज़, लकड़ी, कांच, पत्थर आदिके टुकड़े उठाके उनके भार बतलानेका अभ्यास कराया जाता है। ये टुकड़े सब ऐसे भार वा परिमाणके होते हैं जिन्हें बालक भली भांति उठा सकें और वे उनकी मूठीमें आ सकें अर्थात् बालकोंकी योग्यताकी दृष्टिसे ये सामान बनाये जाते हैं। इस भांतिसे पदार्थोंका गुण जानने वाले बालक चीज़ोंको गिराके फूटने नहीं देते कांचकी शीशी वा ग्लास उनसे फूटने नहीं पाता। एक लड़कीके विषयमें लिखा है कि जब वह गरम चाका लोटा एक रकाबीमें रखकर दोनों हाथसे लिए जाती थी एक मक्खी आकर उसकी नाकपर बैठ गई। यदि वह तनिक भी शिर हिलाती तो गरम चा छलककर पैरोंपर गिरती और कपड़े भी बिगड़ जाते। कदाचित् चाका लोटा भी गिरता और फूट जाता। पर वह धीरपूर लड़की मक्खीके स्पर्शकी कनकनाहट सहती रही और तनिक भी सिर न हिलाया। फँसे हाथोंसे उड़ा सकना तो दूरकी बात थी। जबलों चा न बट गई और रकाबी रखनेके मेज़के पास न पहुंची तबलों वह धीरज धरे रही। किसी दूसरेने उसे सहायता न दी। क्योंकि ऐसा करनेसे वह अपना अपमान समझती। जो काम उसका हो उसे वह न कर सके तो दूसरेका हस्तक्षेप ठीक हो सकता था। उसकी इच्छा बिना किसीको उसका निरादर करके सहायताको दौड़ना उचित न बोध हुआ। बाल्यावस्थासे यह आत्माभिमान और कर्तव्यपालन भाव डालना कैसा है?

यह बालिका, बालकोंके साथ ही बालभवनमें रहती थी और सीखती थी। पाश्चात्य देशोंमें बालक बालिकाओंकी शिक्षाकेलिए अलग विद्यालय प्रायः नहीं होते। छोटी अवस्था अर्थात् तीन चारसे लेकर सात आठ वर्ष के बालक बालिकाएं शिक्षा हमारे देशमें भी एक ही जगह पावें तो कुछ अनुचित न होगा।

रंगील सूतोंकी आंटियां अथवा लच्छियां बकसके ६४ विभागोंमें रक्खी रहती हैं। वे लच्छियां आठ रङ्गकी होती हैं। प्रत्येक रंगकी लच्छियों की हलकेसे गाढ़ेतक आठ अवस्थाएं होती हैं। बालकोंको रंगोंको पहिचानने और बढ़ते या घटते हलकापनकी दृष्टिसे क्रमसे रखनेमें अवलोकन शक्तिका अभ्यास कराया जा सकता है। रंगोंका पहिचानना और क्रमसे रख सकनाभर पर्याप्त नहीं है। वरन शीघ्रतापर भी ध्यान दिया जाता है। कभी कभी ढेरकी ढेर आंटियां वा लच्छियां टेबुलपर गिराके कई लड़कियोंसे क्रमवार रखनेको कहा जाता है और होड़ लगा दी जाती है कि देखें कौन सबसे पहिले अपने सभी रंगोंको यथा स्थान रख सकती है। यथा स्थान रखनेकी जांचके लिए पाठिकाकी आवश्यकता नहीं होती। बालिकाएं आपसमें आप ही एक दूसरेकी जांच कर लेती हैं, और निर्णय कर लेती हैं। काममें लगे बालक बालिकाओंको झगड़नेको अवकाश ही नहीं रहता। उन्हें तो कार्य मनोरञ्जक लगता है। झगड़ा आदि तो वे लड़के करते हैं जिन्हें काम नहीं रहता अथवा जो बड़े छोटे होनेसे छोटेको दबाना चाहते हैं। वहाँ बातचीत करनेको कोई नहीं रोकता। खिलखिलाकर हँसनेसे काममें लगे दूसरे बालकोंको बाधा नहीं पहुँचती। कोई नया दर्शक शाला देखने आवे तो भी बालक अपने काममें वैसेही लगे रहते हैं जैसे कि वे सदा लगे रहते हैं। कामकी गम्भीरतामें उनका ध्यान बँटता

नहीं। दर्शक उन्हें देख रहा है इसके ज्ञानसे वे लजाते वे सकुचाते भी नहीं। हाँ पास आजानेपर छाया आदि पड़नेसे ध्यान हट जावे तो चाहे गुड मार्निङ् आदि कह लेवें। पर काममें तुरंत ही लग जाते हैं। (शेष फिर)

रंगीलेकी होली

[ले० रामदास गौड़, एम् ए]

भगवन्! संसाररूपी ब्रजमंडलमें रंग बिरंगी साड़ी धारण किये प्रकृतिदेवीकी मौलिक रूपिणी चौरासी* सहेलियोंके संग संतत नृत्य करते हुए आपकी मनोहर छबि देख देख कौन वैज्ञानिक आनन्द समुद्रमें हिलोरें लेने नहीं लग जाता! बलिहारी उस अनुपम सुखमाकी जिसने ऋषि मुनि दैत्य देवता मनुष्य पशुपक्षी वनस्पति खनिज सबको एक ही भांति मोह रक्खा है, जिसकी प्रीति शृंखलामें सहज ही बँधे सचराचर निरन्तर नाचा करते हैं। उसी विश्वको नचानेवाले, समस्त हृदयोंके अभिनयक्षेत्रके चतुर सूत्रधार,* नटवर गोपालने इस ब्रजमंडलमें जो निरन्तर होली मचा रक्खी है उसी रंगोलेकी होलीका दृश्य पाठको! आइये आज चलकर देखें।

* * *

सुमेरुपर देवताओंकी सांझ हो चुकी है, रात्रिका प्रवेश हो चुका है। लोकालोकके अद्भुत आलोकमें असंख्य आर्य्य-देव-ऋषियोंका समुदाय एकत्र है, आनन्दका समुद्र उमड़ा आ रहा है, शीतल मन्द सुगन्ध युक्त पवन धीरे धीरे बहती प्रत्येक मुरझाते पौदे, प्रत्येक सूखती टहनी, प्रत्येक पल्लवके कर्ण कुहरमें कहती जाती है कि सजग हो जाओ उस मोहन ब्रजराजकी अवाई है। अवाई भी कैसी, कि पलक भांजतेमें सारा आकाश-मंडल दिव्य अबीर गुलालसे रंगारंग हो गया। गगनांगनमें चंचला राधाने* रासमंडल रच घनश्यामके जोड़की अपनी असंख्य मूर्त्तियां आनकी आनमें प्रकट कर दीं। लाल, हरी, पीली, नीली, बैंजनी, धानी सुआ-पंखी, पिस्तई, आदि कहाँतक गिनावें, इतने रंगोंसे रंगित अम्बरकी* छटा दिखाई देने लगी कि आंखें चकाचौंध हो गयीं। औंधे नील रत्नाकरमें रंग बिरंगे तरंगोंके चक्कर पर चक्कर घूमने लगे। इन तरंग-मालाओंका प्रतिबिम्ब सागर सलिलमें अत्यन्त तरल नृत्य करने लगा। ध्रुव१ बालक भी बीचोंबीच खड़ा यह नयनाभिराम दृश्य देख आनन्दसे नाचने लगा। मन्द मधुर स्वरसे श्रुति भगवतीके यह मनमोहन मंत्र अखिल विश्वमें गूँज गये—

अतरिष्म तमसस्पारमस्य
प्रतिवांस्तोमो अश्विनावधायि
एह यातं पथिभिर्देवयानैः (ऋ०१।१८३।६

राधाजीने मोहनपर वह गुलालकी वर्षा की कि सारा उत्तरखंड विचित्र रश्मिके रंगोंसे रंजित हो गया। यह घटना इस आर्य्यजातिके अभ्युदयकालमें हुई थी जिसका वार्षिकोत्सव अब भी उत्तरीय ध्रुव प्रदेशमें प्रति-वर्ष प्रकृति मनाती है और उस आनन्दोत्सवमें फिर फिर कालके चित्रपटपर चतुर चितेरे चतुराननको वेही चित्र चित्रित करने पड़ते हैं।

* * *

---

*तारोंपरके रश्मि चित्र द्वारा दृष्टिगोचर होनेवाले भी कई अपार्थिव मौलिक हैं, जिन्हें पार्थिव मौलिकोंके साथ जोड़ लेनेपर लगभग ८४ मौलिक पदार्थ होते हैं।

*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया।

* बिजली * आकाश और वस्त्र * विद्युत्पात (Aurora Borealis) जो प्रकृतिकी अद्भुत विद्युत शक्तिसे षाण्मासिक रात्रिमें सारे उत्तरखंडको प्रकाशित कर देता है। (१) ध्रुव भी वस्तुतः घूमता है।

सुमेरुपर निशाका अवसान हो रहा है। निरन्तर बढ़ते घटते चन्द्रमा पाख पाख भरकी छः परिक्रमाएं करके चले गये। विद्युत्पातमयी त्रैमासिक होली भी हो ली। वर्षके पहले दिनका उदयकाल आ गया। वह देखिए, क्षितिजरेखा-पर दक्षिण दिशामें मन्द मन्द मनोहर प्रकाशका उदय हो रहा है। दक्षिण दिशा? हम सुमेरुपर दक्षिण दिशा किसे कहें। आदित्य देव तो सभी दिशाओंमें निकलते, सभी दिशाओंकी परिक्रमा करते हैं, चन्द्र नक्षत्र तारागण सबका यही हाल है। फिर दिशाका ज्ञान कैसे हो? ध्रुवसे? ध्रुव तो ठीक सिरके ऊपर है! बस, यहाँ दो ही दिशाएँ हैं, हम जहाँ हैं वह उत्तर और गोल क्षितिज दक्षिण! देखते ही देखते, दक्षिण दिशा-से उषाओंका उदय हो रहा है। देखते ही देखते यह मन्द ज्योति क्षितिजमें डोलने लगी, चौबीस घंटेमें परिक्रमा पूरी हो गयी, परन्तु वाहरी उषा! इसकी परिक्रमाका तो अन्त ही नहीं दीखता! उषा देवियां नवकामिनी छबिसे रंग बिरंगी, नित्य बढ़ती ज्योति लेकर मानो सुमेरुकी आरती उतार रही हैं। वर्षके नवीन दिनके स्वागतमें यह मंगलो-त्सव देव लोकमें होने लगा। नित्य नवीन शृंगार कर उषा देवियोंने आदित्य देवकी निरन्तर डेढ़ मास तक परिक्रमा करके ऐसा रिझाया इतना गुदगुदाया कि छः मासकी कुंभकर्णी निद्रासे आंखें मलते अँगड़ाइयाँ लेते उठे। नवसंवत्सरा-गमके आनन्दतरंगोंमें पड़कर और सब चिंता छोड़ अबीर गुलाल ही छोड़ना परम कर्त्तव्य जान होली आरंभ कर दी। इस आनन्दोत्सवमें देव, ऋषि, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पति सभी सम्मिलित हो गये। श्रुति भगवती मधुर-ध्वनिसे गाने लगी—

कियात्यायत्समया भवाति
या व्यूषुर्याश्च नूनं व्युच्छान्।
अनुपूर्वाः कृपते वावशाना
प्रदीध्याना जोषमन्याभिरेति॥ (ऋ० १।११३।१०)

देवताओंकी वह होली भी क्या जो झट समाप्त हो जाय! आदित्य देव उषाओंके पीछे पड़ गये। कई दिनोंतक बराबर आकाश मंडलमें अरुणाई ही छाई रही। उषाओंके भागते भागते नाकोंदम हो गये। अन्तको जब वह सुमेरुकी गहन गुहामें छिप रहीं सूर्य्य देवको खोजते छः महीने बीत गये पता न लगा। यह कुतूहलमय घटना इस आर्य्य जातिके अभ्युदय कालमें हुई थी जिसका वार्षिकोत्सव अब भी सुमेरु प्रदेशमें प्रतिवर्ष प्रकृति मनाती है और उस आनन्दोत्सवमें फिर फिर कालके चित्रपटपर चतुर चितेरे चतुराननको वे ही चित्र चित्रित करने पड़ते हैं।

* * * *

पुण्य भूमि आर्य्यावर्त्त की उत्तरीय सीमा-में कैलाश शिखरके निकट मनोहर मानसरोवर-के तटपर आर्य्यमहर्षि ब्राह्म मूहूर्त्त में कोई तो अनित्य संसारसे विरत चित्त प्रकृतिकी परमा शोभा और पुरुषकी उदासीनतापर विचार कर रहे हैं और किसीका हृत्कमल चारों ओर छोटे छोटे पेड़ों और पौदोंके अतिरिक्त श्वेत-रजत-रंजिता हिमाच्छादिता वसुंधराकी उज्ज्वल कीर्त्ति देख देख माताकी पवित्रतापर आनन्दो-त्फुल्ल हो रहा है। एकाएकी प्राची दिशामें सम्वत सरका स्वागत रूप उत्सव होने लगा। नवकामिनी अनूढा उषा देवियां भगवान अंशु-मालीको झोलोमें अबीर गुलाल भरे बड़ी उता-वली एवं अनिरुद्ध गतिसे आते देख चंचलता-पूर्वक भाग खड़ी हुईं, उधर उन्होंने लक्ष्य करके वह कुंकुमा छोड़ा कि उषाएं अपनी सहेली प्राची दिशा समेत लाल रंगसे सिरसे पैरतक रंजित हो गयीं। चारों ओर ऐसी लालिमा छाया कि संसार का मुँह लाल हो गया। अंधकार, अज्ञान दुःखादि की विश्वा काश मंडलमें जो गहन कालिमा लग थी उसका सहज ही दहन हो गया। उसकी ज्वाला भी साथ ही प्रतीत होने लगी। उषा ने

अवसर देख छिप जानेकी ठहरायी। उसके छिपते छिपते भी साँवले* अदिति-नन्दनने लाल, नारंगी, पीले, हरे, आसमानी, नीले, बैंगनी आदि अनेक रंगोंसे भरी पिचकारीपर पिचकारी छोड़नी प्रारंभकी जिससे सभी रंगोंका अद्भुत संघट्ट हो गया। उषा तो चली गयी, पर सारी प्रकृतिका पूरा समाज रंगसे शराबोर हो गया। वनस्पति हरी हो गयी, फूलोंकी पखड़ियां रंग बिरंगी हो गयीं। तितलियोंने चुनरी पहन ली। गुलाब गुलाबी हो गये। तोते हरे हो गये पर अपनी चोंच लाल रंगमें डुबो ली। लाल आदि पखेरुओं-का तो कहनाक्या पर सभी रंगोंमें मनमानी डुबकी लगानेवाली पंचम स्वरमें आलापिनी काकपाली और उसके पोषक कौओंसे भी क्या दिल्लगी की कि उनपर स्याहीकी दवात हो उँडेल दी। इस पिचकारी का प्रभाव इतना ही नहीं पड़ा। पृथिवी हरी हो गयी, उसका पुत्र मंगल लाल हो गया। निदान जो बीचमें पड़ा उसकी खूब ही गति बनायी। महर्षिगण इस कुतूहलजनक उत्सवको देख आनन्दसे फूले न समाये। मधुर मधुर स्वरोंमें श्रुति भगवतीके वाक्य दिशा विदिशामें गूंज गये—

> इयमे॒व सा या प्र॑थमा व्यौच्छ॑त्
>
> अ॒न्तर॑स्यां॒ च॑रित॒प्रवि॑ष्टा।
>
> व॒धूर्ज॑जान न॒वग॑ज्जनि॑त्री
>
> त्रय॑ एनां महि॒मान॑ः सचन्ते॥
>
> (तै० स० कां० ४, प्र० ३, अ० ११, १)

यह घटना इस आर्य्यावर्त्तकी पुण्यभूमिमें उस युगकी आदिमें हुई जिसमें ध्रुवप्रदेशका देव-लोक छोड़ आर्य्य सन्तान फिर अपनी प्राचीन पैतृक भूमिमें आ बसी। इस महत्वपूर्ण घटनाका वार्षिकोत्सव अब भी नववत्सरादिमें प्रतिवर्ष प्रकृति मनाती है और उस आनन्दके अवसरपर फिर फिर कालके चित्रपटपर चतुर चितेरे चतुराननको वेही चित्र चित्रित करने पड़ते हैं।

* सूर्य्यका वास्तविक रूप श्याम है!

वाचकवृन्द! जैसे सुमेरुकी पुण्यभूमिमें सभी दिशाएं पूर्वदिशा हो सकती हैं, वैसे ही प्रकृतिके काल-पञ्चाङ्गमें प्रतिदिन नवीन वर्षका आरंभ होता है। प्रतिदिन होली और फागका समा प्राची दिशामें दिखाई देता है। प्रतिदिन अदितिनन्दन और उषाकी होलीसे ही दैनिक क्रिया प्रारंभ होती है। ऋतुके अनुसार जब हमारा वसन्तोत्सव होता है आस्ट्रेलिया और फ़िजी आदि द्वीपोंमें शारदीपूर्णिमाका उत्सव होता है। जो हमारे वसन्तागमोत्सवका समय होता है, आवश्यक नहीं कि संसारमें सबका वही समय हो। इसीलिए प्रकृति देवी इस भू-मंडलके सभी देशकालके अनुरूप नित्य होली मनाया करती है। प्रतिदिन उषाकालमें इस सं-सारके ब्रजमंडलका प्यारा कन्हैया ज्योंही आंखे खोलता है, सारे भूमंडलमें होली मचजाती है। उसकी आंखे खुलते ही संसारकी आंखे खुल जाती हैं। उसकी आंखें खुलते ही संसार की आंखें खुल जाती हैं, उसकी आंखोंसे ही हमारी आंखोंमें ज्योति आती है और रंगोंकी छबीली छटा, विचित्र बहार देखने लगते हैं। वही प्यारा कृष्ण हमें भी रंगोंमें शराबोर कर देता है। काले, काले, गोरे, गेहुएं, तामड़े बना देता है। हमारे वस्त्र पीले, उजले, हरे, लाल आदि कर देता है। वही अन्धकार होलिकाका उषाकालमें दहन करके फाग खेलता है। उसीकेलिये कहा है—

> तच्चक्षुर्देवहितं, पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्
>
> पश्येम वसन्तः शतम् , इत्यादि

यह कुतूहलमय घटना नित्य हमारी आंखों-के सामने होती है, परन्तु देखते देखते इसका वैचित्र्य हमारी आंखोंसे ओझल हो गया है। इस वैचित्र्यको चित्तमें अंकित करनेकेलिए आर्य्य जाति प्रतिवर्ष एक दिन यह उत्सव मनाया करती है और उसी उत्सवमें आचरणके चित्रपटपर चंचल चित्त चतुर चितेरे वे ही चित्र चित्रित करते हैं।

प्यारे पाठको ! उस विश्वके अभिनय क्षेत्रके नटवर गोपालने आजकल वह होलीका दृश्य रच रक्खा है जो चार हजार वर्ष हुए उसने कुरुक्षेत्र में मचायी थी। क्रूरता, अमानुषता, आदि घोर कर्म्मोंका होलिका दहन हो रहा है। आजकल युरोपकी रंगभूमिमें दोनों दलोंमें अश्रुतपूर्व होली मच रही है। इन पिचकारियों और कुंकुमोंने रंगका रंग बदल दिया।

इस फागके खेलमें जर्म्मनीके रंग चुक गये। सारे संसारमें रंगोंका दुर्भिक्ष पड़ गया। रंग बनानेवाले और उड़ानेवाले दोनों मसाले खंग गये। इस वर्ष जब रक्तके रंगसे रंजित होली एक तिहाई संसार खेल रहा है, हमारी होली रंग बिरंगी हुआ ही चाहे। इसीलिए अब अप्राकृतिक रंगोंको छोड़ प्रकृतिके रंगोंमें रंजित होना ही उत्सवकामियोंके लिए एकमात्र उपाय रह गया। आइये उसी रंगीलेको जयजयकार मनाते हुए वत्सरान्त और वत्सरादिके उपलक्ष्य में हम आप मिलें और इस मेलको सालभर बराबर अपने अपने कर्त्तव्यपालनमें एक दूसरेको यथेष्ट सहायता देनेकी प्रतिज्ञाका रूप समझें। ॐ शम्

कार्य्य विवरण

विज्ञान परिषत्का दूसरा साधारण अधिवेशन, शनिवार ४ मार्च १९१६, को ५ $\frac{१}{४}$ बजे सायंकालको महामहोपाध्याय डाक्टर गङ्गानाथझा के सभापतित्वमें हुआ।

मंत्रीके प्रस्ताव और श्री ब्रजराजके अनुमोदन करनेपर निम्नलिखित सज्जन परिषत्के सभ्य और परिसभ्य चुने गये—

१ श्रीयुत बाबूलाल भार्गव, बी. ए. एल. टी. गवर्मेन्ट हाई स्कूल, हाथरस
२ श्री० श्यामसुन्दर लाल कक्कर, साईन्स मास्टर गव० हाई स्कूल, हाथरस
३ श्री रामदयाल, एफ. ए., सी. टी. गवर्मेन्ट हाई स्कूल, हाथरस
४ श्री० रामेश्वर दयाल जी, हेडमास्टर टाऊन स्कूल, हाथरस
५ श्री विजय सिंह, लखनू (अलीगढ)
६ श्री रघुवीर सिंह, सूरजपुर स्टेट पोस्ट-लखनू
७ श्री होतीलाल ठिकाना पं० चैतराम फोटोग्राफर, हाथरस
८ श्री सी-एल. बरमन बिलडिङ्ग मोनसन गेट, हाथरस
९ मिस्टर गङ्गाशंकर पचौली, हेडमास्टर हाई स्कूल भरतपुर
१० श्री जे. एन्. गोयल, ठिकाना मसर्स पारसी शाह एण्ड कम्पनी
११ पटेल डोलजी वमना निवासी, डाक खाना बडनगर, गवालियर
१२ पं० दक्षिणामूर्त्ति एम्. ए. प्रोफेसर कायस्थ पाठशाला, प्रयाग
१३ श्री रासविहारी, मंत्री आर्य्यसमाज, लखनऊ
१४ श्रीयुत घनश्याम प्रसाद चौधरी, आनरेरी मेजिस्ट्रेट, महाराजपुर, मंडला
१५ डाक्टर उमराव सिंह गुप्त, बी. एस-सी ८२ लाटूश रोड लखनऊ
१६ शिवेन्द्र नरायण ओझा
१७ श्रीयुत पन्नालाल, पोस्ट आफिस लडनून. मारवाड,
१८ श्रीयुत मोती लाल जैन, सतना
१९ श्री प्रद्युम्न नाथ सप्रू, कोमरशियल स्कूल ५६, मेन रोड, रांछा
२० मिस्टर बृजलाल शुक्ल
२१ पं० गोपाल प्रसाद भार्गव, रईस, बेलनगंज, आगरा

सभ्य

१ बाबू जगदीश सहाय माथुर, बी. ए.,

एल-एल. बी, पबलिक प्रोसीक्यूटर, भरतपुर

२ माननीय पं० विष्णुदत्त शुक्ल, बी. ए. सिहोरा रोड- (जबलपुर)

३ श्रीयुत नरायणदास, हेडमास्टर, ल्याल हाई स्कूल, बलरामपुर

४ पं० बालादत्त जोशी

५ श्रीयुत नर्मदा प्रसाद, बी. ए., म्योर-कालेज, प्रयाग

६ पं० दुर्गाचन्द्र जोशी, कंखल

७ श्रीयुत भास्कर रामचन्द्र भालेराव सम्पादक चित्रमय जगत, पूना

८ श्रीयुत महाबीर प्रसाद पोद्दार, कालपुर

९ पं० जगन्नाथ प्रसाद एम्. ए. काव्यतीर्थ, दर्शन ःसशी, वकील, मुज़फ़र पुर

१० पं० यागेश्वर दत्त जोशी, वैद्य, कंखल

११ अध्यापक बद्रीनाथ वर्म्मा, एम्.ए, काव्य-तीर्थ, बी. एन. कालेज पो.स्ट ओफिस मुरादपुर, (बांकी पुर)

१२ श्रीयुत प्यारेलालगर्ग, एल, एजी, पूसा

१३ पं० पाठेश्वरी प्रसाद त्रिपाठी, हिन्दू बार्डिङ्ग हाऊस, प्रयाग

१४ डाकृर सामेश्वर प्रसाद भार्गव, प्रयाग

तदनन्तर डाकृर मूलचन्द टण्डन, एल. एम्. एस. ने शरीरके अङ्ग और उनके धर्म पर बड़ा मनोहर व्याख्यान दिया। व्याख्यानके उपरान्त व्याख्याताको सभापति जीने धन्यवाद देकर सभाको समाप्त किया।

गोपाल स्वरूप भार्गव, मंत्री, विज्ञान-परिषद्

प्राप्ति स्वीकार

निम्नलिखित सज्जनोंसे धन-प्राप्ति हम सहर्ष स्वीकार करते हैं

१ अध्यापक श्यामनरायन एम्. ए., प्रयाग (१९१४-१५) २)

२ पं० राम शुकुल पांडे, प्रेम महा-विद्यालय, वृन्दाबन (१९१५-१६) ३)

३ श्री बालकृष्णदास, मुरार, १९१५-१६, १९१४-१९१५, ५)

४ श्री गङ्गाधरपंत, बी. ए., एल एल. बी, वकील बहरायच १९१५-१६ २)

५ श्रीयुत हेमचन्द्र सकसेना, बी. एस्-सी, कायस्थ पाठशाला कालेज, प्रयाग १९१५-१९१६ ३)

६ ठाकुर मनोहर सिंह, मास्टर, टाऊन स्कूल सुलतानपुर ,, ,, ३)

७ श्रीमती रानी फूलकुमारी देवी साहिबा, धामपुर (१९१५-१६) १२)

८ रायबहादुर पं० बैजनाथ, ई. ए. सी, बालाघाट, (१९१५-१६) ३)

९ श्री रामनरायन मिश्र, हेडमा-स्टर, हरिश्चन्द्र हाईस्कूल (१९१५-१६) ३)

१० श्रीपरुशराम खुशीराम, बङ्गलोर (१९१५-१६) ३)

११ श्री विश्वम्भर प्रसाद, एम्. ए., गवर्मैन्ट कालेज, अजमेर (१९१५-१६) ४)

१२ श्री. बी. पी. मुदावेल, एम्. एस्-सी, बार-एट्-ला, डिपुटी कलेकृर बनारस (१९१५-१६) २)

१३ श्री प्रयागनरायण संगम, चन्द्-वासा, इन्दौर (१९१५-१६) ३)

१४ श्रीपन्नालाल, लदनून, मारवाड़ (१९१५-१६) ३)

१५ राय शिवप्रसाद बहादुर, बी. ए., इत्यादि प्रयाग (१९१५-१६) १२)

१६ श्रीमोती लाल जैन, बज़ाज़, सतना (१९१५-१६) ३)

१७ श्री बाबूलाल भार्गव बी. ए., एल्-टी हाथरस (१९१५-१६) ३)

१८ श्रीश्यामसुन्दर लाल कक्कर, हाथरस (१५-१६) ३)
१९ श्रीरामदयाल, हाथरस (१५-१६) ३)
२० श्रीरामेश्वर दयाल, हाथरस (१५-१६) ३)
२१ श्री बिजयसिंह, लखनू (हाथरस) (१९१५-१६) ३)
२२ ठाकुर रघुबीर सिंह, सूरजपुर, हाथरस (१९१५-१६) ३)
२३ श्री होतीलाल, हाथरस(१९१५-१६) ३)
२४ श्री सी. एल्-वरमन, हाथरस (१९१५-१६) ३)
२५ श्रीहरदयाल सिंह बी. एस्-सी पूसा(१९१५-१६) १२)
२६ श्रीवेंकटेश रामइया सामइया तम्मा, एम्. एस-सी मेरठ (१९१५-१६) १२)
२७ श्रीगङ्गा शंकर पचोली भरतपुर (१९१५-१६) २)
२८ श्री मोहन लाल जौहरी, बम्बई (१९१५-१६) ८)
२९ श्री उमरावसिंह गुप्त, बी. एस् सी, एल्. एम्. एस्, डाकूर लखनऊ (१९१५-१६) ३)
३० श्री प्रद्युम्न नाथ सपरू ,, ,, ३)
३१ श्री घनश्याम प्रसाद, अनेररी मजिस्ट्रेट महाराजपुर (१९१५-१६) ३)
३२ श्री वृजलाल शुक्ल, गिरगांव (१९१५-१६) ३)
३३ श्री गोपाल प्रसाद भार्गव, रईस, बेलनगंज आगरा (१९१५-१६) ३)
३४ श्री श्यामलाल भार्गव, अजमेर (१९१५-१६) ३)
३५ माननीय राजा रामपाल सिंह कुर्री दौली राज (१९१५-१६) १२)
३६ श्री सुरेन्द्र शर्म्मा, सदर बाज़ार, हरदोई (१९१५-१६) ३)
३७ श्री कस्तूर मल बंठिया, धन जी स्ट्रीट बम्बई (१९१५-१६) ३)
३८ श्री माधो प्रसाद, गणेशगंज, मिर्ज़ापुर (१९१५-१६) ३)
३९ श्री भौंरालाल शर्म्मा, अलवर (१९१५-१६) ३)
४० श्री युत वृजराज १)
४१ पं. कमलाकर दुबे. एम्. ए., डिप्युटी कलक्टर, सीतापुर (१९१५-१६) १२)
४२ श्री. जे. एन गोयल, लखनऊ (१९१५-१६) ३)
४३ प्रोफेसर जे. एन. उनवाला, एम्. ए., हिन्दू कालेज काशी (१९१५-१६) १२)
४४ राय बहादुर हरिकृष्ण पन्त, प्रयाग (१९१५-१६) १२)
४५ पं. नन्द कुमार तिवारी लखनऊ (१९१५-१६) ७)
४६ सय्यद मुहम्मद रज़ा, एम्. ए. डिप्युटी कलक्टर, सीतापुर (१९१५-१६) १२)
४७ श्री मुखतारसिंह, मेरठ (१९१४-१५) ५)
४८ श्री छेदा लाल, हाईस्कूल हरदोई (१९१५-१६) ३)
४९ श्री जगन्नाथ प्रसाद श्रीवास्तव बी. ए, (१९१४-१५) ५)
५० पं. चन्द्र शेखर शास्त्री, दारागंज प्रयाग (१९१४-१५) ७)
५१ पटेल डोलजी, बमना, गवालियर (१९१५-१६) ३)
५२ श्री रासविहारी तिवारी, लखनऊ (१९१५-१६) ३)

५३ श्री निहालकरण सेठी, एम्. एस्. सी, मेरठ (१९१५-१६) १२)

५४ पं. श्री कृष्ण जोशी, पानदरीबा प्रयाग (१९१५-१६) १२)

५५ पं. राम जी लाल शर्म्मा, सम्पादक विद्यार्थी, कर्नलगंज, प्रयाग (१९१४-१५) १२)

५६ श्री अयोध्या दास बार-एट-ला, गोरखपुर (१९१५-१६) १२)

२९८)

इसमें केवल परिषत्के चन्दे ही शामिल हैं। यदि किसी सज्जन ने चन्दा पहली मार्चतक भेजा हो, और ऊपर दी हुई फहरिस्तमें स्वीकृत न हो, उन्हें उचित है कि मंत्री को तुरन्त सूचना दें। अन्यथा भूलका पता पीछे लगना अत्यन्त कठिन होगा।

गोपालस्वरूप भार्गव, मंत्री.

समालोचना

शिक्षाका आदर्श और लेखन-कला—स्वामी सत्यदेवजीकी व्याख्यानमालाकी यह पहली संख्या है। डबलक्रौन १६ पेजीके यह १०९ पृष्ठोंकी अमोल पुस्तक सत्यग्रन्थमाला आफ़िस, जानसेनगंज प्रयागसे।=) में मिलती हैं। हिन्दीकेलिए कैसे लेखकोंकी आवश्यकता है यह जाननेको प्रत्येक होनहार लेखक अवश्य पढ़े। इस संख्यामें शिक्षाका आदर्श अधिक महत्वका लेख है और देश और कालके अनुकूल है। आजकल शिक्षाको लोगोंने रोटीका एक मात्र उपाय समझ रखा है और उसके सच्चे आदर्शको एक दम भूल गए हैं। व्याख्याताने उसके वास्तविक आदर्शकी ओर पाठकोंका ध्यान दिलाकर बड़ा उपकार किया है। लेखप्रणाली प्रभावशालिनी है। हमें आशा है कि "जीविकाके विविध व्यवहारसाध्य उपाय" इस विषयपर भी स्वामीजी अपने अनुभव और खोजसे व्याख्यान और लेख हिन्दी संसारको भेट करेंगे। इस पुस्तकसे पठित समाजको लाभ उठाना चाहिए।

—रा० गौ०

कृषि-कोष अर्थात् खेतीकी किताब—लेखक बा० हरीरामसिंह वर्म्मा, M. S. A. S. (सुपरिंटेंडेंट कृषि विभाग, राय बरेली,) डिमाइ अठपेजी पृ० २६२, मूल्य १), ग्रंथकारसे प्राप्य।

खेती बारीपर इससे अच्छी और सरल किताब हमारे देखनेमें नहीं आयी है। कृषि-विज्ञानको किसान इस पुस्तकसे बिना गुरुके सीख सकता है। भाषाको सरल करनेके प्रयत्नमें ग्रंथकारने कहीं कहीं बड़े कठिन फ़ारसी अरबीके शब्द भी रख दिये हैं। कृषिविभागवाले तो और भी अधिक अरबीके भक्त हैं, जिनकी अपेक्षा ग्रन्थकार महाशय हिन्दीके ही भक्त मालूम होते हैं। शायद कृषिविभागका यह अनुमान है कि भारतीय किसान अरबीके शब्द संस्कृतकी अपेक्षा अधिक समझ सकता है। हम नम्रतापूर्वक याद दिलाते हैं कि यह भारतवर्ष है, अरब नहीं है।

—रा. गौ.

× × ×

सूचना

जिन सभ्यों तथा परिसभ्योंका चन्दा अभीतक नहीं आया है, वह कृपया अपना चन्दा शीघ्र ही भेजें, ताकि अगले मासमें विज्ञान उनके पास ठीक समयपर पहुंचे।

परिसभ्योंको उचित है कि वी. पी. की प्रतीक्षा न करें। वी पी. भेजनेसे प्रकाशक तथा परिषत्के हिसाबमें गड़बड़ पड़ती है, इसी कारणसे वी. पी. न भेजी जाँयगी। परिसभ्य कृपया मंत्रीके पास अपना चन्दा शीघ्र भेज दें।

गोपालस्वरूप भार्गव,
मंत्री।